THE
KASHI SANSKRIT SERIES
235
*****

# CATURVARGACINTĀMAṆI

OF

## ŚRĪ HEMĀDRI

**Volume I**

DĀNAKHAṆḌA

*EDITED BY*

PANDITA BHARATACANDRA ŚIROMAṆI



CHAUKHAMBHA SANSKRIT SANSTHAN
*Publishers and Distributors of Oriental Cultural Literature*
P. O. Chaukhambha, Post Box No. 1139
Jadau Bhawan, K. 37/116, Gopal Mandir Lane
VARANASI ( INDIA )

Phone : 65889

Price Rs. 2500-00 for the set of four volumes in seven parts
Rs. 400-00 for Volume I ( Dānakhaṇḍa )



Originally Published by The Asiatic
Society of Bengal in 1871
Reprinted 1985



*Also can be had of*

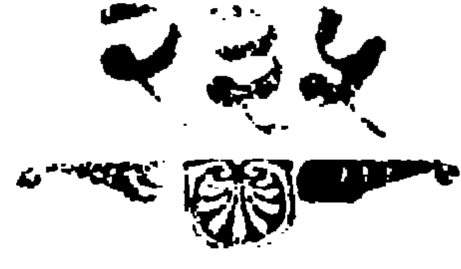
**CHAUKHAMBHA VISVABHARATI**
Post Box No. 1084
Chowk ( Opposite Chitra Cinema )
VARANASI-221001
Phone : 65444

*Printers*-Srigokul Mudranalaya, Gopal Mandir Lane, Varanasi
and Globe Offset Press, New Delhi

॥ श्रीः ॥

काशी संस्कृत ग्रन्थमाला

२३५



# चतुर्वर्गचिन्तामणिः

श्रीहेमाद्रिविरचितः

तत्र

## दानखण्डनामा

प्रथमः खण्डः

श्रीभरतचन्द्रशिरोमणिना परिशोधितः

चौखम्भा संस्कृत संस्थान

भारतीय सांस्कृतिक साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक

पो० आ० चौखम्भा पो० बा० नं० ११३९

जड़ाव भवन, के. ३७/११६, गोपाल मन्दिर लेन

वाराणसी ( भारत )

प्रकाशक : चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी

मूल्य : रु० २५००-०० संपूर्ण १-४ खण्ड, ७ भाग

रु० ४००-०० प्रथमखण्ड ( दानखण्ड )

मूल रूप से आसियाटिक् सोसायिटि आफ बंगाल द्वारा प्रकाशित, १८७१

पुनर्मुद्रण १९८५

अन्य प्राप्तिस्थान

**चौखम्भा विश्वभारती**

पोस्ट बाक्स नं० १०८४

चौक ( चित्रा सिनेमा के सामने )

वाराणसी-२२१००१ ( भारत )

फोन : ६५४४४

मुद्रक—श्रीगोकुलमुद्रणालय, गोपाल मंदिर लेन, वाराणसी एवं

ग्लोब आफसेट प्रेस, नई-दिल्ली

# विज्ञापनम्

महामहोपाध्यायश्रीहेमाद्रिविरचितश्चतुर्व्वर्गचिन्तामणिर्नाम ग्रन्थोऽयं, यश्च व्रतखण्ड-दानखण्ड-कालखण्ड-श्राद्धखण्ड-परिशेषखण्डैः पञ्चभिर्व्विभक्तस्तेषां दानखण्डात्मकश्चिन्तामणिः, आसियाटिकसीसाइटी सभाध्यक्षमहोदयानामनुमत्या संस्कृतविद्यामन्दिरस्थस्मृतिशास्त्राध्यापकवरेण मयाधुना मुद्रितः, परिशोधितश्च. चतुर्व्वर्गचिन्तामणौ स्मृतिनिबन्धे महाशास्त्रे ब्राह्मणादीनां वर्णानां ब्रह्मचर्य्यादीनामाश्रमाणामनुलोम–प्रतिलोम सङ्करजातीनाञ्च षड्विधधर्म्मा विशेषेण निर्णीताः सन्ति, ग्रन्थोऽयमतीव विस्तरः, सर्व्वसाधारणैर्व्वहुवित्तव्यायायाससाध्यतया संग्रहीतुं बहुलतरः च स्वयं लेखितुमशक्यस्तेनास्य विरलप्रचारतया सर्व्वेषां । समाचार-व्यवहारसंश्रयाः साधारणैर्निःसन्देहमवगन्तुमशक्यन्तेऽतः करुणया सर्व्वजनगोचरार्थं समूल्यं मुद्रादिकरणकार्योपयुक्तं न तु लाभार्थं कृत्वा मुद्रितः, अस्य तु मुद्राङ्कनेन हिन्दुजातीनां महोपकारः सम्भाव्यतेऽस्माकमपि संशयो नास्तीति, साम्प्रतं विज्ञाप्यते हेमाद्रिस्तु, देवगिरिस्थ-यादव हाराजाधिराजमहादेवचक्रवर्त्तिनो राज्ञो धर्म्माधिकरणम् आसीत् माद्रिरपि स्वयं नृपतिः, यस्य सभापण्डितो महामहोपाध्यायः श्रीवोपदेव आसीत्, अनुमीयते पञ्चवसुधरेन्दुमिते शकसम्वत्सरे द्वित्रादिवत्सरन्यूनाधिक्येन समजनिष्ट। हेमाद्रिरपि तदैव समुदयं लेभे च, अत्रेयं किंवदन्ती, एतद्ग्रन्थकर्त्ता श्रीवोपदेव

इति, वोपदेवकृतपदार्थादर्शाभिधानग्रन्थकारिकाम् अनेकस्थाने समुत्थाप्य यथातत्त्वं कारिकाव्याख्यानङ्कृत्वा प्रामाण्यसम्पादनार्थं मूल हेमाद्रौ चिन्त्यमित्यादिनिर्णयसिन्धुप्रभृतिसन्दर्भेणैवं प्रतीमश, यद्यपि क्रमप्राप्तं व्रतखण्डमेवादौ मुद्रयितु मुचितमासीत् तत् विहाय व्युत्क्रमेण दानखण्डमुद्राङ्कने सन्दिहानस्य जिज्ञासोर्जिज्ञासाविनिवारणवीजमिदं। व्रतखण्डस्यादर्शभूतमेकमात्रं पुस्तकं लब्धं दानखण्डस्य चत्वारि पुस्तकानि परिप्राप्तानि अतो हेतोः क्रमप्राप्तमपि तन्न मुद्रितम् एकमात्रपुस्तकदर्शन विश्वासेन मुद्राङ्कनस्यानौचित्यं चतुर्णां पुस्तकानां द्वे तु संस्कृतविद्यामन्दिरपुस्तकागारस्थिते एकन्तु शोभावाजारस्य श्रीराजेन्द्रनारायण वाहादुरसदनस्थं अन्यत्तु ग्रासियाटिकसोसायिटीपुस्तकसदनस्थम् एतेषामपिचाङ्कतं उड़ाराजवाटीस्थं पुस्तकं समीचीनं प्रतिभाति, चतुर्णां पुस्तकानां केनचित् केनचिदंशेन विरोधोऽस्ति कुत्रचित् कतिचित् श्लोका अधिकाः क्वचिच्च न्यूनाः कस्मिंश्चिदंशे अक्षराणि विलुप्तानीदृग्दशायां सत्यामपि बहुतरपरिश्रमेण परस्परपाठं विचार्य्य मन्वादिसंहिताः स्मार्त्तादिस्मृतिनिबन्धान् सामञ्जस्यार्थं समालोच्य स्थिरीकृत्य मुद्रितो यद्यपि तथापि।

महारण्यच्छेदात् परमपि कियच्छिष्टमपरं
ततश्छेत्तुर्द्दोषो नहि भवति भाव्येहि विषये।
क्रमन्यायादत्र क्वचिदपि भवेद्दुष्टमपरं
वचः चम्यं याचे विमतिततिपूर्ण्णं हि कृतिनः॥

इदमपि द्रष्टव्यम्।

यद्यपि शिरोभागे चतुर्व्वर्गचिन्तामणिनामलिखनस्यौचित्ये-ऽपि सर्व्वत्र ग्रन्थेषु हेमाद्रौ चिन्त्यं, हेमाद्रावभिहितमित्यादि भूरि-भूरि प्रयोगदर्शनेन प्रसिद्धमेतन्नामेति वृद्धावाकलय्य पुरुषस्य व्यावहारिकनामराश्याश्रितनाम्नो र्व्यावहारिकनाम्नः प्रसिद्धत्वमिव चतुर्व्वर्गचिन्तामणिसमाख्यां विहाय हेमाद्रिनामोल्लिखितमिति न किञ्चिदनुचितम्।

श्रीभरतचन्द्रशर्म्मा।

# सूचीपत्रम्।


| अ | पृष्ठा |
|---|---|
| अग्राशनकुम्भे ... | ५७ |
| अग्निष्टिकादानम् .. | ९२७ |
| अजादानम् ... | ७१७ |
| अतिथिदानानि ... | ८४९ |
| अतिदानलक्षणम् ... | २९७ |
| अतिदानविधानम् ... | १९७ |
| अतिदानं विद्यादानाख्यम्... | ५११ |
| अतिदानं भूमिदानाख्यम्... | ४९४ |
| अदेयनिरूपणम् ... | ४९ |
| अनन्तफलदानानि ... | ८९१ |
| अन्नदानम् ... | ९७२ |
| अनिबद्धरूपम् ... | १२७ |
| अपाकदानम् ... | ९११ |
| अपात्रनिरूपणम् .. | २५ |
| अभयदानम् ... | ९४६ |
| अभ्यङ्गदानम् ... | ९५४ |
| अलङ्कारदानम् .. | ९०२ |
| अवमलक्षणम् .. | ७७ |
| अश्वत्थदानम् ... | १०१९ |
| अश्वसेचनम् ... | ९९१ |

| | पृष्ठा |
|---|---|
| अश्वदानविधिः ... | ५८९ |
| अश्वदानापरविधिः ... | ५९२ |
| अश्विनीकुमारस्तवनम् ... | २८१ |
| अश्विनोर्दानम् .. | ७७४ |
| अश्विनोर्वचनम् ... | ७७५ |
| अष्टकाः ... | ११० |
| अष्टाङ्गार्घम् ... | ११० |
| अष्टविधलक्षणम् ... | ६८४ |
| अष्टादशधान्यानि ... | ११९ |
| अस्थीनि ... | २११ |
| अश्वरथदानविधिः ... | ६१६ |
| आ | |
| आचार्यलक्षणम् .. | २८ |
| आत्मप्रतिकृतिदानम् ... | ७०२ |
| आनन्दनिधिदानविधिः ... | ५८२ |
| आसनदानम् .. | १०२९ |
| आम्रदानम् ... | ९८६ |
| आयुर्वेददानानि .. | ८९२ |
| आयुष्करदानम् ... | ७८८ |
| आरामरोपणम् .. | १०४१ |
| आरोग्यदानम् ... | ८९१ |

# सूचीपत्रम ।


| | पृष्ठा |
|---|---|
| आश्रयदानम् ... | ९३५ |
| आशालक्षणम् .. | ८५६ |
| आसनदानम .. | ९१६ |
| **इ** | |
| इष्टापूर्त्तसमानकाः ... | ७१ |
| इष्टकर्म्मलक्षणम् ... | २० |
| **उ** | |
| उदकदानम् ... | ९८८ |
| उदकुम्भदानम् ... | ७९६ |
| उपचारषोडशकम् ... | १११ |
| उपरागकालः ... | ७१ |
| उभयतोमुखीदानम् ... | ४७३ |
| उभयधर्म्माः ... | ९९ |
| उमामहेशदानम् ... | ७४५ |
| उमालक्षणम् .. | २२५ |
| उमामहेश्वररूपम् ... | ७१२ |
| उष्णीषदानम् ... | ९०९ |
| **ऊ** | |
| ऊर्णापटदानम् ... | ९१० |
| **ऋ** | |
| ऋतुदानानि ... | ८८८ |
| **ए** | |
| एकादशघटादानसंज्ञं महादानम् | २९४ |
| **क** | |
| कदलीदानम् ... | १०३५ |
| कनकशृङ्गीदानविधिः ... | ४५६ |
| कायिक-वाचिक-मानसिक दान- | |
| लक्षणानि ... | १८ |
| कन्यादानम् ... | ९७१ |
| कपिलादानविधिः ... | ४९१ |
| कर्व्वटादिस्वरूपम् ... | १२८ |
| करणदानानि .. | ८८१ |
| कर्पूरादिधेनुदानम् ... | ४३४ |
| कलशदानम् ... | ८४६ |
| कल्पपादपसंज्ञं चतुर्थं महादानम् | २४५ |
| कल्पलताभिधानं षष्ठोदशमहादानम् | ३२४ |
| कांस्यदानविधिः .. | ९०२ |
| कामदेवलक्षणम् ... | २४६ |
| कामधेनुदानविधिः वह्निपुराणोक्तः | २६८ |
| कामधेनुदानं नानाशास्त्रीयम् | २७२ |
| कामलक्षणम् ... | ३५२ |
| कार्पासधेनुदानम् .. | ४३१ |
| कार्पासपर्व्वतदानविधिः ... | ३७६ |
| कालचक्रदानम् .. | ३६४ |
| कालपुरुषदानम .. | ७६१ |
| कालविशेषेण दानविशेषाः | ८४९ |
| कालाख्यं दानाङ्गमभिधीयते | ६१ |
| कुण्डनिर्म्माणप्रकारः ... | १२१ |
| कुण्डस्याङ्गादिवैकल्ये ऽनिष्टफलम् | १३२ |
| कुण्डस्य कण्ठमानम् ... | १३५ |
| कुण्डस्य मेखलालक्षणम् ... | १३५ |
| कुण्डस्य योनिलक्षणम् ... | १३६ |
| कुमारलक्षणम् ... | ८५४ |
| कूपनिर्माणम् ... | १००१ |
| कृष्णरूपम् ... | ८७० |

# सूचीपत्रम्


| | पृष्ठा |
|---|---|
| कृष्णाजिनदानं (मध्यमं) ... | ७०३ |
| कृष्णाजिनदानवाक्यम् ... | ६९८ |
| कृष्णाजिनदानविधिः (अपरः) | ७०१ |
| कृष्णाजिनदानानि ... | ६९३ |
| क्षीरधेनुदानम् ... | ४१३ |
| **ग** | |
| गजदानम् ... | ६११ |
| गजदानं देवताभ्यः ... | ६१७ |
| गजदानविधिरपरः ... | ६३३ |
| गजदानविधिर्मुखरोगघ्नः ... | ६२५ |
| गजदानविधिर्व्रणघ्नः ... | ६३१ |
| गणेशरूपम् ... | १२ |
| गणेशदानम् ... | ८२१ |
| गन्धदानम् ... | ६२० |
| गन्धमादनस्यावाहनमन्त्रः ... | १५४ |
| गन्धर्व्वरूपम् ... | ११७ |
| गरुड़दानम् .. | ७५१ |
| गरुड़दानविधिरपरः .. | ७४९ |
| गरुड़मूर्त्तिदानविधिः अचिरेदनाघ्नः | ७४४ |
| गरुत्मतो रूपम् ... | ८५७ |
| गरुड़लक्षणम् .. | ९८५ |
| गलन्तिकादानम् .. | ६६४ |
| गीतादिदानम् ... | ९२३ |
| गुड़धेनुदानविधिः ... | ३९८ |
| गुड़धेनोरामन्त्रणमन्त्रः .. | ३९९ |
| गुड़पर्व्वतदानविधिः .. | २६१ |
| गुड़पर्व्वतदानविधिर्मात्स्यपुराणोक्तः | २६१ |
| गृहदानम् .. | ६४६ |
| गोगृहदानम् .. | २९६ |
| गोदानं देवताभ्यः ... | ४६६ |
| गोदानं दैवतोद्देशेन ... | ४६३ |
| गोदानं स्वरूपतः ... | ४४४ |
| गोदानविधिः ... | ४५१ |
| गोदानविधिस्त्रिरात्रः ... | ४६८ |
| गोदानविधिर्नानाप्रकारः | ४५७ |
| गोदानमन्त्रः सर्व्वसाधारणः | ४५१ |
| गोपरिचर्य्यानिरूपणम् ... | ९६१ |
| गोपालमूर्त्तिदानम् .. | ७३३ |
| गोमती अन्यापि ... | ४५२ |
| गोमतीविद्या ... | ४०५ |
| गोसहस्रदानविधिः ... | २६३ |
| गोसहस्रदानविधिः लिङ्गपुराणोक्तः | २५३ |
| गोसहस्रदानविधिः त्रिप्रकारः कालिकापुराणोक्तः ... | २५८ |
| गोसहस्रदानविधिः स्कन्दपुराणोक्तः | २६१ |
| गोसहस्राख्यं पञ्चमं महादानम् | २५२ |
| ग्रहदानम् .. | ८०० |
| ग्राह्यमप्यत ... | ५८ |
| **घ** | |
| घण्टादानम् ... | ७२८ |
| घृतधेनुदानविधिः आदित्यपुराणोक्तः | ४१२ |
| घृतादितुलापुरुषदानविधिः | १११ |

पृष्ठा

घ

घृताचलदानविधिः .. १९८
चतुर्मुखकल्पम् .. ११४
चतुर्मूर्त्तिदानम् ... ७८५
चन्द्रसूर्य्यदानम् ... ७७६
चामरदानम् ... ९१९

छ

छत्रोपानहदानम् ... ९२४

ज

जम्बुद्वीपप्रदानाख्यं महादानम् ३०४
जम्बुद्वीपोपवर्णनम् ... २९५
जलधेनुदानम् ... ४१८
जलधेनुदानविधिः .. ४२१
जलधेनुदानविधिः आदित्य पु० उ० ५२१

त

तत्त्वाग्निप्रतिष्ठा ... १०१४
तत्पुरुषदानविधिः ... १०४९
ताम्बूलदानम् .. ९११
तिथिदानानि ... ८५९
तिथिकालः प्रथमप्रकाशे ... ६१
तिलकरकदानविधिः ... ६२५
तिलकुम्भदानविधिः ... ६२८
तिलगर्भदानविधिः ... ६३०
तिलदानम् ... ५९४
तिलधेनुदानम् ... २०४
तिलधेनुदानमन्त्रः .. ४०३

पृष्ठा

तिलधेनुदानविधिः ... ४०४
तिलधेनु दान विधिः देवीपुराणोक्तः ४०७
तिलधेनुदानविधिः विष्णुपुराणोक्तः ४०८
तिलपद्मदानम् ... ११
तिलपद्मदानविधिः ... ६०७
तिलपद्मदानविधिरपरः .. ६१०
तिलपद्म दान विधिस्तृतीयः ६११
तिलपद्मदानविधिः क्षयरोगघ्नः ६१२
तिलपद्मदानविधिः हृद्रोगघ्नः ६१३
तिलपद्मदानं [illegible] ... ६१४
तिलपद्मदानविधिः मूकत्वघ्नः ६१८
तिलपद्मपञ्चकदानविधिः ... ६१९
तिलपात्रदानविधिः ... ६००
तिलपीठदानविधिः ... ६१२
तिलनगदानविधिः ... ६००
तिलारत्नकूटदानविधिः ... ६२१
तिलराशिदानविधिः .. ६०६
तिलशैलदानविधिः ... २६६
तिलशैलदानविधिः भविष्योत्तरोक्तः २६२
तुलादण्डमानम् ... १९१
तुलादर्शदानविधिः ... ६२३
तुलादिरोपणानि .. १८८
तुलापुरुषदानविधिर्मात्स्योक्तः २१५
तुलापुरुषयागः लिङ्गपुराणोक्तः १६८
त्रीण्यतिदानानि ... १९
त्रिपञ्चकदानविधिः ... ६१९
त्रिपुरुषदानविधिः .. ७८४

| | पृष्ठा |
|---|---|
| त्रिमूर्त्तिदानम् ... | ७८१ |
| **द** | |
| दक्षिणामूर्त्तिदानम् ... | ७४९ |
| दक्षिणादिनिर्णयः ... | १११ |
| दधिधेनुदानम् ... | ४२५ |
| दर्पणदानम् ... | ९१७ |
| दशमहर्षयः ... | २४२ |
| दशमहादानानि .. | ५६५ |
| दश सर्व्वौषध्यः ... | ११० |
| दशावतारदानम् ... | ८०६ |
| दशावताराणां लक्षणम् ... | ३२७ |
| दशावताराः ... | ३२७ |
| दानपात्रनिरूपणम् ... | २१ |
| दानप्रतिपादनम् ... | १६६ |
| दानप्रशंसा ... | ४ |
| दानफलानि ... | १५० |
| दानलक्षणानि ... | १७ |
| दानविशेषः पात्रापात्रविधाने | ९२ |
| दानसामान्यविधिः। ... | ८७ |
| दानस्वरूपोपवर्णनम् ... | १२ |
| दानाङ्गं देशाख्यम् ... | ८२ |
| दानाङ्गं कालाख्यम् ... | ८४ |
| दासीदानविधिः ... | ६२९ |
| दासीदानविधिः (विवाह)... | ६४१ |
| दिग्गजप्रभृतीनां लक्षणानि | २९३ |
| दिग्दानम् .. | ७९२ |
| दिनक्षयः ... | ७६ |

| | पृष्ठा |
|---|---|
| दिनक्षयवमयोर्भेदः ... | ७५ |
| दिनच्छिद्रलक्षणम् ... | ७६ |
| दीपदानम् .. | ९१९ |
| देवगणदानम् ... | ८१६ |
| देवतादानानि ... | ७१० |
| देयनिरूपणम् ... | ४० |
| द्वादश मेरुदानानि, शैवानि | ३८४ |
| द्वादशादित्यदानम् ... | ८१४ |
| द्वारबन्धः ... | १०७ |
| द्विजसम्पादनम् ... | ६९० |
| द्रव्यदानम् ... | ११४ |
| द्रव्यनिरूपणम् ... | ५८ |
| द्रव्याणां यथार्थ्यपरिमाणनिर्णयः | ११४ |
| **ध** | |
| धनमूर्त्तिदानम् ... | [illegible] |
| धर्म्मघटदानम् ... | ९९१ |
| धर्म्मशास्त्रप्रणेतृकथनम् ... | ५२७ |
| ध्वजपात्रदानम् ... | ७७८ |
| ध्वजपात्रदानविधिः ... | ७७९ |
| धान्यमानम् ... | ११८ |
| धान्यपर्व्वतदानम् ... | ३४६ |
| धान्यपर्व्वतदानविधिः .. | ३५७ |
| धान्यपर्व्वतस्य मन्त्रः ... | ३५६ |
| धुरन्धरमन्त्रः ... | २९० |
| धेनुदान विधिर्भवोत्तरः .. | ४७१ |
| धेनुदानविधिः चमत्कारनामकम् | ४७३ |
| धेनोरामन्त्रणमन्त्रः ... | १९९ |

न

| | पृष्ठा |
|---|---|
| नक्षत्रदानानि ... | ८७५ |
| नन्दिकेश्वरलक्षणम् .. | २५३ |
| नवकङ्कणौषध्यः .. | ११० |
| नवग्रहाणां लक्षणम् ... | ८७२ |
| नवनारायणदानविधिः ... | ३६० |
| नवनिधिदानम् ... | ७८८ |
| नागदानम् .. | ७७० |
| नागदानमन्त्रः ... | ७७१ |
| नारायणदानम् ... | ७७२ |
| नारायणादिलक्षणम् .. | २८२ |
| निम्बदानम् ... | ८२० |
| नित्यसुवर्णदानविधिः ... | ५७३ |
| निमित्तानुरोधेन सदापुण्यकालाः | ८१ |
| निषिद्धकालाः ... | ७८ |
| निषिद्धस्यापि धर्म्मविशेषेण पुण्यकालत्वं .. ... | ८१ |
| नृसिंहरूपम् ... ... | ७३८ |
| न्यग्रोधदानम् .. | १३५ |

प

| | पृष्ठा |
|---|---|
| पञ्चधेनुदानविधिः ... | ४०६ |
| पञ्चपर्व्वतदानविधिः ... | ३९२ |
| पञ्चगव्यम् ... | १०९ |
| पञ्चगव्यपूरणम् ... | २२९ |
| पञ्चदैवत्यदानम् ... | ७९३ |
| पञ्चवर्णानि ... | १०९ |
| पञ्चभङ्गाः ... | १०९ |
| पञ्चभूतलक्षणं ... | ९३० |
| पञ्चमूर्त्तिदानम् ... | ७८९ |
| पञ्चलाङ्गलाख्यं दशमं महादानं | २८१ |
| पञ्चामृतम् .. | १०९ |
| पताकयोगः .. | ७८ |
| पर्व्वतदानविधिः ... | ३४६ |
| पर्य्यङ्कदानम् ... | ७५१ |
| परिणयकन्यालक्षणानि ... | ६८१ |
| परिभाषाः ... | १०३ |
| पापविशेषेण देयनिरूपणम् | ५३ |
| पात्रदानम् .. | ९३५ |
| पान्थशुश्रूषा ... | १५१ |
| पादाभ्यङ्गदानम् ... | ९५६ |
| पुण्याहवाचनम् .. | १८५ |
| पुराणदानम् .. | ५२८ |
| पुराणश्रवणदानम् ... | ५४० |
| पुष्पदानम् .. | ९२२ |
| पूर्त्तलक्षणम् ... | २० |
| पृथिवीदानविधिः पाण्डुरोगहरः | ३२४ |
| पृथिवीपद्मदानम् ... | ३१८ |
| प्रकीर्णकालाः ... | ७६ |
| प्रतिग्रहीतृधर्म्माः .. | ९४ |
| प्रतिश्रयदानम् .. | ६७३ |
| प्रद्युम्नलक्षणम् ... | २८७ |
| प्रपादानम् .. | ९९७ |

फ

| | |
|---|---|
| फलातिशयप्रतिपादनार्थं पात्रविशेषेण देयविशेषाः | ४७ |

**ब**

| | पृष्ठा |
|---|---|
| बलिदानमन्त्रः ... | ९२२ |
| बिष्णु गजदानविधिः ... | ६१८ |
| बिष्णु धर्मोत्तरोक्ततुलापुरुषदानविधिः | ११२ |
| बिष्णु लक्षणम .. | १७७ |
| बिष्णु ब्रह्म मन्त्रौ ... | ७८० |
| ब्रह्मविष्णु महेश्वरदानम ... | ७७९ |
| ब्राह्मणप्रशंसा (हिरण्यगर्भाङ्कविधौ | २२४ |
| ब्रह्माण्डदानविधिः पद्म पुं उ० | २४० |
| ब्रह्माण्डाभिधानं तृतीयं महादानम् | २३२ |
| ब्रह्मादिविवाहलक्षणम् ... | ९८४ |

**भ**

| | |
|---|---|
| भगन्दरहरदानं ... | ८९९ |
| भद्रनिधिदानविधिः ... | ५७९ |
| भद्र तडागनिर्माणम् ... | १०५ |
| भवाब्धुत्तरणीयः .. | ४११ |
| भाण्डदानम् .. | ९३० |
| भानुभूमदानम् ... | ५१० |
| भुवनप्रतिष्ठाविधिः ... | ५४० |
| भूमानम् ... | १२० |
| भूमिदानं विष्णवे .. | ५०८ |
| भोगदानानि .. | ८९८ |

**म**

| | |
|---|---|
| मकरदानम् ... | ७६७ |
| मङ्गलाचरणम् ... | १ |
| मणिकदानम् ... | ९९५ |
| मङ्गलद्रव्याणि ... | २३१ |

| | पृष्ठा |
|---|---|
| मणिकदानम .. | ९९५ |
| मण्डपादिलक्षणम ... | १२१ |
| मन्दरस्यावाहनमन्त्रः ... | ३५४ |
| मधुधेनुदानम् .. | ४२६ |
| मधुपर्कः .. | १४१ |
| महतामामनम् ... | ८३८ |
| महद्दानम् .. | ८३६ |
| महन्नामानि ... | ८३८ |
| महर्षिलक्षणम् ... | ९९५ |
| महाभूतघटप्रख्यितं षोडशं महादानम | ३४१ |
| महाकृष्णाजिनदानम .. | ७०५ |
| महातिलपात्रदानविधिः ... | ९०१ |
| महिषीदानम् ... | ७०९ |
| मासदानानि ... | ८८४ |
| मित्रमूर्तिः .. | २७६ |
| मित्रधर्मपदः .. | १०१ |
| मृत्दानप्रसङ्गतः .. | ७०७ |
| मृत्दानविधिरपुरः ... | ७०७ |
| मेरुदानविधिः ... | ३९१ |
| मेरोरङ्गसन्धानमन्त्राः .. | ३५६ |
| मेरोरावाहनमन्त्रः ... | ३५३ |
| मेषदानम् .. | ७१५ |
| मेषीदानम् . | ७१२ |

**य**

| | |
|---|---|
| यन्तकर्मः . | १०९ |
| यज्ञपतिरूपम् .. | ३५२ |
| यज्ञोपवीतदानम् ... | ९५६ |

पृष्ठा

यज्ञोपवीतदानं गर्भपातघ्नम् ९५९

यज्ञोपवीतदानं शिरोरोगघ्नम् ९५८

यत्यादिवपनम् .. ९६१

यमरूपम् ... ७६५

यष्टिदानम् ... ९६०

योगदानानि .. ८८२

युगादितिथिदानम् .. ८६८

योनिमन्त्रः ... ६१९

र

रत्नदानविधिः ... ५८८

रत्नदानम् ... ८९८

रत्नदानं गलगण्डघ्नम् ... ९०१

रत्नदानं व्रणघ्नम् ... ९०१

रत्नधेनुसमाख्यं पञ्चदशमहादानम् ३५०

रत्नाचलदानविधिः ... ३७९

रथदानम् ... ६४२

रसधेनुदानम् ... ४२८

रसाष्टकम् ... ११

रसाः ... ११०

राजस्नापनम् .. ६९१

राज्ञीरूपम् ... ९१६

रुक्मादिपात्रदानम् ... ९२८

रुद्रगायत्री .. ७४६

रुद्रमूर्तिदानम् .. ७५७

रुद्रलक्षणम् ... १२०

रुद्राक्षदानम् .. ७९८

रुद्रैकादशिनीदानविधिः .. ६२७

रूप्यरत्नदानम् .. ४९१

पृष्ठा

रूप्याचलदानविधिः ... ३८१

रूप्यादि तुलापुरुषदानविधिः २१४

रोगघ्नदानानि .. ८९५

रौप्यवृषदानविधिः ... ४९

रौप्यवृषभदानविधिरपरः .. ४९१

रौप्यवृषभदानविधिस्तृतीयः ४९१

रौप्यवृषभदानविधिश्चतुर्थः ४९४

ल

लवणाचलदानविधिः .. ७६१

लक्ष्मीदानम् .. ७१०

लक्ष्मीनारायणदानम् .. ७१९

लक्ष्मीनारायणदानमन्त्रः ... ७४०

लक्ष्मीनारायणरूपम् ... ७४०

लक्ष्मीलक्षणम् ... १२५

लवणधेनुदानम् ... ४१२

लिङ्गपुराणोक्ततुलापुरुषदानविधिः १८८

लोकपालदानविधिः ... ७९६

लोकपालरूपाणि ... १११

लोकपालाष्टकदानम् ... ७९४

लौहतुलापुरुषदानविधिः .. २१७

व

वर्णनीयकन्यानिरूपणम् ... ६८१

वराहदानम् ... ७३५

वह्निमूर्तिदानम् .. ७६०

वस्त्रदानम् ... ९०४

वस्त्रदानं देवताभ्यः ... ९००

वस्त्रदानं शोकहरम् ... ९०८

वस्त्रदानानि रुद्रैकादशानि ९०६

| | | पृष्ठा |
|---|---|---|
| वराहदानम् | ... | ७१३ |
| वर्षोपवर्णनम् | .. | २९६ |
| वस्त्रादिरूपाणि | ... | २३५ |
| वापीनिर्माणम् | ... | १००३ |
| वारदानानि | .. | ८७१ |
| वाराहरूपम् | ... | २४२ |
| वासुदेवरूपम् | ... | २३८ |
| विघ्नेशदानविधिः | ... | ७२४ |
| वितानदानम् | .. | ९१९ |
| विद्यादानफलम् | ... | ५५६ |
| विनायकदानविधिः | .. | ७२० |
| विनायकस्य लक्षणम् | ... | २८५ |
| विपुलपर्वतस्यावाहनमन्त्रः | | २५४ |
| विवाह कालनिरूपणम् | ... | ६८२ |
| विवाहाधिकारिणांनिरूपणम् | | ६८० |
| विश्वकर्मरूपनिर्माणम् | ... | १०५ |
| विश्वचक्रशब्दितं हाटकं महादानम् | | ३१६ |
| विश्वदेवानां नामानि | ... | ८११ |
| विश्वामरदानम् | ... | ८०९ |
| विष्णुगजदानविधिः | ... | ६३८ |
| वृषदानम् | ... | १०३३ |
| वृषप्रतिष्ठा | ... | १०४७ |
| वृषरोपणम् | ... | १०२९ |
| वृद्धिश्राद्धम् | ... | १४० |
| वृद्धिश्राद्धदानविधिः | ... | १४१ |
| वृद्धिश्राद्धविधिः | ... | ४०१ |
| वृषगायत्री | ... | ४८६ |

| | | पृष्ठा |
|---|---|---|
| वृषभदानम् | ... | ४८१ |
| वृषभाधिकगोशतदानम् | ... | ७४६ |
| वृषभैकादशीदानम् | ... | ४६७ |
| वेददानम् | ... | ५१७ |
| वेदाङ्गानि | ... | २१७ |
| वैतरणीगोदानम् | ... | ४७३ |
| व्यजनदानम् | ... | ९१८ |
| **श** | | |
| शक्तिलक्षणम् | ... | २१७ |
| शतमानदानम् | ... | ५७६ |
| शतमानदानविधिः पापरोगहरः | | ५७८ |
| शय्यादानम् | ... | ९११ |
| शर्कराधेनुदानम् | ... | ४३० |
| शर्कराचलधेनुदानविधिः | .. | ३८२ |
| शाकदानम् | .. | ५२६ |
| शिखरदानविधिः | ... | ३९४ |
| शिवभूमिदानविधिः | ... | ५०८ |
| शिवलक्षणम् | ... | २३४ |
| शिवशय्यादानम् | .. | ९११ |
| शिवसुवर्णदानविधिः | | ५७५ |
| शिवस्य महापूजा | .. | ३८५ |
| शिवस्य महास्नानम् | ... | ३८५ |
| शिवाश्वदानविधिः | ... | ५९३ |
| शिविकादानम् | ... | ६४४ |
| शूलदानम् | .. | ७५१ |
| शूलदानविधिः | ... | ७९४ |

| | पृष्ठा |
|---|---|
| शेषशायिमूर्त्तिलक्षणम् .. | २३६ |
| शैयकल्पनदानविधिः ... | २४९ |
| श्वेताश्वदानविधिः .. | ५९० |
| **ष** | |
| षड्रसाः ... | ११० |
| षोडशोपचाराः ... | १११ |
| षोडशसंस्काराः .. | २२१ |
| **स** | |
| संक्रान्तिदानानि ... | ८८३ |
| संवत्सरदानानि ... | ८९० |
| सङ्कर्षणरूपम् .. | २३७ |
| सद्योजातादिलक्षणम् .. | ३७१ |
| सप्तद्वीपाक्षयदानम् ... | ३१३ |
| सप्तधान्यानि .. | ११९ |
| सप्तमर्षयः .. | २४१ |
| सप्तर्षिलक्षणम् ... | १४१ |
| सप्तव्रीहिधेनुदानविधिः .. | ४१२ |
| सप्तमातृणां लक्षणम् ... | १२८ |
| सप्तसागरसंज्ञं ’.तुर्दशमहादानम् | ३९७ |
| समानवत्सगोदानविधिः ... | ४५९ |
| समिल्लक्षणम् ... | १२९ |
| सम्पत्करदानम् .. | ८०४ |
| सरस्वतीदानम् ... | ७२५ |
| सरस्वतीदानविधिः .. | ७२६ |
| सर्पमन्त्राः ... | १०९ |
| सर्वशास्त्रसाधारणदानविधिः | ५४३ |

| | पृष्ठा |
|---|---|
| सर्व्वादिलक्षणम् ... | ३७२ |
| साध्यदानम् .. | ८१३ |
| सावित्रीलक्षणम् .. | २४२ |
| सुपार्श्वस्यावाहनमन्त्रः ... | २४५ |
| सुरभीलक्षणम् ... | २४१ |
| सुवर्णदानविधिः .. | ४८९ |
| सुवर्णधरादानविधिः ... | ३०१ |
| सुवर्णधेनुदानम् .. | ४३६ |
| सुवर्णधेनुदानविधिः ... | ४३९ |
| सुवर्णधेनुदानविधिः वर्णोघ्नः | ४३९ |
| सुवर्णधेनुदानविधिः पादप्रस्थ दघ्नः | ४३२ |
| सुवर्णधेनुदानविधिः प्रमेयघ्नः | ४३८ |
| सुवर्णधेनुदानविधिर्व्याख्यान्तरः | ४४० |
| सुवर्णशयनदानविधिः ... | २६४ |
| सुवर्णशृङ्गदानविधिः ... | ४५६ |
| सूर्य्यग्रहदानविधिः ... | ६१९ |
| सूर्य्यग्रहणदानविधिर्भविष्यपुराणोक्तः | ६६४ |
| सूर्य्यमूर्त्तिदानम् ... | ७५७ |
| सूर्य्यशय्यादानम् ... | ९१५ |
| सूर्य्यलक्षणम् .. | २३५ |
| स्थालीदानम् .. | ९१५ |
| **ह** | |
| हलपङ्क्तिदानविधिः .. | २९१ |
| हस्तिदानविधिः .. | ६१२ |
| हिरण्यकामधेनुसंज्ञं षष्ठमं महादानम् | २६५ |
| हिरण्यगर्भदानविधिः ... | २२२ |
| हिरण्यगर्भदानविधिर्विष्णुपुराणोक्तः | २२[illegible] |

| | पृष्ठा | | पृष्ठा |
|---|---|---|---|
| हिरण्यगर्भदानविधिर्लिङ्गपुराणोक्तः | २२७ | हेमदानविधिः ... | ५७४ |
| हिरण्यगर्भदाने फलश्रुतिः ... | २२५ | हेमधेनुदानविधिर्देवीपुराणोक्तः | ४३७ |
| हिरण्यगर्भाख्यं द्वितीयं महादानम् | २१८ | हेमवृषभदानविधिः ... | ४८५ |
| हिरण्यदानम् ... | ५६१ | हेमविषये कुण्डपरिमाणम् | १२५ |
| हिरण्याश्वदानविधिः ... | २७७ | हेमशृङ्गीदानविधिः ... | ४५४ |
| हिरण्याश्वरथनामधेयं षष्ठमं महादानम् | २७९ | हेमशृङ्गीदानविधिरपरः ... | ४५६ |
| हिरण्याश्वाभिधानं सप्तमं महादानम् | २७४ | हेमहस्तिरथाभिधानं नवमं महादानम् | २८७ |

# ग्रन्थानां वचनसंख्या।


पृष्ठा

अ

अगस्त्यः ९, २६१, ७, २, ४१७, ६६७ ८९१ ।

अगस्तिः ११६ ।

अग्निपुराणम् ५२७, ९७१ ।

अङ्गिराः ५२, ५६, ४५०, ५२८, ६८२ ।

अत्रिः १५४, ६००, ६७८, ९२७, ९५७, ९८६ ।

अथर्व्वणगोपथब्राह्मणं २८२, २९९ ।

अम्बरीषः ४८७ ।

आ

आत्रेयः ४५१, ६२२ ।

आदित्यपुराणम् ३२, ६३, ६७, ९५, ११०, ११८, १२०, १५५, १५५, १५६, २२२, २४१, २६२, ४०५, ४१७, ४२१, ४५७, ४६१, ४८२, ५१०, ५१०, ५७२, ५९०, ५९४, ६२८, ६६१, ७००, ८८७, ९०४, ९०७, ९१६, ९२४, ९५८, ९६०, ९६२, ९९२, १००२ ।

आपस्तम्बः ८७, ९३, ९४, १०७ ।

आम्नायरहस्यम् १२५ ।

पृष्ठा

आश्वलायनः ६१ ।

इ

इन्द्रः ४६८, ५८० ।

ई

ईश्वरः २०४ ।

उ

उशना ५ ।

ऋ

ऋग्वेदः १५० ।

ऋषिः २०२, ६०२ ।

ऋष्यशृङ्गः ७१, ६८६ ।

औ

औपकायनः ५२ ।

क

कश्यपः १४६, ६७८, ६८९ ७१२ ।

कात्यायनः २९, ४४, ४५, ४७, ५१, ५२, १०१, १०४, १०६, १०७, १०८, १०८, ११६, १२८, १४१ १५४, ४१८, ४५५, ५०५, ६९४, ९२६, ९३८ ९५६ ।

कात्यायनसूत्रम् १४२ ।


2-1

पृष्ठा

कामिकः १२५, १३४, १९०, १९१, २२८, २५८, २७९, ४११, ६१०, ६११, ७११, ७४०, ७७९, ७७९, ७९६, ८१३, ८२४ ।

कालिकापुराणम् ५३१, ५५६, ५७५, ५८९, ६६४, ६९०, ६९९, ७६८, ९२८ ।

कालोत्तरम् १३४, २५१, २७४, ६४१ ।

कालोत्तरशैवशास्त्रम् ९८४ ।

काश्यपः ६८९, ९१० ।

कूकुरः ६८९ ।

कूर्म्मपुराणम् ६, ६, ९, १७, २४, ३८, ४६१, ५०२, ५०४, ५४०, ५६४, ५७२, ५८९, ५९९, ६००, ६११, ६२२, ६४१, ६४२, ६४८, ६७९ ८५९, ८६१, ८६८ ।

कण्वः ११४, ७७१ ।

ग

गर्गः १०३

गवडः ५८७ ।

गरुडपुराणम् ५५, ६४, १०९, १४०, २०४, २३१, ४२९, ५११, ५१८, ५२३, ५९०, ६२८, ६४२, ६४८, ६८१, ९९० ।

गाथा ६९५ ।

गरुड़पुराणम् १८, ८८, ९५, ९९, ११५ ।

गालवः ७२, ७४, ७४ ।

गृह्यपरिशिष्टम् १०६, १०६, ।

गोपथब्राह्मणम् १२०, १८५

गोभिलः २८१ ।

गौतमः ४१, ४७, ९१, ६१५, ६७८ ।

पृष्ठा

ग्रन्थकारः १ ।

च

च्यवनः ७८ ।

छ

छन्दोगपरिशिष्टम् १०१, १०५, ११०, १११, १२८, १२९ ।

छागलेयः ९४

ज

जातूकर्ण्यः १०१ ।

जामदग्निः ९२७ ।

जाबालिः ७१, १४१, १४२, ४५०, ८६२, ८९८ ।

ज्ञानरत्नावली १२५ ।

ज्योतिःपराशरः ७९ ।

ज्योतिःशास्त्रम् ६५, ६९, ७५, ८० ।

त

तैत्तिरीयश्रुतिः २१ ।

त्रैलोक्यसारः १०७ ।

द

दक्षः २७, ५१, ६१, ८८, ६७४, ६७६, ६९०।

देवलः ८, १६, २६, ४९, ५२, ५२, ७२, ८१, ८५, १५४, ११६, ४४७, ४५५, ४७७, ४८३, ५०१, ६७८, ९०४, ९२७, ९४१, ९७९, ९८६, ९९१, ९९५।

देवीपुराणम् ४१, ६१, ६२, ७८, ८२, ८८, १५६, २२५, ४१६, ४२८, ४८०, ४६०,

पृष्ठा

५१३, ५१८, ५४४, ५५८, ५६१, ५६८, ६६७, ६७१, ८८६, ८८९, ९०८, ९६१, १००४, १०४४।

ध

धौम्यः १६, ९१, ९३।

न

नन्दिपुराणम् ५, ४९, १०१, ४५०, ४५६, ४७७, ५०७, ५११, ५१७, ५१६, ५२६, ५४७, ५४९, ५५६, ५७१, ८९१, ९०४, ९०७, ९०९, ९१२, ९२२, ९४१, ९४६, ९५६, ९५७, ९६०, ९८४, ९८९, १००१, १००४, १०२१, १०४१, १०५०।

नारदः १०, ४१, ४३, ४६, ७८, ११६, १७४, २४१, २४६, ६२३, ६७९, ८७६, ९७४।

नारदीयम् ११५, १३६, २२५, २२७, २२८, २८४, ५२९, ६०६।

नारदीयपुराणम् १०१, ६७९, ९१०, ९५६।

नारसिंहपुराणम् १६४, १६५।

प

पद्मपुराणम् १०९, ११२, २३५, २३७, २८४, ३२७।

पद्मपुराणम् २४, ३१, ३५, ४२, ५७, ५८, ६२, ६५, ६७, ७१, ८३, १६५, १८१, २६६, ३७६, ४०७, ९१९, ९१०, ९११ ९३८, ९५५, ९६२, ९८२ ९८९, १०३०।

पृष्ठा

पराशरः ८०, ९१, ३२१।

परिशिष्टं ९९, १४३।

पिङ्गलामतम् १३४।

पितरः ५९४।

पितामहः ५९४, ६५२।

पिप्पलादः ९२२।

पुलस्त्यः ३१८, ३४६, ३६०, ३६१, ३६४, ३७८, ३७९, ३८०, ३८२, ४१६, ७०१।

पैठीनसिः ९७, १४०, ५२७ ६८०, ६८०।

प्रचेताः ५०, ७९, ९०, ९४, ६८१, ६८४, ८८८।

प्रतिष्ठासारसंग्रहः १३४।

ब

बौधायनः २३, ३०, ९४, १०४, ११३, ६१३, ६३५, ७१५, ७२०, ७३९, ७४५, ७५५, ७७०, ७६७, ७७८, ९५७, १०१५,।

ब्रह्मपुराणम ९, ३४, ६७, ११४, १०९, ४४८, ४५६, ४८१, ५४०, ५८०, ६००, ७७४, ८७३, ८९१, ९१७, ९३१, ९६१, ९६३, ९६४।

ब्रह्मवैवर्त्तं ५५, ११३, ४८४, ६५६, ६५८, ६६१, ६६६, ९६०, ९८२; १०५२।

ब्रह्मवैवर्त्तपुराणम् ७०८, ९०२।

ब्रह्मा ४२, ७७, ८४, ८९, ११७, ४४५, ५१८, ५६७, ५७९, ५८०, ६५०, ६७१, ७२२, ८००।

ब्रह्माण्डपुराणम् ५४, ९४, १००, १०९,

पृष्ठा

१६०, २११, २४७, २६६, २६७, ३२८, ३५६, ५६६, ५७६, ६१९, ६२७, ६२८, ६४९, ६८१, ७०७, ७४१, ७८१, ७८५, ७८८ ७८९, ७९३, ७९६, ७९८, ८१०, ८०४, ८०९, ८१३, ८१४, ८१६, ८२०, ८२१, ८३८, ९२१, ९५५, ९८१ ।

प्राश्वकः ५९८ ।

## भ

भगवद्गीता १७ ।

भगवतीपुराणम् ६६७, ९८१ ।

भगवान् २७६ ।

भगवान्प्रभेदः १५० ।

भरद्वाजः ७०, ७१, ७४ ।

भविष्यत्पुराणम् ४३४, ४४५, ४६६, ४६७, ४६७, ६०४, ५२५, ५२८, ६६३, ६७१, ६७३, ६८०, ८५१, ८९१, ९०४, ९०८, ९१५, ९१८, ९२१, ९७१, ९८८, १०२१ ।

भविष्यपुराणम् १९, २१, २४, ३१, ३७, ४०, ४७, ६१, ६३, ८३, ८४, ८७, ११०, १११, ११२, ११९, ११६, १२६, १३८ ।

भविष्योत्तरम् ८८, ११३, ३१२, ३६९, ४१७, ७१०, ७१२, ८४१, ८५०, ८५३, ८६०, ८६७, ८६८, ८६९, ९१७, ९९२, ९९५, ९९९ ।

भानुः ४१०, ५८२, ५९४ ।

भीष्मः ३४६, ४९५, ५९६, ८७५, ८८०, ९७४, ९७७ ।

भृगुः ७०, ७६

पृष्ठा

## म

मत्स्यः २१, १६८, २१८, २४५, २५१, २६५, २७४, २८८, ३००, ३३४, ३३७, ३४१, ३९८, ५३३, ६९६, १०१४ ।

मत्स्यपुराणम् ८, १८, २४, ६८, ८२, ८४, १२१, १६६, १७२, १७७, १८२, १८७, २२२, २५६, २७९, २८२, २८३, २८७, ३२६, ३३२, ३४०, ३९७, ४५६, ४६१, ४७८, ५०५, ५०६, ५३०, ५३४, ५८८, ५९०, ५९६, ६४९, ६५०, ६५३, ६६०, ६६३, ६९५, ६९९, ८४६, १०४७, १०४९ ।

मनुः १७, २३, ३०, ३५, ३७, ४१, ४४, ५१, ५६, ५६, ५९, ६०, ६७, ८६, ८८, ९०, ९१, १०८, ११५, १५१, १६७, २४२, ५१८, ५२८, ५६७, ६७७, ६८०, ६८२, ६८३, ६८४, ६८५, ९८८ ।

मनुविष्णू ३८ ।

मनु-विष्णु-यातातपाः ६७५ ।

मरीचिः १०६, १३९, ६९४ ।

महाभारतः ६, १०, २५, २८, ३१, ३३, ३६, ४०, ४१, ४५, ४६, ५३, ६३, ६६, ८१, ८५, ८५, १५४, १६३, २५४, ४३५, ४४९, ४५०, ४५९, ४६८, ४७७, ४८३, ५०७, ५१७, ५४० ५८९, ५९५, ५९६, ६३४, ६४४, ६४६, ६६४, ६७८, ७१८, ८६४, ८७५, ८८८, ९०९, ९०४, ९१२, ९१८, ९१९, ९२१, ९२४, ९३९, ९३९, ९४७, ९६३, ९७३, ९८९, ९९१, ९९७, १००५, १०१९, १०२४ ।

पृष्ठा

माध्वव्ययः ८०, ४६४, ५०६

मार्कण्डेयः ८३।

मार्कण्डेयपुराणम् ८, १११, २१४, १८८, ९१७, ९४६।

मृत्युञ्जयः ७६९, ७६५, ७८४।

मोहचूडोत्तरागमम् १२४, १२५।

मैत्रायणीयपरिशिष्टं ११२, १४०,।

य

यमः ६, १०, २२, २४, २५, २९, ३१, ३६, ३७, ३८, ४६, ५०, ५३, ५८. ८८, ९०, १०१, १०२, १४६, १५२, १७०, २४१, ४५२, ४९३, ५८५, ५२९, ५९८, ६०६, ६७४, ६७६, ६९४, ७०२, ८६०, ८६२ ८७४, ८८१, ८८८, ८८९, ९१३, ९२७, ९३९, ९४१, ९६१, ९८२, ९९७, १००५, १०२६

यमशातातपौ १३,

याज्ञवल्क्यः ८, १२, २४, २६, ४४, ४६, ५१, ५५, ५६, ५९, ६०, ६१, ६९, ८२, ८६, ८७, ९१, १०४, १०७, ११५, १५२, ४३२, ४५०, ४६१, ४७७, ५१०, ६७९, ६८०।

युधिष्ठिरः ४३२, ४७४, ७६१।

योगियाज्ञवल्क्यः ८८।

र

राजा २४०।

रामः २९४।

रामायणम् ८९, ९४७।

पृष्ठा

ल

लक्षणसंग्रहः ३१८।

लक्षणसमुच्चयः ८८४।

लघुहारीतः ९१, १०६, ९८५।

लिङ्गपुराणम् १०१, ११३, १५२, २४९, ३०१, ४१२, ४४४, ४६३, ६१०, ६२२, ६७७, ६८७, ७२०, ७४६, ७५४, ७७९, ७९४, ८१२, ९१६, ९२२, ९२६, ९३०, ९५४, ९८२, ९९८।

लोकोत्तरम् ४६१।

व

वराहः ४२१।

वसिष्ठः १३, १५, २९, ३५, ३६, ५१, ५८, ५९, ७१, ७३, ७६, ९०, ४५२, ४५२, ४६४, ४८७, ५५६, ५६८, ५९२, ६७९, ९३०।

वह्निपुराणम् ६, ८, ३२, ४९, ५८, ८५, ८९, १५७, १८४, १८८, ४०१, ४१२, ४३८, ४६५, ५२५, ५४०, ५५६, ५६२, ५६४, ५७९, ६२९, ६४४, ६५८, ६६२, ६७२, ६७९, ६८१, ६८५, ६८८, ७०१, ८५२, ९२६, ९२८, ९४७, १०१४, १०२५।

वह्वृचपरिशिष्टं १२५, १२८, १४६, १०२८।

वातुलः ११९, १२१, २५८, १७८, ४८७, ६२४, ७३२, ७८१।

वामनः ८८५।

वायुः ७५२, ७५४, ९५८।

वायुपुराणम् १००, १२८, १५४, २१४, ६११, ६१९, ६१८, ६२१, ६२५, ६२६, ७०७, ७१५,

पृष्ठा
७४७, ७४९, ७५२, ७५३, ७६८, ८११, ८१३,
८७८, ९१९, ९३१, १०३६।
वाराहपुराणम् ३८, ६९, ८२, १००, १०२,
११०, ४०४, ४०९, ५१९, ५१६, ५५७,
५६१, ९०७, ९७३।
विश्वामल्ललित: ... १०९
विनीताश्वः ४२८, ४२८, ४३०।
विश्वकर्म्मा १२६, १३३, १३४, १६९, १७४,
१७६, १७७, २२३, २४२, ३३०, ३३६,
९३६।
विश्वभरवास्तुशास्त्रम् ... १२३
विश्वामित्रः ८१, २१४, ४१४, ४२२, ४३८
४४९, ४५१, ५०७, ५६७, ७०९, ८०६, ८८३,
८८१, ८९८ ९२३, ९६१।
विष्णुः २३, २५, ३८, ५५, ५९, ७६, ७७,
८२, ११६, १५१, ४५०, ४७७, ५६७,
६०१, ६७४, ६८४, ६९४, ८५२, ८६०, ८६४,
८८१, ८८-, ९१७, ९३९, ९४५, ९६२, ९९२,
१००२, १०३०।
विष्णुगुप्तः ... ११७
विष्णुधर्म्मः ७, ९, ४०, ३९२, ३९४, ४०२,
४२०, ४३६, ४७७, ४६४, ५९८।
विष्णुधर्म्मोत्तरम् १८, २१, २९, ३३, ३४,
४७, ५२, ५४, ५७, ६१, ६४, ६५, ८१, ८२,
९६, १०१, १०२, १११, ११९, १२२, १३९,
१५७, १५५, १७६, १३४, १३६, २३७, २४२,
२४६, ३३०, ३९६, ४६८, ५०२, ५१२, ५१३,

पृष्ठा
५१८, ५५९, ६९२, ७०४, ७०५ ७१२, ७१८,
७७५, ७७६, ७९२, ८५९, ८६०, ८६२, ८६४,
८७०, ८७५, ८८०, ८८१, ८८२, ८८४, ८८८,
८८९, ८९०, ९०३, ९०५, ९१० ९१८, ९२०,
९२२, ९२३, ९२८, ९४२, ९४९, ९५२ ९६६,
९८१, ९८६, ९९०, ९९८, १००१, १००३,
१००६, १०४१।
वृद्धगौतमः ४३८, ४७२, ६३६, ७४२, ७५४,
८९९, १०३७, १०३९।
वृद्धबौधायनः ७७०, ९०८
वृद्धवसिष्ठः ७१, ८१, ९१, १२१, ५०५।
वृद्धशातातपः ... ५०
बौधायनः १९८, ११०, ४३९, ५७८, ६१४।
बृहस्पतिः १६, २५, २९, ५२, ५५, ५७, ८६,
८९, १११, ४८२, ४९८, ५०५ ५०७, ५१२
५६७, ५६७, ६४६ ६५८, ६७५ ६७७, ९२४,
९७९।
वेदव्यासः ५, ८५, १२५, ४४७, ५६०. ६४६,
८९९, ९११, ९४१, ९८८।
बौधायनः १०८, ११०, ४३९, ५७८, ६१४।
व्यासः ४, ७, ९, १०, २५, ३१, ३३, ३७, ४५,
५२, ५४, ६६, ८०, ८२, ८३, ८९, १०१
११२ ४६१, ४७२ ५६६, ६४७, ६८४, ६८५,।
व्या.सवर्त्तहारिः ... ३२
व्यासशातातपौ .. ३६

## श

शङ्करः .. २९[illegible]

पृष्ठा

शङ्खः २५, ५७, ६६ ।

शङ्खलिखितौ ५१, ७८ ।

शतपथश्रुतिः ६, १०७, १११, ११९ ।

शातातपः १०, २९, ३१, ३९, ५०, ६६, ७१, ७२, ७८, ८९, ९१, १०१, १०१, १४० ।

शातातपपराशरौ १२, ।

शाट्यायनः .. ९०

शिवधर्म्मोत्तरम् ... ४६७

शिविः ... ९४८

शुभावती ... ९११

शौनकः ... २२४

शौनकीयम् ... ७६६

शौचकीय ... ९०६

शौरपुराणम् ... ६६९

श्लोकगौतमः ... ९१

श्लोकाः २२४, २५६, २८२ ।

श्रीकृष्णः २१२, ४१३, ४८४, ७६२, ७७२, ८४१, ९२७, ९९५, ९९९ ।

श्रीपद्मः ... ३५१

श्रीभगवान् २१५, २९१, ३६१. ४१६, ८६९, ९११, ९३३ ।

श्रीमार्कण्डेयः ... ६७७

श्रीमार्कण्डेयपुराणम् ८१, ११८, १४२ ।

ष

षट्त्रिंशन्मतम् ९१, ९४ १०३, ११९ ।

स

संग्रहः ... १२४

पृष्ठा

संवर्त्तः २४, ३५, ५५, ५९, ४५५, ६४६, ६७९ ६८२, ८९१ ८९८, ९१०, ९११, ९४२, ९४६ ।

सनत्कुमारः १८८, २१५. २२७, २६७, २७१, ३००, ३७८, ३६९, ४०८ ४८५, ४८९ ।

सामवेदोपनिषत् १९, १५० ।

सारसमुच्चयः ... १३५

सुमन्तुः ... ६६४

सूतः १०२, ३३४, ५३४, ७६६. ८०३, १०४८ ।

सूर्य्यः ... ९१५

सौरपुराणम् ५, ५३१, ५१९, ६९३ ८९२, ९८८ ।

स्कन्दपुराणम् ९, २१, ५०, ५३, ५४, ५८, ५९, ६१, ६५. ६७, ६८, ७८, ७९, ८२, ८३, ८४, ८६, १०१, १०९, ११०, ११२, ११९, ११०, १५७, ३३१, ४१४, ४२१, ४२५, ४२८, ४२९, ४३४, ४४६, ४५७, ४६५ ४७६, ४८१ ४८२, ४९४, ५१९ ५५९, ५७२- ५८८, ५८९, ५९६, ६००, ६४२, ६६४, ६६८, ६९०, ८१४, ८६८, ८७१, ६८४, ८९४, ८९९, ९१६, ९१० ९१३, ९२७, ९४०, ९५४, ९६०, ९८०, ९९१, ९९१, १००२, १०३३, १०५० ।

स्वायम्भुवः ... १९६

ह

हंसः ३९१, ९०५ ।

हारीतः १८, ९०, ९१, ४४७, ६८५, ९६३ ।

होता ४०४

गणेशाय नमः ।

# हेमाद्रिः ।

---

## तत्र दानखण्डं ।

### प्रथमोऽध्यायः ।

कल्याणानि ददातु वो गणपतिर्यस्मिन्नतुष्टे सति
क्षोदीयस्यपि कर्म्मणि प्रभवितुं ब्रह्मापि जिह्मायते ।
जाते तच्चरणप्रणामसुलभे सौभाग्यभाग्योदये
रङ्कस्याङ्कमनङ्कुशा निविशते देवेन्द्रलक्ष्मीरपि ॥ १ ॥
शश्वत्पुण्यहिरण्यगर्भरसनासिंहासनाध्यासिनी
सेयं वागधिदेवता वितरतु श्रेयांसि भूयांसि वः ।
यत्पादामलकोमलाङ्गुलिनखज्योत्स्नाभिरुद्वेलितः
शब्दब्रह्मसुधाम्बुधिर्व्बुधमनस्युच्छृङ्खलं खेलति ॥ २ ॥
रागः कृष्ण नवस्तवश्रुतिरियं चेतश्चमत्कारिणी
मुग्धेवेत्स्य यथा मया शुभरते वैदग्ध्यमाविष्कृतं ।
जानीते दयितैव सा शुभरते यद्यद्विधत्ते भवान्
इत्युक्तो मधुजिन्निरुत्तरमुखः श्लिष्यन् प्रियां पातु वः ॥ ३ ॥
संसक्तो धरणीधरेश्वरभुवि क्रीड़न्मृगाङ्गानन-
श्रेणीमाकलयन् गुणान्वयमिलत्पञ्चाननख्यातिमान् ।
कान्तारागविनोदिनान्निजपदं कुर्व्वामयं दर्शयन्
भूयान्नित्यमनेकपापहृतये श्रीकण्ठकण्ठीरवः ॥ ४ ॥
ते देवस्य गभस्तयो दिनपतेरापन्नखेदच्छिदो
निष्कृन्तन्तु कृतान्तपत्तनपथप्रस्थानदौस्थ्यानि वः ।

यैः सौवर्णमिवाखिलं करुणया निर्म्मातुमभ्युद्यतैः
कीर्णस्वर्णपरागरागघटितं दिक्चक्र मालक्ष्यते ॥ ५ ॥

अस्ति शस्तगुणस्तोमः सोमवंशविभूषणं।
महादेव इति ख्यातो राजराजेव भूतले ॥ ६ ॥

संग्रामेष्वधमर्णता मुपगता वीराः पराःकोटयः
सर्व्वस्वप्रतिपादनेन विविधानाधीन्निरस्य क्षणात्।
स्वस्मादाददते निरत्ययसुखं तत्रैतदीयंयशो
दिक्कालानिव साक्ष्यतां गमयितुंदिङ्मण्डलीं मुञ्चति ॥७॥

मैत्रीमर्ज्जय गुर्जरव्रजपरां नेपालपालक्षमा-
माज्ञां पालय मालवेश्वर भयं नीरन्ध्रमन्ध्र स्मर।
सप्तद्वीपमहीपतीनिति हितामध्यापयन्ती धियं
यत्कीर्त्तिः सुखदायिनी रिपुकुले मानुष्यदा मन्यते ॥८॥

हेलासादितलक्षमार्गणगणं श्रुत्वैतदीयंगुणं
येषां श्रेणि रनुस्मरन्त्यहरहस्तुष्टाव दानाद्भुतं।
तेषामेव महाहवेषु मिलतां प्रत्यर्थिनामर्थिना-
मप्यस्याथ भुजं व्रजन्ति विलयं सैन्यानि दैन्यानि च ॥ ९ ॥

अस्योच्चैर्भीमभूमीरुहगहनगुहागर्भगर्जन्मृगेन्द्र-
त्रासव्यासप्रसङ्गोच्चलनकुलकुलव्याकुलव्यालमालां।
वारं वारं स्मृतैतद्भुजभुजगयुगस्फीतिभीतिज्वरीषां
मूर्च्छां मृच्छन्ति हन्त क्षितिधरधरणीं लङ्घयन्तो द्विषन्तः ॥१०॥

षोड़शक्रतवो येन चक्रिरे चक्रवर्त्तिना।
अपूर्णपञ्चयज्ञानां नृपाणां तेन का तुला ॥ ११ ॥

अनेन चिन्तामणि कामधेनु

कल्पद्रुमानर्थिजनाय दत्तान्।
विलोक्य शङ्के किममुष्य सर्व्वं
गीर्व्वाणनाथोऽपि करप्रदोऽभूत्॥ १२॥
तस्यास्ति नाम हेमाद्रिः सर्व्वश्रीकरणप्रभुः।
निजौदारतया यश्च सर्व्वश्रीकरणप्रभुः॥ १३॥
तस्य श्रीकरणेशस्य कापि लेखनचातुरी।
यशःप्रशस्तिभिस्तूर्णं येन दिग्भित्तयो भृताः॥१४॥
लिपिं विधात्रा लिखितां जनस्य भाले विभूत्यापरिमृज्य दुष्टां।
कल्याणिनीमेष लिखत्यथैनां चिरां प्रमाणी कुरुते विधिश्च॥१५॥
संचिन्त्य संचिन्त्य तदेतदीयं धत्ते मनो विस्मय मस्मदीयं।
प्रागजन्मविद्यास्मरणक्षमोऽयं क्षणेन तद्विस्मृतिमेति दत्त्वा १६॥
मन्ये तत्कृतदानवारिलहरीपूर्णोऽयमर्णोनिधिः
कल्पान्तेऽपि न शोषदोषविषमां धत्ताँ कदाचिद्दशां।
किञ्चैतं जलधिस्थितिप्रतिभुवं निश्चित्य दैत्यारिणा-
निश्चिन्तेन भुजङ्गपुङ्गवतनूतल्पे सुखं सुप्यताम्॥ १७॥
चित्रं तद्वनदानवृष्टिपयसस्तत्तस्य किं ब्रूमहे
यस्मिन्नन्य वदान्यकीर्त्तिरतुला धत्ते तृणश्रेणितां।
यद्भूमौ पतितं ग्रसिष्णु जनतापङ्कानि यच्चार्थिनां।
न्यस्तं हस्ततलेषु भालफलके पापां लिपिं लुम्पति॥ १८॥
तत्तर्पितो देवगणः स नूनमरोचकी चन्द्रमसः सुधायां।
क्षयन्तु चन्द्रस्य तदीयकीर्त्तिस्पर्द्धासमृद्धानि फलन्त्यघानि॥ १९॥
शूराणामवधिर्निधिश्च यशसामेकाश्रयः सम्पदां
दातॄणां प्रथमः कलाकुलगृहे वैदग्ध्यभाजां गुरुः।

धौरेयश्च विपश्चितां सुकृतिनामद्वैतवादास्पदं
नैवासीन्नच वर्त्तते न भविता हेमाद्रिसूरेः परः ॥२०॥
विभर्त्ति नूनं द्विजवेशमेष स एव हेमाद्रिरिति प्रतीमः ।
उदारमन्लानवतो यदस्य कल्पद्रुमं दक्षिणबाहुमाहुः ॥ २१ ॥
अथामुना धर्म्मकथादरिद्रं त्रैलोक्यमालोक्य कलेर्बलेन ।
तस्योपकारे दधता नुचिन्तां चिन्तामणिः प्रादुरकारि चारुः॥२२॥
पञ्चखण्डात्मके शास्त्रे व्रतखण्डादनन्तरं ।
दानखण्डमिदं,-तत्र द्वितीय मथ कथ्यते ॥ २३ ॥
अस्मिन्ननेकदानौघरत्नरत्नाकरायिते ।
महाप्रकरणानाञ्च विज्ञेयोऽयमनुक्रमः ॥ २४ ॥
दानस्तुति स्ततोदानस्वरूपस्य निरूपणम् ।
अङ्गप्रसङ्गो दानानां परिभाषाभिभाषणम् ॥ २५ ॥
श्रोतुः श्रद्धाभिवृद्ध्यर्थमथदानफलावलिः ।
तुलापुरुषमुख्यानि महादानानि षोड़श ॥ २६ ॥
अखर्वपर्वतश्रेणि विश्राणनविधिस्ततः ।
परस्तादतिदानानां विधिर्विधुतपातकः ॥ २७ ॥
ततोदशमहादानविधिवैभववर्णनम् ।
कृष्णाजिनानि दानानि देवतादानसंग्रहः ॥ २८ ॥
अथ कालविशेषेण बहुधा दानवर्णनम् ।
अनन्तफलदानानामनन्तरमुपक्रमः ॥ २९ ॥
एवं प्रकरणान्यत्र त्रयोदश महामतिः ।
ब्रवीति प्राज्यराज्यादिसाधनानि मनीषिणाम् ॥ ३० ॥
अथ दानप्रशंसा तावदभिधीयते ।——तत्र व्यासः ।

वर्णानामाश्रमाणाञ्च चातुर्वर्ण्ये युधिष्ठिर।
दानधर्म्मं प्रवक्ष्यामि यथा देवेन भाषितम्॥
नन्दिपुराणे। दानं परं प्रशंसन्ति दानमेव परायणं।
दानं बन्धुर्म्मनुष्याणां दानं कोषो ह्यनुत्तमं*॥
दानं † तन्त्वःपरं द्रव्यं दानं माता पिता यथा।
दानेन न विना किञ्चित्प्रार्थितं फल माप्यते॥
अपि वालाग्रमात्रस्य तुला तस्य न विद्यते।
न दानशीलिनामापत्तस्माद्दानं समाश्रयेत्॥
हारनूपुरसंघोषपूरितोत्तममन्दिरः।
लावण्यगुणसम्पत्ति र्दानादेव हि लभ्यते॥
सौरपुराणे। न दानादधिकं किञ्चिद्दृश्यते भुवनत्रये।
दानेन प्राप्यते स्वर्गः श्रीर्दानेनैव लभ्यते॥
दानेन शत्रून् जयति व्याधिर्दानेन नश्यति।
दानेन लभ्यते विद्या दानेन युवतीजनः।
धर्म्मार्थकाममोक्षाणां साधनं परमं स्मृतम्॥
उशना। दानादृते नोपचारो विद्यते धनिनोऽपरः।
दीयमानं हि तत्तस्य भूय एवाभिवर्द्धते॥
आह वेदव्यासः। यद्ददासि विशिष्टेभ्यो यच्चाश्नासि दिने दिने
तत्ते वित्तमहं मन्ये शेषं कस्यापि रक्षति॥
यद्ददाति यदश्नाति तदेव धनिनो धनं।
अन्ये मृतस्य क्रीड़न्ति दारैरपि धनैरपि॥

* दानं कामफलाद्वृक्षा दानं चिन्तामणि र्नृणामिति क्वचित्पाठः।
† पूतइति क्वचित्पाठः।

बृहस्पतिः। तपोधर्म्मः कृतयुगे ज्ञानं त्रेतायुगे स्मृतं।
द्वापरे चाध्वराः प्रोक्ताः कलौ दानं दया दमः॥
अत्रार्थे शतपथश्रुतिः।
तदेतत् त्रयं शिक्षेत् दमं दानं दयामिति।
दानेन भोगी भवति मेधावी वृद्धसेवया।
अहिंसया च दीर्घायुरिति प्राहुर्म्मनीषिणः॥
यमः। यतीनान्तु शमो धर्म्मस्त्वनाहारो वनौकसां।
दानमेव गृहस्थानां शुश्रूषा ब्रह्मचारिणां॥
पापकर्म्मसमायुक्तं पतन्तं नरके नरं।
त्रायते दान मेकन्तु पात्रभूते द्विजे कृतं॥
तथा न्यायेनार्ज्जनमर्थानां वर्द्धनं चाभिरक्षणं।
सत्पात्रप्रतिपत्तिश्च सर्व्वशास्त्रेषु पठ्यते॥
कूर्म्मपुराणं। दानधर्म्मात्परो धर्म्मो भूतानां नेह विद्यते।
तस्माद्विप्राय दातव्यं श्रोत्रियाय द्विजातिभिः॥
द्विजातिभिरित्युपलक्षणं दानस्य सर्व्वसाधारणत्वात्।
महाभारते। आयासशतलब्धस्य प्राणेभ्योऽपि गरीयसः।
गतिरेकैव वित्तस्य दान मन्या विपत्तयः॥
ब्राह्मणायाभिरूपाय यो दद्याद्दर्थमर्थिने।
निदधाति निधिं श्रेष्ठं पारलौकिकमात्मनः॥
कूर्म्मपुराणे। न हि दानात् परतरमन्यदस्तीति मे मतिः।
धनधान्यवतः किञ्चिदहार्य्यं राजतस्करैः॥
वह्निपुराणे। तपःसु चैव तीर्थेषु व्रतेषु नियमेषु च।
सम्यक् चीर्णेषु विप्रर्षे पश्चाद्दानं समाचरेत्॥

यस्य वित्तं न दानाय नोपभोगाय देहिनां ।
नापि कीर्त्त्यै, न धर्म्माय तस्य वित्तं निरर्थकं ॥
तस्माद्वित्तं समासाद्य दैवाद्वा पौरुषादथ ।
दद्यात्सम्यक् द्विजातिभ्यः कीर्त्तनानिच कारयेत् ॥

व्यासः । अहन्यहनि याचन्तमहं मन्ये गुरुं यथा ।
मार्जनं दर्पणस्येव यः करोति दिने दिने ॥
किं धनेन करिष्यन्ति देहिनो भङ्गुराश्रयाः ।
यदर्थं धनमिच्छन्ति तच्छरीरमशाश्वतं ॥
यदि नाम न धर्म्माय न कामाय न कीर्त्तये ।
यत्परित्यज्य गन्तव्यं तद्धनं किं न दीयते ॥
* इच्छानुरूपो विभवः कदा कस्य भविष्यति ।
अदाता पुरुषस्त्यागी धनं सन्त्यज्य गच्छति ॥
दातारं कृपणं मन्ये मृतोऽप्यर्थं न मुञ्चति ।

मनुः । दानधर्म्मं निषेवेत नित्यमैष्टिकपौर्त्तिकं ।
परितुष्टेन भावेन पात्र मासाद्य शक्तितः ॥
इष्टे यज्ञे यद्दीयते दक्षिणादि तदैष्टिकं ।
वहिर्वेदि च यद्दानं दीयते तत् पौर्त्तिकं ।
यत् किञ्चिदपि दातव्यं याचितेनानसूयया ।
उत्पत्स्यते हि तत्पात्रं यत्तारयति सर्व्वतः ॥
स्वर्गायुर्भूतिकामेन तथा पापोपशान्तये ।
मुमुक्षुणा च दातव्यं ब्राह्मणेभ्य स्तथान्वहं ॥

विष्णुधर्म्मात् । न ददाति च दानानि मोघं तस्य धनार्जनं ।

---

* प्रासादर्द्धमपि ग्रासमर्थिभ्यः किं न दीयते कचित्पाठः ।

उत्थायोत्थाय दातव्यं ब्राह्मणेभ्यो युधिष्ठिर ॥

वह्निपुराणे । अन्नं मूलं फलं शाकमुदपात्रं तपोधनाः ।

दानं विभवतोदत्त्वा नराः स्वर्यान्ति धर्म्मिणः ॥ तथा, ।

यद्यजन्ति ददन्तीह भोगान् भुञ्जन्ति नित्यशः ।

मामुद्दिश्य न ते मूढ़ा इहैव सुखिनः परे ॥

याज्ञवल्क्यः । दातव्यं प्रत्यहं पात्रे निमित्तेषु विशेषतः ।

याचितेनापि दातव्यं श्रद्धापूतन्तु शक्तितः ॥

मत्स्यपुराणे । * उक्तसर्वगुणोपेत मुक्तदोषैर्विवर्जितम् ।

कामधुक् धेनुवद्दानं फलत्यात्मेप्सितं फलम् ॥

† इह-कीर्त्तिं वदान्याख्यां-स्फीतान् भोगांस्त्रिपिष्टपे ।

दानं श्रद्धां तृतीयेऽपि जन्मनि प्रभवोत्तमे ॥ वदान्योबहुप्रदः ।

दानमेव परोधर्म्मो दानमेव परन्तपः ।

न हि दानात् परतरमिह लोके-परत्र च ॥

दानेन भोगानाप्नोति दानेनायुश्च विन्दति ।

नरः स्वर्गापवर्गौ च दानेनैव समश्नुते ॥

मार्कण्डेय पुराणे । कुटुम्बं पीडयित्वापि ब्राह्मणाय महात्मने ।

दातव्यं भिक्षवेऽन्यन्नं आत्मनोभूतिमिच्छता ॥

देवलः । दुर्लभं भारते वर्षे जन्म तस्मान्मनुष्यता ।

मानुष्याद्ब्राह्मणत्वञ्च दुर्लभं सुतरां मतं ॥

विप्रत्वे सति दुष्प्रापा विद्यादिगुणयोगिता ।

* उक्तः सर्वगुणोपेत मुक्तदोषैर्विवर्जितः क्वचित्पाठः ।

† इह-कीर्त्ति-वदान्याख्या-क्वचित्पाठः ।

तत्र न्यायार्जितार्थाप्तिस्ततो भक्त्याप्तिरिष्यते ॥
लब्ध्वैतद्गुणसंयोगं तीर्थं पात्रञ्च पर्व्व च।
दानानि ये प्रयच्छन्ति कृतार्थास्ते नरा भुवि ॥
अगस्त्यः। गोभिर्विप्रैश्च वेदैश्च सतीभिः सत्यवादिभिः।
अलुब्धैर्दानशीलैश्च सप्तभिर्धार्य्यते मही ॥
येन भुक्तं न च हुतं न तीर्थे* मरणं कृतम्।
हिरण्यमन्नमुदकं ब्राह्मणेभ्यो न चार्च्चितम् ॥
दीना विवसना रुक्षाः कपालाङ्कितपाणयः।
दृश्यन्ते हि महाराज जायमानाः पुनः पुनः ॥
विष्णुधर्म्मात्। सीदते द्विजमुख्याय योऽर्थिने न प्रयच्छति।
सामर्थ्ये सति दुर्बुद्धिर्नरकायोपपद्यते ॥
कूर्म्मपुराणे। यस्तु द्रव्यार्जनं कृत्वा नार्चयेत् ब्राह्मणान् सुरान्
सर्वस्वमपहृत्यैनं राजा राष्ट्रात् प्रवासयेत् ॥
ब्रह्मपुराणे। सदाचाराः कुलीनाश्च रूपवन्तः प्रियंवदाः।
बहुश्रुताश्च धर्म्मज्ञा याचमानाः परात् गृहात्† ॥
दृश्यन्ते दुःखिनः सर्वे प्राणिनः सर्वदा मुने।
अदत्तदानाज्जायन्ते परभाग्योपजीविनः ॥
व्यासः। अक्षरद्वयमभ्यस्तं नास्ति नास्तीति यत्पुरा।
तदिदं देहि देहीति विपरीतमुपस्थितम् ॥
स्कन्दपुराणे। बोधयन्ति न याचन्ते देहीति कृपणं जनाः।
अवस्थेयमदानस्य माभूदेवं भवानपि ॥

* सुतीर्थेमरणमिति पाठान्तरम्।
† परान् गृहानिति पाठान्तरम्।

देहीत्येवं ब्रुवन्नर्थी जनं बोधयतीव सः।
यदिदं कष्टमर्थित्वं प्रागदानफलं हि तत्॥
एकेन तिष्ठताधस्तादन्येनोपरितिष्ठता।
दातृयाचकयोर्भेदः कराभ्यामेव सूचितः॥
दीयमानन्तु यो मोहाद्गोविप्राग्निसुरेषु च।
निवारयति पापात्मा तिर्य्यग्योनिं व्रजेत्तु सः॥
'दीयमानं' तदुद्देशेन त्यज्यमानमित्यर्थः।
शातातपः। माददस्वेति यो ब्रूयात् गव्यग्नौ ब्राह्मणेषु च।
तिर्य्यग्योनिशतं गत्वा चाण्डालेष्वभिजायते॥
यमः। कन्याप्रदाने यज्ञे वा यस्मिन् वा धर्म्मसङ्कटे।
विघ्नमाचरति यस्तु तमाहुर्ब्रह्मघातकम्॥
तस्माद्विभूतिमन्विच्छन्नदाने विघ्नमाचरेत्।
दद्यादहरहः पात्रे लोकद्वयजिगीषया॥
महाभारते। अर्हतामनुरूपाणां नादेयं ह्यस्ति किञ्चन।
उच्चैःश्रवसमप्यश्वं प्रापणीयं सतां विदुः॥
अनुनीय यथाकामं सत्यसन्धो महाव्रतः।
स्वैः प्राणै ब्राह्मणः प्राणान् परित्राय दिवं गतः॥
रन्तिदेवश्च साङ्कृत्यो वशिष्ठाय महात्मने।
अपः प्रदाय शीताश्च नाकपृष्ठमितोगतः॥
आत्रेयचन्द्रदमयोरर्हतोर्विविधिवद्धनम्।
दत्त्वा लोकान् ययौ धीमाननन्तान् स महीपतिः॥
शिविरौशीनराङ्गानि पुत्रञ्च प्रियमौरसम्।
ब्राह्मणार्थमुपाकृत्य नाकपृष्ठमुपागतः॥

प्रतर्द्दनः काश्यपतिः प्रदाय नयने स्वके ।
ब्राह्मणायातुलां कीर्त्तिमिह चामुत्र चाश्नुते ॥
दिव्यं मृष्टशलाकन्तु सौवर्णं परमर्द्धि तत् ।
छत्रं देवावृधो दत्त्वा सराष्ट्रोऽभ्यपतद्दिवम् ॥

'मृष्टशलाकं' उज्ज्वलपञ्जरम् ।

सङ्कृतिश्च तथात्रेयः शिष्येभ्यो ब्रह्म निर्गुणम् ।
उपदिश्य महातेजा गतो लोकाननुत्तमान् ॥
अम्बरीषो गवोर्द्दत्त्वा ब्राह्मणेभ्यः प्रतापवान् ।
अर्बुदानि दशैकञ्च सराष्ट्रोऽभ्यपतद्दिवम् ॥
सावित्री कुण्डले दिव्ये शरीरं जनमेजयः ।
रम्यमावसथञ्चैव दत्त्वामुं लोकमास्थितः ॥
ब्राह्मणार्थे परित्यज्य जग्मतुर्लोकमुत्तमम् ।
सर्व्वरत्नं वृषा दर्भो युवानोऽश्वाः प्रियास्त्रियः ॥
रम्यमावसथञ्चैवदत्त्वामुं लोकमास्थितः ।
निमीराष्ट्रञ्च वैदेहो जामदग्न्यो वसुन्धराम् ॥
ब्राह्मणेभ्यो ददौ चापि गयश्चोर्व्वीं सपत्तनाम् ।
अवर्षिणिच पर्ज्जन्ये सर्व्वभूतानि चासकृत् ॥
राजा मित्रसहश्चैव वशिष्ठाय महात्मने ।
मदयन्तीं प्रियां दत्त्वा तया सह दिवंगतः ॥
सहस्रजिच्च राजर्षिः प्राणानिष्टान् महायशाः ।
ब्राह्मणार्थे परित्यज्य गतो लोकाननुत्तमान् ॥
सर्व्वकामैश्च सम्पूर्णं दत्त्वा वेश्म हिरण्मयम् ।
मुद्गलाय गतः स्वर्गं शतद्युम्नो महामतिः ॥

नाम्ना च द्युतिमान्नाम शाल्वराजः प्रतापवान्।
दत्त्वा राज्यमृचीकाय गतो लोकाननुत्तमान्॥
मदिराश्वश्च राजर्षिर्दत्त्वा कन्यां सुमध्यमाम्।
सुवर्णहस्ताय गतो लोकान् देवैरभिष्टुतान्॥
लोमपादश्च राजर्षिः स तां दत्त्वा सुतां प्रभुः।
ऋष्यशृङ्गाय विपुलैः सर्वकामैरयुज्यत॥
दत्त्वा शतसहस्रन्तु गवां राजा प्रसेनजित्।
सवत्सानां महातेजा गतो लोकाननुत्तमान्॥
एते चान्ये च बहवो दानेन तपसा सह।
महात्मानो गताः स्वर्गं शिष्टात्मानो जितेन्द्रियाः॥
तेषां प्रतिष्ठिता कीर्त्तिर्यावत् स्थास्यति मेदिनी।
दानयज्ञप्रजासर्गैरेके हि दिवमाप्नुयुः॥

दानेन भूता वशीभवन्ति दानेन वैराण्यपि यान्ति नाशम्। परोऽपि बन्धुत्वमुपैति दानात् दानं हि सर्वव्यसनानि हन्ति॥ इति श्रीमहाराजाधिराज-श्रीमहादेवस्य समस्तकरणाधीश्वरसकल-विद्या-विशारद-श्रीहेमाद्रिविरचिते चतुर्वर्गचिन्तामणौ दानखण्डे दानप्रशंसाप्रकरणम्।

# द्वितीयोऽध्यायः ।

०:०:०——

## अथ दानस्वरूपमुपवर्ण्यते

प्राचामाचारभाजां धुरमनुसरता येन सृष्टैर्विशिष्टै-
रिष्टापूर्त्तैं रणार्हीकृतकृतिनिवहै * र्विश्वमाख्यां समेति ।
सोऽयं हेमाद्रिसूरिर्विविधबुधमनस्विलमैत्रीपवित्रं
नानादान-स्वरूप-प्रकरणमधुना वक्ति निर्मुक्तदोषः ॥

तत्र देवलः । अर्थानामुदिते पात्रे श्रद्धया प्रतिपादनम् ।
दानमित्यभिनिर्द्दिष्टं व्याख्यानं तस्य कथ्यते ॥

'उदिते' शास्त्रनिरूपिते । अर्थानां प्रतिपादनं नाम पात्रं प्रति स्वस्वामिभावापादनपर्य्यन्तस्त्यागः । 'द्विहेतु षड़धिष्ठानं षड़ङ्गं षड्विपाकयुक् । चतुःप्रकारं त्रिविधं त्रिनाशं दानमुच्यते' ॥ अस्य विवरणं तेनैवोक्तम् । तत्र द्विहेत्विति । नाल्पत्वं वा 'बहुत्वं वा दानस्याभ्युदयावहम् । श्रद्धा भक्तिश्च दानानां वृद्धिक्षयकरे स्मृते ॥ 'श्रद्धा' आस्तिक्यबुद्धिः । स्नेहपूर्बमभिध्यानं 'भक्तिः' । शक्तिरितिपाठे शक्तिरौदार्य्यम् । षड़धिष्ठानमिति । 'षड़-धिष्ठानानि' आश्रयाः निमित्तत्वेन यस्य तत्तथा । तान्याह ।

धर्म्ममर्थञ्च कामञ्च व्रीड़ाहर्षभयानि च ।
अधिष्ठानानि दानानां षड़ेतानि प्रचक्षते ॥

---

* रणार्हीकृतकृतीति पाठान्तरम् ।

तानि विविनक्ति। पात्रेभ्यो दीयते नित्यमनपेक्ष्य प्रयोजनम्।

केवलं त्यागबुद्धा यद्धर्मदानं तदुच्यते॥

'प्रयोजनमनपेक्ष्य' दृष्टफलाननुसन्धानेनेत्यर्थः।

प्रयोजनमपेक्ष्यैव प्रसङ्गाद्यत्प्रदीयते।

तदर्थदानमित्याहुरैहिकं फलहेतुकम्॥

स्त्री-पान-मृगयाक्षाणां प्रसङ्गाद्यत् प्रदीयते।

अनर्हेषु च रागेण कामदानं तदुच्यते॥

संसदि व्रीड़या स्तुत्याचार्य्योऽर्थिभ्यः प्रयाचितः।

प्रदीयते च तद्दानं व्रीड़ादानमिति स्मृतम्॥

दृष्ट्वा प्रियाणि श्रुत्वा वा हर्षवद्यत्प्रदीयते।

हर्षदानमिति प्राहुर्दानं तद्धर्मचिन्तकाः॥

आक्रोशानर्थहिंसानां प्रतीकाराय यद्भवेत्।

दीयते तापकर्त्तृभ्यो भयदानं तदुच्यते॥

षड़ङ्गमिति। दाता प्रतिग्रहीता च श्रद्धा देयञ्च धर्मयुक्।

देशकालौ च दानानामङ्गान्येतानि षड़्विदुः॥

तानि विवृणोति। अपापरोगी धर्म्मात्मा दित्सुरव्यसनः शुचिः।

अनिन्द्याजीवकर्म्मा च षड़्भिर्दाता प्रशस्यते॥

'अपापरोगी' राजयक्ष्मादिरोगरहितः।

त्रिशुक्लः कृशवृत्तिश्च घृणालुः सकलेन्द्रियः।

विमुक्तो योनिदोषेभ्यो ब्राह्मणः पात्रमुच्यते॥

त्रिशुक्ल इति।

'त्रीणि' विद्यान्वयवृत्तानि 'शुक्लानि' विशुद्धानि यस्य स तथा।

'घृणालुः' कृपालुः। 'सकलेन्द्रियः' अविकलेन्द्रियः।

सौमुख्याद्यतिसम्प्रीति रर्थिनां दर्शने सदा ।
सत्कृतिश्चानसूया च तदा श्रद्धेति कीर्त्त्यते ॥
अपराबाधमक्लेशं* प्रयत्नेनार्ज्जितं धनम् ।
स्वल्पं वा विपुलं वापि देयमित्यभिधीयते ॥
यद्यत्र दुर्लभं भद्रं यस्मिन् कालेऽपि वा पुनः ।
दानार्हौ देशकालौ तौ स्यातां श्रेष्ठौ न चान्यथा ॥
अवस्था देशकालानां पात्रदात्रोश्च सम्पदा ।
हीनं वापि भवेच्छ्रेष्ठं श्रेष्ठं वाप्यन्यथा भवेत् ॥

षड्विपाकत्वमाह । दुष्फलं निष्फलं हीनं तुल्यं विपुलमक्षयम् ।
षड् विपाकयुगुद्दिष्टं षडेतानि विपाकतः ॥

तानि व्याचष्टे । नास्तिक-स्तेन-हिंस्रेभ्यो जाराय पतिताय च ।
पिशुन-भ्रूण-हन्तृभ्यां प्रदत्तं दुष्फलं भवेत् ॥

'दुष्फलं' विपरीतफलम् । महदप्यफलं दानं श्रद्धया परिवर्जितम् ।
परबाधाकरं दानं परमप्यूनतां व्रजेत् ॥

'निष्फलं' अपकृष्टफलम् । अत्यन्ताफलत्वे तु यदेव श्रद्धया करोति तदेव वीर्य्यवत्तरं भवतीतीतरार्थोऽनुपपन्नः स्यात् फलवचन-विपाकशब्दविरोधश्च । 'परं' श्रेष्ठम् । 'ऊनत्वञ्च' किञ्चिन्न्यूनाभिप्रायम् । अन्यथा पूर्वेण पौनरुक्त्यप्रसङ्गात् ।

यथोक्तमपि यद्दत्तं चित्तेन कलुषेण तु ।
तत्तु सङ्कल्पदोषेण दानतुल्यफलं भवेत् ॥
युक्ताङ्गैः सकलैः षड्भिर्दानं स्यात् विपुलोदयम् ॥

* स्वयं तेनार्जितंधनमिति पाठान्तरम् ।

अनुक्रोशवशाद्दत्तं दानमक्षयतां व्रजेत् ॥

'अनुक्रोशः', दया । चतुःप्रकारमाह ।

ध्रुवमाजस्रिकं काम्यं नैमित्तिकमिति क्रमात् ।
वैदिको दानमार्गोऽयं चतुर्द्धा वर्ण्यते द्विजैः ॥
प्रपा-राम-तड़ागादि सर्व्वकामफलं ध्रुवम् ।
तदाजस्रिकमित्याहुर्दीयते यद्दिने दिने ॥
अपत्य-विजयैश्वर्य्य-स्त्री-बालार्थं यदिष्यते ।
इच्छासंस्थन्तु तद्दानं काम्यमित्यभिधीयते ॥
कालापेक्षं क्रियापेक्षमर्थापेक्षमिति स्मृतम् ।
त्रिधा नैमित्तिकं प्रोक्तं सहोमं होमवर्जितम् ॥

त्रैविध्यमाह । नवोत्तमानि चत्वारि मध्यमानि विधानतः ।
अधमानीति शेषाणि त्रिविधत्वमिदं विदुः ॥

तदेव विविनक्ति । अन्नं दधि मधुत्राणं गो-भू-रुक्माश्व-हस्तिनः ।
दानान्युत्तमदानानि, उत्तमद्रव्यदानतः ॥
विद्यादानादनावास-परिभोगौषधानि च ।
दानानि मध्यमानीह मध्यमद्रव्यदानतः ॥

'परिभोग इति' परिभोगसाधनं खट्वासनादि ।

उपानत्-प्रेङ्ख-यानानि छत्रपानासनानि च ।
दीप-काष्ठ-फलादीनि चरमं बहुवार्षिकम् ॥
बहुत्वादर्थजातानां सङ्ख्या शेषेषु नेष्यते ।
अधमान्यवशिष्टानि सर्व्वदानान्यतो विदुः ॥

'बहुवार्षिकं' बहूनि वर्षाणि प्राप्तं पुरातनमिति यावत् । एतेनोत्तममपि हस्त्यश्वादि, जीर्णतां प्राप्तमधमं भवति ।

विनाशत्वमाह। इष्टं दत्तमधीतं वा विनश्यत्यनुकीर्त्तनात्।
श्लाघा-नुशोचनाभ्याञ्च भग्नतेजो विपद्यते॥
तस्मादात्मकृतं पुण्यं न वृथा परिकीर्त्तयेत्।
अकृवानिति तत्प्राहुस्तमेव कृतवादिनम्*॥
'श्लाघा' प्रशंसा, 'वृथा' रक्षादिप्रयोजनव्यतिरेकेण।
कूर्म्मपुराणात्। नित्यं नैमित्तिकं काम्यं विमलञ्चेति कथ्यते
अहन्यहनि यत्किञ्चिद्दीयतेऽनुपकारिणे॥
अनुद्दिश्य फलं तत् स्यात् ब्राह्मणाय तु नित्यकं।
यत्तु पापोपशान्त्यर्थं दीयते विदुषां करे॥
नैमित्तिकं तदुद्दिष्टं दानं सद्भिरनुष्ठितम्॥
'पापोपशान्त्या इति' नियतनिमित्तोपलक्षणम्॥
अपत्य-विजयै श्वर्य्य-स्वर्गार्थं यत्प्रदीयते।
दानं तत् काम्यमाख्यातमृषिभिर्धर्म्मचिन्तकैः॥
यदीश्वरप्रीणनार्थं ब्रह्मवित्सु प्रदीयते।
चेतसा भक्तियुक्तेन दानं तद्विमलं शिवम्॥
मनुः। येन येन हि भावेन यद्यद्दानं प्रयच्छति।
तेन तेन हि भावेन तत्प्राप्नोति हि पूजितः॥
'येन येन हि भावेन' सात्त्विकराजसादिना।
तदुक्तं भगवद्गीतासु। दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे।
देशे कालेच पात्रेच तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम्॥
यत्तु प्रत्युपकारार्थं फलमुद्दिश्य वा पुनः।
दीयते च परिक्लिष्टं तद्दानं राजसं स्मृतम्॥

* वादिन इति पाठान्तरम्।

अदेशकाले यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते।
असंस्कृतमवज्ञातं तत्तामससमुदाहृतम्॥

विष्णुधर्म्मोत्तरात्॥ कृतानि विधिहीनानि वञ्चनार्थं परस्य वा।
क्रोधलोभाभिभूतेन-तामसानि विनिर्दिशेत्॥
सात्त्विकानि भवन्तीह श्रद्धया परया द्विज।
तामसानां फलं भुङ्क्ते तिर्य्यक्त्वे मानवः सदा॥
वर्णसंस्कारभावेन वार्द्धके यदि वा पुनः।
बाल्ये वा दासभावे वा नात्र कार्य्या विचारणा॥
अतोऽन्यथा तु मानुष्ये राजसानां फलं भवेत्।
सात्त्विकानां फलं भुङ्क्ते देवत्वे नात्र संशयः॥

मत्स्यपुराणात्॥ येषां पूर्वकृतं कर्म सात्त्विकं मनुजोत्तम।
पौरुषेण विना तेषां केषाञ्चिद्दृश्यते फलम्॥
कर्म्मणा प्राप्यते लोके राजसस्य तथा फलम्।
कृच्छ्रेण कर्म्मणा विद्धि तामसस्य तथा फलम्॥

गारुड़पुराणात्। कायिकं वाचिकं दानं मानसञ्च त्रिधा मतम्।
अर्हते यत्सुवर्णादिदानं तत्कायिकं मतम्॥
आर्त्तानामभयं दद्मीत्येतद्वै वाचिकं स्मृतम्।
विद्ययाध्यापया योगि* तद्दानं मानसं द्विजाः॥

हारीतः। असद्द्रव्यदान-मस्वर्गं,† यच्च दत्त्वा परितप्यते तद्व्यर्थ-दानमफलं, यच्चोपकारिणे ददाति तन्मात्रं परिक्लिष्टं,‡ यच्च सोपधं

---

* योगीति पाठान्तरम्।

† असद्द्रव्यप्रदाने न स्वर्गमिति वा पाठः।

‡ परिशिष्टमिति क्वचित्पाठः।

ददाति अभ्याचित * मल्पफलं, यच्चापात्राय ददाति अनिष्टदानं भवति, यच्च दत्त्वा परिकीर्त्यते यच्च स्मयदानं आसुरं, यच्चाश्रद्धया ददाति-क्रोधाद्राचसम्, यच्चाक्रुश्य ददाति दत्त्वा च क्रोशति असत्कृतं पैशाचं, यच्चावज्ञातं ददाति दत्त्वाचावजानीते मुमूर्षोस्तामसं यच्चाप्राकृतो ददाति, एते दानोपसर्गा यैरुपसृष्टं दानं असिद्ध†मसम्बद्ध-मस्वर्ग-मयशस्य-मध्रुव-मफलं वा। ‡ तर्ह्यदानम्, तस्मिन्नेव संकल्पकाले दीयमानद्रव्यासमर्पणम्। उपकारिणे, § प्रत्युपकारसमीहयेत्यर्थः। 'तन्मात्रं' यावद्दत्तं तावन्मात्रं। 'सोपधं' स्नेहाद्युपाधिसहितं अभ्याचितम्, लोकप्रतिपत्त्यर्थं ख्यापितम्। 'अनिष्टदानं' शत्रवे दानं, स्मयदानं, मादृशोऽन्योदाता नास्तीत्येवम्विधो भावविशेषः स्मयः, तेन यद्दानं। अप्राकृतः, मत्तादिः।

भविष्यपुराणे॥ महादानानि वै विद्यादतिदानानि सर्वदा।

पुण्यमिष्टञ्च पूर्त्तञ्च तथा दानञ्च यत्नतः॥

'महादानानि' वक्ष्यमाणानि षोड़श तुलापुरुषादीनि।

कनकाश्वतिलानागा दासीरथमहीगृहाः।

कन्याच कपिला धेनुर्म्महादानानि वै दश॥

सामवेदोपनिषदि। त्रीण्याहु रतिदानानि गावः पृथ्वी सरस्वती।

नरकादुद्धरन्त्येव जपवापनदोहनात्॥

शङ्खः। इष्टिभिः पशुबन्धैश्च चातुर्म्मास्यैर्यजेत्तु यः।

---

* अन्यश्चावितमिति वा पाठः।

† अप्रसिद्धमिति क्वचित् पाठः।

‡ तर्हित्यागानन्तरकाले हस्तार्पणमभवेप्यादान मसमर्पणमितिवा पाठः।

§ व्यसनोपकारिणे इति पाठान्तरम्।

अग्निष्टोमादिभिर्यज्ञैर्यजेत च स इष्टवान् ॥
अग्निहोत्रं तपः सत्यं वेदानाञ्चैव पालनम् ।
आतिथ्यं वैश्वदेवञ्च इष्टमित्यभिधीयते ॥
एकाग्निकादौ यत्कर्म्म त्रेतायां यच्च हूयते ।
अन्तर्वेद्याञ्च यद्दानं इष्टं तदभिधीयते ॥

शङ्खः । रोगिणां परिचर्य्या च पूर्त्तमित्यभिनिर्द्दिशेत् ।

व्यासः । पुष्करिण्य स्तथावाप्यो, देवतायतनानि च ।
अन्नदानमथारामाः पूर्त्तमित्यभिधीयते ॥

नारदः ॥ ग्रहोपरागे यद्दानं सूर्य्यसंक्रमणेषु च ।
द्वादश्यादौ तु यद्दानं तदेतत् पूर्त्तमुच्यते ॥

इति श्रीमहाराजाधिराज-श्रीमहादेवस्य समस्तकरणा
धीश्वरसकलविद्याविशारद-श्रीहेमाद्रिविरचिते
चतुर्वर्गचिन्तामणौ दानखण्डे दानस्वरूप-
प्रकरणम् ॥ २ ॥

---

# तृतीयोऽध्यायः।

अथ दानाङ्गनिरूपणम्।

तानि च द्रव्य-काल-श्रद्धा-संज्ञकानि।

तदुक्तं भविष्यपुराणे। प्रतिग्रहीता द्रव्यञ्च कालो देशश्च पावनः।
श्रद्धा च सात्त्विकी ज्ञेयं दानाना-मङ्गपञ्चकं॥

तत्र पात्रनिरूपणम्।

स्कन्दपुराणे देवीं प्रति ईश्वरवचनं।

श्रुतीनामाकराह्येते रत्नानामिव सागराः।
विप्रा विप्राधिपमुखे पूजनीयाः प्रयत्नतः॥

विप्राधिपः, चन्द्रः तद्वन्मुखं यस्याः सा तथा देवीसम्बोधनमेतत्।

यत्र वेदविदो विप्रा न प्राश्नन्त्युत्तमं हविः।
न तत्र देवा देवेशि हविरश्नन्ति कर्हिचित्॥

तथाच तैत्तिरीयश्रुतिः। यावती र्व्वै देवता स्ताः सर्व्वा वेद-विदि ब्राह्मणे वसन्तीत्यादि।

वियदित्युच्यते व्योम, प्रकारः प्रापणे स्मृतः।
दिवं सम्प्रापयन्त्ये ते दातृन् विप्रास्ततः स्मृताः॥
अपि नारायणोऽनन्तो ब्रह्मा स्कन्दोऽनिलः शिखी।
तज्स्थानं नाभिनन्दन्ति यत्र विप्रा न पूजिताः॥
येषां प्रसादसुलभ-मायु-र्धर्म्मः सुखं धनम्।
श्री-र्यशः-स्वर्गवासश्च तान् विप्रानर्च्चयेद्बुधः॥

विष्णुधर्म्मोत्तरे श्रीभगवानुवाच।

ब्राह्मणैः पूजितैर्नित्यं पूजितोऽहं न संशयः ।
निर्भत्सितैश्च निर्भत्स्ये तैरहं सर्व्वकर्म्मसु ॥
विप्राः परा गतिर्म्मह्यं यस्तान् पूजयते नृप ।
तमहं स्वेन रूपेण प्रपश्यामि युधिष्ठिर ॥
काणाः कुण्ठाश्च षण्डाश्च दरिद्रा व्याधिताश्च ये ।
एवंरूपाश्च ये विप्राः पश्य रूपं ममैव ते ॥

एतत्तु ब्राह्मणजातिमात्रस्तुतिपरं ।

याज्ञवल्क्यः । तपस्तप्त्वाऽसृजद्ब्रह्मा ब्राह्मणान् वेदगुप्तये ।
तृप्त्यर्थं पितृदेवानां धर्म्मसंरक्षणाय च ॥

मत्स्यः । नास्ति विप्रसमो देवो नास्ति विप्रसमो गुरुः ।
नास्ति विप्रात्परः शत्रु र्नास्ति विप्रात्परो विधिः ॥

वह्निपुराणात् । न जाति र्न कुलं राजन् न स्वाध्यायः श्रुतं न च ।
कारणानि द्विजत्वस्य वृत्तमेव तु कारणं ॥
किं कुलं वृत्तहीनस्य करिष्यति दुरात्मनः ।
कृमयः किं नजायन्ते कुसुमेषु सुगन्धिषु ॥
नैकमेकान्ततो ग्राह्यं पठनं हि विशाम्पते ।
वृत्तमन्विष्यतां तात रक्षोभिः किं न पठ्यते ॥
बहुना किमधीतेन नटस्येव दुरात्मनः ।
तेनाधीतं श्रुतंवापि यः क्रियामनुतिष्ठति ॥
कपालस्थं यथा तोयं स्वदृते च यथा पयः ।
दूष्यं स्यात् स्थानदोषेण, वृत्तहीनं तथा श्रुतम् ॥
तस्माद्विद्धि महाराज वृत्तं ब्राह्मणलक्षणम् ।
चतुर्व्वेदोपि दुर्व्वृत्तः शूद्रादल्पतरः स्मृतः ॥

सत्यं दम-स्तपोदान-महिंसेन्द्रियनिग्रहः ।
दृश्यन्ते यत्र राजेन्द्र स ब्राह्मण इति स्मृतः ॥

वशिष्ठः । यं न सन्तं न चासन्तं नाश्रुतं न बहुश्रुतम् ।
न सुवृत्तं न दुर्वृत्तं वेद कश्चित्स ब्राह्मणः ॥

सन्, विशिष्टः, असन्, तद्विपरीतः । अत्र चात्मोत्कर्षप्रकाशनं यो न करोति स पात्रमिति तात्पर्य्यमिति ।

यमः । अहिंसानिरतो नित्यं जुह्वानो जातवेदसम् ।
स्वदारनिरतो दाता स वै ब्राह्मण उच्यते ॥
श्रुतं प्रज्ञानुगं यस्य प्रज्ञा चैव श्रुतानुगा ।
असम्भिन्नार्य्यमर्य्यादः स वै ब्राह्मण उच्यते ॥
आशिषोर्थार्थं-पूजाश्च प्रसङ्गान्नकरोति यः ।
निवृत्तो लोभमोहाभ्यां तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥

'आशिषः' आशीर्व्वादान्,-'अर्थार्थं' धनलाभाय । 'प्रसङ्गः' अत्यासक्तिः ।

सत्यं दानं क्षमा शीलं आनृशंस्यं दया घृणा ।
दृश्यन्ते यत्र लोकेऽस्मिं स्तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥

यमशातातपौ । तपोधर्म्मो दया दानं सत्यं शौचं श्रुतं घृणा ।
विद्या-विज्ञान-मास्तिक्य-मेतद्ब्राह्मणलक्षणम् ॥

बौधायनः । विद्या तपश्च योनिश्च एतद्ब्राह्मणलक्षणं ।
विद्या तपोभ्यां योहीनो जातिब्राह्मण एव सः ॥

वशिष्ठः । ये क्षान्तदान्ताः श्रुतपूर्णकर्णा जितेन्द्रियाः
प्राणिवधे निवृत्ताः ।
प्रतिग्रहे सङ्कुचिताग्रहस्तास्ते ब्राह्मणास्तारयितुं समर्थाः ॥

यमः। विद्यावन्तश्च ये विप्राः सुव्रताश्च तपस्विनः।
सत्य-संयम-संयुक्ता ध्यानयुक्ता जितेन्द्रियाः॥
पुनन्ति दर्शनं प्राप्ताः किं पुनः संगतिं गताः।
तेषां दत्त्वाच भुक्त्या च प्राप्नुयुः परमां गतिम्॥
दत्त्वा द्विजाय शुद्धाय दाता याति शुभां गतिम्।
विद्यातपःशीलवांश्च स च तारयते नरः॥

कूर्म्मपुराणे॥ स्वाध्यायवन्तो ये विप्रा विद्यावन्तोजितेन्द्रियाः।
सत्यसंयमयुक्ताश्च तेभ्यो दद्यात् द्विजोत्तमाः॥
श्रोत्रियाय कुलीनाय विनीताय तपस्विने।
व्रतस्थाय दरिद्राय प्रदेयं शक्तिपूर्व्वकम्॥

सम्वर्त्तः। श्रोत्रियाय दरिद्राय अर्थिने च विशेषतः।
यद्दानं दीयते तस्मै तद्दानं शुभकारकम्॥
श्रोत्रियस्तु, यमेनोक्तः।
ओंकारपूर्व्विकास्तिस्रः सावित्रीर्य्यश्च विन्दति।
चरितब्रह्मचर्य्यश्च सवै श्रोत्रिय उच्यते॥
ओंकारपूर्व्विका, महाव्याहृतीरिति शेषः।

याज्ञवल्क्यः। सर्व्वस्य प्रभवोविप्रा श्रुताध्ययनशालिनः॥
तेभ्यः क्रियापराः श्रेष्ठास्तेभ्योऽप्यध्यात्मवित्तमाः।

पद्मपुराणे। यथाहि सर्व्वदेवानां ज्येष्ठः श्रेष्ठः पितामहः॥
तथा ज्ञानी सदा पूज्यो निर्म्ममोनिष्परिग्रहः॥

मत्स्यपुराणे। शीलं संवसता ज्ञेयं शौचं संव्यवहारतः।
प्रज्ञा संकथनात्ज्ञेया त्रिभिः पात्रं परीक्ष्यते॥

भविष्यपुराणे। क्षान्ति-स्पृहा-दया-सत्यं-दानं शीलं तपः श्रुतम्।

एतदष्टाङ्गमुद्दिष्टं परमं पात्रलक्षणम् ॥

वशिष्ठः । स्वाध्यायाढ्यं योनिमन्तं प्रशान्तं वैतानस्थं पापभीरुं बहुज्ञं । स्त्रीषु क्षान्तं धार्म्मिकं गोशरण्यं व्रतैः क्लान्तं तादृशं पात्रमाहुः ॥ 'योनिमान्' प्रशस्तकुलोद्भवः । 'वैतानस्थः' अग्निहोत्रादिकर्म्मपरः । 'स्त्रीषु क्षान्तः' स्त्रीविषये क्षान्तः । 'गोशरण्यः', गोशुश्रूषारतः ।

यमः । विद्यायुक्तो धर्म्मशील: प्रशान्तः क्षान्तोदान्तः सत्यवादी कृतज्ञः । वृत्तिग्लानो गोहितो गोशरण्यो दाता यज्वा ब्राह्मणः पात्रमाहुः ॥

स्वाध्यायवान् नियमवां स्तपस्वी ध्यानविच्च यः ।
क्षान्तो दान्तः सत्यवादी विप्रः पात्रमिहोच्यते ॥

महाभारते । साङ्गांस्तु चतुरो वेदान् योऽधीते वै द्विजर्षभः ।
षड्भ्योऽनिवृत्तः कर्म्मभ्यस्तं पात्रमृषयोविदुः ॥

'पात्रं, पातकमित्यर्थः ।

वशिष्ठः । किञ्चिद्वेदमयं पात्रं किञ्चित्पात्रं तपोमयम् ।
पात्राणामपि तत् पात्रं शूद्रान्नं यस्य नोदरे ॥

वृहस्पतिः । किञ्चिद्वेदमयं पात्रं किञ्चित्पात्रं तपोमयम् ।
आगमिष्यति यत् पात्रं तत्पात्रं तारयिष्यति ॥
ब्रह्मचारी भवेत्पात्रं पात्रं वेदस्य पारगः ।
पात्राणामुत्तमं पात्रं शूद्रान्नं यस्य नोदरे ॥

व्यासः । किञ्चिद्वेदमयं पात्रं किञ्चित्पात्रं तपोमयम् ।
असङ्कीर्णं च यत्पात्रं तत्पात्रं तारयिष्यति ॥
'असङ्कीर्णं, योन्यादिसङ्कररहितम् ।

याज्ञवल्क्यः। न विद्यया केवलया तपसा वापि पात्रता।

यत्र वृत्त मिमे चोभे तद्धि पात्रं प्रकीर्त्तितम्॥

देवलः। मात्रश्च ब्राह्मणश्चैव श्रोत्रियश्च ततः परः।

अनूचानस्तथा भ्रूण-ऋषिकल्प-ऋषि-र्मुनिः॥

इत्येतेऽष्टौ समुद्दिष्टा ब्राह्मणाः प्रथमं स्तुतौ।

तेषां परः परः श्रेष्ठो विद्या-वृत्त-विशेषतः॥

ब्राह्मणानां कुले जातो जातिमात्रो यदा भवेत्।

अनुपेतः क्रियाहीनो मात्र इत्यभिधीयते॥

'अनुपेतः', उपनयनरहितः।

एकदेशमतिक्रम्य वेदस्याचारवानृजुः।

स ब्राह्मण इति प्रोक्तो निभृतः सत्यवाग्घृणी॥

'एकदेशातिक्रमः', वेदस्य किञ्चिन्न्यूनस्याध्ययनम्।

'निभृतः', शान्तः।

एकां शाखां सकल्पाञ्च षड्भिरङ्गैरधीत्य वा।

षट्कर्म्मनिरतो विप्रः श्रोत्रियो नाम धर्म्मवित्॥

वेद-वेदाङ्ग-तत्त्वज्ञः शुद्धात्मा पापवर्जितः।

शेषं श्रोत्रियवत् प्राप्तः सोऽनूचान इति स्मृतः॥

अनूचानगुणोपेतो यज्ञ-स्वाध्यायमन्वितः।

भ्रूण इत्युच्यते शिष्टैः शेषभोजी जितेन्द्रियः॥

वैदिकं लौकिकञ्चैव सर्वं ज्ञान-मवाप्य यः।

आश्रमस्थो वशी नित्य मृषिकल्प इति स्मृतः॥

'लौकिकम्, अर्थार्जनादिज्ञानम।

ऊर्द्ध्वरेतास्तपस्य्ग्रे नियताशी न संशयी।

शापानुग्रहयोः शक्तः सत्यसन्धो भवेदृषिः ॥
निवृत्तः सर्वतत्त्वज्ञः कामक्रोधविवर्जितः ।
ध्यानस्थो निष्क्रियो दान्तस्तुल्यमृत्काञ्चनो-मुनिः ॥

'निवृत्तः' निषिद्धकाम्यकर्म्मभ्यः। 'निष्क्रियः', अर्थार्जनादिक्रियारहितः।

एवमन्वय-विद्याभ्यां वृत्तेन च समुच्छ्रिताः ।
त्रिशुक्ला नाम विप्रेन्द्राः पूज्यन्ते सवनादिषु ॥

'सवनादिषु' यज्ञादिषु।

प्रतिग्रहसमर्थोऽपि कृत्वा विप्रो यथाविधि ।
निस्तारयति दातारमात्मानञ्च स्वतेजसा ॥

'समर्थोऽपि, समर्थएवेत्यर्थः।

न लोके ब्राह्मणेभ्योऽन्यत् पवित्रं पुण्यमेव वा ।
अशक्यञ्च द्विजेन्द्राणां नास्ति वृत्तवतामिति ॥
योक्तव्यो हव्य-कव्येषु त्रिशुक्लो ब्राह्मणो द्विजैः ।
अभिभूतश्च पूर्व्वोक्तैर्दोषैः स्पृष्टश्च नेष्यते ॥

'अभिभूतः, अपकृष्टः।

'पूर्व्वोक्तैः, कुलविद्याचारैः। 'दोषैः, उपपातकादिभिः॥

मनुः। पात्रस्य हि विशेषेण श्रद्दधानस्तथैवच ।
अल्पम्वा बहु वा प्रेत्य दानस्य प्राप्यते फलम् ॥

दक्षः। समं-द्विगुण-साहस्र-मनन्तञ्च यथाक्रमम् ।
दाने फलविशेषःस्याद्धिंसायामेव मेव हि ॥
शतमब्राह्मणे दानं द्विगुणं ब्राह्मणब्रुवे ।
सहस्रगुणमाचार्य्ये अनन्तं वेदपारगे ॥

'अब्राह्मणः', राजभृतादिः।

यदाह शातातपः।

अब्राह्मणास्तु षट्प्रोक्ता ऋषिः शातातपोऽब्रवीत्।
आद्योराजभृतस्तेषां द्वितीयः क्रयविक्रयी॥
तृतीयो बहुयाज्यः स्यात् चतुर्थो ग्रामयाजकः।
बहवो याज्या यस्य स बहुयाज्यः।
पञ्चमस्तु भृतस्तेषां ग्रामस्य नगरस्य वा॥
ग्रामस्य नगरस्य भृत इत्यन्वयः।
अनागतान्तु यः पूर्वां सादित्याञ्चैव पश्चिमाम्।
नोपासीत द्विजःसन्ध्यां स षष्ठोऽब्राह्मणः स्मृतः॥
'ब्राह्मणब्रुवस्तु', पुरस्तादपात्रेषु व्याख्यास्यते।

आचार्य्यस्तु महाभारते।

अध्यापयेत्तु यः शिष्यं कृतोपनयनं द्विजः।
सरहस्यञ्च सकलं वेदं भरतसत्तम॥
तमाचार्य्यं महावाहो प्रवदन्ति मनीषिणः।
एकदेशन्तु वेदस्य वेदाङ्गान्यपि वा पुनः॥
योऽध्यापयति वृत्त्यर्थमुपाध्यायः स उच्यते।
निषेकादीनि कर्म्माणि यः करोति नृपोत्तम॥
सम्भावयति चान्नेन स विप्रोगुरुरुच्यते।
अग्न्याधेयं पाकयज्ञा*नग्निष्टोमादिकं यथा॥
यः करोति वृतो†नूनं स तु स्यादृत्विजो द्विजः।

---

* अग्निष्टोमादिकान् मखानिति क्वचित् पाठः।
† यस्य मतस्त्वृत्विगिहोच्यते इति क्वचित् पाठः।

यमः । समसब्राह्मणे दानं द्विगुणं ब्राह्मणब्रुवे ॥

प्राधीते शतसाहस्रमनन्तं वेदपारगे ।

'प्राधीतः, प्रारब्धाध्ययनः ।

उत्पत्तिं प्रलयञ्चैव भूतानामागतिं गतिम् ।

वेत्ति विद्यामविद्याञ्च स भवेद्वेदपारगः ॥

बृहस्पतिः । शूद्रे समगुणं दानं वैश्ये तु द्विगुणं स्मृतम् ।

क्षत्रिये त्रिगुणं प्राहुः षड्गुणं ब्राह्मणे स्मृतम ॥

श्रोत्रिये चैव साहस्रमाचार्य्ये द्विगुणं ततः ।

आत्मज्ञे शतसाहस्रमनन्तं त्वग्निहोत्रिणि ॥

विष्णुधर्म्मोत्तरे । अमानुषे समं दानं गोषु ज्ञेयं फलं तथा ।

द्विगुणञ्च तदेवोक्तं तथा त्रैवर्णसङ्करे ॥

शूद्रे चतुर्गुणं प्रोक्तं विशि चाष्टगुणं भवेत् ।

क्षत्रिये षोड़शगुणं ब्रह्मबन्धौ तदेव तु ॥

द्वात्रिंशद्गुणं स्मृतं दानं वेदाध्ययनतत्परे ।

शतघ्नं तद्विनिर्द्दिष्टं प्राधीते लक्षसम्मितम् ॥

अनन्तञ्च तदेवोक्तं ब्राह्मणे वेदपारगे ।

एतेषु, केषाञ्चिदब्राह्मणब्राह्मणब्रुवादीनामपात्राणामपि पात्रत्वनिरूपणं मन्त्रवर्ज्जवादिदानव्यतिरिक्तदानविषयम् ।

मन्त्रपूर्वञ्च यद्दानमपात्राय प्रदीयते दातुर्निकृत्य हस्तं तद्गोक्तुर्जिह्वां निकृन्तति

शातातपवचनात्। उपरुदन्ति दातारं गौरश्वः काञ्चनं क्षितिः।

अश्रोत्रियस्य विप्रस्य हस्तं दृष्ट्वा निराकृते

रिति वशिष्ठवचनाच्च । मन्त्रपूर्व्वं गवादिदानानामपात्रप्रति-

पादुकानिषेधात् शूद्रादीनान्तु पात्रत्वनिरूपणम् अन्नदानविषयम्। कृतान्नमितरेभ्य इतिगौतमवचनात्। अन्नं सर्व्वत्र दातव्यमितिवक्ष्यमाणत्वाच्च।

दक्षः। व्यसनापहरणार्थञ्च कुटुम्बार्थञ्च याचते।
एवमन्विष्य दातव्यं सर्वदानेष्वयं विधिः॥
व्यसनं, राजचौराद्युपद्रवः।

'आपत्, दुर्भिक्षादिपीड़ा। 'आद्योऽर्थशब्दो, निवृत्तिवचनः।

मनुः। सान्तानिकं यक्ष्यमाणमध्वगं सार्व्ववेदसम्।
गुर्व्वर्थं पितृमात्रर्थं स्वाध्यायार्थ्युपतापिनः॥
नवैतान् स्नातकान् विद्याद् ब्राह्मणान् धर्म्मभिक्षुकान्॥
'सान्तानिकः, सन्तानप्रयोजनविवाहार्थीत्यर्थः।
'अध्वगः' अत्र धर्म्मार्थं प्रचलितः।
(सार्व्ववेदसः) सर्व्वस्वदक्षिणयज्ञकृत्।
'उपतापी, व्याधिपीड़ितः।

निःस्वेभ्यो देयमेतेभ्यो दानं विद्याविशेषतः। एतेभ्यो हि द्विजाग्रेभ्यो देयमन्नं सदक्षिणम् इतरेभ्यो बहिर्व्वेदिकृतान्नन्तु विधीयते॥
'विद्याविशेषत' इति, अल्पविद्याय अल्पं बहुविद्याय बह्वित्यर्थः।

बौधायनः। सुब्राह्मण-श्रोत्रिय-वेदपारगेभ्यो गुर्व्वर्थ-निवेशौषधार्थ-वृत्तिक्षीण-यक्ष्यमाणाध्ययनाध्वसंयोग-वैश्वजितेषु द्रव्यविभागो यथाशक्ति कार्य्यो बहिर्व्वेदि भिक्षमाणेषु कृतान्नमितरेषु॥ निवेशः, विवाहः। 'वैश्वजितः, सर्व्वस्वदक्षिणया कृतविश्वजिद्यागः। बहिर्वेदिग्रहणादेतेभ्यो बहिर्वेद्यपि धनमवश्यं देयम् अन्येभ्यस्तु अन्तर्वेद्येव धनदाननियमः। बहिर्वेदि तु कृतान्नस्यैव।

आपस्तम्बः। भिक्षमाणो निमित्त-माचार्य्यो विवाहो यज्ञो मातापित्रोर्बुभूर्षार्हतश्च नियमादिलोपः। तत्र, गुणान् समीक्ष्य यथा देयं, इन्द्रिय-प्रीत्यर्थस्य तु भिक्षमाणमनिमित्तं न तथाद्रियेत। 'बुभूर्षा, भरणेच्छा॥ अर्हतश्च नियमादिलोप इति, अधिकारिण-आवश्यककर्म्मविधिलोपप्रसङ्गः।

यमः। वेदेन्धनसमृद्धेषु हुतं विप्रमुखाग्निषु। सन्तारयति दातारं महतः किल्बिषादपि॥

पद्मपुराणे। एकं वेदान्तगं विप्रं भोजयेत् श्रद्धयान्वितः।

तस्य भुक्ता स वै कोटिविप्राणां नात्र संशयः॥

शातातपः। वेदपूर्णमुखं विप्रं सुभुक्तमपि भोजयेत्।

न तु मूर्खं निराहारं षड्रात्रमुपवासिनं॥

व्यासः। सन्निकृष्टं वेदविद्भक्तं षट्कर्म्मनिरतः शुचिः।

दातुः फलमसंख्येयं जन्म जन्म तदक्षयम्॥

वेद-विद्या व्रत-स्नाते श्रोत्रिये गृहमागते।

क्रीडन्त्यौषधयः सर्व्वा यास्यामः परमां गतिम्॥

'औषधयः, अन्नानि।

महाभारते। [illegible]-राजंस्तद्गृहा-स्तदपाश्रयाः।

अर्थिनश्च भवन्त्यर्थे तेषु दत्तं महाफलम्॥

(अत्र) तच्छब्देन पूर्व्वोक्ताः पितरो देवताश्च परामृष्यन्ते। अथवा, तदेव दीयमानं भक्तमदनीयं येषां ते तथा एवं तद्गृहादिशब्दा अपि।

तस्करेभ्यः परेभ्यो वा ये भयार्त्ता युधिष्ठिर।

अर्थिनो भोक्तुमिच्छन्ति तेषु दत्तं महाफलम्॥

हृतस्वा-हृतदाराश्च ये विप्रा देशसंप्लवे।
अर्थार्थमभिगच्छन्ति तेषु दत्तं महाफलम्॥
चारित्रनियता राजन् ये कृशाः कृशवृत्तयः।
अर्थिनश्चोपगच्छन्ति तेषु दत्तं महाफलम्॥
अव्युत्क्रान्ताः स्वधर्म्मेषु पाषण्डसमयेषु च।
कृशप्राणाः कृशाहारास्तेषु दत्तं महाफलम्॥
तपस्विनस्तपोनिष्ठास्तथा भैक्ष्यचराश्च ये।
अर्थिनः किञ्चिदिच्छन्ति तेषां दत्तं महाफलम्॥

आदित्यपुराणात्। अक्रोधना धर्म्मपराः शान्ता-दमदमे रताः।
तादृशाः साधवो विप्रास्तेभ्यो दत्तं महाफलम्॥
हृतसर्व्वस्वहरणा निर्द्दोषा-प्रभविष्णुभिः।
स्पृहयन्ति सुभक्तानां तेषु दत्तं महाफलम्॥

अथ शातातपपराशरौ।

सन्निकृष्टमधीयानं ब्राह्मणं यो व्यतिक्रमेत्।
भोजने चैव दाने च दहत्यासप्तमं कुलम्॥

भविष्यपुराणे।

यस्त्वासन्न मतिक्रम्य ब्राह्मणं पतितादृते।
दूरस्थं भोजयेन्मढ़ो गुणाढ्यं नरकं व्रजेत्।
तस्मान्नातिक्रमेत् प्राज्ञो ब्राह्मणान् प्रातिवेशिकान्॥
'प्रातिवेशिकान, स्वगृहाददूरवर्त्तिगृहान्।
सम्बन्धिनस्तथा सर्व्वान् दौहित्रं विट्पतिं तथा।
भागिनेयं विशेषेण तथा बन्धून् गृहाधिप॥
नातिक्रमेन्नरस्त्वेतान् सुमूर्खानपि गोपते।

अतिक्रम्य महारौद्रं रौरवं नरकं व्रजेत्॥

'विट्पतिः, जामाता।

'सुमूर्खानपि नातिक्रमेदित्येतत्, अन्नदानविषयम्।

'हिरण्यादिदाने तु' सन्निहितमूर्खव्यतिक्रमे दोषाभावात्।

तदुक्तं व्यास-वशिष्ठ-बौधायन-शातातप-पराशरैः।

यस्य चैको गृहे मूर्खो दूरे चापि बहुश्रुतः।

बहुश्रुताय दातव्यं नास्ति मूर्खे व्यतिक्रमः॥

ब्राह्मणातिक्रमो नास्ति विप्रे वेदविवर्जिते।

ज्वलन्तमग्निमुत्सृज्य न हि भस्मनि हूयते॥

महाभारते। यदि स्यादधिको विप्रो दूरे वृत्तादिभिर्युतः।

तस्मै यत्नेन दातव्यमतिक्रम्यापि सन्निधिम्॥

विष्णुः। पुरोहितस्त्वात्मन एव पात्रं स्वसृ-दुहितृ-पुत्रजामातरश्चेति।

'यस्यैते पुरोहितादयः, तस्यैव ते अन्यगुणरहिता अपि पुरोहितादित्वेनैव पात्राणि।

व्यासः। मातापितृषु यद्दत्तं भ्रातृषु स्वसुतासु च।

जायापत्योस्तु यद्दत्तं * सोऽनिन्द्यः स्वर्गसंक्रमः॥

पितुः शतगुणं दानं सहस्रं मातुरुच्यते।

अनन्तं दुहितुर्दानं सोदर्ये दत्तमक्षयम्॥

विष्णुधर्म्मोत्तरात्।

आत्मनस्तु भवेत् पात्रं नान्यस्य स्यात् पुरोहितः।

पुरोहिते तु स्वे दत्तं दानमक्षय्यमुच्यते॥

उपाध्याय-र्त्विजोश्चैव गुरावपि च मानवैः।

---

* सोऽनन्तस्वर्गसंक्रम इति पाठान्तरम्।

वर्णापेक्षा न कर्त्तव्या मातरं पितरं प्रति ॥

'उपाध्यायादयस्तु, पूर्व्वमेव व्याख्याताः।

तथा। मातृष्वसा स्वसा चैव तथैव च पितृष्वसा।

मातामही भागिनेयी भागिनेयस्तथैव च ॥

दौहित्रो-विट्पतिश्चैव तेषु दत्तञ्च अक्षयम्।

श्रोत्रिये यत्तथा दत्तं तदप्यक्षयमुच्यते ॥

माता-पित्रोर्गुरौ मित्रे विनीते चोपकारिणि।

दीना-नाथ-विशिष्टेभ्योदातव्यं भूतिमिच्छता ॥

अदत्तदानाज्जायन्ते परभाग्योपजीविनः ॥

'उपकारिणि' परोपकारपरे।

'विशिष्टाः' गुणातिशयशालिनः।

ब्रह्मपुराणे। यत् कन्यासु पिता कुर्य्याद्दानं पूजनमर्च्चनम्।

यत्कृतं सुकृतं विद्यात्तासु दत्तं तदक्षयम्।

यद्दत्तं तासु कन्यासु तद्दानं पुण्यमेव च ॥

कालिकापुराणात्। यद्दत्तं वेदविद्विप्रे यद्दत्तं ब्रह्मचारिणि।

तपोनिधिस्तु यद्दत्तं कारुण्येन च यत् सदा।

तत् सर्व्वमक्षयं दानं वैमल्येन विधाय यत् ॥

विष्णुधर्म्मोत्तरात्। अन्नदाने न कर्त्तव्यं पात्रापेक्षणमण्वपि।

अन्नं सर्व्वत्र दातव्यं धर्म्मकामेन वै द्विज ॥

सदोषेऽपि तु निर्द्दोषं सगुणेऽपि गुणावहम्।

तस्मात् सर्व्वप्रयत्नेन देयमन्नं सदैव तु ॥

विद्या-ध्ययनसक्तानामन्नदानं महाफलम् ॥

तथा। दत्त्वा नृपतिभातानां धनिनाञ्च तथा धनम्।

तस्करेभ्यश्च भीतानां फलमक्षयमुच्यते ॥
यियक्षतां तथा दत्तं व्यसनं तर्त्तुमिच्छताम् ।
दुःखान्वितानां दीनानामक्षयं परिकीर्त्तितम् ॥
विवाह-मेखलाबन्ध-प्रतिष्ठादिषु कर्म्मसु ।
आपन्नेषु तु यद्दत्तमक्षयं तदुदाहृतम् ॥

सम्बर्त्तः । दानान्येतानि देयानि तथान्यानि च सर्वशः ।
दीना-न्ध-कृपणा-र्थिभ्यः श्रेयःकामेन धीमता ॥

पद्मपुराणे । दीना-न्ध-कृपणा-नाथ-वाग्विहीनेषु यत्तथा ।
विकलेषु तथान्येषु जड़-वामन-पङ्गुषु ।
रोगार्त्तेषु च यद्दत्तं तत्स्याद्बहुफलं धनम् ॥

अथ अपात्रनिरूपणम् ।

तत्रमनुः । गोरक्षकान् वाणिजकां स्तथा कारु-कुशीलवान् ।
प्रैष्यान्वार्द्धुषिकांश्चैव विप्रान् शूद्रवदाचरेत् ॥
ये व्यपेताः स्वकर्म्मभ्यः परपिण्डोपजीविनः ।
द्विजत्वमभिकाङ्क्षन्ति तांश्च शूद्रवदाचरेत् ॥
नानृग्ब्राह्मणो भवति नवणिग्न कुशीलवः ।
न शूद्रप्रेषणं कुर्व्वन्नस्तेनो न चिकित्सकः ॥
अव्रता ह्यनधीयाना यत्र भैक्ष्यचरा द्विजाः ।
तं ग्रामं दण्डयेद्राजा चौरभक्तप्रदोहि सः ॥

वसिष्ठः । उदक्याम्वासते येषां येच केचिदनग्नयः ।
कुलञ्चाश्रोत्रियं येषां सर्व्वे ते शूद्रधर्म्मिणः ॥

'अन्वासते' कर्म्मकाले समीप एव तिष्ठति ।

विष्णुः । नादनं ग्रसे दद्यान्नभयान्नोपकारिणि ।

न नृत्य-गीतशीलेभ्यो धर्म्मार्थमिति निश्चयः॥

'उपकारिणि, आत्मोपकारपरे-प्रत्युपकारसमीहयेत्यर्थः।

महाभारते। यस्तु प्रेष्यान् द्विजान् मूढ़ो योजयेद्धव्य-कव्ययोः।

न भवेत्तत्फलं तस्य वैदिकीयं तथा श्रुतिः॥

यमः। अव्रतानाममन्त्राणां जातिमात्रोपजीविनाम्।

नैषां प्रतिग्रहोदेयो न शिलातारयेच्छिलाम्॥

अपविद्धा-ग्निहोत्रस्य गुरोर्व्विप्रियकारिणः।

द्रविणं नैव दातव्यं सततं पापकर्म्मणः॥

न प्रतिग्रहमर्हन्ति वृषला-ध्यापका द्विजाः।

शूद्रस्याध्यापनाद्विप्रः पतत्यत्र न संशयः॥

तथा। राजधानी तथा शून्या यथा कूपश्च निर्जलः।

यथा हुतमनग्नौ च तथा दत्तं द्विजेऽनृचे॥

वसिष्ठः। यथा काष्ठमयो हस्ती* यथा चर्म्ममयो मृगः।

यश्च विप्रोऽनधीयानस्त्रयस्ते† नामधारकाः॥

विद्वद्भोज्यान्यविद्वांसो येषु राष्ट्रेषु भुञ्जते।

तान्यनावृष्टिमिच्छन्ति महद्वा जायते भयम्॥

व्यास-शातातपौ। नष्टशौचे व्रतभ्रष्टे विप्रे वेद-विवर्जिते।

रोदित्यन्नं दीयमानं किं मया दुष्कृतं कृतम्॥

शौचहीनास्तु ये विप्रा न च यज्ञोपवीतिनः।

हुतं दत्तं तपस्तेषां नश्यत्यत्र न संशयः॥

---

* यद्वेति क्वचित्पाठः।

† नाम बिभ्रतीति क्वचित्पाठः।

ऊषरे वापि तं बीजं यच्च भस्मनि हूयते ।
क्रियाहीनेषु यद्दत्तं त्रिषु नाशोविधीयते ॥
प्रस्तरे पतितं बीजं भिन्नभाण्डेच दोहनम ।
भस्मन्यपि हुतं द्रव्यं तद्वद्दानमसाधुषु ॥

'पूर्व्वंच पात्रगुणकथने कृतेऽपि' पुनर्द्दोषवचनमेवंविधदोष-भाग्जनप्रतिषेधार्थम् ।

मनुः । पात्रभूतो हि यो विप्रः प्रतिगृह्य प्रतिग्रहम् ।
असत्सु विनियुञ्जीत तस्य देयं न किञ्चन ॥
सञ्चयं कुरुते यश्च प्रतिगृह्य समन्ततः ।
धर्म्मार्थं नोपयुङ्क्ते यो न तं तस्करमर्च्चयेत् ॥
'असत्सु, निषिद्धेषु द्यूतादिषु ।

दक्षः । विधिहीने तथापात्रे योददाति प्रतिग्रहम् ।
न केवलं हि तद्याति शेषमप्यस्य नश्यति ॥

मनुः । अनर्हते यद्ददाति न ददाति यदर्हते ।
अर्हा-नर्हापरिज्ञानाद्दनाद्धर्म्माच्च हीयते ॥

यमः । यस्तु निद्राघुरातां वृत्तिमलिङ्गिभ्यः प्रयच्छति ।
घोरायां ब्रह्महत्यायां पच्यते नात्र संशयः ॥

भविष्यपुराणे । नाब्राह्मणाय दातव्यं नदेयं ब्राह्मणाक्रिये ।
न ब्राह्मणब्रुवे चैव न च दुर्ब्राह्मणे धनम् ॥

व्यासः । ब्रह्मबीजसमुत्पन्नो मन्त्र-संस्कार-वर्ज्जितः ।
जातिमात्रोपजीवी च भवेद्ब्राह्मणः स तु ॥
गर्भाधानादिभिर्युक्तस्तथोपनयनेन च ।
न कर्म्मविन्नचाधीते स भवेद्ब्राह्मणाक्रियः ॥

वाराहपुराणे। अव्रतौ वैश्य-राजन्यौ शूद्रस्याब्राह्मणास्तथा।
वेद-व्रतविहीनश्च ब्राह्मणो ब्राह्मणब्रुवः॥

यमः। यस्य विद्या च वेदौ च विच्छिद्येते त्रिपौरुषम्।
स वै दुर्ब्राह्मणो नाम यश्चैव वृषलीपतिः॥

कूर्म्मपुराणे। न वार्य्यपि प्रयच्छेत नास्तिके हैतुकेऽपि वा।
न पाषण्डेषु सर्व्वेषु नावेदविदि धर्म्मवित्॥
'नास्तिकः', परलोकवासनाशून्यः।
'हैतुकः', हेतुभिः परलोकं निराकरिष्णुः।

मनुविष्णुश्च। न वार्य्यपि प्रयच्छेत बैड़ालव्रतिके द्विजे।
नबकव्रतिके पापे नावेदविदि धर्म्मवित्॥
त्रिष्वप्येतेषु दत्तं हि विधिनोपार्जितं धनम्।
दातुर्भवत्यनर्थाय परत्रादातुरेव च॥
'अनर्थः', प्रत्यवायः।
यथा प्लवेनौपलेन निमज्जत्युदके तरन्।
दातृ-प्रतिग्रहीतारौ तथैवाज्ञौ निमज्जतः॥

यमः। यः कारणं पुरस्कृत्य व्रतचर्य्यां निषेवते।
पापं व्रतेन प्रच्छाद्य बैड़ालं नाम तद्व्रतम्॥
अर्थञ्च विपुलं गृह्य दत्त्वा लिङ्गं विवर्ज्जयेत्।
आश्रमान्तरितं रक्षेद्बैड़ालं नाम तद्व्रतम्॥
यतीनामाश्रमं गत्वा प्रत्यवस्थेत्तु यः पुनः।
यतिधर्म्मविलोपेन बैड़ालं नाम तद्व्रतम्॥

विष्णुः। धर्म्मवर्ज्जी सदालुब्धः* शूद्रिको लोकदम्भकः।

---

* छाद्मिक इति क्वचित्पाठः।

बैड़ालव्रतिको ज्ञेयो हिंस्रः सर्व्वाभिसन्धकः॥
यस्य धर्म्मध्वजो नित्यं सुराध्वज इवोच्छ्रितः।
प्रच्छन्नानि च पापानि बैड़ालं नाम तद्व्रतम्॥
अधोदृष्टिर्नैष्कृतिकः स्वार्थसाधनतत्परः।
शठो मिथ्याविनीतश्च बकव्रतचरो द्विजः॥
ये बकव्रतिनो विप्रा ये च मार्ज्जारलिङ्गिनः।
ते पतन्त्यन्धतामिस्रे तेन पापेन कर्म्मणा॥

चतुर्व्विंशतिमतात्।
रोदित्यन्नं दीयमानं किं मया दुष्कृतं कृतम्।
अश्रोत्रियस्य विप्रस्य हस्तं दृष्ट्वा निराकृतेः॥

कात्यायनस्त्वन्यथाह।
यः स्वाध्याया-ग्निमालः स्याद्देवादीन्नैभिरिष्टवान्।
निराकर्त्तामरादीनां स विज्ञेयो निराकृतिरिति॥

शातातपः। नेष्टं देवलके दत्तमप्रतिष्ठञ्च वार्द्धुषौ।
यच्च वाणिज्यके दत्तं न च तत्प्रेत्य नो इह॥

दक्षः। धूर्त्ते बन्दिनि मल्ले च कुवैद्ये कितवे शठे।
चाट-चारण-चौरेभ्यो दत्तं भवति निष्फलम्॥

स्कन्दपुराणे। देव-पितृ-विहीने यदीश्वरेभ्यश्च दीयते।
दत्त्वा तु कीर्त्तितं यच्च वेदाग्नित्यागिने तथा॥
अन्यायो-पार्ज्जित-धनैर्द्दत्तमब्राह्मणे च यत्।
गुरवेऽनृतवक्त्रे च स्तेनाय पतिताय च॥
कृतघ्नाय च यद्दत्तं सर्व्वदा ब्रह्मविद्विषे
याजकाय च सर्व्वस्य वृषल्याः पतये तथा

परिचाराय भृत्याय सर्व्वस्य पिशुनाय च।
इत्येतानि च राजेन्द्र वृथादानानि षोड़श॥
गर्भस्थोऽज्ञानबालोपि भुङ्क्ते वृद्धो न यौवने।
तद्दत्तस्येह नाशोस्ति सर्व्वथा रिपुसूदन॥

तदीयफलमितिशेषः।

विष्णुधर्म्मात्। परस्थाने वृथा दानं सदोषं परिकीर्त्तितम्।
आरूढ़पतिते चैव अन्यायात्तैर्द्धनैश्च यत्।
व्यर्थं हि ब्राह्मणे दानं पतिते तस्करे तथा।
गुरोश्चाप्रीतिजनके कृतघ्ने ग्रामयाजके॥
वेदविक्रायके चैव यस्य चोपपति र्गृहे।
स्त्रीभिर्जितेषु यद्दत्तं व्यालग्राहे तथैव च॥
ब्रह्मबन्धौ च यद्दत्तं यद्दत्तं वृषलीपतौ।
परिचारके च यद्दत्तं वृथा दानानि षोड़श॥

महाभारते। पङ्गन्ध-बधिरा मूका व्याधिनोपहताश्च ये।
भर्त्तव्यास्ते महाराज न तु देयः प्रतिग्रहः॥

इति प्रतिग्रहीतृ निरूपणम्।

अथ द्रव्याख्यं दानाङ्गमुच्यते।

तत्र देयनिरूपणम्।

भविष्यपुराणे। यद्यदिष्टं विशिष्टञ्च न्यायप्राप्तञ्च यद्भवेत्।
तत्तद्गुणवते देयमित्येतद्दानलक्षणम्॥

वह्निपुराणे। शुभोपात्तेन यत्किञ्चिद् करोति लघुना नरः।
अनन्तं फलमाप्नोति मुद्गलोऽपि यथा पुरा॥
'शुभोपात्तेन' न्यायोपार्ज्जितेन।

'लघुना' स्वल्पेन द्रव्येणेतिशेषः।

देवीपुराणे। न्यायतो यानि प्राप्तानि शाकान्यपि नृपोत्तम।

तानि देयानि देव्यास्तु कन्यका-योषितां सदा।

तद्भक्तेषु च विप्रेषु अपरेषु च नित्यशः॥

विष्णुपुराणे। यद्यदिष्टतमं लोके यच्चास्य दयितं गृहे।

तत्तद्गुणवते देयं तदेवाक्षयमिच्छता॥

महाभारते। विशेषतो महाराज तस्य न्यायार्ज्जितस्य च।

श्रद्धया विधिवत् पात्रे दत्तस्यान्तो न विद्यते॥

गौतमः। स्वामी रक्थ-क्रय-संविभाग-परिग्रहा-धिगमेषु ब्राह्मणस्याधिकं लब्धं क्षत्रियस्य विजितं निर्व्विष्टं वैश्यशूद्रयोरिति। 'अप्रतिबन्धः' दायः तत्र रक्थं। 'संविभागः, सप्रतिबन्धो दायः। 'परिग्रहः, जलतृणकाष्ठादेरनन्यपूर्व्वस्य स्वीकारः। 'अधिगमः' निध्यादेः प्राप्तिः। एषु निमित्तेषु स्वामी भवति। 'अधिकम्' असाधारणम्। 'निर्व्विष्टम्, कृष्यादिना द्विजशुश्रूषादिना च यल्लब्धम्। निर्व्वेशो भृतिभोगयोरिति स्मरणात्।

मनुः। सप्त वित्तागमा धर्म्म्या दायो लाभः क्रयो जयः।

प्रयोगःकर्म्मयोगश्च सत्प्रतिग्रह एव च॥

न्यायोपचयार्थं द्रव्यप्रयोगः।

'कर्म्मयोगः, आर्त्विज्यम्।

नारदः। धनमूलाः क्रियाः सर्व्वा यत्नस्तस्यार्ज्जने मतः।

रक्षणं वर्द्धनं भोग इति तस्य विधिः क्रमात्॥

तत्पुनस्त्रिविधं ज्ञेयं शुक्लं शबलमेव च।

कृष्णञ्च तस्य विज्ञेयो विभागः सप्तधा पुनः॥

'एकैकस्य शुक्लादेः सप्त सप्तभेदा भवन्तीत्यर्थः।

श्रुत-शौर्य्य-तपः-कन्या-याज्य-शिष्या-न्वयागतम्।

धनं सप्तविधं शुक्लमुदयोप्यस्य तद्विधः॥

'आगतशब्दः, श्रुतादिभिः प्रत्येकं सम्बध्यते। 'कन्यागतम्, आर्षविवाहे वराद्गृहीतं गोमिथुनादि। 'याज्यागतं' आर्त्विज्यादिलब्धम्। 'शिष्यागतम्, गुरुदक्षिणादि। अत्र च यथाधिकारं, शुक्लत्वमवधेयं। 'उदयः' फलं तदप्यस्य शुद्धमित्यर्थः।

कुशीद-कृषि-वाणिज्य-शिल्प-शुल्का-नुवृत्तितः।

कृतोपकारादाप्तञ्च शबलं समुदाहृतम्॥

'न्यायोपचयार्थं द्रव्यप्रयोगः, कुशीदं।' शिल्पं, कारुकादिकर्म्म। 'आकरादिभ्योद्रव्योदयः, शुल्कं'। 'अनुवृत्तिः, सेवा।

पार्श्विक-द्यूत-चौर्य्या-र्त्ति-प्रतिरूपक-साहसैः।

व्याजेनोपार्जितं यत्तत् सर्व्वेषां कृष्णमुच्यते॥

पार्श्विकोपार्जितं, उत्कोचादिलब्धं। 'आर्त्त्युपार्ज्जितं, परपीड़या लब्धं। प्रतिरूपकं, मणिसुवर्णादेः प्रतिरूपकरणं। 'साहसं, स्वप्राणात्ययाङ्गीकारेण पश्यतोहरत्वादिकं। 'व्याजः' दम्भेन तपःप्रभृति।

तेन क्रयो विक्रयश्च दानं ग्रहणमेव च।

विविधाश्च प्रवर्त्तन्ते क्रियाः सम्भोग एव च॥

यथाविधेन द्रव्येण यत् किञ्चित् कुरुते नरः।

तथाविधमवाप्नोति सफलं प्रेत्य चेह च॥

'यथाविधेन' शुक्लेन कृष्णेन शबलेन वा दानादि कुरुते तथाविधं फलमाप्नोतीति, शुक्लेन, शुद्धं दुःखरहितम्।

'शबलेन, मिश्रं। कृष्णेन, असुखोदयम्।

पद्मपुराणे। शुक्लेन वित्तेन कृतं पुण्यं बहुफलं भवेत्।
शबलं मध्यमफलं कृष्णं हीनधनं फलम्॥

ब्रह्मप्रोक्ते। शुक्लवित्तेन यो धर्म्मं प्रकुर्य्यात् श्रद्धयान्वितः।
तीर्थं पात्रं समासाद्य देवत्वे तत् समश्नुते॥
राजसेन च भावेन वित्तेन शबलेन च।
दद्याद्दानमतिथिभ्यो मानुषत्वे तदश्नुते॥
तमोवृत्तस्तु यो दद्यात् कृष्णवित्तेन मानवः।
तिर्य्यक्त्वे तत्फलं प्रेत्य समश्नाति नराधमः॥

नारदः। तत्पुनर्द्वादशविधं प्रतिवर्णाश्रयात् स्मृतम्।
साधारणं स्यात्त्रिविधं शेषं नवविधं स्मृतम्॥

धर्म्मशमितिशेषः। प्रतिवर्णाश्रयान्नवविधं साधारणं त्रिविध मित्येवं द्वादशविधमित्यर्थः।

क्रमागतं प्रीतिदायः प्राप्तञ्च सह भार्य्यया।
अविशेषेण सर्व्वेषां वर्णानां त्रिविधं धनम्॥
वैशेषिकं धनं ज्ञेयं ब्राह्मणस्य त्रिलक्षणम्।
प्रतिग्रहेण संलब्धं याज्यतः शिष्यतस्तथा॥
त्रिविधं क्षत्रियस्यापि प्राहुर्वैशेषिकं धनम्।
युद्धोपलब्धं कराच्च दण्डाच्च व्यवहारतः॥

'कारः, बल्यादिः।

वैशेषिकं धनं ज्ञेयं वैश्यस्यापि त्रिलक्षणम्।
कृषि-गोरक्ष-वाणिज्यैः शूद्रस्यैभ्यस्त्वनुग्रहात्॥

'एभ्यः' ब्राह्मणादिभ्यः।

सर्व्वेषामेव वर्णानां एवं धर्म्मो धनागमः।
विपर्य्ययादधर्म्मः स्यान्नचेदापद्गरीयसी॥

( एवंधर्म्मसाधनं द्रव्यं निरूप्य तत्र कियद्देयं किं देयमित्यपेक्षायां

याज्ञवल्क्यः

स्वं कुटुम्बाविरोधेन देयं दारसुतादृते।
नान्वये सति सर्व्वस्वं यच्चान्यस्मै प्रतिश्रुतम्॥

'अन्वये' सन्ताने। 'प्रतिश्रुतं' प्रतिज्ञातम्।

'कुटुम्बाविरोधस्तु, व्याख्यातो बृहस्पतिना।
कुटुम्बभक्त-वसनाद्देयं यदतिरिच्यते।
मध्वास्वादो विषं पश्चाद्दातुर्धर्म्मोऽन्यथा भवेत्॥

'भक्तं', अन्नं। 'वसनं' वस्त्रं। (यावता द्रव्येण कुटुम्बस्य वस्त्रमन्नं संपद्यते तदतिरिक्तं देयं, इतरत्तु न देयमित्यर्थः)।

मनुः। शक्तः परजने दाता स्वजने दुःखजीविनि।
मध्वापातो विषास्वादः स धर्म्मप्रतिरूपकः॥

कात्यायनः। सर्व्वस्वं गृहवर्ज्जन्तु कुटुम्बभरणाधिकम्।
यच्च द्रव्यं स्वकं देयमदेयं स्यादतोन्यथा॥

तथा। समराचारकृच्छ्रेत्रात् यद्यत् क्षेत्रं प्रचीयते।
पित्रा वाथ स्वयं प्राप्तं तद्दातव्यं विवक्षितम्॥

(समराचारादिभ्यो यत्प्रचीयते, अधिकं भवति, तद्दातव्यमिति विवक्षितमित्यर्थः)।

शिवधर्म्मात्। तस्मात्त्रिभागं वित्तस्य जीवनाय प्रकल्पयेत्।
भागद्वयन्तु धर्म्मार्थमनित्यं जीवितं यतः॥

(अशेषवित्तस्य भागपञ्चकं परिकल्प्य भागत्रयं जीवनाय संरक्ष्य भागद्वयं धर्म्माय कल्पयेदित्यर्थः) ।

महाभारते । एकां गां दशगुर्द्दद्याद्दश दद्याच्च गोशती ।
शतं सहस्रगुर्द्दद्यात्* सर्व्वे तुल्यफलाः स्मृताः ॥

(नन्वेतद्वचनद्वयोपात्तयोर्व्वित्तगोशब्दयोरुपलक्षणार्थत्वेन देय-मात्रपरत्वाद्विषमभागपरिकल्पनं विरुद्धं यथाश्रुत-गो-वित्त-परत्वे-नाविरोधे दशगुरेकां गांदद्यादितिवचनाद्दशावरगोधनिनोऽपि गोदानानधिकारः स्यात् दशधेनुग्रहणयोग्यधनिपरत्वे तु उपलक्ष-णपक्षाङ्गीकाराद्विरोधतादवस्थ्यं तस्मान्न्यूनाधिककल्पयोः कृपणो-दाराधिकारिविषयतयैव व्यवस्थेति सुस्थम् ॥

(कुटम्बाविरोधेन देयमित्युक्तं ।) तस्यापवादमाह ।

व्यासः । कुटुम्बं पीड़यित्वापि ब्राह्मणाय महात्मने ।
दातव्यं भिक्षवे चान्नमात्मनो भूतिमिच्छता ॥
(इत्यतिथ्यादिविषयमेतत्) ।

कात्यायनः । स्वेच्छादेयं स्वयंप्राप्तं बन्धाचारेण बन्धकम् ।
वैवाहिकक्रमायाते सर्व्वदानं न विद्यते ॥

'बन्धकं' आधिः तद्बन्धाचारेणाधिरूपेणैव देयं । 'यद्विवाहलब्धं तत्तस्यां भार्य्यायां सत्यां सर्व्वमदेयं' । 'यच्च' पितामहादिक्रमायातं तत्र पुत्रे सति न देयम् ।

सौदायिकं क्रमायातं शौर्य्यप्राप्तञ्च यद्भवेत् ।
स्त्री-ज्ञाति-स्वाम्यनुज्ञातं दत्तं सिद्धिमवाप्नुयात् ॥
'सौदायिकं' विवाहलब्धं तद्भार्य्ययानुज्ञातम् ।

* सहस्रं बहुगोधन इति क्वचित्पाठः ।

'क्रमायातम्' अविभक्तधनैर्ज्ञातिभिरनुज्ञातम्। भृतेन, सता युद्धेन लब्धं स्वामिनानुज्ञातमित्यर्थः।

याज्ञवल्क्यः। देयं प्रतिश्रुतञ्चैव दत्त्वा नापहरेत् पुनः।

यमः। यच्च वाचा प्रतिज्ञातं कर्म्मणा नोपपादितम्।

तद्धनमृणसंयुक्तमिह लोके परत्र च॥

'ऋणसंयुक्तं' ऋणासमर्पणजन्यदोषसंयुक्तमित्यर्थः।

सप्ताजातान्नरो हन्याद्वर्त्तमानांस्तु सप्त च।

अतिक्रान्तान् सप्त हन्यादप्रयच्छन् प्रतिश्रुतम्॥

प्रतिश्रुताप्रदानेन* दत्तस्य हरणेन च।

जन्मप्रभृति यत्पुण्यं तत्सर्व्वं संप्रणश्यति॥

महाभारते। ब्राह्मणं स्वयमाहूय भिक्षार्थं कृशवर्त्तिनम्।

पश्चान्नास्तीति यो ब्रूयात्तं विद्याद्ब्रह्मघातकम्॥

तथा। संश्रुत्य यो न दित्सेत याचित्वा यश्च नेच्छति।

उभावनृतिकावेतौ मृषा पापमवाप्नुतः॥

तथा। यो न दद्यात् प्रतिश्रुत्य स्वल्पं वा यदि वा बहु।

आशास्तस्य हताः सर्व्वाः क्लीवस्येव प्रजाफलम्॥

यं निरीक्षेत संक्रुद्ध आशया पूर्व्वजातया।

प्रदहेत हितं राजन् कक्षमक्षयभुग्यथा॥

तस्माद्दातव्यमेवेह प्रतिश्रुत्य युधिष्ठिर।

नारदः। ब्राह्मणस्य च यद्देयं सान्वयस्य † च नास्ति कः।

सकुल्ये तस्य निनयेत्तदभावेऽस्य बन्धुषु॥

---

* दत्तस्योच्छेदनेन चेति क्वचित्पाठः।

† न चास्ति स इति क्वचित्पाठः।

यदा तु न सकुल्यः स्यान्नच सम्बन्धि-बान्धवाः ।
दद्यात् सजाति-शिष्येभ्यस्तदभावेऽप्सु निक्षिपेत् ॥

गौतमः । प्रतिश्रुत्याप्यधर्म्मसंयुक्ताय न दद्यात् ॥

कात्यायनः । प्राणसंशयमापन्नं यो मामुत्तारयेदितः ।
सर्वं स्वन्ते प्रदास्यामीत्युक्तेऽपि न तथा भवेत् ॥

अथ फलातिशयप्रतिपादनार्थं पात्रविशेषेण देयविशेषाः ।

भविष्यपुराणे । गो-भू-तिल-हिरण्यादि दद्यान्नित्यमतन्द्रितः ।
तथा द्रव्यविशेषांश्च दद्यात् पात्रविशेषतः ॥
आर्त्तानामन्नदानञ्च गोदानञ्च कुटुम्बिनाम् ।
तथा प्रतिष्ठाहीनानां क्षेत्रदानं प्रशस्यते ॥
सुवर्णं याज्ञिकानाञ्च विद्याञ्चैवोर्द्धरेतसाम् ।
कन्याञ्चैवानपत्यानां ददतां गतिरुत्तमा ॥

विष्णुधर्म्मोत्तरात् । युद्धोपकरणं द्रव्यं क्षत्रिये द्विजपुङ्गवाः ।
पण्योपयोगि तद्वैश्ये शूद्रे शिल्पोपयोगि च ॥
यस्योपयोगि यद्द्रव्यं देयं तस्यैव तद्भवेत् ।
येन येन च भाण्डेन यस्य वृत्तिरुदाहृता ॥
तत्तत्तस्यैव दातव्यं पुण्यकामेन धीमता ।
दण्डं कृष्णाजिनञ्चैव तथा विप्राः कमण्डलुम् ॥
धीरं पुण्यमवाप्नोति दत्त्वैतान् ब्रह्मचारिणः ।
वस्त्रं शय्यासनं धान्यं वेश्म वेश्मपरिच्छदम् ॥
गृहस्थाय तु तद्दत्तं श्रेयं बहुफलं सदा ।
नीवारं वल्कलं शाकं फलं मूलञ्च गोरसम् ॥

वानप्रस्थाय यद्दत्तमनन्तं परिकीर्त्तितम् ।
भिक्षाप्रदानं यतये पात्रदानं तथाहितम् ॥
गन्ध-मङ्गल्य-ताम्बूल-रक्तवस्त्रादिकं स्त्रियः ।
स्त्रीणां प्रदानं दातव्यं भर्त्तृहस्ते तु नान्यथा ॥
प्रोक्तं संग्रहणं ह्येतद्दत्तं भर्त्तुः प्रयच्छतः ।
अन्नं प्रतिश्रयश्चैव पान्थे दत्तं महाफलम् ॥
विवाहादिक्रियाकाले तत्क्रियासिद्धिकारणम् ।
यः प्रयच्छति धर्म्मज्ञः सोऽश्वमेधमवाप्नुयात् ॥
आतुरेभ्यो धनं दत्त्वा दानं बहुफलं भवेत् ।
बालक्रीड़नकं दत्त्वा मृष्टमन्नं तथैव च ॥
फलं मनोहरं वापि अग्निष्टोमफलं लभेत् ।
मृष्टान्नं मानवो दत्त्वा मृष्टान्नानि तु काङ्क्षताम् ॥
अक्षयं फलमाप्नोति स्वर्गलोकञ्च गच्छति ।
श्रीविहीने तथा दत्त्वा भोजनं द्विजसत्तम ॥
वस्त्रं शुभ्रम्बा धर्म्मज्ञः पुण्यं महदुपाश्नुते ।
कृपास्थानं परं विप्रा विच्युताः पुरुषाः श्रिया ॥
तस्यानुकम्पा कर्त्तव्या सतां वर्त्मनि तिष्ठता ।
कार्य्यं सत्यधमं कृत्वा परेषां समुपस्थिते ॥
अक्षयं फलमाप्नोति नात्र कार्य्या विचारणा ।
यवसानां प्रदानेन धेनुमत्सु द्विजातिषु ॥
लवणानाञ्च धर्म्मज्ञाः फलमक्षयमश्नुते ।
प्रसवेषु तु यद्दत्तं व्यसनार्त्तिभयेषु च ॥
तद्दानमक्षयं प्रोक्तं पुरुषस्य विपश्चितः ॥

दत्त्वा ब्राह्मणशार्दूल जलपात्रमथार्थिने।
फलमक्षयमाप्नोति नात्र कार्य्या विचारणा॥
अङ्गिराः। देवतानां गुरूणाञ्च मातापित्रोस्तथैव च।
पुण्यं देयं प्रयत्नेन नापुण्यं नोदितं क्वचित्॥
नन्दिपुराणे। पापदः पापमाप्नोति नरो लक्षगुणं सदा।
पुण्यदः पुण्यमाप्नोति शतशोऽथ सहस्रशः॥
तथा पात्रविशेषेण दानं स्यादुत्तरोत्तरम्।
पितृ-मातृ-गुरु-ब्रह्मवादिनां दीयते तु यत्॥
तल्लक्षगुणितं विद्यात् पुण्यस्वा पापमेववा॥
वह्निपुराणे। द्वाविमौ पुरुषौ लोके सूर्य्यमण्डलभेदिनौ।
दाताक्षस्य च दुर्भिक्षे सुभिक्षे हेम-वस्त्रदा॥

अथ अदेय निरूपणम्॥

देवलः। अन्यायाधिगतां दत्त्वा सकलां पृथिवीमपि।
श्रद्धावर्ज्जमपात्राय न काञ्चिद्भूतिमाप्नुयात्॥
वह्निपुराणात्। अन्यायोपगतं द्रव्यं गृहीत्वा यो ह्यपण्डितः।
धर्म्माभिकाङ्क्षी यजते न धर्म्मफलमश्नुते॥
धर्म्मवैतंसिको यस्तु पापात्मा पुरुषस्तथा।
ददाति दानं विप्रेभ्यो लोकविश्वासकारणम्॥
पापेन कर्म्मणा विप्रो धनं लब्ध्वा निरंशकः।
राग-मोहा-न्वित स्वान्तः कलुषां योनिमाप्नुयात्॥
अर्थसञ्चयबुद्धिर्हि लोभ-मोह-वशंगतः।
उद्वेजयति भूतानि हिंसया पापचेतनः॥
एवं लब्ध्वा धनं लोभात् यजते यो ददाति च।

स पापकर्म्मणा तेन न सिध्यति पुरागमात् ॥

तथा। एतैरन्यैश्च बहुभिरन्यायोपार्ज्जितैर्धनैः।

आरभ्यन्ते क्रिया यास्तु पिशाचास्तत्र दैवतम् ॥

वृद्धशातातपः। द्रव्येणान्यायलब्धेन यः करोत्यौर्द्ध्वदेहिकम्।

न स तत्फलमाप्नोति तस्यार्थस्य दुरागमात् ॥

स्कन्दपुराणे। देवद्रव्यं गुरुद्रव्यं द्रव्यं चण्डेश्वरस्य च।

त्रिविधं पतनं दृष्टं दान-लङ्घन-भक्षणात् ॥

यमः। अपहृत्य परस्यार्थं दानं यस्तु प्रयच्छति।

स दाता नरकं याति यस्यार्थस्तस्य तत्फलम् ॥

तथा। परिभुक्तमवज्ञातमपर्य्याप्तमसंस्कृतम्।

यः प्रयच्छति विप्रेभ्यस्तद्भस्मन्यवतिष्ठते ॥

'परिभुक्तं' गृहीतोपयोगं वस्त्रादि।

'अपर्य्याप्तं' स्वकार्य्याक्षमं जरद्गवादि।

शातातपः। वेद-विक्रयनिर्द्दिष्टं स्त्रीषु यच्चार्जितं धनम्।

अदेयं पितृदेवेभ्यो यच्च क्लीबादुपागतम् ॥

(वेदविक्रयो निर्द्दिश्यते व्यपदिश्यते यत्तत्तथा)।

(निर्व्विष्टमितिपाठे वेदविक्रयाल्लब्धमित्यर्थः)।

'स्त्रीषु यच्चार्जितमिति' स्त्रीव्यापारोपजीवनेन-

यल्लब्धम्। स्त्रीषु विक्रीतास्विति केचित्।

दक्षः। सामान्यं याचितं न्यास आधिर्दाराश्च तद्धनम्।

अन्वाहितञ्च निक्षेपः सर्व्वस्वञ्चान्वये सति ॥

आपत्स्वपि न देयानि नव वस्तूनि पण्डितैः।

यो ददाति स मूढ़ात्मा प्रायश्चित्तीयते नरः ॥

'सामान्यं' अनेकस्वामिकम् । 'याचितं संव्यवहारार्थं याचित्वानीतं वस्त्रालङ्कारादि । 'गृहस्वामिने अदर्शयित्वा तत्परोक्षमेव गृहस्वामिने अर्पणीयमिति गृहजनहस्ते स्थापितं द्रव्यं 'न्यासः' । 'आधिः' प्रसिद्धा, । 'दाराः' कलत्रं । 'तद्धनं' दारधनम् । तच्च व्याख्यातं मनुना ।

अध्यग्न्यध्यावाहनिकं दत्तञ्च प्रीतिकर्म्मणि ।
भ्रातृ-मातृ-पितृ-प्राप्तं षड्विधं स्त्रीधनं स्मृतम् ॥

'अध्यग्नि' अग्निसमक्षं यत् स्त्रियै दत्तम् ।
'अध्यावाहनिकं' विवाहकाले पित्रादिदत्तम् ।
'प्रीतिकर्म्मणि' स्त्रीपुंसम्बन्धेन भर्त्रार्पितम्
विवाहोत्तरकालेपि भ्रात्रादिभ्यः 'प्राप्तम्' ।

याज्ञवल्क्योप्याह । भ्रातृ-मातृपितृ-पतिप्राप्तमध्यग्न्युपागतम् ।
आधिवेदनिकञ्चैव स्त्रीधनं परिकीर्त्तितम् ॥

'दारान्तरमिच्छता भर्त्रा यद्दत्तं' 'तदाधिवेदनिकं' एवं प्रकारं स्त्रीधनं न देयमिति । 'अन्वाहितं' यदेकस्य हस्ते निहितं द्रव्यं तेनाप्यनु पश्चादन्यस्य हस्ते स्वामिने देहीति निहितम् । गृहस्वामि समक्षं स्थापितं द्रव्यं 'निक्षेपः' ।

कात्यायनः । विक्रयश्चैव दानञ्च न नेयाः स्युरनिच्छवः ।
दाराः पुत्राश्च सर्व्वस्वमात्मनैव तु योजयेत् ॥
आपत्काले तु कर्त्तव्यं दानं विक्रय एव वा ।
अन्यथा न प्रवर्त्तन्त इति शास्त्रस्य निश्चयः ॥

( आपत्काले तु कर्त्तव्यं दानं विक्रय एववेति स्वकीयदानविक्रयेच्छुदारादिविषयम् ) ।

यत्तु दाराणां, आपत्स्वपि न देयानीतिदक्षेणादेयत्वमुक्तं तत् स्वदान-विक्रयानिच्छुदारादिविषयम्।

वशिष्ठः। शुक्र-शोणितसम्भवः पुरुषो मातापितृनिमित्तक स्तस्य प्रदान-विक्रय-परित्यागेषु मातापितरौ प्रभवतः नत्वेकं पुत्रं दद्यात् प्रतिगृह्णीयाद्वा स हि सन्तानाय पूर्व्वेषां न तु स्त्री पुत्रं दद्यात् प्रतिगृह्णीयाद्वा अन्यत्रानुज्ञानाद्भर्त्तुः।

बृहस्पतिः। कस्मैचिद्याचमानाय दत्तं धर्म्माय यद्भवेत्।
पश्चाच्च न तथा तत्स्यान्न देयं तस्य तद्भवेत्॥

(धर्म्मं कर्त्तुं याचमानाय यद्दत्तं तेन चेदसौ धर्म्मं न कुर्य्यात्तदा तत्तस्मै न देयमित्यर्थः)।

अङ्गिराः। बहुभ्यो न प्रदेयानि गौर्गृहं शयनं स्त्रियः।
विभक्तदक्षिणा ह्येता दातारं तारयन्ति हि॥
एका एकस्य दातव्या न बहुभ्यः कथञ्चन।
दातुर्व्विक्रयमापन्ना दहत्यासप्तमं कुलम्॥

(विक्रेतुरेवैतद्दोषप्रदर्शनं न प्रकृतस्य दातुरिति)।

औपकायनः। कन्या-शय्या-गृहञ्चैव देयं यद्दोस्त्रियादिकम्।
तदेकस्मै प्रदातव्यं न बहुभ्यः कथञ्चन।

व्यासः। न व्यङ्गां रोहिणीं वन्ध्यां न कृशां मृतवत्सकाम्।
न वामनां वेहतञ्च दद्याद्विप्राय गां नरः॥
'वेहत्' गर्भोपघातिनी।

देवलः। विवत्सां रोगिणीं रूक्षां स्थविरां शृङ्गभीषणीम्।
क्षीण-क्षीरशरीराङ्गां दत्त्वा दोषमवाप्नुयात्॥

कात्यायनः। न चोषरां न निर्द्दग्धां महीं दद्यात् कथञ्चन।

न श्मशानपरीताञ्च न च पापानिषेविताम् ॥

'पापाः' हिंस्रप्राणिनो व्याघ्रादयः ।

विष्णुधर्म्मोत्तरे । सोशीरां तस्कराकीर्णां तथा व्यालवतीं भुवम् ।

न दद्यात्तु द्विजश्रेष्ठो या च सन्धिषु संस्थिता ॥

स्कन्दपुराणे । पापदः पापमाप्नोति नरो लक्षगुणं सदा ।

तस्मान्न दद्यान्मेधावी पातकं जातु कस्यचित् ॥

महाभारते । दुःखितेभ्यो हि भूतेभ्यो मृत्यु-रोग-जरादिभिः ।

भूयः को दुःखमपरं सघृणो दातुमर्हति ॥

दुःखं ददाति योऽन्यस्य ध्रुवं दुःखं स विन्दति ।

तस्मान्न कस्यचिद्दुःखं दातव्यं दुःखभीरुणा ॥

अथ पात्रविशेषेण देयमुच्यते ।

यमः । सुवर्णं रजतं ताम्रं यतिभ्यो यः प्रयच्छति ।

न तत्फलमवाप्नोति तत्रैव परिवर्त्तते ॥

'परिवर्त्तः' विपर्य्ययः 'एवशब्दः' अप्यर्थः तेन 'तत्र' तस्मिन् दातर्य्यपि परिवर्त्तते, धर्म्मविपरीतं धर्म्मं जनयतीत्यर्थः ।

तथाचोक्तं । यतये काञ्चनं दत्त्वा दातापि नरकं व्रजेदिति ॥

देवलः । पक्वमन्नं गृहस्थस्य वानप्रस्थस्य गोरसः ।

वृत्तिश्च भिक्षुवृत्तिभ्यो न देयं पुण्यमिच्छता ॥

'वृत्तिः' भिक्षातिरिक्तं वर्त्तनम् ।

तथा । न शूद्राय हविर्दद्यात् स्वस्ति क्षीरं तिलान् मधु ।

न शूद्रात् प्रतिगृह्णीयात्तेषामन्यन्निवेदयेत् ॥

गोरसं काञ्चनं क्षेत्रं गास्तिला मधु-सर्पिषी ।

तथा सर्व्वान्नमांसापि चण्डालेभ्यो न दीयते ॥

'स्वस्ति न दद्यादिति' प्रणाममन्तरेण शूद्रस्य स्वस्तीति न ब्रूयादित्यर्थः। 'तेषामिति' चोरादीनां क्रयार्थं मन्यद्द्रव्यं निवेदयेदित्यर्थः।

शङ्खलिखितौ। कृशरं पायसं यावं दधि-मधु-कृष्णाजिनानि
शूद्रेभ्यो न दद्यान्नोपाकृतं किञ्चित्॥

विष्णुधर्म्मोत्तरात्। भुवं धेनुमथाश्वञ्च रत्नानि कनकन्तथा।
तिलांश्च कुञ्जरं दद्यान्नाविज्ञाय गुणागुणान्॥

अथ ग्राह्यमुच्यते। तत्रव्यासः।
कुटुम्बार्थं हि सच्छूद्रात् प्रतिग्राह्यमयाचितम्।
वृत्त्यर्थमात्मने चैव न हि याचेत कर्हिचित्॥

स्कन्दपुराणे। दुर्भिक्षे दारुणे प्राप्ते कुटुम्बे सीदति क्षुधा।
असाधोरपि गृह्णीयात् प्रतिग्रहमतन्द्रितः॥
ऋणापाकरणार्थञ्च प्रतिग्राह्यं द्विजोत्तमैः।
चिकीर्षया तु यज्ञस्य मातापित्रर्थमेव च॥
गृह्णीयाद्ब्राह्मणादेव नित्यमाचारवर्त्तिनः।
श्रद्धया विमलं दत्तं तथा धर्म्मो न हीयते॥
अब्राह्मणकृताद्दानाद्विशुद्धादपि सर्व्वतः।
ब्राह्मणेन कृतं ग्राह्यं निषिद्धमपि जानता॥
'निषिद्धमपि' अनापदि निषिद्धं कृष्णाजिनादि।

ब्रह्माण्डपुराणात्। अनापद्यतिधर्म्मेण याज्यतः शिष्यतस्तथा।
गृह्णन् प्रतिग्रहं विप्रो न धर्म्मात् परिहीयत॥
समा-षण्मास-मासैक-षड़ह-त्रिदिनक्षमम्।
एकाह्निकं वा धर्म्माय गृह्णीयादुत्तरोत्तरम्॥

गारुड़पुराणात् ।　यावता पञ्चयज्ञानां कर्त्तुं निर्वहणं क्षमः ।
तावदेव हि गृह्णीयात् कुटुम्बस्यात्मनस्तथा ॥
यद्गृहीतमनिन्द्येभ्यः श्रद्धापूतञ्च यद्भवेत् ।
दानं प्रतिग्रहीतारं तारयत्येव तद्ध्रुवम् ॥
द्रव्यराशिरपि श्रेयाननिन्द्यात् प्रतिगृह्णताम् ।
निन्द्यस्य द्रव्यलेशोपि निरयायैव जायते ॥
बृहस्पतिः ।　अपि पापकृतां राज्ञां प्रतिगृह्णन्ति साधवः ।
पृथिवीं नान्यदिच्छन्ति पावनं ह्येतदुत्तमम् ॥
ब्रह्मवैवर्त्तात् ।　पितृ-मातृ-गुरोरर्थे-विवाहार्थञ्च धर्म्मतः ।
अध्वरार्थञ्च विदुषा ग्रहीतव्यं धनं सदा ॥
गृह्णन् गो-भू-हिरण्यादि तथा नैव विचारयेत् ।
कृतान्नन्तु ग्रहीतव्यं बहुशः सुपरीक्षितम् ॥
सम्वर्त्तः ।　गृहस्थस्तु सदा युक्तो धर्म्ममेवानुचिन्तयेत् ।
पोष्यवर्गार्थसिद्ध्यर्थं धनमिच्छेत बुद्धिमान् ॥
तथा ।　अयाचिताहृतं ग्राह्यमपि दुष्कृतकर्म्मणः ।
अन्यत्र कुलटा-षण्ड-पतितेभ्यस्तथा द्विषः ॥
याज्ञवल्क्यः ।　राजा-न्तेवासि-याज्येभ्यः सीदन्निच्छेद्धनं क्षुधा ।
दम्भि-हैतुक-पाषण्डि-बकवृत्तींश्च वर्ज्जयेत् ॥
तथा ।　देवा-तिथ्य-र्च्चन-कृते गुरु-भृत्यादिवृत्तये ।
सर्व्वतः प्रतिगृह्णीयादात्मवृत्त्यर्थमेव च ॥
'सर्व्वतः' शूद्रादेरपि । 'आत्मवृत्तिः' शरीरधारणमात्रं न तु तृप्तिः ।
तथा विष्णुः ।　गुरून् भृत्यांश्चोज्जिहीर्षन्नर्च्चिष्यन् देवता-तिथीन् ।
सर्व्वतः प्रतिगृह्णीयात् न तु तृप्येत् स्वयन्ततः ॥

अङ्गिराः। गुर्व्वर्थमतिथीनाञ्चा भृत्यानाञ्च विशेषतः।
शूद्रान्नं प्रतिगृह्णीयात् न तु भुञ्जीत स्वयन्ततः॥
मनुः।* आहृतामुद्यतां भिक्षां पुरस्तादप्रचोदिताम्।
मेने प्रजापतिर्ग्राह्यामपि दुष्कृतकर्म्मणः॥
नाश्नन्ति पितरस्तस्य दशवर्षाणि पञ्च च।
न च हव्यं वहत्यग्निर्यस्तामभ्यवमन्यते॥
याज्ञवल्क्यः। कुशाः शाकं पयो मत्स्या गन्धाः पुष्पं दधि क्षितिः।
मांसं शय्या-सनं धानाः प्रत्याख्येयं न वारि च॥
मनुः। शय्यां गृहान् कुशान् गन्धान् पयः पुष्पं महीं दधि।
मत्स्या धानाः पयो मांसं शाकञ्चैव † न निर्लुठेत्॥
तथा। एधो-दकं मूल-फलमन्नमभ्युद्यतञ्च यत्।
सर्व्वतः प्रतिगृह्णीयान्मधु चाभयदक्षिणाम्॥
'एधः' काष्ठं। 'अभ्युद्यतं' अयाचितागतम्।
अङ्गिराः। खल-क्षेत्रगतं धान्यं वापी-कूपगतं जलम्।
अदद्भ्योऽपि तद्ग्राह्यं यच्च गोष्ठगतं पयः॥
पक्वान्नवर्ज्जं विप्रेभ्यो गो-धान्यं क्षत्रियादपि।
वैश्यात्तु सर्व्वधान्यानि शूद्राद्ग्राह्यं न किञ्चन॥
(अभोज्यान्नविप्रादिविषयमेतत्)।
यत्तु क्षेत्रगतं धान्यं खले वाथगृहाद्बहिः।
सर्व्वकालं ग्रहीतव्यं शूद्रेभ्योऽप्यङ्गिरोमतम्॥

---

* आहृताभ्युद्यतामिति क्वचित् पाठः।

† न निर्नुदेदिति पाठान्तरम्।

संस्कारैः शुद्धाति ह्येतद्वान्यं तेन शुचि स्मृतम्।
तस्माद्दानं ग्रहीतव्यं मृतसूत्यन्तरेष्वपि॥
'मृतसूत्यन्तरेष्वपीति' तदापद्विषयम्।
आममांसं मधु-घृतं धानाः क्षीरमथोदितम्।
गुड़ं तक्रञ्च संग्राह्यं निवृत्तिनापि शूद्रतः॥
शाक-मत्स्या-रनालानि कन्दुकाः सक्तवस्तिलाः।
इक्षुः फलानि पिण्याकं प्रतिग्राह्याणि सर्वतः॥
'कन्दुकाः' कन्थाः।

बृहस्पतिः। विवाहोत्सव-यज्ञेषु त्वन्तरामृत-सूतके।
सर्व्वं संकल्पितं ग्राह्यं न दोषः परिकीर्त्तितः॥

शङ्खः। कुमारप्रसवे नाड्यामच्छिन्नायां गुड़-तिल-हिरण्य वस्त्र-गो-धान्य-प्रतिग्रहेष्वदोषः॥ तदह इत्येके।

आह प्रचेताः। सर्व्वेषां सकुल्यानां द्विपद-चतुष्पद-धान्य-वासो-दक्षिणाप्रतिग्रहेष्वदोषः।

विष्णुधर्म्मोत्तरात्। ग्राह्यं प्राणप्रदानन्तु चण्डालात् पुक्कसादपि।
जीवन् सर्व्वमवाप्नोति जीवन् धर्म्मं करोति च।
शरीरं धर्म्मसर्व्वस्वं रक्षणीयं प्रयत्नतः॥

अथाग्राह्यमुच्यते।

ब्रह्मपुराणे। ब्राह्मणः प्रतिगृह्णीयात् वृत्त्यर्थं साधुतः सदा।
अव्य-श्व-मणि-मातङ्ग-तिल-लोहांश्च वर्जयेत्॥
कृष्णाजिन-तिलग्राही न भूयः पुरुषो भवेत्।
शय्या-लङ्कार-वस्त्राणि प्रतिगृह्य मृतस्य च॥

नरकान्न निवर्त्तेत धेनुं तिल-महीन्तथा ॥
बहुशो द्विजवित्तानामपि स्तेयं तरिष्यति ॥
आतुराद्यद्गृहीतन्तु तत् कथं निस्तरिष्यति ॥
'आतुरात्' मुमूर्षोः।

वह्निपुराणात्। हस्त्य-श्व-रथ-यानानि मृतशय्या-सनादि यत्।
कृष्णाजिनञ्च गृह्णाति अनापत्सु गतो द्विजः॥
तथोभयमुखीं घोरां सशैलां मेदिनीं द्विजः।
कुरुक्षेत्रे च यद्दानं चण्डालात् पतितात्तथा।
मासिकेपि नवश्राद्धे भुञ्जन् प्रेतत्वमाप्नुयात् ॥

स्कन्दपुराणे। अजिनं मृतशय्याञ्च शृङ्गीञ्चोभयतोमुखीम्।
कुरुक्षेत्रे च गृह्णानो न भूयः पुरुषोभवेत् ॥

पद्मपुराणे। ब्रह्माण्डं भूमिदानञ्च ग्राह्यं नैकेन तद्भवेत्।
गृह्णन् दोषमवाप्नोति ब्रह्महत्यां न संशयः ॥

'भूमिदानमिति' षोडशमहादानान्तर्गतकाञ्चनमेदिनीदान विषयमेतत्।

वशिष्ठः। शस्त्रं विषं सुरा वा प्रतिग्राह्याणि ब्राह्मणस्य ॥

भिक्षाग्रहणमधिकृत्य मनुः।
चिकित्सक-कृतघ्नानां शल्यकर्त्तुश्च वार्द्धुषेः।
षण्डस्य कुलटायाश्च उद्यतामपि वर्जयेत् ॥
(भिक्षामितिशेषः)। 'चिकित्सकोऽत्र' कुवैद्यः।
'षण्ढः' क्लीवः। 'कुलटा' पुंश्चली।

यमः। चिकित्सकस्य मृगयोर्व्वेश्यायाः कितवस्य च।
षण्डनर्त्तकयोश्चैव उद्यतां परिवर्जयेत् ॥

'मृगयुः' मृगहन्ता ।

आह वसिष्ठः । चिकित्सकस्य मृगयोः शल्यकर्त्तुश्च पाशिनः ।

षण्डस्य कुलटायाश्च उद्यतापि न गृह्यते ॥

'चिकित्सकस्य शल्यकर्त्तुर्मृगयोः पाशिनइति' यथाक्रमं विशेषणद्वयं योजनीयमिति केचित् ।

विष्णुः । एतेष्वपि च कार्य्येषु समर्थः सन् प्रतिग्रहे ।

नादद्यात् कुलटा-षण्ड-पतितेभ्य स्तथा द्विषः ॥

'एतेष्विति' पूर्वोक्तेषु गुरु-देवता-तिथिपूजादिष्वित्यर्थः ।

मनुः । नेहेतार्थं प्रसङ्गेन न विरुद्धेन कर्म्मणा ।

* न विद्यमानेष्वर्थेषु नार्त्त्यामपि यतस्ततः ॥

याज्ञवल्क्यः । न स्वाध्यायविरोध्यर्थमीहेत न यतस्ततः ।

न विरुद्धप्रसङ्गेन सन्तोषी च भवेत् सदा ॥

तथा । प्रतिग्रहे सूनी-चक्री-ध्वजी-वेश्या-नराधिप ।

दुष्टा दशगुणं पूर्व्वपूर्व्वादेको यथोत्तरम् ॥

'सूना' प्राणिहिंसा सा विद्यते यस्यासौ सूनी प्राणिहिंसापरः । 'चक्री' तैलिकः । 'ध्वजी' सुरायाः कर्त्ता ।

सम्वर्त्तः । राजप्रतिग्रहो घोरो मध्वास्वादो विषोपमः ।

पुत्रमांसं वरं भुक्तं न तु राजप्रतिग्रहः ॥

स्कन्दपुराणे । राजप्रतिग्रहपुष्टः पुनर्जन्म न विन्दति ।

ब्राह्मण्यं यः परित्यज्य द्रव्यलोभेन मोहितः ॥

विषयामिषलुब्धस्तु कुर्य्याद्राजप्रतिग्रहम् ।

नरके रौरवे घोरे तस्येह पतनं ध्रुवम् ॥

---

* नकल्पमानेष्वितिपाठान्तरम् ।

वृक्षा दावाग्निना दग्धाः प्ररोहन्ति घनागमे।
राजप्रतिग्रहैर्दग्धा न प्ररोहन्ति कर्हिचित्॥
तथा। राजप्रतिग्रहो घोरो रौद्रः पापो भयानकः।
नरके यातनां घोरां कः सोढुं शक्तिमान् भवेत्॥
तथा। ब्रह्मर्षि-गालवश्चाहं कुरुक्षेत्रे पुरा स्थितः।
अश्वप्रतिग्रहान्नूनमश्वयोनिं समाश्रितः॥
दावाग्निना च यो दग्ध उदकात् स प्ररोहति।
प्रतिग्रहेण यो दग्धः स दग्धो न प्ररोहति॥
मनुः। न यज्ञार्थं धनं शूद्राद्विप्रो भिक्षेत कर्हिचित्।
भिक्षित्वा यजमानो हि चण्डालः प्रेत्य जायते॥
ये शूद्रादधिगम्यार्थमग्निहोत्रमुपासते।
सर्वे ते ब्राह्मणा निन्द्या ब्रह्मवादिषु गर्हिताः॥
तथा। हिरण्यं भूमिमश्वं गामन्नं वासस्तिलान् घृतम्।
अविद्वान् प्रतिगृह्णानो भस्मी भवति दारुवत्॥
अतपास्त्वनधीयानः प्रतिग्रहरुचिर्द्विजः।
अम्भस्यश्मप्लवेनेव सह तेनैव मज्जति॥
तस्मादविद्वान् बिभियाद्यस्मात्* कस्मात् प्रतिग्रहात्।
स्वल्पकेनाप्यविद्वान् हि पङ्के गौरिव सीदति॥
याज्ञवल्क्यः। विद्या-तपोभ्यां हीनेन न तु ग्राह्यः प्रतिग्रहः।
गृह्णन् प्रदातारमधो नयत्यात्मानमेव च॥
(ततश्च विद्यातपोरहितेनावसीदतापि बहुहिरण्यादिव्यति-

---

* तस्मादिति क्वचित् पाठः।

रेकेण कुटुम्बभरणमात्रोपयिकाल्पद्रव्यप्रतिग्रहः कर्त्तव्यो न तु तत्रातिप्रशक्तिरिति गम्यते)।

विष्णुधर्म्मोत्तरात्। प्रतिग्रहसमर्थोऽपि प्रसङ्गं तत्र वर्जयेत्।
प्रतिग्रहेण विप्राणां ब्रह्मतेजो विनश्यति॥
न द्रव्याणामविज्ञाय विधिं धर्म्मं प्रतिग्रहे।
प्राज्ञः प्रतिग्रहं कुर्य्यादवसीदन्नपि क्षुधा॥

'विधिः,' मन्त्रेतिकर्त्तव्यताप्रकारलक्षणः।

याज्ञवल्क्यः। प्रतिग्रहसमर्थोऽपि नादत्ते यः प्रतिग्रहम्।
ये लोका दानशीलानां स तानाप्नोति शाश्वतान्॥

इतिद्रव्यनिरूपणम्॥

अथ कालाख्यं दानाङ्गमभिधीयते।

तत्र पुण्यकालस्तावत्।

देवीपुराणे। नित्यो विभुः स्थितः कालो ह्यवस्था तस्य हेतुजा।
निमित्तादिविशेषैः स लोके पुण्यफलप्रदः॥

श्रीमार्कण्डेयपुराणे।

निमेषैर्दशभिः काष्ठाः साष्टाभिश्च कला पुनः॥
त्रिंशत्काष्ठा कलाभिश्च त्रिंशद्भिः स्यान्मुहूर्त्तकम्॥
अहोरात्रं मुहूर्त्तास्तु नृणां त्रिंशत्तु वै स्मृतम्।
त्रिंशता तैरहोरात्रैः पक्षौ द्वौ मास उच्यते।
तैः षड्भिरयनं वर्षं द्वे ते दक्षिणोत्तरे।
तद्देवानामहोरात्रं दिनं तत्रोत्तरायणम्॥

'साष्टाभिर्दशभिः' अष्टादशभिरित्यर्थः।

आहदक्षः। देवकार्य्याणि पूर्व्वाह्णे मनुष्याणाञ्च मध्यमे।

पितृणामपराह्ले च कार्य्याणीति विनिश्चयः॥

अत्र तिथिकालः प्रथममुच्यते।

भविष्य पुराणे। तिथीनां प्रवरा यस्माद्ब्रह्मणा समुदाहृता॥
प्रतिपादिता पदे पूर्व्वं प्रतिपत्तेन चोच्यते।
स्नानंदानं शतगुणं कार्त्तिके या तिथिर्भवेत्॥

स्कन्दपुराणे। आश्विने मासि संप्राप्ते द्वितीया शुक्लकृष्णजा।
दानं प्रदत्तं यत्तस्यामनन्तफलमुच्यते॥

पद्मपुराणे। वैशाखमासि या पुण्या तृतीया शुक्लपक्षजा।
अनन्तफलदा दातुः स्नान-दानादिकर्म्मसु॥

भविष्यपुराणे। शिवा शान्ता सुखा राजंश्चतुर्थी त्रिविधा स्मृता।
मासि भाद्रपदे शुक्ला शिवलोकेषु पूजिता॥
तस्यां स्नानं तथा दानं उपवासो जपस्तथा।
भवेत् सहस्रगुणितं प्रसादाद्दन्तिनो नृप॥
माघमासि तथा शुक्ला या चतुर्थी महीपते।
सा शान्ता शान्तिदा नित्यं शान्तिं कुर्य्यात्सदैव हि॥
स्नान-दानादिकं सर्व्वमस्यामक्षयमुच्यते।
यदा शुक्लचतुर्थ्यान्तु वारो भौमस्य वै भवेत्॥
तदा सा सुखदा ज्ञेया सुखानामेति कीर्त्तिता।
स्नान-दानादिकं सर्व्वमस्यामक्षयमुच्यते॥

स्कन्दपुराणे। शुक्ला मार्गशिरे मासि श्रावणे याच पञ्चमी।
स्नान-दाने बहुफला नागलोकप्रदायिनी॥

भविष्यपुराणे। येयं भाद्रपदे मासि षष्ठी च भरतर्षभ।
स्नान-दानादिकं सर्व्वमस्यामक्षय मुच्यते॥

तथा । शुक्लपक्षस्य सप्तम्यां सूर्य्यवारो भवेद्यदि ।
सप्तमी विजया नाम तत्र दत्तं महाफलम् ॥
शुक्लपक्षस्य सप्तम्यां नक्षत्रं पञ्चतारकम् ।
यदा च स्यात्तदा ज्ञेया जयानामेति सप्तमी ।
स्नान-दानादिकं तस्यां भवेत् शतगुणं विभो ॥
'पञ्च तारकमिति, रोहिण्य-श्लेषा-मघा-हस्तस्य ।
या मार्गशीर्षमासस्य शुक्लपक्षे तु सप्तमी ।
नन्दा सा कथिता वीर सर्व्वानन्दकरी स्मृता ।
स्नान-दानादिकं सर्व्वमस्यामक्षय मुच्यते ॥

आदिपुराणे । रेवती यत्र सप्तम्यामादित्यदिवसे भवेत् ।
तद्दानं शत-साहस्रमिति प्राह दिवाकरः ॥

भविष्यपुराणे । पौषे मासि यदा देवि शुक्लाष्टम्यां बुधो भवेत् ।
तदा तु सा महापुण्या महारुद्रेति कीर्त्तिता ॥
तस्यां स्नानं महादानं तर्पणं विप्रभोजनम् ।
मत्प्रीतये कृतं देवि शत-साहस्रिकं भवेत् ॥

महाभारते । अष्टकासु च यद्दत्तं तदनन्तमुदाहृतम् ॥

आश्वलायनः । हेमन्त-शिशिरयोश्चतुर्णामपरपक्षाणामष्टमीष्वष्टका इति ॥

तथा शतपथश्रुतिः । द्वादश पौर्णमास्यो द्वादशाष्टका द्वादशामावास्या इति ॥

'द्वादशापि' कृष्णाष्टम्य इत्यर्थं ॥

देवीपुराणे । आश्विनस्य तु मासस्य नवमी शुक्लपक्षजा ।
जायते कोटिगुणितं दानं तस्यां नराधिप ॥

गरुड़पुराणे। ज्यैष्ठस्य शुक्लदशमी सम्वत्सरमुखी स्मृता।
तस्यां स्नानं प्रकुर्व्वीत दानञ्चैव विशेषतः॥
एकादश्यां सिते पक्षे पुष्यर्क्षं यत्र सत्तम।
तिथौ भवति सा प्रोक्ता विष्णुना पापनाशिनी॥
दानं यद्दीयते किञ्चित् समुद्दिश्य जनार्द्दनम्।
होमो वा क्रियते तस्यां अक्षयं कथितं फलम्॥
मासि भाद्रपदे शुक्ला द्वादशी श्रवणान्विता।
महती द्वादशी ज्ञेया उपवासे महाफला॥
फलं दत्तहुतानाञ्च तस्यां लक्षगुणं भवेत्।
विष्णुधर्म्मोत्तरात्। भाग्यर्क्षसंयुता चैत्रे द्वादशी स्यान्महाफला॥
'भाग्यर्क्षं' पूर्व्वफल्गुनी।
हस्तयुक्ता तु वैशाखे ज्यैष्ठे तु स्वातिसंयुता।
ज्येष्ठायाञ्च तथाषाढ़े मूलोपेता च वैष्णवे॥
'वैष्णवे' श्रावणे मासि।
तथा भाद्रपदे मासि श्रवणेन तु संयुता।
आश्विने द्वादशी पुण्या भवत्याजर्क्षसंयुता॥
'आजर्क्षः' पूर्व्वभाद्रपदाः।
कार्त्तिके रेवतीयुक्ता सौम्ये कृत्तिकया तथा।
'सौम्यः' मार्गशीर्षः।
पौषे मृगशिरोपेता माघे चादित्यसंयुता।
'आदित्यः पुनर्व्वसुः।
फाल्गुने पुष्यसहिता द्वादशी पावनी परा।
नक्षत्रयुक्तास्वेतासु स्नानं दानमुपोषितम्॥

सकृत्कृतं मनुष्याणामक्षय्यफलदायकम् ॥
स्कन्दपुराणे। यस्तु चैत्रत्रयोदश्यां स्नानं दानं समाचरेत्।
फलं शतगुणं तस्य कर्म्मणो लभते नरः ॥
ज्योतिःशास्त्रे। कृष्णपक्षे त्रयोदश्यां मघास्विन्दुः करे रविः।
यदा तदा गजच्छाया श्राद्धे पुण्यैरवाप्यते ॥
चैत्रे चतुर्द्दशी शुक्ला श्रावणप्रोष्ठपादयोः।
माघस्य या कृष्णपक्षे दाने बहुफला हि सा ॥
विष्णुधर्म्मोत्तरात्।
वैशाखी कार्त्तिकी माघी पौर्णिमा तु महाफला।
पौर्णमासीषु सर्व्वासु मासर्क्षसहितासु च ॥
स्नानानामिह दानानां फलं दशगुणं भवेत्।
यस्यां पूर्णेन्दुना योगं याति जीवो महाबलः ॥
पौर्णमासी तु सा ज्ञेया महापूर्व्वा द्विजोत्तम।
स्नानं दानं तथा जाप्यमक्षय्यं तत्तदा स्मृतम् ॥
ब्रह्मपुराणे। आग्नेयन्तु यदा ऋक्षं कार्त्तिक्यां भवति क्वचित्।
महती सा तिथिर्ज्ञेया स्नान-दानेषु चोत्तमा ॥
'आग्नेयमृक्षं' कृत्तिका।
यदा याम्यन्तु भवति ऋक्षं तस्यां तिथौ क्वचित्।
तिथिः सापि महापुण्या ऋषिभिः परिकीर्त्तिता ॥
'याम्यं ऋक्षं' भरणी।
प्राजापत्यं यदा ऋक्षं तिथौ तस्यां नराधिप।
सा महाकार्त्तिकी प्रोक्ता देवानामपि दुर्लभा ॥
'प्राजापत्यं, ऋक्षं' रोहिणी।

व्यासः। अमा वै सोमवारेण रविवारेण सप्तमी।
चतुर्थी भौमवारेण विषुवत्सदृशं फलम्॥
शङ्खोपि। अमावास्या तु सोमे तु सप्तमी भानुना सह।
चतुर्थी भूमिपुत्रेण सोमपुत्रेण चाष्टमी॥
चतस्रस्तिथयस्त्वेतास्तुल्याः सूर्य्यग्रहणादिभिः।
सर्व्वमक्षयमत्रोक्तं स्नान-दान-जपादिकम्॥
महाभारते। अमा सोमे तथा भौमे गुरुवारे यदा भवेत्।
तत् पर्व्वपुष्करं नाम सूर्य्यपर्व्वशताधिकम्॥
शातातपः। अमावस्या सोमवारे सूर्य्यवारे च सप्तमी।
अङ्गारकदिने प्राप्ते चतुर्थी वा चतुर्द्दशी॥
तत्र यः कुरुते कर्म्म शुभम्वा यदि वाशुभम्।
षष्टिवर्षसहस्राणि कर्त्ता तत्फलमश्नुते॥
विष्णुपुराणे। अमावस्या यदा मैत्र विशाखाऋक्षयोगिनी।
श्राद्धे पितृगणस्तृप्तिं तदाप्नोत्यष्टवार्षिकीम्॥
अमावस्या यदा पुष्ये रौद्रर्क्षे वा पुनर्व्वसौ।
द्वादशाब्दीन्तथा तृप्तिं प्रयान्ति पितरोर्च्चिताः॥
'रौद्रर्क्षं' आर्द्रा।
धासवा-जैकपादर्क्षे पितृणां तृप्तिमिच्छता।
वारुणे वाप्यदैवत्ये देवानामपि दुर्लभा॥
'वासवं' धनिष्ठा। 'अजैकपादं' पूर्व्वाभाद्रपदा। 'वारुणं' शततारका। 'आप्यं' पूर्व्वाषाढ़ा।
माघासिते पञ्चदशी कदाचिदुपैति योगं यदि वारुणेन।
ऋक्षेण कालः स परः पितृणां नह्यल्पपुण्यै र्नृप लभ्यतेऽसौ॥

'वारुणं' शततारा।

अथ युगादिप्रभृतयः। तत्र स्कन्दपुराणे।

नवम्यां शुक्लपक्षस्य कार्त्तिके निरगात् कृतम्।

त्रेता सिततृतीयायां वैशाखे समपद्यत॥

दर्शे तु माघमासस्य प्रवृत्तं द्वापरं युगम्।

कलिः कृष्णत्रयोदश्यां नभस्ये मासि निर्गतः।

युगादयः स्मृता ह्येते दत्तस्याक्षयकारकाः॥

ब्रह्मपुराणे। युगारम्भास्तु तिथयो युगाद्यास्तेन कीर्त्तिताः।

फलं दत्तहुतानाञ्च तास्वनन्तं प्रकीर्त्तितम्॥

तथा। एतासतस्रस्तिथयो युगाद्या दत्तं हुतञ्चाक्षयमासु विन्द्यात्।

युगे युगे वर्षशतेन यत्तपो युगादिकाले दिवसेन तद्भवेत्॥

तथा। सूर्य्यस्य सिंहसंक्रान्त्यामन्तः कृतयुगस्य च।

तथा वृश्चिकसंक्रान्त्यामन्तस्त्रेतायुगस्य च॥

ज्ञेयस्तु वृषसंक्रान्त्यां द्वापरान्तस्तु संख्यया।

तथा च कुम्भसंक्रान्त्यामन्तः कलियुगस्य च॥

पद्मपुराणे। युगादिषु युगान्तेषु स्नान-दान-जपादिकम्।

यत्किञ्चित् क्रियते तस्य युगान्ताः फलसाक्षिणः॥

आदित्यपुराणे। दिनर्क्षं रेवती यत्र गमनञ्चैव राशिषु।

युगान्तदिवसं विद्धि तत्र दानमनन्तकम्॥

ग्रहोपरागे विषुवे सौम्ये वा मिहिरोपदिः।

सप्तमी शुक्ला-कृष्णा वा युगान्तदिवसं विदुः॥

'मिहिरोपदिः' सूर्य्यग्रहः।

मनुः। सहस्रगुणितं दानं भवेद्दत्तं युगादिषु।

कर्म्म-श्राद्धादिकञ्चैतत्तथा मन्वन्तरादिषु ॥

मत्स्यपुराणे। अश्वयुक्शुक्लनवमी द्वादशी कार्त्तिकस्य तु।

चैत्रस्य तु तृतीया या तथा भाद्रपदस्य तु।

फाल्गुनस्य त्वमावास्या पौषस्यैकादशी तथा।

श्रावणस्याष्टमी कृष्णा तथाषाढस्य पौर्णिमा।

आषाढस्य तु दशमी माघमासस्य सप्तमी।

कार्त्तिकी फाल्गुनी चैत्री ज्यैष्ठे पञ्चदशी तथा।

मन्वन्तरादयश्चैता दत्तस्याक्षयकारकाः ॥

स्नानं दानं जपो होमः स्वाध्याय-पितृतर्पणम्।

सर्व्वमेवाक्षयं विन्यात् कृतं मन्वन्तरादिषु ॥

(अत्रामावस्याष्टमीव्यतिरेकेण सर्व्वाः शुक्ला एव)। (पुराणान्तरेण तु श्रावणस्यामावस्या भाद्रपदस्य कृष्णाष्टमी मन्वन्तरादिरिति प्रतिपादितम्)।

तद्यथा। आश्विने शुक्लनवमी द्वादशी कार्त्तिके तथा।

तृतीया चैत्रमासस्य तथा भाद्रपदस्य च।

श्रावणस्याप्यमावस्या पौषस्यैकादशी तथा।

आषाढस्यापि दशमी माघमासस्य सप्तमी।

नभस्यस्याष्टमी कृष्णा तथाषाढी च पूर्णिमा।

कार्त्तिकी फाल्गुनी चैत्री* ज्यैष्ठी पञ्चदशी तथा।

मन्वन्तरादयश्चैता दत्तस्याक्षयकारकाः ॥

अथ व्यतीपातादिकालाः।

---

* ज्यैष्ठी पञ्चदशीषितेति क्वचित्पाठः।

याज्ञवल्क्यः। शतमिन्दुक्षये* दानं सहस्रन्तु दिनक्षये।
विषुवे शतसाहस्रं व्यतीपाते त्वनन्तकम्॥

वाराहपुराणे। दर्शे शतगुणं दानं तच्छतघ्नं दिनक्षये।
शतघ्नं तस्य संक्रान्तौ शतघ्नं विषुवे ततः।
युगादौ तच्छतगुणमयने तच्छताहतम्॥
सोमग्रहे तच्छतघ्नं तच्छतघ्नं रविग्रहे।
असंख्येयं व्यतीपाते दानं वेदविदो विदुः॥
'शतघ्नं' शतगुणमित्यर्थः।

तथा। उत्पत्तौ लक्षगुणं कोटिगुणं भ्रमणनाड़िकायान्तु।
अर्बुदगुणितं पतने जप-दानाद्यक्षयं पतिते।
उत्पत्त्यादिमानमुक्तं ज्योतिःशास्त्रे।
विंशतिर्द्वियुतोत्पत्तौ भ्रमणे चैकविंशतिः।
पतने दशनाडास्तु पतिते सप्त नाड़िकाः॥
(व्यतीपातोऽत्र विष्कुम्भादियोगेषु सप्तदशयोगः)।
(वृद्धमनुना तु प्रकारान्तरेण व्यतीपातो दर्शितः)।
श्रवणा-श्वि-धनिष्ठा-र्द्रा-नागदैवत-मस्तके।
यद्यमा रविवारेण व्यतीपातः स उच्यते॥
'नागदैवतम्' अश्लेषा। 'मस्तकं' प्रथमचरणाः।
(मस्तकइति श्रवणादिभिः प्रत्येकं सम्बध्यते)।
(शास्त्रान्तरेऽन्योपि व्यतीपात उक्तः)।
पञ्चाननस्थौ गुरु-भूमिपुत्रौ मेषे रविः स्याद्यदि शुक्लपक्षे।

---

* पुण्यमिति पाठान्तरम्।

पाशाभिधाना करभेण युक्ता तिथिर्व्यतीपात इतीह योगः॥
अस्मिन् हि गो-भूमि-हिरण्य-वस्त्र-दानेन सर्व्वं परिहाय पापम्।
शूरत्व मिन्द्रत्वमनामयत्वं मन्वाधिपत्यं लभते मनुष्यः॥

'पञ्चाननः' सिंहः। 'गुरु-भूमिपुत्रौ' बृहस्पत्यङ्गारकौ।
'पाशाभिधाना' द्वादशी। 'करभम्' हस्तनक्षत्रमिति।
(ज्योतिःशास्त्रे तु रवि-चन्द्रयोः संक्रान्तिसाम्ये सूक्ष्मौ 'वैधृत-व्यतीपातौ' दर्शितौ)।

तदाह गालवः। चन्द्रार्कयोर्नयनवीक्षण जातमूर्त्तिः
कालानलद्युतिनिभः पुरुषोतिरौद्रः।
अस्त्रोद्यतो भुवि पतंश्च निरीक्षमाणः
कष्टातयेहमिति च व्यतिपातयोगः॥

आह भृगुः।

क्रान्तिसाम्यसमयः समीरितः सूर्य्य पर्व्वसदृशो मुनीश्वराः।
तत्र दत्त-हुत-जप्त-पूजनं कोटि-कोटि-गुणमाह भार्गवः॥

(अयमर्थः सूर्य्या-चन्द्रमसोः क्रान्तिसाम्ये पुण्यकालद्वयं सम्भवति)। 'एकः' व्यतीपाताख्यः। 'अपरः' वैधृताख्यः।

(तत्र संक्रान्तिसाम्यलक्षणस्य व्यतीपातस्य गण्डोत्तरार्द्धादारभ्य क्रमशः सार्द्धेषु पञ्चसु योगेषु सम्भवोस्ति वैधृत संज्ञस्य तु शुक्रयोगादारभ्य सार्द्धेषु संयोगेषु सम्भवोस्ति वैधृते व्यतीपाते दत्तमक्षयकृद्भवेत्)।

भरद्वाजः। व्यतीपाते वैधृते च दत्तस्यान्तो न विद्यते।
व्यतीपाते विशेषेण स हि सूक्ष्मः प्रकीर्त्तितः॥

(स्थूलप्रकारेण प्रसिद्धस्तु सप्तविंशतितमो योगो वैधृत इति)।

अथोपरागकालः ।

पद्मपुराणे । चन्द्रस्य यदि वा भानो राहुणा सह सङ्गमः ।
उपराग इति ख्यातस्तत्रानन्तफलं स्मृतम् ॥
इन्दोर्लक्षगुणं पुण्यं रवेर्द्दशगुणं भवेत् ।
गङ्गातीरे तु सम्प्राप्ते इन्दोः कोटी रवेर्द्दश ॥
'रवेर्द्दशगुणमिति' लक्षगुणाद्दशगुणमित्यर्थः ।
एवमुत्तरत्रापि ।

तथा । रविवारे रवेर्ग्रासः सोमे सोमग्रहस्तथा ।
चूड़ामणिरिति ख्यातस्तत्रानन्तं फलं स्मृतम् ॥

भरद्वाजः । चन्द्र-सूर्य्योपरागे च यत्कर्त्तव्यं तदुच्यते ।
सर्व्वं हेममयं दानं सर्व्वे ब्रह्मसमा द्विजाः ।
सर्व्वं गङ्गासमं तोयं राहुग्रस्ते दिवाकरे ॥

ऋष्यशृङ्गः । राहुग्रस्ते यदा सूर्य्यो यस्तु श्राद्धं समाचरेत् ।
तेनैव सकला पृथ्वी दत्ता विप्रस्य वै करे ॥

शातातपः । अयनेषु सदा देयं विशिष्टं स्वगृहेषु यत् ।
षड़शीतिमुखेचैव विमोक्षे चन्द्र-सूर्य्ययोः ॥
'विमोक्षे' वर्त्तमाने न तु विमुक्तयोरित्यर्थः ।
उपरागे तु तत्कालमिति स्मरणात् ।

तथाच वशिष्ठः । नाड्यः षोड़श पूर्व्वेण संक्रान्तेस्तु परेण च ।
राहोर्द्दर्शनमात्रेण पुण्यकालः प्रकीर्त्तितः ॥

जावालिरपि । संक्रान्तौ पुण्यकालस्तु षोड़शोभयतः कलाः ।
चन्द्र-सूर्य्योपरागे तु यावद्दर्शनगोचरः ॥

अथ संक्रान्तिकालाः ॥

आह शातातपः।

संक्रान्तौ यानि दत्तानि हव्य-कव्यानि दातृभिः।
तानि नित्यं ददात्यर्कः पुनर्जन्मनि जन्मनि॥
रविसंक्रमणे पुण्ये न स्नायाद्यो हि मानवः।
सप्तजन्मान्तरं रोगी दुःखभागी सदा भवेत॥

वृद्धवशिष्ठः। अयने द्वे च विषुवे चतस्रः षड़शीतयः।
चतस्रो विष्णुपद्यश्च संक्रान्त्यो द्वादश स्मृताः॥
झषकर्कटसंक्रान्ती द्वे तूदग्दक्षिणायने।
विषुवे च तुला-मेषे गोलमध्ये ततो पराः॥

'झषः' मकरः। 'गोलः' राशिचक्रम्।

कन्यायां मिथुने मीने धनुष्यपि रवेर्गतिः।
षड़शीतिमुखा प्रोक्ता षड़शीतिगुणा फलैः॥
वृष-वृश्चिक-कुम्भेषु सिंहे चैव यदा रविः।
एतद्विष्णुपदं नाम विषुवादधिकं फले॥

गालवः। मध्ये विषुवति दानं विष्णुपदे दक्षिणायने चादौ।
षड़शीतिमुखेतीते तथोदगयनं भूरि फलम्॥

(एतच्च फलाधिक्यप्रतिपादनार्थमुक्तम्)।

पर्व्वकालस्तु संक्रान्तेः प्रागूर्द्ध्वञ्च भवेदिति।

तदाह देवलः। संक्रान्तिसमयः सूक्ष्मो दुर्ज्ञेयः पिशितचक्षुणैः।
तद्योगश्चाप्यधश्चोर्द्ध्वं त्रिंशन्नाड्यः पवित्रिताः॥
आसन्नसंक्रमं पुण्यं दिनार्द्धं स्नान-दानयोः।
रात्रौ संक्रमणे भानोर्विषुवत्ययने दिने॥
यायाः सन्निहिता नाड्यस्तास्ताः पुण्यतमाः स्मृताः।

(अयमर्थः सर्व्वास्वपि संक्रान्तिषु अतीतत्वमनागतत्वञ्चा-नादृत्य अत्र दिनार्द्धे अतीता-नागता वा संक्रान्तिः सन्नि-हिता भवति तत्र स्नान-दानादिकं कार्य्यमिति)।

वशिष्ठस्तु विशेषमाह।

त्रिंशत्कर्कटके नाडी मकरे विंशतिः स्मृताः।
वर्त्तमाने तुला-मेषे नाड्यस्तूभयतो दश॥

(अत्र वर्त्तमान उभयतइति च सर्व्वैरेव कर्कटकादिभिः सम्बध्यते)।

षड़शीत्यां व्यतीतायां अष्टिरुक्तास्तु नाड़िकाः।
पुण्याख्या विष्णुपद्याञ्च प्राक् पश्चादपि षोड़श॥

'अष्टिः' षोड़श। 'षड़शीत्यामतीतायामिति' पुण्यभूय-स्त्वाभिप्रायेणैतत्। (षड़शीतिमुखेपि पूर्व्वमपि पुण्यकालस्य प्रतिपादितत्वात्)।

तदुक्तं स्मृत्यन्तरे। विष्णुपद्यां धनुर्म्मीन-नृयुक्कन्यासु वै यदा।
पूर्व्वोत्तरगतौ रात्रौ भानोः संक्रमणं भवेत्॥
पूर्व्वाह्णे पञ्च नाड्यस्तु पुण्याः प्रोक्ता मनीषिभिः।
अपराह्णे तु पञ्चैव श्रौते स्मार्त्ते च कर्म्मणि॥

(अनेन रात्रौ षड़शीत्यामतीतायामुत्तरदिने पूर्व्वाह्णे पञ्च-नाड्यः पुण्या भवन्ति)। भाविन्याञ्च पूर्व्वदिवसे अपराह्णे पञ्च-नाड्यः पुण्या भवन्तीत्युच्यते।

'नृयुक्' मिथुनराशिः।

अह्नि संक्रमणे पुण्यमहः कृत्स्नं प्रकीर्त्तितम्।

रात्रौ संक्रमणे पुण्यं दिनार्द्धं स्नान-दानयोः॥
अर्द्धरात्रादधस्तस्मिन् मध्याह्नस्योपरि क्रिया।
ऊर्द्धं संक्रमणे चोर्द्धमुदयात् प्रहरद्वयम्॥
पूर्णे चेदर्द्धरात्रे तु यदा संक्रमते रविः।
प्राहुर्द्दिनद्वयं पुण्यं मुक्ता मकर-कर्कटौ॥

अयमर्थः पूर्व्वरात्रसंक्रमणे पूर्व्वस्याह्न-उत्तरार्द्धे दानादि-क्रिया। अपररात्रसंक्रमणे तु उत्तरदिवसस्य पूर्व्वाह्णे दानादि क्रिया। अयनरात्र-संक्रमे तु उत्तरदिवसस्य पूर्व्वाह्णे दानादि क्रिया। मध्यरात्रसंक्रमे तु दिनद्वयं पुण्यम्। रात्रौ स्नान-दानादि प्रतिषेधात्। यस्तु संश्रूयते। संक्रान्त्यादिषु रात्रावपि स्नानदानादिकं कुर्य्यादिति तद्दक्षिणोत्तरायणविषयम्। अतएवोक्तम् मुक्ता मकरकर्कटाविति। ततश्च मकर-कर्कटयो रात्रावपि स्नान-दानानुग्रहे या याः सन्निहिता नाड्य इत्यवधेयम्। रात्रौ स्नान-दानादिप्रतिषेधस्तु संक्रान्त्यन्तरे व्यतिष्ठत एवेति।

विषुवादिषु सूक्ष्मपुण्यकालमाह।

गालवः। विषुवे षण्मुहूर्त्तं स्यात् षडशीतिमुखे द्वयम्।
तथा विष्णुपदे त्रीणि पुण्यानि मुनयो विदुः॥

फलमाह भरद्वाजः।

षडशीत्यान्तु यद्दानं यद्दानं विषुवे द्वये।
दृश्यते सागरस्यान्तस्तस्यान्तो नैव विद्यते॥

विष्णुपदादिसूक्ष्मतमं पुण्यकालमाह।

गालवः। स्थिरभे विष्णुपदं षडशीतिमुखं द्वितनुभे तुलामेषे।
विषुवन्तुर्य्ये दक्षायनं मृगे सौम्यकं सूर्य्ये॥

पूर्व्वस्त्रै कैर्व्याख्यातमेतत् ।

अयनांशकतुल्येन कालेनैतत् स्फुटंभवेत् ।
सर्व्वविष्णुपदाद्युक्तभेदादि ह्ययनेऽन्यथा ॥
मृग-कर्कादिगे सूर्य्ये याम्योदगयने सति ।
तदा संक्रान्तिदाने स्युरुक्ता विष्णुपदादयः ॥

(अयमर्थः राशिं प्रति त्रिंशदंशका भवन्ति सूर्य्यश्च प्रतिदिनमेकैकमंशं भुङ्क्ते तत्र यावद्भिरंशैरयनच्युतिर्भवति तावता सूर्य्यस्य भोग्यकालेन भाविनां विष्णुपदादिकानां च्युतिर्भवतीति ततश्च यदा द्वादशभिरयनच्युतिर्भवति तदाभाविन्याः संक्रान्तेर्द्वादशभिर्दिनैरर्व्वाक् पुण्यकालो भवति तस्मिंश्च तत्क्रान्तिनिमित्तं दानादि कर्त्तव्यमिति एवं न्यूनातिरिक्तेष्वपि बोद्धव्यम् । न केवलमादित्यस्यैव संक्रमसमये पुण्यकालः किन्तु सर्व्वेषामपि ग्रहाणां नक्षत्र-राशिसंक्रमे पुण्यकालो भवतीति ॥

तदुक्तं ज्योतिःशास्त्रे ।

नक्षत्र-राश्योः रविसंक्रमे स्युरर्व्वाक्-परत्रापि रसेन्दुनाड्यः ।
पुण्यास्तथेन्दोस्त्रिधरापलैर्युगा एकैव नाडी मुनिभिः शुभोक्ता ॥
नाड्यश्चतस्रः सपला कुजस्य बुधस्य तिस्रः पलविंशयुक्ताः ।
आद्यर्द्धनाड्यः पलसप्तयुक्ता गुरोस्तु शुक्रे सपलाश्चतस्रः ॥
द्विनागनाड्यः पलसप्तयुक्ता शनैश्चरस्याभिहिताः सुपुण्याः ।
आद्ये तु मध्ये जप-दान-होमं कुर्व्वन्नवाप्नोति सुरेन्द्रधाम ॥

अस्यार्थः ।

(आदित्यस्य राशि-नक्षत्रगमने अर्व्वाक् परतश्च षोड़श घटिकाः पुण्यकालः । तथा चन्द्रस्यापि राशि-नक्षत्रगमने घटिकैका पलानि-

त्रयोदश अर्व्वाक्परतश्च पुण्यकालः। एवं मङ्गलस्य घटिका-चतस्रः पलमेकञ्च पुण्यकालः। तथा वुधस्य तिस्रो घटिका चतुर्द्दशपलानि पुण्यकालः। वृहस्पतेरपि सार्द्धाश्चतस्रो घटिकाः सप्तपलानि पुण्यकालः। शुक्रस्य चतस्रो घटिकाः पलमेकञ्च पुण्यकालः। शनैश्चरस्यापि द्वाशीतिघटिकाः सप्तपलानि पुण्यकाल इति॥

अथ प्रकीर्णकालाः॥

आह विष्णुः। अमावस्या व्यतीपातो ग्रहणं चन्द्र-सूर्य्ययोः।

मन्वादयो युगादिश्च संक्रान्तिर्वैधृतिस्तथा।

दिनक्षयं दिनच्छिद्रमवमञ्च तथा परम्।

द्व्ययने विषुवद्युग्मं षडशीतिमुखन्तथा।

चतस्रो विष्णुपद्यश्च पुत्रजन्मादि चापरम्।

आदित्यादिग्रहाणाञ्च नक्षत्रैः सह सङ्गमे।

विज्ञेयः पुण्यकालोयं ज्योतिर्व्विद्भिर्विचार्य्य च।

तत्र दानादिकं कुर्य्यादात्मनः पुण्यवृद्धये॥

'अमावास्यादीनि' प्रसिद्धानि। दिनक्षयसुक्तम् पद्मपुराणे।

द्वौ तिथ्यन्तावेकवारे यस्मिन् स स्याद्दिनक्षयः।

वशिष्ठोप्याह। एकस्मिन् सावने त्वह्नि तिथीनां त्रितयं यदा।

तदा दिनक्षयः प्रोक्तस्तत्र साहस्रिकं फलम्॥

दिनच्छिद्रलक्षणमाह।

भृगुः। तिथ्यर्द्धतिथियोगर्क्षच्छेदादौ शशिपर्व्वणः।

सद्यो दिवसच्छिद्रसमाख्यौ प्राह भार्गवः॥

(अयमर्थः तिथ्यर्द्धं करणं करण-तिथि-योग-नक्षत्राणा-

मन्ते आदौ च पर्व्वकालः सोमग्रहणतुल्यः स च दिनच्छिद्र संज्ञइति)।

कालमानमप्युक्तं तेनैव।

छेदादिकालः कथितस्तिथिकृत्योर्घटीद्वयम्।
नाग-वह्नि-पलोपेतं तद्भे तत्त्वपलैर्युतम्॥
पलैः षोड़शभिर्युक्तं नाडिकाद्वितयं युतेः।
छेदादिसमयः प्रोक्तो दानेऽनन्तफलप्रदः॥

'कृतिः' करणं। 'नागः' अष्टौ। 'वह्नयः' त्रयः। 'भं' नक्षत्रम्।
'तत्त्व' पञ्चविंशतिः। 'युतिः' योगः।
तदयमर्थः सिद्धो भवति।

(तिथिकरणयोराद्यन्ते घटिकाद्वयमष्टत्रिंशत्पलानि पुण्यकालः)।
(नक्षत्रस्य तु पञ्चविंशतिपलैर्युक्तं घटिकाद्वयम्)।
(योगस्यापि षोड़शभिः पलैर्युक्तं घटिकाद्वयमिति)।

अवमलक्षणमाह।

विष्णुः। तिथित्रयं स्पृशत्येको वारः स्यादवमं हि तत्।
त्रिवारस्पृक् तिथिर्यत्र दिनस्पृक् च तदुच्यते॥
(अत्र दिनक्षयावमयोरियान् भेदः)।
यत्र तिथिद्वयावसाने वारावसानं स दिनक्षयः।
यत्र तिथिद्वयावसानेपि वारानुवृत्तिः सोऽवम इति।

ब्रह्मप्रोक्ते। एकादश्यप्यमावस्या-पूर्णिमा-पुत्रजन्म च।
वैधृतिश्च व्यतीपातो भद्रा चावमवासरः॥
युगमन्वादयस्ते च रविसङ्क्रान्तिपर्व्वसमानकाः।
क्रान्तिसाम्यं दिनच्छिद्रं ग्रहाणां भगमस्तथा॥

'भगमः' राशिनक्षत्रेषु गमनम्।

देवी पुराणे। व्यतीपातो विष्णुपदं षड़शीतिमुखन्तथा।
क्रान्तिसाम्यममावास्या ग्रहणं वैधृतिश्च यः।
संक्रान्तिश्च दिनच्छिद्रं तिथिवृद्धिदिनक्षयः।
इत्यादि पुण्यकालस्तु होम-दानादिकर्म्मणः॥

स्कन्दपुराणे। ग्रहणं चन्द्रसूर्य्याभ्यामुत्तरायणमुत्तमम्।
विषुवं सव्यतीपातं षड़शीतिमुखन्तथा।
दिनच्छिद्राणि संक्रान्तिर्ग्रयं विष्णुपदं पुनः।
इति कालः समाख्यातः पुंसां पुण्यविवर्द्धनः।
अस्मिन् दत्तानि दानानि स्नान-होम-तपांसि च।
अनन्तफलदानि स्युः स्वर्ग-मोक्षप्रदान्यपि॥

आह च्यवनः।

अमावास्या--संक्रान्ति--व्यतीपातविषुवा--यन-षड़शीतिमुख--विष्णु पदादि-वैधृति-ग्रहणान्तं स एव पुण्यकालः॥

अयने षड़शीतौ च चन्द्र-सूर्य्यग्रहे तथा।
युगादौ वैधृतौ चैव दत्तं भवति चाक्षयम्॥

आह शातातपः।

अयनेषु तु यद्दत्तं षड़शीतिमुखेषु च।
चन्द्र-सूर्य्योपरागे च दत्तं भवति चाक्षयम्॥

नारदः। विशाखासु यदा भानुःकृत्तिकासु च चन्द्रमाः।
स योगः पद्मको नाम पुष्करेष्वति दुर्लभः॥

अथ निमित्तकालाः। तत्र शङ्खलिखितौ।

आहारं मैथुनं निद्रां सन्ध्याकाले तु वर्ज्जयेत्।

कर्म्म चाध्ययनञ्चैव तथा दानप्रतिग्रहौ ॥

स्कन्दपुराणे। रात्रौ दानं न कर्त्तव्यं कदाचिदपि केनचित्।

हरन्ति राक्षसा यस्मात् तस्माद्दातुर्भयावहम् ॥

विशेषतो निशीथे तु न शुभं कर्म्म शर्म्मणे।

अतो विवर्ज्जयेत् प्राज्ञो दानादिषु महानिशाम् ॥

तथा स्नानञ्चैव महादानं स्वाध्यायन्तु न तर्पणम्।

प्रथमेऽब्दे न कुर्व्वीत महागुरुनिपातने ॥

आह ज्योतिःपराशरः।

अग्न्याधेयं प्रतिष्ठाञ्च यज्ञ-दानाद्यभिग्रहान्।

माङ्गल्यमभिषेकञ्च मलमासे विवर्जयेत् ॥

वापी-कूप-तड़ागादि प्रतिष्ठोदङ्मुखे रवौ।

दक्षिणाशामुखे कुर्व्वन् न तत्फलमवाप्नुयात् ॥

बाले वा यदि वा वृद्धे शुक्रे वास्तमुपागते।

मलमासइवैतानि वर्जये * द्यत्नतः सदा ॥

'मलमासः' अधिकमासः। तल्लक्षणमाह।

प्रचेताः। एकराशिस्थिते सूर्य्ये यदा दर्शद्वयं भवेत्।

हव्य-कव्य-क्रियाहन्ता तदा ज्ञेयोऽधिमासकः ॥

पैठीनसिः। वत्सरान्तर्गतः पापो यज्ञानां फलनाशकृत्।

नैरृत्य-यातुधानानामसंक्रान्तोऽधिमासकः ॥

मलिम्लुचमसंक्रान्तं सूर्य्यसंक्रान्तिवर्ज्जितम्।

अधिमासं विजानीयात् सर्व्वकर्म्मसु गर्हितम् ॥

* देवदर्शनमिति क्वचित्पाठः।

तथा। श्रौत-स्मार्त्तक्रियाः सर्व्वा द्वादशे मासि कीर्त्तिताः।
त्रयोदशे तु ताः सर्व्वा निष्फला इति संस्थिताः॥
तस्मात् त्रयोदशे मासि न कुर्य्यात्ताः कथञ्चन।
कुर्व्वन्ननर्थमेवाशु कुर्य्यान्नात्मविनाशनम्॥

हारीतः। इन्द्राग्नी यत्र हूयेते मासादिः स प्रकीर्त्तितः।
अग्नीसोमौ स्थितौ मध्ये समाप्तौ पितृसोमकौ॥
तमतिक्रम्य तु यदा रविर्गच्छेत् कदाचन।
आद्यो मलिम्लुचो ज्ञेयो द्वितीयः प्राकृतः स्मृतः॥
तस्मिंस्तु प्राकृते मासि कुर्य्याच्छ्राद्धं यथाविधि।
तथैवाभ्युदयं कार्य्यं नित्यमेकं हि सर्व्वदा॥

व्यासः। भानुना लङ्घितो मासो ह्यनर्हः सर्व्वकर्म्मसु।
षष्टिभिर्द्दिवसैर्म्मासः कथितो वादरायणैः।
पूर्व्वार्द्धन्तु परित्यज्य उत्तरार्द्धं प्रशस्यते॥
उपाकर्म्म च हव्यञ्च कव्यं पर्व्वोत्सवस्तथा।
उत्तरे नियतिः कुर्य्यात् पूर्व्वं तन्निष्फलं भवेत्॥

पाराशरः। उपाकर्म्म-तथोत्सर्गः * प्रसवाहो-त्सवा-ष्टकाः।
मासवृद्धौ पराः कार्य्या वर्जयित्वा तु पैतृकम्॥

तथा ज्योतिः शास्त्रे।

घटकन्यागते सूर्य्ये वृश्चिके वाथ धन्विनि।
मकरे वाथवा कुम्भे नाधिमासो विधीयते॥

माण्डव्यः। गर्भे वार्द्धुषिके प्रेते भूते नित्ये तु मासिके।

* प्रसवाद्योऽष्टकादय इति पाठान्तरम्।

प्रथमे चाब्दिके चैव नाधिमासो विधीयते ॥

अथ निषिद्धस्यापि धर्म्मविशेषेण पुण्यकालत्व मभिधीयते ।

देवलः । राहुदर्शन-संक्रान्ति-विवाहा-त्यय-वृद्धिषु ।
स्नान-दानादिकं कुर्य्युर्निशि काम्यव्रतेषु च ॥

वृद्धवसिष्ठः । ग्रहणो-द्वाह-संक्रान्ति * यात्रादिप्रसवेषु च ।
दानं नैमित्तिकं ज्ञेयं रात्रावपि तदिष्यते ॥

विष्णुधर्म्मोत्तरे । पूजनन्त्वतिथीनाञ्च पात्राणामपि पूजनम् ।
तच्च रात्रौ तथा ज्ञेयं गवामुक्तञ्च पूजनम् ॥

महाभारते । रात्रौ दानं प्रशंसन्ति विना त्वभयदक्षिणाम् ।
विद्यां कन्यां द्विजश्रेष्ठा दीपमन्नं प्रतिश्रयम् ॥

श्रीमार्कण्डेयपुराणे ।

महानिशा तु विज्ञेया मध्यस्थं प्रहरद्वयम् ।
स्नानं तत्र न कुर्व्वीत काम्य-नैमित्तिकादृते ॥

विश्वामित्रः । महानिशा द्वे घटिके रात्रौ मध्यमयामयोः ।
नैमित्तिकन्तथा कुर्य्यान्नित्यन्तु न मनागपि ॥

अथ निमित्तानुरोधेन सदा पुण्यकालाः ॥

विष्णुधर्म्मोत्तरे । कालः सर्व्वोपि निर्द्दिष्टः पात्रं सर्व्वमुदाहृतम् ।
अभयस्य प्रदाने तु नात्र कार्य्या विचारणा ।
तदैव दानकालस्तु यदा भयमुपस्थितम् ॥

तथा । न कालनियमो दृष्टो दीयमाने प्रतिश्रये ।
तदैव दानमस्योक्तं यदा पान्थसमागमः ॥
न हि कालं प्रतीक्षेत जलं दातुं तृषान्विते ।

* यात्रार्त्तीति क्वचित्पाठः ।

अन्नोदकं सदा देयमित्याह भगवान्मनुः ॥

स्कन्दपुराणे। अर्द्धप्रसूतां गां दद्यात् कालादि न विचारयन्।
कालः स एव ग्रहणे यदा सा द्विमुखी तु गौः ॥

व्यासः। आसन्नमृत्युना देया गौः सवत्सा तु पूर्व्ववत्।
तदभावे तु गौरेव नरकोद्धरणाय वै ॥
तदा यदि न शक्नोति दातुं वैतरणीन्तु गाम्।
शक्तोऽन्योऽरुग्णस्तदा दत्त्वा श्रेयो दद्यान्मृतस्य च ॥

वाराहपुराणे। व्यतीपातोऽथ संक्रान्तिस्तथैव ग्रहणं रवेः।
पुण्यकालास्तदा सर्व्वे यदा मृत्युरुपस्थितः।
तदा गो-भू-हिरण्यादि दत्तमक्षयतामियात् ॥

तथा। यावत् कालं सुते जाते न नाड़ी छिद्यते नृप।
चन्द्र-सूर्य्योपरागेण तमाहुः समयं समम् ॥

विष्णुधर्म्मोत्तरे। अच्छिन्ननाड्यां यद्दत्तं पुत्रे जाते द्विजोत्तमाः।
संस्कारेषु च पुत्रस्य तदक्षय्यं प्रकीर्त्तितम् ॥

मत्स्यपुराणे। यदा वा जायते वित्तं चित्तं श्रद्धासमन्वितम्।
तदैव दानकालः स्याद्यतोऽनित्यं हि जीवितम् ॥

इति कालनिरूपणम् ॥

अथ देशाख्यं दानाङ्गमुपवर्ण्यते ॥

तत्र देवीपुराणे। सर्व्वे शिवाश्रमाः पुण्याः सर्व्वा नद्यःशुभप्रदाः।
दान-स्नानो-पवासादिफलदाः सततं नृणाम् ॥

आह विष्णुः। चातुर्व्वर्ण्यव्यवस्थानं यस्मिन् देशे न विद्यते।
* स म्लेच्छदेशो विज्ञेय आर्य्यदेशस्ततः परः ॥

---

* तं म्लेच्छदेशं जानीयादिति क्वचित्पाठः।

भविष्यपुराणे। न हीयते यत्र धर्म्मश्चतुष्पात् सकलो द्विज।
स देशः परमो नित्यं सर्व्वपुण्यतमो मम॥
विद्वद्भिः सेवितो यश्च यस्मिन् देशे प्रवर्त्तते।
शास्त्रोक्तश्चापि विप्रेन्द्र स देशः परमोमतः॥
याज्ञवल्क्यः। यस्मिन् देशे मृगः कृष्णस्तस्मिन् धर्म्मान्निबोधत॥

श्रीमार्कण्डेयपुराणे।

सह्यस्य चोत्तरो यस्तु यत्र गोदावरी नदी।
पृथिव्यामपि कृत्स्नायां स प्रदेशोऽतिपावनः॥
व्यासः। गङ्गाद्वारे प्रयागे च अविमुक्ते च पुष्करे।
नगरे चाट्टहासे च गङ्गासागरसङ्गमे।
कुरुक्षेत्रे गयायाञ्च तीर्थे वामरकण्टके।
एवमादिषु तीर्थेषु दत्तमक्षयतामियात्।
सर्व्वतीर्थमयीगङ्गा तत्र दत्तं महाफलम्॥
स्कन्दपुराणे। वाराणसी कुरुक्षेत्रं प्रयागः पुष्कराणि च।
गङ्गा-समुद्रतीरञ्च नैमिषामरकण्टकम्।
श्रीपर्वत-महाकालं गोकर्णं वेदपर्वतम्।
इत्याद्याः कीर्त्तिता देशाः सुरसिद्धनिषेविताः॥
सर्व्वे शिलोच्चयाः पुण्याः सर्व्वा नद्यः ससागराः।
गो-सिद्धमुनि-वासाश्च देशाः पुण्याः प्रकीर्त्तिताः।
एषु तीर्थेषु यद्दत्तं फलस्यानन्त्यकृद्भवेत्॥
पद्मपुराणे। गङ्गा चोदङ्मुखी यत्र यत्र प्राची सरस्वती।
तत्र शतगुणं पुण्यं स्नान-दानेषु सुव्रत॥
लिङ्गं वा प्रतिमा वापि दृश्यते यत्र कुत्रचित्।

तत् सर्वं पुण्यतां याति दानेषु च महाफलम्॥

ब्रह्मप्रोक्ते। नदीतीरे गवां गोष्ठे ब्राह्मणानाञ्च वेश्मनि।

दत्तं शतगुणं प्राहुर्लक्षमादित्यसन्निधौ॥

शिवस्य विष्णोर्वह्नेश्च सन्निधौ दत्तमक्षयम्।

तथा। अग्निहोत्रे गवां गोष्ठे वेदघोषपवित्रिते॥

शिवायतनसंस्थाने यदल्पमपि दीयते।

तदनन्तफलं ज्ञेयं शिवक्षेत्रानुभावतः॥

मत्स्यपुराणे। शालग्रामसमुद्भूतः शैलश्चक्राङ्कमण्डितः।

यत्र तिष्ठति वसुधे तत्क्षेत्रं योजनत्रयम्॥

द्वारवत्याः शिला देवि मुद्रिता मम मुद्रया।

यत्रापि नीयते तत्स्यात्तीर्थं द्वादशयोजनम्॥

तथा। प्रयागादिषु तीर्थेषु पुण्येष्वायतनेषु च।

दत्त्वा चाक्षयमाप्नोति नदी-पुण्यवनेषु च॥

'आयतने' शङ्करादिक्षेत्रे।

तदुक्तं भविष्यपुराणे।

क्रोशमात्रं भवेत् क्षेत्रं शिवस्य परमात्मनः।

प्राणिनान्तत्र पञ्चत्वं शिवसायुज्यकारणम्।

फलं दत्त-हुतानाञ्च अनन्तं परिकीर्त्तितम्॥

मनुजैः स्थापिते लिङ्गे क्षेत्रे मानमिदं स्मृतम्।

स्वयम्भुवि सहस्रं स्यादार्षे चैव तदर्द्धकम्॥

अथ श्रद्धाख्यं दानाङ्गमुच्यते।

स्कन्दपुराणे। दानं दद्यात् प्रयत्नेन श्रद्धा-पूतमतन्द्रितः।

श्रद्धाकृतं स्वल्पमपि दानमानन्त्यमश्नुते॥

अश्रद्धयापि यद्दत्तं सर्वस्वमपि सत्तम।
न तत् फलाय भवति तस्माच्छ्रद्धां समाश्रयेत्॥

देवलः। प्रदाय शाकमुष्टिम्बा श्रद्धा-भक्ति-समुद्यतम।
महते पात्रभूताय सर्व्वाभ्युदयमाप्नुयात्॥

महाभारते। श्रद्धया साध्यते धर्म्मो महद्भिर्नार्थराशिभिः।
निष्किञ्चनास्तु मुनयः श्रद्धावन्तो दिवं गताः॥
धर्म्मार्थ-काम-मोक्षाणां श्रद्धा परमकारणम्।
पुंसामश्रद्दधानानां न धर्म्मो नापि तत्फलम्॥

वह्निपुराणात्। श्रद्धापूर्व्वाः सर्वधर्म्माः श्रद्धामध्यान्तसंस्थिताः।
श्रद्धा-निष्ठाः-प्रतिष्ठाश्च धर्म्माः श्रद्धैव कीर्त्तिताः॥
श्रुतिमात्ररसाः सूक्ष्माः प्रधानपुरुषेश्वराः।
श्रद्धामात्रेण गृह्यन्ते न वाक्येन न चक्षुषा॥
कायक्लेशैर्नबहुभिर्न चैवार्थस्य राशिभिः।
धर्म्मः सम्प्राप्यते सूक्ष्मः श्रद्धाहीनैः सुरैरपि॥
श्रद्धा धर्म्मः परः सूक्ष्मः श्रद्धा ज्ञानं हुतन्तपः।
श्रद्धा-स्वर्गश्च मोक्षश्च श्रद्धा सर्व्वमिदं जगत्॥
सर्वस्वं जीवितञ्चापि दद्यादश्रद्धया यदि।
नाप्नुयात् सकलं किञ्चित् अश्रद्दधानस्ततो भवेत्॥

वेदव्यासः। श्रद्धा वै सात्त्विकी देवी सूर्य्यस्य दुहिता नृप।
सवित्री प्रसवित्री च जीवविश्वासिनी तथा।
वाग्वृद्धं त्रायते श्रद्धा मनोवृद्धञ्च भारत॥

महाभारते। क्रियावान् श्रद्दधानश्च दाता प्राज्ञोऽनसूयकः
धर्म्मा-धर्म्म-विशेषज्ञः सर्वन्तरति दुस्तरम्॥

स्कन्द पुराणे। श्रद्धा मातेव जननी ज्ञानस्य सुकृतस्य च।

तस्माच्छ्रद्धां समुत्पाद्य ज्ञानं सुकृतमर्जयेत्॥

मनुः। श्रद्धयेष्टञ्च पूर्त्तञ्च नित्यं कुर्य्यात् प्रयत्नतः।

श्रद्धाकृते ह्यक्षये ते भवतः स्वागतैर्धनैः॥

याज्ञवल्क्यः। दातव्यं प्रत्यहं पात्रे निमित्तेषु विशेषतः।

याचितेनापि दातव्यं श्रद्धापूतन्तु शक्तितः॥

बृहस्पतिः। मन्त्राज्यदोषाद्धोमे तु तपसीन्द्रियदोषतः।

न्यूनता स्यान्नदाने तु श्रद्धायुक्ते भवेत् क्वचित्॥

(एतच्च देशनिरूपणञ्च पूर्वं व्रतखण्डादावेव प्रपञ्चितम् इहतु पात्रादिदानाङ्गनिरूपणप्रतिज्ञानिर्वहणार्थं दिङ्मात्रमेव प्रदर्शितम्। न चात्र भविष्यपुराणमतेन दानाङ्गपञ्चके निरूप्यमाणे दानाङ्गभूतस्यापि दातुः कथं पृथगनुपादनमिति शङ्कनीयं दानस्य दातृव्यतिरेकेणानुपपत्तेस्तेनैव तदाक्षेपात् एवं तर्हि देश-कालादेरप्यनुपादानंस्यात्

अथ सामान्येनैव तदाक्षेपेपि तच्छावर्त्तादिविशेषलाभार्थं तन्निरूपणमिति दातापि तर्हि शुचित्वादिविशेषलाभार्थं निरूपणीयः स्यात् उच्यते तत्तद्विधायकवाक्यगताख्यातप्रत्ययोपात्तत्वादेव तदनिरूपणं नत्वाक्षेपात् शुचित्वादिविशेषलाभस्तु वाक्यान्तरादिति कर्त्तनभिधानपक्षे तु प्रत्ययोपात्तभावनयैवासाधारण्येन तदाक्षेपान्न देशादिसाम्यं। एवमादिक्लेशपर्य्यालोचनया षड़ङ्गदानमितिवदता देवलेन तु निरूप्यतएव)।

तथाहि। दाता प्रतिग्रहीता च श्रद्धा देयञ्च धर्म्मयुक्।

देश-कालौ च दानानामङ्गान्येतानि षड़्विदुरिति।

(तल्लक्षणन्तु प्रागभिहितमिति तु न पुनराद्रियामहे।
न तु श्रद्धादिवदितिकर्त्तव्यतापि दानाङ्गमित्यतः प्रतिपादनीयैव)।

यदाह याज्ञवल्क्यः। देश-काल-उपायेन द्रव्यं श्रद्धासमन्वितम्।
पात्रे प्रदीयते यत्तत् सकलं धर्म्मलक्षणमिति॥
'उपायः' इतिकर्त्तव्यता। अत्रोच्यते।

(इतिकर्त्तव्यताविशेषास्तावत्तत्र दानविशेषेष्वेव प्रतिपादयिष्यन्ते तेषामिह प्रतिपादयितुमशक्यत्वात् सामान्येनेतिकर्त्तव्यता पुनरवश्यं वक्तव्येति तदर्थमिदं प्रकरणमारभ्यते। इति श्रद्धा निरूपणम्)।

अथ दानसामान्यविधिरुच्यते। तत्र दातृधर्म्माः।

भविष्य पुराणे। सम्यक् संसाधनं कर्म्म कर्त्तव्यमधिकारिणा।
निष्कामेन महावीर काम्यं कामान्वितेन च॥
आचारयुक्तः श्रद्धावान् प्राज्ञो योऽध्यात्मवित्तमः।
कर्म्मणां फलमाप्नोति न्यायार्जितधनश्च यः॥
'सम्यक्' प्रथमकल्पादिना। 'संसाधनं' यथाविहितसाधनम्। 'अधिकारिणा' अर्थिना' समर्थेन विदुषा च।,
'अध्यात्मवित्तमः' परलोकफलभागिन्यात्मनि दृढ़प्रत्ययवान्।
'न्यायार्ज्जितधनः' स्ववृत्त्यर्जितधनः।

आपस्तम्बः। प्रयोजयिता-नुमन्ता कर्त्तेति स्वर्गनरकफलेषु
भागिनः यो भूय आरभते तस्मिन् फलविशेषः॥

याज्ञवल्क्यः। विधिदृष्टन्तु यत्कर्म्म करोत्यविधिना तु यः।

फलं न किञ्चिदाप्नोति क्लेशमात्रं हि तस्य तत्

मनुः। प्रभुः प्रथमकल्पस्य योनुकल्पेन वर्त्तते।

न साम्परायिकं तस्य दुर्म्मतेर्विद्यते फलम्॥

'साम्परायिकं' पारलौकिकम्।

योगियाज्ञवल्क्यः। श्रद्धा-विधि-समायुक्तं कर्म्म यत् क्रियते नृभिः।

सुविशुद्धेन भावेन तदानन्त्याय कल्पते॥

विधिहीनं भावदुष्टं कृतमश्रद्धया च यत्।

तद्धरन्त्यसुरास्तस्य मूढस्य ह्यकृतात्मनः॥

भविष्योत्तरे। काम्यो दानविधिः पार्थ क्रियमाणो यथातथम्।

फलाय मुनिभिः प्रोक्तो विपरीतो भयावहः॥

गारुड़पुराणे। प्रशस्तदेश-काले च पात्रे दत्तं तदक्षयम्।

कोटिजन्मार्जितं पापं ददतस्तस्य नश्यति॥

सकलाङ्गोपि सम्भारो यस्य दानक्रियाविधौ।

सम्भवेदपि पापीयान् स सद्यो मुक्तिमेश्यति॥

देवीपुराणे। शुचिना भावपूतेन क्षान्ति-सत्य-व्रतादिना।

अपि सर्षपमात्रोपि दातारं तारयेदिह॥

दक्षः। दानञ्च विधिवद्देयं काले पात्रे गुणान्विते॥

यमः। सर्वत्र गुणवद्दानं श्वपाकादिष्वपि स्मृतम्।

देशे-काले विधानेन पात्रे दत्तं विशेषतः॥

'गुणवत्' उत्तमफलम्।

तथा। दानं हि बहुमानाद्यो गुणवद्भ्यः प्रयच्छति।

स तु प्रेत्य धनं लब्ध्वा पुत्रपौत्रैः सहाश्नुते॥

पश्चादनुपहत्येह दानं दत्त्वा विचक्षणः।

सुखोदयं सुखोदर्कं प्रेत्य वै लभते धनम् ॥

'अनुपहत्य, पीड़ामनुत्पाद्य, "सुखोदर्कं" सुखोत्तरफलम् ।

रामायणे । नावज्ञया प्रदातव्यं किञ्चिद्वा केनचित् क्वचित् ।

अवज्ञया हि यद्दत्तं दातुस्तद्दोषमावहेत् ॥

शातातपः । अभिगम्य तु यद्दानं यच्च दानमयाचितम् ।

विद्यते सागरस्यान्तस्तस्यान्तो नैव विद्यते ॥

प्रच्छन्नानि च दानानि ज्ञानञ्च निरहंकृतम् ।

तपांसि च सुतप्तानि तेषां फलमनन्तकम् ॥

ब्रह्मप्रोक्ते । गुप्ताध्यायी गुप्तदाता गुप्तपूजाग्निसत्क्रियः ।

पूज्यते सर्व्वलोकेषु सर्व्वदेवैः शतक्रतुः ॥

व्यासः । स्वयं नीत्वा तु यद्दानं भक्त्या पात्राय दीयते ।

तत्सहस्रगुणं भूत्वा दातारमुपतिष्ठति ॥

बृहस्पतिः । कृते प्रदीयते गत्वा त्रेतायां दीयते गृहे ।

द्वापरे च प्रार्थयति कलौ चानुगमान्विते ॥

(प्रतिग्रहीतृगृहं गत्वा यद्दीयते तत्कृते युगे

दत्तं भवति) । प्रतिग्रहीतारं स्वगृहमाहूय यद्दीयते

तत्त्रेतायुगे दत्तं भवतीत्यर्थः । एव मुत्तरत्रापि ॥

वह्निपुराणे । तमोवृतस्तु योदद्याद्भयात् क्रोधात्तथैव च ।

नृप दानन्तु तत्सर्व्वं भुङ्क्ते गर्भस्थ एव च ॥

ईर्षा-मन्युमनाश्चैव दम्भार्थं चार्थ-कारणात् ।

योददाति द्विजातिभ्यः स बालत्वे तदश्नुते ॥

देशे काले च पात्रे च योददाति द्विजातिषु ।

परितुष्टेन मनसा यौवने तु तदश्नुते ॥

वैश्वदेवविहीनं च सन्ध्योपासनवर्जितम्।
यद्दानं दीयते तत्तु वृथकाले समश्नुते॥
आह मनुः। न विस्मयेत तपसा वदेदिष्ट्वा नचानृतम्।
नार्त्तोविप्रवदेद्विप्रान् न दत्त्वा परिकीर्त्तयेत्॥
यज्ञोऽनृतेन चरति तपः चरति विस्मयात्।
आयुर्व्विप्रापवादेन दानन्तु परिकीर्त्तनात्॥
यमः। आशां कृत्वा त्वदातारं दानकाले निषेधकम्।
दत्त्वा सन्तप्यते यस्तु तमाहुर्ब्रह्मघातकम्॥
हारीतः। दानं स्नानं तपस्त्यागोमन्त्रकर्म्मविधिक्रियाः।
मङ्गलाचारनियमाः शौचभ्रष्टस्य निष्फलाः॥
आह प्रचेताः। स्नातोऽधिकारी भवति दैवे पित्र्ये च कर्म्मणि।
पवित्राणां तथा जाप्ये दाने च विधिचोदिते॥
वायुपुराणे। क्रियां यः कुरुते मोहादनाचम्येह नास्तिकः।
भवन्ति न तथा तस्य क्रियाः सर्व्वा न संशयः॥
शाटायनः। दानमाचमनं होमं भोजनं देवतार्च्चनम्।
प्रौढ़पादोन कुर्व्वीत स्वाध्यायं पितृतर्पणम्॥
आसनारूढ़पादस्तु जान्वोर्व्वा जङ्घयोस्तथा।
कृतावसक्थिकोयश्च प्रौढ़पादः स उच्यते॥
वशिष्ठः। यज्जले शुष्कवस्त्रेण स्थले चैवार्द्रवाससा।
जपो होमस्तथा दानं तत् सर्व्वं निष्फलं भवेत्॥
विष्णुपुराणे। होमदेवार्च्चनाद्यासु क्रियास्वाचमने तथा।
नैकवस्त्रः प्रवर्त्तेत द्विजवाचनके जपे॥
'द्विजवाचनके, द्विजस्वस्तिवाचनादौ।

शातातपः । सव्यादंसात्परिभ्रष्टकटिदेशधृताम्बरः ।

एकवस्त्रन्तु तं विद्यात् दैवे पित्रेऽच वर्ज्जयेत् ॥

श्लोकगौतमः । स्नाने दाने जपे होमे दैवे पित्र्ये च कर्म्मणि ।

बध्नीयान्नासुरीं कच्छां शेषकाले यथा रुचिः ॥

याज्ञवल्क्यः । परिधानाद्बहिः कच्छा निबद्धा ह्यासुरी भवेत् ।

धर्म्मकर्म्मणि विद्वद्भि र्व्वर्जनीया प्रयत्नतः ॥

'बहिः कच्छा, बहिर्निर्गता कच्छेत्यर्थः ।

मनुः । न कुर्य्यात् कस्यचित् पीड़ां कर्म्मणा मनसा गिरा ।

आचरन्नभिषेकन्तु कर्म्माण्यप्यन्यथा चरन् ॥

सन्ध्ययोरुभयोर्जप्ये भोजने दन्तधावने ।

पितृकार्य्ये च दैवेच तथा मूत्रपुरीषयोः ॥

गुरूणां सन्निधौ दाने यागेचैव विशेषतः ।

एषु मौनं समातिष्ठन् स्वर्गं प्राप्नोति मानवः ॥

पराशरः । स्नाने दाने जपे होमे, दैवे पित्र्येच कर्म्मणि ।

सव्यापसव्यौ कर्त्तव्यौ सपवित्रौ करौ द्विजैः ॥

लघुहारीतः । जपेहोमे तथा दाने स्वाध्याये पितृतर्पणे ।

अशून्यन्तु करं कुर्य्यात् सुवर्णरजतैः कुशैः ॥

दर्भहीना तु या सन्ध्या यच्च दानं विनोदकम् ।

असंख्यातञ्च यज्जप्तं तत्सर्व्वं निष्प्रयोजकम् ॥

हारीतः । देवाश्च पितरश्चैव तपोयज्ञदानानामीशतेमन्त्राः सर्व्वकार्य्यसाधनानामार्त्तिभयोपसर्गेभ्योरक्षितारो भवन्ति, मन्त्रा देवता स्तदा एवं सिद्धमन्त्रवत्करोति, देववत्करोति, यद्ददाति देवताभिरेव तद्ददाति, यत्प्रतिगृह्णाति देवताभिरेव तत् प्रति-

गृह्णाति, तस्मान्नामन्त्रवत्प्रतिगृह्णीयात् यत्त्वमन्त्रतः प्रतिपादिता हि देवतास्तूष्णीं प्रतिगृह्णीयुर्हि शठा भवन्ति तस्मान्मन्त्रवद्भिरवोक्ष्य दद्यादालभ्य वा॥

'अवोक्ष्य, प्रोक्षणं कृत्वा। 'आलभ्य, सोदकेन पाणिना स्पृष्ट्वा॥

आपस्तम्बः॥ सर्व्वाण्युदकपूर्व्वाणि दानानि यथाश्रुति वीहारे।

वीहारे, यज्ञे अन्वाहार्य्यदानादौ यथाश्रुति यावदेव श्रुतं तावदेव कुर्य्यान्नोदकपूर्व्वतादिनियम इत्यर्थः॥

वाराहपुराणे। तोयं दद्यात् द्विजकरे दाने विधिरयं स्मृतः।

सकुशोदकहस्तश्च ददामीति तथावदेत्॥

गौतमः। अन्तर्जानुकरं कृत्वा सकुशन्तु तिलोदकम्।

फलान्यपिच संधाय प्रदद्यात् श्रद्धयान्वितः॥

(पात्रासन्निधानेतु नारदीयपुराणे विशेष उक्तः)॥

मनसा पात्रमुद्दिश्य जलं * भूमौ विनिक्षिपेत्।

विद्यते सागरस्यान्तो दानस्यान्तो न विद्यते॥

धौम्यः। दानकाले तु सम्प्राप्ते पात्रस्यासन्निधौ जलम्।

अन्यविप्रकरे दत्त्वा दानं पात्रे निधीयते॥

षट्त्रिंशन्मतात्। पात्रं मनसि सञ्चिन्त्य क्रियावन्तं गुणान्वितम्।

देशे काले च सम्प्राप्ते देयमप्सु विनिक्षिपेत्॥

(उभयासन्निधाने तु विशेषस्तत्रैवोक्तम्)

द्रव्य-पात्र-विकर्षश्चेत् परोक्षं दातुमुद्यतः।

तत्पायाद्वै भुवं पात्रं द्रव्यमादित्यदैवतम्॥

---

* भूमौ तोयमिति क्वचित् पाठः।

धौम्यः। परोक्षेपि तु यद्दत्तं तीर्थे स्नाने न सोदकम्।
तद्दानं सोदकं प्राहुरनन्तफलदायकम्॥
परोक्षे कल्पितं दानं पात्राभावे कथं भवेत्।
गोत्रजेभ्य स्तथा दद्यात् तदभावे स्वबन्धुषु॥
परोक्षेऽपिच यद्दत्तं भावपूर्व्वेण चेतसा।
गुरु-मित्र-द्विजातिभ्य स्तत्तु दानमनन्तकम्॥
परोक्षे खलु यद्दत्तं स्वस्त्यक्षरविवर्जितम्।
दृश्यते सागरस्यान्त स्तस्यान्तोनैव दृश्यते॥

आपस्तम्बः। तस्मादोमित्युदाहृत्य यज्ञ-दान-तपः-क्रियाः।
प्रवर्त्तन्ते विधानोक्ताः सततं ब्रह्मवादिनः॥
त्रिमात्रस्तु प्रयोक्तव्यः कर्म्मारम्भेषु सर्व्वशः।
तिस्रः सार्द्धास्तु कर्त्तव्या मात्रास्तत्त्वार्थचिन्तकैः।
देवताध्यानकाले न प्लुतं कुर्य्यात् न संशयः॥

वृद्धवशिष्ठः। नामगोत्रे समुच्चार्य्य सम्प्रदानस्यात्मनः।
सम्प्रदेयं प्रयच्छन्ति कन्यादाने तु पुंस्त्रयम्।
('पुंस्त्रयमिति, प्रपितामहादिपुरुषत्रयमित्यर्थः)।

तदुक्तं। नान्दीमुखे विवाहे च प्रपितामहपूर्व्वकम्।
नाम सङ्कीर्त्तयन् विद्वानन्यत्र पितृपूर्व्वकम्॥
तथा दानहोमजपान् कुर्व्वन्नासीनःकुशसंस्तरे।
एषां फलमनन्तन्तु लभते प्राङ्मुखोनरः॥

स्मृत्यन्तरात्। नामगोत्रे समुच्चार्य्य सम्यक्श्रद्धान्वितो ददेत्।
सङ्कीर्त्य देशकालादि तुभ्यं सम्प्रददे इति।
न ममेति स्वस्वत्वस्य निवृत्तिमपि कीर्त्तयेत्॥

षट्त्रिंशन्मतात्। प्रणीते तु समिद्धेऽग्नौ जुहुयादाहुतित्रयम्।
उदगग्रेषु दर्भेषु पात्रं तेषूपपादयेत्॥

प्रागग्रेषु स्वयंस्थित्वा दाता च परमेश्वरम्।
ध्यात्वा स्वपुण्यमुद्दिश्य दक्षिणां प्रतिपादयेत्॥
समस्ता व्याहृतीर्हुत्वा तत्रोपरि समापयेत्।
ब्राह्मणं प्रतिपत्याथ ततः पात्रं विसर्जयेत्॥
अनेन विधिना दानं दातव्यं होमपूर्व्वकम्।
तत्कर्म्मदक्षिणावर्ज्जं होमवर्जञ्च नार्हति॥

एतच्च विहिताङ्गभूतहोमकेषु होमानुवादपुरःसरमुपदर्शितं तत्तद्गुणविधिपरम्, अन्यथा ह्यतथादृष्टशिष्टाचारेषु ताम्बूलादिदानेष्वपि प्रसङ्गः स्यात्। अथ प्रतिग्रहीतृधर्म्माः।

ब्रह्माण्ड पुराणे।

शुचिः पवित्रपाणिश्च गृह्णीयादुत्तरामुखः।
अभीष्ट देवतां ध्यायन् मनसा विजितेन्द्रियः॥
कृतोत्तरीयको नित्यमन्तर्जानुकरस्तथा।
दातुरिष्टमभिध्यायन् प्रगृह्णीयात् प्रयतः शुचिः॥

आपस्तम्बः। आर्द्रवासास्तु यः कुर्य्यात् जपहोमं प्रतिग्रहम्।
सर्व्वं तद्राक्षसं विन्द्यात् बहिर्जानु च यत्कृतम्॥

बौधायनः। काषायवासा कुरुते जपहोमप्रतिग्रहान्।
तद्देवगमं भवति हव्यकव्यं स्वधा हविः॥

छागलेयः। हस्तमध्ये ब्रह्मतीर्थं दक्षिणाग्रहणे न तु॥

आह प्रचेताः। दक्षिणमध्यहस्ते ब्राह्मणस्याग्नेयं तीर्थमाग्नेयेन प्रतिगृह्णीयादिति।

गारुड़पुराणे, ।

स्नातः सम्यगुपस्पृश्य दधानो धौतवाससौ ।
सपवित्रकरश्चैव प्रतिगृह्णीत धर्म्मवित् ॥

विष्णुधर्म्मोत्तरे । मृतके सूतके विप्रा नतु ग्राह्यः प्रतिग्रहः ।
तत्रापिच तथा ग्राह्या नरैरभयदक्षिणा ॥
कालः स एव ग्रहणे यदा भयमुपस्थितम् ।
प्रतिग्रहास्तथान्ये तु ग्राह्या नाग्निचिता द्विजाः ॥
अभ्यक्तेन च धर्म्मज्ञास्तथा मुक्ताग्रिखेन च ।
स्नातः सम्यगुपस्पृश्य गृह्णीयात् प्रयतः शुचिः ॥
प्रतिगृह्णीता सावित्रीं सर्वत्रैवानुकीर्त्तयेत् ।
ततस्तु कीर्त्तयेत् सार्द्धं द्रव्येण द्रव्यदेवताम् ॥
समापयेत्ततः पश्चात् कामस्तुत्या प्रतिग्रहम् ।
तदन्ते कीर्त्तयेत् स्वस्ति प्रतिग्रहविधिस्त्वयम् ॥

'सावित्री सवितृदेवत्या ऋक्, देवस्यत्वेत्यादिप्रसिद्धा ।

'द्रव्यदेवतां' अभयं सर्व्वदैवत्यमित्यादिवक्ष्यमाणाम्, 'कामस्तुत्या' कोदात् कस्मा अदादितिमन्त्रेण, शाखान्तरे तु कामः कामायेत्यादिप्रसिद्धा ।

आदित्यपुराणे । ओङ्कारमुच्चरन् प्राज्ञो द्रविणं स कुशोदकम् ।
गृह्णीयाद्दक्षिणे हस्ते तदन्ते स्वस्ति कीर्त्तयेत् ॥

तथा । प्रतिग्रहं पठेदुच्चैः प्रतिगृह्य द्विजोत्तमात् ।
मन्त्रं पठेत्तु राजन्ये उपांशु च तथा विधि ॥
मनसा तु तथा शूद्रे स्वस्तिवाचनमेव च ।
सोंकारं ब्राह्मणे कुर्य्यान्निरोंकारं महीपतौ ॥

उपांशु च तथा वैश्ये मनसा स्वस्ति शूद्रजे।

'प्रतिग्रहम्' प्रतिग्रहमन्त्रः। 'मन्त्रं'' मध्यमस्वरम्।

ब्राह्मणे दातरि सोंकारं स्वस्तिवाचनं कुर्य्यात्। एवं क्षत्रियादिषु''।

विष्णुधर्म्मोत्तरे। अभयं सर्वदैवत्यं भूमिर्वै विष्णुदेवता।

कन्या दासस्तथा दासी प्राजापत्याः प्रकीर्त्तिताः॥

तथा चैकशफं सर्व्वं कथितं यमदैवतम्।

महिषश्च तथा याम्य उष्ट्रो वै नैरृतो भवेत्॥

रौद्री धेनुर्विनिर्द्दिष्टा छागमाग्नेयमादिशेत्।

मेषन्तु वारुणं विन्द्याद्वराहं वैष्णवं तथा।

आरण्याः पशवः सर्वे कथिता वायुदेवताः॥

जलाशयानि सर्व्वाणि वारिधानीं कमण्डलुम्।

कुम्भश्च करकश्चैव वारुणानि निबोधत॥

समुद्रजानि रत्नानि वारुणानि द्विजोत्तमाः।

आग्नेयं कनकं प्रोक्तं सर्व्वलोहानि चाप्यथ॥

प्राजापत्यानि सर्व्वाणि पक्वान्नमपि च द्विजाः।

ज्ञेयाश्च सर्वगन्धास्तु गान्धर्व्वा वै विचक्षणैः॥

बार्हस्पत्यं स्मृतं वासः सौम्या ज्ञेया रसास्तथा।

पक्षिणस्तु तथा सर्वे वायव्याः परिकीर्त्तिताः॥

विद्या ब्राह्मी विनिर्द्दिष्टा विद्योपकरणानि च।

सारस्वतानि ज्ञेयानि पुस्तकादीनि पण्डितैः॥

सर्वेषां शाल्यभाण्डानां विश्वकर्म्मा सुदैवतः।

द्रुमाणामथपुष्पाणां शाकैर्हरितकैः सह॥

फलानामपि सर्व्वेषान्तथा ज्ञेयो वनस्पतिः॥
मत्स्यमांसे विनिर्द्दिष्टे प्राजापत्ये तथैव च।
छत्रं कृष्णाजिनं शय्यां रथ-मासनमेव च॥
उपानहौ तथा यानं यच्चान्यत्प्राणिवर्जितम्।
तत्तु चाङ्गिरसत्वेन प्रतिगृह्णीत मानवः॥
शूरोपयोगि यत् सर्व्वं शास्त्र-धर्म्म-ध्वजादिकम्।
रणोपकरणं सर्व्वं विज्ञेयं सर्व्वदैवतम्॥
गृह्णन्तु शक्रदैवत्यं यदनुक्तं द्विजोत्तमाः।
तज्ज्ञेयं विष्णुदैवत्यं सर्व्वं वा द्विजसत्तमाः॥
द्रव्याणामथ सर्व्वेषां देवसंश्रयणान्नरः।
वाचयेज्जलमादाय करेणाथ प्रतिग्रहम्॥
दातुमत्र प्रयोगान्ते* ह्यमुकस्मै सुराय वै।
इदमोंप्रतिगृह्णामि तदन्ते स्वस्ति कीर्त्तयेत्॥

तद्यथा। अग्नये हिरण्यं प्रतिगृह्णामीति।

द्रव्याण्यथाव्ययादाय स्पृष्ट्वा तान् ब्राह्मणः पठेत्।
कन्यादाने तु न पठेद्द्रव्याणान्तु पृथक् पृथक्॥
प्रतिग्रहे द्विजा श्रेष्ठा स्तथैवान्तर्भवन्ति ते।
प्रतिग्रहस्य यो धर्म्मां न जानाति द्विजोविधिम्।
द्रव्यस्तैन्यसमायुक्तो नरकं प्रतिपद्यते॥
विधिन्तु धर्म्मां विज्ञाय ब्राह्मणस्तु प्रतिग्रहे।
दात्रा सह तरत्येव महादुर्गाण्यसौ भुवम्॥

---

* दातुर्म्मन्त्रप्रयोगान्ते इति पाठान्तरम्।

तस्मादुक्तं विधिं कृत्वा ब्राह्मणस्तु प्रतिग्रहे।
आत्मनः श्रेयसोयोगं कुर्य्याद्दानन्तथैवच॥
तस्मात् सर्व्वप्रयत्नेन विधिर्ज्ञेयः प्रतिग्रहे॥

तथा। भूमेः प्रतिग्रहं कुर्य्याद्भूमिं कुर्वन् प्रदक्षिणम्।
करे गृहीत्वा कन्यान्तु दासदास्यौ द्विजोत्तमः।
करन्तु हृदि विन्यस्य धर्म्मज्ञो ज्ञेयः प्रतिग्रहः॥

'प्रतिग्रहं, स्वीकारम्।

आरुह्य च गजस्योक्तः कर्णेचाश्वस्य कीर्त्तितः।
तथाचैकशफानान्तु सर्व्वेषाञ्चा विशेषतः॥
प्रतिगृह्णीत तान् शृङ्गे पुच्छे कृष्णाजिनन्तथा।

(सामान्येनैकशफानां कर्णे प्रतिग्रहः उक्तः, येत्वेकशफाः शृङ्गिणः, तान्विशेषतः शृङ्गे प्रतिगृह्णीतेत्यर्थः)।

कर्णजाः पशवः सर्व्वे ग्राह्या पुच्छे विचक्षणैः॥
गृह्णीयान्महिषं शृङ्गे खरं वै पृष्ठदेशतः।
प्रतिग्रहमथोष्ट्रस्य यानानां चाधिरोहणात्॥
बीजानां मुष्टिमादाय रत्नान्यादाय सर्व्वतः।
वस्त्रं दशान्तादादद्या*त्परिधायाथवा पुनः॥
आरुह्योपानहौ मस्तमारुह्यैव च पादुके।
धर्म्मध्वजौ च संस्पृष्टा प्रविश्य च तथा गृहम्॥
अवतीर्य्य च सर्व्वाणि जलस्थानानि वै द्विजाः।
ईषायान्तु रथो ग्राह्यः छत्रं दण्डं तथैव च॥
द्रुमांश्च प्रतिगृह्णीयान्मूलन्यस्तकरोद्विजः।

---

* वस्त्रं दशान्तमादद्यादिति पाठान्तरम्।

आयुधानि समादाय तथामुच्य विभूषणम् ॥

'ईषायां' दण्डाग्रे । 'आमुच्य' वध्वेत्यर्थः ।

परिशिष्टे । परिगृह्णीत गां पुच्छे कर्णे वा हस्तिनं करे ।

मूर्द्ध्नि दासीमजाञ्चैव पृष्ठेऽश्वतरगर्द्दभौ ॥

अश्वं कर्णे शटे वापि अन्तमुद्दिश्य धारयेत् ।

शय्या-सन-गृह-क्षेत्रं संस्पृश्यादाय काञ्चनम् ॥

उष्ट्रञ्च ककुदि स्पृष्ट्वा मृगांश्च महिषादिकान् ।

गोधामश्वविधानेन पुच्छे संस्पृश्य पक्षिणः ॥

दंष्ट्रिणो दंशितञ्चैव तथा क्षुद्रमृगांश्च ये ।

अजादीनांतु सत्वानामेष एव विधिः स्मृतः ॥

छत्रं दण्डे तरूम्मूले फलं संगृह्य गौरवात् ।

प्रगृह्योपानहौमश्च वाचयेत् प्रतिमुच्य वै ॥

वासस्त्वथ समादाय कन्याशीर्षेऽथवा करे ।

ऋतौ भार्यां परपूर्व्वां प्रतिह्णीत चाक्षताम् ॥

पुत्रमुत्सङ्गमारोप्य प्रतिगृह्णीत दत्तकम् ।

रथं रथमुखे स्पृष्ट्वा प्रतिगृह्णीत कूवरे ॥

'कूवरः' युगाधारकाष्ठम् ।

युग्य-काञ्चन-वस्त्राणां नाङ्गयुक्ते प्रतिग्रहः ॥

अथोभयधर्माः ।

गरुड़पुराणे । दैवम्वा कर्म्म पित्र्यम्वा नाशुचिः कर्त्तुमर्हसि ॥

स्नानमेव द्विजातीनां परं शुद्धिकरं स्मृतम् ॥

अतः स्नातोऽर्हता मेति दानेचैव प्रतिग्रहे ।

स्नातमस्नायिना कर्म्म राक्षसत्वाय कल्पते ॥

प्रजापतिः कर्म्मगुप्तेः पवित्रमसृजत्पुरा।
रक्षोघ्नमेतत् परमं मुनिभिः कल्पितं सदा॥
तस्मात्तत्करयो र्द्धार्य्यं ददता प्रतिगृह्णता।
स्नान-होम-जपादीनि कुर्व्वता च विशेषतः॥
संत्यज्य वैष्णवं मार्गं ब्रह्ममार्गविनिर्गतम्।
सकृत् प्रदक्षिणीकृत्य पवित्रमभिधीयते॥
वायुपुराणे। दानं प्रतिग्रहो होमो भोजनं बलिरेव च।
साङ्गुष्ठेन सदा कार्य्यमसुरेभ्योऽन्यथा भवेत्॥
'साङ्गुष्ठेन, अङ्गुलीसङ्गताङ्गुष्ठेन'।
एतान्येव च कार्य्याणि दानादीनि विशेषतः।
अन्तर्जानु विधेयानि तद्वदाचमनं नृप॥
बौधायनः। भोजनं हवनं दानमुपहारः प्रतिग्रहः।
बहिर्जानु न कार्य्याणि तद्वदाचमनं स्मृतम्॥
ब्रह्माण्डपुराणे। नाधिकारी मुक्तकक्षो मुक्तचूड़स्तथैव च।
दाने प्रतिग्रहे यज्ञे ब्रह्मयज्ञादिकर्म्मसु॥
देवाः समेत्य वस्त्रं हि तत्र पुंसामकल्पयन्।
ततश्च वाससा हीनमसम्पूर्णं प्रचक्षते॥
सोत्तरीयस्ततः कुर्यात् सर्व्वकर्म्माणि भाविनः।
अधौतं काकधौतञ्च परिदध्यान्न वाससी।
ददानः प्रतिगृह्णंश्च दध्यादहतमेवच॥
वाराहपुराणे। सुस्नातः सम्यगाचान्तः कृतसंध्यादिकक्रियः।
काम-क्रोध-विहीनश्च पाषण्डस्पर्शवर्जितः।
जितेन्द्रियः सत्यवादी पात्रं दाता च शस्यते॥

तथा। प्रमीते गोत्रपुरुषे सूतके वा समागमे।

दशरात्रमनर्हः स्यात् कर्त्तुं दान-प्रतिग्रहौ॥

पिण्डोदकादि मृतके दातुं प्रेताय युज्यते।

आच्छिन्नायां तथा नाड्यां दानार्हौ मृतसूतके॥

विष्णुधर्मोत्तरे। शुचिर्वाप्यशुचिर्वापि दद्यादभयदक्षिणाम्।

शुचिनाऽशुचिना वापि ग्राह्योऽभयमुपस्थितम्॥

छन्दोगपरिशिष्टम्

तत्र कात्यायनः। कुशोपरि निविष्टेन तथा यज्ञोपवीतिना।

देयं प्रतिग्रहीतव्यमन्यथा विफलं हि तत्॥

आह जातूकर्ण्यः। ओङ्कारेण दद्यात् प्रतिगृह्णीयाच्च॥

स्कन्दपुराणे। प्रणवो जगतां बीजं वेदानामादिरेव च।

एष एव परं ब्रह्म पवित्रमयमुत्तमम्।

तस्मात् प्रणवमुच्चार्य्य कार्य्यौ दान-प्रतिग्रहौ॥

यमः। योऽर्च्चितं प्रतिगृह्णाति योऽर्च्चयित्वा प्रयच्छति।

तावुभौ गच्छतः स्वर्गं विपरीते विपर्य्ययः॥

लिङ्गपुराणे। दद्याद्दानं यथा शक्त्या सदाभ्यर्च्चनपूर्व्वकम्।

ब्राह्मणश्चापि गृह्णीयाद्भक्त्या दत्तं प्रतिग्रहम्॥

शातातपः। प्रश्नपूर्व्वन्तु यो दद्यात् ब्राह्मणाय प्रतिग्रहम्।

स पूर्व्वं नरकं याति ब्राह्मणस्तदनन्तरम्॥

'प्रश्नपूर्व्वमिति'। एतमध्यायं एतमनुवाकम्वा यदि त्वमस्खलितं पठसि तदा तएतावद्ददामीत्युक्त्वा तथा कृते यद्दीयते तत् 'प्रश्नपूर्व्वकम्'।

व्यासः। अवमानेन यो दद्याद्गृह्णीयाद्यः प्रतिग्रहम्।

तावुभौ नरके मग्नौ वसेतां शरदां शतम्॥

शातातपः। कार्य्यलोभेन यो दद्याद्गृह्णीयाद्यः प्रतिग्रहम्।
दाताग्रे नरकं याति ब्राह्मणस्तदनन्तरम्॥

विष्णुधर्मोत्तरे। प्रतिग्रहोयोविधिना प्रदत्तः
प्रतिग्रहो योविधिना गृहीतः।
द्वयोः प्रयोगश्चरमन्तु कार्य्यः
श्रेयस्तथाप्नोति न संशयोऽत्र॥

अथ मिश्रधर्माः।

नन्दिपुराणे। दाने विधिमविज्ञाय नहि तद्दातुमर्हति।
प्रतिग्रहानभिज्ञश्च गृह्णन्निरयमश्नुते॥
सावज्ञं प्रतिगृह्णानो ग्रहीतापि पतत्यधः॥
किन्त्वं वेत्सीति वक्तव्यो न दात्रा ब्राह्मणः क्वचित्।
सोपि पृष्टः स्वयं तेन दानार्थं तं न कीर्त्तयेत्॥

"यदि त्वमेतत् पठसि तदा तुभ्यमेतद्ददामीति साक्षात् परीक्षणमत्र निषिध्यते, पात्रत्वबोधार्थमुपायान्तरेण परीक्षणत्वमनुमतमेव"।

तदुक्तं यमेन। शीलं संवसनाज्ज्ञेयं शौचं संव्यवहारतः।
प्रज्ञा संकथनात् ज्ञेया त्रिभिः पात्रं परीक्ष्यते॥
'संकथनं, शुद्धभावेन विद्याकथा।

वाराहपुराणे। अपि सर्षपमात्रं हि नदेयं विचिकित्सता।
मनसा ह्यननुज्ञातः प्रतिगृह्णीत नैव हि॥
ददानः प्रतिगृह्णंश्च यतो लोभभयादिना।
नाप्नोति श्रेयसा योगं निरयं चैव गच्छति॥

नारदीयपुराणे। देश-काल-विधानाद्यैर्हीनं दानं भयावहम्।

दातुः प्रतिग्रहीतुश्च गृहीतमसतः सदा ॥

षट्त्रिंशन्मतात् । नामगोत्रे समुच्चार्य्य प्राङ्मुखो देयकीर्त्तनात् ।

उदङ्मुखाय विप्राय दत्त्वान्ते स्वस्ति वाचयेत् ॥

(देयकीर्त्तनादिति, देयकीर्त्तनोत्तरकालं दत्त्वेत्यर्थः) ।

प्राक्प्रत्यगास्या वोद्वाहे दातृग्राहकयोः स्थितिः ।

दद्यात् पूर्व्वमुखो द्रव्यमेष एव विधिः सदा ॥

(यत्तु कीर्त्तयन्ति, "प्राङ्मुखस्तु गृह्णीयाद्विवाहे तु विपर्य्यय" इति, तस्य समूलत्वे सिद्धे मनुष्ठानविकल्पः, तत्राप्यु-दङ्मुखसंप्रदानवैशिष्ट्यस्मृतेस्तदेवानुष्ठेयम्)

तदुक्तं स्मृत्यन्तरे ।

दद्यात् पूर्व्वमुखो दानं गृह्णीयादुत्तरामुखः ।

आयुर्व्विवर्द्धते दातुर्ग्रहीतुः क्षीयते तु तत् ॥

इति श्रीमहाराजाधिराज-श्रीमहादेवस्य समस्तकरणाधीश्वर-सकलविद्याविशारद-श्रीहेमाद्रिविरचिते चतुर्व्वर्गचिन्तामणौ दानखण्डे दानाङ्गप्रकरणम् ।

---

## अथ परिभाषाः ।

सिन्धौ दुर्धरकालकूटकुटिले * पीयूषशङ्केव का

कान्तानांमधुराधरासवरसस्पर्द्धा सुनिर्द्धारिता ।

इत्थं निन्दितमाह राहुरसनायोगो वियोगोत्तर-

स्तंनिःसीमसुधा-निधानमधुना हेमाद्रिसूरेर्गिरः ॥

अनेन सामान्यतया प्रतीयते महीतलम् ।

---

* सिन्धौ मधुरकालकूटकुटिले इति क्वचित्पाठः ।

अनेन सामान्यतया परिभाषेह कथ्यते॥

तत्राह याज्ञवल्क्यः। आर्षं छन्दश्च दैवत्यं विनियोगस्तथैव च।
वेदितव्यं प्रयत्नेन ब्राह्मणेन विशेषतः॥
अविदित्वा तु यः कुर्याद्याजनाध्ययनं जपम्।
होममन्तर्जलादीनि तस्य चाल्पफलं भवेत्॥

तथा। यश्च जानाति तत्त्वेन आर्षं छन्दश्च दैवतम्।
विनियोगं ब्राह्मणञ्च मन्त्रार्थं ज्ञानकर्म्म च।
एकैकस्य ऋषेः सोऽपि वन्द्यो ह्यतिथिवद्भवेत्।
देवतायाश्च सायुज्यं गच्छत्यत्र नसंशयः॥
पूर्व्वोक्तेन प्रकारेण ऋष्यादीन् वेत्ति यो द्विजः।
अधिकारी भवेत्तस्य रहस्यादिषु कर्म्मसु॥

तथा। येन यदृषिणा दृष्टं सिद्धिः प्राप्ता च येन वै।
मन्त्रेण तस्य तत् प्रोक्तमृषेर्भावस्तदार्षकम्॥
छन्दसा छन्द उद्दिष्टं* वाससी इव चाकृते।
आत्मा संच्छादितो देवै र्मृत्योर्भीतै स्तु वै पुरा॥
आदित्यैर्वसुभीरुद्रैस्तेन छन्दांसि तानि वै।
यस्य यस्य तु मन्त्रस्य उद्दिष्टा देवता तु या।
तदाकारं भवेत्तस्य देवत्वं देवतोच्यते॥
पुराकल्पे समुत्पन्ना मन्त्राःकर्म्मार्थएव च।
अनेन चेदं कर्त्तव्यं विनियोगः स उच्यते॥
नैरुक्तं यच्च मन्त्रस्य विनियोगप्रयोजनम्।
प्रतिष्ठानं स्तुतिश्चैव ब्राह्मणं तदिहोच्यते॥

* छदनात् छन्दइति पाठान्तरम्

एवं पञ्चविधं योगं जयार्थं गृह्यमनुस्मरेत्।
होमे चान्तर्जले योगे स्वाध्याये याजने तथा॥

छन्दोगपरिशिष्टम्।

तत्र कात्यायनः। अक्रिया त्रिविधा प्रोक्ता विद्वद्भिः कामकारिणाम्।
अक्रिया च परोक्ता च तृतीया वाऽयथाक्रिया॥
स्वशाखाश्रयमुत्सृज्य परशाखाश्रयश्च यः।
कर्त्तुमिच्छति दुर्म्मेधा मोघन्तत्तस्य यत् फलम्॥
यन्नाम्नातं स्वशाखायां पारक्यमविरोधि* यत्।
विद्वद्भिस्तदनुष्ठेयमग्निहोत्रादिकर्म्मवत्॥

'अग्निहोत्रं' यजुर्वेदशाखासु विहितं, यथा छन्दोगादिभिरनुष्ठीयते।

गृह्यपरिशिष्टकारः।

बह्वल्पं वा स्वगृह्योक्तं यस्य कर्म्म प्रकीर्त्तितम्।
तस्य तावति शास्त्रार्थे कृते सर्व्वःकृतो भवेत्॥
प्रवृत्तमन्यथा कुर्य्याद्यदि मोहात् कथञ्चन।
यतस्तदन्यथाभूतं तत एव समापयेत्॥

'प्रवृत्तम्', आरब्धम्। 'अन्यथाभूतं', क्रमाद्यन्यत्वेन यद्वैपरीत्यमापन्नम्।

समाप्ते यद्विजानीयान्†मयैतदयथाकृतम्।
तावदेव पुनःकुर्य्यान्नावृत्तिः सर्व्वकर्म्मणः॥

(एतत्तु कर्म्मसमाप्तावन्यथाकरणताविषयम्)।

प्रधानस्याक्रिया यत्र साङ्गन्तत्क्रियते पुनः।

* परोक्तमविरोधीति क्वचित्पाठः।

† यदि जानीयादिति क्वचित्पाठः।

तदङ्गस्याक्रियायान्तु नावृत्तिर्नच तत्क्रिया ॥

"यत्र प्रधानकर्म्माकरणं तत्साङ्गमेव पुनःकर्त्तव्यं, तदङ्गाकरणे-पुनर्न साङ्गप्रधानावृत्तिर्नापि तावन्मात्रस्याङ्गस्य करणं किन्तु प्रायश्चित्तमेव कार्य्यम्।

गृह्यपरिशिष्टे। दर्भाः कृष्णाजिनं मन्त्रा ब्राह्मणा हविरग्नयः।

अयातयामान्येतानि नियोज्यानि पुनः पुनः ॥

मरीचिः। मासे नभस्यमावास्या तस्यां दर्भचयो मतः।

अयातयामास्ते दर्भा विनियोज्याः पुनः पुनः ॥

छन्दोगपरिशिष्टम्।

कात्यायनः। हरिता यज्ञिया दर्भा पीतकाः पाकयज्ञियाः।

समूलाः पितृदैवत्याः कल्माषा वैश्वदेविकाः।

ह्रस्वाः प्रवरणीयाःस्युः कुशा दीर्घाश्च बर्हिषः ॥

पाकयज्ञियाः पाकयज्ञार्हाः।

"प्रवरणम, अनुष्ठानम्, तदर्हाः प्रवरणीयाः"।

लघुहारीतः। चितौ दर्भाः पथि दर्भा ये दर्भा यज्ञभूमिषु।

स्तरणासनपिण्डेषु षट्कुशान् परिवर्जयेत् ॥

पिण्डार्थं ये कृता दर्भा यैः कृतं पितृतर्पणम्।

मूत्रोच्छिष्टधृता ये च तेषां त्यागो विधीयते ॥

नीवीमध्येषु ये दर्भा ब्रह्मसूत्रे च ये कृताः।

पवित्रांस्तान्विजानीयाद्यथा काय*स्तथा कुशाः ॥

अनन्तगर्भिणं साग्रं कौशं द्विदलमेवच।

प्रादेशमात्रं विज्ञेयं पवित्रं यत्र कुत्रचित् ॥

---

* यथा काशा इति पाठान्तरम्।

तदेव दर्भपिञ्जल्या लक्षणं समुदाहृतम् ।
आज्यस्योत्पवनार्थं यत् तदप्येतावदेव तु ॥

आपस्तम्बः । देवागारे तथा श्राद्धे गवां गोष्ठे तथाध्वरे ।
सन्ध्ययोश्च द्वयोः साधुसङ्गमे गुरुसन्निधौ ॥
अग्न्यागारे विवाहेषु स्वाध्याये भोजने तथा ।
उद्धरेद्दक्षिणं पाणिं ब्राह्मणानां क्रियापथे ॥

(उद्धरेद्दक्षिणंपाणिमिति सव्यांशे वस्त्रं निधाय दक्षिणं बाहुमुत्तरीयाद्बहिः कुर्य्यादित्यर्थः ।)

याज्ञवल्क्यः । रौद्रपित्रासुरान्मन्त्रांस्तथा दैवाभिचारिकान् ।
व्याहृत्यालभ्य चात्मानमपः स्पृष्टान्यदाचरेत् ॥

छन्दोगपरिशिष्टम् ।

कात्यायनः । पित्र्यमन्त्रप्रवरणे आत्मालम्भे अवेक्षणे ।
अधोवायुसमुत्सर्गे प्रहासेऽनृतभाषणे ॥
मार्ज्जार-मूषिक-स्पर्शे आक्रुष्टे क्रोधसम्भवे ।
निमित्तेष्वेषु सर्व्वत्र कर्म्म कुर्व्वन्नपः स्पृशेत् ॥

"आत्मालम्भे, हृदयस्पर्शे, यज्ञादौ विहिते, अवेक्षणमपि यज्ञादिविहितमेव ग्राह्यम्" ।

याज्ञवल्क्यः । यदि वाग्यमलोपः स्याज्जपादिषु कथञ्चन ।
व्याहरेद्वैष्णवं मन्त्रं स्मरेद्वा विष्णुमव्ययम् ॥
अज्ञानाद्यदि वा मोहात् प्रच्यवेताध्वरेषु यत् ।
स्मरणादेव तद्विष्णोः सम्पूर्णं स्या दिति श्रुतिः ।

तथा शतपथश्रुतिः ।

अथ यद्वाचंयमो व्याहरति तस्मादुहैष विसृजो यज्ञः पराङ्-

वर्त्तते, तत्र वैष्णवीमृचमथवा यजुर्व्वा जपेदित्यादि।

छन्दोगपरिशिष्टम्।

कात्यायनः। यत्रोपदिश्यते कर्म्मकर्त्तुरङ्गं न तूच्यते।
दक्षिणस्तत्र विज्ञेयः कर्म्मणां पारगः करः॥
यत्र दिङ्नियमो नास्ति जपहोमादिकर्म्मसु।
तिस्रस्तत्र दिशः प्रोक्ता ऐन्द्री सौम्यापराजिता॥

'ऐन्द्री, प्राची। सौम्या, उत्तरा। 'अपराजिता, ईशानदिक्।

आसीन ऊर्द्धः प्रह्वो वा नियमो यत्र नेदृशः।
तदासीनेन कर्त्तव्यं न प्रह्वेण न तिष्ठता॥

'प्रह्वः, प्रणतजानुकः। प्रह्वेण, नम्रेण। तिष्ठता, ऊर्द्धेण।

वशिष्ठः। जपहोमोपवासेषु धौतवस्त्रधरो भवेत्।
अलङ्कृतः शुचिर्म्मौनी श्रद्धावान् विजितेन्द्रियः॥

कात्यायनः। सदोपवीतिना भाव्यं सदा बद्धशिखेन तु।
विशिखोऽनुपवीतश्च यत् करोति न तत् कृतम्॥

निगमपरिशिष्टे। वामस्कन्धे यज्ञोपवीतम्, दैवे प्राचीनावीत मितरथा पितृयज्ञे नार्थ्यां हिकण्ठासक्तमुत्सर्गे निवीतं पृष्ठ-देशावलम्बि ग्राम्यधर्म्मेषु।

'ग्राम्यधर्म्मः, स्त्रीसंयोगः'।

बौधायनः। कर्म्मयुक्तो नाभेरधःस्पर्शं वर्जयेत्।

आह मनुः। चण्डालश्च वराहश्च कुक्कुटः श्वा तथैव च।
रजस्वला च षण्ढश्च नेक्षेरन्नश्नतो द्विजान्॥
होमे प्रदाने भोज्ये च यदेभिरभिवीक्ष्यते।
दैवे हविषि पित्र्ये वा तद्गच्छत्ययथातथम्॥

स्कन्दपुराणे । पाषण्डिनश्च पतिता ये च वै नास्तिका जनाः ।
पुण्यकर्माणि तेषां वै सन्निधिर्नेष्यते क्वचित् ॥

अथ विज्ञानललितात् ॥

पृथिव्यप्तेजसां वायोर्मण्डलानि क्रमेण तु ।
पीतं वज्रि चतुष्कोणं पार्थिवं शक्रदैवतम् ॥
हस्तार्द्धमाप्यं पद्माकं शुक्लं वरुणदैवतम् ।
अस्त्रं स्वस्तिकसंयुक्तं तैजसं वह्निदैवतम् ॥
वृत्तं विन्दवृतं वायुदैवतम् कृष्णमानिलम् ॥

गरुड़पुराणे । कस्तूरिकाया द्वौ भागौ चत्वारश्चन्दनस्य च ।
कुङ्कुमस्य त्रयश्चैका शशिनः स्याच्चतुःसमम् ॥
कर्पूरचन्दनं दर्भकुङ्कुमं च समांशकम् ।
सर्व्वगन्धमिति प्रोक्तं समस्तसुरवल्लभम् ॥
तथा । कर्पूरमगुरुश्चैव कस्तूरीचन्दनं तथा ।
कक्कोलश्च भवेदेभिः पञ्चभिर्यक्षकर्द्दमः ॥

शिवधर्म्मे । पञ्चामृतं दधि क्षीरं सिता मधु घृतं नृप ॥ |

स्कन्दपुराणे । गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम् ।
पञ्चगव्यमिति प्रोक्तं सर्व्वपातकनाशनम् ॥

ब्रह्माण्डपुराणे । अश्वत्थोदुम्बरप्लक्षचूतन्यग्रोधपल्लवाः ।
पञ्चभङ्गा इति प्रोक्ताः सर्व्वकर्म्मसु शोभनाः ॥

पञ्चरात्रे । रजांसि पञ्चवर्णानि मण्डलार्थं हि कारयेत् ।
शालितण्डुलचूर्णेन शुक्लं वा यवसम्भवम् ॥
रक्तं कुसुम्भसिन्दूरगैरिकादिसमुद्भवम् ।
हरितालोद्भवं पीतं रजनीसम्भवं क्वचित् ॥

कृष्णैर्द्रव्यैर्भवेत् हरितं पीतकृष्णविमिश्रितम्॥

रजनी, हरिद्रा।

आदित्यपुराणे। अभावे सर्व्वरत्नानां हेम सर्व्वत्र योजयेत्।

रुद्रबीजं परं पूतं यतस्तस्यैव सर्व्वदा॥

भविष्यपुराणे। मधुरोऽम्लश्च लवणं कषायस्तिक्त एव च।

कटुकश्चेति राजेन्द्र रसषट्कमुदाहृतम्॥

स्कन्दपुराणे। दधि क्षीरमथाज्यञ्च माक्षिकं लवणं गुड़ः।

तथैवेक्षुरसश्चेति रसाः प्रोक्तामनीषिभिः॥

भविष्यपुराणे। अनुक्तद्रव्यतत्सङ्ख्यादेवताप्रतिमा नृप।

सौवर्णी राजती ताम्री वृक्षजा मार्त्तिकी तथा॥

चित्रजा पिष्टलेपोत्था निजवित्तानुरूपतः।

आमाषात्पलपर्य्यन्तं कर्त्तव्या शाठ्यवर्जितैः॥

सुवर्णं रजतं ताम्र-मारकूटं तथैव च।

लोहं त्रपु तथासीसं धातवः परिकीर्त्तिताः॥

तथा। आपः क्षीरं कुशाग्राणि दध्यक्षततिलास्तथा।

यवाः सिद्धार्थकाश्चैवमर्घोऽष्टाङ्गः प्रकीर्त्तितः॥

तथा। दूर्व्वा यवाङ्कुराश्चैव वालकं चूतपल्लवाः।

हरिद्राद्वयसिद्धार्थशिखिपत्रोरगत्वचः॥

कङ्कणौषधयश्चैताः कौतुकाख्या नव स्मृताः॥

छन्दोगपरिशिष्टे।

* कुष्ठं मांसी हरिद्रे द्वे मुरा शैलेयचन्दनम्।

* मुरामांसी वचा कुष्ठं शैलेयं रजनीद्वयम्।

षठी चम्पकमुस्तञ्च सर्व्वौषधिगणः स्मृत इति स्मार्त्ताः

वचा चम्पकमुस्ताश्च सर्व्वौषध्यो दश स्मृताः॥

आवाहनासनार्घं पाद्याचमनमधुपर्कस्नानापश्च॥

वासोभूषणगन्धसुमनोयुतधूपदीपभोज्यानि प्रादक्षिण्यं नतिरिति कथयन्त्युपचारषोड़शकम्।

विष्णुधर्म्मोत्तरे। हैमराजतताम्रा वा मृण्मया लक्षणान्विताः।

यात्रोद्वाहप्रतिष्ठादौ कुम्भाः स्युरभिषेचने॥

पञ्चाशाङ्गुलवैपुल्या उत्सेधे षोड़शाङ्गुला।

द्वादशाङ्गुलकं मूलं मुखमष्टाङ्गुलं भवेत्॥

पञ्चाशाङ्गुलेति, आशा दिशः, ताश्च, दशसंख्यावाचकत्वेन ज्योतिःशास्त्रादौ प्रतिद्धाः। "पञ्च च आशाश्च पञ्चाशाः।

तावन्ति अङ्गुलानि वैपुल्यं येषां ते तथाभूताः।

मध्यप्रदेशे तिर्य्यङ्मानेन पञ्चदशाङ्गुला इत्यर्थः। अथवा वाह्यप्रदेशे वलयाकृतिना सूत्रेण नीयमाना मध्यस्थाने पञ्चाशदङ्गुला इत्यर्थः। अस्मिन् पक्षे पञ्चाशाङ्गुलेति छान्दसः प्रयोगः, इति सङ्कीर्णविधिः।

अथ दक्षिणादिनिर्णयः।

तत्र शतपथश्रुतिः। स एष यज्ञोऽहतो नादक्षत देवा दक्षिणाभिरदक्षयं स्तद्यदेनं दक्षिणाभिरदक्षयं स्तस्माद्दक्षिणा नामेति।

भविष्यपुराणे। अदत्तदक्षिणं दानं व्रतस्यैव नृपोत्तम।

विफलं तद्विजानीयाद्भस्मनीव हुतं हविः॥

षट्त्रिंशन्मतात्।

अत्रायुक्तः शुचिर्दान्तो दानं दद्यात् सदक्षिणम्।

अदक्षिणन्तु यद्दानं तत्सर्व्वं निष्फलं भवेत्॥

मैत्रायणीयपरिशिष्टम्।

दक्षिणालाभे मूलानां भक्ष्याणां ददाति न त्वेवं यजेत्॥

तथाच शतपथश्रुतिः।

तस्मान्नादक्षिणं हविःस्यादिति॥

भविष्योत्तरे॥ काम्यं यद्दीयते किञ्चित्तत्समग्रं सुखावहम्।

असमग्रन्तु दोषाय भवतीह परत्र च॥

तस्मान्न दक्षिणाहीनं विधानविकलं न च।

देयं दानं महाराज समग्रफलकाङ्क्षया॥

अन्यथा दीयमानं तदपकाराय केवलम्।

प्रत्यक्षतश्चार्थहानिर्न च तत् फलदं भवेत्॥

आह भगवान् व्यासः॥ सुवर्णं परमं दानं सुवर्णं दक्षिणा परा।

सर्व्वेषामेवदानानां सुवर्णं दक्षिणेष्यते॥

एतच्च, विशेषविहितगोवस्त्रादिदक्षिणकदानवर्ज्जं सामान्यविहितदक्षिणेषु दानेषु व्यवतिष्ठते तत्रापि पराश्रेष्ठतमेति प्राशस्त्यं दर्शयति नत्वन्यां दक्षिणां निराचष्टे आनन्त्यार्थत्वाद्दक्षिणायाः सुवर्णस्य प्रकृष्टत्वात् सर्व्वदानेषु सुवर्णं दक्षिणेतिवचनार्थः, अन्यदपि पुष्पवस्त्राहारोपयिकं तण्डुलादिकं दक्षिणार्थेन योज्यं। यत्तु श्रूयते। "सर्व्वेषामेव दानानां सुवर्णं दक्षिणा स्मृता। सुवर्णे दीयमाने तु रजतं दक्षिणेष्यते" इति तदेतच्छ्रौतः स्त्वग्यं परित्यायग्रहातव्यम्।

सुवर्णं रजतं ताम्रं तण्डुला धान्यमेव च।

नित्यश्राद्धं देवपूजा सर्व्वमेव सदक्षिणम॥

स्कन्दपुराणे । देयद्रव्यशतीयांशं दक्षिणां परिकल्पयेत् ।
अनुक्तदक्षिणे दाने दशांशं वापि शक्तितः ॥
तुलापुरुषादिदानानि अधिकृत्य ।
लिङ्गपुराणे । दक्षिणा च शतस्यार्द्धं तदर्द्धं वा प्रदापयेत् ।
ऋत्विजाञ्चैव सर्व्वेषां दश निष्कान् प्रदापयेत् ॥
भविष्योत्तरे । ज्ञेयं निष्कशतं पार्थ दानेषु विधिरुत्तमः ।
मध्यमस्तु तदर्द्धेन तदर्द्धेनाधमः स्मृतः ॥
मेषाश्च कालपुरुषे तथान्येषु महत्स्वपि * ।
एवं वृषे तथेन्द्रे च धेनोः कृष्णाजिनस्य च ॥
अशक्तस्यापि क्रमोऽयं पञ्चसौवर्णिको विधिः ॥
अतोप्यल्पेन योदद्यान्महादानं नराधमः ।
प्रतिगृह्णाति वा तस्य दुःख-शोकावहं भवेत् ॥
जयाभिषेकमुदाहृत्य लिङ्गपुराणे ।
अष्टषष्टिपलोन्मानं दद्याद्वै दक्षिणां गुरोः ।
होतॄणाञ्चैव सर्व्वेषां त्रिंशत्पलमुदाहृतम् ॥
अध्येतॄणां तदर्द्धेन द्वारपानां तदर्द्धतः ॥

एतेनान्यत्रापि, गुरोर्व्वृहदृत्विजां तदर्द्धं जापकानां तदर्द्धं द्वारपालानामितिदक्षिणाविभागोऽवमन्तव्यः ।

ब्रह्मवैवर्त्ते सुबाहुरुवाच ।
देवानां प्रतिमां विप्र गृहीत्वा ब्राह्मणः स्वयम् ।
आत्मोपयोगं कुरुते विक्रीत्वा वा विभज्य वा ॥

* महत्स्वपीति क्वचित्पाठः ।

तिलधेन्वादयश्चैव कथं भक्ष्या विजानता।
धेनुत्वाद्भक्षणं शस्तं न शस्तंचेति संशयः।

विश्वामित्र उवाच।

धर्म्मस्य मूलं प्रथमं श्रुतिं वेदविदो जगुः।
श्रुतिर्म्मूलं स्मृतीनान्तु पुराणं सेतिहासकम्॥
श्रुतिमूलं समाख्यातं तदुक्तं नैव चालयेत्।
दानकाले तु देवत्वं प्रतिमानां प्रकीर्त्तितम्॥
धेनूनामपि धेनुत्वं श्रुत्युक्तं दानयोगतः।
दातुर्व्वै दानकाले तु धेनवः परिकीर्त्तिताः।
विप्रस्य व्ययकाले तु द्रव्यं तदिति निश्चयः॥
दानसम्बन्धिविप्रेण द्रव्यमागच्छता गृहम्।
तत्सर्वं विदुषा तेन विक्रेयं स्वेच्छया विभो॥
कुटुम्बभरणं कार्य्यं धर्म्मकार्य्यं च सर्व्वशः।
अन्यथा नरकं यातीत्येवमाह पितामहः॥
कथं तिलानां धेनुत्वं देवत्वं प्रतिमासु च।
उभयोः शास्त्रतो विद्याद्धेनुत्वं देवतां तथा॥
शास्त्रं प्रमाणं परमं प्रमाणानामिति स्थितिः।
आगमादेव लोकस्य प्रतीतिर्नान्यतः कुतः॥
पुराणं मानवो धर्म्मः साङ्गो वेदश्चिकित्सितम्।
आज्ञासिद्धानि चत्वारि न हन्तव्यानि हेतुभिः॥

अथ द्रव्यदानम्।

ब्रह्मपुराणे। धर्म्मशास्त्रेषु मानार्थं याः संज्ञा मुनिभिः स्मृताः।
ताः सर्व्वा व्यवहारार्थं बोद्धव्याः सम्प्रदायतः॥

मनुः । लोकसंव्यवहारार्थं याः संज्ञाः प्रथिता भुवि ।
ताम्र-रूप्य-सुवर्णानां ताः प्रवक्ष्याम्यशेषतः ॥
जालान्तरगते भानौ यत् सूक्ष्मं दृश्यते रजः ।
परमं तत्प्रमाणानां * त्रसरेणुः प्रचक्ष्यते ॥
त्रसरेणुष्टकं† ज्ञेया लिक्षैका ‡ परमाणुतः ।
ता राजसर्षपस्तिस्रस्ते त्रयो गौरसर्षपः ॥
सर्षपाः षट् यवोमध्य स्त्रियवन्त्वेककृष्णलः ।
पञ्चकृष्णलको माषस्ते सुवर्णस्तु षोड़श ॥
पलं सुवर्णाश्चत्वारः पलानि धरणं दश ।
द्वे कृष्णले समधृते विज्ञेयो रौप्यमाषकः ॥
ते षोड़श स्याद्धरणं पुराणश्चैव राजतः ।
कार्षापणस्तु विज्ञेयस्ताम्रिकः कार्षिकः पणः ॥
धरणानि दश ज्ञेयः शतमानस्तु राजतः ।
चतुःसौवर्णिको निष्को विज्ञेयस्तु प्रमाणतः ॥

याज्ञवल्क्यः । जाल-सूर्य्य-मरीचिस्थं त्रसरेणुरजः स्मृतम् ।
तेऽष्टौ लिक्षातु तास्तिस्रो राजसर्षप उच्यते ॥
गौरस्तु ते त्रयः षट् ते यवो मध्यस्तु ते त्रयः ।
कृष्णलः पञ्च ते माषस्ते सुवर्णस्तु षोड़श ॥
पलं सुवर्णाश्चत्वारः पञ्च वापि प्रकीर्त्तितम् ।

---

* प्रथमं तत्प्रमाणानामिति क्वचित्पाठः ।

† त्रसरेण्वोऽष्टाविति वा पाठः ।

‡ परिमाणत इति क्वचित्पाठः ।

द्वे कृष्णले रूप्यमाषो धरणं षोड़शैव ते ॥
शतमानन्तु दशभिर्धरणैः फलमेव च।
निष्कः सुवर्णाश्चत्वारः कार्षिकस्ताम्रिकःपणः ॥

आह विष्णुः।

जालस्थानमरीचिगतं रजः त्रसरेणुसंज्ञं, तदष्टकं लिक्षा, तत्त्रयो राजसर्षपः, तत्त्रयं गौरसर्षपः, ते षट् यवः, तत्त्रयं कृष्णलं, तत्पञ्चकं माषः, तद्द्वादशकमक्षार्द्धं, सचतुर्म्माषकं सुवर्णः, तच्चतुःसौवर्णिकोनिष्कः. द्वे कृष्णले रूप्यमाषकः, ते षोड़श धरणम्। ताम्रिकः) कार्षापणः।

कात्यायनः। माषो विंशतिभागस्तु ज्ञेयः कार्षापणस्य तु।
काकिणी तु चतुर्भागो माषस्यच पणस्य च ॥
पञ्चनद्याः प्रदेशे तु संज्ञेयं व्यावहारिकी।
कार्षापणप्रमाणन्तु तन्निबद्धमिहैव या ॥
कार्षापणस्यैकांशेया ताश्चतस्रस्तु धानकः।
ते द्वादश सुवर्णस्तु दीनारस्तु चिकः स्मृतः ॥

नारदः। कार्षापणो दक्षिणस्यां दिशि रौप्यः प्रवर्त्तते।
पणैर्निबद्धः पूर्व्वस्यां षोड़शैव पणस्य तु ॥

अगस्तिप्रोक्तेपि।

यवः स्यात् सर्षपैः षड्भिर्गुञ्जा च स्यात् त्रिभिर्यवैः।
गुञ्जाभिः पञ्चभिश्चैको माषकः परिकीर्त्तितः ॥
भवेत् षोड़शभिर्माषैः सुवर्णस्तैः पुनः स्मृतम्।
चतुर्भिः पलमेकस्य दशसो धरणं विदुः ॥
अष्टभिर्भवति व्यक्तैस्तण्डुलो गौरसर्षपैः।

स वैष्णवो यवः प्रोक्तो गोधूमं चापरे जगुः ॥

विष्णुगुप्तः । पञ्च गुञ्जा भवेन्माषः शाणस्तैश्च चतुर्गुणैः ।

कणजो धरणं प्राहुर्धर्षिमानविशारदाः ॥

मञ्जाटिका कणजविंशैवस्तोल्यं गुञ्जाद्वयं विदुः ।

मञ्जाटिकाविंशतिस्तु धरणं तद्विदां मतम् ॥

स्थूलमध्यातिसूक्ष्माणां सुसूक्ष्माणामपि स्मृतम् ।

माषकैः पद्मरागः स्यादिन्द्रनीलादिषु स्मृतम् ॥

कुडुस्तत्र प्रयोक्तव्यो न यस्मिन्मानमीरितम् ।

दीनारो रोपकैरष्टाविंशत्या परिकीर्त्तितः ॥

सुवर्णस्य सप्ततिमो भागो रोपक इष्यते ॥

प्रकारान्तरेणाप्याह । सुक्षेत्रे यथावन्मध्यपाककाले निष्पन्ना धान्यमाषा दश सुवर्णमाषः, पञ्च वा गुञ्जाः सुवर्णमाषकः ते षोड़श सुवर्णः, एवं प्रमाणसिद्धस्य द्वितीया संज्ञा कर्ष इति । चतुष्कर्षं पलं, पलानां शतेन तुला, विंशतितौलिको भारः, अस्यैव भारस्य उदतौलिक इति द्वितीया संज्ञा ।

ब्रह्मप्रोक्ते । पलानां विंशतिर्विंशः पञ्चवींशास्तुला मता ।

उदतौलिकः स एव स्यात् भारो विंशतितौलिकः ॥

विष्णुगुप्तः । रूप्यस्य सुवर्णाद्भिन्नमानमभिधीयते अष्टाशीति गौरसर्षपा रूप्यमाषकः ते षोड़श धरणं निष्पावा विंशतिर्वा रूप्यपलञ्च दशधरणकं तत्पलानां शतन्तुला तत्तुलाविंशति-भार इति विंशत्या व्रीहितण्डुलैस्तुलायां विधृतैर्व्यञ्जाख्यरत्नस्य धरणं भवति । अष्टभिर्गौरसर्षपैस्तण्डुलं कल्पयेदितिकेचित् ।

तथा निर्घण्टौ । मानन्तुलाङ्गुलिप्रस्थैर्गुञ्जाः पञ्चाद्यमाषकः ।

ते षोड़शाक्षः कर्षोऽस्त्री पलं कर्षचतुष्टयम् ॥
सुवर्णविस्तौ हेम्नोऽक्षे कुरुविस्तस्तु तत्पले।
तुला स्त्रियां पलशतं भारः स्याद्विंशतिस्तुलाः ॥
आचितं दश भाराःस्युः शाकटो भार आचितः।
कार्षापणः कार्षिकः स्यात् कार्षिकस्ताम्रिकः पणः ॥

आदित्यपुराणे। एकं दश शतञ्चैव सहस्रं चेति सत्तम।
यथोत्तरं दशगुणं सहस्राणि दशायुतम् ॥
शताहतं सहस्रन्तु प्रोच्यते नियुतं* बुधैः ॥
तथा शतसहस्राणि दश प्रयुतमुच्यते।
शतं शतसहस्राणि कोटिरित्यभिधीयते ॥
अर्बुदं दशकोटास्तु वृन्दं कोटिशतं विदुः ॥
सहस्रं कोटयश्चापि खर्व्वमाहुश्च तद्विदः।
दशकोटिसहस्राणि निखर्व्वमिति संज्ञितम् ॥
शतङ्कोटिसहस्राणां शङ्कुरित्यभिधीयते।
सहस्रं कोटयश्चापि पद्ममात्रन्तु तद्विदुः ॥
सहस्रन्तु सहस्राणां कोटीनां दशधा पुनः।
गणितन्तु समुद्रं वै प्राहुः संख्याविदोजनाः ॥

अथ धान्यमानम्।

श्रीमार्कण्डेयपुराणे। यज्ञिरे तानि बीजानि ग्राम्यारण्याभिधानि च।
ओषध्यः फलपाकान्ताः शतं सप्तदश स्मृताः ॥
व्रीहयश्च यवाश्चैव गोधूमाः कङ्कास्तिलाः।
प्रियङ्गवः कोविदाराः कोरदूषाः सचीनकाः ॥

---

* नियुतमित्यत्र लक्षं प्रयुतमित्यत्र नियुतमितिकेचिदाऊरिति।

माषा मुद्गामसूराश्च निष्पावाः सकुलोत्थकाः।
आटक्यश्चणकाश्चैव शणः सप्तदश स्मृताः॥
इत्येता ओषधीनान्तु ग्राम्याणां जातयः स्मृताः।
ओषध्यो यज्ञिया ज्ञेया ग्राम्यारण्याश्चतुर्दश॥
व्रीहयश्च यवाश्चैव गोधूमाः कङ्गुसर्षपाः।
माषा मुद्गाः सप्तमाश्च अष्टमाश्च कुलोत्थकाः॥
श्यामाकाश्चैव नीवारा जर्तिलाः स गवेवेधुकाः।
कोविदारसमायुक्तास्तथा वेणुयवाश्च ये।
ग्राम्यारण्याः स्मृता ह्येता ओषध्यश्च चतुर्दश॥

स्कन्दपुराणे। यवगोधूमधान्यानि तिलाः कङ्गुकुलोत्थकाः।
माषा मुद्गा मसूराश्च निष्पावाः श्यामसर्षपाः॥
गवेधुकाश्च नीवारा आढ़क्योथ सतीनकाः।
चणकाश्चीनकाश्चैव धान्यान्यष्टादशैव तु॥

'धान्यानि, व्रीहयः। 'गवेधुकाः, कसकाः। 'नीवाराः, आरण्यव्रीहयः। 'सतीनका, वर्त्तुलकलायाः। चीनकाः, षष्टिकविशेषाः।

षट्त्रिंशन्मतात्। यवा गोधूमधान्यानि तिलाःकङ्गुस्तथैव च।
श्यामाकश्चीनकंचैव सप्तधान्यमुदाहृतम्॥

भविष्य पुराणे। पलद्वयंतु प्रसृतं द्विगुणं कुड़वं मतम्।
चतुर्भिःकुड़वैः प्रस्थः प्रस्थाश्चत्वार आढ़कः॥
आढ़कैस्तैश्चतुर्भिश्च द्रोणस्तु कथितोवुधैः।
कुम्भो द्रोणद्वयं सूर्पखारी द्रोणास्तु षोड़श॥

विष्णुधर्म्मोत्तरे। पलश्च कुड़वः प्रस्थ आढ़को द्रोण एव च।

धान्यमानेषु बोद्धव्याः क्रमशोऽमी चतुर्गुणाः॥
द्रोणैःषोड़शभिः खारी विंशत्या कुम्भ उच्यते।
कुम्भैस्तु दशभिर्वाधो धान्यसंख्याः प्रकीर्तिताः॥

वाराहपुराणे। पलद्वयन्तु प्रसृतम् मुष्टिरेकं पलं स्मृतम्।
अष्टमुष्टिर्भवेत्कुञ्चिः कुञ्चयोऽष्टौ तु पुष्कलम्॥
पुष्कलानि च चत्वारि आढ़कः परिकीर्तितः।
चतुराढ़को भवेत् द्रोण इत्येतन्मानलक्षणम्॥
चतुर्भिः सेतिकाभिस्तु प्रस्थ एकः प्रकीर्तितः।

(मुष्टिःयजमानस्येति केचित्। मुष्टिरेकं पलं स्मृतमिति प्रोक्तं सेतिकेति कुड़वः।

पाद्मे। चतुर्भिः कुड़वैःप्रस्थः प्रस्थैश्चतुर्भिराढ़कः।
चतुराढ़को भवेद्द्रोण इत्येतन्मानलक्षणम्।

अथ गोपथब्राह्मणे। पञ्चकृष्णलको माषस्तैश्चतुःषष्टिभिः पलम्॥
पलैर्द्वात्रिंशद्भिःप्रस्थो मागधेषु प्रकीर्तितः।
आढ़कस्तैःश्चतुर्भिश्च द्रोणःस्याच्चतुराढ़कः॥

द्रवद्रव्यविषये स्कन्दपुराणे।
पलद्वयेन प्रसृतम् द्विगुणं कुड़वं मतम्।
चतुर्भिः कुड़वैः प्रस्थ आढ़कस्तैश्चतुर्गुणैः॥
चतुर्गुणो भवेद्द्रोण इत्येतद्द्रवमानकम्।

अथ भूमानम्

आदित्यपुराणे। जालान्तरगते भानौ यत्सूक्ष्मं दृश्यते रजः।
प्रथमं तत्प्रमाणानां त्रसरेणुं प्रचक्षते॥
त्रसरेणुस्तु विज्ञेयो अष्टौ ये परमाणवः।

त्रसरेणवस्तु तेऽष्टौ रथरेणुस्तु स स्मृतः॥
रथरेणवस्तु ते ह्यष्टौ वालाग्रं तत्स्मृतं बुधैः।
वालाग्राण्यष्ट लिक्षा तु यूका लिक्षाष्टकं बुधैः॥
अष्टौ यूका यवं प्राहुरङ्गुलन्तु यवाष्टकम्।
द्वादशाङ्गुलमात्रो वै वितस्तिस्तु प्रकीर्तितः॥
अङ्गुष्ठस्य प्रदेशिन्या व्यासः प्रादेश उच्यते।
तालः स्मृतो मध्यमया गोकर्णश्चाप्यनामया।
कनिष्ठया वितस्तिस्तु द्वादशाङ्गुलिका स्मृता॥
रत्निस्त्वङ्गुलपर्व्वाणि विज्ञेयस्त्वेकविंशतिः।
चत्वारि विंशतिश्चैव हस्तः स्यादङ्गुलानि तु॥
किष्कुःस्मृतो द्विरत्निस्तु द्विचत्वारिंशदङ्गुलः।
षण्णवत्याङ्गुलैश्चैव धनुर्दण्डः प्रकीर्तितः॥
धनुर्दण्डयुगं नालि र्ज्ञेयोक्ते यवाङ्गुलैः।
धनुषा त्रिंशता नल्वमाहुः संख्याविदो जनाः॥
धनुःसहस्रे द्वे चापि गव्यूतिरुपदिश्यते।
अष्टौ धनुःसहस्राणि योजनन्तु प्रकीर्तितम्॥

मार्कण्डेय पुराणे। परमाणुः परं सूक्ष्मं त्रसरेणुर्महीरजः।
बालाग्रं चैव लिक्षा च यूका चाथ यवोऽङ्गुलम्॥
क्रमादष्टगुणान्याहुर्यवानष्टततोऽङ्गुलम्।
षडङ्गुलं पदं प्राहुर्वितस्तिर्द्विगुणं स्मृतम्॥
द्वौ वितस्ती ततोहस्तो ब्रह्मतीर्थं द्विचेष्टनैः।
चतुर्हस्तो धनुर्दण्डो नालिका तद्युगेन तु॥
क्रोशोधनुःसहस्रे द्वे गव्यूतिश्च चतुर्गुणा।

द्विगुणं योजनं तस्मात् प्रोक्तं संख्यानकोविदैः॥

बृहस्पतिः। दशहस्तेन दण्डेन त्रिंशद्दण्डा निवर्त्तनम्।

दश तान्येव गोचर्म्म ब्राह्मणेभ्योददाति यः॥

वसिष्ठः। दशहस्तेन वंशेन दशवंशान् समन्ततः।

पञ्चचाभ्यधिकान्दद्यादेतद्गोचर्म्म चोच्यते॥

विष्णुधर्म्मोत्तरे। यदुत्पन्नमथाश्नाति नरः संवत्सरं द्विजः।

एकं गोचर्म्ममात्रं तु भुवः प्रोक्तं विचक्षणैः॥

मत्स्यपुराणे। दण्डेन सप्तहस्तेन त्रिंशद्दण्डा निवर्त्तनम्।

त्रिभागहीनं गोचर्म्म मानमाह प्रजापतिः॥

वृद्धवसिष्ठः। गवांशतं वृषश्चैको यत्र तिष्ठेदयन्त्रितः।

एतद्गोचर्म्ममात्रं तु प्राहुर्वेदविदोजनाः॥

अथ मण्डपादि लक्षणम्।

बौधायनः। मध्याङ्गुलीकूर्परयोर्म्मध्ये प्रामाणिकः करः।

छन्दोगपरिशिष्टे। अङ्गुष्टाङ्गुलमानं तु यत्र यत्नोपदिश्यते।

तत्र तत्र बृहत्पर्व्वग्रन्थिभिर्मिनुयाद्बुधः॥

अथ पञ्चरात्रे। कुर्याद्वैष्णवयागेषु चतुर्द्वारांश्च मण्डपान्।

सारदारुभवांस्तंभान् दृढ़ान् कुर्य्यादृजून् समान्।

मण्डपार्द्धोच्छ्रितान् वेदसंख्यांश्चूड़ान्वितांस्तथा।

वलिका-मूर्द्धतस्तेषां स्तम्भद्वादशकं पुनः॥

वाह्ये पीठप्रमाणेन तत्र सूत्रविभागतः।

मध्यमोत्तमयोर्वेदी मण्डपस्य त्रिभागतः॥

चतुर्थांशोच्छ्रितिस्तस्यास्त्रिसप्तपञ्चतोपि वा।

नवैकादशहारंवा इष्टकाभिः प्रकल्पयेत्॥

कनीयान् दशहस्तः स्यान्मध्यमो द्वादशोन्मितः।
तथा षोड़शभिर्हस्तैर्मण्डपः स्याद्द्विजोत्तमः॥
वेदसंख्यान्, चतुःसंख्यानित्यर्थः।

चूडा, शिखा सा च स्तम्भशिरसि उपरितनसरम्भवलिकाप्रवेशनार्थं क्रियते॥

बाह्य, इति अन्तर्विन्यस्त स्तम्भचतुष्टयापेक्षया वाह्यत्वम्॥ अयमर्थः। पूर्वं मध्यस्तम्भचतुष्टयं विन्यस्य ततो बाह्यपरिधौ स्तम्भद्वादशकं विन्यसेत एवञ्च षोड़शस्तम्भो मण्डपः संप्रपद्यते। सूत्रविभागत इति, प्राक्पश्चिमायतस्य दक्षिणोत्तरायतस्य वा क्षेत्रसूत्रस्य तृतीयांशपरिमितं अन्तरालं विहाय स्तम्भा निवेशनीया इत्यर्थः। कन्यसे द्विकरमिति, कन्यसे मण्डपे द्विहस्तविस्तारं द्वारं कार्य्यम्। मध्यमोत्तमयोस्तु चतुरङ्गुलाभिवृद्ध्या विधेयम्।

विश्वकर्मवास्तुशास्त्रे।

मण्डपान्तरमुत्सृज्य कर्त्तव्यं मण्डपद्वयं। धाम्नोधाम्नान्तरं त्यक्त्वा धामाग्रे यज्ञमण्डपः। दशद्वादशहस्तो वा कलाहस्तोथवा पुनः। यदा मण्डपद्वयं क्रियते तदा प्रथममण्डपपरिमितमन्तरंत्यक्त्वा द्वितीयमण्डपं कुर्य्यात्। यदातु धामाग्रे मण्डपः क्रियते तदा तद्धामपरिमाणमन्तरं त्यक्त्वा परतो मण्डपं कुर्य्यादित्यर्थः।

कलाहस्तः, षोड़शहस्तः।

करैः षड्भिस्तु संछाद्या विजयाद्यास्तु मण्डपाः।
अश्वत्थो-डुम्बर-प्लक्ष-वट-शाखाकृतानि तु॥

मण्डपस्य प्रतिदिशं द्वाराण्येतानि कारयेत्।
पञ्चहस्तप्रमाणास्ते विस्तारेण द्विहस्तकाः॥
षडङ्गुलाभिवृद्धास्तु सप्तहस्ता यथोत्तमे।

पञ्चहस्तेति, कन्यसे मण्डपे पञ्चहस्ताः। मध्यमे षड्‌हस्ताः। उत्तमे सप्तहस्ताः द्वारशाखा विधेयाः॥

तथाहि।

हस्तात्प्रभृति षडङ्गुलाभिवृद्धा विस्तारो विधेयः।
मस्तके द्वादशांशेन शङ्ख-चक्र-गदाम्बुजम्॥
शाखादिक्रमयोगेन न्यसेत्तेषां सदारुजम्।
पञ्चमांशं न्यसेद्भूमौ सर्व्वसाधारणोविधिः॥

तत्र संग्रहे। प्रतिकुण्डं पताकास्तु प्रोक्ताः शास्त्रार्थकोविदैः।
सप्तहस्ताः पताकाःस्युः सप्तमांशेन विस्तृताः॥
लोकपालानुवर्णेन वङ्भीतु* हिमप्रभा।
पीत-रक्तादिवर्णाश्च पञ्चहस्ता ध्वजाः स्मृताः।
द्विपञ्चहस्तैर्दण्डैस्तैर्व्वंशजैः संयुता मताः॥
द्विपञ्चहस्तैः, दशहस्तैः।

गरुड़पुराणे। पञ्चहस्ता ध्वजाः कार्य्या वैपुल्येन द्विहस्तकाः।
सप्तहस्ताः पताकाःस्युस्त्रिंशत्यङ्गुलविस्तृताः।
दशहस्ताः पताकानां दण्डाः पञ्चाशवेशिताः।
सिन्दूराः कर्व्वुरा धूम्रा धूसरा मेघसन्निभाः॥
हरिताः पाण्डुवर्णाश्च शुभ्राः पूर्व्वादितःक्रमात्।
एवंवर्णाः शुभाःकार्य्याः पताकाः पाकशासनः॥

* नवमी तु क्वचित्पाठः।

भविष्यत्पुराणे। वेदिपादान्तरं त्यक्त्वा कुण्डानि नव पञ्च वा।
वेदास्राण्येव तानि स्युर्वर्त्तुलान्यथ वा क्वचित्॥
वेदास्राणि, चतुरस्राणि॥

आम्नायरहस्ये। कुण्डानि चतुरस्राणि हस्तनालाञ्जतीनि वा।
नव पञ्चाथ चैकं वा कर्त्तव्यं लक्षणान्वितम्॥
नवकुण्डविधाने तु दिक्षु कुण्डाष्टके स्थिते।
नवमं कारयेत् कुण्डं पूर्व्व-शान-दिगन्तरे।
विधाने पञ्च कुण्डानामीशाने पञ्चमं भवेत्।

ज्ञानरत्नावल्यां। दिक्षु वेदास्रहस्तानि पञ्चमं त्वीशगोचरे।

नारदीयेऽपि। यत्रोपदिश्यते कुण्डचतुष्कन्तत्र कर्म्मणि।
वेदास्रमर्द्धचन्द्रञ्च वृत्तं पद्मनिभं तथा॥
कुर्यात् कुण्डानि चत्वारि प्राच्यादिषु विचक्षणः।
कुण्डवेद्यन्तरञ्चैव सपादकरसम्मितम्।
पीठवद्वन्तु यत्कुण्डं सुप्रमाणं सुगर्त्तकम्॥

बह्वृचपरिशिष्टे। भूत्यै मुक्त्यै तथा पुष्ट्यै जीर्णोद्धारे विशेषतः।
सदाहोमे तथा शान्त्यै वृत्तं वरुणदिग्गतम्॥
कामिके तु तत्तद्दिक्षु तत्तत्फलार्थं कुण्डोक्तिर्यथा।
ऐन्द्र्यां स्तम्भे चतुष्कोणं अग्नौ भोगे भगाकृतिः।
चन्द्रार्द्धं मारणे याम्ये नैर्ऋते त्रिविकोणकम्॥
वारुण्यां शान्तिके वृत्तं षट्सु उच्चाटनेऽनिले।
उदीच्यां पौष्टिके पद्मं रौद्र्यामष्टास्रमुक्तिदम्॥

सर्व्वेषु चैतेषु होमानुसारेण हस्तादिमात्रं क्षेत्रफलमुपकल्पनीयम्।

तदुक्तं भविष्यपुराणे। मुष्टिमानं शतार्द्धे तु शते चारत्निमात्रिकम्।
सहस्रेत्वथ होतव्ये कुर्यात्कुण्डं करात्मकम्॥
द्विहस्तमयुते तच्च लक्षहोमे चतुःकरम्।
अष्टहस्तात्मकं कुण्डं कोटिहोमेषु नाधिकम्॥
मुष्टिमानमिति, बद्धमुष्टिहस्तमात्रमित्यर्थः॥
इदानीं चतुरस्रादिकुण्डानामुद्धारक्रमोऽभिधीयते॥
चतुरस्रं तावदाह विश्वकर्म्मा।
कृत्वा प्राक् सूत्रमर्द्धाङ्कं दक्षिणोत्तरमत्स्ययोः।
न्यस्य सूत्रं ततः कोणैरङ्कितैश्चतुरस्रकम्॥

पूर्व्वङ्किनाप्युपायेन प्राचीं निश्चित्य प्राक्पश्चिमायातां रेखामालिख्य तामर्द्धभागे लाञ्छयित्वा दक्षिणोत्तरदिशोर्म्मत्स्यद्वयं कुर्य्यात् सूत्रोपरि सूत्रान्तरनिपातनात् स्वस्तिकमध्याकृतिः शिल्पशास्त्रेषु मत्स्य इत्युच्यते। मत्स्यद्वयनिष्पत्तिश्चात्रैवं कार्य्या। पूर्व्वोक्तरेखापरिमितस्य सूत्रस्यादिं, तस्याएव रेखाया मूले निधाय तत्सूत्रान्तरं परिभ्रम्य वृत्तं रचयेत् तस्या एव रेखाया अपरप्रान्ते तस्यैव सूत्रस्यादिं निधाय तत्सूत्रान्तं परिभ्रम्य द्वितीयन्तं कुर्य्यात एवं वृत्ते द्वये कृते दक्षिणोत्तरदिशोर्मत्स्यद्वयं निष्पद्यते अथ मत्स्यद्वये पूर्वोक्तरेखालाञ्छने चैकं सूत्रं निष्पाद्य दक्षिणोत्तरायतां रेखां लिखेत्। एवं दिक्षु साधितासु विदिक्साधनार्थं कोणान् लाञ्छयेत्। तत्रायं प्रकारः। पूर्व्वनिष्पन्नरेखाप्रान्तचतुष्टयस्य प्रत्येकं पार्श्वद्वये चिकीर्षितपरिमाणस्यार्द्धमर्द्धं निधाय तत्सन्धौ कोणलाञ्छनानि कुर्य्यात् ततः कोणलाञ्छनेषु सूत्रचतुष्टयनिपातनात् पूर्व्वदिश्युदङ्मुखयो

निकं चतुरस्रं कुण्डं कुर्य्यात्। योन्याकारादीनामुत्तरश्चतुरस्र-प्रकृतिकस्तु कामिकशास्त्रात्।

पञ्चमांशं पुरोन्यस्य मध्ये वेदांशमानतः।

भ्रमादश्वत्थपत्राभं कुण्डमाग्नेयमुच्यते॥

क्षेत्रस्य पञ्चमभागं पुरप्राच्यां दिशि विन्यस्य मध्ये कोणसूत्रस्येति शेषः। वेदांश,ः तुरीयांशः। भ्रमात्, सूत्रान्तपरिभ्रमणेन अश्वत्थपत्राकारं कुण्डमाग्नेयदिशि कुर्य्यादिति। तत्रायं निर्म्माणप्रकारः। पूर्व्वोक्तन्यायेन समचतुरस्रीकृतस्य क्षेत्रस्य पश्चिमरेखामध्यात् पूर्व्वरेखामध्यभेदिनीं क्षेत्रसूत्र-पञ्चमांशाधिकां गर्भरेखामालिख्य नैर्ऋत्यदेशे कोणसूत्रान्तरीयांशे लाञ्छयित्वा तल्लाञ्छनोपरि विन्यस्तादेः सूत्रस्य पूर्व्वोक्तगर्भरेखामूलावन्यस्तं प्रान्तं परिभ्रम्य बहिर्व्वृत्तार्द्धं निष्पाद्य वायव्यकोणेऽप्येवमेव वृत्तार्द्धं रचयेत्। ततो गर्भरेखाप्रान्तात् वृत्तद्वयप्रान्तस्पर्शि सूत्रद्वयं निपात्य पिप्पलपत्राकारमाग्नेयदिश्युदङ्मुखयोनिकं योनिकुण्डं विदध्यात्। चतुरस्रे ग्रहैर्भक्ते त्यक्त्वाद्यन्तौ तदंशकौ मध्यसप्तांशमाने तु कुण्डं खण्डेन्दुवत् क्रमात्। चतुरस्रे क्षेत्रे ग्रहैर्नवभिर्विभक्ते आद्यन्तौ त्यक्त्वा अवशिष्टसप्तमांशमानेन सूत्रभ्रमणात् खण्डेन्दुसदृशं कुण्डं कुर्य्यात्। अत्रैवं कृतिः। चतुरस्रं क्षेत्रं नवधा विभज्य तत्र प्रथमोन्तिमश्चेति भागद्वयं परित्यज्य अवशिष्टसप्तभागादिमरेखागर्भदेशे सूत्रादिं निधाय तस्यैव भाग-सप्तकस्यान्तिमरेखागर्भदेशे सूत्रान्तं निवेश्य तत्सूत्रपरिभ्रमणेन प्रथमरेखातुल्यं विश्रान्तप्रान्तवृत्तार्द्धं विरचयेत्। अथ प्रथमरेखा-प्रान्तद्वयमपि वृत्तार्द्धे संयोज्य दक्षिणदिगवस्थितमुत्तराशाभिमुखयो-

निकं खण्डं चन्द्रखण्डं विदध्यात्। त्रिभागवृद्धितो मत्स्यैस्त्रिभि-र्नैशाचरं भवेत्। स्थानत्रये तृतीयांशत्रयं वृद्ध्या मत्स्यत्रयेण नैशाचरं नैर्ऋत्यदिक्सम्बन्धि कुण्डं कुर्य्यात्। इहायं सम्प्रदायः॥ पूर्व्ववत्समचतुरस्रं क्षेत्रं निर्म्माय तन्निरक्षीनपश्चिमरेखामध्यात् तिर्य्यगवस्थितपूर्व्वरेखामध्यभेदिनीं क्षेत्रसूत्रतृतीयभागाधिकां गर्भरेखामालिख्य पूर्व्वोक्तपश्चिमरेखाप्रान्तद्वयमपि क्षेत्रसूत्र तृतीयभागाधिकं कुर्य्यात् ततो गर्भरेखाप्रान्तात् पूर्वोक्तपश्चिमरेखाप्रान्तद्वयमपि क्षेत्रसूत्रतृतीयभागाधिकं कुर्य्यात्। ततो गर्भरेखाप्रान्तात् पूर्व्वोक्तपश्चिमरेखाप्रान्तद्वयस्पर्शिसूत्रद्वयं निपात्य नैर्ऋत्यदिशि पूर्व्वाभिमुखयोनिकं त्रिकोणं कुण्डमुत्पादयेत्। एवञ्च विधीयमाने स्थानत्रये तृतीयांशत्रय वृद्धिस्तत्रैवमत्स्यत्रयमपि निष्पद्यत इति। कर्म्मार्द्धाष्टांशसंन्यासाद्वृत्तं कुण्डमिहोदितम्। कर्म्मसूत्रार्द्धस्य योऽष्टमांशस्तस्य संन्यासात् सम्यक् न्यासात् वृत्तं कुण्डं स्यादिति। अत्रैवं रचनाप्रकारः। चतुरस्रे क्षेत्रे कोणात् कोणान्तरगामिनः सूत्रस्यार्द्धं कोणार्द्धशब्दवाच्यमष्टधा विभज्य यावानष्टमो भागस्तावन्तं भागं चतुर्द्दिक्षु बहिर्विन्यसेत्। ततः क्षेत्रगर्भदेशे सूत्रादिं निधाय वहिःस्थिताष्टमभागविन्यस्तं तस्यैव सूत्रस्य प्रान्तं सर्व्वतः परिभ्रम्य पश्चिमदिशि पूर्व्वाभिमुखयोनिकं वृत्तकुण्डं कुर्य्यात्। षड्भागवृद्धितो मत्स्यैश्चतुर्भिः स्यात् षडस्रकं। क्षेत्रपार्श्वयोः प्रत्येकं षष्ठभागवृद्धं कृत्वा अवशिष्टदिशोर्मत्स्यचतुष्टयमुत्पाद्य सूत्रषट्कपातात् षडस्रकुण्डनिष्पत्तिरिति। अत्रैवं सम्प्रदायः। समचतुरस्रं क्षेत्रं षोढ़ा विभज्य यावान् षष्ठोभागस्तावता मानेन क्षेत्रस्य दक्षिणोत्तरपार्श्वे समन्ताद्दर्द्धयित्वा तदेवक्षेत्रमायत

चतुरस्रं सम्पादयेत्। अथानन्तरोक्तपार्श्वद्वयरेखास्पर्शिनीं दक्षिणोत्तरायतां गर्भरेखां रचयेत्। ततः क्षेत्रमध्यादुत्तरपार्श्वरेखामध्याच्च पूर्व्वोक्तगर्भरेखार्द्धपरिमितमेकैकं सूत्रं निपात्य पूर्व्वेशानदिशोरन्तराले मत्स्य मुत्पाद्य तेनैवप्रकारेण पश्चिमवायव्ययोरन्तराले मत्स्यं कुर्य्यात्। अथ भूयोपि क्षेत्रमध्याद्दक्षिणपार्श्वरेखामध्याच्च प्रागुक्तगर्भरेखाप्रान्तद्वयात् लाञ्छनचतुष्टयस्पर्शिसूत्रचतुष्टयं निपातयेत्। एवं लाञ्छानानन्तरालस्थितसूत्रद्वयेन सह सूत्रषट्क प्रयोगाद्वायव्यदिशि प्राङ्मुखयोनिकं षट्कोणकुण्डं कुर्य्यात्।

चतुरस्राष्टभागेन कर्णिकास्याद्विभागशः।
तद्वहिस्त्वेकभागेन केसराणि प्रकल्पयेत्॥
तृतीये दलमध्यानि तुरीये दलकोटयः।
भ्रमणात् पद्मदलं स्याद्दलाग्रं दर्शयेद्वहिः॥

चतुरस्रस्य अष्टधा विभक्तस्य मध्ये अष्टमभागेन कर्णिका स्यात् कर्णिकाया वहिः परिधिस्थे द्वितीये अष्टमभागविन्यासे केसराणि स्युः केसराद्वहिःपरिधिस्थिते तृतीये अष्टमभागे विन्यासे दलमध्यानि कल्पयित्वा चतुर्थे दलकोटीं विधाय चतुरस्राद्वहिर्द्दलाग्राणि स्पर्शयेत्। अत्राप्यष्टमभागेनेति सम्बध्यते। विभागशः, विभागे विभागे सर्व्वदिग्भागेष्वित्यर्थः। भ्रमणात्, सूत्रस्येति शेषः। एतच्च पद्मद्वयं सर्व्वत्र योजनीयम्।

अयमर्थः। चतुरस्रं क्षेत्रं प्रागग्राभिरुदगग्राभिश्च रेखाभिरष्टधा विभज्य मध्यदेशे लाञ्छयित्वा क्षेत्राद्वहिश्चतुर्द्दिक्षु समन्तादपरमष्टभागं विन्यसेत् सत्येवं लाञ्छनात् परितः प्रतिदिशं

पञ्चपञ्चाष्टमभागावधिरेखा भवन्ति। ततः पूर्व्वोक्तलाञ्छनोपरि विन्यस्तादेस्तत्तद्रेखाविन्यस्तप्रान्तस्य च सूत्रस्य परिभ्रमणात् पञ्चवृत्तानि सम्पाद्य वृत्तातिरिक्तरेखाः परिमार्ज्जयेत् ततः प्रथमे वृत्ते कर्णिका। द्वितीये केसराणि। तृतीये दलमध्यानि। चतुर्थे दलकोटयः। पञ्चमे दलाग्रानीति कृत्वा अष्टदलं पूर्व्वाभिमुखयोनिकं पद्मकुण्डमुत्तरदिशि कुर्य्यात्।

इदानीमेतदेव कुण्डं प्रकारान्तरेणोच्यते॥

वृत्तकुण्डं समं चान्यदथवान्यप्रकारतः।
वृत्तकुण्डं पुरा कृत्वा चतुर्द्धा मेखलां भजेत्॥
उत्सेधञ्च तथा कृत्वा कर्णिका सार्द्धका भवेत्।
अवशिष्टं दलं वेददलमष्टदलन्तु वा॥

यथा प्रतीच्यां दिशि वृत्तकुण्डमभिहितमिहापि तथैव कृत्वा तन्मध्ये यथाविभागं पद्मकुण्डं कुर्य्यादिति। अथवेत्यादिना तृतीयः प्रकार उच्यते। पूर्व्वं वृत्तकुण्डमेव आमेखलं मेखलामवधीकृत्य अन्तश्चतुर्द्धा भजेत्। वृत्तकुण्डमध्ये अन्यस्यापि समभागस्य वृत्तत्रयस्य करणाच्चतुर्थक्षेत्रविभागः कार्य्य इत्यर्थः। ततः क्षेत्रमध्ये सार्द्धभागेन विस्तृता कर्णिका विधेया। उत्सेधञ्च तथा कृत्वेति, कर्णिकाया उच्छ्रयमपि सार्द्धभागेन कृत्वेत्यर्थः। अवशिष्टेन सार्द्धभागद्वयेन केसरव्यतिरिक्तानि दलान्येव कुर्य्यात्। एवञ्चतुर्द्दलमष्टदलम्वा पद्मकुण्डं कुर्य्यात्।

क्षेत्रात् द्वादशमं भागं चतुर्दिक्षु तदन्तरे।
विन्यस्य तत्प्रमाणेन तुर्य्यांशमपरं नयेत्॥
तस्य कर्णप्रमाणेन तद्भुजास्वपि लाञ्छयेत्।

तत्राष्टसूत्रसंयोगादष्टास्रं कुण्डमुच्यते ॥

द्वादशधा विभक्तस्य क्षेत्रस्य यावान् द्वादशो भागस्तावन्तं भागं चतुर्द्दिक्षु विन्यस्य, तदन्तरे, तस्य क्षेत्रस्य अन्तरे बहिःप्रदेशे अन्तरं बहिर्योगोपसंव्यानयोरितिज्ञापकादन्तरशब्दोऽत्र बहिर्व्वचनः। तत्प्रमाणेनेति तस्य वहिर्विन्यस्तद्वादशभागस्य परिमाणेन अपरं द्वितीयं तुर्य्यास्रं चतुरस्रं नयेत् प्रणयेत् कुर्य्यात् इति यावत्। तुर्य्यास्रमिति, स्वार्थिकोऽत्र पूरणप्रत्ययः। तस्य कर्णप्रमाणेनेति। कोणात् कोणान्तरस्पर्शिसूत्रं शिल्पशास्त्रेषु कर्ण इति प्रसिद्धम्। इह तु क्षेत्रगर्भादारभ्य चतुष्कोणगामिनः पृथगेव चत्वारः कर्णा इत्यभिप्रायेण कर्णार्द्धमपि कर्णशब्देनोक्तम्। तेनायमर्थः।

बाह्यस्थितचतुरस्रस्य गर्भदेशावधिर्यावान् कर्णस्तावता मानेन तद्भुजासु तस्य कर्णस्य भुजासु लाञ्छयेत्। अत्र वाह्यचतुरस्रसूत्राण्येव कर्णोभयपार्श्ववर्त्तीनि निजभुजाकारतया भुजाशब्देनोच्यन्ते। अयमाशयः। बाह्यचतुरस्रसम्बन्धिन्येकस्मिन् कोणे कर्णार्द्धपरिमितस्य सूत्रस्यादिं निधाय तत्सूत्रं चतुरस्ररेखोपरि प्रसार्य्य सूत्रप्रान्ते लाञ्छयेत्। एवं प्रतिकोणं सूत्रादिं निधाय प्रातिलोम्यानुलोम्येन सूत्रप्रसारणात् तत्तत्प्रान्ते लाञ्छयन् प्रदिदिशं लाञ्छनद्वयकरणाद्दिक्चतुष्टयेन लाञ्छनेषु सूत्राष्टकनिपातनादष्टास्रकुण्डं कुर्य्यादिति।

अयमिह निर्म्माणप्रकारः।

पूर्व्ववच्चतुरस्रीकृतस्य क्षेत्रस्य बहिश्चतुर्द्दिक्षु द्वादशमं भागं विन्यस्य तत्परिमाणेन अपरं चतुरस्रं कुर्य्यात्। अथ तदीय

कर्णार्द्धपरिमितस्य सूत्रस्य प्रतिकोणमादिं निधाय चतुरस्रेरेखोपरि प्रसारणात् तत्तत्प्रान्तेषु लाञ्छयन् दिक्चतुष्टयेन लाञ्छनाष्टकं कृत्वा तल्लाञ्छनोपरि सूत्राष्टकनिपातनादैशानदिशि पूर्व्वाभिमुखयोनिकमष्टास्रकुण्डं कुर्य्यात्। इदानीं दिङ्नियममन्तरेणैव तत्तत्कर्म्मोपयोगितया विज्ञानललितोपदिष्टं कुण्डद्वयमुच्यते।

सप्तमांशं बहिर्न्यस्य कृत्वा वृत्तमिह भ्रमात्।
चतुर्थभागान्यूनेन पूर्व्वक्षेत्रे च सम्मितैः॥
धनुर्ज्याकृतिभिः पञ्चसूत्रैः पञ्चास्रकुण्डकम्।
होमे प्रशस्यते भूतशाकिनीग्रहनिग्रहे॥

चतुरस्रस्य क्षेत्रस्य बहिःप्रदेशे चतुर्दिक्षु क्षेत्रसप्तमांशं विन्यसेत्। ततः क्षेत्रगर्भविन्यस्तादेः बाह्यस्थितसप्तमांशोपरि विन्यस्तप्रान्तस्य सूत्रस्य सर्व्वतः परिभ्रमणात् वृत्तं निष्पादयेत्। पूर्व्वक्षेत्रेणेति, बहिःस्थितवृत्तापेक्षया पूर्व्वक्षेत्रशब्देन आन्तरचतुरस्रक्षेत्रमेवोच्यते।

तत्रायमर्थः। आन्तरचतुरस्रस्य यद्दैर्घ्यं तत्स्वकीयचतुर्थभागन्यूनं कृत्वा यन्मानं भवति तावता मानेन परिमितं सूत्रं विधाय तादृशानि पञ्चसूत्राणि बाह्यवृत्तस्यान्तर्विन्यस्य सूत्रसन्धौ कोणं कुर्य्यात्। तानि च पञ्च सूत्राणि प्रत्येकं प्रान्तद्वयसंस्पृष्टवृत्तत्वात् धनुर्ज्याकृतीनि धनुरारूढमौर्व्वीसदृशानि स्युः। ततः पञ्चसूत्रातिरिक्तं सर्व्वं परिमृज्य पञ्चास्रकुण्डं रचयेत्।

तच्च ग्रहनिग्रहादिहोमे प्रयोज्यम्।

दशमांशं बहिर्न्यस्य कृत्वा वृत्तमिह क्रमात्।
भक्ताच्चैवं चतुःषष्ट्या तद्भागैः त्रिंशता त्रिभिः॥
समायसूत्रं तादृशात् सप्तास्त्रं सूत्रसप्तकात्।
अभिचारोपशान्त्यर्थं होमकुण्डमिति स्मृतम्॥

इहापि चतुरस्रस्य क्षेत्रस्य दशमभागं चतुर्द्दिक्षु बहिर्व्विन्यस्य पूर्व्ववत् वृत्तं कुर्य्यात्। अथ पूर्व्वक्षेत्रं चतुःषष्ट्या विभज्य तेषां चतुःषष्टिसंख्यानां भागानां मध्ये त्रयस्त्रिंशत्संख्यैर्भागैः परिमितं सूत्रं कृत्वा तादृशानि सप्तसूत्राणि वृत्तस्यान्ते विन्यस्य सप्तास्रं कुण्डं कुर्य्यात्। अत्रापि सूत्राणां धनुर्ज्याकारत्वं सूत्रसन्धौ कोणनिर्म्माणं सप्तसूत्रातिरिक्तपरिमार्ज्जनञ्चेति पूर्व्ववदेव वेदितव्यम्।

एतच्च कुण्डमभिचारदोषोपशमनहोमेषु प्रयोज्यम्।

आह विश्वकर्म्मा।

यावन्मात्रः कुण्डविस्तार उक्तस्तावत्खातस्यापि मानं प्रदिष्टम्।
यादृक् कुण्डस्याकृतिः संप्रदिष्टा तादृग्रूपं मेखलाया विदध्यात्॥
स्थापने सर्व्वकुण्डानां ध्वजायः सर्व्वसिद्धिदः॥

सर्व्वेषु चैतेषु प्रोक्तमानादङ्गाङ्गुलयवादि न्यूनमतिरिक्तं वा विधाय ध्वजायः साधनीयः।

विस्तारे दैर्घ्यगुणिते अष्टभिर्व्विभक्ते यद्येकः परिशिष्यते तदा ध्वजाय इति।

खातेधिके भवेद्रोगो हीने धेनुधनक्षयः।
वक्रकुण्डे तु सन्तापो मरणं भिन्नमेखले॥
मेखलारहिते शोकोऽभ्यधिके वित्तसंक्षयः।

भार्य्याविनाशनं प्रोक्तं कुण्डे योन्या विना कृते।
अपत्यध्वंसनं प्रोक्तं कुण्डं यत् कण्ठवर्ज्जितम्॥

खातहीने भवेद्रोग इत्यादिना खातादिलक्षणरहितस्य कुण्डस्यानिष्टफलत्वदर्शनादिदानीं खातादीनामेव लक्षणमभिधीयते।

तद्यथा मोहचूडोत्तरशास्त्रे।

चतुर्व्विंशतिमं भागमङ्गुलं परिकल्प्य तु।
चतुर्व्विंशाङ्गुलं हस्तं कुण्डानां परिकल्पयेत्।
हस्तमात्रं खनेत्तिर्य्यगूर्द्ध्वं मेखलया सह॥

मुष्टिमानं शतार्द्धमित्यादिना प्रसिद्धेनैव हस्ताङ्गुलव्यवहारेण होमानुसारात् कुण्डमानमुक्तम्। इयन्तु खातादिमान कथनार्थं परिभाषा क्रियते। चिकीर्षितकुण्डक्षेत्रं चतुर्व्विंशतिधा विभज्य यावान् चतुर्व्विंशतिमो भागस्तावत्परिमाणमङ्गुलं परिकल्प्य चतुर्व्विंशत्या अङ्गुलैर्हस्तं परिकल्पयेत्। ततस्तेन हस्तेन परिमितं सर्व्वकुण्डानां तिर्य्यक्खातमानं विधायमेखलासहितस्य खातस्य तेनैव हस्तेन परिमितमूर्द्ध्वमानं विदध्यात्। प्रथमेपु उक्तम्। कुण्डं जिनाङ्गुलं तिर्य्यगूर्द्ध्वं मेखलया सह।

जिनाङ्गुलं, चतुर्व्विंशत्यङ्गुलम्॥

प्रतिष्ठासारसंग्रहेपि।

पञ्च-त्रिमेखलोच्छ्रायां ज्ञात्वा शेषमधः खनेत्॥

विश्वकर्म्मणाप्युक्तम्।

व्यासात् खातः करः प्रोक्तो निम्नस्तिर्य्यङ्गुलेन तु।

तिर्य्यङ्गुलानि, पञ्चदशाङ्गुलानि खातस्य निम्नत्वम्।

उन्नता सा नवाङ्गुलैरिति, वक्ष्यमाणत्वान्मेखलात्रयपक्षे नवाङ्गुलं प्रथममेखलयोत्सेध इत्युभयोश्चतुर्व्विंशत्यङ्गुलत्वम्।

कण्ठमानमुक्तं कालोत्तरे ।

खाताद्बाह्येऽङ्गुलः कण्ठः सर्व्वकुण्डेष्वयं विधिः ॥

खात-मेखलयोरन्तराले अङ्गुलमानेन कण्ठमोष्ठापरपर्य्यायं कुर्य्यात् ।

सारसमुच्चये । खाताद्बाह्याङ्गुलः कण्ठस्तद्बाह्ये मेखला क्रमात् ।

मेखलालक्षणमुक्तं कामिके ।

क्षेत्रार्कांशेन तस्यौष्ठः स्यात्तद्वेदर्त्तुभागतः ।

मेखला पृथुतोच्छ्रायः कुण्डाकारा तु मेखलाः ।

सर्व्वेषान्तु प्रकर्त्तव्या मेखलैकात्र लाघवात् ॥

क्षेत्रस्य, अर्कांशेन, द्वादशांशेन कुण्डस्यौष्ठः कण्ठशब्दवाच्यः स्यात् तद्वेदभागतः कुण्डचतुर्थांशतो मेखलायाः पृथुता विस्तारः ।

तथा ऋतुभागतः षष्ठभागेन मेखलोच्छ्रायः कार्य्यः ॥

पिङ्गलामतेपि । खातादेकाङ्गुलं त्यज्य मेखलानां स्थितिर्भवेत् ।

मेखलैकाथवा तिस्रो भूतसंख्याथवा प्रिये ॥

भूतसंख्याः, पञ्चसंख्याः ।

उक्तञ्च प्रथमे । कण्ठाङ्गुलाद्बहिः कार्य्या मेखलैका षड़ङ्गुला ।

चतुस्त्रिद्व्यङ्गुला यद्वा तिस्रः सर्व्वत्र शोभनाः ॥

यदा एका मेखका तदा सा विस्तारोत्सेधाभ्यां षड़ङ्गुला विधेया । "एका षड़ङ्गुलोत्सेधविस्तारा मेखला मतेति" पिङ्गलोक्तेः । यदा तु मेखलात्रय पञ्चस्तदा क्रमेण चतुस्त्रि-द्व्यङ्गुलमानाः कर्त्तव्याः । मोहचूड़ोत्तरे । मेखलात्रितयं कार्य्यं कोणरामयमाङ्गुलैः । कोणाः, चत्वारः । रामाः

त्रयः। 'यमौ' द्वौ। तत्र सर्व्वान्तिमा, द्व्यङ्गुला। मध्य स्याःत्र्यङ्गुलाः। कुण्डकण्ठसन्निहिता चतुरङ्गुला इति। सत्येवं प्रथममेखलायाः कुण्डकण्ठादारभ्य नवाङ्गुल उत्सेधः स्यात्॥

लक्षण संग्रहेऽपि।

प्रथमाष्टाङ्गुला व्यासादुन्नता सा नवाङ्गुलैः।
मध्यास्तु त्र्यङ्गुला बाह्ये तृतीया तु यमाङ्गुला।
मेखलाः पञ्चवा कार्य्याः षट्-पक्षा-ब्धि-त्रि-पक्षकैः॥

प्रथमकुण्डसन्निहिता आन्तरोत्सेधनवाङ्गुला बाह्ये तु चतुरङ्गुलैव। अष्टाङ्गुला, चतुरङ्गुला। अब्धयः, चत्वारः। पक्षौ द्वौ॥

योनि लक्षणमुक्तं स्वायम्भुवे।

मेखला मध्यतो योनिः कुण्डार्द्धा त्र्यंशविस्तृता।
अङ्गुष्ठमानोष्ठकण्ठा कार्य्याश्वत्थदलाकृतिः॥
प्राग-ग्नि-याम्यकुण्डानां प्रोक्ता योनिरुदङ्मुखा।
पूर्व्वामुखाः स्मृताः शेषा यथा शोभं समन्विताः॥

मेखलाया गर्भदेशे कुण्डार्द्धदीर्घा कुण्डतृतीयांशविस्तृता योनिःकार्य्या। अत्रोष्टशब्देन, योन्यग्रमुच्यते। कण्ठशब्देन, च योनिमेखला। अङ्गुष्ठशब्दः, अङ्गुलपर्य्यायः। एकाङ्गुलपरिमाणेन योनेरग्रंमेखलाञ्च कुर्य्यादित्यर्थः। विस्तारोऽष्टाङ्गुलो योनेरग्रमङ्गुलसंमितमितिपिङ्गलोक्तेः।

नारदीये। कुण्डत्र्यंशप्रविस्तारा योनिरुच्छ्रयताङ्गुलम्।
कुण्डार्द्धेन तु दीर्घा स्यात् कुण्डोष्ठौ बोधिपत्रवत्॥

कुण्डोष्ठौति, यथा कुण्डे द्वादशांशेन ओष्ठो विहित एवं

योनेरपि द्वादशभागेन ओष्ठः कार्य्य इत्यर्थः। यथा कुण्डे प्रविष्ट-ओष्ठो यस्या इति। 'बोधिपत्रम्, अश्वत्थपत्रम्।

त्रैलोक्यसारे।

दीर्घात् सूर्य्याङ्गुलानाभिस्त्र्यंशोना विस्तरेण तु।
एकाङ्गुलोच्छ्रिता सा तु प्रविष्टाभ्यन्तरे तथा॥
कुम्भद्वयसमायुक्ता चाश्वत्थदलवन्मता।
अङ्गुलमेखला युक्ता मध्ये* त्वाज्यधृतिस्तथा॥
दक्षस्था पूर्व्वयाम्ये तु जलस्था पश्चिमोत्तरे।
नवमस्यापि कुण्डस्य योनिर्द्दक्षदलस्थिता॥

'सूर्य्याङ्गुलाः, द्वादशाङ्गुलाः। 'त्र्यंशोनेति, दैर्घ्यतृतीयांशन्यूनविस्तारा। 'एकेनाङ्गुलेनोच्छ्रिता तथा, एकेनाङ्गुलेन कुण्डमध्ये प्रविष्टा। 'कुम्भद्वयसमायुक्तेति, पूर्व्वोक्ताग्नेयकुण्डस्य तुल्याकृतेर्योनेर्बुध्नदेशस्थितं वृत्तद्वयमेव गजकुम्भाकृतित्वात् कुम्भशब्देनोक्तम्। तेनात्र कुम्भस्थलाकृतिर्घटद्वयं मृत्पिण्डद्वय वा स्थाप्यमिति तद्ग्राह्यं। अङ्गुलमेखलेनेति, एकाङ्गुलमानया मेखलया परिवेष्टितेत्यर्थः। मध्ये त्विति, यथा स्रुचि घृतधारणाय बिलं क्रियते तथा योनिमध्येपि बिलं कर्त्तव्यमित्यभिप्रायः। 'दक्षस्थेति, पूर्व्वाग्नेययाम्य कुण्डेषु दक्षिणभागे उत्तराभिमुखा योनिः कार्य्या नैर्ऋत्यादिकुण्डेषु तु पश्चिमभागे प्राङ्मुखा विधेयाः। 'नवम इति, अष्टदिक्षु कुण्डेष्वेवं विधाय पूर्व्वेशानदिशोरन्तराले यन्नवमं कुण्डं चतुर्दिक्षु वा कुण्डचतुष्टय

*त्वाज्यस्थितिरिति क्वचित्पाठः।



11-

कृत्वा ईशानदिशि यत्पञ्चमं कुण्डं तयोरपि दक्षिणभागेपि योनिः कार्य्येत्यर्थः॥

बह्वृचपरिशिष्टे। अथाबुधः स धूमे तु जुहुयाद्यो हुताशने।
यजमानो भवेदन्धः सपुत्र इति च श्रुतिः॥

छन्दोगपरिशिष्टे कात्यायनः।

पाण्याहुतिर्द्वादश पर्व्व पूर्व्विका रम्भादिनाचेत्*स्रुचि पर्व्वपूरिका।
दैवेन तीर्थेन च हूयते हविः स्वङ्गारिणि स्वर्च्चिषि तच्च पावके॥
योनर्च्चिषि जुहोत्यग्नौ व्यङ्गारिणि च मानवः॥
मन्दाग्निरामयावी च दरिद्रश्चैव जायते।
तस्मात् समिद्धे होतव्यं नासमिद्धे कथञ्चन॥
आरोग्यमिच्छतायुश्च श्रियमात्यन्तिकीं तथा।
जुह्वषुश्च हुते चैव पाणिसूर्पस्रुचादिभिः॥
न कुर्य्यादग्निधमनं कुर्य्यात्तु व्यजनादिना।
मुखेनैव धमेदग्निं मुखाद्ध्येषोभ्यजायत॥
नाग्निं मुखेनेति तु यल्लौकिके योजयन्ति तत्।

भविष्यत्पुराणे। भूमौ स्थितेन पात्रेण विष्टब्धेन च पाणिना।
वामेन यद्दुर्शार्दूल नान्तरीक्षे तु हूयते॥
धनायुर्द्दाररेखासु सोमतीर्थं तु मध्यमं।
लाजादिहवनं तेन कर्त्तव्यं वपनं तथा॥
'वपनम्' व्रीह्यादिनिर्व्वापः।

वायुपुराणे। कण्डनं पेषणञ्चैव तथैवोल्लेखनं सदा।

---

* कंसादिना चेदिति पाठान्तरम्।

सकृदेव पितृणां स्याद्देवानां तन्निरुच्यते ॥

मरीचिः । प्रागग्राः समिधो ग्राह्या अखर्व्वानीष्ठपाटिताः ।

काम्येषु वशकर्म्मादौ विपरीता जिघांसति ॥

विशीर्णा विदलाह्रस्वा वक्रा बहुशिराः कृशाः ।

दीर्घास्थूला घुणैर्जुष्टाः कर्म्मसिद्धिविनाशकाः ॥

समिदित्यनुवृत्तौ ब्रह्मपुराणे ।

शमी-पलाश-न्यग्रोध-प्लक्ष-वैकङ्कतोद्भवा ।

अश्वत्थोडुम्बरौ विल्वश्चन्दनः सरलास्तथा ।

शालश्च देवदारुश्च खदिरश्चेति याज्ञिकाः ॥

छन्दोग परिशिष्टे कात्यायनः ।

नाङ्गुष्ठादधिका कार्य्या समित् स्थूलतया क्वचित् ।

न वियुक्तार्त्वचा चैव न सकीटा न पाटिता ॥

प्रादेशान्नाधिकान्यूना न तथा स्याद्विशाखिका ।

न सपर्णा समित् कार्य्या होमकर्म्मसु जानता ॥

तथा । यथोक्तवस्त्वसम्पत्ते * ग्राह्यं तदनुकारि यत् ।

यवानामिव गोधूमा व्रीहीणामिव शालयः ॥

आज्यं द्रव्यमनादेशे जुहोतिषु विधीयते ।

मन्त्रस्य देवतायाश्च, प्रजापतिरितिस्थितिः ॥

'अनादेशे' अविधाने ।

मन्त्रस्य देवतायाश्च अनादेशे प्रजापतिः दैवता प्राजापत्यो-मन्त्रः समस्ता व्याहृतयश्च ।

यत्र तु देवतोक्ता मन्त्रश्च नास्ति तत्र मूलमन्त्रोवेदितव्यः ।

---

* यथोक्तवस्त्वसंप्राप्ताविति क्वचित्पाठः ।

सर्वोसक्तो गरुड़पुराणे।

प्रणवादिनमोऽन्तश्च चतुर्थ्यन्तश्च सत्तम।
देवतायाः स्वकं नाम मूलमन्त्रः प्रकीर्त्तितः॥

विष्णुधर्म्मोत्तरे। दध्यलाभे पयः कार्य्यं मध्वलाभे तथा गुड़ः।
घृतप्रतिनिधिं कुर्य्यात् पयो वा दधि वा नृप॥

पैठीनसिः। काण्ड-मूल-पर्ण-पुष्प-फल-प्ररोह-रस-गन्धादीनां सादृश्येन प्रतिनिधिं कुर्य्यात् सर्व्वालाभे यवः प्रतिनिधिर्भवति॥

मैत्रायणीयपरिशिष्टे।

दर्भाभावे काशः प्रतिनिधिः अद्येध्माः पलाश-श्वत्थ-खदिर-रोहितकोदुम्बराणां, तदलाभे सर्व्ववनस्पतीनां तिलक-नीप-निम्ब-राजवृक्ष-शाल्मल्य--रत्नक-कपित्थ-कोविदार-विभीतक-श्लेष्मान्तक-सर्व्व-कण्टकिवर्ज्जं। घृतमन्त्रार्थे प्रतिनिधिस्तदलाभे दधि-पयो वा।

इति मण्डपादिलक्षणम्॥

अथ वृद्धिश्राद्धम्॥

आह शातातपः। नानिष्ट्वा पितृयज्ञेन वैदिकं किञ्चिदाचरेत्।
तत्रापि मातरः पूर्व्वं पूजनीयाः प्रयत्नतः॥
अकृत्वा मातृयागन्तु वैदिकं यः समाचरेत्।
तस्य क्रोधसमाविष्टा हिंसामिच्छन्ति मातरः॥

मातृगणास्तु भविष्यपुराणे निरूपिताः।

गौरी-पद्मा-शची-मेधा-सावित्री-विजया-जया।
देवसेना-स्वधा-स्वाहा-मातान्या लोकमातृकाः॥
हृष्टिः पुष्टिस्तथा तुष्टिरात्मदेवतयासह।

पूज्या चित्रे ऽथवार्च्चायां वरदाभयपाणयः ॥

विष्णुपुराणे । कन्या-पुत्रविवाहेषु प्रवेशे नववेश्मनः ।

शुभकर्म्माणि वालानां चूड़ाकर्म्मादिके तथा ॥

सीमन्तोन्नयने चैव पुत्रादिमुखदर्शने ।

नान्दीमुखान् पितृनादौ तर्पयेत् प्रयतो गृही ॥

जावालः । यज्ञोद्वाह-प्रतिष्ठासु मेखलावन्ध-मोक्षयोः ।

पुत्रजन्मवृषोत्सर्गे वृद्धिश्राद्धं समाचरेत् ॥

तेन वैदिकहोमाङ्गकेषु दर्शपूर्णमासादिषु अन्येषु च वचन-विशेषितेषु कर्म्मसु वृद्धिश्राद्धमाचरणीयम् ॥

तथा तुलापुरुषादीनामपि यागसंशब्दनात् लोकपाला-वाहनमन्त्रेषु च सर्व्वेषु ममाध्वरम्याहियज्ञं रक्षेत्यादिशब्द प्रयोगात् सत्यपि दानरूपत्वे यागधर्म्मैराभवितव्यमिति तत्रापि वृद्धिश्राद्धं कर्त्तव्यम् । एवमेव सहोमकेषु धान्यपर्व्वतादिष्वपि अनुसन्धेयाः ।

तस्य विधिमाह कात्यायनः ।

आभ्युदयिके प्रदक्षिणमुपचारः पूर्व्वाह्णेपि अमन्त्रवर्ज्जं अपं ऋजवो दर्भा यवैस्तिलार्थः सम्पन्नमिति तृप्तिप्रश्नः, सुसम्पन्न मित्यनुज्ञातो दधिवदराक्षतमिश्राः पिण्डा नान्दीमुखान् पितॄन् वाचयिष्ये इति पृच्छति, वाच्यतामित्यनुज्ञातो नान्दी-मुखान् पितॄनावाहयिष्ये, इति पृच्छत्यावाहयेत्यनुज्ञातो नान्दी-मुखाः पितरः प्रीयन्तामित्यन्तक्षय्यस्थाने नान्दीमुखाः पितरः पितामहाः प्रपितामहा मातरो मातामहाश्च प्रीयन्तामिति, न स्वधां प्रयुञ्जीत युग्मानाशयेदिति ।

निगदव्याख्यातमेतत्।

श्रीमार्कण्डेय पुराणे।

नान्दीमुखानां कुर्व्वीत प्राज्ञः पिण्डोदकक्रियां।

प्राजापत्येन तीर्थेन यच्च किञ्चित् प्रजायते॥

अथ मधुपर्कः।

आह जाबालः। वैवाह्यमृत्विजञ्चैव श्रोत्रियं गृहमागतम्।

अर्हयेन्मधुपर्केण स्नातकं गृहमेववा॥

विश्वामित्रः। संपूज्य मधुपर्केण ऋत्विजः कर्म्म कारयेत्।

अपूज्यकारयेत् कर्म्म किन्विषेणैव युज्यते॥

तद्विधिस्तु कात्यायनसूत्रे।

षडर्घ्या भवन्त्याचार्य्यो ऋत्विग्वैवाह्यो राजा प्रियः स्नातक इति प्रतिसंवत्सरानर्हयेयुर्यचमाना ऋत्विजः॥

आसनमाहार्य्याह। साधुभावानास्तां अर्च्चयिष्यामोभवन्त मित्याहरन्ति विष्टरं पाद्यं पादार्घ्यमुदकमर्घमाचमनीयं मधुपर्कं दधि-मधु घृतमपिहितं कांस्ये कांस्येनान्यस्त्रिस्त्रिः प्राह विष्टरादीनि विष्टरं प्रतिगृह्णाति वर्ष्मोऽस्मि समानामुद्यतामसूर्य्यः॥

इममन्तमभितिष्ठामि यो माकश्चाभिदा सतीत्येनमभ्युपविशति पादयोरन्यं विष्टर आसीनाय सव्यं पादं प्रक्षाल्य दक्षिणं प्रक्षालयति ब्राह्मणश्चेद्दक्षिणं प्रथमं विराजो दोहसि विराजो दोहमशीयमयि पाद्यायै विराजो दोह इत्यर्घ्यं प्रतिगृह्णात्यापस्थ युष्माभिः सर्व्वान् कामानवाप्नवानीति निनयन्नभिमन्त्रयते समुद्रंवः प्रहिणोमि स्वां योनिमभिगच्छत।

अरिष्टा अस्माकं वीराणामापरा सेचि मत्पय इत्याचामत्याम।गन्य-

सामसीयसा स्वजवर्चसा तं मां कुरुप्रियं प्रजानामधिपतिं पशू-
नामरिष्टिं तनूनामितिमित्रस्यत्वेति मधुपर्कं प्रतीचते देवस्यत्वेति
प्रतिगृह्णातितथ्। सव्ये पाणौ कृत्वा दक्षिणस्यानामिकया त्रिः
प्रयौति नमः स्यावास्यावान्यशनेया विद्धं तत्ते निष्कृन्तामीत्य-
नामिकाङ्गुष्ठेन च त्रिर्निरुक्षयति तस्य त्रिः प्राश्नाति यन्मधुनो
मधव्यं परमं श्रीं रूपमन्नाद्यन्तेनाहं मधुनो मधव्येन परमेण रूपे-
णान्नाद्येन परमो मधव्योन्नादोऽसानीति मधुमतीभिर्वा प्रत्यृचं
पुत्रायान्ते वासिनोवान्तरत आसीनायोच्छिष्टं दद्यात् सर्व्वं वा
प्राश्नीयात् प्राग्वा सञ्चरेति नयेदाचम्य प्राणान् संमृशति वाङ्म
आस्येनसोः प्राणोच्योश्चचुः कर्णयोः श्रोत्रं वाह्वोर्बलमूर्व्वो रोजो
रिष्टानि मेङ्गानि तनुस्तत्वामे सहेत्याचान्तोदकाय शसेमा दाय-
गौरिति त्रिः प्राह प्रत्याह माता रुद्राणां दुहितावसूनाथ्।
स्वसापानामस्तस्य नाभिः प्रनुवोचं चिकितुषे जनाय मागामना-
गामदितिं वधिष्ठेति मम चामुष्य पाप्मानथ्। हतोसीति यद्या-
लभेताव्ययद्युत्सिसृचेन्ममचामुष्य च पाप्माहत मुत्सृजत तृणान्य-
त्त्विति ब्रूयान्नत्वेवामाथ्। सोर्घः स्याद्यधियज्ञमधिविवाहं कुरु-
तेत्येव ब्रूयाद्यद्यप्यसकृत्संवत्सरस्य सोमे न यजेत कृतार्घ्या एवैनं
याजयेयुर्नाकृतार्घ्या इति श्रुतेः। अस्यार्थः। आसनमाहार्य्येत्यन्तं
सुबोधः। साधुभवानित्यादिमर्घ्यं प्रत्यर्च्येषणं। आहरन्त्यर्घ्यं पितृ-
सम्बन्धि पुरुषाभिप्रायेण बहुवचनं। विष्टरोप्विक्रनायपञ्चविंशति-
कुशपत्रकृतः।

तथा च परिशिष्टे। कतिभिस्तु भवेद्ब्रह्मा कतिभिर्विष्टरोमतः।
पञ्चाषड्भिर्भवेद्ब्रह्मा तदर्द्धेन तु विष्टरः॥

ऊर्द्ध्वकेशो भवेद्ब्रह्मा लम्बकेशस्तु विष्टरः।
दक्षिणावर्त्तको ब्रह्मा वामावर्त्तस्तु विष्टरः॥
प्रथमो विष्टर उपवेशनार्थम्।
पाद्यमिति, पादार्घ्यं द्वितीयं विष्टरम्।
पादार्घमुदकं सुखोष्णं। अर्घो व्याख्यातः।

आचमनीयं उदकमेव 'मधुपर्कं, दधि-मधु-घृतं कांस्य भाजने तेनैवा पिहितम्। अर्घार्घपितृव्यतिरिक्तोन्य एव विष्टरादीनि त्रिस्त्रिः प्राह, विष्टरो विष्टरो विष्टरः प्रतिगृह्यतामित्येवं॥ अर्घस्तु तूष्णीमेव विष्टरं प्रतिगृह्य वर्ष्मोऽस्मीति मन्त्रेण तत्रोपविशति॥

'पादयोरन्यमिति, पादार्घेण बाध्यते।

ततश्च पादप्रक्षालनानन्तरं द्वितीयविष्टरदानं। तथा-चोत्तरसूत्रे विष्टर आसीनाय सव्यं पादं प्रक्षाल्य दक्षिणं प्रक्षालयतीति, एकस्मिन् विष्टर आसीनस्य पादप्रक्षालन-मुपदिश्यते। ब्राह्मणश्चेदर्घो भवति तदा दक्षिणपादं प्रथमं प्रक्षालयेत्। विराजो दोहोसीति मन्त्रेण जलं गृहीत्वा प्रक्षालयत्यर्घ्य एव, आपस्थइतिमन्त्रेण अर्घं प्रतिगृह्णाति, अर्घ्योदकं निनयत् समुद्रं व इति जपति, आचामयन्निति मन्त्रेणाचमति मित्रस्यत्वेतिमन्त्रेण, मधुपर्कमीक्षते देवस्यत्वेतिमन्त्रेणमधुपर्कं प्रतिगृह्णाति। सर्व्वेषु वैतेषु त्रिस्त्रिरेतानि द्रव्याण्यभिधाय प्रतिगृह्यतामित्यर्थमाहान्यः।

अथार्घ्यो मधुपर्कपात्रं सव्ये पाणौ कृत्वा दक्षिणस्यानामिकया नमःश्यावेतिमन्त्रेण मधुपर्कं त्रिः प्रयौति, मिश्रयतीत्यर्थः।

अनामिकाङ्गुष्ठेन च तूष्णीं त्रिर्निरुक्षति निषिञ्चतीत्यर्थः। च शब्दात् प्रयौति च। अतश्च प्रतियुवनं, निरुक्षणं एवञ्च निरुक्षणव्यवधानात् समन्त्रकं त्रिः प्रयुवनं विधेयमिति सिद्धाति।

यन्मधुन इति मधुमतीभिर्व्वा मधुपर्कं त्रिः प्राश्नीयात्॥

मधुपर्के च सोमे च नोच्छिष्टो भवतीति स्मरणात्, उच्छिष्टस्यैव मन्त्रपाठः। अथाचम्य वाङ्म आस्य इत्यादिभिर्म्मन्त्रैः प्राणायतनानि संस्पृशन् अत्र साकाङ्क्षत्वादस्तीत्यध्याहारः।

स इति च सर्व्वत्रानुषङ्गः।

अरिष्टानि मेऽङ्गानि तनुरित्यत्र, सन्त्वित्यध्याहारः। आचान्तोदकाय शासमादाय गौरिति त्रिः प्राहेति, आचान्तोदकग्रहणात् पुनराचमनमितिकेचित्। अपरेत्वाहुः। आचान्तमुदकं येन स आचान्तोदकः तदर्थं शस्त्रादानमिति तादर्थ्यं च पश्वालंभस्य तदर्थत्वात् एतच्चार्घ्यकर्त्तावाच्यम्।

ततो माता रुद्राणामिति मन्त्रं अर्घ्यः प्रतिब्रूयात्।

अमुष्येति चार्घ्ययितुर्नाम ग्रहणं, यच्चालभेत पाप्मानं घातयामीतिप्रयोगः। अथ यद्युत्सिसृक्षेन्ममचामुष्य च पाप्माहतमुत्सृजत तृणान्यत्त्विति ब्रूयात्।

अत्राप्यर्घयितुर्नामादेशः।

'ओमुत्सृजत तृणान्यत्तीति ब्रूयादिति, निगदोयं।

नत्वेवामांऽ सोर्घस्यादधियज्ञमधिविवाहङ्कुरुते इत्येवं ब्रूयात् शेषं सुगमम्।

अथ पुण्याहवाचनं। आह वेदव्यासः।

सम्पूज्य गन्धमाल्याद्यैर्ब्राह्मणान् स्वस्ति वाचयेत्।

धर्म्मकर्म्मणि माङ्गल्ये संग्रामाद्भुतदर्शने ॥

यमः। पुण्याहवाचनं दैवे ब्राह्मणस्य विधीयते।

एतदेव निरोङ्कारं कुर्य्यात् क्षत्रियवैश्ययोः ॥

कश्यपः। लोके भूतिकर्म्मसु वै तदादीन्येव वाक्यानि स्युर्यथा पुण्याहं सुसम्भृतमिति।

'भूतिकर्म्मसु, सम्पत्कारकर्मसु, स्वस्तिवाचनादिष्विति यावत्।

'एतदादीनि, प्रणवादीनि।

पुण्याहवाचनमुक्तं बह्वृचपरिशिष्टे।

अवनिकृतजानुमण्डलंकमलमुकुलसदृशमञ्जलिं शिरस्याधाय, दक्षिणेन पाणिना सुवर्णपूर्णकलशं धारयित्वा, दीर्घा*-नागा-नद्योगिरयस्त्रीणि विष्णुपदानि च तेन आयुःप्रमाणेन पुण्याहं दीर्घमायुरस्तु, शिवा आपः सन्तु, सौमनस्यमस्तु, अक्षतञ्चारिष्टं-चास्तु, गन्धाः पान्तु, माङ्गल्यञ्चास्तु, पुष्पाणि पान्तु, सश्रियमस्तु, अक्षतानि पान्तु, आयुष्यमस्तु, तांबूलानि,पान्तु, ऐश्वर्य्यमस्तुदक्षिणाः पान्तु, आरोग्यमस्तु, दीर्घमायुः शान्तिःपुष्टिस्तुष्टिः श्रीर्यशो विद्या विनयो वित्तं बहुपुत्रञ्चायुष्यञ्चास्तु, यं कृत्वा सर्व्ववेदोयज्ञक्रिया करणकर्म्मारम्भाः शुभाः शोभनाः प्रवर्त्तन्ते,तमहमोङ्कारमादिं कृत्वा ऋग्यजुःसामाशीर्वचनं बहुऋषिमतं समनुज्ञातभवद्भिरनुज्ञातः पुण्यं, पुण्याहं वाचयिष्ये, वाच्यतां द्रविणोदा द्रविणमस्तु, अस्य सवितापश्चातान्नवोनवो भवति, जायमानोक्षा दिवि दक्षिणावन्तो अस्युरित्येता ऋचः पुण्याहे ब्रूयात्, व्रतनियमतपःस्वाध्यायशन्तु-दमदानविशिष्टानां सर्व्वेषां ब्राह्मणानां मनः समाधीयतां,

* नदानद्यो इति पाठान्तरम्।

समाहितमनसःस्मः। प्रसीदन्तु भवन्तः प्रसन्नाःस्मः शान्तिरस्तु पुष्टिरस्तु, तुष्टिरस्तु, वृद्धिरस्तु, अविघ्नमस्तु, आयुष्यमस्तु, आरोग्य मस्तु, शिवङ्कर्म्मास्तु, कर्म्मसिद्धिरस्तु, पुत्रसमृद्धिरस्तु, धनधान्य समृद्धिरस्तु, इष्टसम्पदस्तु, अनिष्टनिरसनमस्तु, यत्पापं तत् प्रतिहतमस्तु, यच्छ्रेयस्तदस्तु, उत्तरे कर्म्मण्यविघ्नमस्तु, उत्तरोत्तरमहरहरभिवृद्धिरस्तु, उत्तरोत्तरक्रियाः शुभाः सम्पद्यन्तां, तिथि करण-मुहूर्त्त-नक्षत्रसम्पदस्तु, तिथिकरणमुहूर्त्तनक्षत्रग्रहलग्नाधिदेवताः प्रीयन्तां, तिथिकरणे मुहूर्त्ते नक्षत्रे सग्रहे दैवते प्रीयेतां, दुर्गापाञ्चाल्यौ प्रीयेतां, अग्निपुरोगाविश्वेदेवाः प्रीयन्तां इन्द्रपुरोगा मरुद्गणाः प्रीयन्तां. वसिष्ठपुरोगा ऋषिगणाः प्रीयन्तां, महेश्वरपुरोगा उमा मातरः प्रीयन्तां, अरुन्धतीपुरोगा एकपत्न्यः प्रीयन्तां, विष्णुपुरोगाः सर्व्वे देवाः प्रीयन्तां, ब्रह्मपुरोगाः सर्व्वेवेदाः प्रीयन्तां।

ब्रह्म च ब्राह्मणाश्च प्रीयन्तां, सरस्वत्यः प्रीयन्तां, श्रद्धा-मेधे प्रीयेतां भगवती कात्यायनी प्रीयतां, भगवती माहेश्वरी प्रीयतां, भगवती ऋद्धिकरी प्रीयतां, भगवती वृद्धिकरी प्रीयतां, भगवती पुष्टिकरी प्रीयतां, भगवती तुष्टिकरी प्रीयतां, भगवन्तौ विघ्नविनायकौ प्रीयेतां सर्वाः कुलदेवताः प्रीयन्तां सर्व्वाः ग्रामदेवाताः प्रीयन्तां; हताश्च ब्रह्मद्विषः,

हता विद्विषः, हताः परिपन्थिनः, हताश्च विघ्नकर्त्तारः, हताश्च विघ्नकराः, शत्रवः पराभवं यान्तु, शाम्यन्तु घोराणि, शाम्यन्तु पापानि, शाम्यन्तु ईतयः शुभानि वर्द्धन्तां, शिवा आपः सन्तु शिवा ऋतवः सन्तु, शिवा अग्नयः सन्तु, शिवा आहुतयः सन्तु, शिवा वन

स्पतयः सन्तु, शिवा आपः सन्तु, अहोरात्रे शिवे स्यातां निकामे, निकामे, नः पर्य्यन्यो वर्षतु। फलवत्योन ओषधयः पच्यतां योगक्षेमो नः कल्पतां, शुक्रा-ङ्गारक-बुध-बृहस्पति-शनैश्चर-राहुकेतु-सोमसहिता आदित्यपुरोगाः सर्व्वे ग्रहाः प्रीयन्तां, भगवान् नारायणः प्रीयतां, भगवान् पर्ज्जन्यः प्रीयतां, भगवान् स्वामी महासेनः, प्रीयतां पुण्याहकालं वाचयिष्ये, वाच्यतां उद्गातेव शकुने सामगायसि याज्यया यजति यत्पुण्यं नक्षत्रं तद्वदकुर्वीतोपव्यूषं यदा वै सूर्य्य उदेति मध नक्षत्रं नैति यावति तत्र सूर्य्योगच्छेत् यत्र जघन्यं पश्येत्तावत् कुर्व्वीत यत्कारीस्यात्पुण्याह एवं कुरुते तानि यानि एतानि यमनक्षत्राणि यान्येव देवनक्षत्राणि तेषु कुर्व्वीतयत्कारीस्यात् पुण्याह एवं कुरुते पुण्याहं भवन्तो ब्रूवन्तु ओम् पुण्याहं स्वस्तये वायुमुपब्रुवामहे आदित्य उदितीय, स्वस्तिन इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्तिनः पूषा विश्ववेदाः स्वस्तिनस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पति र्दधातु।

अष्टौ देवा वसवः सोम्यासः चतस्रो देव्योरजसा श्रविष्ठाः ते यज्ञं पान्तु रजसः पुरस्तात् संवत्सरीणममृतꣳस्वस्ति।

स्वस्ति भवन्तो ब्रुवन्तु।

आयुष्मते स्वस्ति ऋद्धामस्तोमं सर्व्वामृद्धिमृद्धास्म हव्यैर्नमसोपसद्यमित्रं देवं मित्रधेयन्नोअस्तु अनुराधान हविषा वर्द्धयन्तः शतं जीवेम शरदः सवीलास्त्रीणि त्रीणि वेदेवानामृद्धानि त्रीणि छन्दांसि त्रीणि सवनानि त्रय इमे लोकामृद्धामेव तद्वीर्य्य एषु लोकेषु प्रतितिष्ठति ऋद्धिं भवन्तो ब्रुवन्तु ऋद्धातां श्रिये जातः श्रिय एतिनं यस्मिन् ब्रह्माभ्यजयत् सर्व्वमेतदमुञ्च लोकमिदमूचसर्व्वन्तस्रोन

ऋतमभिजिद्विजित्यश्रियं दधात्वकृणीयमान अदब्धोयमन्तं मे गोपाय यमृषयस्त्रयीविदो विदुः यजुः ऋचः सामानि यजूंषि सा हि श्रीरमृतायतां श्रीरस्त्विति भवन्तो ब्रुवन्तु अस्तु श्रीः पुण्याह समृद्धिरस्तु भगवान् प्रजापतिः प्रीयताम् ।

इति श्रीमहाराजाधिराज श्रीमहादेवस्य समस्तकर-
णाधीश्वरसकलविद्याविशारदश्रीहेमाद्रिविरचिते
चतुवर्गचिन्तामणौ दानखण्डे
परिभाषा प्रकरणम् ।

# चतुर्थोऽध्यायः।

## अथ दानफलानि।

आचारैः स्पृहणीयतां गमयता जन्म द्विजन्मान्वये
कीर्त्तैः सर्व्वपथीनतां रचयता तैस्तैर्गुणानां गणैः।
तत् किञ्चित् परमं महः कलयता मीमांसया छन्दसां
येनोच्चैःफलदायिदानमहिमन्यात्मेव दृष्टान्त्यते॥
यो हेमाद्रिः शिवं स्तौति सर्व्वदानागमोदितम्।
सोऽद्य दानफलं प्राह सर्व्वदानागमोदितम्॥

तत्र सामवेदोपनिषदि।

दानेन सर्व्वान् कामानवाप्नोति, चिरजीवित्वं ब्रह्मचारी रूपवानहिंस्र उपपद्यते, स्वर्गं पर्णाशनात्* द्विचिरः पयो भक्ष्यान-वीरासनाहितवान् पितृ-मातृ-गुरु-शुश्रूषाध्यानवान् स्वर्गीयः काञ्चनदानेनेति।

आह भगवान् ऋग्वेदः।

उच्चा दिवि दक्षिणावन्तो अस्थुर्ये अश्वदाः सह ते सूर्य्येण, हिरण्यदा अमृतत्वं भजन्ते, वासोदाः सोम प्रतिरन्त आयुरिति।
हारीतः। आपोददत् तृषमभिजयत्यात्मानं च निष्क्रीणाति।

---

* पर्णाशनादिति क्वचित् पाठः।

अन्नदानादसून् निष्क्रीणाति अन्नवानन्नादोऽन्नपतिश्च भवति ।

वस्त्रदानाद्वचोनिष्क्रीणाति सुरूपोऽनग्नो वस्त्रभाक् भवति, हिरण्यप्रदानात्तेजो निःक्रीणाति सुतेजाः श्रीमान् हिरण्यभाग्भवति, गोप्रदानाद्वाचो निष्क्रीणाति, सुवाग्विपाप्मा गोभाक् च भवति, अनडुत्प्रदानात् प्राणान्निष्क्रीणात्यरोगो बलवान् धर्म्म्यभाक् च भवति, रथप्रदानाच्छरीरन्निष्क्रीणाति भृत्यविविधविमानभाग्भवति, शय्याप्रदानात् सुखं निष्क्रीणाति यानशयनासनविविधसुखश्रीभाग्भवति अपरिमितप्रदानादपरिमितपोषं पुष्णाति अपरिमितान् कामानवाप्नोति ।

तद्विविधं भवति अविज्ञातदानं च विज्ञातदानञ्च,

यदविज्ञातविदुषे तदविज्ञातं दानम्, अथ यद्विज्ञातविदुषे सब्रह्मचारिणे वैश्वानरमाददानाय, यद्ददाति प्रतिगृह्णाति च, तद्विज्ञातदानं, तदप्येतद्यजुष्युक्तं, (इदं कस्मा अदादिति) ।

आत्मानं निष्क्रीणाति, आत्मानमेव ददातीत्यर्थः ।

अनेन प्रकारेण जलादिदानमेव स्तूयते ।

विष्णुः । तैजसानां पात्राणां प्रदानेन पात्रो भवति कामानां ।

मधु-घृत-तैलदानेनारोग्यं औषधप्रदानेन च, लवणप्रदानेन लावण्यं, धान्यप्रदानेन तुष्टिः, सस्यदानेन च तथा, इन्धनप्रदानेन दीप्ताग्निर्भवति, संग्रामे सञ्जयमाप्नोति, आसनदानेन स्थानं, शय्यादानेन भार्य्यां, उपानत्प्रदानेनाश्वतरीयुतं रथं, छत्रप्रदानेन स्वर्गं, तालवृन्त-चामरप्रदानेनादुःखित्वं, पुष्पप्रदानेन ज्यायान् भवति, अनुलेपनप्रदानेन कीर्त्तिमान् भवति ।

आह मनुः। वारिदस्तृप्तिमाप्नोति सुखमक्षय्यमन्नदः।
तिलप्रदः प्रजामिष्टां दीपदश्चक्षुरुत्तमम्॥
भूमिदः सर्व्वमाप्नोति दीर्घमायुर्हिरण्यदः।
गृहदोऽग्र्याणि वेश्मानि रूप्यदोरूपमुत्तमम्॥
वासोदश्चन्द्रसालोक्य-मश्विसालोक्य-मश्वदः।
अनडुहःश्रियं पुष्टां गोदोब्रघ्नस्य विष्टपम्॥
यानशय्याप्रदो भार्य्या-मैश्वर्य्यमभयप्रदः।
धान्यदःशाश्वतं सौख्यं ब्रह्मदो ब्रह्मसार्ष्टिताम्॥
'ब्रह्मसार्ष्टितां' ब्रह्मसमानगतित्वम्।
याज्ञवल्क्यः। भूदीपाश्चान्नवस्त्राम्भस्तिल-सर्प्पिः-प्रतिश्रयान्।
नैवेशिकस्वर्णधुर्य्यान् दत्त्वा स्वर्गे महीयते॥
गृहधान्याभयोपानच्छत्रमाल्यानुलेपनम्।
यानं वृक्षं श्रियं शय्यां दत्त्वात्यन्तं सुखी भवेत्॥
'प्रतिश्रयः' प्रवासिनामाश्रयः।
'नैवेशिकं, विवाहप्रयोजनकं द्रव्यम्
तथा। श्रान्तसम्वाहनं रोगि परिचर्य्या सुरार्चनम्।
पादशौचं द्विजोच्छिष्टमार्जनं गोप्रदासमम्॥
यमः। दत्त्वा प्रतिश्रयं लोके तथादत्त्वैवचाभयम्।
तथा दत्त्वा क्षितिं विप्रे ब्रह्मलोके महीयते॥
छत्रदोगृहमाप्नोति गृहदो नगरन्तथा।
तथोपानत्प्रदानेन रथमाप्नोत्यनुत्तमम्॥
इन्धनानां प्रदानेन दीप्ताग्निर्भुवि जायते।
गवां ग्रास-प्रदानेन सर्व्वपापैः प्रमुच्यते॥

रुक्मदः सर्व्वमाप्नोति रूप्यदो रूपमुत्तमम् ।
वासोदश्चन्द्रसालोक्यं सूर्य्यसालोक्यमश्वदः ॥
राजोपकरणं दत्त्वा रत्नानि विविधानि च ।
नगरञ्च तथा दत्त्वा राजा भवति भूतले ॥

तथा । देवमाल्यापनयन देवागारसमूहनम् ।
अर्च्चनञ्चैव विप्राणां द्विजोच्छिष्टापकर्षणम् ॥
पादशौचप्रदानञ्च प्रकल्प्य परिचारणम् ।
पादाभ्यङ्गप्रदानञ्च श्रान्तसम्वाहनन्तथा ॥
गवां कण्डूयनञ्चैव ग्रासदानाभिवन्दने ।
भिक्षादीपप्रदानञ्च तथैवातिथिपूजनम् ॥
एकैकस्य फलं प्राह गोप्रदानसमं यमः ।
यस्तु सम्भृत्य सम्भारं ब्राह्मणेभ्यः प्रयच्छति ॥
तस्य पुण्यकृतान् लोकान् न वक्तुं प्रभवाम्यहम् ॥

'सम्भारो' यज्ञ-विवाहाद्युपकरणद्रव्यम् ।

फलमूलानि पानानि शाकानि विविधानि च ।
यानानि दत्त्वा विप्रेभ्यो मुदायुक्तः सदा भवेत् ॥

तथा । धान्योदकप्रदायी च सर्प्पिर्दःसुखमश्नुते ।
विप्रेभ्यः पादुके दद्या-च्छयमान्यासनानि च ॥
विविधानि च दानानि दत्त्वा च नृपतिर्भवेत् ।

तथा । अन्नदस्तु भवेच्छ्रीमान् सुरूपः कीर्त्तिमानपि ॥
तैलमामलकं यच्छन् पादाभ्यङ्गन्तथैव च ।
नरः सुरूपस्तेजस्वी सुखवांश्चैव जायते ॥

तथा। मृत्तिकां गोशकृद्दर्भानुपवीतं तथोत्तरम्।
दत्त्वा गुणवते विप्रे कुले जायेत चोत्तमे॥
मुखवासन्तु योदद्याद्दन्तधावनमेवच।
शुचिःस्यात्सुभगोवाग्मी सुखीचैव सदा भवेत्॥
पादशौचन्तथा यानं शौचञ्च गुदलिङ्गयोः।
यःप्रयच्छति विप्राय शुचिःशुद्धः सदा भवेत्॥
गन्धौषधमथाभ्यङ्गं माक्षिकं लवणं तथा।
यः प्रयच्छति विप्राय सौभाग्यं सतु विन्दति॥
अत्रिः। दुर्भिक्षे अन्नदाता च सुभिक्षे च हिरण्यदः।
पानीयदस्त्वरण्ये च ब्रह्मलोके महीयते॥
देवलः। आतुरायासप्रदः स्वर्गं विमानेनाधिरोहति।
प्राप्नोति दशगोदानफलं* रोगिप्रतिक्रियः॥
प्रक्षाल्य पादौ विप्राय लभेत् गोदानजं फलम्।
चन्दनं तालवृन्तञ्च फलानि कुसुमानि च।
ताम्बूल-मासनं शय्यां दत्त्वात्यन्त सुखी भवेत्॥
कात्यायनः। पादाभ्यङ्गैः शिरोभ्यङ्गैर्दानमानार्च्चनादिभिः।
मृष्टवाक्यैर्विशेषेण पूजनीया द्विजोत्तमैः॥
वायुपुराणे। चन्दनानां प्रदातारः शङ्खानां मौक्तिकस्य च।
पापकर्तृनपि पितॄंस्तारयन्ति यथाश्रुतिः॥
महाभारते। दासीं दासमलङ्कारं क्षेत्राणि च गृहाणि च।
ब्रह्मदेयां सुतां दत्त्वा स्वर्गमाप्नोत्यसंशयं॥
लभते च शिवस्थानं बलिपुष्पप्रदो नरः।

* रोगिप्रतिक्रिय इति पाठान्तरम्।

तथा। धुर्य्यप्रदानेन गवां तथाश्वैर्लोकानवाप्नोति नरो वसूनाम्।
छत्रप्रदानेन गृहं वरिष्ठं यानं तथोपानहसम्प्रदानात्॥
वस्त्रप्रदानेन फलं सुरूपं गन्धप्रदानात् सुरभिर्नरः स्यात्।
भिक्षान्नपानीयरसप्रदाता प्राप्नोति सर्व्वांश्च रसान् प्रकामान्॥
प्रतिश्रयाच्छादनसम्प्रदाता प्राप्नोति तान्येव न संशयोऽत्र।
स्रग्धूपगन्धानुविलेपनानि स्नानानि माल्यानि च मानवो यः।
दद्याद्द्विजेभ्यः स भवेदरोगस्तथाभिरूपश्च नरेन्द्रलोके॥

तथा। चन्दनागुरुधूपांश्च विप्रेभ्यो यः प्रयच्छति।
ताम्बूलञ्च स्रजश्चैव स स्वर्गं प्रव्रजेन्नरः॥
तिलान्ददच्च पानीयं दीपमन्नप्रतिश्रयम्।
सतां स्वर्गप्रणामेतत्सूनृतानि वचांसि च।
सान्त्वदः सर्व्वमाप्नोति सर्वशोकैर्विमुच्यते॥
प्रेक्षणीयप्रदानेन स्मृतिं मेधाञ्च विन्दति॥

आदित्यपुराणे। धर्म्मशास्त्रप्रदातारः सत्रदानरताश्च ये।
तीर्थ-तड़ाग-कूपादि-नौका-सेतु-प्रदाश्च-ये॥
स्कन्धेन तारयेद्यस्तु तृषार्त्तानां जलप्रदः।
पक्वान् ददाति केदारान् सफलांश्चैव पादपान्॥
षष्टिकोटि सहस्राणि अर्बुदानां च वै त्रयम्।
क्रीड़न्ति ते स्वर्गपुरे एतदुक्तं द्विजोत्तम॥

तथा। अश्वम्वा यदि वा युग्यं शोभने वाथ पादुके।
ददाति यः प्रदानं वै ब्राह्मणेभ्यः सुसंयतः॥
तस्य दिव्यानि यानानि रथा ध्वजपताकिनः।
दुष्टः पन्था नचैवेह भविष्यति कथञ्चन॥

अन्न-पाना-श्व-गो-वस्त्र-छत्र-शय्या-सनानि च।
प्रेतलोके प्रशस्तानि दानान्यष्टौ विशेषतः॥

लिङ्गपुराणे। वस्त्रं ज्लं पवित्रं च दत्त्वाथ शिवयोगिने।
स महाभोगमाप्नोति अन्ते योगञ्च शाश्वतम्॥
आसनं शयनं यानं योददाति यशस्विने।
समं सर्वेषु भूतेषु तस्य दुःख न विद्यते॥

कालिकापुराणे। अभ्यङ्गमिन्धनंनीरंशयनासनमेव च।
दद्यान्नवाह्निकं चैव तमुद्दिश्य दिने दिने॥
कायिनामन्नदानन्तु तदुद्दिश्य निवेदयेत्।
अथवा किं प्रलापेन यत् किञ्चित् सुकृतं भुवि॥
कुर्वंस्तत्पदमाप्नोति शिवमुद्दिश्य लीलया।

देवीपुराणे। द्रव्यं भू-हेम-गो-धान्यन्तिलवस्त्रघृतादिकम्॥
विधिना चोपवासेन एकान्ननक्तभोजनात्।
शुचिना भावपूतेन क्षान्त्या सत्यव्रतादिना॥
अपि सर्षपमात्रस्य दातारन्तारयेद्ददत्।

आदित्यपुराणे॥ अथान्नदानाद्भूदानात् प्रीतो भवति केशवः॥
गुड़-क्षीर-घृतैर्वस्त्रैः प्रीतो भवति चन्द्रमाः।
जलदानाच्च वरुणः सुप्रसन्नो भवेत् सदा।
रजतेन च दत्तेन प्रीतः स्याच्च महेश्वरः॥
सुवर्णेन तु दत्तेन वह्निर्नित्यं प्रसीदति।
हस्त्यश्वरथयानैश्च मघवानासनैस्तथा॥
शयनैर्व्वेश्मभिधर्म्मशूत्रेणोष्णांशुरेव च।
उपानद्भ्यां यमोगोभिः सौरभेयः कपर्द्दिनः॥

पादुकाभ्यां प्रदत्ताभ्यां पद्मयोनिः प्रतुष्यति ।
अलङ्कारैस्तथामान्यैर्जगन्माता च पार्व्वती ॥

स्कन्दपुराणे । यो गाञ्च महिषीं दद्यात् सालङ्कारां पयस्विनीं ।
कांस्यवस्त्रादिभियुक्तां स कामान् लभते खिलान् ॥

सौरपुराणे । कृष्णाजिनञ्च महिषी मेषौ च दशधेनवः ।
ब्रह्मलोकप्रदायिन्यस्तुलापुरुष एव च ॥

वह्निपुराणे । यानमश्वमनड्वाहं हेमरूप्यमणींस्तिलान् ।
ये प्रच्छतिन्यपापेषु निरताः सर्व्वदा मुने ।
न तेषां भैरवः पन्था कदाचिदपि जायते ॥

विष्णुधर्म्मोत्तरे हंसउवाच ।

नरस्त्वासनदानेन स्थानं सर्व्वत्र विन्दति ।
सय्यादानेन चाप्नोति भार्य्यां ब्राह्मणसत्तमाः ॥
दत्त्वा द्विजाय शयनं स्वास्तीर्णं चोत्तरच्छदम् ।
कुले महति संभूतिं रूपद्रविणसंयुताम् ॥
तथापत्यवतीं भार्य्यां प्राप्नोति वशगां तथा ।
अनेनैव प्रदानेन भार्य्या पतिमवाप्नुयात् ॥
वितानकप्रदानेन सर्व्वपापैः प्रमुच्यते ।
छत्रदस्य तथा विप्रा नात्रकार्य्या विचारणा ॥
छत्रं शतशलाकञ्च वृष्टेरातपवारणम् ।
सर्व्वपापविनिर्म्मुक्तः स्वर्गे लोके महीयते ॥
याम्यं मार्गं तथा याति सुखेन द्विजसत्तम ।
उपानहौ तथा दत्त्वा श्लक्ष्णे स्नेहसमन्विते ॥
रथमश्वतरीयुक्तं त्रिदिनं प्रतिपद्यते ।

सर्व्वपापविनिर्मुक्तोयाम्यं मार्गं सुखं व्रजेत् ॥
तालवृन्तप्रदानेन सर्व्वपापैः प्रमुच्यते ।
तथा चामर दानेन सर्व्वदुःखैर्व्विमुच्यते ।
पादुकानां प्रदानेन गतिमाप्नोति शोभनाम् ॥
पादपीठप्रदानेन स्थानं सर्व्वत्र विन्दति ।
स्थानमेव तथाप्नोति दण्डं दत्त्वा द्विजातये ॥
यज्ञोपवीतदानेन वस्त्रदानफलं लभेत् ।
उष्णीषदानस्य तथा फलमेतदुदाहृतम् ॥
दन्तकाष्ठप्रदानेन सौभाग्यं महदाप्नुयात् ।
मृत्तिकायाः प्रदानेन शुचिः सर्व्वत्र जायते ॥
शौचस्नानोदकं दत्त्वा विरोगस्त्वभिजायते ।
रोगनाशमवाप्नोति तथाभ्यङ्गप्रदःसदा ॥
तथैवौषधदानेन रोगनाशमथाश्नुते ।
स्नानीयानि सुगन्धीनि दत्त्वा सौभाग्यमश्नुते ॥
अनुलेपनदानेन रूपवानभिजायते ।
कायाग्नि-दीप्ति-प्राकाश्याकृतिं चैव तथोत्तमाम् ॥
यस्तु संसाधनार्थाय ब्राह्मणाय प्रयच्छति ।
स याति वह्निसालोक्यं शत्रुनाशं च विन्दति ॥
तैजसानि तु पात्राणि दत्त्वा सलवणानि च ।
तैजसानि तु पात्राणि सतैलानि प्रयच्छतः ॥
आरोग्यमुत्तमं प्रोक्तं लावण्यमपि चोत्तमम् ।
तथा । समुद्रजानां भाण्डानां शङ्खादीनां प्रदायकः ।
पात्री भवति कामानां यशसश्च न संशयः ॥

कङ्कतस्य प्रदानेन परां बाधां प्रमुञ्चति ॥
शय्याप्रदानं लोकेषु तथा स्थानकरं परम्।
दत्त्वानुलेपनं माल्यं परां लक्ष्मीमुपाश्नुते ॥
तथा। नृवाह्यं पुरुषो यस्तु द्विजे सम्यक् प्रयच्छति।
अश्वमेधफलं तस्य कथितं द्विजसत्तमाः ॥
शिविकायाः प्रदानेन वह्निष्टोमफलं भवेत्।
स याति शक्रसालोक्यं यस्तु योधं प्रयच्छति ॥
यस्तु कर्म्मकरीं दासीं ब्राह्मणाय प्रयच्छति।
लोकास्तु सुलभास्तस्य वसूनां समुदाहृताः ॥
तरुणीं रूपसम्पन्नां दासीं यस्तु प्रयच्छति।
सोऽप्सरोभिर्म्मुदायुक्तः क्रीड़ते नन्दने वने ॥
उष्ट्रस्या गर्द्दभस्यापि यः प्रयच्छति तु द्विजाः।
अलकाञ्च समासाद्य यक्षेन्द्रैः सह मोदते ॥
दानानामुत्तमं प्रोक्तं प्रदानं तुरगस्य च।
वड़वायाः प्रदानन्तु तथा बहुफलं स्मृतम्।
तुरगान् यः प्रयच्छन्ति सूर्य्यलोकं व्रजन्ति ते ॥
यावन्ति तस्य रोमाणि तावद्वर्षशतानि च।
शुक्लन्तुरङ्गमन्दत्त्वा फलं दशगुणं भवेत् ॥
गौर्यथा कपिला श्रेष्ठा तथैव तुरगःसितः।
तुरङ्गमं सुपर्वाणं सालङ्कार प्रयच्छतः ॥
पुण्डरीकफल प्रोक्तं नात्रकार्य्या विचारणा।
चतुर्भिस्तुरगैर्युक्तं सर्व्वोपकरणैर्युतम् ॥
रथं द्विजातये दत्त्वा राजसूयफलं लभेत् ॥

प्रदाय करिणीं सम्यगेतदेव फलं लभेत्।
कुञ्जरस्य प्रदानेन मनुष्यः स्वर्गविच्युतः॥
राजा भवति लोकेस्मिन् यशोविक्रमसंयुतः।
सुवर्णकक्षं मातङ्गं दत्त्वा विप्राय वै द्विजाः॥
राजसूयाश्वमेधाभ्यां फलं विन्दत्यसंशयम्।
चतुर्भिः कुञ्जरैर्युक्तं रथं दत्त्वा द्विजातये।
समग्रभूमिदानस्य फलं प्राप्नोत्यसंशयम्॥

तथा। यथोक्तविधिना दद्यात् क्रीत्वा तु कपिलां नरः।
सर्वकामसमृद्धश्च स यज्ञफलमश्नुते॥
गवां लोकमवाप्नोति कुलमुद्धरति स्वकम्।
वारुणं लोकमाप्नोति दत्त्वा च महिषीं ततः॥
अलंकृतान्तु तां दत्वा गोदानफलमाप्नुयात्।
अजामलंकृतां दत्त्वा वह्निलोके महीयते॥
तमेव लोकमाप्नोति दत्त्वाजं विधिवन्नरः।
महिषस्य प्रदानेन याम्ये लोके महीयते॥
वारुणं लोकमाप्नोति दत्त्वा रत्नं नृपोत्तम।
घृष्टिप्रदानाच्च तथा तदेव फलमश्नुते॥
आरण्यपशुदानेन वायुलोके महीयते।
एतदेवफलं प्रोक्तं प्रदानेन च पक्षिणाम्॥

ब्रह्माण्डपुराणे। लोके श्रेष्ठतम सर्वमात्मनश्चापि यत्प्रियं।
सर्वं पितॄणां दातव्यं तेषा मेवाक्षयार्थिना॥
जाम्बूनदमयन्दिव्यं विमानं सूर्यसन्निभं।
दिव्याप्सरोभिः सम्पूर्णमन्नदो लभते क्षयम्॥

आच्छादनन्तु योदद्यादहतं श्राद्धकर्म्मणि।
आयुःप्रकाशमैश्वर्य्यं रूपञ्च लभते शुभम्॥
यज्ञोपवीतं योदद्यात् पादुके श्राद्धकर्म्मणि।
शोभनं लभते यानं पादयोः सुखमेवच॥
व्यजनन्तालवृन्तञ्च दत्त्वा विप्राय सत्कृतम्।
प्राप्नुयात्तल्पसंयुक्तं शयनीयं सुखावहम्॥
श्राद्धेषूपानहौ दत्त्वा ब्राह्मणेषु सदा भुवि।
दिव्यं स लभते चक्षुर्व्वाजियुक्तं रथं तथा॥
श्रेष्ठञ्छत्रञ्च विमलं पुष्पमालाविभूषितम्।
प्रासादस्तूत्तमो भूत्वा गच्छन्तमनुगच्छति॥
शरणं रत्नसम्पूर्णं सशय्यासनभाजनम्।
श्राद्धे दत्त्वा पितृभ्यस्तु नाकपृष्ठे महीयते॥
मुक्ता-वैदूर्य्यवासांसि रत्नानि विविधानि च।
लवणानां सुपूर्णानि श्राद्धे पात्राणि यो ददेत्।
रसास्तमनुतिष्टन्ति आयुः सौभाग्य मेव च॥
पात्रं वै तैजसं दत्त्वा मनोज्ञं श्राद्धकर्म्मणि।
पात्रं भवति कामानां विद्यानाञ्च धनस्य च॥
राजतं काञ्चनञ्चैव दद्याच्छ्राद्धे तु कर्म्मणि।
प्रभूतं लभते दाता प्राकाम्यां धनमेव च॥
धेनुं श्राद्धेषु योदद्याद्गृष्टिं कुम्भोपदोहनाम्।
गावस्तमनुतिष्टन्ति गवां पुष्टिस्तथैव च॥
गन्धवन्ति विचित्राणि स्नानानि सुरभीणि च।
पूजयित्वा तु पात्राणि श्राद्धे सत्कृत्य दापयेत्॥

गन्धर्वहा महानद्यः सुखानि विविधानि च।
दातारमुपतिष्ठन्ति पुनन्त्यश्वपतिव्रताः॥
शयना-सन-याना-निभूमयो वाहनानि च।
दातारमुपतिष्ठन्ति तथा स्वर्गे महीयते।
श्राद्धेष्वेतानि योदद्यात् सोऽश्वमेधफलं लभेत्॥
सर्पिःपूर्णानि पात्राणि श्राद्धे सत्कृत्य दापयेत्।
कुम्भदोहनक्षीराणां सहस्रं लभते गवाम्।
रम्यानावसथान् दत्त्वा राजसूयफलार्द्धभाक्॥
तथाभरणसम्पूर्णां सोपधानां स्वलङ्कृताम्।
शय्याञ्च विविधां दत्त्वा द्विजोऽग्निष्टोमभाग्भवेत्॥
दासीं दासञ्च विविधं तथैवोष्ट्रमजाविकम्।
हस्त्य-श्व-रथ-यानञ्च श्राद्धकर्म्मणि नित्यशः।
तिलांश्च विविधान् दत्त्वा लभते फलमक्षयम्॥
पितृकर्म्मणि युक्तस्तु शालिशोभनपुण्यकृत्।
घनपुष्पफलोपेतं दत्त्वा शोभनमश्नुते॥
कूपा-राम-तडागानि क्षेत्र-घोष-गृहाणि च।
दत्त्वा तु मोदते स्वर्गे नित्यमाचन्द्रतारकम्॥
स्वास्तीर्णं शयनं दत्त्वा श्राद्धे रत्नविभूषितम्।
पितरस्तस्य तुष्यन्ति स्वर्गे चानन्त्यमश्नुते॥
पट्टकौशेयपत्रोर्णं तथा प्रच्छादकम्बलम्।
अजिनं रौरवपट्टं पावनं मृगरोमजम्॥
दत्त्वा चैतानि विप्रेभ्यो भोजयित्वा यथाविधि।
प्राप्नोति श्रद्दधानस्तु हयमेधस्य यत् फलम्॥

कौशेय-क्षौममार्गञ्च दुकूलमहतं तथा ।
श्राद्धेष्वेतानि यो दद्यात् कामान् प्राप्नोत्यनुत्तमाम् ॥
पक्वान्नानि करम्भञ्च मिष्टान्न-घृतशर्करा: ।
कृशरा मधुपर्कञ्च पयः पायसमेव च ।
स्निग्धमुष्णञ्च यो दद्याज्ज्योतिष्टोम फलं लभेत् ॥

महाभारते । वस्त्राभरणदातारो भक्तपानान्नदास्तथा ।
कुटुम्बान्नप्रदातारः पुरुषाः स्वर्गगामिनः ॥
सहस्रपरिवेष्टारः तथैव च सहस्रदाः ।
त्रातारश्च सहस्राणां ते नराः स्वर्गगामिनः ॥
सुवर्णस्य च दातारो गवाञ्च भरतर्षभ ।
यानानाञ्च प्रदातारस्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥
वैवाहिकानां प्रेक्षाणां प्रेष्याणाञ्च युधिष्ठिर ।
दातारो वाससाञ्चैव पुरुषाः स्वर्गगामिनः ॥
विहारा-वसथो-द्यान-कूपा-राम-सद-प्रदाः ।
प्रपाणाञ्चैव कर्त्तारस्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥
नयेत् पातात्तथा वाधाद्दारिद्र्याद्व्याधिधर्षणात् ।
यत्कृते प्रतिमुच्यन्ते ते नराः स्वर्गगामिनः ॥
शुश्रूषाभिस्तपोभिश्च कृतमादाय भारत ।
ये प्रतिग्रहनिस्नेहास्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥
सर्व्वहिंसानिवृत्ताश्च नराः सर्व्वसहाश्च ये ।
सर्व्वस्याश्रयभूताश्च ते नराः स्वर्गगामिनः ॥
आढ्याश्च बलवन्तश्च यौवनस्थाश्च भारत ।
ये वै जितेन्द्रिया धीरा स्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥

नारसिंहपुराणे। एकविंशत्यमी स्वर्गा निविष्टा मेरुमूर्द्धनि।
अहिंसादानकर्त्तारो यज्ञानां तपसां तथा।
एतेषु निवसन्ति स्म जनाः क्रोधविवर्ज्जिताः॥
एकविंशतिस्वर्गा अनन्तरमेव वक्ष्यमाणा आनन्दप्रभृतयः।
जलप्रवेशी चानन्दं प्रमोदं वह्निसाहसे*।
भृगुप्रपाते सौख्यं रणे चैवातिनिर्म्मलम्॥
अनशने चाथ सन्यासे मृतो गच्छेत्त्रिपिष्टपम्।
क्रतुयाजी नाकपृष्ठमग्निहोत्री च निर्वृतिम्॥
'क्रतुयाजी, सोमयागकर्त्ता।
तडाग-कूपकर्त्ता च लभते पौष्टिकं द्विज।
सुवर्णदायी सौभाग्यं लभते स्वर्म्महातपाः॥
शीतकाले महावह्निं प्रज्वालयति योनरः।
सर्व्वसत्वहितार्थाय स स्वर्गञ्चाप्सरं लभेत्॥
हिरण्य-गो-भूदानेन निरहङ्कारमाप्नुयात्।
भूदानेन तु शुद्धेन लभते शान्तिकं पदम्॥
गोप्रदानेन स्वर्गन्तु निर्म्मलं लभते नरः।
अश्वदानेन पुण्याहं कन्यादानेन मङ्गलम्॥
द्विजेभ्यस्तर्पणं कृत्वा दत्त्वा वस्त्राणि भक्तितः।
श्वेतन्तु लभते स्वर्गं यत्र गत्वा न शोचति॥
कपिला गो प्रदानेन परमार्थे महीयते॥
एकान्नभोजी यो मर्त्यो नक्तभोजी च नित्यशः।
उपवासी त्रिरात्राद्यैरन्ते स्वर्गसुखं लभेत्॥

* वह्निसाहसीति क्वचित्पाठः।

'एकान्नभोजी, एकभक्तव्रतः ।
सरित्स्नायी जितक्रोधो ब्रह्मचारी दृढव्रतः ।
निर्म्मल सुखमाप्नोति तथा भूतहिते रतः ॥
विद्यादानेन मेधावी निरहंकारमाप्नुयात् ॥

ब्रह्मपुराणे । कर्पूरा-गुरु-कस्तूरी-चन्दनानि द्विजातये ।
दत्त्वा सम्यगवाप्नोति भोगमप्सरसां शुभम् ॥
रत्नालङ्कार-वासांसि शयनासनभाजनम् ।
वहुभाग्यः सुखी चैव प्रदत्त्वा जायते नरः ॥
यो ददाति महासत्वतुरङ्ग-रथ-दन्तिनः ।
स विमानवरारूढः प्रजापतिपुरं व्रजेत् ॥
उष्ट्री-रम्भा-ज-महिषीं यो ददाति महायशाः ।
स नैव नरके वासमासादयति जातुचित् ॥

नारसिंहपुराणे ।

यस्तु सर्व्वाणि दानानि ब्राह्मणेभ्यः प्रयच्छति ।
स प्राप्य न निवर्त्तेत देवं शान्तमनामयम् ॥

विष्णुधर्म्मोत्तरे ।

किंस्वित् स्वकैः पूजनैर्ब्राह्मणानां लोकङ्गत्वा ब्राह्मणं ब्राह्मणेन्द्राः ।
देवैर्व्विप्रैः पूज्यमानः सुखी स्यात्तस्माद्देयं प्रार्थितं ब्राह्मणेभ्यः ॥

इति श्रीमहाराजाधिराज-श्रीमहादेवस्य समस्तकरणा-
धीश्वरसकलविद्याविशारद-श्रीहेमाद्रिविरचिते
चतुर्वर्गचिन्तामणौ दानखण्डे
दानफलप्रकरणम् ॥

## पञ्चमोऽध्यायः ।



अथ दानानि प्रतिपाद्यन्ते ।

तत्र प्रथमं विशिष्टतया तुलापुरुषादिषोड़शमहादानानि ।

जाताः सन्ति पुरा भवन्ति बहवो ये दानशौण्डा नरा ।
स्तान् कल्पद्रुमकामधेनुतुलया स्तोतुं समर्था जनाः ।
तां धेनुमपि तद्द्रुमभुविमहादानच्छलाद्यच्छतः ।
हेमाद्रेरुपमानवस्तुनि पुनः पुष्णाति तूष्णीं न कः ॥

तुला पुरुषमुख्यनामपि येन सहासहा ।
तुलापुरुषमुख्यानां दानानां विधिमाह सः ॥

तत्र तुलापुरुषदान तावदभिधीयते ।

मत्स्यपुराणे सूतउवाच ।

अथातः संप्रवच्यामि महादानानुकीर्त्तनम् ।
दानधर्म्मेपि यत् प्रोक्तं विष्णुना प्रभविष्णुना ॥
सर्व्वपापक्षयकर नृणान्दुःखविनाशनम् ।
यत्तत्षोड़शधा प्रोक्तं वासुदेवेन भूतले ॥
पुण्यं पवित्रमायुष्यं सर्व्वपापहरं शुभम् ।
पूजितं देवताभिश्च ब्रह्म-विष्णु-शिवादिभिः ॥
आद्यन्तु सर्व्वदानानां तुलापुरुषसंज्ञितम् ।

हिरण्यगर्भदानञ्च ब्रह्माण्डं तदनन्तरम् ॥
कल्पपादपदानञ्च गोसहस्रञ्च पञ्चमम् ।
हिरण्यकामधेनुश्च हिरण्याश्वस्तथैव च ॥
हिरण्याश्वरथस्तद्वद्धेमहस्ति-रथस्तथा
पञ्चनाङ्गलकं तद्वद्धरादानं तथैव च ॥
द्वादशं विश्वचक्रञ्च ततः कल्पलतात्मकम् ।
सप्तसागरदानञ्च रत्नधेनुस्तथैव च ॥
महाभूतघटस्तद्वत्षोड़शः परिकीर्त्तितः ।
सर्व्वाण्येतानि कृतवान् पुरा शम्बरसूदनः ॥
वासुदेवश्च भगवान् अम्बरीषोऽथ पार्थिवः ।
कार्त्तवीर्य्यार्जुनो नाम प्रह्लादः पृथुरेव च ॥
चक्रुरन्ये महीपालाः केचिच्च भरतादयः ।
यस्माद्विघ्नसहस्रेभ्यो महादानानि सर्व्वदा ॥
रक्षन्ति देवताः सर्व्वा एकैकमपि भूतले ।
एषामन्यतमं कुर्य्याद्वासुदेवप्रसादतः ॥
न शक्यमन्यथा कर्त्तुमपि शक्रेण भूतले ।
तस्मादाराध्य गोविन्दमुमापति-विनायकौ ॥
महादानमखं कुर्य्यात् विप्रैश्चैवानुमोदितः ।
एतदेवाह मनवे परितुष्टो जनार्द्दनः ।
यथा तदनुवक्ष्यामि शृणुध्वमृषिसत्तमाः ॥

मनुरुवाच ।

महादानानि यानीह पवित्राणि शुभानि च ।
रहस्यानि प्रदेयानि तानि मे कथयाच्युत ॥

मत्स्य उवाच।

नोक्तानि यानि गुह्यानि महादानानि षोड़श।
तानि ते सम्प्रवक्ष्यामि यथावदनुपूर्व्वशः।
तुलापुरुषयागोयं येषामाद्योभिधीयते॥

'आद्यः' प्रकृतिभूतः।

अयने विषुवे पुण्ये व्यतीपाते दिनक्षये।
युगादिषूपरागेषु तथा मन्वन्तरादिषु॥
संक्रान्तौ वैधृतिदिने चतुर्द्दश्यष्टमीषु च।
सितपञ्चदशीपर्व्वद्वादशीष्वष्टकासु च॥
यज्ञोत्सव-विवाहेषु दुःस्वप्नाद्भुतदर्शने।
द्रव्यब्राह्मणलाभे च श्रद्धा वा यत्र जायते॥
तीर्थे वायतने गोष्ठे कूपा राम-सरित्सु च।
गृहे वाथ वने वापि तड़ागे रुचिरे तथा॥
महादानानि देयानि संसारभयभीरुणा।
अनित्यं जीवितं यस्माद्वसु चातीवचञ्चलम्॥
केशेष्विव गृहीतस्तु मृत्युना धर्म्ममाचरेत्।
पुण्यान्तिथिमथासाद्य कृत्वा ब्राह्मणवाचनम्॥

वक्ष्यमाणं मण्डपादिं कारयेदित्यन्वयः।

तिथिमित्युपलक्षणम्।

पूर्व्वाह्ने पुण्यमुहूर्त्तादौ चेति वेदितव्यं, 'ब्राह्मणवाचनं' ब्राह्मणैः पुण्याहादिशब्दवाचनम्, तद्विधानन्तु परिभाषायां प्रागभिहितम्।

इह चायं प्रयोगक्रमः।

उक्तकालान्यतमदानप्रतिपादनदिनात्पूर्व्वेद्युः प्रातः सुस्नातः

श्वोभूतेऽहममुकदानं प्रतिपादयिष्ये, इति यजमानः सङ्कल्पं विधाय, प्रत्यूहसमूहविघाताय शिव-विष्णु-विनायकान् सम्पूज्य, ब्राह्मणानुज्ञातः कर्म्म समारभेत्, अथ वृद्धिश्राद्धं कृत्वा तदनन्तरमृत्विग्वरणं विधाय, तांश्च मधुपर्कविधिना सम्पूज्य, पश्चिमद्वारमण्डपं प्रविश्यापराह्णेऽधिवासनं विदध्यात्, मधुपर्कविधि-कुण्डमण्डपादिलक्षणानि परिभाषायां द्रष्टव्यानि ।

विशेषस्तु वक्ष्यते ।

षोडशारत्निमात्रञ्च दश द्वादश वा करान् ।
मण्डपं कारयेद्विद्वांश्चतुर्भद्राननन्त्वधः ॥

यजमानस्यैकविंशत्यङ्गुलः, अरत्निः चतुर्विंशत्यङ्गुलः, करः ।

एतच्च मानत्रयमुत्तम-मध्यमा-धमभेदेन विज्ञेयम् ।

'चतुर्भद्राननमिति, चत्वारि भद्रयुक्तानि आननानि द्वाराणि यस्य स तथा ।

यदाह दानसभामधिकृत्य विश्वकर्म्मा ।

द्वारैश्चतुर्भिः परिनिर्गतैर्या विभूषिता सुन्दरमूर्त्तिरूपा ।
रत्नोद्भवा सा कथिता सभेयं भद्रं ह्यलिन्दं करणीयमस्या इति।

मत्स्यपुराणे । सप्तहस्ता भवेद्वेदी मध्ये पञ्चकराथ वा ।
तन्मध्ये तोरणं कुर्य्यात् सारदारुमयं शुभम्

उत्तममण्डपे सप्तकरा वेदी, इतरयोस्तु पञ्चकरेति व्यवस्थितो विकल्पः, साचेष्टकामयी चतुर्थांशोच्छ्रिता विधेया ।

तन्मध्ये तुलावलम्बानार्थं तोरणाकृतित्वात्तोरणम्, सारदारूणि, शाकेङ्गुद्यादि, वक्ष्यमाणानि ।

कुर्य्यात् कुण्डानि चत्वारि चतुर्दिक्षु विचक्षणः ।

सुमेखलायोनियुतानि तद्वत्सम्पूर्णकुम्भानि महासनानि ॥
सताम्रपात्रद्वयसंयुतानि सयज्ञपात्राणि सविष्टराणि ।
हस्तप्रमाणानि तिला-ज्य-धूप-पुष्पो-पहाराणि सुशोभनानि ॥

'चतुर्दिक्षु, वेद्या इति शेषः। सपादहस्तसम्मितश्च कुण्डवेद्योरन्तरं विधेयम्। 'पूर्णकुम्भः, जलपूर्णकलशः, 'ताम्रपात्रद्वयं, हवनीयद्रव्याधारभूतम्। 'यज्ञपात्राणि, स्रुक्स्रुवादीनि। 'विष्टरः, छिन्नाग्रपञ्चविंशतिकुशपत्रनिर्म्मितः। 'धूपः, गुग्गुलप्रभृतिः' 'उपहारः, फलान्नादिः।

पूर्व्वोत्तरे हस्तमिताथ वेदी ग्रहादिदेवेश्वरपूजनाय।
पर्य्याचनं ब्रह्म-शिवा-च्युतानां तथैव कार्य्यं फल-माल्य-वस्त्रैः ॥

'पूर्व्वोत्तरे' ईशानभागे।

आयामतो विस्तारतश्च हस्तसंमिता वितस्तिमात्रोच्छ्रया च वेदी कार्य्या। तत्र मध्ये सूर्य्यं स्थापयेत्।
आग्नेये सोमं, दक्षिणतो भौमं, ईशाने वुधं, उत्तरे गुरुं, पूर्व्वे भार्गवं, पश्चिमतः शनिं, नैर्ऋत्यभागे राहुं, वायव्यतः केतुमिति।

आदिशब्दोपात्ताश्चैते, ईश्वर-गौरी-स्कन्द-विष्णु-ब्रह्म-शक्र-यम-काल-चित्रगुप्ता इत्यधिदेवताः।

अग्नि-जल-भूमि-विष्णु-शक्र-शची-प्रजापति-सर्प-ब्रह्माण इति प्रत्यधिदेवता एते स्व स्व ग्रहसंनिधौ स्थाप्याः।

तथा। विनायको दुर्गा वायुराकाश-मश्विनौचेति शनि-सूर्य्ययोरुत्तरभागे राहु-केत्वोश्च दक्षिणे दुर्गाप्रभृतीनां स्थापनम्। तथा लोकपालादीनामप्यत्र स्थापनम्। तेषामुत्तरत्र देवतात्वेनाभिधानात्।

तदुक्तं स्मृत्यन्तरे । इन्द्रः पूर्व्वे तु संस्थाप्यः प्रेतेशं दक्षिणे तथा ।
वरुणं पश्चिमे भागे कुबेरं चोत्तरे न्यसेत् ॥
इन्द्रः पीतो यमः श्यामो वरुणः स्फटिकप्रभः ।
कुवेरस्तु सुवर्णाभो अग्निश्चापि सुवर्णभः ॥
तथैव निर्ऋतिः श्यामो वायुर्धूम्रः प्रशस्यते ।
ईशानस्तु भवेद्रक्त एवं ध्यायेत्क्रमादिमान् ॥
इन्द्रस्य दक्षिणे पार्श्वे वसूनावाहयेद्बुधः ।
ध्रुवो-ध्वरस्तथा सोम आपश्चैवा*निलोऽनलः ॥
प्रत्यूषश्च प्रभासश्च† वसवोष्टौ प्रकीर्त्तिताः ।
देवेशे-शानयोर्म्मध्ये आदित्यानां तथायनम् ॥
धाता र्यमा च मित्रश्च वरुणोंशोभगस्तथा ।
इन्द्रोविवस्वान् पूषा च पर्जन्यो दशमः स्मृतः ॥
ततस्त्वष्टा ततोविष्णुरजघन्योजघन्यजः‡ ।
इत्येते द्वादशादित्या नामभिः परिकीर्त्तिताः ॥
अग्नेः पश्चिमतोभागे रुद्राणामयनं विदुः ।
वीरभद्रश्च शम्भुश्च गिरीशश्च महायशाः ॥
अजैकपादहिर्व्बुध्नः§ पिनाकी चापराजितः ।
भूवनाधीश्वरश्चैव कपाली च विशाम्पतिः ।
स्थाणुर्भगश्च भगवान् रुद्रास्त्वेकादश स्मृताः ॥

* चापस्तथेति क्वचित् पाठः ।
† प्रभातश्चेति क्वचित्पाठः ।
‡ सम्मत इति क्वचित् पाठः ।
§ बध्न इति पाठान्तरम् ।

प्रेतेश-रक्षसोर्मध्ये मातृस्थानं प्रकल्पयेत्॥

मातृनामानि परिभाषाप्रकरणे दर्शितानि गौरी-पद्मादीनि।

निर्ऋतेरुत्तरेभागे गणेशायतनं विदुः।

कुबेर-मरुतोर्मध्ये मरुतां स्थानमुच्यते॥

मरुतो नाम ते देवा गणा वै सप्तसप्तकाः।

आवहः प्रवहश्चैव उद्वहः सम्वहस्तथा॥

विवहः प्रवहश्चैव तथा परिवहोऽनिल॥ इति।

एते सूर्य्यादयो ग्रहयज्ञोक्तविधिना पूजनीयाः, अनुक्तमन्त्रकाणान्तु, प्रणवादिभिश्चतुर्थ्यन्तैर्नामभिर्नमोन्तैः स्थापनादि विधेयम्।

अथ तत्रैव ब्रह्म-शिवा-च्युतानामर्चनं प्रतिमापूजनञ्च कर्त्तव्यम्। तल्लक्षणं ब्रह्माण्डदाने वक्ष्यते।

मत्स्यपुराणे।

लोकेशवर्णाः परितः पताका मध्ये ध्वजः किङ्किणिकायुतः स्यात्।

द्वारेषु कार्य्याणि च तोरणानि चत्वार्य्यपि क्षीरवनस्पतीनाम्।

द्वारेषु कुम्भद्वयमत्र कार्य्यं स्रग्गन्ध-धूपा-म्बर-रत्नयुक्तम्॥

लोकेशवर्णाः, इन्द्रः पीतोयमः श्यामइत्यादिनिरन्तरोक्तलोकपालसमानवर्णाः।

'परितः', मण्डपस्य पूर्व्वादिसर्व्वदिक्षु। 'किङ्किणिकाः', क्षुद्रघण्टिकाः। 'क्षीरवनस्पतीनां, अश्वत्थो-दुम्बर-प्लक्ष-न्यग्रोधानां पूर्व्वदक्षिण-पश्चिमोत्तरद्वारेषु यथाक्रमं मस्तके दारुमयशंख-चक्र-गदा-पद्मचिह्नितानि तोरणानि कुर्य्यात्।

'रत्नानि' कनकप्रभृतीनि परिभाषायामुक्तानि।

शाके-ङ्गुदी-चन्दन-देवदारु-श्रीपर्णि-बिल्व-प्रियकाञ्जनोत्थम्।
स्तम्भद्वयं हस्तयुगावखातं कृत्वा दृढं पञ्चकरोच्छ्रितञ्च।
तदन्तरं हस्त चतुष्टयं स्यात्तथोत्तराङ्गं चतुरस्रमेव॥

'शाकः', वृक्षविशेषः। महाराष्ट्रे साग इति प्रसिद्धः॥

'श्रीपर्णी', 'भद्रपर्णी तरुः। 'प्रियकः' बीजकः।

स्तम्भद्वयं चतुरस्रीकृत्य वेदिमध्ये पूर्व्व-पश्चिम-भागयोर्निधेयम्।

'उत्तराङ्गं' स्तम्भद्वयोरुपरिकाष्ठम्। तच्च पञ्चकरोच्छ्रितयोः स्तम्भयोर्हस्तचतुष्टयादुपरि निधेयम्। यथोत्तराङ्गञ्च तदङ्गमेवेति पाठे तदीयमिति स्तम्भसजातीय काष्ठत्यर्थः।

समानजातिश्च तुलावलम्ब्या हैमेन मध्ये पुरुषेण युक्ता।
दैर्घ्येण सा हस्तचतुष्टयं स्यात् पृथुत्वमस्यास्तु दशाङ्गुलानि॥
सुवर्णभद्राभरणा तु कार्य्या सलोहपाशद्वयशृङ्खलाभिः।
युता सुवर्णेन च रत्नमाला विभूषिता माल्यविलेखनाभाः॥

'समानजातिः' तोरणसमानजातिः तुलोत्तराङ्गमध्ये द्वादशभिरङ्गुलैरधस्तादुदगग्रा अवलम्ब्या।

'पुरुषेण' विष्णुना।

'शृङ्खलावलम्बितया' सुवर्णनिर्मितया।

तत्प्रतिमालक्षणमुक्तं पञ्चरात्रे।

अधश्चक्र गदामूर्द्धे वामयोः करयोः क्रमात्।
ऊर्द्धे शंखमधःपद्मं गोविन्दः कपिलाङ्गकः॥

हस्तचतुष्टयदीर्घन्तु, प्रान्तद्वयन्यस्तयोर्लौहपाशयोर्बहिःस्थितमण्डलषट्कं विहाय विन्यसेत्।

समस्ततुलाया अष्टोत्तरशताङ्गुलमितत्वात् पृथुत्वञ्चास्या दशाङ्गुलपरिमितेन वलयाकृतिना सूत्रेण सम्मितं विधेयमित्यर्थः।

स च लौहपाशद्वयशृङ्खलाभिर्युतेति, सुवर्णधारणार्थं फलकधारिणीभिर्लौहपाशद्वयावलम्बितशृंखलाभिर्युक्ता कार्य्येत्यर्थः।

वह्निपुराणे।

आश्वत्थीं खादिरीं वापि पालाशीं वा सुवृक्षजाम्।
चतुर्हस्तप्रमाणेन सुश्लक्ष्णाः सुदृढां नवाम्॥
सुवर्त्तुलां समान्तहृत् स्निग्धां छिद्रत्रयान्विताम्।
मौञ्जशिक्योभयोपेतां बद्धां स्तम्भे तु यज्ञिये॥

आह नारदः।

चतुरस्रा तुला कार्य्या पादौ चापि तथा विधौ।
चतुर्ष्वपि च पार्श्वेषु मानंस्याच्चतुरङ्गुलाम्॥
मुक्ता तावत्तु कटकानन्तयोर्विन्यसेद्बुधः।
चतुर्हस्ताधरतुला मध्ये च शृङ्खलान्विता।
शिक्यं हस्तत्रयं कुर्य्यात् कटकं चतुरङ्गुलमिति॥

यदाह विश्वकर्म्मा।

विशेषदानं कथितं तुलादि तस्मात्तुलालक्षणमुच्यते प्राक्।
तुलाप्रमाणं स्मृतमङ्गुलानि दैर्घ्ये खिलेषूर्ध्ववतिप्रमाणैः॥
प्रान्तद्वयेप्यङ्गुलषट्कमुक्तं शतन्तुलाष्टोत्तरमङ्गुलानां।
स्युर्विंशतिः पञ्च च धातुदम्भा बन्धेष्वधिष्ठात्सुरां निवेश्याः॥
ईशः शशी मारुत-रुद्र-सूर्याः स्याद्विश्वकर्मा गुरु-रङ्गिरो-ग्नी।
प्रजापतिर्विश्वजगद्विधाता पर्जन्यशम्भू पितृदेवताश्च॥
सौम्यश्च धर्मा-मरराज-मश्वि-जलेश मित्रा-वरुणौ-मरुद्गणाः।

धनेश-गन्धर्व-जलेश-विष्णुरेते चतुर्व्विंशतिरेव देवाः ॥
स्यात्पञ्चविंशः पुरुषः स एको यस्तोल्यमानस्तुलया महात्मा।
एता विधेयास्तपनीयमध्ये रत्नाचिता दैवतमूर्त्तयस्ताः॥
षड़ङ्गुलः स्याच्चतुरस्रपिण्डः प्रान्तद्वये विष्णुरनन्तनामा।
तुलोर्द्धभागे कलशद्वयं स्यात्तथाङ्कुटद्वन्द्वमधस्तुलान्ते ॥
षड़ङ्गुलोत्थं कटकस्य पिण्डोप्येकाङ्गुलो विष्णुरनन्तनामा।
पार्श्वद्वयन्तच्चतुरङ्गुलंस्यादेवं मया ते कथितं प्रमाणम्॥
मध्याङ्कुटे सङ्कलिकाङ्गुलानि पञ्चाशताविंशतिरेवदैर्घ्यं।
एकाङ्गुलोऽस्या भवतीहपिण्डस्तत्राधिदेवःकिल वासुकिःस्यात्॥
एकैकरज्जुर्लभतेङ्गुलानि त्रिःसप्ततिः पिण्डगताङ्गुला च।
तच्चेलकद्वन्द्वमथाङ्गुलानि विंशत्तथा पञ्चदशाधिका स्यात्॥
तदानुबद्धं शुभकाष्टवाटं पिण्डेङ्गुलद्वन्द्वमथोविधेयम्।
आंध्राद्यैस्त्वन्यधिदेवता स्यात् तुलान्तरे भूमिपतिर्निवेश्या।

इति॥

ईशः शशीत्यादि। अत्रेश्वर-चन्द्र-मारुत-सूर्य्य-देवराजज-लेशानां ब्रह्माण्डदाने लक्षणं वक्ष्यते।

रुद्रस्य विश्वचक्रे।

विश्वकर्म्मरूपनिर्माणमुक्तं विष्णुधर्म्मोत्तरे॥
विश्वकर्म्मा तु कर्त्तव्यः श्मश्रुलोरस्तनाधरः।
सन्दंशपाणिर्द्विभुजस्तेजोमूर्त्तिधरो महान्॥
गुरुसौम्ययोः स्वरूपं नवग्रहदाने वक्ष्यते।
चाङ्गिरोग्निमूर्त्तिमाह विश्वकर्मा॥
कमण्डलुं स्रुवञ्चैव शक्तिं दर्भमपिक्रमात्।

कलयन्त्यङ्गिरो नाम्ना कराग्राणि समन्ततः ॥
पाणयश्चाग्निना सोपि कलयन्ति जपस्रजं ।
शक्तिश्च पुस्तकश्चैव क्रमादेव कमण्डलुम् ॥

एतयोश्च मिलितयोर्दैवतात्वम् ।

प्रजापतिस्वरूपमुक्तं सिद्धार्थसंहितायाम् ।
यज्ञोपवीती हंसस्थ एकवक्त्रश्चतुर्भुजः ।
अक्षं स्रुचं स्रुवं धत्ते कुण्डिकाश्च प्रजापतिः ।
विश्वदेवलक्षणं, विश्वम्भरदाने वक्ष्यते ।
विधातृरूपं प्रजापतितुल्यमेव, किन्त्वसौ चतुर्वक्त्रो विधेयः ।
पर्जन्यलक्षणमुक्तं सिद्धार्थसंहितायां ।
पर्जन्यनाम विज्ञेयो गजवक्त्रत्रयान्वितः ।
यो धत्ते सर्वजीवात्मा वरं बीजञ्च शङ्कुकम् ॥
कुठारञ्च पयोजञ्च चिन्तारत्न महाशुचिः ।
पाशञ्चक्रं किशलयं कुण्डो च दशभिः करैः ॥

शम्भुः पूर्ववत्, एतयो रपि मिलितयोर्दैवतात्वम् । पितृलक्षणमुक्तं मयदीपिकायाम् ।

कुशविष्टरपद्मस्थाः पितरः पिण्डपात्रिणः ।

धर्ममुर्त्तिर्विष्णुधर्मोत्तरे ।

चतुर्वक्त्रश्चतुष्पादश्चतुर्बाहुः सिताम्बरः ।
सर्व्वाभरणवान् श्वेतो धर्म्मः कार्यो विजानता ।
दक्षिणे चाक्षमाला च तस्य वामे तु पुस्तकं ॥
आश्विनोर्लक्षणं, हिरण्याश्वरथदाने वक्ष्यते ।

मित्रमुर्त्तिमाह विश्वकर्म्मा ॥

मित्रः कमलपाणिश्च कमलासनसंस्थितः ।
द्विभुजः श्वेतमूर्त्तिश्च सर्व्वभूतहिते रतः ॥

वरुणस्तु पूर्ववत्, अत्रापि मिलितयोर्देवतात्वम् ।

मरुद्गणरूपं, मरुद्गणदाने द्रष्टव्यम् ।

धनेशलक्षणं, धान्याचलदाने ।

गन्धर्वरूपमाह यमः

वरदो भक्तलोकानां किरीटी कुण्डली गदी ।
कार्य्यः सुरूपो गन्धर्वो वीणावाद्यरतस्तथा ॥

विष्णुलक्षणमाह विश्वकर्मा ।

प्रदक्षिणं दक्षिणाधःकरादारभ्य नित्यशः ।
विष्णुः कौमोदकी-पद्म-शङ्ख-चक्रैरलङ्कृतः ॥

पाशौद्वयं लोहमयञ्च चेलकाद्वयञ्च भूमिः

प्रादेशमात्रादूर्द्धमवमलम्ब्य ।

प्रादेशम्वा चतुर्मात्रं भूमिं त्यक्त्वावलम्बयेदिति लिङ्गपुराणस्मरणात् ।

अथ मत्स्यपुराणे ।

चक्रं लिखेद्वारिजगर्भयुक्तं नानारजोभिर्भुवि पुष्पकीर्णं ।
वितानकञ्चोपरि पञ्चवर्णं संस्थापयेत्पुष्प-फलोपशोभम् ॥

चक्रं द्वादशारं वारिवारिजगर्भयुक्तं, मध्ये पद्मयुक्तम् ।

'भुवि' वेदिमध्ये ।

'नानारजोभिः' सित-पीतादिचूर्णैः ।

अथर्त्विजो वेदविदश्च कार्य्याः सुरूपवेशान्वयशीलयुक्ताः ।
विधानदक्षाः पटवोऽनुकूला येचार्य्यदेशप्रभवा द्विजेन्द्राः ॥
गुरुश्च वेदार्थविदार्य्यदेशसमुद्भवः शीलकुलाभिरूपः ।

कार्यः पुराणाभिरतोतिदक्षः प्रसन्नगम्भीरसरस्वतीकः।

सिताम्बरः कुण्डल-हेम-सूत्र-केयूर-कण्ठाभरणाभिरामः॥

पटवो-रागरहिताः, आर्यदेशोव्याख्यातः।

तत्राष्टौ ऋत्विजः, अष्टौ द्वारपालाः,

जापकाश्चाष्टौ, गुरुश्चेति वरणीयाः।

तथा मत्स्यपुराणे एवोक्तम्।

शुभास्तत्राष्टहोतारो द्वारपालास्तथाष्ट वै।

अष्टौ तु जापकाः कार्या ब्राह्मणा वेदपारगाः।

हेमालंकारिणः कार्या द्विजा वै पञ्चविंशतिः॥

तत्रायं प्रयोगः।

अद्य अमुकदानस्य यज्ञेनाहं यक्ष्ये तत्र तदङ्गभूतहोमादि कर्म्म कर्त्तुं अमुकसगोत्रं अमुकशर्म्माणं अमुकवेदाध्यायिनं ऋत्विजं त्वामहं वृणे।

तथा अद्य अमुकमहादानयज्ञेनाहं यक्ष्ये।

तत्र तदङ्गभूतसकलकर्म्म कर्त्तुं कारयितुञ्च अमुकसगोत्रं अमुकशर्माणं अमुकवेदाध्यायिनं आचार्यं त्वामहं वृणे इत्यादि ज्ञेयं, वृतोस्मीति सर्वत्र प्रतिवचनम्।

तद्विनियोगश्च तत्रैव दर्शितः।

गन्धपुष्पैः रलङ्कृत्य द्वारपालान् समन्ततः।

पठध्वमिति तान् ब्रूयात् आचार्यस्त्वभिपूजयन्॥

यजध्वमिति च ब्रूयात् होतृकान् पुरएव तु।

उत्कृष्टमन्त्रजाप्येन तिष्ठध्वमिति जापकानिति॥

पूर्वेण ऋग्वेदविदौ भवेतां यजुर्विदौ दक्षिणतश्च कार्य्यौ।

स्थाप्यौ द्विजौ सामविदौ च पश्चादाथर्व्वणावुत्तरतश्च कार्य्यौ ॥
विनायकादिग्रह-लोकपाल-वस्वष्टका-दित्य-मरुद्गणानाम् ।
ब्रह्मा-च्युतेशा-र्क-वनस्पतीनां समन्ततो-होमचतुष्टयंस्यात् ।
जप्यानि सूक्तानि तथैव चैषामनुक्रमेणैव यथास्वरूपम् ॥

अयञ्च पूर्वादिदिग्नियमो ऋगादिवेदविदामृत्विजां द्वारपालानां च वेदितव्यः ।

विनायकादीत्यादिशब्देन, एकादशरुद्रा नवग्रहाधिदेवताः प्रत्यधिदेवता दुर्गा वायुराकाशाश्विनौचेति, समन्ततः, स्व स्ववेदमन्त्रैर्होमचतुष्टयमिति, वेदचतुष्टयसम्बन्धात् होमानां चतुष्टयं । ततो गुरुणाग्निस्थापने कृते स्वेस्वे कुण्डे द्वौद्वावृत्विजौ स्वशाखोक्तमन्त्रैरेकैकस्य विनायकादेर्द्वादश द्वादश तिलाज्याहुतीर्जुहुयाताम् ।

इह तावद्द्वात्रिंशद्विनायकादयो देवाः दशलोकपालाः वस्वष्टकं एकादशरुद्राः द्वादशादित्याः सप्तसप्त मरुद्गणाः पञ्च ब्रह्मादय इत्येवं पञ्चाशीतिसंख्येभ्यो देवेभ्यः प्रतिकुण्डं विंशत्यधिकाहुतिनियमानुपपत्तेः । तच्चपरिभाषायां दर्शितम् ।

होमावसाने कृततूर्य्यनादो गुरुर्गृहीत्वा बलि-पुष्प-धूपम ।
आवाहयेल्लोकपतीन् क्रमेण मन्त्रैरमीभिर्यजमानयुक्तः ॥
एह्येहि सर्व्वामर-सिद्धसाध्यै रभिष्टुतो वज्रधरा-मरेश ।
संवीज्यमानोऽप्सरसाङ्गणेन रक्षाध्वरं नो भगवन्नमस्ते ॥

ओं इन्द्रायनमः ॥

एह्येहि सर्व्वामरहव्यवाह मुनिप्रवीरैरभितोभिजुष्टः ।
तेजोवता लोकगणेन सार्द्धं ममाध्वरं रक्षतु ते नमस्ते ।

ओं अग्नये नमः ।

एह्येहि वैवस्वत धर्म्मराज सर्व्वामरैरर्च्चितधर्म्ममूर्त्ते ।
शुभा-शुभा-नन्द-शुचामधीश-शिवाय नः पाहि मखं नमस्ते ॥

ओं यमाय नमः ।

एह्येहि रक्षोगणनायकस्त्वं विशालवेताल-पिशाचसङ्घैः ।
ममाध्वरं पाहि शुभाधिनाथ लोकेश्वरस्त्वं भगवन्नमस्ते ॥

ओं निर्ऋताय नमः ।

एह्येहि यादोगणवारिधीनां गणेन पर्जन्यसहाप्सरोभिः ।
विद्याधरे-न्द्रा-मरगीयमानः पाहि त्वमस्मान् भगवन्नमस्ते ॥

ओंवरुणाय नमः ॥

एह्येहि यज्ञेश्वर रक्षणाय मृगाधिरूढ़ः सह सिद्धसङ्घैः ।
प्राणाधिपः कालकवेः सहाय गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते ॥

ओं वायवे नमः ।

एह्येहि यज्ञेश्वर यज्ञरक्षां विधत्स्व नक्षत्रगणेन सार्द्धम् ।
सर्व्वौषधीभिः पितृभिः सहैव गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते ॥

ओं सोमाय नमः ।

एह्येहि विश्वेश्वर नस्त्रिशूल-कपाल-खट्वाङ्गधरेण सार्द्धम् ।
लोकेन भूतेश्वर यज्ञसिद्ध्यै गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते ॥

ओं ईशानाय नमः ।

एह्येहि पातालधरा-मरेन्द्र नागाङ्गना-किन्नरगीयमान ।
यक्षो-रगेन्द्रा-मरलोकसार्द्धम् अनन्त रक्षाध्वरमस्मदीयम् ॥

ओं अनन्ताय नमः ।

एह्येहि विश्वाधिपते सुरेन्द्र लोकेन सार्द्धं पितृदेवताभिः ।

सर्व्वस्य धातास्यमितप्रभावो विशाध्वरम्नः सततं शिवाय ॥

ओं ब्रह्मणे नमः ।

त्रैलोक्ये यानि भूतानि स्थावराणि चराणि च ।
ब्रह्म-विष्णु-शिवैः सार्द्धं रक्षां कुर्व्वन्तु तानि मे ॥
देव-दानव-गन्धर्वा यक्ष-राक्षस-पन्नगाः ।
ऋषयो मुनयो गावो देवमातर एव च ॥
एते ममाध्वरे रक्षां प्रकुर्व्वन्तु मुदान्विताः ।
इत्यावाह्य सुरान् दद्यादृत्विग्भ्यो हेमभूषणम् ॥
कुण्डलानि च सूत्राणि हैमानि कटकानि च ।
अथाङ्गुलीयं चित्राणि वासांसि शयनानि च ॥
द्विगुणं गुरवे दद्याद्भूषणाच्छादनादिकम् ।
जपेयुः शान्तिकाध्यायं जापकाः सर्वतोदिशम् ॥
उपोषितास्ततः सर्वे कृत्वैवमधिवासनम् ।
आदावन्ते च मध्ये च कुर्याद्ब्राह्मणवाचनम् ॥

'शान्तिकाध्यायः' शन्नइन्द्राग्नी भवता मवोभिरित्यादिकः ।

उपवासाशक्तौ नक्तमुक्तम् ।

पद्मपुराणे । उपवासो भवेदेव अशक्तौ नक्तमिष्यत इति ।

एवं पूर्व्वद्युरधिवासनं कृत्वा सर्व्वे तत्रैव वसेयुः ।

ततः अन्येद्युर्दानकालसमीपे ब्राह्मणवाचनं विधाय पूर्णा-हुतिप्रभृतिकर्म्मसमाप्तिं कुर्य्यात् ।

आत्ययिककार्य्यापत्तौ सद्योवाधिवासनविधिः ।

तदुक्तं । सद्योऽधिवासनं वाथ कुर्याद्यो विकली नर इति ।

अथाथर्वणगोपथब्राह्मणे।

ऋत्विग्यजमानौ केश-श्मश्रु-नखानि वापयित्वा संभारानुकल्प-द्रव्यस्तसदाज्यभागान्तं कृत्वा अयं नो अग्निरिति महाव्याहृतयो ब्रह्मयज्ञानमग्ने गोभिरग्नेभ्यावर्त्तिनग्नेः प्रजातं यदाबध्नन्निति शांत्युदकेन सम्पातमानीय स्नानकलशेषु निर्व्वपेदिदमाप आपोहिष्ठावाहुभ्यामभिषेचयेद्यथोक्तमञ्जनाभ्यञ्जनानुलेपनं कारयित्वा वासो गन्धान् स्रजश्चाबध्याभिजिन्मुहूर्त्ते तुलां हिरण्यवर्णैः पवित्रैरभ्युक्ष्य गन्ध-पुष्प-धूपैरर्चयित्वा उपहारांश्च दत्त्वा राजानमाहूयार्घं दत्त्वा तुलामारोपयेत्।

मत्स्यपुराणे। ततो मङ्गलशब्देन स्नापितो वेदपुङ्गवैः।

त्रिः प्रदक्षिणमावृत्य गृहीतकुसुमाञ्जलिः।
शुक्लमाल्याम्बरधरो तान्तुलामभिमन्त्रयेत्॥

स्नपनन्तु, कुण्डसमीपस्थितकलशोदकैः कर्त्तव्यम्। स्नपनमन्त्राश्च, सुरास्त्वामभिषिञ्चन्त्वित्यादयो ग्रहयज्ञोक्ता वेदितव्याः।

नमस्ते सर्व्वदेवानां शक्तिस्त्वं सर्व्वमाश्रिता।
साक्षिभूता जगद्धात्री निर्म्मिता विश्वयोनिना॥
एकतः सर्व्वसत्यानि तथानृतशतानि च।
धर्म्माधर्म्मकृतां मध्ये स्थापितासि जगत्प्रिये॥
त्वन्तुले सर्व्वभूतानां प्रमाणमिह कीर्त्तितम्।
मान्तोलयन्ती संसारादुद्धरस्व नमोस्तु ते॥
योसौ तत्वाधिपो देवः पुरुषः पञ्चविंशकः।
स एषोधिष्ठितो देवि त्वयि तस्मान्नमो नमः॥
नमो नमस्ते गोविन्द तुलापुरुषसंज्ञकः।

त्वं हरे तारयस्वास्मान् अस्मात् संसारसागरात् ॥
पुण्यकालं समासाद्य कृत्वैवमधिवासनम् ।
पुनः प्रदक्षिणं कृत्वा तुलां तामारुहेद्बुधः ॥
सखड्ग-चर्मकवचः सर्वाभरणभूषितः ।
धर्म्मराजमथादाय हैमसूर्येण संयुतः ।
कराभ्यां बद्धमुष्टिभ्यामास्ते पश्यन् हरेर्म्मुखम् ॥

धर्म्मराजस्तु, महिषारूढश्चतुर्भुजोदण्ड-पाश-पाणिः कर्त्तव्यः ।

सूर्य्योऽपि, सुवर्णमयः पद्मासनः पद्मधरः कार्यः ।

तौच दक्षिणवाममुष्टिस्थौ विधाय हरेस्तुलामध्यस्थितस्य मुखं पश्येदित्यर्थः ।

ततोऽपरि तुलाभागे न्यसेयुर्द्विजपुङ्गवाः ।
समादभ्यधिकं यावत् काञ्चनञ्चातिनिर्मलम् ।
पुष्टिकामस्तु कुर्व्वीत भूमिसंस्थं नराधिप ॥

पुष्टिकाम इति गुण फल सम्बन्धो गोदोहनेन पशुकामस्य प्रणयेदिति तदवगन्तव्यम् ।

इह तावदादौ राज्ञस्तुलाधिरोहणं पश्चात् सुवर्णन्यासइत्युक्तम् । गोपथब्राह्मणे तु सखड्गः सशिरस्त्राणः सर्व्वाभरणभूषणः ॥
तपनीयमग्रतः कृत्वा पश्चात्तोल्यो नराधिपः ॥
दक्षिणेन तु सुवर्णेन सुवर्णं स्यादुत्तरेच नराधिप इति ।

ततश्चेतिहासपुराणं पञ्चमो वेद इति ।

तुल्यबलत्वे अनुष्ठानविकल्पः । ये तु मन्यन्ते स्मृतिवत्पुराणानीति तन्मते पूर्व्वं सुवर्णारोपणम् ॥

पश्चाद्राजारोपणमिति।

क्षणमात्रं ततः स्थित्वा पुनरेवमुदीरयेत्॥

नमस्ते सर्व्वभूतानां साक्षिभूते सनातनि।

पितामहेन देवि त्वं निर्मिता परमेष्ठिना॥

त्वया धृतं जगत् सर्व्वं वह्नि-स्थावर-जङ्गमम्।

सर्वभूतात्मभूतस्थे नमस्ते विश्वधारिणि॥

वह्निपुराणे। कृत्वा तु विधिवद्धोमं सुस्नातस्तीर्थवारिणा।

तुलां पूज्यविधानेन ब्राह्मैर्मन्त्रैश्च वैदिकैः॥

समुपोष्यार्च्चयेद्देवं पीताम्बरधरं हरिम्।

पश्चात्तदारुहेत्किक्यं प्राङ्मुखोदङ्मुखोथवा॥

जाम्बूनदेन शुद्धेन पूरयित्वा तुलां पृथक्।

सर्वाभरणपूर्णाङ्गः सवस्त्रासनसंयुतः॥

तत्र स्थित्वा मुहूर्त्तं स द्रव्यात्तिष्टेत् समुन्नतिम्।

जपेत् मन्त्रश्च पौराणं पुनन्तुमिति वा तृचम्॥

यथापवित्रमतुलमपत्यं जातवेदसः।

तथा त्वेन पवित्रेण सुवर्ण हि पुना तु मां॥

रुद्रस्य सुमहत्तेजः कार्त्तिकेयस्य सम्भवः।

तथा त्वेन पवित्रेण सुवर्ण हि पुनातु मां॥

यथाग्निर्देवताः सर्वाः सुवर्णञ्च तदात्मकम्।

तथा त्वेन पवित्रेण सुवर्णं हि पुनातु माम्॥

यत्कृतं मे स्वकायेन मनसा वचसा तथा।

दुष्कृतं तत् सुवर्णाख्यं पातु मुक्तिः परा शुभा॥

इत्युक्त्वा तदृत्विजे च दद्याच्छिष्यः स्वमेव हि।

समुत्तीर्याऽर्द्धमन्तश्च दद्यादपरन्ततः॥

मत्स्यपुराणे। ततोऽवतीर्य्य गुरवे पूर्व्वमर्द्धं निवेदयेत्।

ऋत्विग्भ्योऽपरमर्द्धन्तु दद्यादुदकपूर्व्वकम्॥

गुरवे ग्राम-रत्नानि ऋत्विग्भ्यश्च निवेदयेत्।

तत्रायं प्रयोगः।

ओं अद्य अमुकस्मिन् देशे अमुकस्मिन् काले अमुकसगोत्राय अमुकशर्म्मणे ब्राह्मणाय अमुकसगोत्रः अमुकशर्म्मा इदं तुलापुरुष-सुवर्णार्द्धं अमुककामस्तुभ्यमहं संप्रददे नमः, एतद्दानप्रतिष्ठार्थमिमां दक्षिणां तुभ्यमहं सम्प्रददे नम, एतत उदकपूर्व्वकं पूर्व्वार्द्धं गुरवे दद्यात्, ऋत्विग्भ्योऽप्येवमपरं, अदक्षिणन्तु यद्दानं तत्सर्व्वं निष्फलं भवेदिति वचनादिह दक्षिणापेक्षायां गुरवे ग्राम-रत्नादीनि श्रुतं दक्षिणात्वेन सम्बध्यते।

अथ गोपथब्राह्मणे।

अच्युताद्योरितिचतसृभिरवरोहयेत् तांतुलामुपसंस्कृत्य महाव्याहृतिमाविन्नीगान्तिभिरङ्गोमुपयैराज्यं हुत्वा सूर्य्यस्यावृतमिति प्रदक्षिणमावृत्यात्मालङ्कारं कर्त्रे दद्यात्सहस्रं दक्षिणां ग्रामवरञ्चेति।

'कर्त्रे' आचार्याय ऋत्विजे च।

तत्रार्द्धमाचार्य्यस्यार्द्धमृत्विजामिति, सहस्रं दक्षिणामिति, सहस्रशब्दस्यानुपात्तसंख्येयविशेषतया, मत्स्यपुराणे च रत्नानीत्यत्र संख्याविशेषानुपादानात् शाखान्तरे च वररत्नानां दक्षिणात्वाम्नातेः रत्नसहस्रमेव न्याय्यं। तत्तु यथाशक्ति यथालाभं मुक्तादीना

मन्यतमस्य सहस्रमवगम्यते, दक्षिणाधिकरणन्यायेन गवामिव समानजातीयानामेव संख्यासम्बन्धात्।

'ग्रामवरं, ग्रामश्रेष्टम्।

केचित्तु गुरवे ग्रामरत्नानीत्यत्रापि श्रेष्टतावचनो रत्नशब्द इति व्याचक्षते

तेषां मते सर्व्वेषामेव दानानां सुवर्णं दक्षिणा स्मृतेति वच-नात्, सहस्रं दक्षिणामित्यत्र सुवर्णमेव दक्षिणेत्यवगन्तव्यम्।

सहस्रसंख्याव्यवच्छेदश्च तस्य कृष्णलातप्रभृति यथाशक्ति सम्पा-दानीय इति।

प्राप्य तेषामनुज्ञाञ्च तथान्येभ्योपि दापयेत्।

दीना-नाथ-विशिष्टादीन् पूजयेत् ब्राह्मणैः सह॥

'अत्रान्यशब्देन जापका उच्यन्ते।'

विशिष्टा अब्राह्मणा अपि पितृशुश्रूषादिगुणयुक्ताः,

इह तावदर्द्धं गुरवे, अर्द्धमृत्विग्भ्यः, समस्ततुलापुरुषद्रव्यं देयमित्येकः पक्षः।

अस्मिन् पक्षे जापकेभ्यो अन्यैव दक्षिणा दातव्या, गुर्व्वादी-नामनुज्ञया अन्येभ्योपि दद्यादिति अपरः पक्षः।

तत्र गुर्व्वादीनां प्रदेयद्रव्यपरिमाणानिर्द्देशे धरार्द्ध

चतुर्भागं गुरवे विनिवेदयेदितिविकृतिभूतपृथिव्यादिदान-प्रकरणश्रुतं देयद्रव्यसंख्यानियमो न्याय्यः।

येन वा तुष्यते गुरुरितिसामान्योपदिष्टमाचरणीयं तथा दीनानाथ-विशिष्टेभ्योऽपिदेयमिति तृतीयः पक्षः।

अत्र यद्यपि विकल्पवाची शब्दोनास्ति तथापि पद्यान्तरश्रय-
णेनार्थाद्विकल्पः सम्पद्यते ।

मत्स्यपुराणे ।

न चिरन्धारयेद्गेहे सुवर्णं प्रोक्षितं बुधः ।
तिष्ठद्भयावहं यस्माच्छोक-व्याधिकरं नृणाम् ।
शीघ्रं परस्वीकरणाच्छ्रेयः प्राप्नोति पुष्कलम् ॥

ततः प्राग्वत्पुण्याहवाचने कृते देवतावेदिसमीपं गत्वा पूर्व्वं च
देवतानां पूजादि यजमानः कुर्य्यात् ।

आचार्यस्तु यान्तु देवगणाः सर्व्वे पूजामादाय पार्थिवात् ।
इष्टकामप्रदानार्थं पुनरागमनाय च ॥

इत्यनेन मन्त्रेण देवतानां विसर्जनं कुर्य्यात् ।

अनेन विधिना यस्तु तुलापुरुषमाचरेत् ।
प्रतिलोकाधिपस्थाने प्रतिमन्वन्तरं वसेत् ॥
विमानेनार्कवर्णेन किङ्किणीजालमालिना ।
पूज्यमानोऽप्सरोभिश्च ततो विष्णुपुरं व्रजेत् ।
कल्पकोटिशतं यावत् तस्मिंल्लोके महीयते ॥
कर्म्मक्षयादिह पुनर्भुवि राजराजः
भूपालमौलिमणिरञ्जितपादपीठः ।
श्रद्धान्वितो भवति यज्ञसहस्रयाजी
दीप्तप्रतापजितसर्व्वमहीपलोकः ॥
योदीयमानमपि पश्यति भक्तियुक्तः
कालान्तरेस्मरति वाचयतीह लोके ।
योवा शृणोति पठतीन्द्रसमानरूपः ।

प्राप्नोति धाम स पुरन्दरदेवजुष्टम् ॥

वह्निपुराणे ।

एवं दत्त्वा सुवर्णञ्च ब्रह्महत्यादिकन्तु तत् ।
पापान्निहत्य पुरुषः स्वर्गलोकञ्च गच्छति ॥
तत्र स्थित्वा चिरं राजन् यदायाति महीतले ।
राजराजेश्वरः श्रीमान् वीतशोको निरामयः ॥
रूप-सौभाग्यसम्पन्नो नित्यं धर्म्मपरायणः ।
पुनर्विष्णुपदंयाति यत्र गत्वा न शोचति ॥

इति तुलापुरुषदानविधिः ।

सनत्कुमार उवाच ।

राज्ञां षोड़शदानानि नन्दिना कथितानि च ।
धर्म्मकामार्थमुक्त्यर्थं कर्म्मणैव महात्मनाम् ।
तुलाधिरोहणाद्यानि शृणु तानि यथातथम् ॥
ग्रहणादिषु कालेषु शुभे देशे सुशोभने ।
विंशहस्तप्रमाणेन मण्डपं कूटमेव वा ॥
अथाष्टादशहस्तेन कलाहस्तेन वा पुनः ।
कृत्वा वेदिं तथा मध्ये नवहस्तप्रमाणतः ॥
अष्टहस्तेन वा कुर्य्यात् सप्तहस्तेन वा पुनः ।
द्विहस्ताध्यर्द्धहस्ता वा वेदिका चाति शोभना ॥
द्वादशस्तम्भसंयुक्ता साधुरम्याग्रमस्तका ।
परितोनव कुण्डानि चतुरस्राणि कारयेत् ॥
इन्द्र-ईशानयोर्मध्ये प्रधानं ब्रह्मणः सुतः ।
अथ वा चतुरस्रञ्च योन्याकारमतः परम् ॥

स्त्रीणां कुण्डानि विप्रेन्द्र योन्याकाराणि कारयेत् ॥
अर्द्धचन्द्रं त्रिकोणञ्च वर्त्तुलं कुण्डमुत्तमम् ।
षडस्रं सर्व्वतोवापि त्रिकोणं पद्मसन्निभम् ॥
अष्टास्रं सर्व्वमार्गेषु स्थण्डिलं केवलन्तु वा ।
चतुर्द्वारसमोपेतं चतुस्तोरणभूषितम् ॥
दिग्गजाष्टकसंयुक्तं दर्भमालासमाश्रितम् ।
अष्टमङ्गलसंयुक्तं वितानोपरि शोभितम् ॥
तुलायाश्च द्रुमाश्चाथ विल्वाद्याश्च विशेषतः ।
बिल्वा-श्वत्थ-पलाशा-द्याः केवलं खदिरन्तु वा ॥
एवं स्तम्भाः कृता येन तेन सर्व्वन्तु कारयेत् ।
अथ वा मिश्रमार्गेण वेणुना वा प्रकल्पयेत् ॥
अष्टहस्तप्रमाणन्तु हस्तद्वयसमायतम् ।
तुलास्तम्भस्य विष्कम्भो नाहस्तत्त्रिगुणो मतः ॥
द्व्यङ्गुलेन विहीनन्तु सुवृत्तं निर्व्रणं तथा ।
उभयोरन्तरञ्चैव षड्हस्तं नृपतेः स्मृतम् ॥
द्वयोश्चतुर्हस्तकृतमन्तरं स्तम्भयोरपि ।
षड्हस्तमन्तरं ज्ञेयं तयोरुपरिसंस्थितम् ॥
वितस्तिमात्रविस्तारं विष्कम्भस्तावदङ्गुलः ।
स्तम्भयोस्तु प्रमाणेन उत्तरं द्वारसम्मितम् ॥
षट्त्रिंशमात्रसंयुक्तं व्यायामन्तु तुलात्मकम् ।
विष्कम्भमष्टमात्रन्तु यवपञ्चकसंयुतम् ॥
षट्त्रिंशमात्रनालं स्यान्निर्व्रणं वर्त्तुलं शुभम् ।

विंशहस्तेत्यादि । कूटः, मण्डपविशेषः ।

कलाहस्तेन षोडशहस्तैः, विंशतिहस्तादिमण्डलत्रये क्रमा-न्नवादिहस्तविस्तारस्य वेदित्रयस्य द्विहस्तोऽध्यर्द्धहस्तो हस्तश्चेत्यु-च्छ्रयो विधेयः।

विधाय मण्डपं तत्र तन्मध्ये वेदिकात्रयेत्।
नवा-ष्ट-सप्तहस्तेन द्विहस्ताध्यर्द्धहस्ततः॥

विस्तारेणोच्छ्रयेणापि द्वादशस्तम्भसंयुतामितिकामिकोक्तिः।

साधुरम्याग्रमस्तकेति, समचतुरस्रत्वं समतलत्वञ्चोपरिभा-गस्य विधेयमित्यर्थः।

अथवा चतुरस्रमिति पूर्व्वादिकुण्डानां क्रमाच्चतुरस्रादयो नव सन्निवेश्याः, स्त्रीणांतु यजमानत्वेन योन्याकाराण्येव, अथवा यथोक्ताकारत्वेन स्थण्डिलत्वेन सर्व्वत्र हस्तमात्रं चेत्रं चेत्रफलं सममेव साध्यं तच्च परिभाषायामुपपादितम्।

वटो-दुम्बरा-श्वत्थ-प्लक्षजानि चत्वारि तोरणानि दिग्गजाष्टकं तत्तद्दिक्पालवर्णपताकाः, अष्टमङ्गलानि विश्वचक्रदाने वक्ष्यन्ते।

अष्टहस्तप्रमाणं तुलास्तम्भयोरायतम्। आयामः, दैर्घ्य-मित्यर्थः।

'हस्तद्वयसः, हस्तपरिमाणः तुलास्तम्भयोर्विष्कम्भ इत्यन्वयः।

तस्मात् त्रिगुणःपरिणाहः।

द्व्यङ्गुलेनहीन इति, स एव परिणाहः।

क्रमहान्या अग्रे अङ्गुलद्वयहीनःसम्पादनीयः।

कामिकेतु। सप्त-षट्-पञ्चहस्तैस्तुपार्श्वस्तम्भोच्छ्रयोमतः।

अष्टहस्तादितश्चाथ द्विपञ्चद्वयसाङ्गुलः॥

तुलास्तम्भस्य विष्कम्भो नाहस्त्रिगुणोमुने।

द्वयाङ्गुलविहीनन्तु सुवृत्तं निर्व्रणं तथा॥

इति द्विपञ्चद्वयसाङ्गुलो द्वशाङ्गुलमानो विष्कम्भः।

त्रिंशदङ्गुलःपरिणाहः।

सच क्रमहान्या अग्रे अष्टाविंशत्यङ्गुलइत्यर्थः।

स्तम्भयोरन्तरंषड्हस्तं चतुर्हस्तम्बा दृश्यस्तम्भोच्छ्रयानुरूपं विधेयम्

षड्हस्तस्तम्भयोरन्तरालं गुणदैर्घ्यस्योपलक्षणम्।

उत्तरञ्च विस्तारोत्सेधाभ्यां द्वादशाङ्गुलम्॥

तत्प्रान्तरन्ध्रयोस्तम्भाग्रशिखरे प्रवेश्य तोरणं निधाय्यम्।

अथतुलादण्डस्य मानमाह।

षट्त्रिंशन्मानमित्यादि। व्यायामो नाम प्रसारितसबाहुहस्तद्वयस्य तिर्य्यगन्तरालवाह्वोः करसंयुतयोः, व्यायामस्तिर्य्यगन्तरन्तयोरित्यभिधानात्।

ततः षट्त्रिंशदङ्गुलान्वितव्यायाममात्रन्तुलादण्डे दैर्घ्यं, विष्कम्भमष्टमात्रमिति, अष्टाङ्गुलः सपञ्चयवस्तुलादण्डप्रान्तयोर्न्यासः।

तत्रार्थाद्यवोनषट्त्रिंशदङ्गुलः परिणाहः। षट्त्रिंशन्मानमात्रमिति, तुलादण्डमध्ये षट्त्रिंशदंगुलः परिणाहः। तत्रार्थात् द्वादशांगुलोन्यासः।

अष्टांगुलेन विस्तारस्त्वग्रे भूतयवान्वितः।

षट्त्रिंशन्मात्रनाहस्तु मध्यमे तु विधीयते,

इति कामिकोक्तेः।

अग्रे मूले च मध्ये च हेमपट्टेन बन्धयेत्।

पट्टमध्ये प्रकर्त्तव्यमवलम्बनकत्रयम्॥

ताम्रेण वाप्यरूप्येण आयसेनैव कारयेत्।

मध्ये चोर्द्धमुखं कार्य्यं अवलम्बं सुशोभनम्।
रश्मिभिस्तोरणाग्रे वा बन्धयेच्च विधानतः॥
जिह्वामेकां तुलामध्ये तोरणञ्च विधीयते।
उत्तरस्यतु मध्येऽथ शङ्कुद्वयमनुत्तमम्।
वितानेनोपरिच्छाद्य दृढं सम्यक् प्रयोजयेत्॥
सुदृढञ्च तुलामध्ये मानमङ्गुलमानतः।
पट्टस्यैवतु विस्तारः पञ्चमात्रप्रमाणतः॥
बध्नीयाच्चक्रपाशञ्च अवलम्बेन सुस्थितम्।
शुल्वजौ च दृढौ विद्वान् बन्धनेन तु कारयेत्॥
शिक्योऽधस्तात्प्रकर्त्तव्यौ पञ्चप्रादेशविस्तरौ॥
सहस्रेण तु कर्त्तव्यौ पञ्चप्रादेशविस्तरौ॥
सहस्रेण तु कर्त्तव्यौ पलेनाधारकावुभौ।
शताष्टकेनवा कुर्यात्पलानां षट्शतेनवा॥
चतुस्तालप्रविस्तारं मध्यमं परिकीर्त्तितम्।
सार्द्धत्रितालविस्तारो नियमश्च विधीयते॥
पञ्चमात्रं चतुर्मात्रं त्रिमात्रं फलमुच्यते।
चतुर्द्वारसमोपेतं द्वारमङ्गुलिनाथ वा॥
कुण्डलैश्च समोपेतं श्लक्ष्णस्वच्छसमन्वितैः।
कुण्डले कुण्डले कार्य्यं शृङ्खलापरिमण्डलम्॥
शृङ्खलाधारवलयमवलम्बेन योजयेत्।
प्रादेशं वा चतुर्मात्रं भूमिंत्यक्त्वा वलम्बयेत्॥
घटौ पुरुषमात्रौ तु कर्त्तव्यौ शोभनावुभौ।
द्विहस्तवालुकापूर्णे शिले तत्र विनिक्षिपेत्॥

द्विहस्तमात्रमवटो स्थापनीयो प्रयत्नतः।
शेषं सम्पूरयेत् विद्वान् वालुकाभिः समन्ततः।
येन निश्चलतां गच्छेत्तेन मार्गेण कारयेत्॥

'अग्रे मूलइत्यादि, अवलम्बनकीलकप्रवेशार्थवेधनिवाताादिना यथा तुला न शीर्य्येत तथा हेमादिना पट्टबन्धस्तुलायाः कार्य्यः।

अवलम्बनं, समशृङ्खलादिसंश्लिष्टवलयाधारोच्छ्रकतुण्डाकारोभयाग्रलम्बनं कार्य्यं, अथवा तुलामध्यावलम्बनस्थाने ऊर्द्ध्वमुखं ताम्रादिकीलकं निधाय तन्मूलच्छिद्रप्रोततिर्य्यक्कीलकस्थितं मध्यकीलकोभयपार्श्वस्थायि ताम्रादिमयं तोरणं कृत्वा तदग्रवलयबन्धरश्मिभिरुत्तराधोऽवलम्बितं बलयं संयोजयेत्। जिह्वाभिकामिति, पूर्व्वोक्त एव तुलामध्यवर्त्ती ऊर्द्ध्वमुखः कटकाख्यः कीलकः, जिह्वातोरणमपि प्रागुक्तमेव, एतच्च सुवर्णकारादिलघुतुलासु दृश्यते। उत्तरस्यत्विति, उत्तरमध्यावलम्बितकुण्डलायोऽयः शङ्करूर्द्धमुखस्तस्य मूले उत्तरोपरिचितानवद्धिततं लोहपट्टं निधाय तदुपरि तन्मूलं द्विधाभूतं तिर्य्यग्वितत्य घटयेत्।

शङ्कुः सुषिरसम्पन्न इति, कुण्डलिताग्रे उत्तममध्यावलम्बितेऽधोमुखशङ्कौ तुलामध्योर्द्धमुखालम्बनशङ्कौ चैकं वलयमङ्गुष्ठस्थूलं नियोजयेत् * शङ्कुः सुषिरसम्पन्नो वलयेनसमन्वित इति कामिकोक्तेः। पट्टस्येति, पूर्व्वोक्तपट्टस्येयं मानोक्तिः, पञ्चमात्रं यवाङ्गुलं वध्नीयादिति, तुलाप्रान्तावलम्बाभ्यां तत्तच्छिक्यशृङ्खलाधारं चक्रपाशाख्यं वलयं योजयेत्। शुल्वं 'ताम्रं'। आधारा

* योजयेदिति पाठान्तरम

विति, ताम्रपलानां दशाष्टषट्शतैः क्रमात् पश्चादिप्रादेश विस्तारौ पञ्चचतुस्त्र्यङ्गुलोच्छ्रितप्रान्तावङ्गुलनाहचतुःच्छिद्रप्रोत चतुर्व्वलयान्वितौ यजमानद्रव्यधाराधारकौ कार्य्यौ। तद्वलयचतुष्काश्लिष्टशृङ्खलाचतुष्कं शिक्याख्यमुपरिविरचितवलयद्वयं तुलाग्राधोवलम्बकौ योजयेत्। धटाख्याधाररन्ध्रचतुष्कं मधूच्छिष्टेन संश्लिष्टं कार्य्यं, आधारौ च भूमेरुपरि, चतुरङ्गुलमिति, प्रादेशमात्रे चान्तरिक्षेऽवलम्बशौ, अवटौ तु दक्षिणोत्तरस्तम्भनिखनार्थौ, अत्रस्तम्भयोः दक्षिणोत्तरत्वं तुलायाश्च प्राक्पश्चिमायतत्वमवधेयं। श्वभ्रेयं चैन्द्रदिग्भागे सुवर्णं तत्र निक्षिपेदिति वक्ष्यमाणत्वात्। द्विहस्तवालुकापूर्णे तत्र शिले पट्टशिलाख्ये निधाय वालुकाभिः प्रपूर्य्य दृढयेत्।

शृयतां परमं गुह्यं वेदिकोपरि मण्डलम्।
अष्टमङ्गल संयुक्तमङ्गुलाङ्कुश शोभितम्॥
फलपुष्प समाकीर्णे धूपदीपसमन्विते।
वेदीमध्ये प्रकर्त्तव्यं दर्पणोदरसन्निभे॥
आलिखेन्मण्डलं पूर्व्वं चतुर्द्वारसमन्वितम्।
शोभापशोभासंयुक्तं कर्णिकाकेसरान्वितम्॥
चुल्लिजातिसमोपेतं पञ्चवर्णञ्च कारयेत्।
वज्रं भागुत्तरे भागे आग्नेय्यां शक्तिमुज्वलाम्॥
आलिखेद्दक्षिणे दण्डं नैरृत्यां खड्गमालिखेत्।
पाशञ्च वारुणे लेख्यं ध्वजञ्च वायुगोचरे॥
कौवेर्य्याञ्च गदां लेख्य ईशान्यां शूलमालिखेत्।
शूलस्य वामदेशे तु चक्रं पद्मञ्च दक्षिणे॥

एवं लिखित्वा पश्चाच्च होमकर्म्म समारभेत्।
प्रधानहोमं गायत्र्या स्वाहा-शक्राय वह्नये॥
यमाय देवराजाय वरुणाय च वायवे।
कुवेराय तथेशाय विष्णवे ब्रह्मणे पुनः॥
स्वाहान्तं प्रणवेनैव होतव्यं विधिपूर्व्वकम्।
स्वशाखाग्निमुखेनाथ जयादिप्रति संयुतम्॥
स्विष्टान्तं सर्व्वकार्य्याणि कारयेद्वेदवित्तमः।
सर्व्वहोमाग्रहोमे च समित्पालाश्यथोच्यते।
एकविंशतिसंख्याकं मन्त्रेणानेन होमयेत्॥

अयं न इध्म आत्माजातवेदस्तेनहास्व वर्द्धस्व चेदुवर्द्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्च्चसेनान्नाद्येन समेधयः स्वाहा, भूः स्वाहा, भुवः स्वाहा, स्वः स्वाहा, भूर्भुवः स्वःस्वाहा। समिद्धोमश्चरूणाञ्च घृतस्य च यथा क्रमम्।

शुक्लान्नं पायसञ्चैव मुद्गानां चरवः स्मृताः।
सहस्रं स्यात्तदर्द्धं स्या शतमष्टोत्तरन्तु वा।

अग्न आयूंषि पवस आशुवोर्जमिषञ्च नः आरेवाधस्व दुत्सुनां अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः तमीमहे महामयं अग्नेपवस्वस्वपा अस्मे वर्च्चः सुवीर्य्यं दधद्रायं मयि पोषं। प्रजापते नत्वदेतान्यन्यो विश्वाजातानि परिता बभूव यत्कामास्ते, जुहुमस्तन्नो अस्त्वयममुष्य पितासावस्य पिता वयंस्यामः पतयो रेयीणां ९ स्वाहा।

तत्सर्व्वं सर्व्वहोमे तु सामान्यं विधिपूर्व्वकम्।
गायत्र्या च प्रधानस्य समिद्धोमस्तथैव च॥

चरूणाञ्च तथाज्यस्य शक्रादीनाञ्च होमयेत्।
वज्रादीनाञ्च होतव्यं सहस्राद्यं ततः क्रमात्॥
ब्रह्मयज्ञानमन्त्रेण ब्रह्मणे विष्णवे नमः॥
नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि तन्नो विष्णुः, प्रचोदयात्।
अयं विशेषः कथितो होममार्गः सुशोभनः।
दूर्व्वयाक्षीरसिक्तेन पञ्चविंशत् पृथक् पृथक्॥
त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्द्धनं
उर्व्वारुकमिवबन्धनान्मृत्यो मुक्षीयमामृतात् स्वाहा।
दूर्व्वाहोमः प्रशस्तोयं वास्तुहोमश्च सर्व्वथा।
प्रायश्चित्तमघोरेण सर्पिषाच शतं शतं॥

श्रूयतामित्यादि, पूर्व्वोक्तवेदिमध्ये सर्व्वतोभद्राख्यं मण्डलं लेख्यं तच्च शोभोपशोभाशब्दात् पञ्चसारोक्तं दीक्षामण्डलं ग्राह्यं, एतयोर्लक्षणमुपवर्णितं परिभाषायां। वज्रमिति। मण्डलाद्बहिर्दिक्षु दिक्पालायुधानि लेख्यानि, गायत्रारौद्राः प्रधानकुण्डे होमः, तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नो-रुद्रः प्रचोदयादिति, रुद्रगायत्री।

स्वाहा शक्रायेत्यादि, प्रणवादिभिश्चतर्थीयुक्तैः स्वाहान्तैः शक्रादि लोकपालनामभिः प्राच्यादिकुण्डाष्टके होमः ब्रह्मविष्णो-रपीशानकुण्डे होमः, कार्य्यः, स्वशाखाग्निमुखेन समिद्धेऽग्नौ प्रधानहोमानन्तरमाज्येन जयाद्युपहोमाः कार्य्याः, उक्तं ह्यापस्त-म्बेन यथा प्रदेशं प्रधानाहुतीर्हुत्वा जयाभ्यातान्राष्ट्रभृतः प्राजापत्यान्ता व्याहृतिर्व्विहिता सौविष्टकृतिमित्युपजुहोति। इयञ्च जयाद्युक्तिः स्वस्वगृह्योक्तोपरिष्टात् तन्त्रोपलक्षणार्था॥

सर्व्वहोमः, प्रधानहोमः। तत्रापि, पालाशी, समित्। अत्र-होमः अन्वाधानेध्मानादिरूपः। सर्व्वहोमाद्यहोमेच समित् पालाश्यथोच्यते, एकविंशतिसंख्याकमित्येतत् पृथक् वाक्यं। तत्र व्याहृतिभिरन्वाधाने चतस्र समिधोहोतव्याः, अयंते इति मन्त्रेण, परिधाय्याराराजाजादिविनियुक्तावशिष्टेध्माधानं कार्य्यं, इदञ्च स्वगृह्योक्त पूर्व्वतन्त्रोपलक्षणं अथ समिदादिहोमः कर्त्तव्यः तत्र चरवः शुद्धान्नाद्या इत्थं समिदादिपञ्चद्रव्याणि होम्यानि, अग्न आयूंषीत्यादिमन्त्रचतुष्केणाज्यहोमः प्रधानहोमात् पूर्व्वं कार्य्यः, रुद्रगायत्र्यैव प्रधानकुण्डे समिदाज्यचरुहोमः इन्द्रादि दिक्पालानां स्वस्वमन्त्रेण तत्र कुण्डेषु सहस्रसंख्यः पञ्चशत संख्योवाज्यहोमः प्रतिकुण्डं त्र्यम्बकेन पञ्चविंशतिसंख्यो दूर्व्वाहोमो वास्तोष्पते इतिमन्त्रेण वास्तुहोमश्च विधेयः। शिखिपर्जन्यादि-तत्तद्देवतानामभिर्वास्तुहोमः तानि, च गृहदानप्रकरणे वक्ष्यन्ते, आज्येन शतसंख्यःप्रायश्चित्तहोमः, अयमिह सर्व्वोपिहोमः सपरि-वारेश्वरपूजनानन्तरं कार्य्यः, मध्यमे देवदेवेशं वामे गौरीसमायुत मित्यादिना देव पूजामुक्तातती होमः प्रकर्त्तव्य इतिकामिकोक्तिः।

ब्रह्माणं दक्षिणे वामे विष्णुं विश्वगुरुं शिवं।
मध्ये वेद्या महादेवं इन्द्रादिगणसंवृतम्॥
"आदित्यं भास्करं भानुं रविं-देवं दिवाकरं।
ऊषां प्रभां तथा प्रज्ञां सन्ध्यां सावित्रिकामपि॥
छायां पुष्टिं धृतिं तुष्टिं शाखोत्काय* महात्मने।
विस्तरां शुभगाञ्चैव बोधनीञ्च प्रदक्षिणं॥

*खखोल्काय महात्मने इति क्वचित् पाठः।

आप्यायिनीञ्च संपूज्य देवं पद्मासने रविं।
प्रभूतं प्राक् प्रकर्त्तव्यं विमलं दक्षिणे तथा॥
सारं पश्चिमभागे च आराध्यं चोत्तरे यजेत्।
मध्ये सुखं विजानीयात् केसरेषु यथाक्रमं॥
दीप्तां सूक्ष्मां जयां भद्रां विभूतिं विमलां क्रमात्।
आमोघां विद्युताञ्चैव मध्यतः सर्व्वतो मुखीम्॥
सोममङ्गारकञ्चैव बुधं जीवमनुक्रमात्।
भार्गवञ्च तथा मन्दं राहुं केतुं समन्ततः।
पूजयेद्धोमयेदर्घ्यं दापयेच्च विशेषतः॥
ब्राह्मणान् भोजयेत्तत्र वेदवेदाङ्गपारगान्।
विद्याध्ययनसम्पन्नान् कृत्वैवं विधिविस्तरं॥
होमे प्रवर्त्तमाने च पूर्व्वदिक स्थानमध्यमे।
आरोहयेद्विधानेन रुद्राध्यायेन वै नृपं॥
धारयेत्तत्र यज्वानं घटिकैकाविधानतः॥
यजमानो जपेन्मन्त्रं रुद्रगायत्रिसंज्ञकं।
घटिकार्द्धं तदर्द्धं वा तत्रैवासनमारभेत्॥
आलोक्य वसनं धीमान् कूर्च्चहस्तः समाहितः
नृपश्च भूषणयुतः खड्गखेटकधारकः॥
स्वस्तिसूक्तादिभिश्चादावन्ते चैव विशेषतः।
पुण्याहं ब्राह्मणैः कार्य्यं वेद-वेदाङ्गपारगैः॥
जय-मङ्गलशब्दादिब्रह्मघोषैः सुशोभनैः।
नृत्य-वाद्यादिभि र्गीतैः सर्व्वशोभासमन्वितैः॥
स्वमेरा चेन्द्रदिग्भागे सुदृणं तत्र निक्षिपेत्।

तुलाधारौ समौ वृत्तौ तुलाभारस्तदाभवेत् ॥

ब्रह्माणमित्यादि, मध्ये ब्रह्मादिदेवतापरिवृतमीश्वरं संपूज्य ततः सूर्य्यं पूजयेत् ।

मण्डलात् प्राक् कल्पितकर्णिकामध्ये ऊषादित्यौ पूज्यौ ततः प्रभाभास्करौ प्रज्ञाभानूदेवद्वुत्यादिमिथुनचतुष्कमाग्नेयादिकोणेषु पूज्यं, छायादिशक्तिचतुष्टयन्तु प्राच्यादिदिक्षु पूजनीयं विस्ताराद्यास्त्वाग्नेयादिष्वासनपादेषु, प्रभूतादयस्तु पूर्व्वादिष्वासनगात्रेषु परमसुखा तु मध्ये रवेरास्तरणं स्थापनीयं तदुपरि पूर्व्वोक्तं रविमादित्याख्यं पद्मोपरि पूजयेत्, दीप्ताद्यास्तु केसरस्थाः शक्तयः तत्रापि सर्व्वतोमुखी कर्णिकायां पूज्या, ततोवहिर्दलाग्रेषु सोमाद्याः पूज्याः एवं शिवसूर्य्यौ समाराध्य शिवाग्नौ शैवोक्तमग्निकार्य्यञ्च कृत्वा सूर्य्यायार्घं दत्त्वा होममुपक्रम्य ब्राह्मणान् भोजयित्वा पूर्णाहुत्याः पूर्व्वं पुण्याहं तुलारोहणाङ्गं वाचयित्वा तुलारोहणं कारयेत्

शतनिष्काधिकं श्रेष्ठं तदर्द्धं मध्यमंस्मृतम् ।
तस्याप्यर्द्धं कनिष्ठं स्यात् त्रिविधिं तत्र कल्पितम् ॥
वस्त्रयुग्मं तथोष्णीषं कुण्डलं कण्ठभूषणम् ।
अङ्गुलीभूषणञ्चैव मणिबन्धस्य भूषणम् ॥
एतानि चैव सर्व्वाणि प्रारम्भे धर्म्मकर्म्मणि ।
पुरोहिताय दत्त्वाथ ऋत्विग्भ्यः संप्रदापयेत् ॥
पूर्व्वोक्तभूषणं सर्व्वं सोष्णीषं वस्त्रसंयुतं ।
दद्यादेतत् प्रयोक्तृभ्यःकुण्डलाच्छादनं* वुधः ॥

*आच्छादनपटमिति क्वचित् पाठः ।

दक्षिणाञ्च शतं चार्द्धं * विप्राय प्रतिपादयेत्।
ऋत्विजाञ्चैव सर्व्वेषां दशनिष्कान् प्रदापयेत्॥
यागोपकरणं द्रव्यमाचार्य्याय प्रदापयेत्।
इतरेषां द्विजानान्तु पृथगिष्टं प्रदापयेत्॥
दक्षिणाञ्च पुरोहितद्विजेभ्यो दापयेत् स्वयम्।
आचार्य्येषु प्रदातव्यं श्रोत्रियेभ्यो विशेषतः॥
वन्दीकृतांश्च विसृजेत् कारागृहनिवेशितान्।
सहस्रकलसेनैव स्नापयेत् परमेश्वरम्॥
घृतेन केवलेनापि देवदेवमुमापतिं।
पयसा वाथ दध्ना वा सर्व्वद्रव्यैरथापि वा॥
ब्रह्मकूर्च्चेण वा देयं पञ्चगव्येन वा पुनः।
गायत्र्याचैव गोमूत्रं गोमयं प्रणवेन च॥
आप्यायस्वेति वै क्षीरं दधिक्राव्णेति वै दधि।
तेजोसीत्याज्यमीशानं मन्त्रेणैवाधिषिञ्चयेत्॥
देवस्यत्वेति देवेश कुशाम्बु कलसैर्नवैः।
रुद्राध्यायेन सर्व्वेशं स्नापयेत् परमेश्वरम्॥
सहस्रकलसैः शम्भोर्नाम्नाञ्चैव सहस्रकैः।
विष्णुना कथितैर्व्वाथ नन्दिना कथितैस्तु वा॥
दक्षेण मुनिमुख्येन कीर्त्तितेनापि वा बुधः।
महापूजा च कर्त्तव्या महादेवस्य भक्तितः॥
शिवार्च्चकाय दातव्या दक्षिणार्द्धा गुरोः शुभा।
देवार्च्चकानां सर्व्वेषां दक्षिणा च यथा क्रमं॥

*तदर्द्धं वा। [illegible] पाठः।

दीनान्धकृपणानाथबाल-वृद्ध-कृशातुरान्।
भोजयेच्च विधानेन दक्षिणामपि दापयेत्॥

वस्त्रयुग्ममित्यादि, वस्त्रयुग्मोष्णीषकुण्डलादीनि तु प्रारम्भ एव वरणान्तरं कृतमधुपर्केभ्यः पुरोहितब्रह्मर्त्विक्सदस्येभ्यो-दद्यात् आचार्य्याय द्विगुणं। द्विगुणं गुरवे दद्यात् भूषणाच्छा-दनादिकमितिमत्स्योक्तेः। एतत् प्रयोक्तृभ्यः शतादिनिष्कनिर्म्मितं प्रागुक्तभूषणञ्च दद्यात्। दक्षिणाञ्चेति, शतादिदक्षिणामाचार्य्याय दत्त्वा ऋत्विग्भ्योस्तु दशनिष्कानि, इतरेषां परिचारकाणां तु निष्कमात्रं। यत्र कर्म्मकरास्तेभ्यः पृथक्निष्कं प्रदापयेदितिका मिकोक्तेः। तुलाधिरूढं द्रव्यमन्येभ्य एव दातव्यमिति कामिक-मतम्, तुलाधिरोहितं वित्तं ब्राह्मणेभ्यः प्रदापयेत्। मङ्गक्तेभ्यो विशेषेण मदर्थं वापि कल्पयेत्। देशिकेभ्योविशेषेण दद्यात् श्रद्धासमन्वित इति।

अथ महाभिषेकपूजातत्कर्त्तृ दक्षिणा च कार्य्येत्याह, सहस्र-कलशेत्यादिना, सर्व्वद्रव्यैः सुवर्णफलरत्नोदकपञ्चामृताद्यैः, अर्द्धा दक्षिणेति, तुलारोहणाचार्य्यदक्षिणाप्रमाणार्द्धं, शिवार्च्चकादिभ्यो दक्षिणादानमिति, कामिकेतु महाभिषेकपूजानन्तरं तुलारो-हणमुक्तं, यत् मण्डले पूजितान् सर्व्वान् देवानभ्यर्च्च्य होमयेत्।

पूर्णाहुत्यादिचैवैनां क्रियामत्र समापयेत्।
सहस्रकलशाद्यैश्च संस्नाप्य परमेश्वरम्।
महापूजा च कर्त्तव्या प्रभूतहविषान्विता।
पञ्चामृतैः पञ्चगव्यैः क्षीराद्यैः स्नपनन्तु वा।
ब्राह्मणान् भोजयेत् पश्चात्तुलारोहणमाचरेत्॥

अथ दक्षिणादानान्तरं पूर्णाहुत्याद्युत्तरतन्त्रसमापनं पुण्याह वाचनञ्च कार्य्यमितिसिद्धिः सहस्रकलशैः सहस्रनामभिरीशानं स्नापयेदित्यभिहितं तदुक्तं लिङ्गपुराणोक्तमेव, नामसहस्रमालिख्यते,

ऋषय ऊचुः। नाम्नां सहस्रं रुद्रस्य नन्दिना ब्रह्मयोगिना।

कथितं ब्रह्मवेदार्थं सकलं सूत सुव्रत।
नाम्नां सहस्रं विप्राणां वक्तुमर्हसि शोभनम्॥

सूतउवाच। सर्व्वभूतात्मभूतस्य हरस्यामिततेजसः।

अष्टोत्तरसहस्रन्तु नाम्नां सर्व्वस्य सुव्रत॥
यज्जप्त्वाच मुनिश्श्रेष्ठोगाणापत्यमवाप्नुयात्।
तदहं संप्रवक्ष्यामि सर्व्वपापप्रणाशनम्॥
ओं स्थिरः स्थाणुः प्रभुःर्भानुः प्रभवो वरदोवरः।
सर्व्वात्मा सर्व्वविख्यातः सर्व्वकर्म्मकरो भवः॥
जटी चर्म्मी शिखण्डीच सर्व्वगः सर्व्वभावनः।
हरिश्च दक्षिणाख्यश्च सर्व्वभूतहरप्रभुः॥
प्रवृत्तिश्च निवृत्तिश्च नियन्ताचामनोद्भवः।
श्मशानचारी भगवान् खचरोगोवरोदनः॥
अभिवाद्योमहाकर्म्मा तपस्वी भूतधारणः।
उन्मत्तवेषः प्रच्छन्नः सर्व्वलोकप्रजापतिः॥
महारूपोमहाकायः सर्व्वरूपी महायशाः।
महात्मा सर्व्वभूतश्च विरूपो वामनोनतः॥
लोकपालोऽन्तर्हितात्मा प्राभासोभवनोरुचिः।
पवित्रश्च महाश्चैव नियमोनियमाश्रितः॥

सर्व्वकर्म्मादिकर्म्माणा * मादिरादिकरोनिधिः।
सहस्राक्षो विशालाक्षः सोमोदक्षः सुधाकरः॥
चन्द्रसूर्य्यासनः केतुर्ग्रहोग्रहपतिर्मतिः।
आदिराज्यो भयंकर्त्ता मृगवाणार्पणोनघः॥
महातपोघोरतपा आदर्शोनैकसाधकः।
संवत्सराकृतोमन्त्रः प्रमाणं परमन्तपः॥
योगाचार्य्यो महाविष्णो महारेता महाबलः।
सुवर्णरेताः सर्व्वज्ञः सुबीजो वृषवाहनः॥
दशबाहुस्त्वनिमिषोनीलकण्ठ उमापतिः।
विश्वरूपस्तपश्श्रेष्ठो बलवीरो बलाग्रणीः॥
गणकर्त्ता गणपतिर्दिग्वासा काम्यएव च।
मन्त्रवित् परमोमन्त्रः सर्वभावकरोहरः†॥
कमण्डलुधरो धन्वो वहुहस्तः कपालवान्।
अशनीशः शतघ्नीशः खड्गवाणायुधोमहान्॥
अजश्च मृगरूपश्च तेजस्तेजःकरोविधेः।
उष्णीषो वस्त्रवल्कश्च उदग्रो विनतस्तथा॥
दीर्घश्च हरिकेशश्च सुतीर्थः कृष्णएव च।
शृगालरूपः सर्व्वार्थोमुण्डः सर्व्वशुभङ्करः॥
सिंहशार्दूलरूपश्च गान्धारी च कपर्द्यपि।
ऊर्द्धरेता ऊर्द्धलिङ्गी उर्द्धशायी नभस्तलः॥
त्रिजटी चीरवासाश्च रुद्रः सेनापतिर्भुवः।

---

* सर्व्वकर्म्मादिधर्म्माणामिति क्वचित्पाठः।

† मन्त्रः सर्व्वकरोश्वर इति पाठान्तरम्।

अहोरात्रश्चरतश्च चित्रमन्युः सुवर्चसः॥
गन्धर्वहा दैत्यहाच कालधानो* गुणाकरः।
सिंहशार्दूलरूपाणामर्द्धचन्द्रधरोहरः॥
निशाचरः प्रेतचारी भूतचारी महेश्वरः।
बहुरूपोवहुधनः सर्वसारो मृतोहरः॥
नित्यप्रियोनित्यमृत्युर्नर्त्तनः सर्वलोलुपः।
सकार्मुकोमहाबाहुर्महाघोरोमहातपाः॥
महासारोमहापाशो नित्योगिरिकरोनतः।
सहस्रहस्तोविजयोव्यवसायोह्यनन्दितः॥
अमर्षणोथ धर्मात्मा वध्यहा कामनाशनः।
दचहा परिचारीच प्रसहोमध्यमस्तथा॥
तेजोपहारी बलवान् विदितोभ्युत्क्षितो वहः।
गम्भीरघोषगम्भीरो गभीररथवाहनः॥
न्यग्रोधरूपो† न्यग्रोधो विश्वकर्मा विभुर्वहुः।
तीक्ष्णोपायश्च हर्य्यश्च रूद्रोयःकर्म्मकार्यवित्॥
विष्णुप्रसादितो यज्ञः सुमुखोवड़वामुखः।
हुताशनसहायश्च प्रशान्तात्मा हुताशनः॥
उग्रतेजा महातेजा विजयोजयकालवित्।
ज्योतिषोनयनः सिद्धिः सिद्धविग्रहएव च॥
खड्गी दण्डी जटी ज्वाली वर्द्धनोव्यधनोवली।
चीणी विपञ्चोनालीवली कलकट्टस्तथा॥

* कालोधातेति पाठान्तरम्।

† न्यधारक इति वा पाठः।

शवरूपोनिशादीच सर्वशाह्यपरिग्रहः।
व्यालरूपोविलावासी हेमा पालस्तरंगवित्॥
देवश्रीमालदामर्मा सर्वाबलविमोचनः।
बन्धनश्चासुरेन्द्राणां युधि शत्रुविनाशनः॥
सद्यः प्रमोदोदुर्वापः सर्वायुधनिषेवितः।
प्रस्कन्दोथ विभागश्च अतुल्योयज्ञमानवित्॥
सर्व्ववासः सर्व्वधारोदुर्व्वासा वासवोनरः।
हैमो हैमकरोयज्ञः सर्व्वधारीधरोधमः॥
आकारोह्यध्वनिवहोमरुत्सङ्गः प्रतापवान्।
भिक्षुश्च भिक्षारूपीच रौद्ररूपः सुरासवी॥
वसुयशोवसुवर्चावसुवेगोवसुप्रदः।
सर्वावासोत्रयोवासोस्वपदेशकरोवरः॥
मुनिरात्मा मुनेर्लोकसभाज्यश्च सहस्रभुक्।
पक्षी च पक्षिरूपश्च आदिदीपो विशांपतिः॥
समीरोदमनोङ्कारोह्यर्थोह्यर्थकरोवरः।
वासुदेवश्च वामश्च वामदेवश्च वामनः॥
सिद्धयोगापहारी च सिद्धः सर्व्वार्थसाधकः।
अक्षुण्णः क्षुण्णरूपश्च वृषणोमृदुरव्ययः॥
महासेना विशाखश्च षष्टिभागोगवांपतिः।
शूलहस्तस्तु विष्टम्भोवकस्तम्भनएव च॥
ऋतावृततत्कलज्ञातोह्यकर्म्मा सुकरोभवः।
वानस्पत्योवाजसनोनित्यमाश्रमपूजितः॥
ब्रह्मचारी लोकचारी सर्वाचारः सचारवित्।

ईशान ईश्वरकरोनिशाचारोह्यनेकधृत् ॥
निमित्तस्थोनिमित्तं च नन्दोनन्दिकरोहरी ।
नन्दीश्वरश्च नंदीच नन्दनेमिप्रवर्द्धनः ॥
भगहारीनिहन्ताच लोकालोकपितामहः ।
चतुर्मुखो महालिङ्गश्चारुलिङ्गस्तथैव च ॥
लिङ्गाध्यक्षोवराध्यक्षः कालाध्यक्षो युगावहः ।
वीजाध्यक्षो बीजकर्त्ता बुद्धात्मानुगतोबलः ॥
अतिहासश्च कल्पश्च दमनोजगदीश्वरः ।
दम्भोदम्भकरालम्भो वंशोवंशकरः कली ॥
लोककर्त्ता पशुपतिः महाकर्त्ताह्यधोक्षजः ।
अक्षरं परमं ब्रह्म बलवान् शुक्र एव च ॥
नित्योह्यमीशः शुद्धात्मा सिद्धोमानो गतिर्हविः ।
प्रसादस्तवनोदीर्घोदर्पणोहव्यमिन्द्रजित् ॥
वेदाकारः सूत्रकारो विद्वांश्च परमर्द्दनः ।
महामेघनिवासीच महाघोरो वशीकरः ॥
अग्निज्वालोमहाज्वालो अभिधूम्राहुतोरविः ।
ब्राह्मणः शङ्करोनित्योवर्चस्वोधूम्रकेतनः ॥
नीलस्तथाङ्गलुमश्च शोभनो निरवग्रहः ।
स्वस्त्यस्वस्तिविभावश्च भागोभागकरोलघुः ॥
उत्सङ्गश्च महागर्भः परायणपरायवान् ।
कृष्णः कर्णः सुवर्णश्च इन्द्रियः सहवाणिकः ॥
महापादो महाहस्तो* मायाकायोमहायशाः ।

* महाकाय इति वा पाठः।

महास्पर्शो महामात्रो महानेत्रो विशालयः॥
महास्कन्धो महाकर्णो महोष्ठश्च महाहनुः।
महानासो महाकम्बुर्महाग्रीवः श्मशानवान्॥
महाबलो महातेजाः कन्दरात्मा मृगालयः।
लवनो लम्बनोद्यश्च मामयश्च पयोनिधिः॥
महादन्तो महादंष्ट्रो महाजिह्वोमहामुखः।
महानलोमहारोमा महाकेशोमहारजाः॥
अशपलप्रसादश्च प्रत्ययोगी च साधकः।
प्रसेवनो अपानश्च आदिकर्मा महामुनिः॥
वृषकोवृषकेतुश्च अनलोवायुवाहनः।
मण्डली मेरुवासश्च देववाहनएव च॥
अथर्वशीर्षोसोमोर्द्धभुक् सहस्रोजिनौकसः।
यज्ञपादभुजोगुह्यः प्रकाशोजास्तथैवच॥
अमोघार्थप्रमादश्च अन्तर्भाव्यः सुदर्शनः।
उपहारप्रियः सर्वः कनकः काञ्चनस्थिरः॥
नाभितुण्डकरोहिण्यः पुष्करःऽस्थावरःस्थिरः।
द्वादशास्त्रोधनं वाह्योयज्ञोयज्ञसमाहितः॥
नक्तोनीलः कविःकालो मकरःकालपूजितः।
शुक्लः स्त्रीरूपकुतपः शुचिर्भूतनिषेवितः॥
आश्रमस्थः कपोतस्थो विश्वकर्मा पवित्रराट्।
विशालः शालस्ताम्रोष्ठोह्यंबुजातः सुनिश्चयः॥
कपिलः कलशः शूलश्चायुधश्चैवरोमसः।
गन्धर्वोह्यदितिस्तार्क्ष्योह्यविज्ञेयः सुसारदः॥

परश्वधायुधो देवोह्यर्थकारी सुवान्धवः।
जतुवीणो महाकोप ऊर्द्धरेता जलेशयः॥
उग्रवंशकरो वंशोवंशवन्योह्यनिन्दितः।
सर्व्वाङ्गरूपी मायावी सुहृदोह्यनिलोनलः॥
बन्धनोबन्धकर्त्ता च सबन्धनविमोचनः।
राक्षसादिश्च कामारिर्महादंष्ट्रसमायुधः॥
बहुत्वनिन्दितः सर्वशङ्करःस्थाय्यकोपनः।
अमरेशोमहाघोरो विश्वदेवः सुरारिहा॥
अहिर्बुध्नोतिरन्तिश्च चेकितानोहली तथा।
अजैकपाच्च कामाक्षो शङ्करोजो महाधरः॥
धन्वन्तरिर्धूमकेतुः शून्यो वैश्रवणस्तथा।
धाता विष्णुश्च शक्रुश्च तयी त्वष्टा धरो ध्रुवः॥
प्रभासः सर्वतोवायुरर्य्यमा रुविता रविः।
धृतिश्चैव विधाताच मान्धाता भूतवाहनः॥
तीरस्तीव्रश्च भीमश्च सर्व्वकर्मा गुणोद्वहः।
पद्मगर्भोमहागर्भश्चन्द्रवक्त्रो ।नभोनयः॥
फलपाशोपशान्तश्च पुराणः पुण्यकृत्तमः।
क्रूरकर्त्ता क्रूरवासी धनुरात्मामहौषधं॥
सर्व्वायशः सर्वचारी प्राणेशः प्राणिनांपतिः।
देवदेवसुरोत्सिक्तः सदसत्सर्वरत्नवित्॥
कैलासादिगुहावासी हिमवङ्गिरसंश्रियः।
कुलहारी कुलंकर्त्ता वहुभिन्नो बहुप्रजः॥
प्राणेशोवर्द्धको वृक्षो वकुलश्चादकिस्तथा।

सारग्रीवो महाजत्रुर्व्विलोलश्च महौषधी।
सिद्धान्तकारी सिद्धान्तश्छन्दोव्याकरणोत्तरः॥
सिंहनादः सिंहदंष्ट्रः सिंहकः सिंहवाहनः।
प्रभावात्मा जगत्कालः कालकम्पो तनूतनुः॥
सारङ्गो भूतवक्राङ्कः केतुमाली भवेन्धनं*।
भूतालयो भूतपतिरहोरात्रो पलो मलः†॥
अस्त्रहृत् सर्व्वभूतानां निश्चलश्चलविद्बुधः।
अमोघः संयमो हृष्टो भोजनः प्राणधारणः॥
धृतिमान्मतिमान्संख्यचः सत्कृतस्तु युगाधिपः।
गोपाली गोयुवाग्रामोगो चर्म्मवसनो हरः॥
हिरण्यवाहुश्च तथा गुहावासः प्रवेशनः।
महामन्ता महाकालो जितकामो जितेन्द्रियः॥
गान्धारश्च सुरापश्च तापकर्म्मरतो हितः।
महाभूतो भूतवृतो ह्यस्पर्शो गणसेवितः‡॥
महाकेतुधरो धाता नैकतानरतश्च सः।
अवेदनीय आवेद्यः सर्व्वगश्च सुखावहः॥
तोरणस्तरणो धातुः परिधापत्तिरुर्जितः।
संयोगवर्द्धनो वृद्धो गुणिकोथ गुणाधिपः॥
नित्यो धाता सहायश्च देवासुरपतिः पतिः।
अविमुक्तश्च वाहश्च सुदेवोपि सुपर्व्वणः॥

---

* भवेधनमिति वा पाठः।

† मह इति क्वचित् पाठः।

‡ सेवित इति क्वचित् पाठः।

आषाढ़श्च सुषाढ़श्च स्कन्ददो हरिदो हरः।
वपुरावर्त्तमानान्यो वपुःश्रेष्ठो महावपुः॥
शिरोहरोपि मर्षण्यः सर्वलक्षणलक्षितः।
अक्षयो रथगीतश्च सर्वभोगी महाबलः॥
समायोऽथमहामायस्तीर्थदेवो महापथः।
निर्जीवो जीवनो मन्त्रः सुभगो बहुकर्कशः॥
रत्नभूतोथ रत्नाङ्गी महार्णवनिनादभृत्।
मूलो विशाखो ह्यमृतो व्यक्ताव्यक्तस्तपोनिधिः॥
आरोहणोतिरोहश्च शीलधारी महातपाः।
महाकण्ठो महायोगी युगो युगकरो हरिः॥
युगरूपो महारूपोवनतो गहनाश्वनः।
न्यायनिर्वापणः पादः पण्डितो ह्यचलो यमः॥
बहुमाली महामालःशिपिविष्टः सुलोचनः।
विस्तारो लवणं रूपं कुसुमांशः फलोदयः॥
वृषभो वृषभाङ्गाङ्गी मणिबिम्बो जटाधरः।
इन्दुर्व्विसर्गः सुमुखः शरसर्वायुधैः सह॥
निवेदनःसुधाताच* स्वर्गद्वारोमहाधनः।
गन्धमाली च भगवान्नर्त्तनः सर्व्वलक्षणः॥
सन्तानबाहुः सकलः सर्व्वमङ्गलवाचनः।
चलस्ताली करस्ताली उद्वंशः संयमी युवा॥
यन्त्रतन्त्रसुविख्यातो लोकसर्व्वाश्रयो मृदुः।

---

* सुधाजात इति क्वचित् पाठः।

मुण्डो विरूपो विकृतो दीप्ततेजाः सहस्रपात्॥
सर्वमूर्द्धा सर्व्वदेवः सर्व्वदेवमयो गुरुः।
सहस्रबाहुः सर्व्वाङ्गः शरण्यः सर्वलोकधृक्॥
काष्टा कला मुहूर्त्तं वा मात्रा वा पक्षपक्षकः।
विश्वक्षेत्रप्रदो वीजं लिङ्गमध्यस्तु निर्मलः॥
सदसद्व्यक्तधीनामा माता भ्राता पितामहः।
स्वर्गद्वारं मोक्षद्वारं सुखद्वारं त्रिविष्टपम्।
निर्वाणहृदयश्चैव ब्रह्मलोकः परा मतिः*।
देवासुरविनिर्माता देवासुरगणाधिपः॥
देवासुरगणाध्यक्षो देवासुरगणाग्रणीः।
देवाधिदेवो देवर्षिर्देवासुरसुधाप्रदः॥
देवासुरेश्वरोविष्णुर्देवासुरमहेश्वरः।
सर्वदेवमयोचिन्त्यो देवतात्मात्मसम्भवः॥
उद्गतस्त्रिक्रमो वैद्यो विराजो वीरजो वरः।
ईड्यो हस्तिपुरव्याघ्रो देवसिंहो नरप्रभुः† ॥
विबुधश्च‡ सुरश्रेष्ठः स्वर्गदेवतपोधनः।
संयुक्तोशोभनो वक्ता आशायां प्रभवोव्ययः॥
गुरुः कान्तो निजः सर्गः पवित्रं सर्ववाहनः।
शृङ्गी शृङ्गप्रियो बभ्रूराजराजो निराश्रयः॥
अविरामः संस्मरणोनिरामः सर्वसाधनः।

* परागतिरि रिति वा पाठः।

† परि प्रभुरिति वा पाठः।

‡ विबुधाग्र इति वा पाठः।

ललाटाक्षो विश्वदेहो हरिणो ब्रह्मवर्चसः ॥
स्थावराणां पतिश्चैव नियमेन्द्रियवर्द्धनः।
सिद्धार्थः सर्वभूतार्थो चिन्त्यसत्यव्रतः शुचिः ॥
व्रताधिपः परं ब्रह्म मुक्तानां परमा गतिः।
विमुक्तो मुक्ततेजश्च श्रीमान् श्रीवर्द्धनो जगत् ॥
यथाप्रधानं भगवानितिभक्त्या स्तुतो मया।
भक्तिमेवं पुरस्कृत्य महायज्ञपतिर्विभुः ॥
ततोभ्यनुज्ञां प्राप्यैवं स्तुतो गतिमताङ्गतिः।
तस्माल्लब्धस्तवः शम्भोर्नृपस्त्रैलोक्यविश्रुतः ॥
अश्वमेधसहस्रस्य फलं प्राप्य महायशाः।
गाणपत्यं परं प्राप्य प्रसादात्तस्य यत् प्रभोः।
यः पठेच्छृणुयाद्वापि श्रावयेद्ब्राह्मणानपि।
अश्वमेधसहस्रस्य फलं प्राप्नोति वै द्विजः ॥
ब्रह्मघ्नश्च सुरापश्च स्तेयी च गुरुतल्पगः।
शरणागतघाती च मित्रविश्रम्भघातकः ॥
मातृहा पितृहा चैव वीरहा भ्रूणहा तथा।
संवत्सरं क्रमाज्जप्त्वा त्रिसन्ध्यं शङ्करायमे।
देवमिष्ट्वा त्रिसन्ध्यञ्च सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥
इति लिङ्गपुराणोक्तस्तुलापुरुषदानविधिः।

श्रीशङ्करउवाच। तुलादानं प्रवक्ष्यामि सर्वपापविनाशनम्।
यद्गौर्या चरितं पूर्वं लक्ष्म्या नारायणेन च ॥
पुण्यं दिनमथासाद्य तृतीयायां विशेषतः।
गोमयेनानुलिप्तायां भूमौ कुर्याद्घटं शुभम्।

दारवं शुभवृत्तस्य चतुर्हस्तप्रमाणतः॥
सुवर्णं तत्र बध्नीयात् स्वशक्त्या घटितं घटे।
सौवर्णं स्थापयेत्तत्र वासुदेवं चतुर्भुजं॥
शक्त्या द्वयं तु बध्नीयात् स्थापयेत् पिटके ततः।
तत्रारुहेत्सवस्त्रास्त्रः पुष्पा-लङ्कारभूषितः॥
अभीष्टां देवतां गृह्य स्नापयित्वा घृतादिभिः।
तुलादानस्य सर्वस्य विधिरेषः प्रकीर्त्तितः॥
प्रथमा तु घृतस्योक्ता तेजोवृद्धिकरी तुला।
माक्षिकेन तु सौभाग्यं तैलेन बहुलाः प्रजाः॥
वस्त्रस्य दिव्यवस्त्राणि प्राप्नोति तुलया ध्रुवं।
लवणस्य तु लावण्यमरोगित्वं गुड़स्य तु॥
असपत्नी शर्करया सुरूपा चंदनेन च।
अवियुक्ताभवेद्भर्त्रा तुलायाः कुङ्कुमस्य च॥
नसंतापो हृदि भवेत्क्षीरस्य तुलया सदा।
सर्वकामप्रदाः सर्वाः सर्वपापक्षयंकराः॥
यो ददाति तुलाः सर्वाः स गौर्यालयमाप्नुयात।
मन्त्रेण दद्यादभिमन्त्रितां तु सकृत्तुला मेकतमां द्विजेभ्यः।
स याति गौर्याः सदनं सुपुण्यं नैशोक-दौर्गत्यमुपाश्नुते पुमान्॥
त्वं तुले सर्वभूतानां प्रमाणं परिकीर्त्तिता।
मां तोलयन्ती संसारादुद्धरस्व नमोऽस्तु ते।
इत्यारुह्य क्षणं स्थित्वा चिन्तयित्वा हरिप्रियां॥
अवरुह्य ततो दद्यादर्द्धं पादमथापि वा।
गुरुं संपूज्य विधिवत् सर्वालङ्कारभूषणैः॥

विसर्जयेन्नमस्कृत्य भोजयित्वा विधानतः।
शेषं द्विजेभ्यो दातव्यं स्त्रीभ्योन्येभ्यस्तथैव च॥
इष्टबन्धुविशिष्टानामाश्रितानां कुटुम्बिनां।
कदलीदलसंस्थान्तु पञ्चपिण्डां हिमाद्रिजां।
कर्पूरस्य तुलापूज्या कुङ्कुमेनालभेत्तु तां॥
अवरुह्य तुलायास्तु गुरवे तां निवेदयेत्।
विधिनानेन योदद्यात् तूलादानं विमत्सरः॥
सलोकमेति पार्वत्याः सेव्यमानोऽप्सरोगणैः।
तत्रोष्य कालं सुचिरमिहलोके नृपो भवेत्॥
इति विष्णुधर्मोत्तरोक्तो घृतादितुलापुरुषदानविधिः।
कृष्णउवाच। अनेनैव विधानेन केचिद्रूप्यभयं पुनः।
कर्पूरेण तथेच्छन्ति किञ्चिद्ब्राह्मणपुङ्गवाः॥
अनेनेति, मुख्यतुलापुरुषदानकथितेनेत्यर्थः।
तथा सिततृतीयायां नार्य्यः सौभाग्यदर्पिताः।
कुङ्कुमेन प्रयच्छंति लवणेन गुडेन वा।
तत्र मन्त्रा न होमा वा एवमेव प्रदापयेत्॥
आह विश्वामित्रः।
आदित्ये राहुणा ग्रस्ते सुवर्णैस्तोलयेत्तनुं।
सोमग्रहेतु रूप्येण यथादानं तथा शृणु॥
प्रवर्ग्यस्य मुखेयुक्त उत्पन्नपत्रदेहतः।
सर्वपापहरायैतद्ददामि प्रीयतां विधुः॥
इत्युच्चार्य जलं त्वप्सु निक्षिपेत् द्विजसत्तमः।
प्रीयन्ते पितरः कांस्ये ताम्रे चैव पितामहाः।

लवणे सिन्धुजे लक्ष्मीः प्रीयते पार्वती गुडे।
गन्धैर्गुडो वा वासोभिः सौभाग्यं लवणे परं॥
प्रीयतां विश्वधाप्रीतिर्दानमन्त्रोभिधीयते।
तुलापुरुषतो राजन् याहि तत् परमं पदं॥
सर्वपापविशुद्धात्मा मुक्तिं यान्त्यपुनर्भवां।
हत्वा तु ब्राह्मणं भूयस्तोलयेदात्मनस्तनुं।
सुवर्णेनात्मतुल्येन ब्रह्महत्यां व्यपोहति॥

इति रूप्यादि तुलापुरुषः।

अथ गारुड़पुराणे। सनत्कुमार उवाच।

तुलापुरुषदानन्तु शृणु मृत्युञ्जयोद्भवम्।
अष्टलोहं प्रदातव्यं सर्व्वरोगोपशान्तये॥
कांस्यञ्च यक्ष्मणे देयन्त्रपु चार्शोविकारके।
अपस्मारे च सीसं स्यात् ताम्रं कुष्ठे सुदारुणे॥
पैत्तलं रक्तपित्ते च रूप्यं प्रदरमेहयोः।
सौवर्णं सर्व्वरोगेषु प्रदद्यान्मृत्फलोदनम्॥
फलोद्भवं तथा दद्याद्ग्रहणे दीर्घदारुणे*।
गौडं भस्मकरोगेषु योगन्तु गण्डमालके॥
जाङ्गलञ्चाग्निनां मान्द्ये रोमोत्पाते तु पौष्पकम्।

जाङ्गलं काष्ठजमिति।

मधूद्भवं तथा देयं काश-श्वास-जलोदरे।
घृतोद्भवं तथा देयं छर्द्दिरोगोपशान्तये॥
क्षीरं पित्तविनाशाय दाधिकं भगदारणे।

* दीर्घ वारुणे क्वचित् पाठः।

लावणं वलनाशाय पैष्टं दद्रुविनाशने ॥
अन्नञ्च सर्व्वरोगस्य नाशने स्मृतमेव च।
अधिदैवतं लोहे च महाभैरव उच्यते ॥
कांस्ये तु पूषाश्विनौ च वायुश्च सैसके स्मृतः।
ताम्रे सूर्य्यस्तथा प्रोक्तः पैत्तले च कुजस्तथा ॥
रूप्ये च पितरो ज्ञेयाः सुवर्णे सर्वदेवताः।
फले सोमो गुडे चापस्ताम्बूले तु विनायकः ॥
गन्धर्वाः कुसुमे चैव जाङ्गलेग्निस्तथा स्मृतः।
मधौ यक्षाः प्रयत्नेन घृते मृत्युञ्जयः स्मृतः ॥
क्षीरे तारागणाः सर्वे दध्नः सर्पाः प्रकीर्त्तिताः।
पिष्टे प्रजापतिर्देवो अन्ने सर्व्वाश्च देवताः ॥
आर्त्तो यदा स्यात्पात्रं वा प्राप्नुयात्पुण्यदेशतः।
मृत्यु मृत्युञ्जयप्राप्तविधिना यत्प्रदीयते।
तदेव सर्वशान्त्यर्थं भवतीह न संशयः ॥
मृत्युञ्जयप्राप्तविधिना, मृत्युञ्जय पूजयेदित्यर्थः॥

मृत्युञ्जयपूजाविधिश्च देवीपुराणे।

ओं जुंस, इति मन्त्रेण देवीयश्चतुर्भुजस्त्रिनेत्रकः।
अक्षमालाधरो देवो दक्षिणेन तु पाणिना ॥
वामेनामृतकुण्डी च धारयन्नमृतान्वितां।
वरदाभयपाणिश्च दिव्याभरणभूषितः ॥
शुक्लः सनीलवासाश्चपद्मस्योपरिसंस्थितः।
जातौ तस्य शिरश्चेयं जवंवाश्च शिखा स्मृता ॥
यो वौषड़िति कवचं जैनेत्रेच प्रकीर्त्तिताः।

जःफडस्त्वं भवेत्सदा । ओङ्कारः, आवाहनमन्त्रः ।
ओंङ्कारो वै विसर्जने, अष्टमन्त्रकाः पञ्चाक्षरसंमिताः ।
जया च विजया चैव अजिता चापराजिता ।
भद्रकाली कपाली च चेम्यामृतपराजिता ॥
ओं जुंसमन्त्रप्रयोगेन पूज्योमृत्युञ्जयः शिवः ।
गन्धादिभिर्यथान्यायं यथा ब्राह्मणपूजनम् ।
मृत्युञ्जयोक्तदानेषु सर्वेष्वेवं विधिःस्मृतः ॥

'जप्तव्यः' ।

ओं जूंस इति वै दातुं कामोघं साधयेत्सदा ।
लोहे तदा मन्त्रममुं ग्रहीतुर्हृदि रोपयेत् ॥
शिरो-ललाटदेशे च जिह्वामूले च गण्डयोः ।
नाभौ च ब्रह्मगुह्ये च एतदङ्गाष्टकं न्यसेत् ॥
अरत्निहस्तमात्रञ्च सारं तस्य प्रकीर्त्तितम् ।
यथेच्छया प्रयोगेण यथावत् कर्त्तुमिच्छया ॥
षष्टिपलैः सङ्घटितमज्ञातपलिकं भवेत् ।
लोहञ्च निष्पन्नमेव तत्र अन्नेन मिश्रितम् ॥
पञ्चाशत्पलसंयुक्तं दण्डं वायससंज्ञकम् ।
वस्त्रेराच्छाद्य दानेन यमदण्डो न विद्यते ॥

इति नानारोगघ्नतुलापुरुषदानविधिः ।

आत्मानं तोलयित्वा तु दद्याल्लोहञ्च तत्समम् ।
द्विजाय शिवभक्ताय यद्वान्यस्मै द्विजातये ॥
पादुको-पानह-छत्र-चामरा-सनसंयुतम् ।
अयने विषुवे पुण्ये व्यतीपातादिपर्वसु ॥

श्रद्धायुक्तः शुचौ देशे विशेषादुत्तरायणे।
पञ्चामृतेन संस्नाप्य देवदेवमुमापतिम्॥
केवलेन घृतेनाथ प्रस्थमात्रेण धूर्जटिम्।
सुगन्धिचंदनजलैस्ततः संस्नापयेद्विभुम्॥
चन्दना-गुरु-कर्पूर-कक्कोल-मृगनाभिभिः।
विलिप्य परमेशानं सुमनोभिरथार्चयेत्॥
भक्त्या निवेद्य नैवेद्यमनवद्येन चेतसा।
ततः प्रणम्य जगतामीश्वरं प्रार्थयेदिति॥
देवदेव जगन्नाथ कृपालो परमेश्वर।
मामुद्धरस्व संसारपङ्कसङ्कोचदुःस्थितम्॥
इति संप्रार्थ्य योदद्याल्लोहमात्मसमन्नरः।
स याति शिवसालोक्यं यावदिन्द्राश्चतुर्दश।
ततः पुनरिहायातः पृथिव्यामेकराड्भवेत्॥

सर्वेषु चैतेषु सुवर्णं दक्षिणा, अनुक्तदक्षिणेषु दानेषु तस्य यथा शक्ति विहितत्वात्॥

इति स्कन्दपुराणोक्तो लोहतुलापुरुषदानविधिः।
अथ हिरण्यगर्भाख्यं द्वितीयं महादानमुच्यते।

मत्स्यपुराणे मत्स्य उवाच।

अथातः संप्रवक्ष्यामि महादानमनुत्तमम्।
हेम्ना हिरण्यगर्भाख्यं महापातकनाशनम्॥
पुण्यन्दिनमथासाद्य तुलापुरुषदानवत्।
ऋत्विग्मण्डपसम्भारभूषणाच्छादनादिकम्॥
कुर्य्यादुपोषितस्तद्वल्लोकेशावाहनं धः श्रि

पुण्याहवाचनं कृत्वा तद्वत् कृत्वाधिवासनम् ॥

अत्र देश-काल-वृद्धिश्राद्ध-शिवादिपूजा-ब्राह्मणवाचन-गुरु-ऋत्विग्वरण-मधुपर्कदान-कुण्ड-मण्डप-वेदिसम्भार-होमाधिवासनादि सर्व्वं हिरण्यगर्भादिपञ्चदशमहादानप्रकृतिभूतं मत्स्यपुराणोक्ततुलापुरुषदानविहितं वेदितव्यम् ।

ब्राह्मणैरानयेत् कुण्डन्तपनीयमयं शुभम् ।
द्वासप्तत्यङ्गुलोच्छ्रायं हेमपङ्कजगर्भवत् ।
त्रिभागहीनविस्तारं प्रशस्तं मुरजाकृति ॥

कुण्डमिति, हिरण्यगर्भाख्यं पात्रं, तपनीयमयं, स्वर्णमयं हेमपङ्कजं अष्टदलं तदेव नाभिशब्दवाच्यं, त्रिभागहीनविस्तारमिति, अष्टाचत्वारिंशदङ्गुलविस्तारमित्यर्थः । मुरजाकृति, मृदङ्गाकृति । आज्यक्षीराभिपूरितमिति क्वचित्पाठः । तत्रघृतक्षीरे तुल्यपरिमाणे, यद्यपि चातिपूरितमित्युच्यते तथापि यजमानप्रवेशेन यथा तत्र वह्निरुच्छलति तथा पूरणीयम् ।

दशाम्त्राणि सरत्नानि दात्रं सूचीं तथैव च ।
हेमनालं सपिटकं वह्निरादित्यसंयुतम् ॥
तथैवावरणं नाभेरुपवीतञ्च काञ्चनम् ।
पार्श्वतः स्थापयेत्तद्वद्धेमदण्डं कमण्डलुम् ॥

दशाम्त्राणि, दशखण्डानि, अभ्राणीति क्वचित्पाठः । तानि काञ्चनानि अभ्राकारतया, अभ्राणीति । अस्त्रं खनित्रमिति केचित्, रत्नानि पञ्च प्रसिद्धानि, सपिटकं, मञ्जूषान्वितं, वह्निरिति, हेमकुण्डाद्वाह्यप्रदेशे पार्श्वतः स्थापयेदित्यनेन सम्बन्धः ।

वह्निरादित्यसंयुतमिति च पाठान्तरम् ।

वह्निभास्करयोर्लक्षणं ब्रह्माण्डदाने वक्ष्यते।

वह्निमध्ययसंयुतमिति, तदा अध्ययः, वरुणः।

तल्लक्षणमपि तत्रैव, नाभेरावरणमिति, नाभ्यावरणार्थं सौवर्णं वस्त्रं दात्रादीन्यपि सुवर्णमयान्येव कार्य्याणि।

पद्माकारं विधानं स्यात् समन्तादङ्गुलाधिकम्।
मुक्तावलीसमोपेतं पद्मरागदलान्वितम्।
तिलद्रोणोपरि गतं वेदीमध्ये ततोऽर्च्चयेत्॥

द्रोणः परिभाषायां व्याख्यातः।

इह खलु हिरण्यगर्भनिर्माणसुवर्णपरिमाणस्यानाम्नानात् यावता यजमानस्य प्रवेशधारणोपाधिकं कुण्डं भवति तावता घटनीयं, तच्च वेदिकामध्ये लिखितचक्रस्योपरि तिलद्रोणं निधाय तदुपरि संस्थाप्य पूजयेत्। अथ तुलापुरुषदानतदधिवासनदिनादन्येद्युर्ब्राह्मणवाचनं विधाय पूर्णाहुतिप्रभृतिकर्म्मशेषसमाप्तिं कुर्य्यात्। ततश्च कुण्डसमीपवर्त्तिकलशजलैः पूर्व्ववदभिषेकः, तदुच्यते।

ततो मङ्गलशब्देन ब्रह्मघोषरवेण च।
सर्व्वौषध्योदकस्नानं स्नापितो वेदपुङ्गवैः।

सर्व्वौषध्यः, व्याख्याताः,

शुक्लमाल्याम्बरधरः सर्व्वाभरणभूषितः।
इममुच्चारयेन्मन्त्रं गृहीतकुसुमाञ्जलिः॥
नमो हिरण्यगर्भाय हिरण्यकवचाय च।
सप्तलोकसुराध्यक्ष जगद्धात्रे नमो नमः॥
भूर्लोकप्रमुखा लोकास्तवगर्भे व्यवस्थिताः।

ब्रह्मादयस्तथा देवा नमस्ते विश्वधारिणे॥
नमस्ते भुवनाधार नमस्ते भुवनाश्रय।
नमोहिरण्यगर्भाय गर्भे यस्य पितामहः॥
यतस्त्वमेव भूतात्मा भूतमूर्ते व्यवस्थिताः।
तस्मात् मामुद्धराशेषदुःखसंसारसागरात्॥
एवमामन्त्र्य तन्मध्यमाविश्यास्तउदङ्मुखः।
मुष्टिभ्यां परिसंगृह्य धर्मराजचतुर्मुखौ।
जानुमध्ये शिरः कृत्वा तिष्ठेदुच्छ्वासपञ्चकं॥

धर्म्मराजोऽत्र सुवर्णमयः, तल्लक्षणञ्च तुलापुरुषेऽभिहितं चतुर्मुखोपि सौवर्णः, तल्लक्षणं ब्रह्माण्डदाने वक्ष्यते, तत्र दक्षिणमुष्टौ धर्मराजः, वाममुष्टौ चतुर्मुख इति।

गर्भाधानं पुंसवनं सीमन्तोन्नयनं तथा।
कुर्य्युर्हिरण्यगर्भस्य ततस्ते द्विजपुङ्गवाः॥

अनवलोभनमप्यत्र विज्ञेयं, एतेषु, गर्भादानादिषु वक्ष्यमाणेषु जातकर्मादिषु, मन्त्रयुक्तमनुध्यानमात्रमत्राचरणीयं।

गीतमङ्गलघोषेण गुरुं सन्तोषयेत्ततः।
जातकर्मादिकाः कुर्य्यात् क्रियाः षोड़श चापराः॥

ताश्चाभिधीयन्ते। जातकर्म्म १ नामकरणं २ निष्क्रमणं ३ अन्नप्राशणं ४ चूड़ाकरणं ५ उपनयनं ६ प्राजापत्यं ७ ऐन्द्रं ८ आग्नेयं ९ सौम्यं १० इति, चत्वारि वेदव्रतानि गोदानं केशान्तश्चेति द्वादश, पूर्वोक्तस्तद्भयेषु षोड़शत्वं।

सूच्यादिकञ्च गुरवे दत्त्वा मन्त्रमिमं जपेत्।
नमो हिरण्यगर्भाय विश्वगर्भाय ते नमः।

चराचरस्य जगतो गृहभूताय वै नमः॥

मन्त्रोऽहं जनितः पूर्व्वं मर्त्त्यधर्माद्विजोत्तमः।

त्वद्गर्भसंभवादेष दिव्यदेहो भवाम्यहं।

चतुर्भिः कलशैर्भूयस्ततस्ते द्विजपुङ्गवाः।

स्नानं कुर्य्युः प्रसन्नाश्च सर्व्वाभरणभूषिताः।

कलशैः कुण्डसमीपस्थितैरेव, स्नानं कुर्य्युर्यजमानस्येतिशेषः देवस्यत्वेतिमन्त्रेण स्थितस्य कनकासने।

अद्यजातस्य तेङ्गानि अभिषेक्ष्यामहे वयम्॥

दिव्येनानेन वपुषा चिरञ्जीव सुखीभव।

ततो हिरण्यगर्भं तं तेभ्यो दद्याद्विचक्षणः॥

अत्र दानवाक्यादिप्रयोगो द्रव्यविभागश्च ऋत्विगाचार्य्याणां-तुलापुरुषवद्वेदितव्यः।

ते पूज्याः सर्व्वभावेन बहवो वा तदाज्ञया।

तत्रोपकरणं सर्व्वं गुरवे विनिवेदयेत्॥

पादुको-पानह-छत्र-चामरा-सनभाजनम्।

ग्रामं वा विषयं वापि यच्चान्यदपि संभवेत्॥

विषयः, ग्रामसमूहः।

अन्यत्, रत्नादि।

अत्राप्यात्मालंकारं गुरवे दद्यात् ग्रामादयश्च दक्षिणात्वेनैव संबध्यते, प्रकृतो तथा दर्शनात्, ततः पूर्व्ववत् पुण्याह वाचने-कृते देवतापूजाविसर्जनादि विधेयं।

अथ हिरण्यगर्भविधि व्याख्यामः।

सर्व्वपापापनोदन उदगयनआपूर्य्यमाणे पक्षे श्वःपुण्ये नक्षत्रे

ऋत्विग्यजमानौ कृप्तश्मश्रुरोमनखौ स्यातां अथ कुलिक्-प्रागस्तं गमनादाश्वत्थावरण्या वादाय जायस्वाग्नेऽश्वत्थादिति द्वाभ्यां मथ्यमानमनुमन्त्रयते तृतीयया जातं चतुर्थ्योपसमादधाति शुचि दूरिशं परिधाप्य यथोक्तमाञ्जनाभ्यञ्जनानुलेपनं कारयित्वा वासोगन्धान् हिरण्यस्रजश्च आवध्याग्निमुपसमाधायालभ्याज्यं जुहुयात्, हिरण्यगर्भाय स्वाहा, ब्रह्मणे स्वाहा विष्णवे स्वाहा प्रजापतये स्वाहा परमेष्ठिने स्वाहा कस्मै स्वाहेति च श्रावयित्वा तैरेवापस्थाय अग्नेः प्रजातं परियद्धिरण्यं यदा बध्नन्निति हिरण्य स्रजमाग्रथ्य रत्नमुत्वा अग्नय इति चतसृभीरर्चा कृत्वा दर्भान् संस्तीर्याधःशय्यासनौ स्यातां श्वोभूते भिजिन्मुहूर्त्ते हिरण्मयं मण्डलाकृतिनाभिमात्रं पात्रमाधाय सापिधानं स्रुचाज्यस्थाल्युदकपात्राण्यामालङ्कारश्चेति हिरण्मयानि राजानं हिरण्यवतीभिः स्नापयित्वा हिरण्यकलसैस्तस्मिन्पात्रे पयोगणेन पयस्वासोभ्यां होमुचेन शान्तो तोयेन हिरण्यगर्भसूक्तेण पञ्चभिश्च नामभिः संपातानानीय सदस्याहृत्विजापयेद्राजा हिरण्यगर्भत्वमीप्सति तस्मै भगवन्तो मनुजानीषेति तैरनुज्ञातान्तु देहिवाजिन्निति द्वाभ्यां प्रवेशयेत् तयस्त्रिंशद्देवादृत्यपिधाय तमनुपिधाय त मनुशास्ति वाचं नियम्य प्रति संहृतेन्द्रियाणि विशेषेभ्यो मनसा च भगवन्तं हिरण्यगर्भं परमेष्टिनं ध्यायन्नास्तेति तथेति तत् प्रतिपद्यते सप्तदशमात्रान्तरमास्ते सप्तदशोवै प्रजापतिः प्रजापतेराहृतमित्युद्धरेद्वमेनमिति च तैरनुज्ञाप्य तमुद्धरेत् तथैव सदस्याननुज्ञाप्योद्धरेद्धिरण्येन चक्रेणेत्यपाहृत्य माते प्राणद्गत्युद्धरेदुद्धतं हिरण्यनाम्ना प्रतिमुञ्चयस्वामृत्युरित्युपस्थेत्संप-

श्यमानाइत्यवेक्षितावेक्षितो ब्राह्मणान् स्वस्तिवाच्य नमस्कुर्यात् हिरण्यगर्भायेत्येवमादिभिरेते वै हिरण्यगर्भस्य प्रीतमानास्तं ब्राह्मणाब्रूयुरुत्तिष्ठ हिरण्यगर्भानुगृहीतोऽसीत्यप्रतिरथेनेति कृत्वा-संस्थाप्य अप्सु ते राजावरुणइति वरुणमभिष्टयावभृथमुपेत्य स्नात्वा पवित्रैरभ्युच्यालंकृत्यादित्यमुपतिष्ठेत ।

हिरण्यं तव यद्गर्भो हिरण्यस्यापिगर्भजः ।
हिरण्यगर्भस्तस्मात्त्वं माम्पाहि महतो भयादिति ॥

सूर्य्यस्यावृतमिति, प्रदक्षिणमावृत्य ग्रहा नैामीति ग्रहान् प्रतिपद्य त्वमग्ने प्रमिनिरित्यग्निमुपस्थाप्योत्सृजेद्द्विजेभ्यः शत-सहस्रं दक्षिणा-ग्रामवरञ्च स्रुक्-स्रुवा-ज्यस्थाण्यु-दकपात्रा-त्माल-ङ्कारं चेद्दद्यात्सदस्येभ्यो यावद्वा तुष्येरंस्तावद्वा देयं यथा काम-मन्नेन ब्राह्मणान् परिचरेत् ।

तत्रश्लोकाः ।

वेदानां पारगा यत्र चतुर्णां ब्रह्मवित्तमाः ।
तुष्टा यस्याशिषो ब्रूयुस्तस्येज्या सकला भवेत् ॥
ब्राह्मणानां प्रसादेन सूर्य्यो दिवि विराजते ।
इन्द्रोप्येषां प्रसादेन देवानतिविराजति ॥
हिरण्यदानस्य फलममृतत्वमिति श्रुतिः ।
श्रूयतेह्यस्य दाता यः सोमृतत्वं समश्नुते ॥
य इक्ष्वाकुप्रभृतयः पुरा राजर्षयोऽमलाः ।
दत्त्वा हिरण्यं विप्रेभ्यो ज्योतिर्भूत्वा दिवि स्थिताः ॥
य एवं संस्कृतो राजा विधिना ब्रह्मवादिना ।
प्रजामामिह साम्राज्यं ज्यैष्ठ्यं श्रैष्ठ्यं स गच्छति ॥

अमुष्मिन् ब्रह्मणा सार्द्धमानन्दमनुभूय वै ।
ज्योतिर्मयात् सत्यलोकान्नचेहावर्त्तते पुनः ॥

इति ब्राह्मणम् ।

मत्स्यपुराणे । अनेन विधिना यस्तु पुण्येऽह्नि विनिवेदयेत्
हिरण्यगर्भदानं स ब्रह्मलोके विधीयते ॥
पुरेषु लोकपालानां प्रतिमन्वन्तरं वसेत् ।
कल्पकोटिशतं यावद्ब्रह्मलोके महीयते ॥
कलिकलुषविमुक्तः पूजितः सिध्यसाध्यै*
रमरचरममालावीज्यमानोऽप्सरोभिः ।
पितृशतमथबन्धून् पुत्र-पौत्र-प्रपौत्रान्
अपि नरकनिमग्नांस्तारयेदेक एव ॥
इति पठति य इत्थं यः शृणोतीह सम्यक्
मधुपुररिपुलोके पूज्यते सोपि सिद्धैः
मतिमपि च जनानां यो ददाति प्रियार्थं
विबुधपतिजनानां नायकः स्यादमोघम् ॥
इति हिरण्यगर्भदानविधिः ॥

श्रीभगवान् उवाच ।

दानधर्मेषु यद्दानं दानधर्मोत्तरं शृणु ।
यत् कृत्वा पातकैः सर्वैर्मुच्यन्ते जन्तवः सदा ॥
योददाति च विप्रेभ्यस्तस्य स्वर्गोप्यदूरतः ।
हिरण्यगर्भं तं कुर्याद्धिरण्याष्टतुलाकृतं ॥
सप्तषट्पञ्चचत्वारि तुलाया वृद्धिरीरितः ।

---

* संघैरिति पाठान्तरं ।

शातकुम्भमयं कुण्डं कृत्वारत्निद्वयोन्नतम् ॥
द्व्यङ्गुलं वर्त्तुलं भद्रं नानारत्नैरलंकृतम्।
शुचिदेशे समे देशे सौवर्णं पङ्कजं लिखेत् ॥
चतुरस्रं चतुर्हस्तं चतुर्द्वारञ्च मण्डलम्।
मध्ये पद्मं समालिख्य रत्नकीर्णन्तु कारयेत् ॥
पद्मे संस्थापितं* कुण्डं हेमगर्भन्तु संज्ञितम्।
प्रादेशद्वयविस्तीर्णं चतुःप्रादेशमायतम् ॥
चारु कृत्वा तु सौवर्णं नाभिं कनकसूत्रितम्।
कृत्वा हस्तप्रमाणन्तु कुण्डस्याभ्यन्तरे यदि ॥
तत् कुण्डं पूरयेत् क्षीरैर्गन्ध-पुष्पैः समर्च्चयेत् ॥
कुण्डस्योपरिपार्श्वे† च ब्रह्म-विष्णु-महेश्वरान्।
सूर्यं ग्रहांश्च सौवर्णान् लोकपालांश्च कारयेत् ॥
शुचिः स्नात्वा नरः सम्यक् पूजयेत् सर्व्वदेवताः।
स्थण्डिलं तत्र कुर्व्वीत होमयेयुर्द्विजातयः ॥
क्रतुसंवेशनं कृत्वा तत् कुण्डं परिवेष्टयेत्।
वासोभिः परितः सर्व्वं यावत्कर्म समाप्यते ॥
गर्भाधानं पुंसवनं सीमन्तोन्नयनादि च।
कृत्वा पश्चाद्विनिष्क्रम्य तत्कुण्डान्तरसंवृतम् ॥
नाभिं नाभिप्रदेशे च कण्ठे कनकसूत्रिकाम्।
गृहीत्वा कर्षयेद्विप्रान् दाता स्वर्गान्मर्त्यां व्रजेत् ॥
शङ्खतूर्य्यनिनादोच्चैरुत्थित्यार्कमुदीरयेत्।

* संस्थाप्येति क्वचित् पाठः।

† कण्डस्योत्तरदिक्पार्श्वे इति वा पाठः

नमो हिरण्यगर्भाय मन्त्रमेतमुदाहरेत्॥
यावत् षोडशसंस्कारान् जातकर्मादि कारयेत्।
यथोक्तं वैदिकं कर्म्म मन्त्रवित् कारयेद्दिजान्॥
तत्चीरपायसं सिद्धं भोजयेहत्विजस्तदा।
तदेवात्मनि युञ्जीयात् भक्तशेषं द्विजोत्तमैः॥
हिरण्यगर्भचाकृष्य नाभिं सौवर्णिकान्वितम्।
तत् सर्वं ब्राह्मणे दद्यादिष्टापूर्त्तानि ऋत्विजे।
नरो वा यदि वा नारी एवं ब्रह्मात्मसंभवम्॥
यःकारोति महापुण्यं तस्यापि शृणु यत्फलम्।
मृतो ब्रह्मत्वमाप्नोति हंसयानं रविप्रभम्।
ब्रह्मकन्याभिः संसेव्यो ब्रह्मलोकं स गच्छति॥
ब्रह्म वत् क्रीडते तत्र ब्रह्मसंवत्सरत्रयम्।
ब्रह्मलोकावतीर्णश्च इन्द्रलोके महीयते॥
इन्द्रलोके रमित्वा तु वर्षकोटिशतत्रयम्।
ब्रह्मणस्तु पुरे रम्ये क्रीड़ित्वाथ तदोपमम्॥
विद्याधरोथ गन्धर्वो वर्षकोटिं पृथक् पृथक्।
इह लोके तु संप्राप्ते राजराजोत्तमः प्रभुः॥
शतयोजनविस्तीर्णे त्रिगुणे वाथ मण्डले।
रूप-सौभाग्यवान् वीरो जायते हि न संशयः॥
यावद्दर्षशतं राज्यं सुसम्पन्नमकण्टकम्।
तेजस्वी सुखभाग्नित्यं धर्मवान् विजितेन्द्रियः॥

इति विष्णुधर्मोक्तोहिरण्यगर्भदानविधिः।

सनत्कुमार उवाच। तुलैका कथिताह्येषामाद्यामासाद्य रूपिणीं।

हिरण्यगर्भं वक्ष्यामि द्वितीयं सर्वसिद्धिदम्॥
अधःपात्रं सहस्रेण हिरण्येन विधीयते।
ऊर्द्धपात्रं तदर्द्धेन सुखसंवेशमात्रकम्॥
फलामेवं शुभां कुर्यात् सर्वालङ्कार संयुतां।
अधः पात्रे स्मरेद्दिव्यां गुणत्रयसमन्विताम्॥
चतुर्व्विंशतिकान्देवीं ब्रह्म-विष्णु-शिवरूपिणीम्॥
ऊर्द्धपात्रे गुणातीते षट्त्रिंशकमुमापतिम्।
आत्मानं पुरुषं ध्यायेत् पञ्चविंशकमव्ययम्॥
पूर्वोक्तस्थानमध्ये तु वेदिकोपरिमण्डले।
शालिमध्ये क्षिपेन्नीत्वा नववस्त्रैश्च वेष्टितम्॥
माषकल्केन चालिप्य पञ्चगव्येन पूरयेत्।
ईशानाद्यैर्यथान्यायं पञ्चभिः परिपूजयेत्।
पूर्व्ववच्चैव पूजा च होमश्चैव यथाक्रमम्॥

आद्या, हिरण्यगर्भादिदानानां प्रकृतिभूता-तुला पुरुषोक्त क्रिया, अतः सामान्यरूपिणी, हिरण्यगर्भादौ प्रातिस्विकविशेषैः सह तुलापुरुषोक्त मण्डपादिकृत्विग्दक्षिणान्तं सामान्यं समुच्चयमित्यर्थः, सहस्रेण कर्षणमित्यवधेयं।

कुर्यात् सहस्रकर्षेण अधः पात्रं हिरण्यतः।
तदर्द्धेनोर्द्ध पात्रन्तु सहस्रेण द्वयन्तु वा॥
द्विपादं वा त्रिपादं वा सपादं सार्द्धमेव वा।
द्विगुणं वा प्रकर्त्तव्यं यथा लाभन्तु वा भवेत्।
सवृन्तजं वा तं कृत्वा स्वर्णपट्टैस्तु वेष्टयेत्

इति कालिकोक्तिः।

एतच्च स्वल्पदानाधिकारिविषयम्।

आढ्यविषये तु तुलातन्त्रोक्तं यथा।

चत्वारिंशत् षड़धिकैः सहस्रैर्गर्भमुत्तमम्।
पञ्चविंशसहस्रैस्तु मध्यमं समुदाहृतम्।
तद्वादशसहस्रैस्तु सुवर्णैरधमं भवेदिति॥

देवीमुमापतिञ्च स्मरेदिति, तयोः प्रतिमां कृत्वेत्यवधेयं।

वातुलेपि।

अधः पात्रे तु कर्त्तव्यमुमारूपं प्रसन्नकम्।
ऊर्द्धपात्रे तु कर्त्तव्यो महेशस्य तु विग्रहः॥
अथवा शक्तिभागे तु लक्ष्मीं वै तत्र कारयेत्।
ऊर्द्धपात्रे तु कर्त्तव्यं विष्णुरूपं परं शुभम्।

एतेषां लक्षणं, ब्रह्माण्डदाने वक्ष्यते। आत्मानमिति, यजमान मीश्वरेण निषिक्तं गर्भस्थं पुरुषत्वेन स्मरेत् ततोमण्डलान्तस्थपद्म कर्णिकामध्ये धान्यराशौ हिरण्यगर्भसंज्ञां फलाञ्चनिक्षिपेत्।

माषकल्कः अयःफलकसम्बन्धीनीरन्ध्रतार्थः।

पञ्चगव्य पूरणमुक्तं वातुले।

गोमूत्रं द्विगुणं क्षीरात् क्षीरार्द्धं दधि कथ्यते।
तदर्द्धं गोमयं ज्ञेयं गोमयार्द्धं घृतं भवेत्॥
हिं कृणुतीत्य चा तत्र गोमूत्रन्तु विनिक्षिपेत्।
शकमयमित्यृचा तत्र गोमयं परिकल्पयेत्॥
आप्यायस्वेति मन्त्रेण क्षीरं तत्र प्रकल्पयेत्।
दधिक्राव्णेति मन्त्रेण दधि तत्र प्रयोजयेत्।
घृतंमिमिक्षे मन्त्रेण घृतं तत्र विलोड़येत्॥

एवमापूरयेत् यत्नात् जानुदघ्नन्तु देशिकः।
सम्यगापूरयेद्विद्वान् ब्रह्मजज्ञानकेन वै।
प्रविशेत् प्राङ्मुखो विद्वानायिश्यास्तु उदङ्मुख इति॥
ईशानादिमन्त्रांस्तु तैत्तिरीयकश्रुतौ॥

ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानां ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोधिपतिः ब्रह्माशिवो मेऽस्तु सदाशिवों सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमः, भवेभवे नाति भवे भजस्व मां भवोद्भवाय नमः, वामदेवाय नमः, ज्येष्ठाय नमः, श्रेष्ठाय नमः, रुद्राय नमः, कालाय नमः, कलविकरणाय नमः, बलाय नमः, बलविकरणाय नमः, बलप्रमथनाय नमः, सर्वभूतदमनाय नमः, मनोन्मनाय नमः अघोरेभ्योथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यश्च सर्वतः सर्व्वसर्व्वदेवेभ्यो नमस्तेस्तु रुद्ररूपेभ्यः, तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नोरुद्रः प्रचोदयादिति, पूर्व्ववदिति लिङ्गपुराणोक्ततुलापुरुषदानवदित्यर्थः

गौरीगायत्रिकां जप्त्वा प्रविशेत् प्राङ्मुखः स्वयं।
सुभगायै विद्महे यशोमालिन्यै धीमहि
तन्नो गौरी प्रचोदयादिति गौरीगायत्री।
विधिनैवततः पश्चाद्गर्भाधानादिकाः क्रियाः।
कृत्वा षोडशमार्गेण विधिना ब्राह्मणोत्तमः॥
दूर्व्वारसेन कर्त्तव्यं सेचनं दक्षिणे पुटे।
उदुम्बरफलैः सार्द्धमेकविंशत्कुशांस्तदा॥
शक्त्याथ तावदेवात्र कुर्य्यात् सीमन्तकर्म्मणि।
उद्वाहे कन्यकां कृत्वा त्रिंशन्निष्केन शोभनम्॥
अलंकृत्य तथा हुत्वा शिवाय विनिवेदयेत्।

अन्नप्राशनके विद्वान् भोजयेत् पायसादिभिः।
एवं विश्वजिदन्ताश्च गर्भाधानादिकाः क्रियाः॥
शक्तिवीजेन कर्त्तव्या ब्राह्मणैर्वेदपारगैः।
शेषं सर्व्वञ्च विधिना तुलादानवदाचरेत्॥

विधिनेत्यादि, गर्भाधान-पुंसवन-सीमन्तोन्नयन-जातकर्म्म-नामकरणोप-निष्क्रमणा-न्नप्राशन-चौडोपनयन-वेदव्रतचतुष्क-गोदान-समावर्त्तन-विवाहाख्याः षोड़शक्रियाः, तत्र, निषेकपुंसवने यजमानस्य मातापितृस्थानीयमिथुनमानीय तत्र पुंसा स्त्रिया वा च उपरिपात्रनासारन्ध्रस्थापनीये छिद्रद्वये, दक्षिणपुटे दूर्व्वारसं सेचयेदाचार्य्यः

कर्त्तारं भार्य्यया युक्तं सर्व्वालङ्कारशोभितम्।
आनीय कुर्य्यात् तत्स्थस्य गर्भाधानादिकाः क्रियाः।
भार्य्यादक्षपुटे दूर्वारससेचनमाचरेदिति कामिकोक्तिः॥
प्रजावज्जीवपुत्राभ्यां सेचनं तत आचरेत्।
दूर्वारसेन कर्त्तव्यं व्याहृत्या च घृताहुतिः॥
इति वातुलोक्तेश्च।

उदुम्बरफलैः सह एकविंशत् कुशान् हृदाहुल्लेखाख्येन शक्तिवीजेन सीमन्तकर्म्म कुर्य्यात्।

एकविंशति संख्यातानुदुम्बरफलान्वितान्।
कुशानानीय शक्त्याथ कुर्य्यात् सीमन्त कर्म्म चेति कामिकोक्तिः॥

निषेकादित्रयञ्च, गर्भान्तःस्थे कार्य्यं, निष्क्रान्ते त्वितराणीति, एवमेताः षोड़शक्रियाः, तदुपरि पञ्चमहायज्ञधर्म्मा अर्य्यमान्ताश्चतुर्विंशतिः, एवं चत्वारिंशत्संस्कारकर्माणि गौतमादिस्मृतानि

विश्वजिद्यागसज्ञितानि कार्य्याणि इत्यर्थः, शेषमिति, ऋत्विगाचार्य्यदक्षिणादिकं सर्व्वेभ्यो हिरण्यगर्भद्रव्यदानं तदनुमत्या चान्येभ्योपि श्रोत्रियादिभ्योदानमिति लिङ्गपुराणोक्ततुलापुरुषदानवदनुविधेयम् ॥

इति श्रीलिङ्गपुराणोक्तो हिरण्यगर्भदानविधिः।

अथ ब्रह्माण्डाभिधानं तृतीयं महादानं लिख्यते।

मत्स्यपुराणे। अथातः संप्रवक्ष्यामि ब्रह्माण्डं विधिपूर्व्वकम्।

यच्छ्रेष्ठं सर्वभूतानां महापातकनाशनम् ॥

पुण्यं दिनमथासाद्य तुलापुरुषदानवत्।

ऋत्विग्मण्डपसम्भारभूषणाच्छादनादिकम् ॥

लोकेशावाहनं तद्वदधिवासनकं तथा ॥

तुलापुरुषदानवदिति, काल-देश-वृद्धिश्राद्ध-शिवादिपूजा-ब्राह्मणवाचन गुरु-ऋत्विग्वरण-मधुपर्कदान-कुण्ड-मण्डप-वेदिकासम्भार-लोकेशावाहनाधिवासनादि सर्व्वं मत्स्यपुराणोक्ततुलापुरुषदानविहितं वेदितव्यमित्यर्थः ॥

कुर्य्याद्विंशत्पलादूर्द्ध्वमासहस्राच्च शक्तितः।

शकलद्वयसंयुक्तं ब्रह्माण्डं काञ्चनं बुधः॥

शकलद्वयं, खण्डद्वयं।

तल्लक्षणन्तु ब्रह्माण्डपुराणे

कुम्भच्छाया भवेद्यादृक् प्रतीच्यां दिशि चन्द्रमाः।

उदितः शुक्लपक्षादौ वपुरण्डस्य तादृशमिति ॥

कुम्भछायाइति, कुम्भच्छाया ग्रीवाहीनकुम्भादित्यवधेयम्।

दिग्गजाष्टकसंयुक्तं षडदाङ्गसमन्वितम्।

लोकपालाष्टकोपेतं मध्यस्थितचतुर्मुखम्॥
शिवाच्युतार्कशिखरमुमालक्ष्मीसमन्वितम्।
वस्वादित्यमरुद्गर्भं महारत्नसमन्वितम्॥

अथैतेषां दिग्गजप्रभृतीनां क्रमेण लक्षणान्युच्यन्ते।

आदित्यपुराणे। शुभ्राभ्रश्च चतुर्दंष्ट्रः श्रीमानैरावतो गजः।
पुष्पदन्तो बृहत्मान्नः षड्दन्तः पुष्पदन्तवान्।
सामान्यगजरूपेण शेषा दिक्करिणः स्मृताः॥

तन्नामानि शास्त्रान्तरे।

ऐरावतः पुण्डरीको वामनः कुमुदोऽञ्जनः।
पुष्पदन्तः सार्व्वभौमः सुप्रतीकश्च दिग्गजाः।

वेदाङ्गानि स्कन्दपुराणे।

शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं ज्योतिषाञ्चितिः*।
छन्दश्चेति षडेतानि वेदाङ्गानि प्रचक्षते॥
मूर्त्तानि ब्रह्मणो लोके साक्षसूत्राणि तानि तु।
द्विजातिषु शुभास्यानि वामे दधति कुण्डिकाम्॥

तानि च पश्चिमदिशि वेदसन्निधौ निवेशनीयानि। दिग्विशेषानाम्नानात् प्रधानं नीयमानं हि तत्राङ्गान्यपकर्षतीति-न्यायात्, वक्ष्यते च, पश्चिमे चतुरोवेदामिति।

लोकपालरूपाण्याह विश्वकर्मा।

चतुर्दन्तो गजारूढ़ो वज्रपाणिः पुरन्दरः।
प्राचीपतिः प्रकर्त्तव्यो नानाभरणभूषितः॥

* गतिरिति पाठान्तरम्।

पिङ्गभ्रू-श्मश्रु-केशा-क्षः पीनाङ्गजठरोरुणः।
छागस्थः साक्षसूत्रश्च सप्तार्च्चिः शक्तिधारकः॥
ईषत्पीनो यमः कार्य्यो दण्डहस्तो विजानना।
रक्तदृक् पाशधृक् क्रुद्धो निर्ऋतिर्व्विकृताननः।
पुंस्थितः खड्गहस्तश्च भूतवान् राक्षसावृतः॥
वरुणः पाशभृत् सौम्यः प्रतीच्यां मकराश्रयः।
धावन् हरिणपृष्ठस्थो ध्वजधारी समीरणः।
दशाश्वरथगः सोमो गदापाणिर्वरप्रदः॥
शशकवाह इत्यागमान्तरं।
पूर्व्वोत्तरे त्रिनेत्रश्च वृषभस्थः त्रिशूलभृत्।
कपालपाणिश्चन्द्रार्द्धभूषणः परमेश्वरः॥
चतुर्मुखरूपन्तु विष्णुधर्म्मोत्तरात्।
पद्मपत्रासनस्थश्च ब्रह्मा कार्य्यश्चतुर्मुखः।
अक्षमालास्रजं विभ्रत् पुस्तकञ्च कमण्डलुम्।
वामः कृष्णाजिनं तस्य पार्श्वे हंसस्तथैव च।
शिवलक्षणमुक्तं वायुपुराणे।
पञ्चवक्त्रो वृषारूढः प्रतिवक्त्रं त्रिलोचनः।
कपाल-शूल-खट्वाङ्गी चन्द्रमौलिः सदाशिवः॥
विष्णुलक्षणमुक्तं तुलापुरुषदाने।
सूर्य्यलक्षणमुक्तं विष्णुधर्म्मोत्तरे।
रविःकार्य्यः शुभश्मश्रुः सिन्दूरारुणसुप्रभः।
पद्मासनः पद्मकरो भूषितो रशनाधरः॥
उमालक्ष्मीसमन्वितमित्यत्र, शिवाच्युतयोः

सन्निहिते उमालक्ष्म्यौ विधेयौ ।
उमालक्षणमुक्तं देवीपुराणे ।
गौरीं शङ्खेन्दुवर्णाभां शर्वरीशनिषेविताम् ।
वृत्तपद्मासनासीनां साक्षसूत्रकमण्डलुम् ॥
वरदोद्यतरूपाढ्यां सर्व्वसाल्यफलप्रियाम् ।
वरदोद्यतरूपाढ्यां, वरदाभयपाणिकामित्यर्थः ॥
लक्ष्मीलक्षणमुक्तं पञ्चरात्रे ।
पद्मासनस्थां कुर्व्वीत श्रियं त्रैलोक्यमातरम् ।
गौरवर्णां सुरूपाञ्च सर्व्वालङ्कारभूषितां ॥
रौक्मपद्मकरव्यग्रा*म्वरदां दक्षिणेन तु ।
वस्वादिरूपाणि, नारदीये,
प्रसन्नवदनाः सौम्या वरदाः शक्तिपाणयः ।
पद्मासनस्था द्विभुजाः कर्त्तव्या वसवः सदा ॥
पद्मासनस्था द्विभुजाः पद्मगर्भान्तकान्तयः ।
करादिस्कन्धपर्य्यन्तनालपङ्कजधारिणः ॥
अधःसंस्थितमेषादिराशयः प्रावृताङ्गिकाः ।
इन्द्राद्या द्वादशादित्यास्तेजोमण्डलमध्यगाः ॥
तथा । .वायुतुल्येन रूपेण मरुतोनाम देवताः ।

कर्त्तव्या इति शेषः, वस्वादिनामानि, तुलापुरुषोक्तानि वेदितव्यानि, महारत्नसमन्वितमिति, महारत्नानि परिभाषायामुक्तानि, अनन्तमिथुनान्वितमिति क्वचित्पाठः ।

* रौक्म पद्म व्यग्रकरामिति वा पाठः ।

फणासप्तान्वितोनन्तः पृथ्वी स्त्रीरूपधारिणीत्यनन्तमिथुनम्।

अथ प्रकृतमुच्यते।

वितस्तेरङ्गुलशतं यावदायामविस्तरम्।
कौशेयवस्त्रसम्वीतं तिलद्रोणोपरि न्यसेत्।
तथाष्टादशधान्यानि समन्तात्परिकल्पयेत्॥

वितस्तेरङ्गुलशतमिति, द्वादशाङ्गुलमारभ्याङ्गुलशतं यावच्छक्त्यनुसारेण कार्य्यमित्यर्थः। द्रोणमानमष्टादशधान्यानि च परिभाषायां द्रष्टव्यानि, सच तिलद्रोणो वेदिकायां लिखितचक्रस्योपरि स्थापनीयः।

पूर्व्वेणानन्तशयनं प्रद्युम्नं पूर्वदक्षिणे।
प्रकृतिर्द्दक्षिणे देशे संकर्षणमतः परम्॥
पश्चिमे चतुरोवेदाननिरुद्धमतः परम्।
अग्निमुत्तरतो हैमं वासुदेवमतः परम्॥
समन्ताद्गुणपीठस्थानर्च्चयेत् काञ्चनान् बुधः।
स्थापयेद्वस्त्रसंवीतान् पूर्णकुम्भान् दशैव तु॥

पूर्वेणेत्यादि, ब्रह्माण्डात् पूर्व्वदेशे अनन्तशयनं शेषशायिनं गुणपीठे स्थापयेत्, तन्मूर्त्तिलक्षणं

विष्णुधर्मोत्तरात्।

देवदेवस्य कर्त्तव्यः शेषसुप्तश्चतुर्भुजः।
एकपादोस्य कर्त्तव्यो लक्ष्म्युत्सङ्गगतः प्रभुः॥
तथापरस्य कर्त्तव्यः शेषभोगाङ्कसंस्थितः।
एकोभुजोऽस्य कार्त्तव्यस्तत्र जानौ प्रसारितः॥
कर्त्तव्यो नाभिदेशस्थस्तथा तस्यापर करः।

तथैवान्यःकरः कार्यो देवस्य तु शिरोधरः ॥
सन्तानमञ्जरीधारी तथावास्य करः परः।
नाभिसम्भूतकमले सुखासीनः पितामहः ॥
नाललग्नौ तु कर्त्तव्यौ पद्मस्थौ मधुकैटभौ।
शंख-चक्र-गदादीनि मूर्त्तानि परितो न्यसेदिति।

प्रद्युम्नलक्षणं पञ्चरात्रादिषु।

दक्षिणोर्द्धकरे पद्मं दद्याच्छंखमधः करे।
चक्रमूर्द्धं ततो वामे गदां दद्यात् तथा द्विज।
चापेषुधृग्वा प्रद्युम्नो रूपवान् विश्वमोहक इति ॥

अत्र यद्यपि प्रकृतेरव्यक्तरूपतया विधानमशक्यं तथापि लक्ष्म्यादिशब्दव्यपदेश्यं सुकरमस्ति तद्रूपमित्यतस्तदन्यतमरूपनिर्माणमेव न्याय्यं।

तदुक्तं मार्कण्डेयपुराणे।

सर्वस्याद्या महालक्ष्मीस्त्रिगुणा परमेश्वरी।
मातुलिङ्ग-गदा-खेटं पानपात्रञ्च बिभ्रती।
नागयोनिञ्च लिङ्गञ्च बिभ्रती नृप मूर्द्धनीति ॥

संकर्षणरूपम्-

विष्णुधर्मोत्तरे। वासुदेवस्य रूपेण कार्य्यः संकर्षणः प्रभुः
स तु शुक्लवपुः कार्य्यो नीलवासा यदूत्तमः।
गदास्थाने च मुशलञ्चक्रस्थाने च लाङ्गलमिति ॥

वेदमूर्त्तयो भूतघटे वक्ष्यन्ते। अनिरुद्धरूपं नारदीये।
कृष्णं चतुर्भुजं दक्षे शरं खड्गं तदुत्तरे।
धनुः खेटधरं वीरमनिरुद्धं प्रचक्षते ॥

अग्निलक्षणमुक्तं।

वासुदेवरूपमपि नारदीये।

वासुदेवः शिवः शान्तः सिताजश्च चतुर्भुजः।
योगमूर्द्धोर्ड्डशङ्खश्च हृद्देशार्पितहस्तकः।
धारयेदुत्तरे चक्रं करे वै दक्षिणे गदामिति॥

एते च देवताविशेषा, ब्रह्माण्डनिर्माणवत्कृ ष्णसुवर्णात् पृथक् सुवर्णेनैव घटनीया ब्रह्माण्डस्य किल विंशतिपलात्प्रभृति पल-सहस्रावधिरिह नियमः, पुराणेषु दृश्यते ततोवक्ष्यमाणकाञ्चने तस्मिन् न्यूनसंख्यत्वाद्ययावद्विहितत्वमापद्यते नच दिग्गजाष्टक-संयुक्तं लोकपालोपेतमित्यादिना एक एव तावद्भिरंगैरङ्गी निष्पा-द्यत इति ब्रह्माण्डवत् कृ ष्णसुवर्णेनैव दिग्गजादिप्रतिमानिर्मितौ न कश्चिद्बाधइति वाच्यं, काञ्च नान् कारयेदिति पुनः काञ्चनोप-देशानार्थक्यापत्तेः अश्रूयमाण परिमाणानां प्रतिमानामङ्गुल-पर्वप्रभृतिवितस्तिपर्यन्तं यथाशक्ति परिमाणं कल्पनीयं।

पूर्णकुम्भान् स्थापयेदित्यत्र समतादिति योज्यं।

दशैव धेनवो देया सहेमाम्बरदोहनाः।
पादुकोपानहच्छत्रचामरासनदर्पणैः॥
भक्ष-भोज्या-न्नदीपेक्षु-फल-माल्यानुलेपनैः।
होमाधिवासनान्ते च स्थापितौ वेदपुङ्गवैः॥
इत्थमुच्चारयेन्मन्त्रं त्रिःकृत्वाथ प्रदक्षिणम्।

सहेमाम्बरदोहनाइति, हेमशृंग्यः ताम्रदोहनाः सवस्त्राः पार्श्वतो दक्षिणार्थमुपकल्पनीयाः तत्राचार्य्याय द्वे ऋत्विग्भोऽन्याः

संप्रदेया, जापकादीनां अन्यैव यथाशक्ति दक्षिणेति, भविष्योत्तरे तु श्रेयं निष्कशतं पार्थित्यादिना सुवर्णमेव दक्षिणार्थमुपकल्पनीयमित्युक्तं, आद्याधिवासनदिनादन्येद्युरग्निकुण्डेषु ऋत्विगुपवेशनादिकर्मशेषसमाप्तौ तुलापुरुषदानवद्विहितायां पूर्व्ववदेवस्नापितः शुक्लमाल्यां बरधरो गृहीतकुसुमाञ्जलिर्यजमानो ब्रह्माण्डं त्रिःप्रदक्षिणीकृत्यमं त्रमुच्चारयेत् ।

मन्त्रः । नमोस्तु विश्वेश्वरविश्वधामजगत्सवित्रे भगवन्नमस्ते ।
सप्ताधिलोकामरभूतलेश गर्भेण सार्द्धं वितराभिरक्षां ॥
ये दुःखितास्ते सुखिनो भवन्तु प्रयान्तु पापानि चराचराणां ।
त्वद्दानशस्त्राहतपातकानां ब्रह्माण्डदोषाः प्रलयं व्रजन्तु ॥
एवं प्रणम्यामरविश्वगर्भं दद्याद्द्विजेभ्योदशधा विभज्य ।
भागद्वयं तत्र गुरोः प्रकल्प्य समम्भजेच्छेषमतः क्रमेण ॥

दानवाक्यं तुलापुरुषवद्देदितव्यं तच्च दशधा विभज्य गुरोर्भागद्वयं प्रकल्प्य अवशिष्टाष्टभागानामेकैकं भागं त्रिधा विभज्य चतुर्विंशतिसंख्येभ्य ऋत्विगादिभ्यः समन्दद्यात्, तदनुज्ञयान्येभ्योपि ब्राह्मणेभ्योदद्यात् ।

स्वल्पहोमं गुरुरेक एव कुर्य्यादथैकाग्निविधानयुक्त्या
स एव संपूज्यतमोऽल्पवित्तैर्यथोक्तवस्त्राभरणादिकेन ॥

विंशतिपलादारभ्यपलसहस्रावधिद्रव्ये

ब्रह्माण्डे सहस्रतदर्द्धादित्युक्तममध्यमादित्रैविध्यकल्पनायां कनीयोभागस्याल्पत्वमवधेयं, विंशतिपलनिर्मितस्यैवाल्पत्वमित्येके, उक्तं त्रिंशतिपलादर्वाक् यथाशक्ति विधाने स्वल्पत्वमवगन्तव्यमिति केचित्, एकाग्निविधानं एकस्मिन्नेव कुण्डे होमकरणम्,

कुण्डमपि वरुणदिग्भागस्थितं वृत्ताकारञ्च कार्य्यं, तदेतत्परिभाषायामुपपादितं, अथ पुण्याहवाचने कृते देवतावेदीसमीपं गत्वा पूर्ववद्यजमानेन देवतापूजायां विहितायामाचार्य्यो विसर्जनं विदध्यात्।

इत्थं य एतदखिलं पुरुषोऽत्र कुर्य्या-
द्ब्रह्माण्डदानमधिगम्य महद्विमानं।
निर्धूतकल्मषविशुद्धतनुर्मुरारे-
रानन्दकृत् पदमुपैति सहाप्सरोभिः॥
सन्तारयेत् पितृपितामहपुत्रपौत्र
बन्धु-प्रिया-तिथि-कलत्र-गताष्टकं यः।
ब्रह्माण्डदानशकलीकृतपातकौघ-
मानन्दयेच्च जननीकुलमप्यशेषं॥
इति पठति शृणोति वा य एत-
त्सुरभवनेषु गृहेषु धार्मिकाणां।
मतिमपि च ददाति मोदते सा
मरपति भवने सहाप्सरोभिः॥

इति मत्स्यपुराणोक्तो ब्रह्माण्डदानविधिः।

राजोवाच।

विधिं ब्रह्माण्डदानस्य कृत्वायं मोक्षभाग्भवेत्।
कालं देशं द्विजन्तीर्थं सर्व्वमेतद्वदस्व मे॥
कृतेन येन सर्व्वस्य फलभागी भवाम्यहं।
कुत्सितस्यास्य भावस्य मोक्षःस्यादचिराच्च मे॥

वशिष्ठ उवाच ।

एवं श्रुत्वा ततो राजन् पुरोधास्तस्य तं द्विजः ।
ब्रह्माण्डं कारयामास सौवर्णं सर्व्वधातुभिः ॥
पीठं निष्कसहस्रेण पद्मन्तत्र प्रकल्पयेत् ।
तत्र ब्रह्मा तस्य मध्ये पद्मरागैरलङ्कृतः ॥
सावित्र्या चैव गायत्र्या ऋषिभिर्मुनिभिः सह ।
नारदाद्यैःसुतैः सर्वैरिन्द्राद्यैश्च सुरैस्तथा ॥
सौवर्णविग्रहाः सर्वे ब्रह्मणस्तु पुरःसराः ।
वाराहरूपो भगवान् लक्ष्म्या सह सनातनः ॥
नीलान्मरकतांश्चैव भूषायान्तस्य कारयेत् ।
रजतस्य विशुद्धस्य देहं रुद्रस्य कारयेत् ॥
यो मौक्तिकैः*स्तस्य शोभाङ्कारयेदत्र बुद्धिमान् ।
मौक्तिकैश्चापि सोमस्य शोभां वज्रैर्दिवाकरैः ॥

सावित्रीगायत्र्यौ तु, ब्रह्मणः पार्श्वभागे स्थापनीयौ ।

तदाह नारदः ।

सावित्री दक्षिणे पार्श्वे गायत्री नाम वामतः ।
विलोकयन्त्यौ ब्रह्माणं साक्षसूत्रकमण्डलुम ॥

ऋषयः सप्त, गौतमाद्याः ।

तदुक्तमादित्यपुराणे ।

गौतमश्च भरद्वाजो विश्वामित्रश्च काश्यपः ।
जमदग्निर्वशिष्ठोऽत्रिः सप्त वैवस्वतेऽन्तरे ॥

* गोमेदकैरिति पाठान्तरं ।

सप्तर्षिलक्षणमाह।

यमः। सप्तर्षयस्तु जटिलाः कमण्डल्वक्षसूत्रिणः।
ध्याननिष्ठा वशिष्ठस्तु कार्य्यो भार्य्यासमन्वितः॥
'मुनयो' वानप्रस्थाः, नारदाद्यैरिति तेषां विशेषणं।

तानाहमनुः।

अहं प्रजाः सिसृक्षुस्तु तपस्तप्त्वा सुदुस्तरम्।
पतीन् प्रजानामसृजं महर्षीनादितोदश॥
मरीचिमत्र्यङ्गिरसं पुलस्त्यं पुलहं क्रतुं।
प्रचेतसं वशिष्ठञ्च भृगुन्नारदमेव च॥

तल्लक्षणमाह विश्वकर्म्मा।

जटिलाः श्मश्रुलाः शान्ता दशाधमनिसन्तताः।
कुशाक्षधराः कार्य्या मुनयो द्विभुजाः सदा।
तेषु सव्यभुजामूलश्लिष्टधीरस्तु नारदः॥
कर्पूरगौरदेहश्च साक्षसूत्रकमण्डलुः।

इन्द्रादिरूपाण्यपि प्रागभिहितानि।

वाराहरूपं विष्णुधर्मोत्तरे।

वाराहरूपः कार्य्यस्तु शेषोपरिगतः प्रभुः।
शेषश्चतुर्भुजः कार्य्यश्चारुरत्नफणान्वितः॥
कर्त्तव्यौ शोरमुशलौ करयोस्तस्य यादव।
सर्परूपश्च कर्त्तव्यस्तथैव रचिताञ्जलिः॥
आलीढस्थानसंस्थानस्तत्पृष्ठे भगवान् भवेत्।
वामारत्निगता तस्य योषिद्रूपा वसुन्धरा॥
नमस्कारपरा तस्य कर्त्तव्या द्विभुजा शुभा।

यस्मिन् भुजे धरा देवी तत्र शङ्खः करे भवेत् ॥
अन्ये तस्य कराः कार्य्याः पद्म-चक्र-गदा-धराः ।
पद्मासनस्थां कुर्व्वीत श्रियं त्रैलोक्य मातरम् ॥
गौरवर्णां सुरूपाञ्च सर्व्वालङ्कारभूषिताम् ।
रौक्मपद्मकरव्यग्रां वरदां दक्षिणेन तु ॥

रुद्ररूपं प्रागभितं, ग्रहलक्षणानि तद्वर्णाश्च नवग्रहदाने वक्ष्यन्ते, 'सर्व्ववर्णानि, ग्रहसमानवर्णानि, रत्नानि भूषणार्थं दापयेदित्यर्थः। सर्व्वधातुभिः ब्रह्माण्डं कर्त्तव्यमित्युक्तं, तत्र सुवर्णस्य पीठनिर्माणादिविनियोगमभिधायेदानीं धात्वन्तरैः कर्त्तव्यं, तदुच्यते ।

पीठात्सप्तगुणं रौप्यं रौप्यात्ताम्रं तथा विधम् ।
ताम्रात्सप्तगुणं कार्य्यं कांस्यमत्र नराधिप ॥
त्रपुणः परतःसीसं तावल्लोहं च कारयेत् ।
सप्तद्वीपाः समुद्राश्च सप्तैव कुलपर्व्वताः ॥
अनया संख्यया ज्ञात्वा निपुणैः शिल्पिभिः कृता ।

तथाविधं सप्तगुणमित्यर्थः सप्तद्वीपा इत्यादि एतेषामेकैकधातुना एकैकं द्वीपं समुद्रं कुलाचलञ्च रचयेदित्यर्थः ।

यादृशानि च भूतानि राजतान्येव कारयेत् ।
अरण्यानि च सत्वानि सौवर्णानि च कारयेत् ॥
वृक्षान् वनस्पतींश्चात्र तृणवल्लीः सवीरुधः ।
'यादृशानि, जलसम्भवानि, पुष्पफलवन्तो वृक्षाः,
'अपुष्पाः, फलिनोवनस्पतयः, वीरुधोगुच्छगुल्मादयः ।
सर्व्वं प्रकल्प्य विधिवत्तीर्थे देयं विचक्षणैः ।
कुरुक्षेत्रे गयायां च प्रयागेऽमरकण्टके ॥

द्वारवत्यां प्रभासे च गङ्गाद्वारे च पुष्करे।
तीर्थेष्वेतेषु वै देयं ग्रहणे सोमसूर्य्ययोः॥
दिनच्छिद्रेषु सर्व्वेषु अयने दक्षिणोत्तरे॥
व्यतीपाते बहुगुणं विषुवे च विशेषतः।
दातव्यमेतद्राजेन्द्र विचारं नैव कारयेत्॥
बालाग्निहोत्रिणं विप्रं सुरूपञ्च गुणान्वितम्।
सपत्नीकं च संपूज्य भूषयित्वा विभूषणैः॥
पुरोहितं मुख्यतमं कृत्वान्यांश्च तथर्त्विजः।
चतुर्व्विंशद्गुणोपेतान् सपत्नीकान्निमन्त्रितान्॥
अहताम्बरसुच्छन्नान् स्रग्विनः सुविभूषितान्।
अङ्गुलीयकरत्नानि कर्णवेष्टांश्च दापयेत्॥
एवं विधांश्च संपूज्य तेषामग्रे स्वयंस्थितः।
अष्टाङ्गप्रणिपातेन प्रणम्य च पुनः पुनः॥
पुरोहिताय पुरतः कृत्वा वै करसंपुटम्।
यूयं वै ब्राह्मणा धात्रा मैत्रत्वेनानुगृह्यते॥
सौमुख्येनेह भवताम्भवेत् पूतोनरः स्वयम्।
भवतां प्रीतियोगेन स्वयं प्रीतः पितामहः॥
ब्रह्माण्डेन तु दत्तेन तेषां मतिजनार्द्दनः।
पिनाकपाणिर्भगवान् शक्रश्च त्रिदशेश्वरः॥
एते वै तोषमायान्ति अनुध्याता द्विजोत्तमैः।
एवं* स्तुत्वा ततो राजा ब्राह्मणान् वेदपारगान्॥

* स्तुत्वेति क्वचित् पाठः।

ब्रह्माण्डं गुरवे प्रादात् सविधानं पुनः पुनः।
सर्व्वकामैस्ततस्तस्मो सययौ स्वर्गं नराधिप॥
तेनापि गुरुणा तच्च विभक्तं ब्राह्मणैः सह।
दत्तस्तैरपि चान्येभ्यो ब्रह्माण्डांशोनराधिपः॥
ब्रह्माण्डं भूमिदानं च ग्राह्यं नैकेन तद्भवेत्।
गृह्णन्दोषमवाप्नोति ब्रह्महत्यां न संशयः॥
सर्व्वेषाञ्चैव प्रत्यक्षदातव्यं तं नराधिपः।
दीयमानञ्च पश्यन्ति तेपिपूताभवन्तिहि॥
दर्शनादेवतेपूता भवेयुनात्रसंशयः॥
भीमद्वादशी वाप्रोक्ता स्वर्णनाभिम्हगाजिनम्।
एतानि गत्वा पश्येत्तु दृष्टैरेतैः क्रियाफलम्।
अयत्नादेव लभ्येत कर्तुश्चैव सलोकताम्॥

इति पद्मपुराणोक्तो ब्रह्माण्डदानविधिः।

अथ कल्पपादपसंज्ञं चतुर्थं महादानमारभ्यते॥

मत्स्य उवाच।

कल्पपादपदानाख्यमतः परमनुत्तमम्।
महादानं प्रवक्ष्यामि सर्व्वपातकनाशनम्॥
पुण्यं दिनमथासाद्य तुलापुरुषदानवत्।
पुण्याहवाचनं कुर्य्याल्लोकेशावाहनं तथा।
ऋत्विग्मण्डपसम्भारभूषणाच्छादनादिकम्॥

आदिशब्देन कालदेशशुद्धिश्राद्धशिवादिपूजागुरुऋत्विग्चतुष्टयवरण--मधुपर्क--दान--होम--वेदिकोपरिचक्र--लेखनपञ्च-वर्ण

वितानपताकातोरणादि, मत्स्यपुराणोक्ततुलापुरुषदानवद्, द्रष्टव्यम्।

काञ्चनान् कारयेद्वृक्षान् नानाफलसमन्वितान्।
नानाविहारवस्त्राणि भूषणानि च कारयेत्॥

नानाफलानि, स्त्री-पुरुष-गो-गज-वाजि-मणि-वज्र कनक-रजत-भक्ष्यफलादीनि।

शक्तितस्त्रिपलादूर्द्ध्वमासहस्रात् प्रकल्पयेत्।
अर्द्धात् कृतसुवर्णस्य कारयेत् कल्पपादपम्॥
गुड़प्रस्थोपरिष्टाच्च सितवस्त्रयुगावृतम्।
ब्रह्मविष्णुशिवोपेतं पञ्चशाखं सभास्करम्।
कामदेवमधस्ताच्च सकलत्रं प्रकल्पयेत्॥

अर्द्धात्कृतसुवर्णस्येति, यथाशक्तिदानवकृतसुवर्णस्यार्द्धेन ब्रह्मादिप्रतिमासहितं कल्पपादपं कुर्य्यात्, द्वितीयमप्यर्द्धं चतुर्द्धाविभज्य एकैकांशेन वक्ष्यमाणस्वस्वदेवतासहितान् सन्तानादीन् विदध्यात्, गुड़प्रस्थोत्र द्वात्रिंशत्पलपरिमितः, तथाचोक्तं, द्वात्रिंशत्पलकः प्रस्थः पुराणे परिकीर्त्तित इति, ब्रह्मादिलक्षणमुक्तं ब्रह्माण्डदाने, कामदेवरूपन्तु विष्णुधर्मोत्तरात्।

कामदेवस्तु कर्त्तव्यो रूपेणाप्रतिमो भुवि।
अष्टबाहुः प्रकर्त्तव्यः शङ्खपद्मविभूषणः॥
चापवाणकरश्चैव मदादञ्चितलोचनः।
रतिःप्रीतिस्तथाशक्तिर्भार्य्याश्चैतास्तथोज्ज्वला॥
चतस्रस्तस्य कर्त्तव्याःपत्नीरूपमनोहराः।
चत्वारश्च करास्तस्य कार्य्याभार्य्या स्तनोपगाः॥

केतुश्च मकरः कार्य्यः पञ्चवाणमुखोमहानिति ।

अधस्तादिति ब्रह्मादिभिरपि सम्बध्यते । अथ प्रकृतौ परिमाणाभावात् पुरुषेच्छया प्रतिमादिपरिमाणनियमः । सन्तानं पूर्ववत्तद्वत्तुरीयांशेन कल्पयेत्,

'तुरीयांशेन' द्वितीयार्द्धचतुर्थांशेनेत्यर्थः ।

तद्वत्कल्पवृक्षवत्, पञ्चशाखं गुड़प्रस्थोपरिगतं ब्रह्मादिप्रतिमान्वितं कुर्य्यादित्यर्थः, केचित्तु कामदेवमधस्तात् प्रकल्पयेदिति-सन्तानवृक्षे योजयन्ति, तन्मते तत्प्रतिमैव कर्त्तव्या ।

मन्दारं दक्षिणे पार्श्वे श्रिया सार्द्धं घृतोपरि ।

पश्चिमे परिभद्रन्तु सावित्र्या सह जीरके ॥

सुरभिसंयुतं तद्वद्विलिप्य हरिचन्दनम् ।

तुरीयांशेन कुर्व्वीत सौम्येन फलसंयुतम् ॥

श्रीलक्षणमुक्तं ब्रह्माण्डे, सावित्रीलक्षणमाह नारदः ।

पद्मासना च सावित्री साक्षसूत्रकमण्डलुः ॥

सुरभिलक्षणं ब्रह्माण्डपुराणे ।

सवत्सा सुरभी, धेनुरागता प्रस्नुतस्तनीति,

'सौम्येन' उत्तरेण ।

घृतादीनामपि परिमाणापेक्षायां तद्वदिति वचनात्-सन्निधानाच्च प्रस्थपरिमाणत्वमवधेयम् ॥

कौशेयवस्त्रसंयुक्तानिक्षुमाल्यफलान्वितान् ।

तथाष्टौ पूर्णकलशान् पादुकासनभाजनम् ।

दीपकोपानहच्छत्रचामरासनसंयुतम् ।

फलमाल्ययुतं तद्वदुपरिष्टाद्विनायकम् ।

तथाष्टादशधान्यानि समन्तात् परिकल्पयेत्॥

अशनभाजनं, भोज्यान्वितभाजनं वितानं पञ्चवर्णं।

अथ पूर्व्ववत् पूर्व्वेद्युरधिवासनं विधाय श्वोभूते ब्राह्मणवाचनादिपूर्णाहुतिपर्य्यन्तं कर्म्मशेषं समापयेत्।

होमाधिवासनान्ते च स्नापितो वेदिपुङ्गवैः* ।
त्रिःप्रदक्षिणमावृत्य मन्त्रमेतमुदीरयेत्॥
नमस्ते कल्पवृक्षाय चिन्तितार्थप्रदायिने ।
विश्वम्भराय देवाय नमस्ते विश्वमूर्त्तये॥
यस्मात् त्वमेव विश्वात्मा ब्रह्मा स्थाणुर्द्दिवाकरः ।
मूर्त्तामूर्त्तपरं वीजमतः पाहि सनातनः॥
त्वमेवामृतसर्व्वस्वमनन्तः पुरुषोऽव्ययः ।
सन्तानाद्यैरुपेतः सन् पाहि संसारसागरात्।

अमृता, देवाः तेषां सर्वस्वं, अमृतसर्व्वस्वम्॥

एवमामन्त्र्य तं दद्यात् गुरवे कल्पपादपम् ।
चतुर्भ्यश्चापि ऋत्विग्भ्यः सन्तानादीन् प्रकल्पयेत्॥

दानवाक्यमत्र, तुलापुरुषोक्तमूहनीयं, चतुर्भ्यः प्रकल्पयेदित्येकैकस्मै दद्यादित्यर्थः, चतुर्भ्यइतिवचनादत्र चतुर्णामेवर्त्तिजां वरणमिति गम्यते, ऋत्विगष्टकपक्षेतु ऋत्विग्भ्य इति ऋत्विक्युग्मेभ्य इत्यर्थः, एतस्मिंश्च पक्षे जापकादिभ्यो अन्यैव दक्षिणा दातव्या, वेदचतुष्टयापेक्षयायां चतुःसंख्यत्वमिदमृत्विजामितिकेचित् इहापि। प्राप्य तेषामनुज्ञाञ्च तथान्येभ्योपि दापयेदिति बोद्धव्यम्, दक्षिणानिर्णयश्च, पूर्व्ववत्, स्वल्पेष्वेकाग्निवत् कुर्य्याद्गुरवे वाभि

* वेदपुङ्गवैरिति क्वचित्पाठः।

पूजनं न वित्तशाठ्यं कुर्व्वीत न च विस्मयवान् भवेत् ।
स्वल्पत्वविवरणमुक्तं ब्रह्माण्डे, ततः पुण्याहवाचने कृते वेदि-
समीपं गत्वा कृतदेवपूजोयजमानोगुरुः पूर्व्ववदेव देवताविसर्जनं
कुर्य्यात् ।

अनेन विधिना यस्तु महादानं निवेदयेत् ।
सर्व्वपापविनिर्मुक्तः सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥
अप्सरोभिः परिवृतः सिद्धचारणपन्नगैः ।
भूतान् भव्यांश्च मनुजांस्तारयेद्रोमसंमितान् ॥
स्तूयमानो दिवःपृष्ठे पितृपुत्रप्रपोत्रकान् ।
विमानेनार्कवर्णेन विष्णुलोकं स गच्छति ॥
दिवि कल्पशतं तिष्ठेद्राजराजो भवेत् ततः ॥
नारायणबलोपेतो नारायणपरायणः ।
नारायणकथासक्तो नारायणपुरं व्रजेत् ॥
यो वा पठेत् सकलकल्पतरुप्रदानं
यो वा शृणोति पुरुषोल्पधनः स्मरेद्वा ।
सोपीन्द्रलोकमधिगम्य सहाप्सरोभि
र्मन्वन्तरं वसति पापविमुक्तदेहः ॥

इति मत्स्यपुराणोक्तकल्पतरुदानविधिः ।

लिङ्गपुराणे, सनत्कुमार उवाच ।

अथान्यत् संप्रवक्ष्यामि कल्पपादपमुत्तमम् ।
शतनिष्केण कर्त्तव्यं सर्व्वशाखासमन्वितम् ॥
'सर्व्वशाखाः, सर्व्वदिगन्तशाखाः ।
शाखायां विधिना कृत्वा मुक्तादाम समन्वितम् ।

दिव्यैर्मरकतैश्चैव चाङ्कुराणि प्रविन्यसेत् ॥

दिव्यैः, उत्कृष्टैरित्यर्थः।

प्रवालङ्कारयेद्धीमान् प्रवालेन द्रुमस्य च।

प्रवालेन प्रवालङ्कारयेदिति, द्रुमैर्व्वालपल्लवान् कारयेत्यर्थः।

फलानि पद्मरागैश्च पारिजातस्य शोभनम्।

मूलदण्डश्च नीलेन वज्रेण स्कन्धमुत्तमम् ॥

वैदूर्य्येण द्रुमाग्रञ्च पुष्परागेण मस्तकम्।

स्कन्धादूर्द्धभागो मस्तकं, तदूर्द्धं, द्रुमाग्रम्।

गोमेदकेन वै स्कन्धं सूर्य्यकान्तेन सुव्रतः।

चन्द्रकान्तेन वा वेदिं द्रुमस्य स्फटिकेन वा ॥

वितस्तिमात्र आयामो वृक्षस्य परिकीर्त्तितः।

शाखाष्टकसमानश्च विस्तारश्चोर्द्धतस्तथा ॥

शाखाव्यतिरिक्तस्य वृक्षस्य वितस्तिमात्र, उच्छ्रायः कार्य्यः, उर्द्धतस्तथेति, स्कन्धादुर्द्धमुखी नवमी या मध्यमशाखा तस्या अपि वितस्तिमात्र उच्छ्रायः, शाखाष्टकसमानं विस्तारमिति, अष्टदिग्मुखीनामष्टशाखानां विस्तारं तिर्य्यग्व्याप्तिवितस्तिमात्रमेव कुर्य्यादित्यर्थः।

तन्मूले स्थापयेल्लिङ्गं लोकपालसमावृतम्।

व्वर्पूर्व्ववेदिमध्ये तु मण्डले स्थाप्य पादपम् ॥

पूजयेद्देवमीशानं लोकपालांश्च यत्नतः।

पूर्व्ववज्जपहोमाद्यन्तुलाभारवदाचरेत् ॥

निवेदयेद्द्रुमं शम्भोर्ब्राह्मणायाथवा नृप।

ब्राह्मणेभ्योऽथवा राजा सार्व्वभौमो भविष्यति ॥

तुलाभारवदाचरेदित्यत्र लिङ्गपुराणोक्ततुलापुरुषदानविहितं विधिमाचरेदित्यर्थः।

कालोत्तरे। पलानान्तु सहस्रेण कल्पयेत् कल्पपादपम्।
समूलदण्डपत्रञ्च फलपुष्पसमन्वितम्॥
पञ्चस्कन्धन्तु संकल्प्य पञ्चानां स्थापयेत् सुधीः।
सद्योजातेन मन्त्रेण देयं ग्राह्यं शिवाग्रतः॥
दिव्यैर्विमानैः* र्देहान्ते शिवलोके महीयते।
पितरस्तस्य मोदन्ते सत्यलोके महीपते†॥
इति शैवकल्पतरुदानविधिः।

अथ गोसहस्राख्यं पञ्चमं महादानमुच्यते।

मत्स्य उवाच।

अथातः संप्रवक्ष्यामि महादानमनुत्तमम्।
गोसहस्रप्रदानाख्यं सर्वपापहरं परम्॥
पुण्यं तिथिमथासाद्य युगमन्वन्तरादिकम्।
पयोव्रतस्त्रिरात्रं स्यादेकरात्रमथापि वा॥
लोकेशावाहनं कुर्य्यात् तुलापुरुषदानवत्।
पुण्याहवाचनं कुर्य्याद्धोमः कार्य्यस्तथैव च॥
ऋत्विग्मण्डपसम्भारभूषणाच्छादनादिकम्।
वृषं लक्षणसंयुक्तं वेदिमध्येऽधिवासयेत्॥
गोसहस्राद्विनिष्क्रम्य गवां दशकमेव च।

* यानैरितिपुस्तकान्तरे पाठः।
† यथासुखमिति क्वचित्पाठः।

पयोव्रतस्त्रिरात्रमिति, दानदिनात् पूर्व्वं त्रिरात्रं पयोव्रतः-स्यादित्यर्थः, अत्रादिशब्देन देशकाल-वृद्धिश्राद्ध-शिवादिपूजा-गुरु-ऋत्विग्वरण-मधुपर्कदान कुण्डवेदिकावितान-चक्रलेखन-पताकादीनि मत्स्यपुराणोक्ततुलापुरुषदानविहितानि गृह्यन्ते, वृषं लक्षणसंयुक्तं, वृषलक्षणानि, उन्नतस्कन्धककुदं उज्ज्वलायत कम्बलमित्यादीनि वृषोत्सर्गप्रकरणे मत्स्यपुराणोक्तान्येव वेदितव्यानि, गोसहस्राद्विनिष्क्रम्येति दशोत्तरगोसहस्रादिति वेदितव्यम्, अग्रे दशाधिकगोसहस्रविनियोगदर्शनात्, यद्यपि गवां दशकमित्यत्र गोमात्रप्रतीतिः तथापि उत्तरत्र ऋत्विग्भ्यो धेनुमेकैकां दशकाद्विनिवेदयेदिति, धेनुसंशब्दनात्, पुराणान्तरे गोसहस्राद्विनिष्क्रम्य सवत्सं दशकं गवामितिश्रवणाच्च धेनुदशकमेवाधिवासनीयम्।

इतरासु पुनर्नावश्यं धेनुरूपत्वादरः।

गोसहस्रं वहिः कुर्य्याद्वस्त्रमाल्यविभूषितम्।
सुवर्णशृङ्गाभरणं रौप्यपादसमन्वितं॥
अतः प्रवेश्य दशकं वस्त्रमाल्यैस्तु पूजयेत्।
सुवर्ण-घण्टिकायुक्तं ताम्रदोहनिकान्वितम्॥
सुवर्णतिलकोपेतं हेमपट्टैरलङ्कृतम्।
कौशेयवस्त्रसम्वीतं माल्यगन्धसमन्वितम्॥
हेमरत्नयुतैः शृङ्गैश्चामरैश्चापि शोभितं।
पादुकोपानहच्छत्रभाजनासन* संयुतम्॥

---

* चामरासनेति क्वचित्पाठः।

'दशसौवर्णिके शृङ्गे, खुराः, पञ्चपलाः ।

पञ्चाशत्पलदोहनकः अन्यत्र तथाभिधानात् घण्टिकादि-सुवर्णशब्दोऽत्र षोड़शमाषपरिमितहिरण्यवचनः, सकृदुच्चरित-सुवर्णशब्दावगतपरिमाणपरित्यागानुपपत्तेः । पादुके, काष्ठमय्यौ, चर्म्मकृते उपानहाविति भेदः ।

गवां दशकमध्ये स्यात् काञ्चनो नन्दिकेश्वरः ।
कौशेयवस्त्रसंवीतो नानाभरणभूषितः ॥
लवणद्रोणशिखरे-माल्येक्षुफलसंयुतः ।
कुर्य्यात् पलशतादूर्द्धं सर्व्वमेतदशेषतः ॥
भक्तितः पलसाहस्रत्रितयं यावदेव तु ।
गोशते वै दशांशेन सर्व्वमेतत् प्रकल्पयेत् ॥

लवणद्रोणशिखरे, लवणद्रोणोपरीत्यर्थः ।

नन्दिकेश्वरलक्षणं ललितविजयात् ।

ऊर्द्धस्त्रिनेत्रो द्विभुजः सौम्यास्योनन्दिकेश्वरः ।
वामे तु शूलभृद्दक्षे चाक्षमालासमन्वित इति ॥

ऊर्द्ध इति, अशयानानुपविष्ट इत्यर्थः ।

पलशतादूर्द्धं पलसहस्रत्रितयं यावदिति, साभरणनन्दिकेश्वरविषयमेतत् आनन्तर्य्यात्, गोशते वै दशांशेनेति, गोशते देये गामिकामेकञ्च वृषभं वेदिमध्येऽधिवासयेत पलदशका-दूर्द्धं पलशतत्रयं यावदितिसाभरणनन्दिकेश्वररचनादिकं कुर्य्या-दित्यर्थः ।

पुण्यंकालमथासाद्य गीतमङ्गलनिःस्वनैः ।
सर्व्वौषध्युदकस्नानस्नापितो वेदिपुङ्गवैः ॥

इममुच्चारयेन्मन्त्रं गृहीतकुसुमाञ्जलिः।

अत्रापि पूर्व्ववत् पूर्वेद्युरधिवासनं विधाय द्वितीयदिवसे ब्राह्मणवाचनानन्तरमग्निकुण्डेषु ऋत्विगुपवेशनादिपूर्णाहुतिपर्य्यन्तं कर्म्मशेषं गुरुः समापयेत् ततः पुण्यकालं आत्मानुकूललग्नमुहूर्त्तादिलक्षणमासाद्य कुण्डसमीपस्थितकलशोदकेन ब्राह्मणैः स्नापितः शुक्लमाल्याम्बरधरो यजमानो वक्ष्यमाण मन्त्रानुदीरयेत्।

नमो वो विश्वमूर्त्तिभ्यो विश्वमातृभ्य एव च।
लोकाधिवासिनीभ्यश्च रोहिणीभ्यो नमो नमः॥
गवामङ्गेषु तिष्ठन्ति भुवनान्येकविंशतिः।
ब्रह्मादयस्तथा देवा रोहिण्यः पान्तु मातरः॥
गावो मे अग्रतः सन्तु गावो मे सन्तु पृष्ठतः।
गावः शिरसि मे नित्यं गवां मध्ये वसाम्यहम्॥
यस्मात् त्वं वृषरूपेण धर्म्म एव सनातनः।
अष्टमूर्त्तिरधिष्ठानमतः पाहि सनातनः॥
इत्यामन्त्र्य तु यो दद्याद्गुरवे नन्दिकेश्वरम्।
सर्व्वोपकरणोपेतं गोयुगञ्च विचक्षणः॥
ऋत्विग्भ्यो धेनुमेकैकां दशकाद्विनिवेदयेत्।
गवां शतमथैकैकं तदर्द्धं चाथ विंशतिः॥

दशपञ्चाशदाधिकस्तदनुज्ञया।

दानवाक्यमत्र तुलापुरुष वद्देदितव्यं, एते च शतप्रभृति पञ्चपर्य्यन्ता विकल्पा ऋत्विग्विषयाः तदानन्तर्य्यात्, ततश्चायमर्थः सिद्धो भवति गोदशकमध्यान्नन्दिकेश्वरयुतं गोयुगं गुरवे प्रतिपाद्या-

शेषाणामष्टानाङ्गवामेकैकामेकैकस्मै ऋत्विजे दद्यात्, तथा गोसहस्रमध्यात् शतद्वयं गुरवे प्रदाय एकैकं शतमृत्विग्भ्यो दद्यात्, अथवा शतं गुरवे पञ्चाशतं ऋत्विग्भ्यः अथ वा चत्वारिंशतं गुरवे विंशतिं विंशतिमृत्विग्भ्यः विंशतिं, वा गुरवे दश दश ऋत्विग्भ्यः, दशवा गुरवे पञ्च पञ्च ऋत्विभ्योदद्यात् शेषा गास्तदनुज्ञया अन्येभ्योपि दद्यात् । दक्षिणाञ्चात्र पूर्व्ववदेव दद्यात् । अनुक्तदक्षिणासु सुवर्णं दक्षिणेति वचनात् यथाशक्ति सुवर्णं वा, ततः पूर्व्ववदेव पुण्याहवाचन-देवतापूजन-विसर्जनादि कुर्य्यात् ।

नैका बहुभ्यो दातव्या यतो दोषकरी भवेत् ।
बह्व्यस्त्वेकस्य दातव्या श्रीमदारोग्यवृद्धये ॥
पयोव्रतः पुनस्तिष्ठेदेकाहं गोसहस्रदः ।

इदञ्च पयोव्रतानुष्ठानं, शक्त्यापेक्ष्यम् ।

अशक्तौ नक्तमिष्यत इति वचनात् ।

श्रावयेत् शृणुयाद्वापि महादानानुकीर्त्तनम् ।
तद्दिनं ब्रह्मचारी स्याद्यदीच्छेद्विपुलां श्रियम् ।

आथर्व्वणगोपथब्राह्मणे । अथातो गोसहस्रविधिर्गोष्ठ उदकान्ते शुचौ देशे प्राञ्चमिध्ममुपसमाधाय अन्वालभ्याश्व जुहुयात्, आगावग्मन्नित्याद्यं जुहुयात्, महाव्रीहीणामैन्द्रञ्चरुं सौम्यञ्च सहस्रं तस्याः पयसि श्रपयित्वा गाव इति, एवमभय इत्येतेन जुहुयात् पश्चादग्नेस्तीर्थोदकपूर्णकलशमवस्थाप्याहिसंयोगे छिनेति दशगाः स्नापयेत् त्वरमाणोन्याः समभ्युक्ष्य सहस्रं तस्याः स्नानोदकेनेममिन्द्रं वर्द्धय क्षत्रियं म इति, राजानमभिषिच्येमाआप इति, षड्भिर्य्यथोक्तमञ्जनाभ्यंजनानुलेपनं कृत्वा सहस्रतमीं प्रथमामलं-

कृत्य गावो मामुपतिष्ठत प्रजावतो सूयवासादिति च सर्य्यासयेत् प्रियमशनन्दत्वा हिरण्मयादिति सहस्रतमीमालभ्य जपेत् मया गावोपतिना सवद्धमिति मन्त्रेणानेनार्घं दत्त्वा सहस्रतमीं पुनरुप संगृह्य भूमिष्ठा प्रतिगृह्णात्विति जपेत् सहस्रं तस्याः पृष्ठतो व्रजन् सर्व्वाः प्रदक्षिणीकृत्य नमस्कृत्य स्वस्ति वाच्य ब्राह्मणेभ्यो निवेद्य दशगा दक्षिणा कार्य्या सहस्रतमां वस्त्रयुग्मञ्च तदपि।

श्लोकाः।

सप्तजन्मानुगं पापं पुरुषैः सप्तभिः कृतं।
तत्क्षणात् विधिनानेन नाशयेद्गोप्रदोनरः॥
सर्व्वेषामिह दानानां फलं यत् परिकीर्त्तितम्।
तदवाप्नोति विप्रेभ्यो गोसहस्रप्रदोनरः॥
अश्वमेधं वृषोत्सर्गं गोसहस्रत्रयन्तु यः।
दद्यान्मातामहाद्यास्तु पितर*स्तर्पयन्ति हि॥
अस्मादनेन विधिना गोसहस्रन्तु योनरः।
प्रदद्यात् स विशुद्धात्मा याति तत् परमं पदमिति॥

मत्स्यपुराणे।

अनेन विधिना यस्तु गोसहस्रप्रदोभवेत्।
सर्व्वपापविनिर्म्मुक्तः सिद्धचारणसेवितः॥
विमानेनार्कवर्णेन किङ्किणीजालमालिना।
सर्व्वेषां लोकपालानां लोके संपूज्यते नरैः॥

---

* पितर इति क्वचित्पाठः।

प्रतिमन्वन्तरे तिष्ठेद्राजराजो भवेत् पुमः।
अश्वमेधशतं कुर्य्याच्छिवध्यानपरायणः॥
वैष्णवं लोकमास्थाय* ततो मुच्येत बन्धनात्।
पितरश्चाभिनन्दन्ति गोसहस्रप्रदं शुभम्॥
अपि स्यात्सकुलेऽस्माकं पुत्रोदौहित्र एव च।
गोसहस्रप्रदो भूत्वा नरकादुद्धरिष्यति॥
तत्सकर्मकरो वा स्यादपि द्रष्टा तथैव च।
संसारसागरादस्माद्योऽस्मान् सन्तारयिष्यति॥

इति पठति य एतद्गो-सहस्र-प्रदानम्
सुरभुवनमुपेयात्संस्मरेद्वापि पश्येत्।
अनुभवति सुखं वा वाच्यमानोनिकामम्
प्रहतकलुषदेहः सोऽपि यातीन्द्रलोकम्॥

इति गोसहस्रदानविधिः।

सनत्कुमार उवाच।

गोसहस्रप्रदानञ्च वदामि शृणु सिद्धये।
गवां सहस्रमादाय सवत्सं सगुणं शुभम्॥
तांश्चाभ्यर्च्य यथाशास्त्रमष्टौ सम्यक् प्रयत्नतः।
तासां शृङ्गाणि हेम्नाथ प्रतिशृङ्गेण बन्धयेत्॥
खुरांश्च राजतेनैव बन्धयेत् कण्ठदेशतः।
प्रतिनिष्केण कर्त्तव्यं कथं वक्त्रेण शोभनम्॥
गवां सहस्रमादायेति, अष्टाधिकं गोसहस्रमितिज्ञेयम्।

† योगमास्थायेतिपुस्तकान्तरे।

ताश्चान्याश्च महाभाग अष्टौ संग्टह्य यत्नतः।

इति वातुलोक्तेः।

बन्धयेत् कण्ठदेशतइत्यत्र, वस्त्रमिति शेषः।

वस्त्रं बध्वा गले गाश्च विप्रेभ्यो दापयेत् क्रमात्।

निष्कं स्वर्णमयं कृत्वा पट्टं कण्ठे च बन्धयेत्॥

इति कामिकोक्तेः।

विप्रेभ्यो दापयेद्गावो दक्षिणाञ्च पृथक् पृथक्।

दशनिष्कं तदर्द्धं वा तदर्द्धार्द्धमथापि वा॥

यथाविभवविस्तारं निष्कमानमथापि वा।

वस्त्रयुग्मञ्च दातव्यं पृथक् विप्रेषु शोभनम्॥

गावश्चाराध्य यत्नेन दातव्याः सुमनोरमाः।

एवं दत्त्वा विधानेन शिवमभ्यर्च्य शङ्करम्॥

जपेदग्रे यथान्यायं गवां स्तवमनुत्तमम्।

गावोममाग्रतो नित्यं गावो मे सन्तु पृष्ठतः॥

हृदये नः सदा गावो गवां मध्ये वसाम्यहम्।

एवं स्तुत्वा द्विजाग्रेभ्यो दत्त्वा गास्ताः सदक्षिणाः॥

तद्रोमसंख्यावर्षाणि स्वर्गलोके महीयते।

पूर्ववदधिवासनं शिवस्य सहस्रकलशाद्यभिषेचनं कृत्वा गोस्तवमुच्चार्य्य प्रत्येकं गोदानं कार्य्यं, आचार्य्यादिदक्षिणा च प्राग्वत्।

इति लिङ्गपुराणोक्तो गोसहस्रदानविधिः।

अतःपरं स्मृतं दानं ये न रोहन्ति देहिनः।

दुर्लभं तत्परन्धाम त्यक्ता कामैरशेषतः॥

सहस्रन्तु सवत्सानां धेनूनां यः शिवाय वै ।
स्नानार्थं विधिवद्दद्यात्सोपि तत्पदमाप्नुयात् ॥
तद्गोसहस्रक्षीरेण तथा दध्ना च शङ्करम् ।
सर्पिषा च समग्रेण स्नाप्य वाद्यादिमङ्गलैः ।
दद्यात् सरसिजं रौक्मं लिङ्गं सम्पूज्य यत्नतः ।

रौक्मं, सौवर्णं ।

तदन्ते वाथ पुष्पैस्तु आपीठान्तं सुशोभनम् ।
वितानहेमघण्टादीन् युग्मं चैव निवेदयेत् ॥
आपीठान्तं पुष्पैः पूरयेदिति शेषः ।
दीपदर्पणनैवेद्यं हेमदण्डञ्च चामरम् ।
अग्निं सन्तर्प्य चाज्येन मन्त्रविच्छ्रोत्रियेण च ।
हेमवस्त्रयुगेनैव भूषितेन द्विजेन वै ॥
आज्येनेत्यादि, आज्येन द्रव्येण श्रोत्रियेण ऋत्विग्वृतेन सन्तर्पयेदित्यर्थः ।
हेमवस्त्रयुगेनेति हेम्ना शोभनवस्त्रयुग्मेनेत्यर्थः ।
ततो ब्रह्मरवेणैव शुक्ला गौस्तत्र या शुभा ।
वितानञ्चोच्छ्रयेत्तस्या गच्छेत् प्रागदक्षिणं पुनः ॥
हराय चापराः सर्व्वा गास्तास्तदनुचान्वयेत् ।
मण्डिता हेमवस्त्राद्यैर्महावादित्रनिःस्वनैः ॥
प्रदक्षिणं ततो देवं कृत्वा गावस्तदग्रतः ।
स्थापयित्वा तु ताः सर्व्वा यजमानः प्रदक्षिणम् ॥
सुरभीया च या मुख्या तस्यास्त्वग्रे च कारयेत् ।

सर्व्वं तत्गोसहस्रं तु महाब्रह्मरवेण वै ॥
ततस्तु पुच्छमादाय तिलहोमयवाक्षतैः।
सपुष्पोदकहस्ताभ्यां शङ्कराय निवेदयेत् ॥

यवाक्षतैः, अक्षतयवैः।

ततस्त्वेकादशभ्यस्तु ब्राह्मणेभ्यस्तथापराः।
गावोवसान्विता दद्यात्तेभ्यो देयं विचिन्त्यच ॥
अव्रतान् सुव्रतांस्तत्र ब्राह्मणांश्च विशेषतः।
दीनान् सुदुःखितांश्चैव भोजयेदनिवारितान् ॥
विधिनानेन ये भक्त्या स्वर्जिता गोसवेन तु।
उद्दिश्य शङ्करन्देवं मुच्यते भवबन्धनात् ॥

स्वर्जिद्गोसवो दृष्टान्तः।

अथ वान्यत् प्रकारेण दद्याद्गोशतमुत्तममिति ॥
शतशब्दो बहुवाची स चात्र सहस्रपरः
अग्रे सहस्रविनियोगदर्शनात्।
एकादशाधिकं रुद्रे चिच्छक्तये मिताय च।
संपूर्णं पूर्व्ववत् कृत्वा विधिमादौ प्रयत्नतः॥
होमपूजादिसंयुक्तं दद्यात्तच्चैव शम्भवे।
दीक्षितानां शतं ह्येकमाहूत्य शिवमन्दिरे ॥
ततः पूज्य यथा न्यायं दद्यात्तेभ्यो यथा शृणु ॥
दशकं दशकं चैव एकैकस्य पृथक् पृथक्।
हृदि शम्भुं गवां चैव ध्यात्वा तेषां निवेदयेत् ॥
अधिकं दशकं यत्र नीलकण्ठेन्दुशेखरे।

दद्यात् पूर्व्वविधानेन धेनूनाञ्च सवत्सकम्॥

दीक्षितानां शतमित्यादि शम्भुप्रीतये शम्भुं ध्यात्वा दीक्षितानां सम्प्रदानभूतानां दद्यादित्यर्थः।

पूर्व्वविधानेन, स्नपनप्रकारेण।

अथ वा श्रोत्रियान् विप्रान् वेदवेदाङ्गपारगान्।
आहूय द्विगुणंस्तेभ्यः पञ्च पञ्च ददेत् सुधीः॥
कृत्वा विधिमिमञ्जन्तुः न शोच्यः स्यात् कदाचन।
गर्भागारज्वरेभ्यः परिक्रामति नैव सः॥

'गर्भगारज्वरे' गर्भवासक्लेशे।

इति कालिकापुराणोक्तत्रिःप्रकारगोसहस्रदानविधिः।

अगस्त्य उवाच।

दानमन्त्रं प्रवक्ष्यामि गोसहस्राख्यमुत्तमम्।
यत्कृत्वा नर्म्मदातीरे मुच्यते भवबन्धनात्॥
शैवानां वैष्णवानाञ्च सहस्रं भोजयेत्तथा।
ततः सहस्रं दोग्ध्रीणां शुक्लानाञ्च गवां तथा॥
गर्भिणीधेनुसंमिश्रं वृषभैर्दशभिर्युतम्।
अर्चितं गन्धपुष्पाद्यै र्हैमवस्त्रैरलंकृतम्॥
प्रदक्षिणमुपक्रम्य मन्त्रेणानेन भक्तितः।

ओं नमो भगवते वासुदेवायेति मन्त्रः।

वेदविद्भिः समाकीर्णे विष्णोरायतने शुभे।
नर्म्मदातोयमासाद्य दीपमालां * प्रवन्धयेत्॥
गावो ममाग्रतो नित्यंगावस्पृष्ठत एव च।

* प्रयोधयेदिति पुस्तकान्तरे।

गावो मे हृदये चापि गवां मध्ये वसाम्यहं ॥
गवां मन्त्रं समुच्चार्य्य जपेदासां पुरस्थितः।
गन्धतोयाक्षतैर्युक्तं गृहीत्वा ताम्रभाजनम् ॥
गवां पुच्छाम्भसा स्नातः शुक्लवस्त्रसमन्वितः।
सर्व्वकल्मषनिर्मुक्तः शुद्धःशुचिमनास्ततः॥
स्नापयित्वा तु गास्तत्र ताविप्रानर्म्मदाजले।
पञ्चदश्यां पूर्णचन्द्रे राहुसोमसमागमे ॥
तैरेव सार्द्धं विप्रेन्द्रैरभिपूज्य हरिं स्मरेत्।
भृत्यपुत्रकलत्राद्यैर्युक्तः स्वजनबान्धवैः॥
निवेदयेत्तु विप्रेभ्यो मन्त्रेण श्रद्धयान्वितः।
श्राद्धे दाने च होमे च विवाहे मङ्गले तथा॥
गोमातरस्थिता नित्यं विष्णुलोके शिवप्रिया।
शिवायैता मया दत्ता विष्णवे च महात्मने॥
एवं विप्राय यो दद्यात् यत्नार्थं समलंकृताः।
विनिवेद्य च शर्व्वाय गोसहस्रमलङ्कृतम्॥
प्राप्नोति परमं स्थानं यद्गत्वा न निवर्त्तते।
कुलानि त्रिंशदुत्तार्य्य नरकाद्भृत्यबान्धवान्॥
स्थापयेद्वैष्णवे लोके शिवस्य च महात्मनः।
सर्व्वज्ञः परिपूर्णश्च शुद्धः सर्व्वगतः प्रभुः॥
संसारसागरान्मुक्तो हरितुल्यः प्रजायते।
अनेनैव विधानेन गृहस्था मोक्षमाप्नुयुः॥
विनापि ज्ञानयोगेन गोसहस्रप्रदानतः।
तस्मात्त्वमपि राजेन्द्र गोसहस्रप्रदो भव॥

देववद्दिवि मोदन्ते येन ते पितरः सदा ।

इति स्कन्दपुराणोक्तो गोसहस्रदानविधिः ।

आदित्यपुराणे ।

अथ प्रयच्छे द्विप्रेषु गोसहस्रं महामुने ।
अर्च्चयेद्गन्धपुष्पैस्तु पट्टैः सर्व्वाः समर्च्चयेत् ॥

पट्टैः, वस्त्रैः,

सर्वाः कनकशृङ्गास्ताः सर्व्वा रौप्यखुरार्च्चिताः ।
हीनांगा न ददेत् गावः कृशा वृद्धातुरास्तथा ॥
एकाङ्गामर्च्चयेत्तासां शेषाणां च विधिं शृणु ।
तिलानां तु शतं, शेषां दद्याद्विप्रेषु दक्षिणाम् ॥
पाद्येन विधिना चैव तर्पयित्वा द्विजांस्तथा ॥

तिलानां शतं, तिलानाम्द्रोणशतमित्यर्थः ।
'पाद्येन, पाद्यार्घादिना ।

शुचिः शुद्धमना भूत्वा योऽर्च्चयेच्च जनार्द्दनम् ।
प्रणम्य शिरसा देवं दत्त्वा गावश्च सत्वरम् ।
तेन ता अर्च्चिताः सर्व्वा भविष्यन्ति न संशयः ॥
वेदशास्त्रार्थतत्वज्ञाः संहिताध्यापका द्विजाः ।
अग्निहोत्ररता ये च स्वाध्यायनिरताश्च ये ॥
एतान् विप्रान् परीक्षेत गोप्रदाने महामुने ।
ईदृशानान्तु यद्दत्तं तच्चानन्तमिहोच्यते ॥
अनन्तस्य तदा दानमिति सत्यं महामुने ।
उपोष्य विधिवच्चैव प्रसन्नमनासेन्द्रियः ॥

उपेत्य ब्राह्मणेभ्यश्च दद्याद्गावश्च सत्वरः ।
स्पर्शयित्वा तु तां गावः सुमनाः सुसमाहितः ॥

'स्पर्शयित्वा दत्त्वा,

न चैतास्ताडयेद्दण्डे र्न हस्तेन न लेष्टुना ।
यथोक्तं गोसहस्रन्तु यः प्रयच्छति वै द्विजः ॥
सर्वक्लेशान् परित्यज्य विष्णुलोके महीयते ।
तथा । तिलानान्तु शतं यस्तु विना गोभ्यः प्रयच्छति ॥
पलमेकं सुवर्णस्य गोसहस्राद्विशिष्यते ।
यथोक्तं गोसहस्रन्तु प्रयच्छेत्तु द्विजातिषु ॥
तत्फलं लभते दाता सद्यः पापात् प्रमुच्यते ।
यस्तु पश्यति पापात्मा सोपि पापात् प्रमुच्यते ॥
एकविंशतिमुद्धृत्य ये च पूर्वे व्यवस्थिताः ।
तारयन्ति नराः चिप्रं कुलान्येकोत्तरं शतम् ।
अलाभे गोसहस्रस्य सुवर्णं दातुमर्हति ॥
सहस्रार्द्धं शतं नूनं द्विजानां च तिलैः सह ।
तथा च लभते नित्यं संपूर्णं द्विजसत्तम ॥
अर्च्चितानां सहस्राणां फलं प्राप्नोति मानवः ।
संपूर्णदक्षिणं विप्र गोसहस्रं प्रकीर्त्तितम् ॥
तिलानान्तु शतं ह्येकं गवां दानेन तत्समम् ।
सहस्रार्द्धं सुवर्णस्य, षोड़शमाषपरिमितस्येति शेषः ।
महाभारते । गवां सहस्रदः प्रेत्य नरकं नैव पश्यति ।
सर्वत्र विजयञ्चापि लभते मनुजाधिप ।

दशगोसहस्रदो नित्यं शक्रेण सह मोदते ।
अक्षयान् लभते लोकान् नरः शतसहस्रशः ॥
सुवर्णशृङ्गैस्तु विराजितानां
गवां सहस्रस्य पुनः प्रदाता ।
प्राप्नोति पुण्यं दिवि ब्रह्मलोक-
मित्येव माहुर्मुनिवेदसङ्घाः ॥
इति गोसहस्रदानविधिः ।
अथ हिरण्यकामधेनुसंज्ञं षष्ठं महादानमुच्यते ।

मत्स्य उवाच ।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि कामधेनुविधिं परं ।
सर्वकामप्रदं नृणां महापातकनाशनम् ।
लोकेशावाहनं तद्वद्धोमः कार्य्योऽधिवासनम् ॥
तुलापुरुषवत् कुर्य्यात् कुण्डमण्डपवेदिकाः ।
स्वल्पेष्वेकाग्निवत्कुर्य्यात् गुरुरेव समाहितः ॥
कुण्डमण्डपवेदिका इत्युपलक्षणम् ।

इह हि देश-काल-ऋत्विग्श्राद्ध-शिवादिपूजा-ब्राह्मणवाचन-गुरु ऋत्विग्वरण-मधुपर्कदान-वेदिकोपरिचक्रलेखन-पञ्चवर्णवितान-तोरण-पताकादि-सर्व्वमुक्तं मत्स्यपुराणोक्ततुलापुरुषदानविहितं वेदितव्यं। स्वल्पेऽप्येकाग्निवदिति, एकाग्निवत् करणं व्याख्यातं।

काञ्चनस्यातिशुद्धस्य धेनुं वत्सञ्च कारयेत् ।
उत्तमा पलसहस्रैस्तदर्द्धेन तु मध्यमा ॥
कनीयसी तदर्द्धेन कामधेनुः प्रकीर्त्तिता ।
शक्तितस्त्रिपलादूर्द्धमशक्तोपीह कारयेत् ॥

अत्र यद्यपि वत्सपरिमाणमनुक्तं तथापि कामधेनुविधानवत् तत्रकाञ्चनचतुर्थांशेन वत्सःकल्पनीयः, समस्तधेनुपरिमितद्रव्यनिष्कृष्टवत्सनिर्माणव्याप्तिदर्शनादिहापि धेनुदानत्वाविशेषात् तथैव निश्चीयते। तथा च गुड़धेन्वादिषु तच्चतुर्थांशेन वत्सःस्यादिति तत्र तत्र वक्ष्यते।

वेद्यां कृष्णाजिनं तस्य गुड़प्रस्थसमन्वितम्।
न्यसेदुपरि तां धेनुं महारत्नैरलंकृताम्।
कुम्भाष्टकसमोपेतां नानाफलसमन्विताम्॥

कल्पतरुदाने, प्रस्थो व्याख्यातः। 'महारत्नानि, पद्मरागप्रभृतीनि, वत्सस्यैव तु विन्यसेदिति क्वचित्पाठः, 'नानाफलानि, गोगजवाजिस्त्रीपुरुषप्रभृतीनि, सौवर्णानि, कल्पतरुदानोक्तानि।

तथाष्टादशधान्यानि समन्तात् परिकल्पयेत्।
इक्षुदण्डाष्टकं तद्वन्नानाफलसमन्वितम्।
भाजनं चासनं तद्वत् ताम्रदोहनकं तथा॥

अष्टादशधान्यानि परिभाषायां द्रष्टव्यानि 'नानाफलानि, मातुलिङ्गादीनि।

कौशेय वस्त्रद्वयसंप्रयुक्ताम्
दीपातपत्राभरणाभिरामां।
स चामरां कुण्डलिनीं सघण्टां
गशिङ्गिकापादुकरौप्यपादाम्॥
रसैश्च सर्वैः परितोभिजुष्टां
हरिद्रया पुष्पफलैरनेकैः।
अजाजिकुस्तुम्बुरुशर्कराभिः

वितानकं चोपरि * पञ्चवर्णं ॥
स्नातस्ततो मङ्गलवेदघोषैः
प्रदक्षिणीकृत्य सपुष्पहस्तः ।
आवाहयेत्ताङ्गुड़धेनुमन्त्रैः
द्विजाय दद्यादथ दर्भपाणिः ॥

सघण्टागणत्रिकेत्यादि घण्टागणत्रिकापादुकाभिः सह वर्त्तत इतिसघण्टागणत्रिकापादुका साचासौ रौप्यपादाचेति विग्रहः । गणनासाधनत्वाद्गणत्रिका, अक्षमालागणत्रिकेति क्वचित्पाठः । तत्र गणत्रिका कण्ठभूषणं केचित्, केचित्तु गलन्तिकेति पठित्वा जलपूर्णांकर्करीति व्याचक्षते । रसाः परिभाषायामुक्ताः अजा जीरकं, कुस्तुम्बुरुर्द्धान्यकं, एवमुपकल्पितसम्भारः पूर्व्ववदधिवासनं विधाय तदन्यदिवसे प्रातः कृतपुण्याहवाचनोऽग्निकुण्डेषु ऋत्विगुपवेशनादिपूर्णाहुतिपर्य्यन्तकर्म्मशेषसमाप्तिं कृत्वा सर्व्वौषधिजलस्नातः शुक्लमाल्यांबरो गृहीतकुसुमाञ्जलिर्यजमानस्त्रिःप्रदक्षिणमाहृत्य गुड़धेनुमन्त्रैस्तामावाहयेत् । गुड़धेनुमन्त्राः । या लक्ष्मीः सर्व्वभूतानामित्यादयः, तत्प्रकरणे द्रष्टव्याः, आवाहनानन्तरं वक्ष्यमाणमन्त्रेणामन्त्रयेत् ।

त्वं सर्व्वदेवगणमन्दिरसङ्गभूता
विश्वेश्वरत्रिपथगोदधिपर्व्वतानां ।
त्वद्दानशस्त्रसकलीकृतपातकौघः
प्राप्तोस्मिनिर्वृतिमतीव परां नमामि ॥
लोके यथेप्सितफलार्थ विधायिनीं त्वा

* चामरपञ्चवर्णमितिपुस्तकान्तरे

मासाद्य कोऽपि भवदुःखमुपैति मर्त्यः।
संसारदुःखशमनाय यतस्व कामं
त्वां कामधेनुरितिदेवगणा वदन्ति॥
आमन्त्र्य शीलकुलरूपगुणान्विताय
विप्राय यः कनकधेनुमिमां प्रदद्यात्।
प्राप्नोति धाम सपुरन्दरदेवजुष्टं
कन्यागणैः परिवृतं पदमिन्दुमौलेः॥

दानवाक्यमत्र तुलापुरुषोक्तमूहनीयं, विप्रायेत्येकवचनमेकाग्निविधानपक्षे, अनेकाग्निविधानपक्षे तु प्रकृतिभूततुलापुरुषदानवदाचार्य्यादीनां विभागव्यवस्था तदनन्तरं पुण्याहवाचनवेदिस्थितदेवतापूजनविसर्जनानि कुर्य्यात् दक्षिणाविचारश्च पूर्व्ववत्।

इति मत्स्यपुराणोक्तो हिरण्यकामधेनुदानविधिः।

व्यासउवाच।

राजन्निहैकामपि कामधेनुं
दद्यात् समुद्दिश्य तु केशवं त्वाम्।
विप्राय वै सर्व्वगुणोपपन्नां
कृत्वा व्रतं कृच्छ्रमनोहरैस्तु॥
सम्यक् प्रदत्तैस्तु गवां सहस्रैः
सवत्सवस्त्रैः सहितैश्च हेम्ना।
काले फलं यल्लभते मनुष्यो
न कामधेनोश्च समं द्विजेभ्यः॥
शतैः सहस्रैश्च तथा हयानां

सम्यक् प्रदत्तैव महाहिपानां।
कन्यारथैर्वा करवाजियुक्तैः
शतैः सहस्रैः सततं द्विजेभ्यः॥
दत्तैः फलैर्यल्लभते मनुष्यः
समं तथा स्यान्नतु कामधेनोः।
यो जाह्नवीतीरगतो हिमाद्रौ
सन्तप्यतेऽतीवतपः सदा वै॥
ब्राह्मं पदं गन्तुमना द्विजेन्द्रो
नैतत् फलं तच्च हि कामधेनोः।
चान्द्रायणैः कृच्छ्रमहापराकैः
संशुद्ध्यते पापयुतो मनुष्यैः॥

कार्त्तिके कृष्णपक्षे तु नरः प्रयतमानसः।
एकादश्यामुपोष्याथ नरो दिनचतुष्टयम्॥
घृतेन स्नापयेद्विष्णुं गव्येन पयसापि वा।
नक्ताशी गोरसैर्द्रव्यैः पूजयेन्मधुसूदनम्।
गन्धपुष्पैः सुनैवेद्यैर्वस्त्राभरणकुण्डलैः॥

शङ्खासिचक्रोद्यतबाहुविष्णो
गदाजहस्तस्य तु शार्ङ्गपाणेः।
अर्घं प्रयच्छामि जनार्द्दनस्य
श्रिया युतस्यापि धराधरस्य॥
श्रियः पतिं श्रीधरमेककान्तं*

---

* श्रीनिवासकान्तमिति पुस्तकान्तरे पाठः।

श्रियः सखायं हि श्रियोनुकूलम्।
नमाम्यहं श्रीधरसन्निवासम्
समर्च्चितो मे प्रददातु कामान्॥
एवं पूज्य विधानेन श्रियायुक्तैस्तु नामभिः।
पृथक् जागरणं कुर्य्यात् श्रिया सार्द्धं जगत्पतेः॥
या देवी भार्गवं भेजे कुलं सर्व्वत्रपूजिता।
आयातु सा गृहे नन्दा सुप्रीता वरदा मम॥
याङ्गिरसं सदा देवी सुनन्दा प्रत्युपस्थिता।
आयातु मे गृहे सा तु सुप्रीता वरदा सती॥
सुरभी या भरद्वाजं कामधेनुः सुकामदा।
सदा भजेद्गृहं सात्र ममायातु सुरार्च्चिता॥
सुप्रीता काश्यपं या तु भेजे सर्व्वत्र कामदा।
सा मे भवतु सुप्रीता कामधेनु गृहे सदा॥
सुमना या वशिष्ठन्तु सम्प्राप्य मुमुदे शुभा।
सा मे गृहं सदायातु कामदा वरपूजिता*॥
एवं पूज्य विधानेन प्रभाते विमले शुभे।
शुक्लाम्बरधरःस्नातः शुक्लमाल्यानुलेपनः॥
कृतनित्यक्रियो हृष्टः कुण्डलाङ्गदभूषितः।
अनुलिप्ते महीपृष्ठे कृष्णाजिनसुसंस्तृते॥
तिलप्रस्थेनवाकीर्णे चतुःवर्णविभूषिते†।
क्षौमवस्त्रान्विते शुभ्रे मध्वाज्यपात्रसंयुते॥

---

* कामधेनुः प्रपूजिता इति पुस्तकान्तरे।
† चतुर्वर्ण प्रपूजिते इति क्वचित् पाठः।

शुभवस्त्रैः समावृत्य सर्व्वरत्नैरलंकृताम् ।
सुवर्णशृङ्गीं-सखुरांश्चतुष्कर्णां मनोरमाम् ॥
क्षीराब्धिपयसोपेतां धेनुमन्त्रैस्तु पूजयेत् ।
या धेनुः सर्व्वदेवानामृषीणां भावितात्मनाम् ॥
क्षीराब्धिनिर्गता या च सा मे भवतु सुस्थिरा ।
घृतक्षीराभिषेकं च कृत्वा विष्णोः प्रयत्नतः ॥
समभ्यर्च्य यथा श्रेयं गन्धपुष्पादिभिः क्रमात् ।
गावो ममाग्रतः सन्तु गावः पार्श्वे तु पृष्ठतः ॥
गावो मे हृदये नित्यं गवांमध्ये वसाम्यहम् ।
प्राङ्मुखोदङ्मुखीं वापि सितयज्ञोपवासिनीं ॥
इमान्त्वं प्रतिगृह्णीष्व देव देव जगत्पते ।
सवत्सालंकृतां धेनुं गोविन्दः प्रीयतामिति ॥
एवं विप्राय तान्दद्यात् कृत्वा चैव प्रदक्षिणम् ।
अनुव्रजेच्च गच्छन्तं पदान्यष्टौ नराधिप ॥
अनेन विधिना यस्तु कामधेनुं प्रयच्छति ।
सर्व्वकामसमृद्धार्थः स्वर्गलोके स गच्छति ॥
यद्दत्त्वा सकलां पृथ्वीं राहुग्रस्ते दिवाकरे ।
तत्फलं प्राप्यते राजन् कामधेन्वा न संशयः ॥
चिन्तामणिः कामधेनु स्तथा भद्रघटो नृप ।
त्रीणि समफलान्याहुर्दानानि मुनिसत्तमाः ॥
सप्तावरान् सप्तपरान् आत्मानं चैव मानवः ।
शतजन्मकृतात्पापान्मोचयत्यवनीपते ॥
पदे पदेऽश्वमेधस्य फलं प्राप्नोति मानवः ।

दानानामेव सर्व्वेषामुत्तमं परिकीर्त्तितम् ॥
सर्व्वकामप्रदञ्चान्यं पापघ्नं सर्व्वदं शुभम्।
सर्व्वेषामेव पापानां जातानां महतामपि ॥
प्रायश्चित्तमिदं शस्तं कथितं ब्रह्मणा नृप।
ब्रह्मविट्-क्षत्र-शूद्राणां कर्त्तव्या यत्नतो नृप ॥
सर्व्वकामफलार्थाय कामधेनुरियं सतां
हृषाज्य-तिल-होमेन कामधेनुं-प्रयत्नतः।
संकल्य प्रतिपाद्येह सर्वपृथ्वीप्रदो भवेत् ॥

इति वह्निपुराणोक्तकामधेनुदानविधिः।

अथ लिङ्गपुराणे।

सनत्कुमार उवाच।

अथातः संप्रवक्ष्यामि हेमधेनुविधिं क्रमात्*।
सर्व्वपाप-प्रशमनं देशदुर्भिक्षनाशनम् ॥
उपसर्ग-विनाशञ्च सर्वव्याधिनिवारणम्।
निष्काणान्तु सहस्रेण सुवर्णेन तु कारयेत् ॥
तदर्द्धेनापि वा सम्यक् तदर्द्धार्द्धेन वा पुनः।
शतेन वा प्रकर्त्तव्यं सर्व्वकार्येषु सुव्रतः ॥

सर्वकार्य्येष्विति अव्यक्तेषु अनुक्तमानेषु सौवर्णसम्प्रदेयेषु सहस्रादिशतावरमानत्वमवधेयमिति इयं चोक्तिः प्रासङ्गिकी वा-तुलेमानान्तरमुक्तं। त्रिपलादिसहस्रान्तं हेम्ना धेनुं प्रकल्पये-दिति।

---

* नृपहति पुस्तकान्तरे।

शिवाय कामधेनुन्तु पलानां पञ्चभिःशतैः।
यो ददाति महासेन राहुग्रस्ते दिवाकरे।
तेन दत्तं भवेत्सर्व्वमाब्रह्मभुवनात्मिकम्।
इति कालोत्तरमतम्।
गोरूपं सखुरन्दिव्यं सर्व्वलक्षणसंयुतम्।
खुराग्रे विन्यसेद्वज्रं शृङ्गे वै पद्मरागकम्॥
भ्रुवोर्म्मध्ये न्यसेद्दिव्यं मौक्तिकं मुनिसत्तम।
वैदूर्य्येण स्तनान् कुर्य्याल्लाङ्गूलं नीलनिर्मितम्॥
दन्तस्थाने प्रकर्त्तव्यं सर्व्वरत्नविभूषितम्।
पशुवत् कारयित्वा तु वत्सं कुर्य्यात् सुशोभनम्॥
दशांशकेन कर्त्तव्यं सर्व्वरत्नविभूषितम्।
कामिकेतु, तुरीयांशेन वत्सकइत्युक्तम्।
पूर्व्वोक्तवेदिकामध्ये मण्डलञ्च प्रकल्पयेत्॥
तन्मध्ये सुरभिं स्थाप्य सर्व्वतः सर्व्वरत्नकाम्।
सवत्सां सुरभिं तत्र वस्त्रयुग्मेन वेष्टयेत्॥
संपूजयेत्तु गायत्र्या सवत्सां सुरभिं पुनः।
यथैकाग्निविधानेन होमं कुर्य्यात् यथा विधि॥
समिदन्नाज्यभागेन पूर्व्ववत्शेषमाचरेत्।
शिवपूजा प्रकर्त्तव्या लिङ्गं स्नाप्य घृतादिभिः॥
गामालभ्य च गायत्र्या विप्रेभ्यो दापयेच्च तां।
दक्षिणा च प्रदातव्या विंशन्निष्कं महामते॥
'गायत्र्या' गोसावित्र्याख्यस्तोत्रमन्त्रेणेत्यर्थः।
गोसावित्रीतिमन्त्रेण मन्त्रयीत विचक्षणः।

इति वातुलोक्तिः,

कामिके तु।

घृताद्यैः पूजयेद्देवं सहस्रकलशादिभिः।
गामाराध्य तु गायत्र्या विप्रेभ्यो दापयेच्च ताम्॥
आचार्य्यं पूजयेत् पूर्वं केयूरकटकादिभिः।
वस्त्रयुग्मञ्च दद्यात्तु विज्ञाप्य विधिपूर्व्वकम्।
दक्षिणा तु प्रदातव्या त्रिंशन्निष्का महातपः॥

त्रिंशन्निष्कदक्षिणादानन्तु, एकाग्निपक्षविषयं, अनेकाग्नि पक्षे तुलापुरुषवद्दक्षिणा।

तदुक्तं शैवे।

अथैकाग्निविधानं वा समिदाज्यं हविष्ययुक्।
त्रिंशनिष्कावरा देया गुरोरेकाग्निकल्पत इति॥

एकाग्निपक्षश्च स्वल्पवित्तविषयः।

पूर्व्ववत् शेषमिति, शेषमनुक्तं किञ्चित् तदखिलं लिङ्गपुराणोक्त तुलापुरुषविहितमाचरेदित्यर्थः।

वातुलोत्तरे। एतस्यास्तु प्रदाता यस्तेन दत्तं चराचरम्।
त्रिःसप्तकुलसंयुक्तो विमानैर्दिव्यवर्च्चसैः॥
शिवलोकमवाप्नोति यावदिन्द्राश्चतुर्द्दश।
तदन्ते चक्रवर्त्ती स्यात् ज्ञानवांस्तु शिवं व्रजेत्॥

इति नानाशास्त्रीयकामधेनुदानम्।

अथ हिरण्याश्वाभिधानं सप्तमं महादानमालिख्यते।

मत्स्य उवाच।

अथातः संप्रवक्ष्यामि हिरण्याश्वविधिम्परम्।

यस्य प्रसादाद्भवन मनन्तफलमश्नुते ॥
पुण्यं तिथिमथासाद्य कृत्वा ब्राह्मणवाचनम्।
लोकेशावाहनं कुर्य्यात्तुलापुरुषदानवत् ॥
ऋत्विग्मण्डपसम्भारभूषणाच्छादनादिकम्।
स्वल्पेऽप्येकाग्निवत् कुर्य्याद्धेमवाजिमखं बुधः ॥

अत्रादिशब्देन देश-काल-वृद्धिश्राद्ध-शिवादिपूजा-गुरुऋत्विग्वरण-मधुपर्कदान-वेदिकोपरिचक्रलेखन-वितानतोरणपताका-धिवासनादि मत्स्यपुराणोक्ततुलापुरुषदानविहितं संगृह्यते, स्वल्पेऽप्येकाग्नि वदिति, व्याख्यातं, स्थापयेद्वेदिमध्ये तु कृष्णाजिनतिलोपरि, कृष्णाजिननिहितद्रोणपरिमिततिलोपरीति विज्ञेयम्।

कौशेयवस्त्रसम्वीतं कारयेद्धेमवाजिनम्।
शक्तितस्त्रिपलादूर्द्धमासहस्रपलाद्बुधः ॥
पादुकोपानहच्छत्रचामरासनभाजनैः
पूर्णकुम्भाष्टकोपेतं माल्येक्षुफलसंयुतम्।
शय्यां सोपस्करान्तद्वद्धेममार्त्तण्डसंयुताम् ॥

शय्योपस्करा विविधास्तरणोपधानवस्त्रफलपुष्पकुङ्कुमकर्पूरागुरुचन्दनतांबूलदर्प्पणकङ्कतिकाचामरव्यजनासन एतदग्रस्थित पात्रा*सि मुद्रिकोपानहयुगलताम्रघटिकादिजलपात्रदीपिका वितानादयः, मार्त्तण्डसंयुतमिति, उपर्य्यारूढ़सौवर्णं सूर्य्याश्वं कुर्य्यादित्यर्थः।

---

* पुत्रिकेति पुस्तकान्तरे।

सूर्य्यलक्षणमुक्तं ब्रह्माण्डे।

ततः सर्व्वौषधिस्नानस्नापितो वेदपुङ्गवैः।
इम मुच्चारयेन्मन्त्रं गृहीतकुसुमाञ्जलिः॥

इहापि पूर्व्वेद्युरधिवासनं विधाय द्वितीयदिवसे पूर्ववत् पुण्याहवाचनादि-पूर्णाहुतिपर्य्यन्तं कर्म्म, गुरुः समापयेत्।

अथ सर्व्वौषधिजलस्नातः शुक्लाम्बरो यजमानस्त्रिःप्रदक्षिणीकृत्य वक्ष्यमाणमन्त्रमुदीरयेत्।

नमस्ते सर्व्वदेवेश वेदाहरणलम्पट।
वाजिरूपेण मामस्मात् पाहि संसारसागरात्॥
त्वमेव सप्तधा भूत्वा छन्दोरूपेण भास्करम्।
यस्मात् भ्रामयसे लोकानतः पाहि सनातनः॥
एव मुच्चार्य्य गुरवे तमश्वं विनिवेदयेत्।
दत्त्वा पापक्षयाद्भानोर्लोकमभ्येति शाश्वतम्॥
गोभिर्विभवतः सर्व्वान् ऋत्विजश्चाभिपूजयेत्।
सर्व्वधान्योपकरणं गुरवे विनिवेदयेत्॥
सर्व्वं शय्यादिकं कृत्वा भुञ्जीतातैलमेव हि।
पुराणश्रवणं तद्वत् कारयेद्भोजनादनु॥

दानवाक्यमत्र पूर्व्ववदनुसन्धेयं, अनुक्तदक्षिणेषु सुवर्णं दक्षिणेति, यथा शक्तिसुवर्णदक्षिणा, विभवतो स्वविभवानुसारेण सर्व्वान् सदस्यादीनृत्विजश्च गोभिः पूजयेत्, सर्व्वधान्योपकरणमिति, विनियोगात् पूर्व्वं धान्यसादनं गम्यते, गुरवे निवेदयेदिति, स्वल्पद्रव्यदाने चाचार्य्यायैव अश्वं प्रदाय ऋत्विग्भ्यो यथाशक्ति सुवर्णादि दद्यात् सहस्रपलादिद्रव्यदाने तु प्रकृतिवद्व्यवस्था,

स्वल्पतरेष्वेकाग्निपक्षेऽपि द्रष्टव्या ततश्च पूर्व्ववत् पुण्याहवाचन देवतापूजनविसर्जनानि कुर्य्यात् ।

इमं हिरण्याश्वविधिं करोति यः
संपूज्यमानो दिवि देवतेन्द्रैः ।
विमुक्तपापः स पुरं मुरारेः
प्राप्नोति सिद्धैरभिपूजितः सन् ॥
इति पठति य एतद्धेमवाजिप्रदानम्
सकलकलुषमुक्तः सोऽश्वमेधेन भूपः ।
कनकमयविमानेनार्कलोकं प्रयाति
त्रिदशपतिवधूभिः पूज्यते योऽथ पश्येत् ॥
यो वा शृणोति पुरुषोऽल्पधनः स्मरेद्वा
हेमाश्वदानमभिनन्दयतीह लोके ।
सोपि प्रयाति हतकल्मषशुद्धदेहः
स्थानं पुरन्दरमहेश्वरदेवजुष्टम् ॥

इति मत्स्यपुराणोक्तो हिरण्याश्वदानविधिः ।

सनत्कुमार उवाच ।

हिरण्याश्वप्रदानं च वक्ष्यामि विजयावहम् ।
अश्वमेधायुतश्रेष्ठं रहस्यं शृणु सुव्रत ॥
अष्टोत्तरसहस्रेण अष्टोत्तरशतेन वा ।
कृत्वा श्वंलक्षणैर्युक्तं सर्व्वालङ्कारसंयुतम् ॥

शतसहस्रशब्दो, विहितोपलक्षणपरो ।

शक्तितस्त्रिपलादूर्द्ध्वमासहस्रपलावधि ।

अल्पे त्वेकाग्निवत् कुर्य्यात् हैम वाजिमखं बुध ॥

इति वातुलोक्तिः।

पञ्चकल्याणकं सम्यक् रजतेन तु कारयेत्।

चतुर्षु पदेषु मुखे च श्वेतोहयः पञ्चकल्याणक उच्यते ॥

सर्व्वलक्षणसंयुक्तं सर्व्वाङ्गैश्च समन्वितम्।

सर्व्वायुधसमोपेतं इन्द्रवाहनमव्ययम् ॥

तं मध्यदेशे संस्थाप्य तुरङ्गं सद्गुणान्वितम्।

उच्चैःश्रवःसमं ज्ञात्वा आनीयैव समर्च्चयेत् ॥

मध्यदेशेसंस्थाप्येति, एतद्दानप्रकृतिभूतलिङ्गपुराणोक्ततुला-पुरुषदानविहितवेदिकामण्डलमध्ये तिलोपरि तमश्वं संस्थाप्य उच्चैःश्रवसमनुध्यायन् पूजयेत्।

तस्य पूर्वदिशाभागे ब्राह्मणं वेदपारगम्।

सुरेन्द्रबुद्ध्या सम्पूज्य पञ्चनिष्कान् प्रदापयेत् ॥

तमश्वं ब्राह्मणे भ्यर्च्य प्रदद्याद्विधिनैव तु।

सुवर्णाश्वं प्रदद्यात्तु आचार्यमथपूजयेत् ॥

यथा विभवविस्तारं पञ्चनिष्कैरथापि वा।

दीनान्ध-कृपणा-नाथ-वाल-वृद्ध-कृशा-तुरान्।

तोषयेदन्नदानेन ब्राह्मणांश्च विशेषतः ॥

घृतेन स्नापयेद्देवं लिङ्गमूर्त्तिमहेश्वरम्।

सङ्ख्यापलशतं तस्य पयसात्वेवमेव हि ॥

ब्रह्मकूर्चेन संस्थाप्य विलिप्यागुरुचन्दनैः।

सम्पूज्य प्रणिपत्याथ देवदेवं क्षमापयेत् ॥

एतद्यःकुरुते भक्त्या दानमश्वस्य मानवः।

ऐन्द्राल्लोकांश्चिरं भुक्त्वा भुवि राजेश्वरो भवेत्॥
इन्द्रबुद्ध्या आराधित विप्राय पञ्चनिष्कान्
दत्त्वा श्रोत्रियादिभ्यो हिरण्याश्वं दत्त्वा आचार्य्यायाभ्यर्चितस्मै
निष्कपञ्चकं दद्यात् शिवस्नपनादि पूर्वोत्तरतन्त्रं सर्वं पूर्ववत्।
मत्स्यपुराणादौ तु आचार्य्यायैवाश्वदानमुक्तं।

कामिकातु,

गन्धादि भिस्तमभ्यर्च्य विप्रेभ्योविनिवेदयेत्।
सुरेन्द्रबुद्ध्या सम्पूज्य पञ्चनिष्कान् प्रदाय च॥
मण्डलाभ्यर्चनं होमं कलशस्थापनं तथा।
दक्षिणां देशिकादीनां तुलाभारवदाचरेत्॥

इति लिङ्गपुराणोक्तो हिरण्याश्वदानविधिः।

अथ हिरण्याश्वरथनामधेयमष्टमं महादानमुपक्रम्यते,

मत्स्यपुराणे।

मत्स्य उवाच।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि महादान मनुत्तमं।
पुण्यमश्वरथं नाम महापातकनाशनम्॥
पुण्यं दिनमथासाद्य कृत्वा ब्राह्मणवाचनम्।
लोकेशावाहनं कुर्य्यात्तुलापुरुषदानवत्।
ऋत्विग्मण्डपसम्भारभूषणाच्छादनादिकम्॥

तुलापुरुषदानवदिति, मत्स्यपुराणोक्त तुलापुरुषवद्देदितव्यं,
आदिशब्दस्यापि पूर्ववदेव व्याख्या

कृष्णाजिने तिलान् कृत्वा काञ्चनं कारयेद्रथम्।
अष्टाश्वं चतुरश्वं वा चतुश्चक्रं सकूवरम्॥

इन्द्रनीलेन कुम्भेन * ध्वजरूपेण संयुतम्।
लोकपालाष्टकोपेतं पद्मरागदलान्वितं॥

अत्र तिलानां रथस्य च परिमाणापेक्षायां पुरुषेच्छया नियमः प्रकृतौ परिमाणाश्रवणात्, केचित्तु सन्निधानात् सुवर्णहस्ति रथादिदानस्थितं तिलानां द्रोणपरिमाणत्वमिह वदन्ति। 'कूवरो, युगाधारकाष्ठं। ध्वजो 'दण्डः, स च रथस्य सौवर्णत्वात्सौवर्णएव तथा चोपरिस्थितेन इन्द्रनीलमणिमयेन कलशेन युक्तः कर्त्तव्यः। लोकपाललक्षणमुक्तं ब्रह्माण्डे,

चत्वारः पूर्णकलशा धान्यान्यष्टौदशैव तु।
कौशेयवस्त्रसंयुक्तमुपरिष्टाद्वितानकम्॥
माल्यैक्षुपलसंयुक्तं पुरुषेण समन्वितम्।
यो यद्भक्तःपुमान् कुर्य्यात् शतनाम्नाधिवासनम्।

वितानमत्र पञ्चवर्णं, पुरुष इष्टदेवताकारः सौवर्णरथे स्थापनीयः, वस्त्रोपानहपादुकाः।

गोभिर्विभवतः सार्द्धं दद्याच्च शयनासनम्।
आभारात्त्रिपलादूर्द्धं शक्तितः कारयेद्बुधः॥

'भारः, पलसहस्रद्वयं, एतच्च सुवर्णमानं ध्वजपुरुषलोकपालाश्वचक्ररक्षकसहितस्य वेदितव्यं।

अष्टभीरथसयुक्तं चतुर्भीरथवाजिभिः।
द्वाभ्यामथयुतं दद्याद्धेमसिंहध्वजान्वितम्॥

हैमेन सिंहाङ्कितेनयुक्तमिति अष्टाश्वपक्षे, चतुरश्वपक्षे च इन्द्रनीलमयकुम्भो ध्वजे कार्य्यः, अश्वद्वयपक्षे हेमसिंहइति व्यवस्था।

---

* कुम्भेनेति पुस्तकान्तरे।

चक्ररक्षावुभौ तस्य तुरगस्थावथाश्विनौ ।
पुण्यं कालं ततः प्राप्य पूर्ववत् स्नापितो द्विजैः ।
शुक्लमाल्याम्बरो दद्यादिमं मन्त्रमुदीरयेत् ॥

चक्ररक्षौ चक्रसमीपे अश्वारूढ़ावश्विनीकुमारौ कार्य्यौ ।

तल्लक्षणमाह गोभिलः ।

द्विभुजौ देवभिषजौ कर्त्तव्यावश्ववाहनौ ।
तयोरोषधयः कार्य्यादिव्या दक्षिणहस्तयोः ।
वामयोः पुस्तकौ कार्य्यौ दर्शनीयौ तथा द्विजेति ॥

'पुण्यकालं' यजमामानुकूलं लग्नमूहूर्त्तादिकम् ।

अत्रापि पूर्व्ववदधिवासनदिनादन्यदिवसे पुण्याहवाचनादि सकलकर्म्मसमाप्तौ सर्व्वौषधिजलस्नातो गृहीतकुसुमाञ्जलिः यजमानस्त्रिःप्रदक्षिणीकृत्य वक्ष्यमाणं मन्त्रं मुदाहरेत् ।

नमो नमः पापविनाशनाय
विश्वात्मने वेदतुरङ्गमाय ।
धाम्नामधीशाय भवाभवाय
पापौघदावानल देहि शान्तिम् ॥
वस्वष्टकादित्यमरुद्गणानाम्
त्वमेव धाता परमं निधानम् ।
यतस्ततोमे हृदयं प्रयातु
धर्म्मैकतानत्वमघौघनाशात् ॥

इहापि दानप्रयोगसुवर्णदक्षिणादानऋत्विगाचार्य्यद्रव्यविभागस्वल्पैकाग्निविधानादि पूर्व्ववदनुसन्धेयम्, ततः पुण्याहवाचनदेवतापूजन-विसर्जनादिकुर्य्यात् ।

(३६)

अथाथर्वणगोपथ ब्राह्मणे।

ओं अथातो अश्वरथविधिमनुक्रमिष्यामः।

सर्व्वपापापनोदन उदमयन आपूर्य्यमाणपक्षेऽश्वःपुष्ये नक्षत्रे-
ऽग्निप्रेरितोऽश्वयुक्तो प्रश्नकाले वा अथ ऋत्विक् प्रदानकालात्
सुवर्णं रथमानीय सर्व्वं गान्ध्युदकेनाभ्युक्ष्य यथोक्ताभ्यञ्जनाभ्यञ्ज-
नानुलेपनं कारयित्वा, वासोगन्धान् स्रजश्चावध्य अग्निमुपसमा-
धाय अन्वालभ्याथ जुहुयादुदेहि वाजिन्निति द्वाभ्यां, सूर्य्यं चक्रं
अर्पयित्वा विषासहिं सहमानमित्यभिमन्त्र्यान्वालभ्याथ जुहुयात्
रथं योक्तं युगमश्चौच सर्वंगान्ध्युदकेनाप्राव्य वा तुरङ्गम् वाजि-
न्नित्यश्वयोर्मूर्द्ध्नि सम्पातान् स्थालीपाकाद्यजेत्। उदयते नम
इति नवभिर्मन्त्रैः नमस्कृत्य द्विजानन्ते तर्पयेत्।

तत्र श्लोकौ।

सर्व्वेषामेव दानानां फलं यत्तत् प्रकीर्त्तितम्।
तत्तदाप्नोति विप्रेभ्यो विधिनाश्वरथन्ददत्॥

अनामयं स्थानमवाप्य देवैः
रत्नक्षमीयं सुकृतं हिरण्मयम्।
सुवर्णतेजाः प्रविमुक्तपापो
रथैश्चरन् दिव्यति सूर्य्यलोके॥

मत्स्यपुराणे।

इति तुरगरथ प्रदानमेत
द्भवभय सूदन मत्र यः करोति।
सकलकलुषपटलैर्विमुक्तदेहः
परममुपैति पदं पिनाकपाणेः॥

देदीप्यमानवपुषा विजितप्रभाव-
माक्रम्य मण्डलमखण्डलचण्डभानोः ।
सिद्धाङ्गनानयनषट्पदपीयमानो
वक्त्राम्बुजाम्बुजभवेन चिरं सहास्ते ॥
इति पठति शृणोति वा य इत्यम् ।
कनकतुरङ्गमरथप्रदानमेव ।
न स नरकपुरं ब्रजेत् कदाचि
न्नरकरिपोर्भवनं प्रयाति भूयः ॥
इति हिरण्याश्वरथदानविधिः ।

अथ हेमहस्तिरथाभिधानं नवमम् महादानमारभ्यते ।

मत्स्यपुराणे मत्स्य उवाच ।

अथातः संप्रवक्ष्यामि हेमहस्तिरथं शुभम् ।
यस्य प्रदानाद्भवनं वैष्णव्यं याति मानवः ॥
पुण्यां तिथिमथासाद्य तुलापुरुषदानवत् ।
विप्रवाचनकं कुर्य्याल्लोके शावाहनं बुधः ॥
ऋत्विङ्मण्डपसम्भारभूषणाच्छादनादिकम् ।
अत्राप्युपोषितं तद्वद्ब्राह्मणैः सह भोजनम् ॥

इहाप्यादिशब्देन देश-काल-ऋत्विग्श्राद्धादि-सर्व्वमनुक्तं मत्स्य-पुराणोक्ततुलापुरुषस्थितं वेदितव्यं । उपोषित इति, उपवासा-शक्तौ नक्तमपि विदितव्यम् ।

कुर्य्यात् पुष्परथाकारं काञ्चनं मणिमण्डितम् ।
वलभीभिर्व्विचित्राभिश्चतुश्चक्रसमन्वितम् ॥
लोकपालाष्टकोपेतं शिवार्कब्रह्मसंयुतम् ।

मध्ये नारायणोपेतं लक्ष्मीपुष्टिसमन्वितम् ॥

'पुष्परथः, क्रीड़ार्थो रथः, सचतुष्किकाकारेणोपर्याच्छादितो भवति वलयेभ्यो लोकपालाश्रयः, लोकपालब्रह्मशिवार्कलक्षण-मुक्तं ब्रह्माण्डे, मध्यशब्दः पूर्व्वापराभ्यां सम्बध्यते, शिवादीनामपि स्थानापेक्षायास्तेनैव निवृत्तेः।

नारायणादिलक्षणं पञ्चरात्रात्।

नारायणो चतुर्बाहुः शङ्खं चक्रं तथोत्तरे।
दक्षिणे तु महापद्मं नीलजीमूतसन्निभे।
वामे श्रीर्वर्त्तकीहस्ता पुष्टिः पद्मकरा परेति ॥
कृष्णाजिने तिलद्रोणं कृत्वा संस्थापयेद्रथम्।
तथाष्टादशधान्यानि भाजनासनचन्दनैः ॥
दीपिकोपानहच्छत्रपादुकादर्पणान्वितम्।
ध्वजेतु गरुड़ं कुर्य्यात् कूवराग्रे विनायकम् ॥
नानाफलसमायुक्तं उपरिष्टाद्वितानकम्।
कौशेयं पञ्चवर्णं च अम्लानकुसुमान्वितम् ॥
चतुर्भिः कलशैः सार्द्धं गोभिरष्टाभिरन्वितम्।
चतुर्भिर्हैयमातङ्गैर्मुक्तादाम विभूषितैः ॥
स्वरूपतः करिभ्याश्च युतं कृत्वा निवेदयेत्।
कुर्य्यात् पञ्चपलादूर्द्ध्वमाभारादपि शक्तितः ॥
ध्वजेतु गरुड़ं कुर्य्यादित्यादि, ध्वजोदण्डः।

गरुड़लक्षणमुक्तं नारदीये।

श्री ऐन्द्रस्यायतः पक्षी गुड़ाकेशः कृताञ्जलिः।
सव्यजानुगतो भूमौ मूर्द्धि च फणि मण्डितः ॥

पक्षिजङ्घो नरग्रीवस्तुङ्गनासो नराङ्गकः ।
द्विबाहुः पक्षयुक्तश्च कर्त्तव्यो विनतासुतः ॥

अथ विनायकस्य ।

चतुर्भुजस्त्रिनेत्रश्च कर्त्तव्योऽत्र गजाननः ।
नागयज्ञोपवीतश्च शशाङ्ककृतशेखरः ॥
दन्तं दक्षकरे दद्याद्द्वितीये चाक्षसूत्रकम् ।
तृतीये परशुं दद्याच्चतुर्थे मोदकं तथा ॥

उपर्य्यधोहस्तयोर्दन्तादि, देयमिति, कूबरोव्याख्यातः ।

'अम्लान कुसुमं, पुष्पविशेषः ।

रूढिर्यौगिकमुपहरतीतिन्यायात् ।

महासहेति प्रसिद्धमेव गृह्यते भारो व्याख्यातः ।

ध्वजगतदेवताश्च पञ्चपलादिपरिमितेन रथवत् कृतसुवर्णेनैव निष्पादनीयाः एवं सम्भारानुपकल्प्य पूर्व्ववदधिवासनं विधाय दिवसेषु पुण्याहवाचनादिसकलं कर्म्मकाण्डं समाप्य सर्व्वौषधिजलैराचार्य्यो यजमानस्य स्नपनं कुर्य्यात् ।

ततो मङ्गलशब्देन स्नापितो वेदपुङ्गवैः ।
त्रिःप्रदक्षिणमावृत्य गृहीतकुसुमाञ्जलिः ।
इममुच्चारयेन्मन्त्रं ब्राह्मणेभ्यो निवेदयेत् ॥

नमो नमः शङ्करपद्मजार्कलोकेशविद्याधरवासुदेवैः ।
त्वं सेव्यसे देव पुराण यस्मात्तेजोमयस्यन्दन पाहि यस्मात् ॥
यत्तत्पदं गुह्यतमं मुरारेरानन्दहेतुगुणरूपमन्तः ।
योगैकमानसदृशोमुनयः समाधौ पश्यन्ति तत्त्वमसि नाथ रथेऽधिरूढः ।

यस्मात्त्वमेव भवसागरसंश्रिताना
मानन्दभाण्डभृतमध्वरपानपात्रं।
तस्मादघौघशमनेन कुरु प्रसादं
चामीकरेभरथसाधवसम्प्रदानात् ॥

मन्त्रेणानेन प्रणम्य यथा शक्ति सुवर्णदक्षिणा मुपकल्प्यपूर्व्ववत् प्रयोगमुच्चार्य्य तं गजरथं प्रत्यक्षगजसंयुतं ब्राह्मणेभ्यः प्रतिपादयेत्, आचार्य्यादीनामर्द्धचतुर्भागादिव्यवस्था तदनुज्ञयाचान्येभ्योपि दानं, दीनानाथपूरणं चेति, प्रकृतिवदाचरणीयं, ततः पुण्याहवाचने कृते यजमानो वेदिसमीपं गत्वा देवतापूजां विदध्यात्। आचार्य्यस्तु विसर्ज्ज्येच्च, आथर्वणगोपथब्राह्मणे, अथातो हस्तिरथदानविधिं वक्ष्ये।

जातरूपमयं कृत्वा रथं चक्रसुशोभनम्।
हस्तिभिः सप्तभिर्युक्तमर्चयित्वा यथाविधि ॥
अथवा चतुर्भिर्युक्तं हैमं राजतमेव वा।
अस्पृष्टं दारुजं वापि सर्व्वसम्भारपूरितम् ॥
हस्तियुग्मेन सम्बोतं* सौरभेययुगेन वा।
भुङ्क्ते सप्तैव जन्मानि सप्तद्वीपां वसुन्धराम् ॥

हस्तियुक्ते चन्द्रमसि पौर्णमास्यमावास्ययोरन्यस्मिन् पुण्येतिथौऽह्नि हस्ति वा शुचौ देशे तन्त्रमित्युक्तं प्राचमिध्ममग्निमुपसमाधायान्वारभ्याय जुहुयात्। सवित्रे स्वाहा, पतङ्गाय स्वाहा, पावकायस्वाहा, सहस्ररश्मये स्वाहा, मार्त्तण्डाय स्वाहा, विष्णवे स्वाहा, प्रजापतये स्वाहा परमेष्ठिने स्वाहेतिहुत्वा हस्तिवर्चसप्रयतां-

---

* संयुक्तमिति पुस्तकान्तरे।

हस्त्यश्व इति कलशे सम्पातानानीय युगं योक्तुं रथमिति सर्वं सम्प्रोक्ष्य यद्यस्त्वामनसा युनज्मीति योजयेत् ।

यश्चास्तस्य त्वामनसा युनज्मि प्रथमस्य च उत्तमुद्गहो ।

भवोदुह्य धावतां युक्तायार्घं दद्यात् स्वार्वैर्युक्तः सितपाहिरणमयो यस्य रथः पथिभिर्वर्त्तते शिवैः यन्तोश्चमे वसुविदा हिरण्यहस्तहिरण्यपाणिः सविता नोऽभिरक्षतु ।

हस्तहस्तिरथंयुक्तं हस्तेन तुदद्न्तरः ।
सवितु स्थानमाप्नोति दिव्यां कामजवां शुभाम् ॥

मत्स्यपुराणे । इत्थं प्रणम्य कनकेन रथप्रदानं ।
यः कारयेत्सकलपापविमुक्तदेहः ।
विद्याधरामरमुनीन्द्रगणाभिजुष्टम् ॥
प्राप्नोत्यसौ पदमतीन्द्रियमिन्दुमौलेः ॥
कृतदुरितवितानप्रोज्ज्वलद्वह्निजाल
व्यतिकरकृतदाहोद्वेगभाजोपि बन्धून् ।
नयति च पितृपौत्रान् रौरवाद्प्यशेषान्
कृत गजरथदानः शाश्वतं सद्म विष्णोः ॥
इति हेम हस्ति रथदानविधिः ।

अथ पञ्चलाङ्गलाख्यं दशमं महादानमुपपाद्यते ।

मत्स्य उवाच ।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि महादानमनुत्तमं ।
पञ्चलाङ्गलकं नाम महापातकनाशनम् ॥
पुण्यां तिथिमथासाद्य युगादिग्रहणादिकाम् ।
भूमिदानं नरोदद्यात् पञ्चलाङ्गलकान्वितम् ॥

कर्वटं खेटकं वापि ग्रामं वा सस्यशालिनम्।
निवर्त्तनं शतं वापि तदर्द्धं वापि शक्तितः॥
सारदारुमयान् कृत्वा हलान् पञ्च विचक्षणः।
सर्वोपकरणैर्युक्तांस्तथान्यान् पञ्च काञ्चनान्॥

कर्वटादिस्वरूपं मार्कण्डेयपुराणे।

सोत्सेधवप्राकारं सर्वतः खातकावृतम्।
योजनार्द्धार्द्धविष्कम्भमष्टभागायतं पुरम्॥
तदर्द्धेन तथा खेटं तत्पादेनञ्च कर्वटम्।
तथा शूद्रजनप्रायाः सुसमृद्धकृषीवलाः॥
क्षेत्रोपभोगभूमध्ये वसति ग्रामसंज्ञितेति।
निवर्त्तमानन्तु सप्तहस्तेन दण्डेनेत्यादि वक्ष्यति॥

'सारदारूणि' शाकेङ्गुदीचन्दनप्रभृतीनि, 'उपकरणानि' युगयोक्त्रफालरज्जुप्राजनादीनि।

वृषान् लक्षणसंयुक्तान् दशैव च धुरन्धरान्।
सुवर्णशृङ्गाभरणान् मुक्तालाङ्गूलभूषणान्॥
रौप्यपादाग्रतिलकान् रक्तकौशेयभूषितान्।
स्रग्दामचन्दनयुतान्* शालायामधिवासयेत्॥

वृषलक्षणानि सुशीलत्वं त्वरुणत्वम् इन्द्रियत्वम् अरोगित्वम् क्लेशसहत्वमित्यादीनि।

'अग्र', ललाटदेशः, ततश्च रौप्यपादान् रौप्यललाटतिलकांश्चेति।

पर्जन्यादित्यरुद्रेभ्यः पायसन्निर्वपेच्चरुम्।
एकस्मिन्नेव कुण्डे तु चरुमस्मै निवेदयेत्॥

---

* स्रग्गन्धचन्दनयुतामिति पुस्तकान्तरे पाठः।

पलाशसमिधस्तद्वदाज्यं कृष्णतिलांस्तथा ॥

इहापि पूर्व्ववदधिवासनादि विधाय तदन्यदिवसे पुण्याह-वाचनं कृत्वा अग्निकुण्डेषु ऋत्विगुपवेशनादिकर्म्मशेषं समापयेत्, किन्त्वपरीत्वायं विशेषः, तुलापुरुषोक्तहोमे विहितशेषाणामृत्विजामन्यतमं गुरुरादिशेत् स एक एव ऋत्विगेकस्मिन्नेव कुण्डे पर्जन्यादित्यरुद्रेभ्यस्तल्लिङ्गमन्त्रैः पायसचरुप्रभृतिद्रव्येणाष्टोत्तर-सहस्रं जुहुयात् ।

तुलापुरुषवत् कुर्य्याल्लोकेशावाहनं बुधः ।
ततो मङ्गलशब्देन शुक्लमाल्याम्बरो बुधः ॥
आहूय द्विजदम्पत्यं हेमसूत्राङ्गुलीयकैः ।
कौशेयवस्त्रकटकैर्मणिभिश्च विभूषयेत ॥
शय्यां सोपस्करान्दद्याद्धेनुमेकां पयस्विनीम् ।
तथाष्टादशधान्यानि समन्तादधिवासयेत् ॥
ततः प्रदक्षिणीकृत्य गृहीतकुसुमाञ्जलिः ।
इममुच्चारयेन्मन्त्रमथ सर्व्वं निवेदत् ॥

लोकेशावाहनमित्युपलक्षणम् ।

अत्र हि देश-काल-वृद्धिश्राद्ध-शिवादिपूजा-ब्राह्मणवाचन गुरु-ऋत्विग्वरण मधुपर्कदान-कुण्डमण्डपवेदिकावितान चक्रलिखन-तोरणपताकादि मत्स्यपुराणोक्ततुलापुरुषविहितं गृह्यते ।

तत इति, होमानन्तरं सर्व्वौषधिजलस्नातः शुक्लाम्बरधरो दद्या-दित्यन्वयः, आहूय द्विजदम्पत्यमिति, सकलकर्म्मनियुक्तस्य गुरो-र्दक्षिणान्तराप्रतीतेः सन्निहितपरित्यागे कारणाभावात् द्विज-शब्दस्याविरोधाच्च सकलचस्य गुरोरेव दातव्यमिति गम्यते,

तदनुज्ञयाचान्येभ्योपि देयमिति, स्वल्पेष्वेकाग्निविधानमपि वोद्धव्यं, शय्योपस्करा हिरण्याश्वदाने व्याख्याताः।

अथ मन्त्रः।

यस्माद्देवगणाः सर्व्वे स्थावराणि चराणि च।
धुरन्धराङ्गे तिष्ठन्ति तस्मात् भक्तिः शिवेऽस्तु मे॥
यस्माच्च भूमिदानस्य कलानार्हन्ति षोड़शीम्।
दानान्यन्यानि मे भक्ति धर्म्मएव दृढ़ा भवेत्

इति मन्त्रमुच्चार्य्य यथाशक्ति दक्षिणामुपकल्प्य पूर्व्वप्रयोगेण प्रतिपादयेत्, ततश्च पुण्याहवाचन-देवतापूजन-विसर्जनानि।

दण्डेन सप्तहस्तेन त्रिंशद्दण्डा निवर्त्तनम्।
त्रिभागहीनं गोचर्म्ममानमाह प्रजापतिः॥
मानेनानेन योदद्यान्निवर्त्तनशतं बुधः।
विधिनानेन तस्याशु क्षीयते पापसंहतिः॥
तदर्द्धमपि वा दद्यादपि गोचर्ममात्रकम्।
भवनस्थानमात्रम्वा सोपि पापैः प्रमुच्यते॥

यावन्ति लाङ्गलकमार्गमुखानि भूमे-
र्भाषाम्पतेर्दुहितुरङ्गजरोमकाणि।
तावन्ति शङ्करपुरे स समा हि तिष्ठे
द्भूमिप्रदानमिह यः कुरुते मनुष्यः॥
गन्धर्व-किन्नर-सुरासुर-सिद्ध-सङ्घै
राधूतचामरमुपेत्य महद्विमानम्*।
संपूज्यते पितृ-पितामह-बन्धु-युक्तः

* महद्विमानैरिति क्वचित् पाठः।

शम्भोः पुरं व्रजति चामरनायकः सन् ॥
इन्द्रत्वमप्यधिगतं क्षयमभ्युपैति
गो-भूमि-लाङ्गल-धुरन्धरसम्प्रदानात् ।
तस्मादघौघपटलक्षयकारि भूमे
र्दानं विधेयमप्यतिभूतिभवोद्भवाय ॥

इति श्रीमत्स्यपुराणोक्तः पञ्चलाङ्गलकदानविधिः ।

श्रीभगवानुवाच ।

अतःपरं प्रवक्ष्यामि दानमप्यद्भुतं तव ।
येन दत्तेन राजेन्द्र सर्व्वदानप्रदो भवेत् ॥
सर्व्वपापप्रशमनं सर्व्वसौख्यप्रदायकम् ।
संयुक्तहलपंक्त्याख्यदानं सर्व्वफलप्रदम् ॥
पंक्तिर्दशहला प्रोक्ता हलस्य स्याच्चतुर्युगम्* ।
सारदारुमयान्याहुर्हलानि दश पण्डिताः ॥
सौवर्णपट्टनद्धानि रत्नवन्ति शुभानि च ।
युवानो वलिनो भव्यान्नाङ्गहीनान् स्वलंकृतान् ॥
"वस्त्रकाञ्चनपुष्पैस्तु चन्दनादिग्धमस्तकान् ।
भद्राङ्गान्योजयेत्तेषु लाङ्गलेषु वृषान्" पुमान् ॥
योक्त्राणि युगलग्नानि सवृषाणि च कारयेत् ।
प्रतोदकीलिकाबन्धसर्व्वोपकरणानि च ॥
एवंविधैर्हलैः कुर्य्यात्संयुक्तां दलपंक्तिकां ।
खेटकं कर्व्वटं वापि ग्रामं वा सस्यशालिनं ॥

* चतुर्गवमिति पुस्तकान्तरे पाठः ।

निवर्त्तनमतं वापि तदर्द्धं वापि कल्पयेत् ।
एवं विधां पर्व्वकाले दद्यात् प्रयतमानसः ॥
कार्त्तिक्यां वाथ वैशाख्यामुत्तरेऽयने तथा ।
जन्मर्क्षे ग्रहणे वापि विषुवे चाथ दापयेत् ॥
ब्राह्मणान् वेदसम्पन्नानव्यङ्गाङ्गान् स्वलङ्कृतान् ।
श्रोत्रियांश्च विनीतांश्च दलसंख्यान्निमन्त्रयेत् ॥
दशहस्तप्रमाणेन कारयेन्मण्डपं बुधः ।
पूर्व्वेद्युः कुण्डमेकञ्च हस्तमात्रञ्च शोभनम् ॥
तत्र व्याहृतिभिर्होमं कुर्य्युस्ते द्विजसत्तमाः ।
पर्जन्यादित्यरुद्रेभ्यः पायसन्निर्व्वपेत्तकम् ॥
पलाशसमिधस्तद्वदाज्यं कृष्णतिलां स्तथा ।
आवास्य च ततः पंक्तिं धान्यमध्यगतां शुभाम् ॥
ततः सर्व्वसमीपे तु स्नातः शुक्लाम्बरः शुचिः ।
हलपंक्तिं योजयित्वा यजमानः समाहितः ॥
शङ्खतूर्य्यनिनादैश्च ब्रह्मघोषैः सपुष्कलैः ।
इममुच्चारयेन्मन्त्रं गृहीतकुसुमाञ्जलिः ॥
यस्माद्देवगणाः सर्व्वे हले तिष्ठन्ति सर्व्वदा ।
वृषस्कन्धे सन्निहितास्तस्माद्भक्तिः शिवेऽस्तु मे ॥
यस्माच्च भूमिदानस्य कलां नार्हन्ति षोड़शीम् ।
दानान्यन्यानि मे भक्तिर्धर्मे चास्तु सदा दृढा ॥
एवमुक्ते ततः पंक्तिं प्रेरयेद्यो द्विजोत्तमः ।
बीजानि सर्व्वरत्नानि सुवर्णं रजतं तथा ॥
स्वयं पश्चाद्धले लग्नांविप्रहस्तेषु निर्वपेत् ।

यायान्निवर्त्तनं यावत्ततस्तु विरमेद्बुधः ।
प्रदक्षिणं ततः कृत्वा विप्राणां प्रतिपाद्य च ॥
सदक्षिणविधानेन प्रणिपत्य विसर्जयेत् ॥
अनेन विधिना यस्तु दानमेतत् प्रयच्छति ।
एकविंशत्कुलोपेतः स्वर्गलोके महीयते ॥
सप्तजन्मानि दारिद्र्यं दौर्भाग्यं व्याधयस्तथा ।
न पश्यति च भूमेश तथैवाधिपतिर्भवेत् ॥
दृष्ट्वात् दीयमानन्तु दानमेव युधिष्ठिर ।
आजन्मनः कृतात् पापात् मुच्यते नात्र संशयः ॥
दानमेतत् पुरा दत्तं दिलीपेन ययातिना ।
शिबिना निमिनाचैव भरतेन च धीमता ।
तेऽद्यापि दिवि मोदन्ते दानस्यास्य प्रभावतः ॥
प्रयत्नेन महीपाल दानमेतन्नृपोत्तम* ।
दातव्यं भक्तियुक्तेन स्त्रिया वा पुरुषेण वा ॥
यदि पंक्तिर्नविद्येत पञ्चचत्वारि वा नृप ।
एकमप्युक्तविधिना हलं देयं विचक्षणैः ॥

यावन्ति लाङ्गलमुखोत्थमृदां रजांसि
यावन्ति चात्र सुधुरन्धररोमकाणि ।
तावन्ति शङ्करपुरे स युगानि तिष्ठेत्
पङ्क्तिप्रदानमिह यः कुरुते मनुष्यः ॥
युक्तां वृषै-रतिबलै-र्हलपंक्तिमेनाम्
पुण्येऽह्नि भक्तिसहितां द्विजपुङ्गवानां ।

---

* दापयेतन्नृपोत्तम इति क्वचित् पाठः ।

इच्छन्ति ये सुकृतिनोवसुधासमेता
स्तेभूभुजामुखमुपेत्य भवन्ति भव्याः॥

इति भविष्योत्तरोक्तोहलपंक्तिदानविधिः।

अथैकादशधरादानमंत्रं महादानमुपवर्ण्यते।

श्रीमत्स्यपुराणे मत्स्य उवाच।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि धरादानमनुत्तमम्।
पापक्षयकरं नृणाममङ्गल्यविनाशनम्॥
कारयेत् पृथिवीं हैमीं जम्बुद्वीपानुकारिणीम्।
मर्यादापर्व्वतवतीं मध्ये मेरुसमन्विताम्॥
लोकपालाष्टकोपेतां नववर्षसमन्विताम्।
नदीनदशतोपेतामन्ते सागरवेष्टिताम्॥

'अनुकारिणीम्, सदृशीमित्यर्थः।

इह हि जम्बुद्वीपसदृशीं कुर्य्यादित्युक्ते निखिलनगनगरसरोवरवनाद्यन्वितमहीसादृश्यप्राप्तौ मर्यादापर्व्वतवतीमित्यादिना तावन्मात्रान्वितधरण्यनुकार इति गम्यते। इतरथा सामान्येनैव तदवगतेर्विशेषानर्थक्यप्रसङ्गात्, तदयमर्थः हैमीं पृथ्वीं कुर्यादित्युक्ते सप्तद्वीपवत्याः* प्रसङ्गे जम्बुद्वीपानुकारिणीमित्युच्यते तत्रापि नानापर्व्वतान्वितानुकारप्रसङ्गे मर्यादापर्व्वतवतीमिति" तथासति मेरोरनुकरणप्राप्तौ मध्ये मेरुसमन्वितामिति नानादेवगणानिवृत्त्यर्थं लोकपालाष्टकोपेतामिति, एवं च संक्षेपपक्षाश्रयणे† पुराण-

* सप्तद्वीपवत्याः करणप्रसङ्गे इति क्वचित् पाठः।

† संक्षेपपक्षाश्रयणे इति वा पाठः।

न्तरोपदर्शितवर्षचतुष्टयादिपक्षपरिग्रहशङ्कानिवृत्त्यर्थं नववर्ष-समन्विताभित्युच्यते ।

तत्र जम्बुद्वीप मुपवर्णितं विष्णुपुराणे ।

नववर्षन्तु मैत्रेय जम्बुद्वीपमिदं मया ।
लक्षयोजनविस्तारं सङ्क्षेपात्कथितं तव ॥
जम्बुद्वीपं समावृत्य लक्षयोजनविस्तरः ।
मैत्रेय वलयाकारः स्थितः क्षीरोदधिर्बहिः ॥
जम्बुद्वीपः समस्तानां द्वीपानां मध्यतः स्थितः ।
तस्यापि मेरुर्मैत्रेय मध्ये कनकपर्व्वतः ॥
चतुरशीतिसाहस्रयोजनैरस्यचोच्छ्रयः ।
प्रविष्टः षोड़शाधस्ताद्द्वात्रिंशन्मूर्ध्नि विस्तृतः ॥
मूले षोड़शसाहस्रो विस्तारस्तस्य सर्व्वतः* ॥

पुराणान्तरे तु, अष्टषष्टियोजनोच्छ्रय इत्युक्तं ॥

तथा । मेरोश्चतुर्दिशंतत्र नवसाहस्रविस्तृतम् ।
इलावृतं महाभागश्चत्वारश्चानुपर्व्वताः ।
विष्कम्भा रचिता मेरोर्योजनायुतमुच्छ्रिताः ॥
पूर्व्वेण मन्दरोनाम दक्षिणे गन्धमादनः ।
वैभ्राजः पश्चिमे पार्श्वे सुपार्श्वश्चोत्तरे स्मृतः ॥

मर्य्यादापर्व्वतास्तु, ब्रह्माण्डे पुराणे दर्शिताः ।

जाठरोदेवकूटश्च पूर्व्वस्यान्दिशि पर्वतौ ।
तौ दक्षिणोत्तरायामावानीलनिषधायतौ ॥

---

* मध्यत इति पुस्तकान्तरे ।

कैलासो हिमवांश्चैव दक्षिणे वरपर्व्वतौ।
पूर्व्वपश्चायतावेतावर्णवान्तव्यवस्थितौ॥
त्रिशृङ्गो जारुधिश्चैव उत्तरौ वरपर्वतौ।
पूर्व्वपश्चायतावेतावर्णवान्तव्यवस्थितौ॥
निषधः पारिजातश्च पश्चिमौ वरपर्व्वतौ।
तौ दक्षिणोत्तरायामावानीलनिषधायतौ।

नीलनिषधपर्व्वतौ तु, अग्रे वक्ष्येते।

लोकपालाष्टकोपेतामिति, लोकपाला इन्द्रादयोऽष्टौ, तेषां लक्षणं पूर्व्वमुक्तं ब्रह्माण्डदाने, तत्सन्निवेशाश्च मेरोरुपरि प्रदक्षिणक्रमेण पूर्व्वादिदिक्षु कर्त्तव्याः,

नववर्षसमन्वितामिति।

वर्षोपवर्णनञ्च, ब्रह्माण्डपुराणे।

उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम्।
एतद्वै भारतं नाम भारती यत्र सन्ततिः॥
भारतं प्रथमं वर्षं ततः किंपुरुषं स्मृतम्।
हरिवर्षं तथैवान्यं मेरोर्द्दक्षिणतो द्विज॥
रम्यकं चोत्तरे वर्षं* तस्यैवानु हिरण्मयम्॥
उत्तराः कुरवश्चैव यथा वै भारतं तथा।
मेरोः पूर्वेण भद्राश्च केतुमालं च पश्चिमे॥
वर्षे द्वे तु समाख्याते तयोर्मध्यमिलावृतम्।
नवसहस्रमेतेषामेकैकं द्विजसत्तमाः॥

---

* चोत्तरं वर्षमिति पुस्तकान्तरे।

तथा। हिमवान् हेमकूटश्च निषधश्चैव दक्षिणे।
नीलः श्वेतश्च शृङ्गी च उत्तरे वर्षपर्व्वताः॥
सहस्रद्वितयोच्छ्रायास्तावद्विस्तारिणश्च ते।
लक्षप्रमाणौ द्वौ मध्ये दशहीनास्तथापरे॥

लक्षप्रमाणावित्यादि, इलावृतस्योभयपार्श्ववर्त्तिनौ नीलनिषधौ द्वौ पर्व्वतौ दैर्घ्येण लक्षगुणौ* विज्ञेयौ, तद्बाह्यवर्त्तिनौ श्वेतहेमकूटौ नवतिसहस्रयोजनप्रमाणौ विज्ञेयौ, तथा तद्बाह्यस्थितौ शृङ्गीहिमवन्तौ अशीतिसहस्रयोजनप्रमाणावित्यर्थः। अत्र युक्तिरुक्ता मत्स्यपुराणे, द्वीपस्य मण्डलीभावात् ह्रासवृद्धिः प्रकीर्त्तितेति।

ब्रह्माण्डपुराणे।

मेरोस्तु पश्चिमे भागे नवसाहस्रसम्मिते।
चतुस्त्रिंशत्सहस्राणि गन्धमादनपर्व्वतः॥
चत्वारिंशत्सहस्राणि परिवृद्धो महीतलात्।
सहस्रमवगाढे तु सति द्विगुणविस्तरः।
पूर्व्वेण माल्यवान् शैलस्तत्प्रमाणः प्रकीर्त्तितः॥

अत्र शतसहस्रादियोजनपरिमाणानां पृथिव्यादीनां कर्तुमशक्यत्वात् योजनसहस्रस्थाने अङ्गुलादिमानं परिकल्प्य यथोक्तसंख्यातारतम्यमनुष्ठेयं। नदीनदशतान्वितमिति, नद्यो भागीरथीप्रभृतिकाः, नदाः शोणादयः, तेषां साकल्येन विधातुमशक्यत्वात् यावच्छक्यमनुकारः कर्त्तव्यः। अन्ते सागरवेष्टितामिति, यद्यपि यावत्परिमाणा पृथ्वी तावानेव सागरः तथाप्यनुकारमात्रोपदेशात् शक्यानुकारमात्रमाचरणीयं।

---

* लक्षप्रमाणाविति पुस्तकान्तरे।

महारत्नसमाकीर्णां वसुरुद्रार्कसंयुताम्।
हेम्नः पलसहस्रेण तदर्द्धं वाथ शक्तितः॥
शतत्रयेण वा कुर्याद्द्विशतेन शतेन वा।
कुर्यात्पञ्चपलादूर्द्धमशक्तोपि विचक्षणः॥
तुलापुरुषवत् कुर्यात् लोकेशावाहनम्बुधः।
ऋत्विङ्मण्डपसम्भारभूषणाच्छादनादिकम्॥
वेद्यां कृष्णाजिनं कृत्वा तिलानामुपरि न्यसेत्।
तथाष्टादश धान्यानि रसांश्च लवणादिकान्॥
तथाष्टौ पूर्णकलशान् समन्तात्परिकल्पयेत्।
वितानकञ्च कौशेयं फलानि विविधानि च॥
तथांशुकानि रम्याणि श्रीखण्डशकलानि च।
इत्येवं रचयित्वा तामधिवासनपूर्वकम्॥
शुक्लमाल्याम्बरधरः शुक्लाभरणभूषितः।
प्रदक्षिणं ततः कृत्वा गृहीतकुसुमाञ्जलिः॥

महारत्नेत्यादि, महारत्नानि, माणिक्यप्रभृतीनि. परिभाषायां दर्शितानि, वसुरुद्रार्करूपमुक्तं ब्रह्माण्डदाने, आच्छादनादिकमित्यादिकशब्देन देश-कालवृद्धिश्राद्ध-शिवादिपूजा-ब्राह्मणवाचनाधिवासनादिसर्वं तुलापुरुषोक्तमनुष्ठेयं, पूर्णकलशान् स्रग्गन्धपञ्चरत्नदूर्वांकुरचूतपल्लवान्वितानित्यवधेयं, वितानं पञ्चवर्णमिति, प्रदक्षिणं कृत्वेति, त्रिःप्रदक्षिणमावृत्येत्यर्थः, प्रदक्षिणादिकं च द्वितीयदिवसे पूर्णाहुत्यन्तकर्मशेषसमाप्तौ सर्वौषधिस्नानानन्तरमनुसन्धेयम्।

पुण्यकालमथासाद्य मन्त्रानेतानुदाहरेत्॥

नमस्ते सर्व्वदेवानां त्वमेकं भवनं यतः ।
धात्री च सर्व्वभूतानामतः पाहि वसुन्धरे ॥
वसून् धारयसे यस्मात् वसुचातीव निर्मलं ।
वसुन्धरा ततोजाता तस्मात्पाहि भयादलम् ॥
चतुर्मुखोपि नोगच्छेद्यस्मादन्तं तवाचले ।
अनन्तायै नमस्तस्मात् पाहि संसारकर्द्दमात् ॥
त्वमेव लक्ष्मीर्गोविन्दे शिवे गौरीति संस्थिता ।
गायत्री ब्रह्मणः पार्श्वे ज्योत्स्ना चन्द्रे रवौ प्रभा ॥
बुद्धिर्व्वृहस्पतौ ख्याता मेधा मुनिषु संस्थिता ।
विश्वं व्याप्य स्थिता यस्मात्ततोविश्वम्भरा मता ॥
धृतिः क्षितिः क्षमा क्षोणी पृथ्वी वसुमती रसा ।
एताभिर्मूर्त्तिभिः पाहि देवि संसारसागरात् ॥
एव मुच्चार्य्य तां देवीं ब्राह्मणेभ्यो निवेदयेत् ॥
धरार्द्धं वा चतुर्भागं गुरवे प्रतिपादयेत् ॥
शेषञ्चैवाथ ऋत्विग्भ्यः प्रणिपत्य विसर्जयेत् ॥

अत्रापि पूर्ववद्दानवाक्यमुच्चार्य्य जलपूर्व्वं दानमाचार्य्यानुज्ञया अन्येभ्योपि दानं दीनानाथपूरणं, स्वल्पेत्विकाग्निविधानं, भूमिपतिकर्त्तव्ये* कर्म्मणि ग्रामादिदक्षिणादानं अशक्तकर्तृके यथाशक्ति सुवर्णदक्षिणादानमित्यनुसन्धेयं, अथ ब्राह्मणवाचनानन्तरं देवतापूजनविसर्जनानि कुर्य्यात् । आथर्वणगोपथब्राह्मणे, अथ रोहिण्यां स कल्पामुपोषितो ब्रह्म यथाबीजरसरत्नगन्धावकीर्ण-

* भूमिपतिकर्तृके इति पुस्तकान्तरे ।

तीर्थोदकपूर्णकलशमभिमृष्टाभिषेकमन्त्रैर्यथोक्तैर्दातारमभिषिञ्चति व्रतेन त्वं व्रतपत इति व्रतमुपैत्यायाचिताशनावधःशायिनी भवतो व्रतोपचारं यथाशक्त्येकरात्रं पञ्चरात्रं वा द्वादशरात्रं व्रतञ्चरित्वा श्वोभूते तन्त्रमाज्यभागान्तं कृत्वान्वारभ्याथाज्यं जुहुयात् कामसूक्तं कालसूक्तं पुरुषसूक्तमित्यथ सुवर्णमयीं भूमिं भूमेः प्रतिकृतिं गोचर्म्ममात्रां कृत्वानीय वेद्युत्तरतोऽस्यां वेदिमित्युपस्थाप्य गिरयस्ते पर्वता इति पर्वतानवस्थाप्य हिरण्यरजतमणिमुक्ताप्रवालकादिभिरुपशोभयेद्यदहः संप्रयतीरिति सामन्दसानेति नदीः कल्पयित्वा रसैश्च परिपूरयेत् अपरमयमसि समुद्रन्त्वाभ्यवसृजामीति समुद्रान् वनस्पतिः सह देवै* र्नआयगन्निति बृहस्पतिर्नेति वनस्पतीनन्यांश्च यत्ते त्वा मनसा सङ्कल्पयेन्मनसा सङ्कल्पवतीह भवति निधी बिभ्रतीति नमस्कारयित्वा सत्यं बृहस्पत्यनुवाकोये देवासोदिव्येकादशस्थेति पुण्याहं वाचयेत् संस्थापयेच्च च दि वो देवव्रतेनेत्यभिमन्त्य ब्राह्मणेभ्यो दद्याद्दातुरेषास्मै रोहिणीकामं निकामं वा दुःख इति।

यथा रोहन्ति बीजानि हलाकृष्टे महीतले।
एवं कामाः प्ररोहन्ति प्रेत्य हि मनसा सदा॥
सर्व्वेषामेव दानानां यत्फलं समुदाहृतं।
तत् प्राप्नोति च विप्रेभ्यो दत्त्वा भूमिं यथाविधि॥

अथ मत्स्यपुराणे।

अनेन विधिना यस्तु दद्याद्धेमधरां शुभाम्।
पुण्यकालेतिसंप्राप्ते स पदं याति वैष्णवं॥

---

* नप्रापगन्निति पाठान्तरं।

विमानेनार्कवर्णेन किङ्किणीजालमालिना ।
नारायणपुरङ्गत्वा कल्पत्रयमथो वसेत् ॥
पुत्रपौत्रप्रपौत्रांश्च तारयेदेकविंशतिम् ॥
इति पठति य इत्थं यः शृणोति प्रसङ्गा-
दपि कलुषविमानैर्मुक्तदेहः समन्तात् ।
दिवममरवधूभि र्याति संप्रार्थ्यमानः ।
पदममरसहस्रैः सेवितं चन्द्रमौलेः ॥

इति धरादानविधिः ।

लिङ्गपुराणे, सनत्कुमार उवाच ।

सुवर्णमेदिनीदानं प्रवक्ष्यामि समासतः ।
पूर्व्वोक्तदेशकालेतु कारयेन्मुनिभिःसह ॥
लक्षणेन यथापूर्वं कूपे वा मण्डपेऽथवा ।
मेदिनीं कारयेद्दिव्यां सहस्रेणापि वा पुनः ॥
एकहस्तेन कर्त्तव्या चतुरस्रा सुशोभना ।
सप्तद्वीपसमुद्राद्यैः पर्व्वतैरपि संयुता ॥
सर्व्वतीर्थनगोपेता मध्ये मेरुसमन्विता ।
अथवा मध्यतो द्वीपं नवखण्डं प्रकल्पयेत् ॥
पूर्व्ववन्निखिलं कृत्वा मण्डले वेदिमध्यतः ।
सप्तभागैकभागेन सहस्राद्विधिपूर्वकम् ॥
ब्राह्मणेभ्यः प्रदातव्या दक्षिणा पूर्व्वचोदिता ।
सहस्रकलशाद्यैश्च शङ्करं पूजयेच्छिवम् ॥
सुवर्णमेदिनी प्रोक्ता लिङ्गेऽस्मिन् पर्व्वतं मतम् ।
'मुनिभिः, नियतात्मभिर्विप्रैः सहेत्यर्थः ।

सहस्रेण, पलानामितिशेषं, हेम्नः पलसहस्रेणेत्यादि पञ्चपलादूर्द्ध कुर्य्यादिति मत्स्योक्तेः, साच एकहस्तमिता चतुरस्रा सप्तद्वीपवती कार्य्या, अथवेति पचान्तरं, स्वल्पद्रव्याभिप्रायं तदेवाह सप्तभागैकभागेन, सहस्रादिति सहस्रसप्तमांशेन, नवखण्डं जम्बुद्वीपमात्रां कल्पयेदित्यर्थः, ब्राह्मणेभ्य इति, बहुत्वमनेकाग्निपचविषयं, पूर्ब्बवदिति, लिङ्गपुराणोक्ततुलापुरुषदानवदित्यर्थः कालोत्तरे, पृथिवीदानमेवात्र शृणु लेशेन षण्मुख।

उत्तमा मध्यमा कन्या पृथिवी त्रिविधा मता॥
शतार्द्धकोटिविस्तारादुत्तमा परिकीर्त्तिता।
सप्तद्वीपावसानात्तु मध्यमा समुदाहृता॥
जम्बुद्वीपावधिः कन्या त्रिविधां परिकल्पयेत्।
उत्तमाः पञ्चभिर्भारैः काञ्चनेन प्रकल्पयेत्॥
सहस्रहितयेनैव कन्या द्वादशपर्वताः।
तदर्द्धात्तारजङ्कूर्मं तथा पद्मं समादिशेत्॥

द्वादशपर्व्वतास्तु कालोत्तरोक्तरत्नमेरुदाने द्रष्टव्याः, तारजं रूप्यकृतं, उत्तमा कथिता पृथ्वी त्र्यंशेन मध्यमा मता। कन्यकात्र विभागेन त्रिहान्या कूर्म्मपङ्कजे॥ ऋग्यजुःसामगानान्तु शिवभक्तेषु* निक्षिपेत्।

चतुष्पादषट्पदार्थसंहितापाठकायच।
तस्य पादः प्रदातव्यः पृथ्वी कूर्म्मकजेषु च॥
शेषेषु च यथान्यायं ज्ञानं ज्ञात्वा निवेदयेत्।
सूर्य्यस्य ग्रहणे दत्तं शिवस्याग्रे निवेदयेत्॥

---

* निर्व्वपेदिति पाठः पुस्तकान्तरे।

मेरुवत् कल्पयेत्तत्र पर्व्वतांश्च त्रयोदश ।
सहस्रेण पलानान्तु तत्र मेरुं प्रकल्पयेत् ॥
सहस्रद्वितयेनैव कल्प्या द्वादशपर्वताः ।
चतुःशतसमायुक्ताः प्रत्येकन्तु ग्रहाः स्मृताः ॥
तथैव राशयः कल्प्या नक्षत्राणि तदर्द्धतः ।
द्वीपाश्च ग्रहवत्कल्प्या जम्बुसंज्ञादिकास्ततः ॥
तारायस्तु तथा सप्त देवयोन्यष्टकं तथा ।
मृगाद्याश्च यथा यद्वद्भवो ब्रह्मादयस्तथा ॥
पातालसप्तकं कल्प्यं भूर्लोका दिवसप्तकं ।
सहस्रखण्डं कूर्म्मश्च नवखण्डं कजोद्भवं ।
एवं कल्प्या शिवस्याग्रे शिवविप्रेषु दापयेत् ॥
सुव्रतेष्वहताङ्गेषु वेदसिद्धान्तवेदिषु ।
दातव्या पृथिवी तेषां बहुरूपं स्मरंस्तथा ॥

बहूनि अघोरघोरतराणि रूपाणि यस्यासौ बहुरूपी अघोरमन्त्रः ।

अघोरेभ्योऽथघोरेभ्यो घोर घोरतरेभ्यः
सर्वतःशर्वसर्वेभ्योनमस्ते अस्तुरुद्ररूपेभ्यः

राहुणा गृह्यमाणेतु सूर्य्यविम्वेतु निर्वपेत् ।
एवं सङ्कल्प्य विधिवच्छिवस्याग्रे प्रदापयेत् ॥
परमाणवोयावन्तो ब्रह्माण्डस्य भवन्ति हि ।
तावत्कल्पसहस्राणि शिवलोके महीयते ॥
पितरस्तस्य नन्दन्ति वल्गन्ति च यथासुखम् ।
रुद्रायुर्यावदन्ते च रुद्रलोके वसन्ति च ॥

महीभुजस्तदन्ते तु शिवभक्त्या भवन्ति हि।
मोक्षः प्रजायते तेषां शिवभावानुदीक्षया॥

इति सुवर्णपृथिवीदानविधिः।

सूत उवाच।

अतः परं प्रवक्ष्यामि युष्माकं मुनिसत्तमाः।
जम्बुद्वीपप्रदानाख्यं दानानामुत्तमोत्तमं॥
यस्य प्रदानान्मनुजो वैष्णवं लोकमाप्नुयात्।
सर्व्वपापक्षयकरं सर्व्वमङ्गलकारकम्॥
आरोग्यश्रीकरञ्चैवमायुर्वर्द्धनमुत्तमम्।
भुक्तिदं मुक्तिदं नृणामभीष्टफलदं शुभं॥
यथाह भगवान् शम्भुः पृष्टः पर्वतकन्यया।
तथेदं संप्रवक्ष्यामि युष्माकं मुनिसत्तमाः॥
ईशमासीनमेकान्ते कैलासे हिमवत्सुता।
प्रणिपत्य जगन्नाथं पर्य्यपृच्छत सादरा॥
भगवन् किं नरैः कार्य्यं सर्वदुःखनिवारणम्।
अनायासेन देवेश सर्वमङ्गलकारकं॥
इत्येवमुक्तः पार्वत्या पिनाकी वृषभध्वजः।
यथाह भगवान् देव्यै तत्सर्वं कथयामि वः॥

ईश्वर उवाच।

शृणु देवि महादानं जम्बुद्वीपाह्वयन्तु तत्।
यथाह भगवानस्य पद्मयोनिर्जनार्द्दनः॥
पुण्येऽह्नि पुण्यनक्षत्रे पुण्यकाले तु सर्वतः।
विषुवत्ययनादौ च ग्रहणे चन्द्रसूर्य्ययोः॥

व्यतीपातेऽथ वा कुर्य्याज्जन्मर्क्षे वा विशेषतः ।
अष्टम्यां पञ्चदश्यां वा नित्यं वा दानमाचरेत् ॥
पुण्यदेशेषु सर्व्वेषु नदीदेवालयादिषु ।
दानं गृहे वा दातव्यं श्रद्धा वा यत्र जायते ॥
विप्रन्तु वेदविदुषं गुरुं सम्पूज्य यत्नतः ।
भूलेपनादि यत्कार्य्यं सर्व्वं विप्रेण कारयेत् ॥
विलेपयेत्सर्व्वभूमिं गोमयेन सवारिणा ।
तत्र विंशतिहस्तन्तु लेपयेत्परिमण्डलम् ॥
लवणेनोदधिं तत्र परितः परिकल्पयेत् ।
प्रादेशमात्रं विस्तारादष्टद्रोणेन पार्व्वति ॥
तत्राक्षतान्निर्विकिरेत् श्वेतपुष्पैः समन्ततः ।
तन्मध्ये कारयेन्मेरुं धान्यभारत्रयेण वै ॥

मेरुर्महाव्रीहिमयस्तु मध्ये
सुवर्णकल्पद्रुमसंयुतः स्यात् ।
पूर्व्वेण मुक्ताफलवज्रयुक्तो
याम्येन गोमेदकपुष्परागैः ॥
पश्चाच्च गारुत्मतनीलरत्नैः
सौम्येन वैदूर्य्यसरोजरागैः ।
श्रीखण्डखण्डैरभितः प्रवाल-
लतान्वितः शुक्तिशिलातलः स्यात् ॥
शुक्लाम्बराण्यम्बुधरावली स्यात्
पूर्व्वेण पीतानिच दक्षिणे तु ।
वासांसि पश्चादथ कर्बुराणि

रत्नानि चैवोत्तरतोघमाली ॥
ब्रह्मा तु मध्ये कमलासनस्थ-
श्चतुर्मुखः काञ्चननिर्मिताङ्गः ।
चतुर्भुजश्चात्र निवेशनीयो
दधत् स्रुचं चात्र कमण्डलुञ्च ॥
तथाक्षसूत्रं जपसाधनञ्च
कृष्णाजिनं चोपरितश्च बिभ्रत् ।
गङ्गां चतुर्धा पतितां विधाय
चतुर्दिशं चोदकपूर्णरूपाम् ॥
रौप्यान्महेन्द्रप्रभृतीनथाष्टौ
संस्थाप्य लोकाधिपतीन् क्रमेण ।
नानाद्विजौघानि च राजतानि
मृगाश्च सर्वत्र निवेशनीयाः ॥
पूर्वेण मन्दरगिरिर्यवतण्डुलाभ्याम्
शुक्लाम्बरेण परितः परिवेष्टिताङ्गः ।
प्लक्षेण काञ्चनमयेन वृषेण तद्व-
द्रौप्येण वृक्षमृगपक्षियुतो विधेयः ॥
याम्येन गन्धमदनोऽत्र गिरिस्तु कार्यो
मुद्गैश्च जम्बुतरुणा च हिरण्मयेन ।
हैमेन यक्षपतिना च विराजमानः
पीताम्बरेण परितः परिवेष्टितश्च ॥
पश्चात्तिलाचलमथोपरि कर्बुराभम्
वासः सपिप्पलहिरण्मयहंसयुक्तम् ।

आकारयेद्विपुलमन्दरसुगन्धपुष्पम्
रौप्येण शक्तिघटितेन विराजमानम् ॥
संस्थाप्य तं विपुलशैलमथोत्तरेण
शैलं सुपार्श्वमपि माषमयं सुवस्त्रं ।
न्यग्रोधवृक्षमपि हेममयं सुधेनुम्
रौप्यैश्च शक्तिघटितैश्च शुभं विधाय ॥
मेरोश्च पुष्पाभरणञ्च कार्य्यम्
घृतोदकं प्रस्रवणञ्च दिक्षु ।
क्षीराज्यदध्ना मधुना सरांसि
प्रागादि तेषां च यथाक्रमेण ॥
हिम हेमकूटनिषधाःक्रमश्च याम्ये
सौम्ये च नीलसितशृङ्गयुताः क्रमेण ।
प्रादेशमात्रं परिनिसृतास्ते
प्रागायता ह्युपरि* वस्त्रयुताश्च सर्व्वे ॥
प्रत्येकमत्र वर्षच्छदपर्वतानाम्
भारेण धान्यपरिमाणमुशन्ति सन्तः ।
शक्त्याच रौप्यकृतपक्षियुताश्च सर्व्वे
सौगन्धिपुष्पफलवस्त्रयुगा विधेयाः ॥
आनीलनिषधायामौ माल्यवद्गन्धमादनौ :
तेषां मध्यगतो मेरुस्तौ च धान्यविनिर्मितौ ॥
निषधः पारिजातश्च मर्यादापर्वताविमौ ।
मेरोः पञ्चमभागेन यथा तौ गन्धमादनौ ॥

---

* प्रागायभात्युपरीति क्वचित्पाठः ।

गन्धमादनशैलोऽसौ पूर्वपश्चाद्यथाविधौ।
श्वेततण्डुलनिर्माणौ दक्षिणोत्तरतः स्थितौ॥
सितान्तःप्रमुखाः सर्वे दक्षिणे ककुभादयः।
शंखकूटादयश्चैव उत्तरे परिकीर्त्तिताः॥
तांस्तान् केशरशैलांश्च कृत्वा धान्यमयान् शुभान्।
वस्त्रैराविष्टा शैलेन्द्रं मेरुमन्यांश्च वेष्टयेत्॥
दक्षिणं भारतं वर्षं तत् किंपुरुषसम्वृतम्।
हरिवर्षं ततः प्रोक्तं मेरोर्दक्षिणतस्ततः॥
इलावृतं वृतं मेरोश्चतुर्थं वृषभं तथा।
रम्यं हिरण्मयं तस्मात् कुरवश्चेति चोत्तराः॥
भद्राश्वः केतुमालश्च पूर्वपश्चिमतः स्थितौ।
प्रोक्तानि नववर्षाणि जम्बुद्वीपे तु नामतः॥
हिमाद्रिमध्ये देवेशं श्रियञ्च विनिवेशयेत्।
प्रासादाभिमुखावेतौ काञ्चनेन विनिर्म्मितौ॥
शङ्ख-चक्र-गदा-पाणिं पीतवाससमच्युतम्।
किरीट-केयूर-धरं श्रीवत्साङ्कितवक्षसं॥
पद्मासने समासीनां पद्महस्तां सुलोचनाम्।
प्रसन्नवदनां देवीं तस्य दक्षिणतोन्यसेत्॥
कैलासमध्यतो माञ्च त्वां चैव विनिवेशयेत्।
मां च शङ्करनामानं त्वां च गौरीं वरानने॥
चतुर्भुजं वृषस्थञ्च जटिलं चन्द्रमौलिनम्।
खट्वाङ्गशूल-वरदाभय-हस्तञ्च मां न्यसेत्॥
मदुत्सङ्गगतां त्वां च दर्पणे दीवरान्वितताम्।

भद्रासने भगवन्तं हयरूपमुखं हरिम् ॥
सौवर्णं स्थापयेद्देवं भारते कूर्म्मरूपिणम् ।
वाराहं केतुमालं वै मत्स्यं कुरुषु चोत्तरे ॥
सौवर्णानथवा रौप्यान् स्थापयेत्तु यथाक्रमम् ।
एवं जम्बाह्वयं* द्वीपं कृत्वा चैव यथाविधि ॥
अर्घपाद्यासनं स्नानं यथावत् स्थापनं क्रमात् ।
ब्रह्मादयस्तथादेवाः शैलाः कल्पद्रुमास्तथा ॥
स्वनाममन्त्रैः पूजार्हा नमस्कारान्तदीपितैः ।
गन्ध-पुष्प-नमस्कार-धूप-दीप-फलै-स्तथा ॥
तथोपहरणाद्यैश्च पूजयित्वा प्रयत्नतः ।
भद्राश्ववर्षे होमन्तु सर्पिषा च समाचरेत् ॥
स्वनाममन्त्रैर्होतव्यं स्वाहाकारसमायुतैः ।
दशोत्तरशतं हुत्वा ब्रह्मणे मेरवे तथा ॥
इतरेषाञ्च सर्व्वेषामष्टोत्तरशताहुतीः ।
स्नानार्थं यजमानस्य पुरतः कलशन्न्यसेत् ॥
आढकोदरपूर्णन्तु स्वकूर्चं वस्त्रवेष्टितम् ।
गन्धाः सुमनसस्तस्य कुशाग्रान्विनिवेशयेत् ॥
याश्च श्रेयोविधास्यन्ति ताश्चात्रावाहयेत्ततः ।
गङ्गाद्याः सरितः सर्वाः समुद्राश्च सरांसि च ॥
आयान्तु यजमानस्य दुरितक्षयकारकाः ।
इत्यावाह्य ततस्तस्य कलशं विमलोदकम् ॥

* एवं जम्बाह्वयमिति पुस्तकान्तरे पाठः

अभ्यर्च्च गन्धपुष्पाद्यैः स्थापयेत् प्रीतिपूर्व्वकम्।
स्नापयेत् प्राङ्मुखं तत्र दातारं कलशोदकैः॥
ऋग्भिर्व्वरुणदैवीभिः पावमानीभिरेव च।
दानकाले च सम्प्राप्ते दाता नारी नरोऽथवा॥
स्नापितो गुरुणा तेन सार्द्धं दानं समाचरेत्।
त्रिः प्रदक्षिणमावृत्य गृहीतकुसुमाञ्जलिः॥
प्रत्येकं पर्व्वतान् सर्व्वान् प्रणिपत्य पुरःसरम्।
मध्यमं गुरवे दद्यादिमं मन्त्रमुदीरयेत्।
अन्यस्मै वा प्रदातव्यं तस्यानुज्ञा मवाप्य च॥

यथाच भूरादिसमस्तलोका
त्वयि स्थिता भूधरराज नित्यम्।
अमीसुरा असुरा लोकनाथा
ब्रह्मादयो देवगणाश्च नित्यं॥
त्वत्संप्रदानादहमप्यशेषैः
पापैर्व्विमुक्तस्त यथाभवेयम्॥
श्रेयस्तथापर्व्वतराजमह्यं
कुरु प्रभो देववरैश्च सार्द्धं॥
इतीदमुक्त्वा प्रददेत्तु मेरुं
सकाञ्चनं राजतवस्त्रयुग्मम्।
प्रत्येकमेकं द्विजपुङ्गवानाम्
प्रागादि दद्यादितरान् क्रमेण॥
सुरासुराणाममृतार्थकृत्ये
त्वया कृतं मन्दरशैल सत्य।

तथा च मां रक्ष च सर्वतस्त्वं
तव प्रसादाद्विरजा यथाहं ॥
गन्धाद्रिमादन इतीरितभूधरेन्द्र
वेदे तवापि गरुडाय नमोस्तु तुभ्यं ।
त्वत्सम्प्रदानहतपापसमस्तदोषं
च्छायाधिशैलवर रक्ष च मामजस्रम् ॥
देवालयाय विपुलाय नमोऽचलाय
हंसाय वेदपुरुषाय नमोऽच्युताय ।
युष्मत्प्रदाननिहताखिलपापराशिं
हंसेन सार्द्धममराचल पाहि मां त्वं ॥
वन्दे सुपार्श्वममराचलमप्रमेय-
न्धेनुञ्च देवसुरभिं प्रणतोऽस्मि नित्यम् ।
त्वद्दानभक्तियुतसत्क्रिययाहमद्य
त्वामेव यामि शरणार्थमवेहि मां त्वं ॥
श्रीवत्सवक्षस-मनादि-मजं समस्त-
लोकाधिपं सकलकारणमच्युतञ्च ।
नारायणं शरणमेमि धराधरेन्द्रैः
सार्द्धं श्रिया हिमवतःस्थितिमादिमीडे ॥
देवाय देवगणपूजितपादपद्म-
युग्माय भक्तजनदुःखविनाशनाय ।
कैलाशशैलनिलयाय भवाय नित्यं
गौरीप्रियाय वरदाय नमः शिवाय ॥
चक्री त्वनादिनिधनः शरणागतं मां ।

भद्राश्वनामनिगतो हरिरच्युतोऽसौ ।
आस्ते ह नाथ न वपुःसनकादियोगि-
पूगैरभिष्टुतपुरातनकीर्त्तियुक्तः ॥
मध्ये महार्णवहिमाचलयो र्निषण्ण-
कूर्माकृतिं शरणमेमि भवाभवाय ।
पारावरं मथितमत्र सदा दधाति
यस्त्वं नमामि सुरपूजितमप्रमेयम् ॥
वाराहरूपिणमनन्तमनन्तकेतुम्
लोकस्वरूपिणमनेकशिरोक्षिपादम् ।
वन्दे महीधरममेयमपारकीर्त्तिं
यन्नेशमेमि शरणं हर मोशितारम् ॥
देवस्तथोत्तरकुरुष्वपि नित्यमास्ते
मत्स्यः सुरेन्द्रगणपूजितपादपद्म ।
रक्षत्वशेषजगतां पतिरच्युतोऽसौ
संसारदुःखचलितं शरणागतं मां ॥
उक्तैवमात्र मघनाशनदानमन्त्रं
प्रत्येक-मेकं द्विजपुङ्गवानाम् ।
भुक्त्वा शुभानि मनसेच्छति यानि वासौ
गच्छेच्च यत्र न निवर्त्तयतीह मर्त्त्यः ॥
गुरवे दक्षिणां दद्यात् सुवर्णञ्चैव वाससी ।
यागोपकरणं सर्व्वं गुरवे विनिवेदयेत् ॥
इत्याह भगवान् प्रीतः पार्वत्या परमेश्वरः ।
अहमप्यत्रवै सर्व्वं युष्माकं मुनिसत्तमाः ॥

इति ब्रह्माण्डपुराणोक्तो जम्बुद्वीपदानविधिः ।

ब्रह्मा उवाच ।

शृणु देव मुने दानं सप्तद्वीपाह्वयञ्च तत् ।
तत् कृत्वा पृथिवीदानफलं सर्व्वमुपाश्नुते ॥
पुण्यकालेषु सर्व्वेषु चन्द्रसूर्य्यग्रहादिषु ।
देवागारादिदेशेषु पुण्येष्वायतनेषु च ॥

विप्रं गुरुं वेदविदञ्च दक्षं
विद्याप्रदं वृणुयात्तत्र पूर्व्वम् ।
स कारयेच्चैवतदङ्गकार्य्यम्
कृते दानं गुरुणानेन सर्व्वं ॥
समां भूमिं लिम्पयेद्गोमयेन
सवारिणा शुचि तत्रापि मध्ये ।
कृत्वा द्वीपं जम्बुसंज्ञं यथावत्
तद्बाह्ये च प्लक्षनामा निबद्धः ॥

जम्बुप्लक्षाह्वयो द्वीपौ शाल्मलश्च तथापरः ।
कुशः क्रौञ्चश्च शाकश्च पुष्करश्चैव सप्तमः ॥
एते द्वीपाः समुद्रैश्च सप्तसप्तभिरावृताः ।
लवणेक्षु सुरा-सर्प्पि-र्दधि-दुग्ध-जलैः समम् ॥
जम्बुद्वीपः समस्तानामेतेषां मध्यमः स्मृतः ।
तस्यापि मेरुर्द्देवर्षे मध्ये कनकपर्व्वतः ॥
प्लक्षद्वीपस्य विस्तारः षोड़शाङ्गुल इष्यते ।
पादाधिकस्तथान्येषामुत्तरोत्तरमुच्यते ॥
षोडशद्रोणधान्यैश्च प्लक्षद्वीपं प्रकल्पयेत् ।

ततः पादाधिकं प्रोक्तमन्येषामुत्तरोत्तरम्।
विस्तार एष द्वीपानामुदधीनाञ्च सर्वशः॥
प्लक्षादिपञ्चद्वीपेषु वर्षभूधरनिम्नगाः।
प्रत्येकं सप्तसप्त स्युः श्वेततण्डुलनिर्म्मिताः॥
पुष्करे भूधरं त्वेकं मध्यतो वलयाकृतिं।
वर्षद्वयं तथाचान्यन्नामतः श्रूयतां मुने॥
प्लक्षे शान्तमयं वर्षं शिशिरं सुखदं तथा।
आनन्दञ्च शिवं चैव क्षेमकृत् सुखमेव च॥
गोमेदपर्वतश्चान्द्रो नारदोदुन्दुभिस्तथा।
सोमकः सुमनाश्चैव वैभ्राजः सप्त पर्वताः॥
अनुतप्ता शिवाचापि अम्बिका त्रिदिवो क्रमात्।
अमृता सुकृताचैव सप्तैतास्तत्र निम्नगाः॥
प्लक्षन्तु प्रथमे वर्षे मध्यतो विनिवेशयेत्।
पलेन वा यथाशक्ति तदर्द्धेन विनिर्मितं॥
तत्पार्श्वे देवदेवेशं सर्व्वलोकगुरुं हरिं।
सोमरूपधरन्देवं सौवर्णं विनिवेशयेत्॥
श्वेतौ हरितजीमूतौ रोहितो वैद्युतस्तथा।
नर्म्मतः सुप्रभः सप्त वर्षाश्चेति च पर्व्वताः॥
कुमुदश्चोदनश्चैव तृतीयश्च वलाहकः।
कङ्कश्च महिषश्चैव ककुद्मान् सप्तमोगिरिः॥
योनिस्तोया वितृष्णा च चन्द्रा शुक्ला च मोचनी।
विमुक्तिः सप्त नद्यश्च शाल्मले परिकीर्त्तिताः॥
उद्भिदो वेणुमांश्चैव सुरक्षो लवणो धृतिः।

प्रभाकरश्च कपिलः पर्वतान् शृणु नारद ॥
मणिद्रुमो हैमशैलो द्युतिमान् पुष्पवांस्तथा ।
कुशेशयश्च हरितो मन्दरः सप्तमस्तथा ॥
धूतपापा शिवा चापि पवित्रा शमिता तथा ।
विद्युदम्भा मही चैव सर्वपापहरा तथा ॥
कुशस्तम्बं कुशद्वीपे क्रौञ्चे चैतान्निबोध मे ।
वर्षाणि भूधराश्चैव विष्णुश्च पर एव च ॥
अन्धकारो मुनिश्चैव दुन्दुभिः सप्तमस्तथा ।
क्रौञ्चश्च वामनश्चैव अन्धकारोऽथ पञ्चमः ॥
पुण्डरीको दुन्दुभिश्च सप्तैते त्वरिताचलाः ।
गौरी कुमारी सन्ध्या च रात्रिश्चैव मनोजवा ॥
यक्षादिः पुण्डरीकश्च सप्तसप्त उदाहृताः ।
शाकमध्ये शाकवृक्षो वर्षाण्यपि च निम्नगाः ॥
सप्तसप्त च देवर्षे श्रूयतां गदतो मम ।
जलदश्च कुमारश्च सुकुमारो मणीचकः ॥
कुसुमोत्तममोदश्च सप्तमश्च महाद्रुमः ।
उदयो जलधारश्च रैवतश्चानुपर्वताः ॥
पञ्चमोऽम्रगिरिः शैलो अम्बिका केसरी तथा ।
सुकुमारी कुमारी च नलिनी वेणुका तथा ॥
इन्दुका रेणुका चैव गभस्तिः सप्तमी तथा ।
पुष्करे तु महापद्मो धातकीति प्रकीर्त्तितौ ॥
मध्यतो वलयाकारो मानसोऽत्र च पर्वताः ।
न्यग्रोधवृक्षः पूर्वे तु ब्रह्मणः स्थानमुच्यते ॥

सप्तमः पुष्करद्वीपः तद्वदेव समावृतः।
एवं द्वीपाः समुद्रैश्च सप्तसप्तभिरावृताः॥
द्वीपैश्चैव समुद्रैश्च समाना द्विगुणाः परे।
द्वीपमानान् द्रुमान् सर्वान् राजतान्विनिवेशयेत्॥
तथापश्चिमृगान्मत्स्यान् पर्वतोदधिषु क्षिपेत्।
जम्बुद्वीपाधिपं विष्णुं तत्र चैव निवेशयेत्॥

प्लक्षे सोमं शाल्मले वायुरूपं
कुशद्वीपे ब्रह्मरूपं पुराणं।
क्रौञ्चे रुद्रं शाकसंज्ञेऽथ सूर्यं
ब्राह्मं रूपं पुष्करे देव देवं॥
कृत्वाचैकं बहुधा चारुमूर्त्तिं
हिरण्मजं जगतामीशमाद्यं।
प्रक्षाल्य पूतेन जलेन मन्त्रैः
संप्रोक्ष्य दर्भैश्च निधाय देवान्॥
संवेष्ट्य वस्त्रैश्च धराधरेन्द्रान्
समन्ततो विकिरेत् पुष्पवृष्ट्या।
अर्घादिभिर्हव्ययुतैश्चहस्तैः
सम्पूज्य मेरुं प्रमथांश्च सर्वान्॥
स्वनाममन्त्रैश्च नमोयुतैश्च
स्वाहायुतैः पूर्ववद्धोममन्त्रः।
यथा पुरा तत्र तथैव कुर्य्या
देवाधिशैलेन्द्रवनस्पतीनां॥
पूर्वैर्द्युरेव विधिना समाप्य

गुरुश्च तत्राधिवसेन्निशायां ।
निशासु वेदानुमतस्तथैव
वस्त्रादिदानञ्च ततः क्रमेण ॥
ततः प्रभाते विमले तु दान्
काले तदा स्नापितोधौतवस्त्रः ।
यथा पूर्वं जप्यसंयुस्य चोक्तं
तथादानं सादरं कारयित्वा ॥
ततो विप्रान् पूज्य तेषां क्रमेण
तां दापयेन्मन्त्रपूर्वन्तथैव ।
सोमं वायुं ब्रह्मरूपञ्च चन्द्रं
तथा सूर्यं ब्रह्मणोरूपमाद्यं ॥

वीरुधौषधिवृक्षाणां मृगाणां जगतां प्रभोः ।
आह्लादजननो यस्मात् तस्मात्त्वं पाहि मां सदा ॥
अन्तर्बहिश्च तत्सर्वं व्याप्य योजगति स्थितः ।
सदागतिरमेयात्मा रक्ष त्वं व्याहतस्तु मां ॥
यः कर्त्ता जगतां पाता ब्रह्मलोकपितामहः ।
त्वत्सम्प्रदानाद्देवेश श्रेयश्चास्तु सदा मम ॥
रक्षार्थं देवदेवानां जगतामपि शङ्कर ।
त्वया तु त्रिपुरन्दग्धं सदा मे संप्रसीद तत् ॥
उदेत्यस्तमनं याति नित्यं पाति जगत्त्रयं ।
प्रत्यक्षं सर्वलोकानां योऽसौ मे संप्रसीदतु ॥
सृष्टिस्थितिविनाशानां कारणञ्जगतामसौ ।
हिरण्यगर्भो भगवान् सदा मे संप्रसीदतु ॥

इत्येवमेव विधिभिर्द्विज पुङ्गवानाम्
प्रत्येकमेकस्य यथा क्रमेण।
दद्यात्तदा गुरवे दक्षिणां च
वासः सुवर्णादधिकं सुवर्णं॥
कृत्वा सप्तद्वीपपर्य्यन्तभूमिं
दत्त्वा देवान् जातरूपान् क्रमेण।
दद्यात्तस्मै गुरवे दानशेषं
साङ्गोपांगन्धान्यवस्त्रादि सर्व्वं॥
आदावन्ते पञ्चभिर्विप्रवर्य्यैः
पुण्याहञ्च स्वस्तिमृद्धिञ्च वाच्यं।
दद्यात्तेभ्यो दक्षिणां जातरूपं
वासोधान्यं भोजयेद्ब्राह्मणांश्च॥
सप्तद्वीपाह्वयं दानमेवं कृत्वाथ नारद।
नारी वा पुरुषोवाथ वैरिञ्चिं लोकमाप्नुयात्॥
उवाच नारदायैवं भगवान् लोकभावनः।
यथा मया पि तत्सर्वं प्रोक्तं वै मुनिसत्तमाः॥
इति ब्रह्माण्डपुराणोक्तः सप्तद्वीपदानविधिः।

पुलस्त्य उवाच।

तत्रासीना मुनयः शौनकाद्या-
स्तेचारण्ये नैमिषे सत्रयागे।
सुखासीनं सूतमनुत्तदानीम्
गत्वापृच्छन् यज्ञकर्मावसाने॥
उग्रस्रवः परिपृच्छामहे त्वाम्

किं कृत्वासौ पुरुषोवाथ नारी।
आयुश्च सर्व्वं लभतेऽथ रोगै
र्विमुच्यते भूतिमुपैति चाग्र्यां॥
दुःस्वप्ननाशं* ग्रहभीतिनाशम्
दृष्टं तथा त्रिविधे चाद्भुते वा।
अथान्यदा भयदोषप्रशान्ति-
मभीष्टसिद्धिं प्रददाति कर्त्तुः॥
दानं व्रतं देवताभ्यर्च्चनं वा
किं तत् कृत्वा कृतकृत्योभवेत्ताः।
शुश्रुषवस्तववाकाश्च यत्तु
वदास्माकं सूतदानातिविद्वन्॥
इत्येवमुक्तो मुनिभिस्तदानी-
मुग्रश्रवाः प्रत्युवाचाथ तेषां।
शृणुध्वं वः कथयिष्याम्यहन्त-
त्त्वेवं भूतं पृथिवीपद्मदानं॥
देवागारे नदनद्योस्तु तीरे
गृहेऽन्यस्मिन् पुण्यदेशे च कुर्य्यात्।
तडागे वा नन्दने वाथ कुर्या-
दारामे वा रमते यत्र चेतः॥
विप्रं गुरुं वेदपुराणदक्षं
सङ्गृह्य वैतानि क्रमादरेण।
दद्यात्तु तस्मै गुरुवेऽथ वासो

* दुःस्वप्ननाशमिति क्वचित् पाठः।

युगं शुभं काञ्चनभूषणानि॥
अलङ्कृतोऽसौ प्रकरोति सर्व-
मेतेदानं किञ्चिदिहास्ति कार्यं।
गव्येन भूमिं शकृता जलेन
चालेपयेद्विंशतिहस्तमात्रां॥

कूटञ्चर्षातपत्राणां समं प्राक्प्लवमेव वा।
षोडशारत्निमात्रन्तु चतुरस्रं प्रकल्पयेत्॥
यथेष्टं तत्र कुर्याद्वै स्तम्भांश्च परिकल्पयेत्।
चतुर्द्वारसमायुक्तं चतुस्तोरणभूषितं॥
दर्भमालापरिक्षिप्तं मङ्गलांकुरशोभितं।
वितानेनोपरिच्छन्नं शुभेन सितरूपिणा॥
परितो लोकपालानां ध्वजाश्च परिकल्पयेत्।
वस्त्रैरावेष्टयेत् स्तम्भान् चतुर्द्दिक्षु विचक्षणः॥
लम्बयेत् पुष्पमालाश्च सर्वतस्तम्भसन्धिषु।
प्रागुदक्प्रवणां भूमिं गोमयेनोपलेपयेत्॥
एवंकूटप्रपाञ्चाथ पटं वा परिकल्पयेत्।
मध्ये व्रीहिमयं शैलं महामेरुं प्रकल्पयेत्॥
मध्यमं दशभारेण* तुरीयांशेन चेतरान्।
मन्दरं पुरतः कृत्वा दक्षिणे गन्धमादनं॥
विपुलं पश्चिमे शैलं सुपार्श्वञ्चोत्तरेऽचलं।
विष्कम्भपर्वतौ द्वौतु पूर्व्वपश्चिमभागयोः॥
परितश्चान्तरे वर्षपर्वताः समुदाहृताः।

---

* तृतीयांशेनेति क्वचित् पाठः।

विष्कम्भपर्व्वतौ, मन्दरगन्धमादनावेवाभिप्रेतौ, वर्षपर्व्वतास्तु धरादानोपदिष्टा द्रष्टव्याः।

जम्बूप्लक्षाह्वयौ द्वीपौ शाल्मलश्च तथापरः।
कुशं क्रौञ्चश्च शाकश्च पुष्करश्चैव सप्तमम्॥
लवणेक्षुसुरासर्पिर्दधिदुग्धजलैः समम्।
एवं द्वीपाः समुद्रैश्च सप्तसप्तभिरावृताः॥
एवं व्रीहिमयाञ्छैलान् पत्रिणः कारयेत्तथा।
भारार्द्धेनाथवा शैलानितरान् परिकल्पयेत्॥

इतरान्, वर्षपर्व्वतानित्यर्थः।

सम्वेष्ट्य शैलान् वासोभिः सर्व्वानेव महोदधीन्।
चतुरश्चतुरः पात्रान् तत्तद्रव्येण संविशेत्॥
मन्दारं पारिजातञ्च सन्तानं हरिचन्दनम्।
मेरोरुपरि सौवर्णान् चतुर्दिक्षु निवेशयेत्॥
तन्मध्ये कल्पवृक्षञ्च सौवर्णं कमलासनम्।
ब्रह्माणं द्विभुजं देवं प्राङ्मुखं विनिवेशयेत्॥
मेरुशृङ्गाणि चत्वारि राजतानि प्रकल्पयेत्।
सौवर्णं मादनं प्लक्षं मन्दरे विनिवेशयेत्॥
हिरण्यं गरुडं जम्बुगन्धमादनपर्व्वते।
सौवर्णञ्च पुरोहंसमश्वत्थं परिकल्पयेत्॥
सुपार्श्वे सुरभीं हैमीं न्यग्रोधञ्च निवेशयेत्।
राजतानपि सर्व्वेषु मृगपश्चिमहीरुहः॥
इक्षुचन्दनखण्डानि सर्व्वेषु विनिवेशयेत्।

द्वारेषु कुम्भौ जलवस्त्रयुक्तौ

फलैर्युतौ चन्दनखण्डयुक्तौ।
कोणेषु पूर्णं कलशन्तथैव
चतुर्दिशमिक्षुरसं निधाय॥
कृत्वैव मद्रिप्रवरांश्च देवा-
नाराधयन् चन्दनपुष्पधूपैः।
स्वनाममन्त्रैश्च नमोन्तरूपै-
रभ्यर्च्य सर्व्वानथ विप्रमुख्यान्॥
सार्द्धं तथा गुरुणा पञ्चभिस्तैः
पुण्याहकं स्वस्तिमृद्धिं च वाच्यं।
ततोऽत्रहोमं गुरुरेव कुर्य्यात्
पूर्वोत्तरस्यान्दिशि भूधराणाम्॥
अग्निं समाधाय घृतेन दध्ना
जुहोति देवाय च नामचोक्त्वा।
तथा गिरीणामपि नाममन्त्रै
र्दशाहुतीरधिकञ्चैवमेकम्॥
पूर्वेद्युरेवं गुरुरेव कृत्वा
निशां तथा जागरणं च कुर्य्यात्।
रक्षोघ्नमन्त्रांश्च जपन् स आस्ते
ततः प्रभाते विमले प्रकर्त्ता॥
प्राप्ते पुण्ये दानकाले प्रदाता
कुशोदकैस्तिलमिश्रैश्च विद्वान्।
स्नात्वा शुचिर्गुरुणा प्रोक्षितोऽसौ
तथा मन्त्रै र्व्वारुणैः पावमानैः॥

दद्यात् पुष्पाञ्जलिं तत्र मेरोः कृत्वा प्रदक्षिणम् ।
सम्पूज्य दद्याद्विप्राय गुरवे वाहिताग्नये ॥
यस्मात्त्वं लोकपालानां ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ।
आवासः सर्व्वदेवानां तस्मान्मां पाहि सर्व्वतः ॥
यस्मात्त्वं क्षितिपद्मस्य कर्णिकारं महीधर ।
तस्मात्त्वं सर्वदा ह्यस्मच्छ्रेयांसि प्रददस्व वै ॥
इति दद्यान्महामेरुं विप्राय विदुषे ततः ।
प्रागाद्युत्तरपर्यन्तान् विप्रेभ्यः प्रतिपादयेत् ॥
प्रत्येकमेकं विदुषां चतुर्णां प्रतिकल्पयेत् ।
दद्यात् पुष्पाञ्जलिञ्चैव कृत्वाचापि प्रदक्षिणम् ॥
यस्मात्त्वं मदनावासो देवानामपि पर्व्वत ।
सम्प्रीयतां मे भगवान् मन्दरः पर्वतोत्तमः ॥
यस्मात्त्वं गरुड़ावासः सदा देवालयाचलः ।
सम्प्रीयतां मे भगवान् गन्धमादनपर्व्वतः ॥
यस्मिन्नश्वत्थवृक्षस्थो हंसरूपी सदा वसेत् ।
तस्मात् सम्प्रीयतां मह्यं विपुलः पर्वतोत्तमः ॥
सुरभिस्तिष्ठते नित्यं न्यग्रोधोमस्तके तव ।
आरामो देवतानां त्वं सुपार्श्व प्रीतिमान् भव ॥
इत्येवं पृथिवीपद्मदानं दानोत्तमं तथा ।
दत्त्वा भुङ्क्तेऽधिकान् भोगान् ब्रह्मसालोक्यमाप्नुयात् ॥
पुण्याहं स्वस्तिमृद्धिञ्च वाचयेद्गुरुणा सह ।
विद्वद्भिः पञ्चभिर्विप्रै र्दद्यात्तेषान्तु दक्षिणाम् ॥
दानोपदेष्ट्रे गुरवे दक्षिणां प्रतिपादयेत्

उपदेष्टा च षष्ठोऽभिप्रेतो वैतानिकस्य तु
गुरोस्तेषाञ्च दद्यात्तु दक्षिणामित्यनेन च
दक्षिणादानसिद्धेः ।

दानमानसमं निष्कं जातरूपं विधानतः ।
आसनं शयनं वस्त्रं पात्रं भोजनसाधनम् ।
पानीयसाधनङ्कांस्यं गुरवे प्रतिपादयेत् ॥

एतद्दानेऽप्युपयुक्तं समस्तम्
दद्यात्तस्मै गुरवे वस्त्रजातम् ।
स्वयं भुंक्ते स घृतं पाणिनोक्तं
गुरून् विप्रान् भोजयेद्दिष्टवर्गान् ॥
एवं पुरा ऋषये नारदाय
जगत्कर्त्ता वाब्रवीत्पद्मयोनिः ।
मयाचोक्तं पृथिवीपद्मदानम्
ततः किञ्च प्रब्रवीमि द्विजेन्द्राः ॥

इति ब्रह्माण्डपुराणोक्तः पृथिवीपद्मदानविधिः ।

शौनक उवाच ।

अन्त्यजागमने मर्त्यः पाण्डुरोगी प्रजायते ।
वक्ष्यामि तत् प्रतीकारं दानहोमादिकर्म्मणा ॥
पलत्रयेण कुर्वीत राजतेन वसुन्धराम् ।
तदर्द्धेनाथवा कुर्य्याद्वित्तशाठ्यन्नकारयेत् ॥
सपर्वतवनां कृत्स्नां समुद्रपरिवेष्टिताम् ।
नवरत्नानि निक्षिप्य श्वेतवस्त्रेण वेष्टयेत् ॥
कांस्यपात्रे विनिक्षिप्य पलाष्टकविनिर्मिते ।

देवीमावाहयेत्तत्र सर्वाधारां हरिप्रियाम् ॥
एह्येहि देवि धात्री त्वं रूपेऽस्मिन्सम्यगाविश ।
सहिता पर्व्वतैर्द्वीपैः समुद्रैः सुमना भव ।

आवाहनमन्त्रः ।

एवमावाह्यतां देवीं गन्धमाल्यैःसमर्चयेत् ।
उपचारैः षोड़शभिराचार्यः सर्वशास्त्रवित् ॥
होमञ्चापि प्रकुर्व्वीत समिदाज्यतिलैरथ ।
भूमिर्भूमीति मन्त्रेण समिद्धोमः प्रकीर्त्तितः ॥
तथा । भूमिर्भूमिमगात्माना मातामातरमित्यपि ।
मन्त्रः प्रकीर्त्तितश्चाग्नौ तिलाज्याहुतिभिर्हुनेत् ॥
अग्नेरुत्तरतश्चापि कुम्भं वस्त्रेण वेष्टितम् ।
स्थापयेद्व्रणं शुभ्रमश्वस्थानादिमृत्तिकाः ॥
प्रक्षिपेच्च ततः शुद्धवारिणा परिपूरिते ।
पवमानादिभिर्मन्त्रैरभिषेकञ्च कारयेत् ॥
शन्नोदेव्यनुवाकेन शान्तिं चापि प्रकल्पयेत् ।
अभिषिक्तस्यचाङ्गानि वस्त्रेण परिमार्जयेत् ॥
अक्षोभ्यमनुवाकेन यथालिङ्गं सदर्भकम् ।
आचार्याय च तां पृथ्वीं दद्याद्रोगी समाहितः ॥
मन्त्रेणानेन विधिवत् प्राङ्मुखाय ह्युदङ्मुखः ।
धात्री धरित्री भूतानां वराहेणोद्धृता प्रिया ॥
रत्नगर्भसमुद्रैकवसना सर्व्वशोभना ।
दानेनानेन सुप्रीता पाण्डुरोगं व्यपोहतु ॥
दानमन्त्रः, । अनेन विधिना दत्त्वा पृथ्वीदानं प्रयत्नतः ।

यद्दानं वै कृतं मर्त्यै अन्त्यजागमनेन तु॥
तत्सर्वं नाशमायाति पाण्डुरोगादिकं महत्।
शान्त्यर्थं ब्राह्मणैः सार्द्धं कुर्य्यात् पुण्याहवाचनं॥

इति पद्मपुराणोक्तः पाण्डुरोगहरः पृथिवीदानविधिः।

अथ विश्वचक्रशब्दितं द्वादशं महादानमाख्यायते।

मत्स्यपुराणे मत्स्य उवाच।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि महादानमनुत्तमम्।
विश्वचक्रमितिख्यातं सर्व्वपापप्रनाशनम्॥
तपनीयस्य शुद्धस्य विषुवादिषु कारयेत्।
ज्येष्ठं पलसहस्रेण तदर्द्धेन तु मध्यमम्॥
तस्यार्द्धेन कनिष्ठं स्यात् विश्वचक्रमुदाहृतं।
अन्यद्विंशपलादूर्द्धमशक्तोपि निवेदयेत्॥
षोड़शारन्ततश्चक्रं भ्रमन्नेम्यष्टकावृतम्।
नाभिमध्ये स्थितं विष्णुं योगारूढं चतुर्भुजम्।
शङ्खचक्रेऽस्य पार्श्वेतु देव्यष्टकसमावृतं।

'अरोनाम, नाभ्यन्तोपक्रमान्तगामिशलाकाकृतिरवयवविशेषः
'नेमयः, प्रधयः भ्रमन्त्योवलयाकारेणावस्थिताः
तासामष्टकेन तुल्यान्तरालेनावृतम्।
वेष्टितं, नाभिपद्मे स्थितमिति

अष्टदलपद्माकारा नाभिः तत्कर्णिकायां योगारूढमिति हृद्देशावस्थापितहस्तद्वयं पार्श्वस्थितशङ्खचक्रं विष्णुं विन्यस्य दलाष्टक पूर्वादिक्रमेण शक्त्यष्टकं प्रतिष्ठापयेत्। तल्लक्षणं तु नारदीये।

विमलोत्कर्षिणी ज्ञाना क्रिया योगा तथापरा ।
प्रह्वा सत्या तथेशाना नवमी वाप्यनुग्रहेति ॥
सर्व्वा दक्षिणहस्तेन वरदेन विराजिता ।
सव्येन चक्रे धारिण्यः स्त्रीरूपाश्चारुभूषणा इति ॥
अत्र देव्यष्टकसमावृतमितिवचनान्नवम्या अनुपयोगः ।
द्वितीयावरणे तद्वत् पूर्वतो जलशायिनः ।
अत्रिर्भृगुर्वशिष्ठश्च ब्रह्मा कश्यप एव च ॥
मत्स्यः कूर्मोवराहश्च नरसिंहोऽथ वामनः ।
रामोरामश्च कृष्णश्च बुद्धः कल्कीति च क्रमात् ॥
जलशायिप्रभृतीनां, लक्षणमुक्तं ब्रह्माण्डदानद्वये ।
मत्स्यादीनान्तु पञ्चरात्रे ।
वामे शङ्खं गदां दक्षे द्विभुजोमत्स्यरूपधृक् ।
नराङ्गिर्मत्स्यरूपी वा मत्स्यरूपी जनार्द्दनः ॥
एतदेव कूर्मलक्षणं मत्स्यपदस्थाने कूर्मपदप्रयोगे सति ।
मधुपिङ्गलवर्णञ्च चतुर्बाह्वायुधैर्युतम् ।
नराङ्गं शूकरास्यं च मनाक्पीनं सुभीषणम् ॥
श्रीर्वामकूर्परस्था तु धरानन्तौ पदानुगौ ।
एतद्रूपधरं देवं वराहं भुक्तिमुक्तिदम् ॥
ज्वलदग्निसमाकारं सिंहवक्त्रं नराङ्गकम् ।
दंष्ट्राकरालवदनं ललज्जिह्वं सुभीषणम् ॥
वृत्ताक्षं जटिलं क्रुद्धं आलीढं पीनवक्षसम् ।
अभेद्यतीव्रनखरं वामाङ्कक्रान्तदानवं ॥
तद्वक्षोदारयन्तं च कराभ्यां नखरैर्भृशं ।

गदाचक्रधरं द्वाभ्यां नरसिंहं जगत्प्रभुम् ॥
कुण्डीच्छत्रधरोद्विर्द्यौर्वामनः परिकीर्त्तितः।
क्षत्रान्तकरणं घोरमुद्वहन् परशुं करे ॥
जामदग्न्यः प्रकर्त्तव्यो रामो रोषारुणेक्षणः।
युवा प्रसन्नवदनः सिंहस्कन्धो महाबलः ॥
आजानुबाहुः कर्त्तव्यो रामो बाणधनुर्द्धरः।
शङ्खचक्रधरः कार्य्यो नीलोत्पलदलच्छविः ॥
कृष्णो दीर्घद्विबाहुश्च सर्वदैत्यक्षयङ्करः।
काषायवस्त्रसंवीतः स्कन्धसंसक्तचीवरः ॥
पद्मासनस्थो द्विभुजो ध्यायी* बुद्धः प्रकीर्त्तितः।
खड्गोद्यतकरः क्रुद्धो हयारूढो महाबलः ॥
म्लेच्छोच्छेदकरः कल्की द्विभुजः परिकीर्त्तित इति।
तृतीयावरणे गौरी मातृभिर्वसुभिर्युता ॥

गौरीलक्षणमुक्तं, ब्रह्माण्डपुराणे।

ब्रह्माण्याद्याः सप्तमातरः।

तासाञ्च, लक्षणमुक्तं लक्षणसंग्रहे।
गौरी चतुर्मुखी वीरा अक्षमाला स्रुचान्विता।
कुण्डाज्यपात्रिणी वामे ब्रह्माणी हंससंस्थिता ॥
गौरी, गौरवर्णा ब्रह्माणीविशेषणमेतत्।
त्रिनेत्रा शूलहस्ता च जटाखण्डेन्दुमण्डिता।
कपालमालिनी शुक्ला रुद्राणी वृषसंस्थिता ॥
रक्ता शक्तिधरा देवी रक्तमाल्याम्बरान्विता।

* धीर इति क्वचित्पाठः।

शिखिपृष्ठसमारूढा कौमारी स्कन्दरूपिणी ॥
शङ्ख-चक्र-गदा-शार्ङ्ग-खड्गहस्ता च तार्क्ष्यगा ।
श्यामा चतुर्भुजा देवी वैष्णवी वनमालिनी ॥
कृष्णा पीनोदरा क्रूरा शूकरास्यानुकारिणी ।
सवस्त्रा यौवनोद्भिन्ना नार्य्याभरणभूषिता ॥
वाराही महिषस्था तु मदिरा दण्डधारिणी ।
खड्ग-खेटकसंयुक्ता अथवापि चतुर्भुजा ॥
सहस्राक्षा गजारूढा हेमाभा वज्रधारिणी ।
इन्द्राणी सर्व्वसिद्धार्थी सर्वाभरणभूषिता ॥
गर्त्ताक्षी क्षीणदेहा तु क्षामकुक्षिभयङ्करी ।
विवृतास्या च दंष्ट्रोग्रा शिवे वा कौशिके स्थिता ॥
लेलिहाना विमुक्ताक्षी ज्वलत्केशाहिमण्डिता ।
द्वीपिचर्माम्बरा क्रुद्धा चामुण्डा मुण्डमालिनी ॥
जटिला वर्त्तुला नग्ना चतुर्बाहुषु बिभ्रती ।
कपालकर्त्तरी याम्ये पाशं शूलञ्च वामत इति ॥

वस्वष्टकलक्षणमुक्तं ब्रह्माण्डदाने* ।

चतुर्थे द्वादशादित्या वेदाश्चत्वार एव च ।
पञ्चमे पञ्चभूतानि रुद्राश्चैकादशैव तु ॥
लोकपालाष्टकं षष्ठे दिग्मातङ्गास्तथैव च ।
सप्तमेऽस्त्राणि सर्वाणि मङ्गल्यानि च कारयेत् ।
अन्तरान्तरतो देवान् विन्यसेदष्टमे पुनः ॥

---

* पुराणे इति क्वचित् पाठः ।



23-1

आदित्य-लोकपालादि-गजानां, लक्षणमुक्तं, ब्रह्माण्डदाने।
वेदस्वरूपाणि, महाभूतघटदाने वक्ष्यन्ते।
पञ्चभूतानि, पृथिव्यादीनि।

तल्लक्षणमुक्तं विष्णुधर्मोत्तरे।

शुभवर्णा मही कार्य्या दिव्याभरणभूषिता।
चतुर्भुजा सौम्यवपुश्चन्द्रांशुसदृशाम्बरा॥
रत्नपात्रं सस्यपात्रं पात्रमोषधसंयुतम्।
पद्मं करे च कर्त्तव्यं भुवो यादवनन्दन॥
दिग्गजानां चतुर्णां सा कार्या पृष्ठगता तथा।
सर्वौषधियुता देवी शुक्लवर्णा ततः स्मृता॥

अपां रूपमुक्तं, स्कन्दपुराणे।

तस्य ध्यानवतः पूर्वमापः प्रत्यक्षतां ययुः।
स्त्रीरूपाः शुभ्रवर्णाश्च द्विभुजाः श्वेतवाससः।
दधानाः पाशकलशौ करयोर्मकरासना॥

तेजस्त्वग्निः, तस्य रूपमुक्तं ब्रह्माण्डदाने।
वायोश्च, आकाशरूपमुक्तं विष्णुधर्मोत्तरे।

नीलोत्पलाभं गगनन्तद्वर्णाम्बरधारि च।
चन्द्रार्कहस्तं कर्त्तव्यं द्विभुजं सौम्यदर्शनम्।
द्विरष्टवर्षाकारञ्च स्त्रीपुंसव्यञ्जनोज्झितम्॥

रुद्रलक्षणमुक्तं, विश्वकर्मणा।

रक्तवर्णास्त्रिनयना द्विभुजा चन्द्रमौलयः।
जटिलाश्च प्रकर्त्तव्या रुद्रा बाणधनुर्द्धरा इति॥

सप्तमेऽस्त्राणि, सर्वाणीति, अत्र सत्यपि सर्वशब्दे षोड़शकोष्ठ-

सन्निवेशोपयोगित्वादष्टावस्त्राणि मङ्गल्यानि चाष्टावित्येतावतामेव परिग्रहो न्याय्यः ।

अस्त्राण्युक्तानि, गरुड़पुराणे,

खड्ग-शूल-गदा-शक्ति-कुन्ता-ङ्कुश-धनूंषि च ।
स्वधितिश्चेति शस्त्राणि तेषु चापं प्रशस्यत इति ॥

मङ्गल्यान्याह पराशरः ।

दक्षिणावर्त्तशङ्खश्च रोचना चन्दनस्तथा ।
मुक्ताफलं हिरण्यञ्च च्छत्रञ्चामरमेव च ।
आदर्शश्चेति विज्ञेयं मङ्गल्यं मङ्गलावहम् ॥

अन्तरान्तर इति पूर्वोक्तिः, सर्व्वैरेव सम्बध्यते अन्तराणामन्तरो मध्यदेश इत्यर्थः अष्टमावरणे तु पूर्वोक्तान् ब्रह्मादीन् षोडशदेवान् विन्यसेदिति दानविवेककारः अभीष्ट देवान्विन्यस्येदिति केचित् एते च देवताविशेषा विश्वचक्रनिर्माणार्थमवक्लृप्तस्यैव सुवर्णस्य मध्यतश्चक्रारूढा निष्पादनीयाः न पृथक् सुवर्णेन तथाविध स्यैव चक्रस्य कार्य्यतयोपदेशात् ।

तुलापुरुषवच्छेषं समन्तात्परिकल्पयेत् ।
ऋत्विङ्मण्डपसम्भार-भूषणाच्छादनादिकम् ॥
विश्वचक्रं ततः कुर्य्यात् कृष्णाजिनतिलोपरि ।
तथाष्टादश धान्यानि रसांश्च लवणादिकान् ॥
पूर्णकुम्भाष्टकञ्चैव वस्त्राणि विविधानि च ।
माल्येक्षुफलरत्नानि वितानं वापि कारयेत् ॥

अत्रादिशब्देन, हवि श्राद्ध-शिवादिपूजा-

ब्राह्मणवाचनाधि-वासनादीनि संस्मृतानि।

भविष्योत्तरे।

अधिवास्य ततश्चक्रं पश्चाद्धोमं समाचरेत्।
चातुर्वर्णिकासूत्रब्राह्मणाश्चतुरोऽष्ट वा॥
होमं कुर्य्युर्यतात्मानो वस्त्राभरणभूषिताः।
होमद्रव्यसमोपेताः स्रुक्स्रुवैस्ताम्रभाजनैः॥
चक्रप्रतिष्ठितानान्तु सुराणां होम इष्यते।
तल्लिङ्गैर्जुहुयान्मन्त्रैः सर्व्वोपद्रवशान्तये॥

मत्स्यपुराणे।

ततोमङ्गलशब्देन स्नातः शुक्लाम्बरो गृही।
होमाधिवासनान्तेषु गृहीतकुसुमाञ्जलिः॥
इममुच्चारयेन्मन्त्रं त्रिः कृत्वा तु प्रदक्षिणम्।
नमो विश्वमयायेति विश्वचक्रात्मने नमः॥
परमानन्दरूपी त्वं पाहि संसारकर्दमात्।
तेजोमयमिदं यस्मात् सदा पश्यन्ति योगिनः॥
हृदि तत्त्वं गुणातीतं विश्वचक्रं नमाम्यहम्।
वासुदेवे स्थितं चक्रं चक्रमध्ये च माधवः॥
अन्योन्याधाररूपेण प्रणमामि स्थिताविह।
विश्वचक्रमिदं यस्मात् सर्व्वपापहरं परम्॥
आयुधञ्चाधिवासश्च भवादुद्धर मामतः।
इत्यामन्त्र्य च योदद्यात् विश्वचक्रं विमत्सरः॥
विमुक्तः सर्वपापेभ्यो विष्णुलोके महीयते।

वैकुण्ठलोकमासाद्य चतुर्बाहुः सनातनः ॥
सेव्यते ऽप्सरसां सङ्घैस्तिष्ठेत् कल्पशतत्रयं ।

अत्रापि पूर्ववद्दानवाक्यमभिधाय-
यथाशक्ति सुवर्णदक्षिणासहितंजल-
पूर्णमाचार्यादिभ्यः सम्प्रदान प्रतिपादनं तदनुज्ञयान्येभ्योपि दानम् दीनानाथतर्पणम् स्वल्पेत्वेकाग्निविधानमृत्विगाचार्य्याणां विभागव्यवस्था चेति सर्व्वं प्रकृतिवदनुष्ठेयं, ततः पुण्याहवाचन-देवतापूजनविसर्जनानि कुर्य्यात् ।

प्रणमेद्वा स्वयं कृत्वा विश्वचक्रं दिने दिने ॥
तस्यायुर्वर्द्धते नित्यं लक्ष्मीश्च विपुला भवेत् ।

इति सकल जगत्सुराधिवासम्
वितरति यस्तपनीयषोडशारम् ।
हरिभुवनमुपागतः ससिद्धै
श्चिरमधिगम्य नमस्यते शिरोभिः ॥
असुदर्शनतां प्रयाति शत्रो
र्मदनसुदर्शताश्च कामिनीनां ।
ससुदर्शनकेशवानुरूपः
कनकसुदर्शनदानदग्धपापः ॥
कृतगुरुदुरितानिषोडशार
प्रवरसुदर्शनदानता निरस्य ।
व्रजति च समुरारिधाम भित्वा
भवमतित्य भुवने भवान भूयः ॥

इति मत्स्यपुराणोक्तो विश्वचक्रदानविधिः ।

अथ कल्पलताभिधानं त्रयोदशं महादानमुपवर्ण्यते।

मत्स्य उवाच।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि महादानमनुत्तमम्।
महाकल्पलता नाम महापातकनाशनम्।
पुण्यां तिथिमथासाद्य कृत्वा ब्राह्मणवाचनम्।
ऋत्विङ्मण्डपसम्भारभूषणाच्छादनादिकम्।
तुलापुरुषवत् कुर्य्यात् लोकेशावाहनादिकं॥
आदिशब्दव्याख्यानं पूर्ववत्।
चामीकरमयीः कुर्य्यात् दशकल्पलताः शुभाः।
नानापुष्पफलोपेता नानांशुकविभूषिता॥
विद्याधरसुपर्णानां मिथुनैरुपशोभिताः।
हरोनादिक्षुभिः* सिद्धैः फलानिच विहङ्गमैः॥

चामीकरं, सुवर्णं कल्पलतास्तुलाकारा विधेयाः, नानाफलानि, पुंस्त्रीगोगजवाजिप्रभृतीनि, स्वरूपपुष्पफलानां तुलनार्थत्वेनैवोपपत्तेः।

'अंशुकानि, वस्त्राणि। सुपर्णाः, पक्षिणः।

एवं दशकल्पलतां विधाय वेदिकायाम् लिखितचक्रस्योपरि मध्ये द्वयं पूर्वादिदिक्षु चाष्टौ स्थापयेत्।

लोकपालानुसारिण्यः कर्त्तव्यास्तासु देवताः।
ब्राह्मीमनन्तशक्तिञ्च लवणस्योपरि न्यसेत्।
अधस्ताच्च तयोर्मध्ये पद्मशङ्करे शुभे॥

---

*हरमादिशुभिरिति क्वचित्पाठः।

लोकपालानुसारिण्यो देवता, लोकपालशक्तय इत्यर्थः ।

अधस्ताच्च तयोरिति, मध्यस्थापितयोः कल्पलतयोरधस्तात् पद्माकारां ब्राह्मीं, शङ्खधरामनन्तशक्तिञ्च स्थापयेत् ।

लवणादिपरिमाणञ्च, परिमाणविशेषा-

निर्देशात् पुरुषेच्छया नियम्यते । लवणं स्तूपयोर्न्यसेदिति क्वचित्पाठः तत्र स्तूपो राशिः द्विवचनं राशिद्वयापेक्षयेति ।

इभासनस्थात्तु गुडे पूर्वतः कुलिशायुधा ।
रजन्यजस्थिताग्नेयोस्त्रुहीपाणिरथानले ॥
याम्यामहिषमारूढागदिनी तन्दुलोपरि ।
घृतेन नैर्ऋती स्थाप्या सखड्गा दक्षिणापरे ॥
वारुणे वारुणी क्षीरे झषस्था नागपाशिनी ।
पताकिनी च वायव्ये मृगस्था शर्करोपरि ॥
सौम्या तिलेषु संस्थाप्या शङ्खिनी निधिसंस्थिता ।
माहेश्वरी वृषगता त्वीशपाणिः त्रिशूलिनी ॥

इभो गजः सच चतुर्दन्तोविधेयः, कुलिशं, वज्रं, रजन्यजस्थितेति, रजनी, हरिद्रा, अजः, छागः, हरिद्रोपरिस्थापिता छागवाहनेत्यर्थः अनले, आग्नेयदिग्भागे, दक्षिणापरे नैर्ऋतदिग्भागे नैर्ऋतीप्रेतवाहनेत्यवधेयं झषस्थामकरवाहनेत्यर्थः ।

निधिसंस्थितेतिनिधिरूपं कलशानुकारि ।

मौलिन्योवरदास्तद्वत् कर्त्तव्या बालिकान्विताः ।
शक्त्या पञ्चपलादूर्द्धमासहस्रात् प्रकल्पयेत् ॥
सर्व्वासामुपरिष्टाच्च पञ्चवर्णं वितानकम् ।
धेनवो दशकुम्भाश्च वस्त्रयुग्मानि चैव हि ॥

मौलिन्यो, मुकुटधराः, वरदा इति, यथोक्तायुधधारिणः करादितरेण करेण वरदमुद्रान्विताइत्यर्थः। 'बालिका, कर्णभूषणं बालकान्विता इति क्वचित्पाठः तदा वामोत्सङ्गस्थितबालकाइति व्याख्या एतच्च पञ्चपलादिपरिमितकल्पलताकरणोपक्रमसुवर्णेनैव विभज्य सर्वं कर्त्तव्यं, पृथक्द्रव्येण कर्त्तव्यानुपदेशात्।

मध्यमहे तु गुरवे ऋत्विग्भ्योन्यास्तथैव च।
ततो मङ्गलशब्देन स्नातः शुक्लाम्बरो बुधः।
त्रिःप्रदक्षिणमावृत्य मन्त्रानेतानुदीरयेत्॥

तत इति होमाधिवासन पुण्याहवाचनादि पूर्वोक्त कर्मकलापानन्तर्यमुच्यते, स्नात इति कुण्डसमीपवर्त्तिकलशस्थितसर्वौषधिजलेन ऋत्विग्भिः स्नापितः, गृहीतकुसुमाञ्जलिरित्यपि ज्ञेयं।

अथ मन्त्रः।

नमोनमः पापविनाशिनीभ्यो
ब्रह्माण्डलोकेश्वरपालनीभ्यः।
आशंसिताधिक्यफलप्रदाभ्यो
दिग्भ्यस्तथाकल्पलतावधूभ्यः॥

अथ पूर्ववत् प्रयोगमुच्चार्य्य मध्यमे द्वे देवतादिसहिते कल्पलते गुरवे प्रतिपाद्य शेषा ऋत्विग्भ्यः प्रतिपादयेत्।

तदनुज्ञया अन्येभ्योपि दानं दीना नाथ पूरणं, स्वल्पेत्विकाग्नि विधानं चेति पूर्वोक्तमनुसन्धेयं। ततःपुण्याहवाचनदेवतापूजन विसर्जमानि कुर्य्यात्।

इति सकलदिगङ्गनाप्रदानं
भवभय सूदनकारि यः करोति।

अभिमतफलदे स नाकलोके
वसति पितामहवत्सराणि त्रिंशत् ॥

अभिमतफलदे, इष्टफलदायिनि ।

पितृशतमवतारयेद्भवाब्धेः
सच दुरितौघविनाशशुद्धदेहः ।
सुरपतिवनितासहस्रसंख्यैः
परिवृतमम्बुजसंसदाभिवन्द्यः ॥
इति विधानमिदं सदिगङ्गना-
कनककल्पलताविनिवेदने ।
पठति यः स्मरतीह तदीक्षते
स पदमेति पुरन्दरसेवितम् ॥

इति मत्स्यपुराणोक्तः कल्पलतादानविधिः ।

अथ सप्तसागरसंज्ञं चतुर्दशं महादानमाख्यायते ।

मत्स्य उवाच ।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि महादानमनुत्तमं ।
सप्तसागरकं नाम महापातकनाशनं ।
पुण्यं दिनमथासाद्य कृत्वा ब्राह्मणवाचनम् ॥
तुलापुरुषवत् कुर्य्यात् लोकेशावाहनं बुधः ।
ऋत्विग्मण्डपसम्भारभूषणाच्छादनादिकं ॥

आदिशब्देन, वृद्धिश्राद्ध पुण्याहवाचनादि ।

कारयेत् सप्तकुण्डानि काञ्चनानि विचक्षणः ।
प्रादेशमात्राणि तथारत्निमात्राणि वा पुनः ॥

कुर्य्यात्सप्तपलादूर्द्धमासहस्राच्च शक्तितः।
संस्थाप्यानिच सर्व्वाणि कृष्णाजिनतिलोपरि॥

कुण्डानि, भाण्डानि, प्रादेशादिपरिमाणं, तिर्य्यगूर्द्धपरिच्छेयम्। एकविंशत्यङ्गुष्ठपर्व्वपरिमितोरत्निः तदर्द्धं प्रादेशः, तिला, द्रोणपरिमाणाः सौवर्णसंप्रदेयाश्रयाणां कृष्णाजिनसम्बन्धिनां तेषां तथाव्याप्तिदर्शनात्।

प्रथमं पूरयेत् कुण्डं लवणेन विचक्षणः।
द्वितीयं पयसा तद्वत्तृतीयं सर्पिषा पुनः॥
चतुर्थं तु गुडेनैव दध्ना पञ्चममेव च।
षष्ठं शर्करया तद्वत्सप्तमं तीर्थवारिणा॥
स्थापयेल्लवणस्यान्ते ब्रह्माणं काञ्चनं शुभं।
केशवं क्षीरमध्ये तु घृतमध्ये महेश्वरं॥
भास्करं गुड़मध्ये तु दधिमध्ये सुराधिपं।
शर्करायां न्यसेल्लक्ष्मीं जलमध्ये तु पार्व्वतीं॥
सर्वेषु सर्वरत्नानि धान्यानि च समन्ततः।

ब्रह्मादिप्रतिमालक्षणमुक्तं, ब्रह्माण्डदाने सर्व्वरत्नानि सर्व्वधान्यानिच परिभाषायां।

तुलापुरुषवच्छेषमत्रापि परिकल्पयेत्।
ततो वारुणहोमान्ते स्नापितो वेदपुङ्गवैः।
त्रिः प्रदक्षिणमावृत्य मन्त्रानेतानुदाहरेत्॥

शेषशब्देन पुण्याहवाचनमाचार्य्यादिभ्यो जलपूर्व्वोक्तं दानं। तदनु ब्राह्मणेभ्योऽपि दानं दीनानाथतर्पणं, स्वल्पेष्वेकाग्निविधानमित्याद्यनुसन्धेयं। अयं विशेषः, द्वितीयदिवसे तुलापुरु-

षोक्तकर्म्मशेषसमाप्तौ पूर्णाहुतेः पूर्वमाज्यतिलैस्तल्लिङ्गमन्त्रेण सहस्र संख्योवारुणहोमः कर्त्तव्यः ।

नमोवः सर्वसिन्धूनामाधारेभ्यः सनातनः ।
जन्तूनां प्राणदेभ्यश्च समुद्रेभ्योनमोनमः ॥
क्षीरोदकाज्यदधिमाधवलावणेक्षु-
सारामृतेन भुवनत्रयजीवसङ्घान् ।
आनन्दयन्ति वसुभिश्च यतो भवन्त-
स्तस्मान्ममाप्यघविनाशमलंविदध्वं ॥
यस्मात् समस्तभुवनेषु भवन्त एव
तीर्थामरासुरसुवर्म्मणिप्रतानं ।
पापक्षयाम्बरविलेपनभूषणाय
लोकस्य विभ्रति तदस्तु ममापि लक्ष्मीः ।

ततो, यथा शक्तिदक्षिणासहितसंप्रदानान्ते पूर्व्ववत् पुण्याहवाचन-देवतापूजनविसर्जनानि कुर्य्यात् ।

इति ददति रसामरसंयुतान्
सुचिरविस्मयवानिह सागरान् ।
अमलकाञ्चनवर्णमयानसौ
पदमुपैति हरेरमराहृतः ॥
सकलपापविघातविराजितः
पितृपितामहपुत्रकलत्रकं ।
नरकलोकसमाकुलमप्यलं
झगिति सोऽर्पयते शिवमन्दिरं ॥

इति मत्स्यपुराणोक्तः सप्तसागरदानविधिः ।

अथ रत्नधेनुसमाख्यं पञ्चदशमहादानं प्रतिपाद्यते।

मत्स्यपुराणे मत्स्य उवाच।

अथातः संप्रवक्ष्यामि महादानमनुत्तमम्।
रत्नधेनु इति ख्यातं गोलोकफलदं नृणाम्॥
पुण्यां तिथिमथासाद्य तुलापुरुषदानवत्।
लोकेशावाहनं कृत्वा ततो धेनुं प्रकल्पयेत्॥
भूमौ कृष्णाजिनं कृत्वा लवणद्रोणसंयुतम्।
धेनुं रत्नमयीं कुर्य्यात् संकल्प्य विधिपूर्वकं॥

लोकेशावाहनमित्युपलक्षणं

अत्र हि देश-काल-वृद्धिश्राद्ध-शिवादिपूजा-ब्राह्मणवाचन-गुरुऋत्विग्वरण-मधुपर्कदान-कुण्डमण्डप-वेदिका-चक्रलेखन-वितान-तोरण-पताकादिकं मत्स्यपुराणोक्ततुलापुरुषविहितं संगृह्यते धेनुं प्रकल्पयेदिति लवणद्रोणोपरि प्राङ्मुखीमुदक्पादां रेखाभिः सवत्साङ्गवाकृतिम् रचयेदित्यर्थः।

स्थापयेत्पद्मरागाणामेकाशीतिं मुखे बुधः।
पुष्परागशतन्तद्वद्घोणायां परिकल्पयेत्।
ललाटे हेमतिलकं मुक्ताफलशतं दृशोः॥

घोणायां, नासिकाग्रभागे, हेमतिलकादिषु, सारतः, परिमाणतश्च फलविशेषे इति न्यायात् ज्ञायते, यथाशक्त्यनुष्ठानं मुक्ताफलशतन्नेत्रद्वये विभज्य स्थापनीयम्।

भ्रूयुगे विद्रुमशतं शुक्ती कर्णद्वये स्थिते।
काञ्चनानि च शृङ्गाणि शिरो वज्रशतात्मकम्॥

शृङ्गाणीति, वत्सशृङ्गापेक्षया बहुवचनम्

ग्रीवायां नेत्रपट्टकं गोमेदकशतात्मकम्।
इन्द्रनीलशतं पृष्ठे वैदूर्य्यशतपार्श्वके॥
स्फटिकैरुदरन्तद्वत्सौगन्धिकशतात्कटिम्।
खुरा हेममयाः कार्य्याः पुच्छं मुक्तावलीमयम्॥

स्फटिकैरित्यत्र, साहचर्यात् तद्वदितिवचनाच्छतसंख्यैरित्यवधेयं, सौगन्धिकं माणिक्यविशेषः, मुक्ताफलानामपि शतसंख्यत्वमवधेयं।

सूर्य्यकान्तेन्दुकान्तौ च घ्राणे कर्पूरचन्दनम्।
कुङ्कुमानि च रोमाणि रौप्यां नाभिञ्च कारयेत्॥
गारुत्मतशतं तद्वदपाने परिकल्पयेत्।
तथान्यानि च रत्नानि स्थापयेत्सर्व्वसन्धिषु॥

अन्यानि, माणिक्यादीनि यथाशक्ति यथालाभं स्थापयेत्।

कुर्य्यात्शर्करया जिह्वां गोमयञ्च गुडात्मकम्।
गोमूत्रमाज्येन तथा दधिदुग्धं स्वरूपतः॥
पुच्छाग्रे चामरन्दद्यात् समीपे ताम्रदोहनम्।
कुण्डलानि च हैमानि भूषणानि च शक्तितः।
कारयेदेवमेवन्तु चतुर्थांशेन वत्सकं॥

एव मेवमिति, एतैरेव धेनूक्तैरत्नादिद्रव्यैरित्यर्थः।

तथासर्व्वाणि धान्यानि पादाश्चेक्षुमयाःस्मृताः।
नानाफलानि सर्व्वाणि पञ्चवर्णवितानकम्॥
एवं विरचनां कृत्वा तद्वद्धोमाधिवासनम्॥
ऋत्विग्भ्यो दक्षिणां दत्त्वा धेनुमामन्त्रयेद्बुधः।
गुडधेनुवदामन्त्र्य इदञ्चोदाहरेत्ततः॥

तद्वदिति, मत्स्यपुराणोक्ततुलापुरुषदानवदित्यर्थः।

सर्व्वौषधिस्नानादिकमपि तद्वदेव ज्ञेयं दक्षिणां दत्त्वेति क्रमोऽत्राविवक्षितः, दक्षिणाचात्र यथाशक्ति सुवर्णं, नृपकर्त्तृके तु दाने ग्रामरत्नादय, इति गुडधेनुवत् यालक्ष्मीरित्यादिमन्त्रैः।

त्वां सर्व्वदेवगणधाम यतः पठन्ति
रुद्रेन्द्रविष्णुकमलासनवासुदेवाः।
तस्मात् समस्तभुवनत्रयदेवयुक्ता
माम्पाहि देवि भवसागरपीड्यमानम्॥
आमन्त्र्य वेत्थ मभितः परिहृत्य भक्त्या
दद्यात् द्विजाय गुरवे जलपूर्व्वकन्तां।
यः पुण्यमाप्य दिनमत्र कृतोपवासः
पापैर्व्विमुक्ततनुरेति पदं मुरारेः॥

परिहृत्य, प्रदक्षिणीकृत्य गृहीतकुसुमाञ्जलिरित्यपि ज्ञेयं। कृतोपवासत्वमधिवासनदिने, अशक्तौ तु नक्तमित्युक्तं गुरवे दद्यादित्येकाग्निपक्षविषयं। अनेकाग्निपक्षेतु तुलापुरुषवद्व्यवस्था दानानन्तरं पूर्व्ववत्पुण्याहवाचन-देवतापूजन-विसर्जनानि कुर्य्यात्।

इति सकलविधिज्ञो रत्नधेनुप्रदानम्
वितरति स विमानं, प्राप्य देदीप्यमानम्।
सकलकलुषमुक्तो बन्धुभिः पुत्रपौत्रैः
सहमदनसुरूपः स्थानमभ्येति शम्भोः॥

इति मत्स्यपुराणोक्तौरत्नधेनुदानविधिः।

अथ महाभूतघटशब्दितं षोडशं महादानमिह निरूप्यते।

मत्स्य उवाच ।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि महादानमनुत्तमम् ।
महाभूतघटं नाम महापातकनाशनम् ॥
पुण्यान्तिथिमथासाद्य कृत्वा ब्राह्मणवाचनम् ।
ऋत्विग्मण्डपसम्भारभूषणाच्छादनादिकम् ।
तुलापुरुषवत् कुर्य्यात् लोकेशावाहनादिकम् ॥

आदिशब्दस्तु, पूर्ववदेव व्याख्येयः ।

कारयेत् काञ्चनं कुम्भं महारत्नाचितं बुधः ।
प्रादेशादङ्गुलशतं यावत् कुर्य्यात् प्रमाणतः ॥
क्षीराज्यपूरितं तद्वत्कल्पवृक्षसमन्वितम् ।

क्षीरघृते गव्ये, समपरिमाणे च स्थापनीये कल्पवृक्षलक्षणं पञ्चशाखत्वादिकल्पतरुदाने द्रष्टव्यम् ।

पद्मासनगतांस्तद्व ब्रह्मविष्णुमहेश्वरान् ।
वराहेणोद्धृतां तद्वत् कुर्य्यात् पृथ्वीं सपङ्कजाम् ॥
वरुणञ्चासनगतं काञ्चनं मकरोपरि ।
हुताशनं मेषगतं वायुङ्कृतमृगासनम् ॥
तथाकाशाधिपं कुर्य्यात मूषकस्थं विनायकम् ।
विन्यसेद्घटमध्ये तान् वेदपञ्चकसंयुतान् ॥

ब्रह्मादिलक्षणं, वरुणादिलक्षणञ्च मत्स्यपुराणोक्तब्रह्माण्डदानविहितम् वेदितव्यं, वराहलक्षणं तु पद्मपुराणोक्तब्रह्माण्डे ।

विनायकस्वरूपं हस्तिरथ इति ।

ऋग्वेदस्याक्षसूत्रन्तु यजुर्व्वेदस्य पङ्कजं ।
सामवेदस्य वीणा स्याद्वीणां दक्षिणतोन्यसेत् ॥

अथर्व्ववेदस्य पुनः स्रुक्स्रुवौ कमलं करे।
पुराणवेदोवरदः साक्षसूत्रकमण्डलुः॥
परितः सर्वधान्यानि चामरासनदर्पणम्।
पादुकोपानहच्छत्रदीपिकाभूषणानि च॥
शय्या च जलकुम्भाश्च पञ्चवर्णवितानकम्।
स्नात्वाधिवासनान्ते तु मन्त्रमेतमुदीरयेत्॥

पादुका, काष्ठकृता, जलकुम्भाः,
षोडश, प्रकृतौ तथादर्शनात्।

अधिवासनान्ते स्नात्वेति पूर्वस्मिन् दिने अधिवासनं विधाय द्वितीयदिवसे पुण्याहवाचनादिपूर्णाहुतिपर्य्यन्तं कर्म्मशेषं समाप्य सर्वौषधिजलैः पूर्ववदृत्विग्भिः स्नापितो यजमानस्त्रिः'प्रदक्षिण-मावृत्य गृहीतकुसुमाञ्जलिः' वक्ष्यमाणं मन्त्रमुदाहरेत्।

नमो वः सर्व्वदेवानामाधारेभ्यश्चराचरे।
महाभूताधिदेवेभ्यः शान्तिरस्तु शिवं मम॥
यस्मान्न किञ्चिदप्यस्ति महाभूतैर्विना कृतम्।
ब्रह्माण्डे सर्व्वभूतेषु तस्मात् श्रीरक्षयास्तु मे॥
इत्युच्चार्य्य महाभूतघटं यो विनिवेदयेत्।
सर्व्वपापविनिर्मुक्तः प्रयाति परमां गतिं॥
विमानेनार्कवर्णेन पितृबन्धुसमन्वितः।
स्तूयमानोऽमरस्त्रीभिः पदमभ्येति वैष्णवम्॥

अत्र च, जलपूर्व्वं ब्राह्मणेभ्यः प्रदेये प्रतिपादिते तुलापुरुषवद्विभागव्यवस्था तदनुज्ञयाचान्येभ्योऽपि दानं दीनानाथपूरणं च कर्त्तव्यंअदक्षिणस्य कर्मणोनिष्फलत्वात्।

यथाशक्ति गुर्व्वादिभ्यो भूमिसुवर्णादिकं दक्षिणेति स्वल्पेत्वेकाग्नि-विधानमप्यवगन्तव्यं तदनन्तरं पूर्व्ववत्पुण्याहवाचन-देवतापूजन-विसर्जनानि ।

षोडशैतानि यः कुर्य्यात् महादानानि मानवः ।
न तस्य पुनरावृत्तिरिह लोकेऽभिजायते ॥
इति पठति य इत्थं वासुदेवस्य पार्श्वे
ससुतपितृकलत्रः संशृणोतीह सम्यक् ।
पुररिपुभवने वा मन्दिरे वार्कलक्ष्मी-
श्चिरममरवधूभिर्मोदते सोऽपि कल्पम् ॥
इति मत्स्यपुराणोक्तो महाभूतघटदानविधिः ।

इति श्रीमहाराजाधिराजश्रीमहादेवस्य समस्तकरणाधी-
श्वरसकलविद्याविशारदश्रीहेमाद्रिविरचिते
चतुर्व्वर्गचिन्तामणौ दानखण्डे
षोडशमहादानविधिः ।

## अथ षष्ठाध्यायः ।



### अथ पर्व्वतदानविधिः ।

अयं लोकालोकः परमहिमवान् प्रश्रदुदयः
सुपार्श्वस्थायिश्रीः कलितविपुलाभोगसुभगः ।
इतिप्रत्यक्षेऽपि स्फुरदखिलशैलेन्द्रविभवः
परं हेमाद्रित्वं प्रकटयति विश्रान्तविबुधः ॥
धान्यशैलादिदानानामिह हेमाद्रिसूरिणा ।
विचित्रविधिविस्तारः प्रस्तावः क्रियतेऽधुना ॥
तत्र धान्यपर्व्वतद्दानं तावदुच्यते तदेव पद्मपुराणे ।

भीष्मउवाच ।

भगवन्श्रोतुमिच्छामि दानमाहात्म्यमुत्तमम् ।
यदक्षयं परे लोके देवर्षिगणपूजितम् ॥

पुलस्त्य उवाच ।

मेरोः प्रदानं वक्ष्यामि दशधा मुनिसत्तम ।
यत् प्रसादान्नरो लोकानाप्नोति सुरपूजितान् ॥
पुराणेषु च वेदेषु यज्ञेष्वायतनेषु च ।

न तत् फलमधीतेषु क्रतेष्विह यदश्नुते ॥

पुराणेषु वेदेषु यज्ञेष्वायतनेषु च, क्रतेषु न तत् फलमिति सम्बन्धः ।

तस्माद्विधानं वक्ष्यामि पर्व्वतानामनुत्तमम् ।
प्रथमो धान्यशैलः स्यात् द्वितीयो लवणाचलः ॥
गुडाचलस्तृतीयस्तु चतुर्थो हेमपर्व्वतः ।
पञ्चमस्तिलशैलः स्यात् षष्ठः कार्पासपर्व्वतः ॥
सप्तमो घृतशैलश्च रत्नशैलस्तथाष्टमः ।
राजतो नवमस्तद्वद्दशमः शर्कराचलः ॥
वक्ष्ये विधानमेतेषां यथावदनुपूर्व्वशः ।
अयने विषुवे चैव व्यतीपाते दिनक्षये ॥
शुक्लपक्षे तृतीयायां उपरागे शशिक्षये ।
विवाहोत्सवयज्ञे वा द्वादश्यामथवा पुनः ॥
शुक्लायां पञ्चदश्यां वा पुण्यर्क्षे च विधानतः ।
धान्यशैलादयो देया यथाशक्ति विधानतः ॥
तीर्थे वायतने वापि गोष्ठे वापि भवाङ्गणे ।
मण्डपं कारयेद्भक्त्या चतुरस्रमुदङ्मुखम् ॥
प्रागुदक्प्रवणं तद्वत्प्राङ्मुखोया विधानतः ।

मण्डपलक्षणन्तु, परिभाषायां प्रतिपादितं ।

अत्र चायं विधानक्रमः दानदिवसात् पूर्व्वेद्युः पूर्व्वाह्णे कृत स्नातादिक्रियो यजमानो अमुकपर्व्वतदानमहं श्वः करिष्ये इति-कृतसंकल्पो वृद्धिश्राद्धमाभ्युदयिकं विधाय पूर्व्ववत् पुण्याहवाचनं कुर्य्यात्, तदनन्तरं तु अद्य अमुकस्मिन् देशे अमुकस्मिन् काले

अमुकपर्व्वतदानेनाहं यक्ष्ये तत्र तदङ्गभूतहोमादिके अमुकशर्माणं अमुकवेदाध्यायिनं ऋत्विजं त्वामहं वृणे इति।

पुराणवेदविदाश्चतुर्णामृत्विजांवरणं, तथा ओम् अद्य अमुकस्मिन् देशे अमुकस्मिन् काले अमुकपर्व्वतदानेनाहं यक्ष्ये तत्र तदङ्गभूतानि कर्म्माणि कर्तुं कारयितुं च अमुकसगोत्रं अमुकशर्म्माणं अमुकवेदाध्यायिनं गुरुं त्वामहं वृणे इत्याचार्य्यं वृणुयात् वृतोस्मीति सर्वत्र प्रतिवचनं तत्र तावत् मधुपर्केणार्च्चयेदितिसर्व्वपर्व्वतदानसाधारणोऽयं विधिः।

गोमयेनोपलिप्तायां भूमावास्तीर्य्य वै कुशान्।
तन्मध्ये पर्व्वतं कुर्य्यात् विष्कम्भपर्वतान्वितम्॥
धान्यद्रोणसहस्रेण भवेद्गिरिरिहोत्तमः।
मध्यमः पञ्चशतिकः कनिष्ठः स्यात् त्रिभिः शतैः॥

द्रोणलक्षणमुक्तं, परिभाषायां।

प्रमाणस्थकरचरणस्य पुंसो द्वादशभिः प्रसृतिभिः कुडवो भवति अनेन कुडवेन चतुर्गुणोत्तरं प्रस्थाढकद्रोणा भवन्ति अतः चतुःद्रौषष्ट्या कुडवैःणो भवतीति कल्पतरुणा व्याख्यातं।

मेरुर्महाव्रीहिमयस्तु मध्ये
सुवर्णवृक्षत्रयसंयुतः स्यात्।
पूर्वेण मुक्ताफलवज्रयुक्तो
याम्येन गोमेदकपुष्परागैः॥
पश्चाच्च गारुत्मतनीलरत्नैः
सौम्येन वैदूर्य्यसरोजरागैः।

श्रीखण्डखण्डैरभितः प्रवाल
लतान्वितः शुक्तिशिलातलःस्यात् ॥
ब्रह्माथ विष्णुर्भगवान् मुरारि
र्दिवाकरोऽप्यत्र हिरण्मयः स्यात् ।
मूर्द्धव्यवस्था गतमत्सरेण
कार्य्याः सुवर्णेन तथा द्विजौघाः ॥
चत्वारि शृङ्गाणि च राजतानि-
नितम्बभागेष्वपि राजतः स्यात् ।
आर्द्रेक्षुवंशावृतकन्दरस्तु
घृतोदकः प्रस्रवणश्च दिक्षु ॥
शुक्लाम्बराण्यम्बुधरावली स्यात्
पूर्वेण पीतानि च दक्षिणेन ।
वासांसि पश्चादथ कर्व्वुराणि
रक्तानि चैवोत्तरतोघनाली ॥
रौप्यान्महेन्द्रप्रमुखानथाष्टौ
संस्थाप्य लोकाधिपतीन् क्रमेण ।
नानाफलाली च समन्ततः स्यात्
मनोरमं माल्यविलेपनं च ॥
वितानकं चोपरि पञ्चवर्ण
मम्लानपुष्पाभरणं सितञ्च ॥

मेरुरित्यादि, महाव्रीहयो, राजान्नशालयः, वृक्षत्रयसंयुत, इति दक्षिणे मन्दारः, उत्तरे पारिजातौ, मध्ये कल्पतरुरितिवृक्षत्रयं, तथा पूर्व्वतो हरिचन्दनं, पश्चिमे सन्तान इति तरुद्वयं च

कुर्य्यात्, एते सर्व्वपर्व्वतेषु कर्त्तव्या इति शर्कराचले वक्ष्यमाणत्वात् सर्वेषाञ्च पञ्चशाखत्वमवधेयमिति ।

वज्रं, हीरकं । गारुत्मतं, मरकतं । सरोजरागः, पद्मरागः। मुक्ताफलादीनि च यथादिशं वक्ष्यमाणराजतशृङ्गेषु निवेशनीयानि । पुरारिः, महेश्वरः ।

ब्रह्मादिलक्षणमुक्तं ब्रह्माण्डदाने ।

'मूर्द्धव्यवस्था' उपरिदेशस्थिता ।

गतमत्सरेण, वित्तशाठ्यरहितेन ।

द्विजौघाः, पक्षिसमूहाः ।

दिवौकसा इति क्वचित्पाठः ।

तत्र आदित्यावसवोरुद्रादिवौकसः तेषु, वस्वादिलक्षणमुक्तं ब्रह्माण्डदाने, रुद्रलक्षणं विश्वचक्रे, इक्षुरेव वंशः, घृतमेवोदकं, वस्त्राण्येव मेघसमूहाः कर्व्वुराणि, चित्राणि ।

लोकपाललक्षणमुक्तं ब्रह्माण्डदाने ।

इत्थंनिवेश्यामरशैलमग्र्यं
मेरोश्च विष्कम्भगिरीन् क्रमेण ।
तुरीयभागेन चतुर्द्दिशन्तु
संस्थापयेत् पुष्पविलेपनाढ्यान् ॥
पूर्व्वेण मन्दरमनेकफलैश्च युक्तं
युक्तं गणैः कनकभद्रकदम्बचिह्नं ।
कामेन काञ्चनमयेन विराजमान-
माकारयेत् कुसुमवस्त्रविलेपनाढ्यं ॥
क्षीरारुणोदसरसाथ वनेनचैव

रौप्येण सन्निघटितेन विराजमानं ।
याम्येन गन्धमदनश्च निवेशनीयो
गोधूमसञ्चयमयः कलधौतजम्बा ॥
हैमेन यक्षपतिना-हृतमानसेन
वस्त्रैश्च राजतवनेन च संयुतः स्यात् ।
पश्चात्तिलाचलमनेकसुगन्धिपुष्प-
सौवर्ण-पिप्पल-हिरण्मय-हंसयुक्तम् ॥
आकारयेद्रजतपुष्पवनेन तद्व-
द्वस्त्रान्वितं दधिसितोदरसस्तथाग्रे ।
संस्थाप्य तं विपुलशैलमथोत्तरेण
शैलं सुपार्श्वमपि माषमयं सवस्त्रं ॥
पुष्पैश्च हेमवटपादपशेखरन्त-
माकारयेत्कनकधेनुविराजमानं ।
माक्षीकभद्रसरसा च वनेन तद्व-
द्रौप्येण भास्करवता च युतं विधाय ॥

इत्थन्निवेश्येत्यादि, एवं मेरुं निवेश्य तच्चतुर्थभागपरिमितेन पृथक्द्रव्येण एकैकं विष्कम्भगिरिं कुर्य्यात् न तु चतुर्थभागेन चतुरोपीति, तथाच लवणाचले वक्ष्यति चतुर्थांशेन विष्कम्भपर्वतान् कारयेत्, पृथगिति, पूर्वेण मन्दरमिति, सन्निधानान्मन्दरोऽपि व्रीहिमय एव, गणैर्युक्तमिति, पुरुषाकृतिगणवर्यान्वितमित्यर्थः ।

अनेकफलाली युक्तं यवैरिति क्वचित्पाठः ।
तस्य सम्भूलत्वे यथानुष्ठानमपि कार्य्यं ।

कनकघटितेन भद्रकदम्बाख्येन वृक्षेण लक्षितं।

कामलक्षणमाह विश्वकर्म्मा।

चाप-वाणधरः कामो रतिप्रियान् सुमध्यमः।

आलीढो नन्दनो राजी रूपवान् विश्वमोहक इति॥

क्षीरपूरितेन, अरुणोदसंज्ञिकेन रूप्यघटितेन सरसा वनेनापि रूप्यघटितेन विराजमानमिति सम्बन्धः।

याम्ये नेत्यादि, गन्धमदनी, गन्धमादनः,

कलधौतजम्बिति, सुवर्णजम्बुवृक्षेण।

यक्षपतिरूपमुक्तं श्रीप्रश्ने।

रुक्मापिङ्गनेत्रञ्च गदिनं पीतविग्रहं।

पुष्पकस्थन्धनाध्यक्षं ध्यायेत् शिवसखं सदेति॥

घृतमानसेनेति घृतपूरितेन मानसाभिधानेन राजतेन सरसा। पश्चादिति, पश्चिमदेशे दधिपूरितसितोदंनाम रजतनिर्मितंसर इति, विपुलशैलं, विपुलं नाम पर्वतं माक्षीकभद्रसरसेति, माक्षिकं, मधु मधुपूरितेन रजतमयेन भद्राभिधानेन सरसा युत मित्यर्थः।

अत्र च कामदेवस्य प्रत्यङ्मुखत्वं हंसस्य प्राङ्मुखत्वं कनकधेनोर्दक्षिणामुखत्वं च शर्कराचलस्थितदिग्विशेषसापेक्ष्यं दैवतेषु सर्व्वशैलेषु वेदितव्यं, चरमव्यवस्था कुतोपि शास्त्राद्यवस्थितिरिति। एते च कामदेवादयः कदम्बादीनां निजपर्व्वीतवृक्षाणामधस्तात्कर्त्तव्याः।

होमैश्चतुर्भिरथर्ववेदपुराणविद्भि-

र्दान्तैरनिन्द्यचरिताकृतिभिर्द्विजेन्द्रैः

पूर्व्वेण हस्तमितमत्र विधाय कुण्डं
कार्यस्तिलैर्यवघृतेन समित्कुशैश्च ॥
रात्रौ च जागरमनुव्रतगीततूर्य्यै-
रावाहनञ्च कथयामि शिलोच्चयानां ॥

पूर्व्वेणेत्यादि मण्डपस्य पूर्व्वभागे हस्तमात्रं कुण्डं विधाय तस्य पूर्व्वोत्तरदिग्विभागे तुलापुरुषोक्तलक्षणां देवतावेदिं कृत्वा तत्र विनायकादिदेवताभ्यः पूर्व्ववत् पूजां विदध्यात् अनन्तरमृत्विजोऽग्निस्थापनान्ते ग्रहाणां लोकपालानामित्यादिवक्ष्यमाणदेवताभ्यस्तल्लिङ्गमन्त्रैस्तिलादिद्रव्येण होमं कुर्य्युः । सहस्रत्वथ होतव्ये कुर्य्यात् कुण्डं करात्मकमित्युक्तेरत्र हस्तपरिमितकुण्डोपदेशादाहुतिसहस्रं होतव्यमिति दानविवेककारः ।

अत्र विनायकादयो द्वात्रिंशद्देवा, द्वादशादित्याः, एकादशरुद्राः, दशलोकपालाः, अष्टौ वसवः, ब्रह्म-विष्णु-शिव-सूर्य्याश्चत्वारः काम-धनद-हंस-कामधेनव-श्चत्वारः इत्येवमेकाशीतिसंख्येभ्यो देवेभ्यः ग्रहाणां प्रतिदैवतं त्रयोदशाहुतिहोमे त्रिपञ्चाशदधिकमाहुतिसहस्रं सम्पद्यते अष्टशतन्तु होतव्यमिति ब्रह्माण्डपुराणे वक्ष्यति तिलादीनिचत्वार्य्येव । हविर्द्रव्याणि घृतात्मानीत्यवगन्तव्यं समिधः, साधारण्यादुदुम्बरस्य होमानन्तरं पुष्पोपहारानादाय वक्ष्यमाण मन्त्रैर्यथाक्रमं पर्व्वतानावाहयेत्, तत्र मेरोरावाहनमन्त्रः ।

त्वं सर्व्वदेवगणधामनिधेर्विरुद्ध
मस्मद्गृहेष्वमरपर्व्वत नाशयाशु ।
क्षेमं विधत्स्व कुरु शान्तिमनुत्तमान्नः ।

सम्पूजितः परमभक्तिमता मया हि ॥
त्वमेव भगवानीशो ब्रह्मा विष्णुर्दिवाकरः।
मूर्त्तामूर्त्तपरं बीजमतः पाहि सनातनः ॥
यस्मात्त्वं लोकपालानां विश्वमूर्त्तेश्च मन्दिरम्।
रुद्रादित्यवसूनाञ्च तस्माच्छान्तिं प्रयच्छ मे ॥
यस्मादशून्यममरैर्नारीभिश्च समस्तथा।
तस्मान्मामुद्धराशेषदुःखसंसारसागरात्।
एवमभ्यर्च्य तं मेरुं मन्दरञ्चाभिपूजयेत् ॥

अथ मन्दरस्य।

यस्माच्चैत्ररथेन त्वं भद्राश्वेनवर्षेण च।
शोभसे मन्दर क्षिप्रमलं पुष्टिकरो भव ॥

अथ गन्धमादनस्य।

यस्माच्चूडामणिर्जम्बुद्वीपे त्वं गन्धमादन।
गन्धर्व्ववनशोभावानतः कीर्त्तिर्दृढास्तु मे ॥

अथ विपुलपर्व्वतस्य।

यस्मात्त्वं केतुमालेन वैभ्राजेन वनेन च।
हिरण्मयाश्वत्थशिखस्तस्मात् पुष्टिर्ध्रुवास्तु मे ॥

अथ सुपार्श्वस्य।

उत्तरैः कुरुभिर्यस्मात् सावित्रेण वनेन च।
सुपार्श्व राजसे नित्यमतः श्रीरक्षयास्तु मे ॥
एवमामन्त्र्य तान् सर्व्वान् प्रभाते विमले पुनः।
स्नात्वाथ गुरवे दद्यात् मध्यमं पर्व्वतोत्तमम् ॥

विष्कम्भपर्व्वतान् दद्यादृत्विग्भ्यः क्रमशो नृप ।
गावो दद्याच्चतुर्विंशदथ वा दश पार्थिव ॥
शक्तितः सप्त वाष्टौ वा पञ्च दद्यादशक्तिमान् ।
एकां वा गुरवे दद्यात् कपिलाञ्च पयस्विनीम् ॥

एवमामन्त्रोति, दानदिनात् पूर्व्वदिवसे सर्व्वमिदमामन्त्रणादि विधाय गीतवादित्रादिभिर्निशामतिवाह्य ततः प्रभाते गुरुप्रभृतयो विहितस्नानादिक्रियाः पूर्णाहुतिपर्य्यन्तं सकलकर्म्मशेषं समाप्य कुण्डसमीपस्थापितकलशजलेन पूर्व्ववद्यजमानं स्नापयेयुः ।

यजमानोऽपि शुक्लाम्बरपरिधानः प्रदक्षिणीकृत्य वक्ष्यमाणमन्त्रेण यथाक्रमं पर्व्वतान् प्रतिपादयेत् ।

तत्र प्रयोगः ।

ओम् अद्य अमुकस्मिन् काले अमुकसगोत्राय अमुकशर्म्मणे ब्राह्मणाय एतममुकपर्व्वतं सोपस्करं अमुकसगोत्रोऽहं अमुकशर्म्मा अमुककामस्तुभ्यमहं सम्प्रददे नमः, अमुकसगोत्राय अमुकशर्म्मणे ब्राह्मणाय एतत् पर्व्वतदानप्रतिष्ठार्थमिमां दक्षिणां तुभ्यमहं सम्प्रददे, अत्र च दक्षिणापेक्षायामश्रुतदक्षिणान्तरकल्पनानुपपत्तेर्गावो दद्यादितिश्रुतमेव दक्षिणात्वेन सम्बध्यते विनापिदक्षिणासंशब्दनमस्त्येव दक्षिणात्वमिति केचित्, सहस्रदक्षिणां कृत्वेत्यादि ब्रह्माण्डपुराणे वक्ष्यमाणदक्षिणाग्रहणन्तु युक्तमिति ।

पर्व्वतानामशेषाणामेष एव विधिः स्मृतः ।
त एव पूजने मन्त्रास्तएवोपस्कराः स्मृताः ॥
ग्रहाणां लोकपालानां ब्रह्मादीनाञ्च सर्व्वशः ।

स्वमन्त्रेणैव सर्वेषु होमः शैलेषु पठ्यते।
उपवासी भवेन्नित्यमशक्तोनक्तमिष्यते॥

सर्वत्राक्षारलवणमश्नीयादिति वक्ष्यमाणत्वादक्षारलवणं नक्तं वेदितव्यम्।

विधानं सर्वशैलानां क्रमशः शृणु पार्थिव।
दानकालेषु ये मन्त्राः पर्व्वतेषु च यत्फलम्॥

अथ मन्त्रः।

अन्नं ब्रह्म यतः प्रोक्तमन्ने प्राणाः प्रतिष्ठिताः।
अन्नाद्भवन्ति भूतानि जगदन्नेन वर्त्तते॥
अन्नमेव यतोलक्ष्मीरन्नमेव जनार्दनः।
धान्यपर्व्वतरूपेण पाहि तस्मान्नमोनमः॥

एवमाचार्यादीन्, सम्पूज्य तदनुज्ञया अन्येभ्योपि दद्यात्

ततो यजमानो वेद्यां पूर्व्ववद्देवताः सम्पूज्य नमस्कुर्यात्। गुरुस्तान्विसर्जयेत्, ततो यथाशक्ति ब्राह्मणभोजनम् कृतोपवासस्य यजमानस्य दानदिने क्षारलवणवर्जनं सर्वपर्वतोपस्कराणाञ्च ब्राह्मणगृहप्रापणं शर्कराचलोक्तं सर्वत्र द्रष्टव्यम्।

अनेन विधिना यस्तु दद्याद्धान्यमयङ्गिरिम्।
मन्वन्तरशतं सार्द्धं देवलोके महीयते॥
अप्सरोगणगन्धर्वैराकीर्णेन विराजितः।
विमानेन दिवः पृष्ठमायाति सुरसेवितः॥
कर्म्मक्षयाद्राजराज्यं प्राप्नोतीह न संशयः॥

अथ ब्रह्माण्ड पुराणात्

श्रीभगवानुवाच ।

अतः परं प्रवक्ष्यामि धान्यपर्व्वतमुत्तमम् ।
यं दत्त्वा सर्व्वदानानां फलं प्राप्नोति मानवः ॥
नद्यास्तीरे गृहे वापि देवतायतने तथा ।
मण्डपं कारयित्वा च विधानं परिकल्पयेत् ॥
कार्त्तिक्यामयने चैव ग्रहणे वापि कृत्स्नशः ।
अन्येष्वपि च कालेषु यदा श्रद्धाभिजायते ॥
महाप्रीतिकरङ्कुर्य्यात् पर्व्वतं शुभलक्षणम् ।
साहस्रिको भवेच्छ्रेष्ठस्तदर्द्धेन तु मध्यमः ॥
त्रिभिः शतैः कनिष्ठस्तु द्रोणानां नृपसत्तम ।
अलाभे वा यथाशक्त्या कारयेच्छ्रद्धयान्वितः ॥
मध्ये प्रकल्पयेन्मेरुं महाव्रीहिमयं शुभम् ।
विष्कम्भपर्वतश्चैव यवैः कुर्य्यात्तु पूर्व्वतः ॥
दक्षिणेनाथ गोधूमैस्तिलैः पश्चिमतस्तथा ।
माषैश्चैवोत्तरं कुर्य्यात्तुरीयांशेन पर्वतान् ॥
सौवर्णशिखरोपेतांस्तान् सर्वान् कारयेद्बुधः ।
सर्वरत्नविचित्राङ्गान् केतुवस्त्रैरलङ्कृतान् ॥
नानाद्रुमलतोपेतान् सुरभिञ्चाप्यलङ्कृतान् ।
वस्त्रैः प्रच्छादितान् कृत्वा गन्धैर्माल्यैस्तु पूजयेत् ॥
एवं विधं गिरिं कृत्वा नानाभक्ष्यैः समन्ततः ।
पूजयेत् फलमूलैश्च रसैर्नानाविधैस्तथा ॥
ग्राम्यारण्यैस्तथाधान्यैः पूरयेत् सर्व्वतस्तथा
ब्रह्मविष्णुशिवांस्तत्र सौवर्णान्विनियोजयेत्

पूर्व्वतः कारयेत् कुण्डं हस्तमात्रं सुशोभनम्।
ब्राह्मणास्तत्र होतारो अष्टौ चत्वार एव च॥
गृहस्थाः साधवो दान्ताः सम्पूर्णावयवास्तथा।
आधीतवाससश्चैव कटकादिभिरन्विताः॥
चन्दनादिग्धगात्राश्च तथापुष्पैरलङ्कृताः।
एवं विधास्तथाविप्रा होमं कुर्य्युरतन्द्रिताः॥
इन्द्राद्या लोकपालाश्च तेषां होमो विधीयते।
तल्लिङ्गैश्चैव मन्त्रैश्च समिद्भिरथ वा तिलैः॥
पौरुषेण तु सूक्तेन ब्रह्मादीनां विधीयते।
तथा व्याहृतिभिर्होमं तिलैराज्येनचैव हि॥
अष्टशतं तु होतव्यं सर्व्वकामसमृद्धये।
पूजयेत् पर्व्वतं पश्चात् यजमानः प्रसन्नधीः॥
स्नात्वा शुक्लाम्बरो भूत्वा कामक्रोधविवर्ज्जितः।
अन्नं प्राणा हि भूतानां बलन्तेजस्तथैव च॥
जङ्गमाजङ्गमं सर्व्वं जगदन्ने प्रतिष्ठितम्।
अन्नाद्भवन्ति भूतानि अन्नाद्वर्द्धन्ति चैव हि॥
तच्चधान्याधिकारेण अन्नं बहुविधं भवेत्।
अतो धान्यगतो मेरुः करोत्वभिमतं मम॥
नमस्ते सर्व्वलोकानामाधारः सुरपूजितः।
वित्तहीनो मम कुले मा भवत्विह कश्च न॥
अत्युच्छिन्नं तथैवान्नं मम जन्मनि जन्मनि।
मा यातु संक्षयं चैव दीयमानमहर्निशम्॥
एवं सम्पूज्य पूर्वेद्युरात्रौ कुर्य्यात् महोत्सवम्।

शङ्खतूर्यनिनादैश्च गेयमङ्गलपाठकैः॥
ततः सर्व्वसमीपे तु ब्राह्मणाय निवेदयेत्।
सहस्रदक्षिणं कृत्वा शक्त्या च विभवस्य च॥
दक्षिणारहितो यज्ञः शवत्वायाभिजायते।
तस्मात् स दक्षिणं देयं यत् किञ्चिद्दानसंज्ञितम्॥
होतारस्तत्र ये तेषां दद्याद्विष्कम्भवान् बुधः।
आचार्य्यं पूजयेत् पश्चाद्गोभिरश्वैर्गजैस्तथा॥
अलङ्कारैस्तथा मुख्यैर्वस्त्रैः पुष्पानुलेपनैः।
आचार्य्यं पूजयेत्तं च भोजयित्वा यथा विधि॥
गावश्चालंकृता देया बहुक्षीरा गुणान्विताः।
रूपवत्यस्तरुण्यश्च तुष्ट्यर्थं जुह्वतां नृप॥
अनेन विधिना यस्तु दद्याद्धान्यमयं गिरिम्।
उद्धृत्य चात्मना सार्द्धं स्वर्गमारोपयेत् परम्॥
मन्वन्तराणि षड्विंशम्मोदते विबुधैः सह।
दिव्यं विमानमारुह्य नारी वा पुरुषोऽपि वा॥
पुण्यक्षयादिहाभ्येत्य सप्तद्वीपपतिर्भवेत्।
दशजन्मानि राजेन्द्र द्वापरे जायते युगे॥
दशवर्षसहस्रायुः पुत्रपौत्रसमन्वितः।
यश्चेदं शृणुयाद्दानं कीर्त्त्यमानं समाहितः॥
दरिद्रः परया भक्त्या सोऽपि सद्गतिमाप्नुयात्॥

भविष्योत्तरात्।

अतःपरं प्रवक्ष्यामि धान्यपर्व्वतमुत्तमम्।

व्रीहिभिः कारयेत्तन्तु गोधूमैरथ वा यवैः ॥
सहस्रेणोत्तमं कुर्य्यात्तदर्द्धेन तु मध्यमम् ।
तस्याप्यर्द्धात् कनिष्ठन्तु कुर्य्याद्विभवसारतः ॥
तेषां पूर्व्वविधानेन सर्व्वं कुर्य्यात् यथाक्रमम् ।
फलं वापि तदा राजन् पूर्व्वमेव समश्नुते ॥

धान्याचलं कनकवृक्षविराजमानं
विष्कम्भपर्व्वतयुतं सुरसिद्धजुष्टं ।
यच्छन्ति ये सुमतयः प्रणिपत्य विप्र
ते प्राप्नुवन्ति परमेष्ठिपदाब्जयुग्मं ॥

इति धान्यपर्व्वतदानविधिः ।

अथ लवणाचलदानविधिः ।

पुलस्त्य उवाच ।

अथातः संप्रवक्ष्यामि लवणाचलमुत्तमम् ।
यत्प्रदानान्नरोलोके प्राप्नोति शिवसंयुतम् ॥
उत्तमः षोड़शद्रोणः कर्त्तव्यो लवणाचलः ।
मध्यमः स्यात्तदर्द्धेन चतुर्भिरधमः स्मृतः ॥
वित्तहीनो यथा शक्त्या द्रोणादर्द्धं तु कारयेत् ॥
चतुर्थांशेन विष्कम्भपर्वतान् कारयेत् पृथक् ॥

द्रोणलक्षणमुक्तं ।

चतुर्थांशेनेति मुख्यशैललवणात् पृथक् प्रत्येकं चतुर्थांशपरिमितेन लवणेनेत्यर्थः ।

विधानं पूर्ववत् कुर्य्यात् ब्रह्मादीनां च सर्व्वदा ।

तद्वद्धेमतरून् सर्व्वान् लोकपालनिवेशनम् ।
सरांसि कामदेवादीन् स्तद्वचात्र निवेशयेत् ॥
तद्वदिति धान्यपर्व्वतवदित्यर्थः ।
कुर्य्याज्जागरमत्रापि दानमन्त्रान्निबोधत ।
सौभाग्यरससम्भूतो यतो यं लवणोरसः ।
तदात्मकत्वेनच मां पाहि पापान्नगोत्तम ॥
यस्मादन्नरसाः सर्व्वे न तत्कटा लवणं विना ।
प्रियश्च शिवयोर्नित्यं तस्माच्छान्तिं प्रयच्छ मे ॥
विष्णुदेहसमुद्भूतं यस्मादारोग्यवर्द्धनम् ।
तस्मात् पर्व्वतरूपेण पाहि संसारसागरात् ॥
अनेन विधिना यस्तु दद्याल्लवणपर्व्वतम् ।
उमालोके वसेत्कल्पं ततो याति पराङ्गतिम् ॥
इति पद्मपुराणोक्तो लवणाचलदानविधिः ।

अथ गुड़पर्व्वतदानविधिः ।

पुलस्त्य उवाच ।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि गुड़पर्व्वतमुत्तमम् ।
यत्प्रदानान्नरः स्वर्गमाप्नोति सुरपूजितम् ॥
उत्तमो दशभिर्भारैर्मध्यमः पञ्चभिर्मतः ।
त्रिभिर्भारैः कनिष्ठः स्यात्तदर्द्धेनाल्पवित्तवान् ॥
भारः, परिभाषायां व्याख्यातः ।
तद्वदामन्त्रणं पूजा होमश्चसुरार्च्चनम् ।
विष्कम्भपर्व्वतांस्तद्वत्सरांसि वनदेवताः ॥

होमं जागरणं तद्वल्लोकपालाधिवासनम्।
धान्यपर्व्वतवत् कुर्य्यादिमं मन्त्रमुदीरयेत्॥
यथा देवेषु विश्वात्मा प्रवरोऽयं जनार्द्दनः।
सामवेदस्तु वेदानां महादेवस्तु योगिनाम्॥
प्रणवः सर्व्वमन्त्राणां नारीणां पार्व्वती यथा।
तथा रसानां प्रवरः सदैवेक्षुरसोमतः॥
मम तस्मात् परां लक्ष्मीं ददस्व गुड़पर्व्वत।
यस्मात् सौभाग्यदायिन्या भ्राता त्वं गुडपर्वत।
निवासश्चापि पार्व्वत्यास्तस्मान्मां पाहि सर्व्वदा॥
अनेन विधिना यस्तु दद्यात् गुड़मयं गिरिम्।
पूज्यमानः स गन्धर्वैर्गौरीलोके महीयते॥
पुनः कल्पशतान्ते तु सप्तद्वीपाधिपो भवेत्।
आयुरारोग्यसम्पन्नः शत्रुभिश्चापराजितः॥
इति पद्मपुराणोक्तो गुड़पर्व्वत दानविधिः।

श्रीभगवानुवाच।

अतः परं प्रवक्ष्यामि गुड़पर्व्वतमुत्तमम्।
सर्व्वपापहरंपुण्यं सौभाग्यजननं परम्॥
पुष्टिदं शान्तिदञ्चैव सुखदं दिव्यभोगदम्।
भारैस्तं दशभिः कुर्य्याद्यथाशक्त्यापि वा भवेत्॥
पूर्व्ववत् मण्डपं कृत्वा सर्व्वोपकरणानि च।
पूर्ववदिति, ब्रह्माण्डदानोक्तधान्यपर्व्वतवदित्यर्थः।
लोकपालसमोपेतं तथाकाञ्चनशृङ्गिणम्।

मुक्ताफलविचित्राङ्गं वस्त्रालङ्कृतविग्रहम् ॥
प्रवालकलतोपेतं* इक्षुखण्डोपवेशकम् ।
नितम्बं राजतन्तस्य मेखलाकारसंस्कृतम् ।
कुर्य्यात्ताम्रमयं स्कन्धं नानाधातुविभूषितम् ॥
कृत्वा तमीदृशं शैलं सर्व्वधान्यसमावृतम् ॥
सर्वौषधिसमोपेतं सशृङ्गं समहाद्रुमम् ।
कल्पयित्वा विधानेन सवितानं विचक्षणैः ॥
कुण्डमेकं ततः कृत्वा चतुःकोणं स्वलङ्कृतम् ।
नियोज्यास्तत्र विद्वांसो ब्राह्मणाःशंसितव्रताः ॥
पञ्चमो गुरुरत्रोक्तस्तान् सर्व्वान् पूजयेत्ततः ।
पूजितास्ते यथान्यायं होमं कुर्य्युरतन्द्रिताः ॥
लोकपालान् ग्रहांश्चैव ब्रह्मादींश्च विधानतः ।
स्वलिङ्गोक्तैश्च मन्त्रैश्च होमयेयुर्द्विजोत्तमाः ॥
महाव्याहृतिभिश्चैव अयुतं तत्र होमयेत् ।
आचार्य्यः सह विप्रैस्तैर्मानेन सुसमाहितः ॥
ब्रह्मघोषरतस्तस्मिन् कारयित्वा महोत्सवम् ।
एवं विधिं तदा कृत्वा पूर्व्वद्युः श्रद्धयान्वितः ॥
दद्यात्तं माघमासस्य तृतीयायां विशेषतः ।
चैत्रस्य वा विधानेन तृतीयायां प्रदापयेत् ॥
अन्येष्वपि च कालेषु ग्रहणादिषु कारयेत् ।
त्वं रसानां वरोनित्यं देवानाञ्च सदा प्रियः ॥
सुखं प्रयच्छ मे नित्यं नमस्ते पर्व्वतोत्तमं ।

---

* प्रवालकलसोपेतमिति क्वचित्पाठः ।

यावन्तः सागरा नद्यो यावच्चन्द्रार्कतारकाः।
तावत्त्वं सुखं यच्छ सौभाग्यमतुलन्तथा॥
एवं सम्पूजयित्वा तं ब्राह्मणानां निवेदयेत्।
आचार्यं पूजयेत्पश्चाद्दीनान्धकृपणानपि॥
विसृज्य ब्राह्मणांस्तांस्तु कृत्वा चैव प्रदक्षिणम्।
तस्मिन्दिने च भोक्तव्यं मधुरं क्षारवर्जितम्॥
अनग्नालेपनश्चैव कृतकृत्योभवेन्नरः।
तस्माद्देयमिदं दानं फलमुत्तममिच्छता॥
गतिश्च शाश्वती लोके सौभाग्यं रूपमेव च।
अनेन विधिना चैव दातव्यो गुड़पर्व्वतः॥
विशङ्कारस्तु कर्त्तव्यः शेषं पूर्व्ववदाचरेत्।
दानमेतत् प्रशस्तं स्यात् स्त्रीणां राजन्विशेषतः॥
सौभाग्यराजकामस्य सर्व्वस्यापि विधीयते।
पूर्वोक्तञ्च फलं प्राप्य कृतकृत्योहि जायते॥

इति ब्राह्मण्डपुराणोक्तो गुडपर्व्वत दानविधिः।

## अथ सुवर्णाचलदानविधिः।

पुलस्त्य उवाच।

अथ पापहरं वक्ष्ये सुवर्णाचलमुत्तमम्।
यस्य प्रदानाद्भवनं विरिञ्चेर्याति मानवः॥
उत्तमः पलसाहस्रो मध्यमः पञ्चभिः शतैः।
तदर्द्धेनाधमस्तद्वदल्पवित्तोऽपि शक्तितः॥
दद्यादेकपलादूर्द्ध्वं यथाशक्त्या विमत्सरः।

धान्यपर्वतवत्सर्वं विदध्याद्राजसत्तम।
विष्कम्भशैलांस्तद्वच्च ऋत्विग्भ्यः प्रतिपादयेत्॥
नमस्ते ब्रह्मबीजाय ब्रह्मगर्भाय वै नमः।
यस्मादनन्तफलदस्तस्मात् पाहि शिलोच्चय॥
यस्मादग्नेरपत्यं त्वं यस्मात् पुण्यं जगत्पते।
हेमपर्व्वतरूपेण तस्मात्पाहि नगोत्तम॥
अनेन विधिना यस्तु दद्यात् कनकपर्व्वतम्।
स याति परमं ब्रह्मलोकमानन्दकारकम्॥
तत्र कल्पशतन्तिष्ठेत्ततो याति पराङ्गतिम्॥

अत्र यद्यपि गुरवे मध्यशैलं दद्यात् ऋत्विग्भ्यो विष्कम्भाचलानीत्युक्तं, नापि तुलापुरुषवदित्यादि श्रूयते, तथापि पलसहस्रादिपरिमितसुवर्णदानार्हस्य एकस्यासुलभत्वात् अन्येष्वपि च बहुसुवर्णकेषु बहुभ्यो दानदर्शनात् अत्रापि तुलापुरुषवदर्द्धचतुर्थभागादि गुरवे प्रदाय, तदनुज्ञया अन्येभ्योऽपि दद्यादिति गम्यते, प्रकृतावदर्शनान्नैवमिति चेत् माभूत् प्रकृतौ तुलापुरुषादिस्थितमेव गृह्यत इति कोविरोधः, एकत्र विध्यन्तो भवतीत्येकस्य प्रकृतिद्वयानुपपत्तिरिति चेत् अथ प्रकृतावप्येवमेव व्यवस्थेति ब्रूमः। लवणाचलादिसकलशैलदानप्रकृति भूतस्य धान्यपर्व्वतस्य कथमन्यधर्मग्रहण इति चेत् न प्रकृतेरप्यङ्गाङ्गिसापेक्षतया धान्यपर्वतेऽपि कुण्डमण्डपाचार्यलक्षणादितुलापुरुषधर्म्मग्रहणदर्शनात्।

ततश्च द्रव्यबहुत्वे बहुभ्यः द्रव्याल्पत्वे ब्राह्मणपञ्चकाय स्वल्पतमत्वे आचार्य्यायैव देयमिति सिद्धम्।

इति पद्मपुराणोक्तः सुवर्णाचलदानविधिः ।

## अथ तिलशैलदानविधिः ।

पद्मपुराणात्

पुलस्त्य उवाच ।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि तिलशैलं विधानतः ।
यत्प्रदानान्नरो याति विष्णुलोकमनुत्तमम् ॥
उत्तमो दशभिर्द्रोणैः पञ्चभिः मध्यमो मतः ।
त्रिभिः कनिष्ठो विप्रेन्द्र तिलशैलः प्रकीर्त्तितः ॥
पूर्ववच्चापरं सर्व्वं वृत्तविष्कम्भकादिकम् ।
दानमन्त्रान् प्रवक्ष्यामि यथावद्राजसत्तम ॥
यस्मात् मधुवने विष्णो र्देहस्वेदसमुद्भवाः ।
तिलाः कुशाश्च माषाश्च तस्माच्छन्नो भवत्विह ॥
हव्यकव्येषु यस्माच्च तिलैरेवाभिलक्षणम् ।
भवादुद्धर शैलेन्द्र तिलाचल नमोऽस्तु ते ॥
इत्यामन्त्र्य च यो दद्यात्तिलाचलमनुत्तमम् ।
स वैष्णवं पदं याति पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥
दीर्घायुष्यमवाप्नोति इह चामुत्र मानवः ।
पितृभिर्द्देवगन्धर्व्वैः पूज्यमानो दिवं व्रजेत् ॥

अथ ब्रह्माण्डपुराणात् भगवानुवाच ।

अतः परं प्रवक्ष्यामि तिलपर्व्वतमुत्तमम् ।
यद्दानं सर्व्वदानानां परत्र फलदायि च ॥

तिलाः पवित्रमतुलं पवित्राणाञ्च पावनाः ।
विष्णोर्देहसमुद्भूतास्तस्मादुत्तमताङ्गताः ॥
तिला भवन्ति रक्षार्थं जगतां त्रिसृणामपि ।
शुक्लपक्षे तु देवानां प्रदद्याद्यस्तिलोदकम् ॥
कृष्णपक्षे पितृणान्तु स्नात्वा श्रद्धासमन्वितः ।
तिलैः सप्ताष्टभिर्वापि समवेतं तिलाञ्जलिम् ॥
तस्य देवाः सपितरः तृप्ता यच्छन्ति वाञ्छितम् ।
श्वकाकोपहतं यत्तु पतितादिभिरेव च ।
तिलैः रभ्युक्षितं सर्व्वं पवित्रं स्यान्नसंशयः ॥
एवं विधैस्तिलैर्यस्तु कृत्वा पर्व्वतमुत्तमम् ।
प्रदद्याद्द्विजमुख्याय पुण्यन्तस्याक्षयं भवेत् ॥
विधानं तस्य वक्ष्यामि माहात्म्यमपि चोत्तमम् ।
व्यतीपातेऽयने चैव ग्रहणे शशिसूर्य्ययोः ।
जन्मर्क्षे विषुवे चैव देयं माघे विशेषतः ॥
तिलैर्य्यत्क्रियतेमाघे दानहोमादिकं तथा ।
तदक्षयंभवेल्लोके तर्पणादिकमेव च ॥
तथा नद्यां गृहे वापि कृत्वा मण्डपमुत्तमम् ।
पूर्वोक्तेन विधानेन कुर्य्यात्सर्व्वमशेषतः* ॥
पूर्वोक्तेनेति, ब्रह्माण्डपुराणोक्तधान्यपर्वतस्थिते नेत्यर्थः,
शतत्रयेन द्रोणानां शतया वापि प्रकल्पयेत् ।
पर्व्वतस्य चतुर्थेन भागेन परिकल्पयेत् ॥

* विशेषत इति पाठान्तरम् ।

दिशाचलान्मन्दरादीन्स्तिलैरेव विचक्षणः।
ब्रह्मादिलोकपालांश्च सौवर्णान् कारयेत्तथा॥
इक्षुदण्डैः समन्तात्तु भूषयेद्यागमण्डपम्।
कुण्डमेकं चतुष्कोणं पूर्व्वतः कारयेद्बुधः॥
हस्तमात्रप्रमाणेन मेखलानाभिसंयुतम्।
संस्थापयेद्द्विजांस्तत्र चातुश्चरणिकान् शुचीन्॥
पूर्व्वोक्तेन विधानेन तत्र होमो विधीयते।
पूजयेत् पर्व्वतञ्चैव माल्यवस्त्रविभूषणैः॥
मणिरत्नप्रवालैश्च प्रथमेऽह्नि यत्नतः।
विष्णुदेहसमुद्भूतै तिलैस्त्वं कारितो मया॥
देवालय महामेरो नमस्ते भूभृतां वर॥
सप्त जन्मानि यत्किञ्चिन्मया पापमनुष्ठितम्।
क्षयं प्रयातु तत्सर्व्वं त्वत्प्रसादान्नगोत्तम॥
एवं संपूजयित्वा तु प्राप्य चैवाशिषं शुभाम्।
रात्रौ महोत्सवं कृत्वा पर्व्वतस्य समीपतः।
पूजयित्वा द्विजान् सम्यक् सोपाध्यायान् सहाहितः॥
सहस्रं दक्षिणां दद्याच्छक्त्या वापि प्रदापयेत्।
अत्रापि गावो दातव्या अष्टौ चत्वार एव च॥
प्रदक्षिणं ततः कृत्वा पर्व्वतं ब्राह्मणांस्तथा।
शिरसा प्रणिपत्याथ याडावांस्तु मनुव्रजेत्॥
अनेन विधिना यस्तु दानमेतत् प्रयच्छति।
स गच्छेत् पितृभिः सार्द्धं विष्णुलोकमनौपमम्॥
विमानवरमारुह्य किङ्किणीजालमण्डितम्।

अप्सरोगणसम्वीतं गन्धर्वैरतिशोभितम् ॥
दशकोटास्तुवर्षाणां भुङ्क्ते भोगान् यथेप्सितान् ।
पुण्यक्षयादिहागत्य राजा भवति धार्म्मिकः ॥
नारी वा तस्य पत्नी वा सुभगा रूपसंयुता ।
दक्षा कुलोद्वहा चैव पुत्रपौत्रसमन्विता ॥
कृते युगेऽभिजायेत पश्चान्मोक्षमवाप्नुयात् ।
सगरेण ककुत्स्थेन धुन्धुमारेण वै पुरा ॥
मान्धात्रा यवनाश्वेन कार्त्तवीर्य्येण चैवहि ।
दानमेतत् पुरा दत्तं तत्पत्नीभिस्तथैव च ॥
प्राप्तमैश्वर्यमतुलं कीर्त्तिर्लोके च शाश्वती ।
तस्माद्देयं सदा दानं एतद्राजवरोत्तमाः ॥
विधानमिदमाकर्ण्य निर्द्धनः श्रद्धयान्वितः ।
कपिलादानपुण्यस्य समं फलमवाप्नुयात् ॥

इति तिलपर्व्वतदानविधिः ।

सनत्कुमार उवाच ।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि तिलपर्व्वतमुत्तमम् ।
पूर्वोक्तस्थानकाले तु कृत्वा संपूजयेत्ततः ॥
अत्र पूर्वशब्देन लिङ्गपुराणोक्ततुलापुरुषदानमवगन्तव्यम् ।
सुसमे भूतले रम्ये वल्मीकादिविवर्जिते ।
दशतालप्रमाणेन दण्डं संस्थाप्य वैमुने ।
अद्भिः सम्प्रोक्ष्य पश्चाद्धि तिलास्तस्मिन् विनिक्षिपेत् ॥

तालः स्मृतो मध्यमया गोकर्णश्चाप्यनामयेत्यादिना तालमानमुक्तं परिभाषायां।

प्रोक्षयेत्पञ्चगव्येन तन्देशं ब्राह्मणोत्तमः।
मण्डलं कल्पयेद्विद्वान् पूर्ववत्सुसमाहितः॥
नववस्त्रैश्च संस्थाप्य द्रोणपुष्पं विकीर्य्य च।
तस्मिंस्तु पर्व्वतं कुर्य्यात् तिलभारैर्व्विशेषतः॥
दण्डात् प्रादेशमुत्सेध उत्तमे परिकीर्त्तितः।
चतुरङ्गुलहीनस्तु मध्यमे परिकीर्त्तितः॥
दण्डतुल्यः कनिष्ठे स्याद्दण्डहीनेन कारयेत्।
वेष्टयित्वा नवैर्व्वस्त्रैः परितः पूजयेत् क्रमात्॥
सद्यादीनि प्रतिन्यस्य पूजयेद्विधिपूर्व्वकम्।
अष्टदिक्षु च कर्त्तव्या देवानां मूर्त्तयः क्रमात्॥
त्रिनिष्केण सुवर्णेन प्रत्येकं कारयेत्ततः॥

सद्यादीनि, सद्योजातप्रभृतीनि, देवानां, लोकपालानां।

दक्षिणा विधिना कार्य्या तुलापुरुषदानवत्।
होमश्च पूर्ववत्प्रोक्तो यथावन्मुनिसत्तमः॥

तुलापुरुषोऽत्र लिङ्गपुराणोक्त एवेति विज्ञेयम्।

अर्च्चयेद्देवदेवेशं लोकपालसमावृतम्।
तिलपर्व्वतमध्यस्थं तिलपर्व्वतरूपिणम्॥
शिवार्च्चना च कर्त्तव्या सहस्रकलशादिभिः।
दर्शयेत्तिलमध्यस्थं देवदेवमुमापतिम्॥
पूजयित्वा विधानेन क्रमेण च विसर्जयेत्।
श्रोत्रियाय दरिद्राय दापयेत्तिलपर्व्वतम्॥

एवं तिलमयं प्रोक्तं दानं सर्व्वाधिकं परम् ।
यत्कृत्वा मानवो नूनं स्वर्गं मोक्षञ्च विन्दति ॥

अत्रैवं कृतिः, प्रागुक्तमण्डपवेदीमण्डले गव्यैः प्रोक्ष्य दर्भान् द्रोणपुष्पादिंचावकीर्य्य च वस्त्रैराच्छाद्य यजमानो दशतालमितं दण्डं निधाय यवाक्षतशुद्धतिलैर्दण्डमाच्छादयन् शैलाकृतिं कुर्य्यात् उत्तमे दण्डात् प्रादेशाधिक्यं, मध्यमे अष्टाङ्गुलाधिक्यं, कनिष्ठपक्षे तु दण्डसाम्यं तिलराशेरिति । ततो वस्त्रैराच्छाद्य तं मेरुरूपं ध्यात्वा तदुपरि शिवं पलत्रयावरस्वर्णनिर्म्मितं संस्थाप्य सद्यादीनि न्यसेत्, तत्र प्रथमावरणे पञ्च ब्रह्माणि, तद्वाह्ये सर्वादिमूर्त्तिं संस्थाप्य, तद्वाह्ये भूम्यादिमूर्त्तिः, तद्वाह्ये लोकपाला इति, एते च सर्वे निष्कत्रयपरिमितेन हिरण्येन विधाय तत्तन्मन्त्रैः पूज्याः, तत्र शिवलक्षणमुक्तं ब्रह्माण्डदाने ।

सद्योजातादिलक्षणमुक्तं मयदीपिकायाम् ।
सद्योजातं सितं कुर्य्याद्वरदाभयहस्तकम् ॥
सौम्यं मौलीन्दुसम्पन्नं बालाकारं त्रिलोचनम् ।
वामदेवं सुरक्ताङ्गं माल्यवस्त्रोपवीतकम् ॥
तुङ्गनासं च खट्टाङ्गं खड्गखेटकपाणिनम् ।
बभ्रुभ्रूश्मश्रुमौलीन्दुं दंष्ट्रालम्बिकृताननम् ॥
पाशखेटेषुखट्टाङ्गकाययुक्तं चतुष्टये ।
शूल-दण्ड-कुठारा-सीन् दद्याद्दक्षेषु पाणिषु ॥
पीताम्बरं सुसौम्यञ्च नरं कुङ्कुमसन्निभम् ।
कुर्य्यान्मौलीन्दुसम्पन्नं पाशशूलधरं द्वयोः ॥
स्फटिकाभं जगद्धेतुं त्रिनेत्रं चन्द्रमौलिनम् ।

ईशानं पञ्चमं कुर्य्यात् त्रिशूलाभयपाणिनमिति ॥

सर्वादिलक्षणमाह विश्वकर्मा।

सर्वो भीमो महादेवो रुद्रः पशुपतिर्भवः।
उग्रेशानाविति ह्यष्टौ मूर्त्तयः शिवसन्निभाः ॥
मृगाङ्कचूडामणयो जटामण्डलमण्डिताः।
त्रिनेत्रा वरखट्टाङ्गत्रिशूलाभयपाणय इति ॥

मूर्त्त्यष्टकमध्ये तु पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशानां रूपाणि पञ्चमहाभूतघटदाने निरूपितानि, चन्द्रार्कयोस्तु वरदानप्रकरणे वक्ष्यन्ते, यजमानमूर्त्तिस्तु विशेषानुक्तेरितरपुरुषतुल्यैव वेदितव्या, लोकपाललक्षणमुक्तं ब्रह्माण्डदाने, ततः पूजानन्तरतत्तन्मन्त्रैः समिदादि हुत्वा पृथक्स्थस्य शिवस्य सहस्रकलशाभिषेकं कृत्वा यजमानाय तिलपर्वताग्रस्थं शिवं प्रदर्शयेदाचार्य्यः।

यजमानस्तु शिवादीनभ्यर्च्य तं शैलं श्रोत्रियाय प्रदापयेत्।

आचार्यादिदक्षिणादि पूर्व्ववत्।

अत्राद्ये यजमानमधिकृत्य कालोत्तरतन्त्रेषु।
अथ वा परमेशानमष्टोत्तरशतैरपि।
कलशैः स्नपयित्वा तु समभ्यर्च्य यथाविधि ॥
कुर्य्यात् प्रदानमन्त्रेण गुरुरष्टोत्तरं सुधीः।
महादेवो महारुद्रः शङ्करो नीललोहितः ॥
ईशानो विजयो भीमो देवदेवो भवोद्भवः।
कपालीशश्च विज्ञेयो रुद्रा एकादशस्त्विमे ॥
समन्तात्सकलेशस्य पूजनीया यथाक्रमम्।

कृष्णाजिने संप्रपूज्य तिलानां षोड़शाधिकैः ॥
सुवर्णत्रयसंयुक्तं वस्त्रयुग्मेन वेष्टितं ।
शोभितं पुष्पमालाभिः फलैश्च समलङ्कृतम् ॥
रुद्रानेकादश ध्यात्वा क्रमेण परिदापयेत् ।
शिवभक्ताय शान्ताय श्रोत्रियाय द्विजन्मने ॥
एवं यः कुरुते भक्त्या विधिनानेन संयुतः ।
आयुःश्रियं जयङ्कीर्त्तिमनुभूय शिवं व्रजेत् ॥
इति लिङ्गपुराणोक्तस्तिलपर्व्वतदानविधिः ।
अथातः संप्रवक्ष्यामि तिलपर्व्वतमुत्तमम् ।
यस्य प्रदानात्सकलं क्षयमेष्यति पातकम् ॥
सप्तजन्मान्तरे यत्स्यात्पापं भ्रूणवधादिकम् ।
तत्सर्वं क्षयमभ्येति तिलपर्व्वतदानतः ॥
पुण्यकालेषु सर्वेषु उपरागे विशेषतः ।
पुण्यदेशे प्रयत्नेन दातव्यं तिलपर्व्वतम् ॥
देवालयस्य पुरतो मण्डपं कारयेद्बुधः ।
प्रविभक्तचतुर्द्वारं चतुस्तोरणसंयुतं ॥
दशद्वादशहस्तं वा चतुरस्रं सुसंस्थितम् ।
वितानोपरिसंछन्नं दिग्विनीर्णवितानकं ॥
द्वारेषु पूर्णकलशान् स्थापयित्वा द्वयं द्वयं ।
पूर्वस्मिन् दिवसे प्रातः कुर्य्यात् पुण्याहवाचनं ॥
ततःसङ्कल्पयित्वा तु गुरुं वेदाङ्गपारगं ।
वशिनं पुण्यचरितं युवानां कृतलक्षणम् ॥
ऋत्विजश्चाष्ट संग्राह्या वेदवेदाङ्गपारगाः ।

तेषां निवेदयेत् कार्य्यं स्व प्रदास्ये तिलाचलम्॥
ततो गुरुं महादेवं पूजयित्वा विधानतः।
विनायकमुमां चैव ततः सूत्रं प्रपातयेत्॥
मण्डपे नवकोष्ठानि कल्पयित्वा समन्ततः।
अष्टौ कुण्डानि कार्य्याणि ईशाने नवमं भवेत्॥
मध्यकोष्ठं प्रविस्तीर्य्य सितवस्त्राणि सर्व्वतः।
तिलैः शुद्धैर्महामेरुं मध्ये कार्य्यं प्रयत्नतः॥
उत्तमस्त्रिपलैर्भारैर्द्व्येकाभ्यां मध्यमाधमौ।
षड्भागेन ततः कार्य्याः समन्ताद्वर्षपर्व्वताः॥
माल्यवान्निषधश्चैव हिमवान् हेमकूटकः।
गन्धमादनशैलश्च शृङ्गवान् श्वेतशैलकौ॥
ऐन्द्रादिषु निधातव्या वासोभिश्छादयेद्बहिः।
कल्पद्रुमस्तु सौवर्णः सर्व्वरत्नोपशोभितः॥
सर्व्वपुष्पफलोपेतो न्यस्तव्यो मेरुमूर्द्धनि।
हैमान् मृगान् खगांश्चापि द्रुमांश्चापि विनिर्द्दिशेत्॥
सर्व्वशैलेषु मन्दारमृगपक्ष्यादिकञ्च यत्।
निधातव्यं प्रयत्नेन तुरीयांशेन मेरुतः॥
सुमेरोर्द्वादशपलं दशाष्टौ वाप्यनुक्रमात्।
सुवर्णस्य प्रमाणंस्यादुत्तमाधममध्यमं॥
अधस्तात् कल्पवृक्षाणां सौवर्णकमले हरम्।
सुखासीनं चतुर्ब्बाहुं जटामुकुटमण्डितम्॥
त्रिनेत्रं सौम्यवदनं सौवर्णं न्यस्य पूजयेत्।
शिवनामा तु मध्ये स्याद्भवः शम्भुस्त्रिलोचनः॥

स्थाणुरीशो महादेवः शङ्करश्चन्द्रशेखरः ।
पूर्व्वादिषु महादेवमेभिर्नामभिरर्च्चयेत् ॥
दिवाहविष्यभोजीस्यात् सगुरुस्ते च ऋत्विजः ।
स्वेन स्वेन विधानेन गृह्योक्तेन विशेषतः* ॥
हुत्वाज्यभागौ जुहुयाद्यथोक्तं सर्वमाचरेत् ।
वस्त्रैः प्रपूजयेत्सर्वानृत्विजो गुरुमेव च ॥
द्विगुणं गुरवेदद्यात् कुण्डलैरङ्गुलीयकैः ।
उपानच्छत्रशय्याभिरासनैः पादुकेन च ॥
ततो विमलआदित्ये पुण्यकाल उपस्थिते ।
अनुज्ञातस्तु तैर्विप्रैर्यजमानः प्रसन्नधीः ॥
सर्व्वौषधिजलस्नातः क्षौमवासाः स्वलङ्कृतः ।
प्रदक्षिणं गिरिं कृत्वा विप्रानाहूय यत्नतः ॥
ज्ञानिनो गुणसम्पन्नानात्मनिष्टानलोलुपान् ।
वेदवेदाङ्गविदुषस्तञ्च देवं प्रकल्प्य च ॥
तस्य तस्य गिरेः पार्श्वे तत्तन्नाम्ना प्रपूजयेत् ।
मेरुं तत्प्रथमं दद्याच्छिवः संप्रीयतामिति ॥
गुणोत्कृष्टाय विप्राय भावयित्वा तु तं शिवम् ।
एवं पूर्व्वादिशैलांस्तु तत्तन्नाम्ना प्रदापयेत् ॥
प्रीयतामिति तान् विप्रांस्तत्तद्देवं प्रकल्प्य च ।
सर्वं क्रियाकलापञ्च निवेद्य परमेष्ठिनम् ॥
पूजयित्वा द्विजानग्रे दीनान्धकृपणांस्ततः ।
आशीर्मङ्गलसंयुक्तस्ततो बन्धुसमन्वितः ॥

* विपश्चित इति वा पाठः ।

अनेन विधिना यस्तु दद्यात्तिलमयं गिरिम् ।
न तस्य विद्यते किञ्चित्पापं सप्तजनोद्भवम् ॥
विमानेन शिवं गच्छेन्निः कामो यः समाचरेत् ।
सकामो लभते कामान् यं यमिच्छति चेतसा ॥
इति प्रश्नोत्तरतन्त्रोक्ततिलशैलदानविधिः ।

अथ कार्पासपर्व्वतदानविधिः ।

पद्मपुराणात् ।

कर्पासपर्व्वतस्तद्वद्विंशद्भारैरिहोत्तमः ।
दशभिर्मध्यमः प्रोक्तः कनिष्ठः पञ्चभिः स्मृतः ॥
भारेणाल्पधनो दद्याद्वित्तशाठ्यविवर्जितः ।
धान्यपर्वतवत्सर्वमासाद्य राजसत्तम ॥
प्रभातायान्तु शर्व्वर्यां दद्यादिदमुदीरयेत् ।
त्वमेवाचरणं यस्माल्लोकानामिह सर्वदा ॥
कर्पासाचल तस्मात्त्वमघौघध्वंसनो भव ।
एवं कर्पासशैलेन्द्रं यो दद्यात् पर्वसन्निधौ ।
रुद्रलोके वसेत्कल्पं ततोराजा भवेदिह ॥

ब्रह्माण्डपुराणात् भगवानुवाच ।

अतः परं प्रवक्ष्यामि कर्पासाचलमुत्तमम् ।
परमं सर्व्वदानानां प्रियं सर्वदिवौकसाम् ॥
देशकालौ समासाद्य धनं श्रद्धाञ्च यत्नतः ।
देयमेतन्महादानं तारणार्थं कुलस्य च ॥

पर्वतं कल्पयेत्तत्र कार्पासेन विधानतः ।
पूर्वोक्तेन विधानेन कृत्वा सर्व्वं विधानतः ॥
विंशद्भारस्तु कर्त्तव्य उत्तमः पर्वतो बुधैः ।
मध्यमं दशभिः कुर्य्याज्जघन्यं पञ्चभिस्तथा ॥
सर्व्वधान्यसमूहस्य मध्ये ह्योषधिभिर्वृतम् ।
रसैरत्नैश्च संयुक्तं लोकपालावृतं तथा ।
ब्रह्मादयस्तथा शृङ्गे काञ्चनेन विनिर्मिताः ॥
कुलाकुलांश्च चत्वारश्चतुर्भागेन कल्पयेत् ।
सौवर्णशिखरान् सर्व्वान् सर्व्वरत्नोपशोभितान् ॥
नानाधातुविचित्राङ्गान् भक्ष्यभोज्यसमावृतान् ।
कुण्डे वा स्थण्डिले वापि तत्र होमो विधीयते ॥
ऋत्विजश्च तथाचाष्टौ कारयेद्वेदवित्तमान् ।
होमोव्याहृतिभिश्चैव अग्नौ तद्दैवतैरपि ॥
गन्धेन सर्पिषा तत्र तथा कृष्णतिलैरपि ।
अयुतं होमसंख्या च पालाशसमिधस्तथा ॥
शङ्खतूर्य्यनिनादैश्च तथामङ्गलपाठकैः ।
उत्सवं कारयेत्तत्र दिनमेकमतन्द्रितः ॥
पर्व्वकाले ततो दद्यात् पूजयित्वा विधानतः ।
नमः सर्वामरावास भूतसङ्घैरभिष्टुतः ॥
ब्रह्मादयो मे वरदा भवन्तु विबुधाः सदा ।
इत्युच्चार्य्य नरो दद्यान्नारी वा विधिपूर्व्वकम् ॥
पूजयित्वा द्विजान् सम्यक् वासोभिर्भूषणैस्तथा ।
अनेन विधिना यस्तु दानमेतत् प्रयच्छति ॥

स गच्छेच्छिवस्यावासं विमानोपरि संस्थितः।
अप्सरोगणसंवीतो गन्धर्व्वैरभिसंस्थितः॥
तत्र मन्वन्तरं यावदुषित्वा विबुधालये।
पुण्यक्षयादिहाभ्येत्य महीमभुङ्क्तेससागराम्॥
रूपवान् सुभगोवाग्मी श्रीमानतुलविक्रमः।
पञ्चजन्मानि नारी वा जायते नात्र संशयः॥
भूयश्च शृणु राजेन्द्र दिव्यं कार्पासपर्व्वतम्।
तस्य भारशतेनैव कुर्य्याद्दशेन वा पुनः॥
शेषं पूर्व्वविधानेन सर्व्वं कुर्य्याद्यथाक्रमम्।
फलं पूर्व्वोदितञ्चैव जायते नृपसत्तम॥

इति कर्पासपर्व्वतदानविधिः।

अथ घृताचलदानविधिः।

पुलस्त्य उवाच।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि घृतशैलमनुत्तमम्।
तेजोऽमृतमयन्दिव्यं महापातकनाशनम्॥
विंशत्या घृतकुम्भानामुत्तमः स्यात् घृताचलः।
दशभिर्मध्यमः प्रोक्तः पञ्चभिरधमः स्मृतः॥
अल्पवित्तः प्रकुर्व्वीत द्वाभ्यां मेरुविधानतः।
विष्कम्भपर्व्वतांस्तद्वच्चतुर्भागेन कल्पयेत्॥
शालितण्डुलपात्राणि कुम्भोपरि निवेशयेत्।
कारयेत् संहतान् सर्व्वान् यथाशोभं विधानतः॥
वेष्टयेत् शुक्लवासोभिरिक्षुदण्ड-फलादिकैः।
धान्यपर्व्वतवच्छेषविधानमिह पठ्यते॥

अधिवासश्च कुर्व्वीत तद्धोमं सुरार्चनम् ।

अत्र पलसहस्रपरिमितश्च तं घृतकुम्भः प्रसिद्धः कुम्भग्रहणे तस्या-नियतपरिमाणत्वादनवस्थित शास्त्रार्थप्रसङ्गात् तच्च द्रवद्रव्यत्वा-दाधारमपेक्षत इति । शालितण्डुलपात्राणि कुम्भोपरि निवेशये-दित्यनेन तस्य कलशाधारत्वात् प्रतिपाद्यते 'तन्दुलपात्राणीति' पर्व्वतपक्षकापेक्षया बहुवचनम् ।

प्रभातायान्तु शर्व्वर्य्यां गुरवे विनिवेदयेत् ।
विष्कम्भपर्वतांस्तद्वद्दत्विग्भ्यः शान्तमानसः ॥
संयोगात् घृतमुत्पन्नं यस्मादमृततेजसः ।
तस्माद्घृतार्च्चिर्व्विश्वात्मा प्रीयतामत्र शङ्करः ॥
यस्तु तेजोमयं ब्रह्म घृते तच्च व्यवस्थितम् ।
घृतपर्व्वतरूपेण तस्मान्नः पाहि भूधरः ॥
अनेन विधिना दद्याद्घृताचलमनुत्तमम् ।
महापातकयुक्तोऽपि लोकमायाति शाङ्करम् ॥
हंससारसयुक्तेन किङ्किणीजालमालिना ।
विमानेनाप्सरोभिश्च सिद्धविद्याधरैर्वृतः ।
विहरेत् पितृभिः सार्द्धं यावदाहूतसंप्लवम् ॥

इति पद्मपुराणोक्तो घृतपर्व्वतदानविधिः ।

अथ रत्नाचलदानविधिः ।

पुलस्त्य उवाच ।

अतः परम्प्रवक्ष्यामि रत्नाचलमनुत्तमम् ।
मुक्ताफलसहस्रेण पर्व्वतः स्यादिहोत्तमः ॥

मध्यमः पञ्चशतिकस्त्रिशतेनाधमः स्मृतः ।
चतुर्थांशेन विष्कम्भपर्व्वताः स्युःसमन्ततः ॥
पूर्व्वेण वज्र-गोमेदैर्द्दक्षिणे इन्द्र-नीलकैः ।
पुष्परागयुतैः कार्य्यो विद्वद्भिर्गन्धमादनः ॥
वैदूर्यविद्रुमैः पश्चात् सम्मिश्रो विपुलाचलः ।
पद्मरागैः ससौपर्णैरुत्तरेण तु विन्यसेत् ॥

'वज्रगोमेदैः' समसंख्यैः, समं स्यादश्रुतत्वादितिन्यायात् एव-मुत्तरत्रापि विज्ञेयं ॥

सौपर्णः गरुड़ात्मजः ।

सौवर्णैरिति क्वचित्पाठः ।

धान्यपर्व्वतवत् सर्व्वमत्रापि परिकल्पयेत् ।
तद्वदावाहनङ्कुर्य्याद्वृक्षान् देवांश्च काञ्चनान् ॥
पूजयेत् पुष्पपानीयैः प्रभाते च विसर्जनम् ।
पूर्व्ववद्गुरुऋत्विग्भ्य इमान्मन्त्रानुदीरयेत् ॥
यथा देवगणाः सर्व्वे सर्व्वरत्नेष्वपि स्थिताः ।
त्वञ्चरत्नमयो नित्यमतः पाहि महाचलः ॥
यस्माद्रत्नप्रदानेन तुष्टिं प्रकुरुते हरिः ।
महारत्नप्रदानेन तस्मान्नः पाहि पर्व्वत ॥
अनेन विधिना यस्तु दद्याद्रत्नमयं गिरिम् ।
स याति वैष्णवं लोकं अमरेश्वरपूजितः ॥
यावत्कल्पशतं सार्द्धं वसेदिह नराधिप ।
रूपारोग्यगुणोपेतः सप्तद्वीपाधिपो भवेत् ॥

ब्रह्महत्यादिकं किञ्चिद्यदत्रा-मुत्र वा कृतम् ।
तत्सर्व्वं नाशमायाति गिरिर्वज्रहतो यथा ॥
इति पद्मपुराणोक्तो रत्नपर्व्वतदानविधिः ।

अथ रूप्याचलदानविधिः ।

पुलस्त्य उवाच ।

अतः परम्प्रवक्ष्यामि रूप्याचलमनुत्तमम् ।
यत्प्रदानान्नरोयाति सोमलोकं द्विजोत्तमः ॥
दशभिः पलसाहस्रैरुत्तमो राजताचलः ।
पञ्चभिर्म्मध्यमः प्रोक्तस्तदर्द्धेनाधरः स्मृतः ॥
अशक्तो विंशतेरूर्द्ध्वं कारयेच्छक्तितः सदा ।
विष्कम्भपर्व्वतांस्तद्वत्तुरीयांशेन कल्पयेत् ॥
पूर्व्ववद्राजतान् कुर्य्यात् मन्दरादीन् विधानतः ।
कलधौतमयांस्तत्र लोकेशानर्च्चयेद्बुधः ॥

'कलधौतं, काञ्चनम् ।

ब्रह्मविष्णर्कवान् कार्य्योनितम्बोत्र हिरण्मयः ।
राजतंस्याद्यदन्येषां सर्व्वं तदिह काञ्चनम् ॥
शेषञ्च पूर्व्ववत्कुर्यात् होमजागरणादिकम् ।
दद्यात्तद्वत् प्रभाते तु गुरवे रौप्यपर्व्वतम् ॥
विष्कम्भशैलान् ऋत्विग्भ्यः पूज्यवस्त्रविभूषणैः ।
इमं मन्त्रं पठन् दद्याद्दर्भपाणिर्विमत्सरः ॥
पितृणां वल्लभं यस्माद्धर्म्मस्य शङ्करस्य च ।
रजतं पाहि तस्मान्नः शोकसंसारसागरात् ॥
इत्थं निवेश्य यो दद्याद्राजताचलमुत्तमम् ।

गवायुतसहस्रस्य फलमाप्नोति मानवः॥
सोमलोके स गन्धर्व्वैः किन्नरोऽप्सरसाङ्गणैः।
पूज्यमानो वसेद्विद्वान् यावदाभूतसंप्लवम्॥
इति पद्मपुराणोक्तो रूप्याचलदानविधिः।

अथ शर्कराचलदानविधिः।

पुलस्त्य उवाच।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि शर्कराचलमुत्तमम्।
यस्य प्रदानाद्विष्णुर्करुद्रास्तुष्यन्ति सर्व्वदा॥
अष्टभिः शर्कराभारैरुत्तमः स्यान्महाचलः।
चतुर्भिर्म्मध्यमः प्रोक्तो भाराभ्यामधरः स्मृतः॥
भारेण वार्द्धभारेण कुर्य्याद्यः स्वल्पवित्तवान्।
विष्कम्भपर्व्वतान् कुर्य्यात् तुरीयांशेन मानवः॥
धान्यपर्व्वतवत्सर्वमासाद्यामरसंयुतम्॥
मेरोरुपरि तद्वच्च स्थाप्य हेमतरुत्रयम्।
मन्दारः पारिजातश्च तृतीयः कल्पपादपः॥
एतद्वृक्षत्रयं मूर्द्ध्नि सर्व्वेष्वपि निवेशयेत्।
हरिचन्दनसन्तानौ पूर्व्व-पश्चिमभागयोः॥
निवेश्यौ सर्व्वशैलेषु विशेषाच्छर्कराचले।
मन्दारे कामदेवश्च प्रत्यग्वक्त्रः सदा भवेत्॥
गन्धमादनशृङ्गे च धनदः स्यादुदङ्मुखः।
प्राङ्मुखो वेदमूर्त्तिश्च हंसः स्याद्विपुलाचले॥
हैमी सुपार्श्वे सुरभी दक्षिणाभिमुखी भवेत्।
धान्यपर्व्वतवत् सर्व्वमावाहनमखादिकम्॥

स्नात्वाथ गुरवेदद्यान्मध्यमं पर्व्वतोत्तमम् ।
ऋत्विग्भ्यश्चतुरःशैलानिमान्मन्त्रानुदीरयेत् ॥
सौभाग्यामृतसारोऽयं परमं शर्करा यतः ।
तस्ममानन्दकारी त्वं भव शैलेन्द्र सर्व्वदा ॥
अमृतं पिवतां ये तु निपेतुर्भुवि सीकराः ।
देवानां तत्समं सोमं पाहि नः शर्कराचलः ॥
मम भवतु मध्या यदुत्पन्नताशर्करा यतः ।
तन्मयोसि महाशैल पाहि संसारसागरात् ॥
यो दद्याच्छर्कराशैलमनेन विधिना नरः ।
सर्व्वपापविनिर्मुक्तः प्रयाति शिवमन्दिरम् ॥
चन्द्रादित्यप्रतीकाशमधिरुह्यानुजीविभिः ।
सहैव यानमातिष्ठेत् स तु विष्णुप्रचोदितः ॥
ततः कल्पशतान्ते तु सप्तद्वीपाधिपो भवेत् ।
आयुरारोग्यसम्पन्नो यावज्जन्मायुतत्रयम् ॥
भोजनं शक्तितः कुर्य्यात् सर्वशैले विमत्सरः ।
सर्वत्राक्षारलवण मश्नीयात्तदनुज्ञया ॥

भोजनं कुर्य्यादिति, दानानन्तरं यथा शक्तिब्राह्मणेभ्यो भोजनदानं कुर्य्यादित्यर्थः । स्वयमपि अक्षारलवणमश्नीयादिति ।

पर्वतोपस्करान् सर्वान् प्रापयेद्ब्राह्मणालयम् ।
पश्येदिमानप्यधनोऽपि भक्त्या
स्पृशेत् मनुष्यैरिह दीयमानान् ।
शृणोति भक्त्याथ मतिं ददाति
निःकल्मषः सोपि दिवं प्रयाति ॥

दुःस्वप्न प्रशममुपैति पठ्यमानैः
शैलेन्द्रैर्भवभयभेदनैर्मनुष्यः ।
यः कुर्य्यात्किमु मुनिपुङ्गवेह सम्यक्
सत्त्वात्मा सकलगिरीन्द्र सम्प्रदानम् ॥

इति पद्मपुराणोक्तः शर्कराचलदानविधिः ।

अथ शैवानि द्वादशमेरुदानानि निरूप्यन्ते ।

तत्र कालोत्तरशैवशास्त्रात् ।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि मेरुदानंयथाक्रमम् ।
आकार्त्तिकात्समारभ्य मेरुव्रतं समाचरेत् ॥
कार्त्तिक्यां रत्नमेरुश्च दातव्यस्तु शिवाग्रतः ।
सर्व्वेषाञ्चैव मेरूणां प्रमाणं क्रमशः शृणु ॥
वज्र-पद्म-महानीलनील-स्फटिकसञ्ज्ञकः ।
पुष्पं मरकतंमुक्ता ग्राह्याः स्वविभवेन तु ॥
प्रस्थमात्रास्तु संग्राह्याः प्रस्थार्द्धार्द्धमेव वा ।
यथाशक्त्याथ वा देया वित्तशाठ्यं विना सुत ॥
मेरोर्विभागं वक्ष्यामि शिवस्याग्रे यथार्च्चयेत् ।
कर्णिकायां न्यसेन्मेरुं ब्रह्मविष्णुप्रभूषितम् ।
तत्सर्व्वं माल्यवान्नाम पर्व्वतं पूजयेत्तदा ॥
तत् पूर्व्वं भद्रसंज्ञन्तु अश्वत्थश्चास्ततः परम् ।
मेरुतः पूर्व्वदिग्भागे पूर्व्वपूर्व्वोत्तरत्रयम् ॥
कथितं स विशेषेण दक्षिणस्यान्ततः परम् ।
निषधो हेमकूटश्च हिमवांश्च तथा त्रयम् ॥
एव मुत्तरभागे तु नीलःश्वेतश्च शृङ्गवान् ।

पश्चिमे गन्धमादाख्यं केतुं वै केतुमाल्यकम्
एवं द्वादशसंयुक्तं मेरुपर्व्वतनायकम्॥
सोपवासः शुचिर्भूत्वा विशेषात् पूजयेच्छिवम्।
महास्नानं प्रकर्त्तव्यं महापूजाथवा सुत* ॥
पूजान्ते देवदेवाग्रे रत्नमेरुं प्रकल्पयेत्।
प्रदद्याच्छिवविप्राय शिवमन्त्रमनुस्मरेत्॥
महास्नानं महापूजा च लिङ्गपुराणे।
महास्नानञ्च यः कुर्य्याद्घृतेन विधिनैव तु।
स याति मम सायुज्यं स्थानेष्वेतेषु सुव्रते॥
स्नानं पलशतं ज्ञेयमभ्यङ्गं पञ्चविंशतिः।
पलानान्तु सहस्रे तु महास्नानं प्रकीर्त्तितम्॥
स्नाप्य लिङ्गं मदीयञ्च गव्येनैव घृतेन च।
विशोध्य सर्व्वद्रव्यैस्तु यावद्भिरभिषिञ्चति॥
महास्नाने प्रसक्ते तु स्नानमष्टगुणं स्मृतम्।
जलेन केवलेनैव गन्धतोयेन शक्तितः॥
अनुलेपनञ्च तत्सर्व्वं पञ्चविंशत्पलेन वै।
शमीपत्रं च विधिना बिल्वपत्रं च पङ्कजम्॥
यथान्यानि च पत्राणि बिल्वपत्रं न सन्त्यजेत्।
दशद्रोणैस्तु नैवेद्यमष्टद्रोणैरथापि वा॥
दशद्रोणसमम्पूर्णमाढके तु विधीयते।
वित्तहीनस्य भक्तस्य नात्र कार्य्या विचारणा॥
भेरीमृदङ्गमुरजतिमिलापटहादिभिः।

* पुनरितिपाठान्तर।

वादित्रैर्व्विविधैश्चान्यै रान्दोलैर्विविधैरपि ॥
जागरङ्कारयेत्तत्र प्रार्थयेत्तु तथाक्रमम्।
स्वभृत्यपुत्रदारैश्च तथा सम्बन्धिबान्धवैः ॥
सार्द्धं प्रदक्षिणं कृत्वा प्रार्थयेल्लिङ्गमैश्वरम्।
द्रव्यहीनैः क्रियाहीनैः श्रद्धाहीनैः सुरेश्वर ॥
कृतं वाप्यकृतं वापि क्षन्तुमर्हसि शङ्कर।
इत्युक्ता चैव रुद्रश्च त्वरितं शान्तिमेव च ॥
मं इत्येव महावीजं तथा पञ्चाक्षरस्य वै।

मेरोरनुमन्त्रणमन्त्रास्तु कालोत्तरएवोक्ताः।
नमः काञ्चनदेवाय धराधराय वै नमः।
ब्रह्मविष्णुशिश्शृङ्गाय धरानाभिस्थिताय च ॥
नगद्वादशनाथाय सर्व्वपापापहारिणे।
शिवभक्ताय शुद्धाय त्राणं मे कुरु सर्व्वदा ॥
निष्पापःपितृभिः सार्द्धं शिवं गच्छामि हुं नमः।
त्वं शिवस्तु शिवस्याग्रे शिवोहञ्च शिवाय च ॥
निवेदयामि भक्त्या तु पितॄणां तारणाय चेति।

'तथा वस्त्राश्वसहितो मेरुस्तत्रपुण्यफलं शृणु।
लक्षयोजनमानस्य मेरोर्ये परमाणवः ॥
तावत्कल्पसहस्राणि शिवलोके महीयते।
उद्धरेन्नरकात्सोपि त्रिसप्तकुलसन्ततिम् ॥
तदन्वयगता ये तु डिम्भाडिम्भहता नराः।
महापातकिनश्चान्ये तथा विश्वासघातकाः ॥
गुरुद्रोहकृता ये तु भ्रूणहाः पितृघातकाः।

प्रसवे तु मृता नारी कुमारी शीलदूषिता॥
तां वा रुद्रस्य सामीप्यं स नयेन्मेरुदानकृत्।
मेरुदानञ्च मनसा यः स्मरेत्तु शिवाग्रतः॥
यात्यसौ शिवलोकन्तु देहान्ते धौतकिल्बिषः।
हेममेरुप्रमाणन्तु फलञ्चैव शृणुष्व तत्॥
पलानान्तु सहस्रेण मध्ये मेरुं प्रकल्पयेत्।
शृङ्गत्रयसमायुक्तं ब्रह्मविष्णुहरान्वितम्॥
एकैकं पर्व्वतं तस्य शतैकैकेन कारयेत्।
मेरुणा सह पूर्व्वेण विख्यातास्तु त्रयोदश॥
एवं शिवाग्रतो मेरु र्दातव्यस्तु प्रयत्नतः।
अयनेषु च सर्व्वेषु ग्रहणेषु विशेषतः॥
आचार्य्याय प्रदातव्यः संहितापारगाय च।
पूर्व्वोक्तस्य महामेरोः सनगस्य महात्मनः॥
शिवलोके वसेत्सोपि यावत्तत्परमाणवः।
पितॄन् पितामहांश्चैव तथैव प्रपितामहान्॥
पुत्रान् पौत्रान् प्रपौत्रांश्च तारयेत्किमतः परम्।
भोगान् भुक्त्वा महीं कृत्स्नां भुङ्क्ते च शिवभाविनः॥
दरिद्रो रूप्यमेरुन्तु हेममानेन कारयेत्।
पर्व्वता द्वादश तथा सङ्ख्या रचनान्विताः॥
उत्तरे ह्ययने देयं देयं वा ग्रहणद्वये।
प्रागुक्तन्तु फलन्तस्य भवत्यत्र न संशयः॥
भूमिमेरुप्रमाणन्तु कथ्यमानं शृणुष्व तत्।
विषयं मण्डलञ्चाथ ग्रामं वा पर्व्वतं स्मरेत्॥

शेषास्तदष्टमांशेन नगाःस्यूरविसंख्यया।
भूमिपर्व्वतपुण्यन्तु कोवा वर्णयितुं क्षमः॥
परमाणुरजोयावत् क्षितौशो भवति ध्रुवम्।
तावत्कोटिसहस्राणि शिवलोके महीयते॥
भोगान् भुक्ता ततोराजा जायते योगिनां कुले।
ज्ञानं प्राप्य तदा तस्य पुनर्जन्म न विद्यते॥
हस्तिमेरुं ततोवक्ष्ये संक्षेपात् पार्व्वतीसुत।
न वृद्धं न तथा वालं रत्नपुच्छसुशोभितं॥
शूरं सर्व्वगुणोपेतं घण्टाचामरभूषितं।
नक्षत्रमालासंयुक्तं शस्त्रध्वजविभूषितं॥
दिव्यवस्त्रसमायुक्तं सुवर्णरचनायुतं।
सूर्य्यस्य ग्रहणे देयं गुरवे तं शिवाग्रतः॥
तेन दत्तेन दत्तं तु लक्षयोजनपर्व्वतं।
पुरुषत्रयसमायुक्तं पर्व्वतद्वादशान्वितं॥
मुच्यते सर्वपापेभ्यः शिवसायुज्यतां व्रजेत्॥
पितरस्तस्य मोदन्ते रुद्रलोके समन्ततः।
एतत्तव समाख्यातं हस्तिदानं समासतः॥
अथाश्वमेरुर्व्वा देयो योदत्तो रविणा पुरा।
श्वेतैर्व्विनीतैः सुवर्णैः प्रत्यग्रैः पञ्चसंख्यया॥
मध्ये मेरुः कल्पितव्योरविसंख्यास्तु पर्व्वताः।
सवस्त्रहेमदारैश्च सप्त वा ध्वजभूषिताः॥
वैशाख्यां वाथ कार्त्तिक्यां दातव्यस्तु शिवाग्रतः।
विप्राय शिवभक्ताय संहितापारगाय च॥

तस्मै देयो यथोक्तस्तु हयमेरुर्व्विधानतः।
संपूज्य परया भक्त्या हेमकङ्कण-कुण्डलैः॥
रसनामुकुटेनैव अङ्गुलीयद्वयेन च।
सर्व्वेषां चैव दाने तु भूषणैर्भूषयेत्तदा॥
अकृत्रिमैर्भूषणैस्तु राजा मेरुं विभूषयेत्।
अश्वमेरुप्रदानेन रुद्रलोके महीयते॥
यावन्त्यश्वेषु रोमाणि तावद्वर्षायुतानि च।
महाकल्पसहस्राणि रुद्रलोके महीयते॥
अश्वालाभे दरिद्रस्तु गोमेरुम्वा प्रकल्पयेत्।
अश्वसंख्याप्रमाणेन फलं चैतत् समं भवेत्॥
अथ वा वस्त्रमेरुश्च दातव्यस्तु शिवाग्रतः।
भारमात्रेण पट्टैस्तु नानावर्णैःसुपर्व्वतः॥
मध्ये मेरुः कल्पनीयो वस्त्रैः शेषांस्तु कल्पयेत्।
मेरवस्तस्य मानेन नानावर्णैः सुशोभितैः॥
प्रत्येकं पर्व्वताः कल्प्या हेमशृङ्गाः सुवर्णकाः।
शिवभक्ताय विप्राय दातव्यास्तु शिवाग्रतः॥
दिव्यैश्वर्य्यपदं याति सहस्रक्रतुसम्भवं।
दिव्यं वर्षशतं सम्यक् कुर्य्याद्भोगं यथेप्सया॥
चक्रवर्त्तित्वमभ्येति ज्ञानवान् जायते तदा।
शिवालयं ततो याति न भूयो जन्म चाप्नुयात्॥
अथ वा घृतमेरुस्तु दातव्यः कथ्यते मया।
मेरुः पलानां मध्येतु सहस्रैः पञ्चभि र्हितः॥
शतैः पञ्चभिरेकैकं पर्वतं तत्र कल्पयेत।

त्रिशृङ्गं त्रिपलं मेरोः काञ्चनं देवतार्चनं ॥
एकैकपलिकं शेषपर्व्वते वस्त्रभूषिते ।
कृत्वा पूजां विशेषेण शिवस्याग्रे प्रकल्पयेत् ॥
शिवभक्ताय विप्राय दातव्यः शिवमिच्छता ।
कुलमुद्धरते सोऽपि पैतृकं मातृकं तथा ॥
दिव्यं वर्षशतं सार्द्धं* रुद्रलोके महीयते ।
भारते पृथिवीखण्डे पतिर्भवति नान्यथा ॥
एवं वै खण्डमेरुन्तु सितखण्डेन कल्पयेत् ।
रुद्रलोकपदं याति पितृभिः सह मोदते ॥
अथ वा धान्यमेरुन्तु शिवस्याग्रे प्रकल्पयेत् ।
पञ्चखारीमितं मध्ये मेरुन्धान्येन कल्पयेत् ॥
एकैकं खारिमात्रेण पर्व्वतं शेषमादिशेत् ।
पूर्व्ववद्धेमशृङ्गन्तु सवस्त्रं परिकल्पयेत् ॥
शिवपूजावसाने तु शिवविप्राय दापयेत् ।
कल्पकोटिसहस्राणि शिवलोके महीयते ॥
पितरस्तस्य मोदन्ते ब्रह्मलोके तथा चिरं ।
एतदष्टांशमानेन तिलमेरुं प्रकल्पयेत् ॥
शृङ्गाणि पूर्व्ववत्तस्य तथाचान्यनगेषु च ।
तिलमेरुः प्रदातव्यः शिवस्याग्रे गुरोः सदा ॥
प्रयाति शिवसायुज्यं बन्धुभिः सहितो नरः ।
दशकोटिसहस्राणि भुक्त्वा भोगान् यथेच्छया ॥
समस्तमेदिनीं भुक्त्वा शिवे पश्चात् प्रलीयते ।

---

* सायमिति क्वचित् पाठः ।

इति द्वादशसंख्याताः पर्वताः कथितास्तव ॥
अथ मन्त्रं तथाकालं ज्ञात्वा मेरुं प्रदापयेत् ।
अयनेषु च सर्व्वेषु ग्रहणेषु विशेषतः ॥
मेरुप्रदानं कर्त्तव्यमुपोष्य सुचिरं सदा ।

इति शैवद्वादशमेरुदानानि ।

हंस उवाच ।

भूय एव महाबाहो शृणु दानं महाफलं ।
यद्दत्त्वा पुरुषोराजन् नेह संजायते पुनः ॥
मेरुर्हैममयश्चैव त्रिशृङ्गोराजतोऽपि वा ।
पलत्रयेण सौवर्णो विंशत्या राजतैः पलैः ॥
ताम्रैः पञ्चाशता प्रोक्ता पलानां कांस्यकस्तथा ।
लोहस्य भारमात्रस्तु सीसकस्य तथा स्मृतः ॥
लवणस्याप्येव मेव व्रीहीणामेव मेवच ।
भारद्वयेन खातस्तु गौडःस्यात्पञ्चभारकः ॥
कास्तूरिकः पञ्चपलः कार्पूरः पलविंशतेः ।
कौङ्कुमः स्याच्छतपलः कार्पासः षड्विंशभारकः ॥
एवं द्रव्यविशेषैस्तु मेरुः कार्य्योविजानता ।
यथा गमं तथा कार्य्यं नात्र कार्य्या विचारणा ॥
*विचारे क्रियमाणे च हेतुकत्वं प्रसज्यते ।
हेतुप्रतिष्ठो विज्ञेयः पुरुषोरागदूषितः ॥
रागादिदोषदुष्टस्तु पुरुषो नात्र संशयः ।
तस्मान्मेरोः प्रमाणन्तु भाषितं ब्रह्मणा स्वयं ॥

---

* खादस्र इति वा पाठः ।

आस्तिकाय विनीताय प्रोच्यते कृपया विभो।
नास्तिकाय न वक्तव्यं वाक्यं धर्मं विजानता॥
कृत्वा मेरुं त्रिशृङ्गन्तु सौवर्णं राजतादिकं।
अर्चयेत्* पीतकुसुमैर्जागरं कल्पयेत्ततः॥
ब्राह्मणं पात्रभूतन्तु काले तु ग्रहणादिके।
आहूय प्रक्षाल्य पादौ आसने तूपवेशयेत्॥
मेरुं पर्वतराजन्तु गृहाण त्वं द्विजोत्तम।
ममानुकम्पया ब्रह्मन् वराहः प्रीयतामिति॥
कोदादिति तु मन्त्रेण ग्रहःकार्य्यो विजानता।
मेरुं समर्प्य विप्राय द्रव्येण स्वेच्छया कृतं॥
तावद्वर्षसहस्राणि कोटिं वापि महीयते।
वसन्ति स्वर्गलोकेषु यावदिन्द्राश्चतुर्द्दश॥
इति विष्णुधर्म्मोक्तो मेरुदानविधिः।

अथ पञ्चपर्व्वतदानविधिः।

तिलपर्वतदानञ्च तथा लवणपर्व्वतः।
कार्पासगुड़योश्चैव तथा सर्षपपर्व्वतः॥
धान्यपर्वतदानस्य विधिरत्रापि कीर्त्तितः।
फलं पुण्यं प्रमाणं च तत् प्रवक्ष्याम्यशेषतः॥
आषाढे कार्त्तिके चैव माघ-वैशाखयोरपि।
पूर्णमास्यां तु दातव्यं दानमेतद्युधिष्ठिर॥
भूप्रदेशे तु लिप्ते तु पुष्पकीर्णे सुशोभिते।
तिलानां बहुवर्णानां कुम्भं कुम्भार्द्धमेववा॥

* दीपकुसुमैरिति पुस्तकान्तरं।

विंशतिद्रोणमथवा षोडशद्रोणमेव वा।
तिलद्रोणाष्टकैर्व्वापि चतुर्भिरथ वा पुनः॥
त्रिभिर्द्रोणैरलाभे तु कुर्व्वीत तिलपर्व्वतम्।

कुम्भोऽत्र विंशतिद्रोणपरिमाणः तच्च द्रोणैः षोडशभिः खारी विंशत्या कुम्भ उच्यते इत्यादिना परिभाषायामुपदर्शितं, कुम्भो द्रोणद्वयमितिश्लाघ्यमाणे विंशतिद्रोणादिकम् प्रथमकल्पा*दनुकल्पमनुकल्प्य न समञ्जसं स्यात् इतरत्र तु सार्द्धकुम्भेन प्रथमकल्पः विंशतिद्रोणादिरनुकल्प इति युक्तं स्यात्।

सुवर्णैरजतैस्ताम्रैः कांस्यैः शौक्तैश्च मौक्तिकैः।
इक्षुदण्डसमाकीर्णान्वनखण्डांश्च कारयेत्॥
गुडेन विविधान् कुर्य्यात् पाषाणशिखरांस्तथा।
ताम्बूलफलपुष्पाद्यैरलङ्काराद्यनेकधाः॥
कुर्य्यात् मृगपशुपक्षिणस्ताम्रसौवर्णराजतान्।
द्वादश पूर्णकुम्भांश्च फलशाखादिशोभितान्॥
स्थापयित्वा तु सर्व्वत्र पूजां कृत्वा विधानतः।
कृत्वा प्रदक्षिणञ्चैव जानुभ्यां धरणीं व्रजेत्॥
लवणस्य सर्षपाणां तत्प्रमाणं तथैव च।
कार्पासपर्व्वतञ्चापि तुल्यसंख्यं तथैव च॥
पुण्यकालेषु लभते नात्र कार्य्या विचारणा।
पर्व्वतस्योत्तरे पार्श्वे ब्रह्म-विष्णु-महेश्वरान्॥
स्थापयेत् लोकपालांश्च दिशासु विदिशासु च।
अर्च्चयेदर्घपाद्यैश्च गन्धपुष्पादिभिः क्रमात्॥

---

* दनकल्प मनुकल्प्य इति पुस्तकान्तरं।

तोरणैश्च पताकाभिः शोभयित्वा चतुर्द्दिशम्।
अग्निकार्य्यञ्च कुर्व्वीत तिलाद्यैः पञ्चवारुणैः॥
एवं यः कुरुते भक्त्या शैलदानमनुत्तमम्।
क्रीडाशैले महारम्ये क्रीडित्वा कालमीप्सितम्॥
धर्मेण पूज्यमानोऽथ शक्रलोकं स गच्छति।
शक्रलोकं नयेदन्ते कुलकोटिशतत्रयम्॥
पश्चान्महोदये रम्ये सोमराजपुरोत्तमे।
रमित्वा वर्षकोटिन्तु द्विगुणं परिसंख्यया॥
भूयो जम्बुवत्रय राज्यं भुङ्क्ते निहतकण्टकम्।

इति विष्णुधर्मोक्तः पञ्चपर्व्वतदानविधिः।

अथ शिखरदानविधिः।

राम उवाच।

शिखराणां ममाचक्ष्व दानन्त्रिपुरनाशनम्।
यानि दत्त्वा तु दौर्भाग्यं दौर्गत्यं न प्रजायते॥

शङ्कर उवाच।

शृणु राम प्रवक्ष्यामि शिखराणां यथाक्रमम्।
दानं देयं यथा येन तत् शृणुष्व सनातनम्॥
माघशुक्लतृतीयायां मार्गशीर्षस्य वा पुनः।
तृतीया वाथ वैशाखे शुक्ला या रोहिणीयुता॥
प्रोष्ठपद्यां तृतीयायां विशेषेण तु भार्गव।
गुडेक्षु वस्त्र-लवण-धान्यका-जाजि-शर्करा:॥
खर्जूरतण्डुलद्राक्षाक्षोद्रैर्मलयजेन च।

फलैर्मनोहरै रम्यैः शिखराणि प्रदापयेत् ॥
एषामन्यतमं दद्याद्यथाशक्ति विधानतः ।
आत्मप्रमाणं कुर्वीत प्रादेशाभ्यधिकं शुभं ॥
भुवि गोमयलिप्तायामिक्षुपत्राणि संस्तरेत् ।
ततः कुर्वीत शिखरं गौरीस्थानमनुत्तमम् ॥
द्विहस्तं मूलं कर्त्तव्यं हस्तमात्रं शिरस्तथा ।
भित्तिरिक्षुदलैः कार्य्या वेष्टयेद्रक्तवाससा ॥
दानद्रव्येण तन्मध्यं पूरयेद्भृगुनन्दन ।
इक्षुपत्रकटे गौरीं तस्योपरि निवेदयेत् ॥
चतुर्भुजां हेममयीं पूजयेत् कुङ्कुमेन तु ।

गौरीरूपमुक्तं ब्रह्माण्डदाने ।

वेष्टयेत् सूक्ष्मवस्त्रेण देवीं-शिखरमेव च ।
अष्टाङ्गं पूजयेद्गौरीं मन्त्रैरेतैस्तु भक्तितः ॥
नमो भवान्यै पादौ तु कामिन्यै जानुनी ततः ।
वामदेव्यै तथाचोरू नाभिञ्चैव जगत्प्रिये ॥
आनन्दायै तु हृदयं नन्दायै पूजयेत् स्तनौ ।
सुभद्रायै मुखं पूज्य ललितायै नमः शिरः ॥
एवं पूज्य महादेवीं शिखरानभिमन्त्रयेत् ।
यस्मान्निवासः पार्व्वत्याः शिखर त्वं सुरैर्हृतः ॥
तस्मान्मामपाहि भगवंस्त्वं गौरीशिखरः सदा ।
एवमामन्त्र शिखरं तृतीयायां यतव्रतः ॥
ततः स्नात्वा प्रभाते तु दद्यान्मन्त्रेण भक्तितः ।
यस्मात्त्वं सर्व्वभूतानामुपरिष्टादवस्थितः ॥

तस्माच्छिवः प्रीयतां मे तव दानात्सदानघ ॥
अर्द्धभागं चतुर्थं वा पञ्चमं वा ततो गुरोः ।
दत्त्वा शेषन्तु बन्धूनां शिष्टानां स्वजनस्य च ॥
अनुजीविस्वभृत्यानां दुर्गतानां च कामतः ।
एवं दत्त्वा तु शिखरं गौर्य्या भुञ्जीत वाग्यतः ॥
स मुक्तकेशः सम्प्राश्य क्षीरं घृतमथापि वा ।
विधिनानेन योदद्यात् गौर्य्याः शिखरमुत्तमम् ॥
स वसेद्भवने देव्याः कल्पकोटिशतत्रयम् ।
पुण्यक्षयादिहागत्य जायते पृथिवीपतिः ॥
अनेन विधिना देयं विधिहीनं न कारयेत् ।
विधिहीनं कृतं सर्व्वं न दातुः फलदम्भवेत् ॥
इति विष्णुधर्मोत्तरे शिखरदानविधिः ।

इति श्रीमहाराजाधिराजश्रीमहादेवस्य समस्तकरणाधीश्वर सकलविद्याविशारदश्रीहेमाद्रिविरचिते चतुर्व्वर्गचिन्तामणौ दानखण्डे पर्व्वतदानप्रकरणम् ।

## दानखण्डम् सप्तमोऽध्यायः।

अथातिदानविधानमुच्यते।

अथातिदानानि सतां हिताय
हेमाद्रिसूरिः प्रकटी करोति।
दानेन येषां सकृदप्यनल्प
कल्यान्तसाची वरभोगयोगः।

कानि पुनस्तानीत्यपेक्षायां भविष्यत्पुराणे।

त्रीण्याहुरतिदानानि गावः* पृथ्वी सरस्वती।
नरकादुद्धरन्त्येव जपवापनदोहनैरिति॥

अत्र यद्यपि धेनुशब्देन स्वरूपतो गौरेवाभिधीयते तथापि धेनुशब्दसाधारण्यादिऽप्रकरणे गुडधेन्वादीनामपि सन्निवेशो युक्तः तासु च क्रमेण निरूप्यमाणासु दशमी स्यात् स्वरूपत इति स्वरूपधेनोरन्ते स्थितत्वात् गुडधेन्वादय एव प्रथमतो निरूप्यन्ते।

तदुक्तं मत्स्यपुराणे।

यास्तु पापविनाशिन्यः पठ्यन्ते दशधेनवः।
तासां स्वरूपं वक्ष्यामि नामानि च नराधिप॥

---

* धेनुरिति पुस्तकान्तरे।

प्रथमा गुडधेनुः स्यात् घृतधेनुस्तथापरा।
तिलधेनुस्तृतीया तु चतुर्थी जलसंज्ञिता॥
क्षीरधेनुश्च विख्याता मधुधेनुस्तथापरा।
सप्तमी शर्करा धेनु* र्दधिधेनुरथाष्टमी॥
रसधेनु* र्नवमी स्याद्दशमी स्यात् स्वरूपतः†।
एतावत्तु विधानञ्च त्वमाचक्ष्व जगत्पते॥
किं रूपं केन मन्त्रेण दातव्या तदिहोच्यताम्।

मत्स्य उवाच।

गुडधेनुविधानस्य यद्रूपमिह यत्फलम्।
तदिदानीं प्रवक्ष्यामि सर्व्वपापविनाशनम्॥
कृष्णाजीनं चतुर्हस्तं प्राग्ग्रीवं विन्यसेद्भुवि।
गोमयेनोपलिप्तायां दर्भानास्तीर्य्य सर्व्वतः॥
लघ्वेणकाजिनन्तद्वद्वत्सस्य परिकल्पयेत्।
प्राङ्मुखीं प्रापयेद्धेनुमुदक्पादां सवत्सकाम्॥
एणकाजिनं, कृष्णाजिनं, प्राङ्मुखीं प्राक्शिरसमित्यर्थः।
तदुत्तरेण वत्सोऽपि तथैव परिकल्पनीयः।
उत्तमा गुडधेनुः स्यात्सदा‡ भारमनुत्तमम्।
वत्सभारेण कुर्व्वीत भाराभ्यां मध्यमः स्मृतः॥
अर्द्धभारेण वत्सः स्यात् गृहविन्तानुसारतः।

---

* नवमस्याष्टमी तथेति पुस्तकान्तरे।

† कार्पासधेनुरिति पुस्तकान्तरे।

‡ भारचतुष्टयमिति पाठः पुस्तकान्तरे।

भारा: 'परिभाषायां व्याख्यातः' गृहवित्तानुसारत इति इयमुत्तममध्यमादिकल्पना निजवित्तानुसारतः कर्त्तव्येत्यर्थः ।

धेनुवत्सौ घृतास्यौ तौ सितसूक्ष्माम्बरावृतौ ।
शुक्तिकर्णाविक्षुपादौ शुचिमुक्ताफलेक्षणौ ॥
सितसूत्रसिरालौ तौ सितकम्बलकम्बलौ ।
ताम्रकट्टकपृष्ठौ तौ सितचामररोमकौ ॥

गट्टकं, ककुत्प्रदेशः ।

विद्रुमभ्रूयुगोपेतौ नवनीतस्तनान्वितौ ।
क्षौमपुच्छौ कांस्यदोहाविन्द्रनीलकतारकौ ॥
सुवर्णशृङ्गाभरणौ राजतखुरसंयुतौ ।
नानाफलमयैर्दन्तै घ्राणगन्धकरण्डकौ ॥

'अत्र च सारतः परिमाणतश्च फलविशेष इति यथाशक्ति सुवर्णशृङ्गादित्वमवधेयम्' ।
इत्येवं रचयित्वा तु धूपदीपैरथार्चयेत् ।

अथामन्त्रणमन्त्रः ।

ओं या लक्ष्मीः सर्वभूतानां या च देवेष्ववस्थिता ।
धेनुरूपेण सा देवी मम* पापं व्यपोहतु ॥
देहस्था या च रुद्राणी शङ्करस्य सदा प्रिया ।
धेनुरूपेण सा देवी मम पापं व्यपोहतु ॥
विष्णोर्वक्षसि या लक्ष्मीः स्वाहा या च विभावसोः ।
चन्द्रार्कशक्रशक्तिर्या धेनुरूपास्तु सा श्रिये ॥

---

* शान्तिं प्रयच्छत्विति क्वचित्पाठः ।

चतुर्मुखस्य या लक्ष्मी र्या लक्ष्मीर्धनदस्य च।
लक्ष्मीर्या लोकपालानां सा धेनुर्वरदास्तु मे॥
स्वधा त्वं पितृमुख्यानां स्वाहा यज्ञभुजान्तथा।
सर्व्वपापहरा धेनुः तस्माच्छान्तिं प्रयच्छ मे॥
एवमामन्त्र्य तां धेनुं ब्राह्मणाय निवेदयेत्।

अत्रैव दानवाक्यप्रयोगः।

ओं अद्य अमुकस्मिन् काले अमुकसगोत्राय अमुकशर्म्मणे ब्राह्मणाय इमां गुडधेनुं यथोक्तसर्व्वोपकरणवतीं यथोक्तवत्सस-हितां विष्णुदैवतां अमुकसगोत्रोऽहं अमुकशर्म्मा अमुककामस्तु-भ्यमहं सम्प्रददे मम अमुकसगोत्राय अमुकशर्म्मणे ब्राह्मणाय एतद्गुडधेनुदानप्रतिष्ठार्थं सुवर्णं दक्षिणा इदं तुभ्यमहं सम्प्रददे न ममेति दक्षिणा तु श्रेयोनिष्कशतं पार्थेत्यादिना परिभाषाया-मुक्ता ब्राह्मणस्तु पुच्छदेशे प्रतिगृह्य स्वस्ति कुर्य्यात्।

विधानमेतद्धेनूनां सर्व्वासामिह पठ्यते।
'सर्व्वासाम्प्रत्यक्षधेनुव्यतिरिक्तानामित्यवगन्तव्यं।
तथा एतदेव विधानंस्यात्त एवोपस्कराः स्मृताः।
मन्त्रावाहनसंयुक्ताः सदा पर्व्वणि पर्व्वणि॥
यथाश्रद्धं प्रदातव्या भुक्तिमुक्ति-फलप्रदाः।
अशेषयज्ञफलदाः सर्व्वपापहराः शुभाः।
अयने विषुवे पुण्ये व्यतीपातेऽथवा पुनः॥
गुडधेन्वादयो देया उपरागादिपर्व्वसु॥
'अत्र घृतादिधेनुद्रव्यपरिमाणमपि गुडधेनूक्तमेव।
विधानमेतद्धेनूनां सर्व्वासामपि पठ्यते

इति सामान्येनातिदेशात्।

कुम्भाः स्यु र्द्रवधेनूनामितरासान्तु राशय इति तु भारचतुष्टयादिपरिमितस्य द्रवद्रव्यस्य कुम्भाधारतयावस्थापनप्रकारकथनं।

यत्तु पद्मपुराणादावेकेनैव घटेन घृतादिधेनुकथनं द्रोणमात्रेण च तिलधेनुकथनं तदेतद्धेनुप्रकारात् प्रकारान्तराभिप्रायेणेति कल्पतरुः। दानविवेकेनतु पलसहस्रपरिमाणः कुम्भ इति निर्णीतं, केचित्तु द्वादशपलाधिकानि पञ्चपलशतानि कुम्भमाहुः। तच्च पलद्वयन्तु प्रसृतिमित्यादिना परिभाषायां दर्शितं।

ततश्च यथाधिकारं व्यवस्थेति, वह्निपुराणे तु 'प्रथमा गुडधेनुः स्यादित्यादिकमभिधाय सप्तमी लवणधेनुस्तु दधिधेनुरथाष्टमी।

नवनीतेन तैलेन गन्धैः प्रोक्ता तथापरा।

रत्नैश्चान्ये महर्षय इति क्वचित् पाठः।

कुम्भाः स्यूरत्नधेनूनां द्रोणेनैव हि राशयः।
सर्व्वाः समफलाः प्रोक्ता मध्यमोत्तमकन्यसाः॥
स्वशक्तितो नृपश्रेष्ठ दरिद्रस्य चतुर्गुणाम्।
कन्यसा सेश्वराणान्तु दरिद्राणां सदोत्तमा॥
एतदेव विधानं स्यात् सर्व्वशश्च यशस्करः।
गुडधेन्वादयोदेया उपरागादिपर्व्वसु॥
कार्त्तिक्यान्तु तथा माघ्यां युगादिषु च पर्व्वसु।
समुपोष्य नरोदद्यात् सप्तम्यान्तु दिने रवेः॥
दिनत्रयं तदाहारी याति विष्णोः परं पदम्।
इह लोकेऽपि सौभाग्यमायुरारोग्यमेव च॥
वैष्णवं लोकमाप्नोति मरणे स्मरणं हरेः।

दशार्व्वुदसहस्राणि दश चाष्टौ च धर्म्मवित्।
न शोकदुःखमाप्नोति दौर्गत्यं जायते न च॥

इति गुडधेन्वादिदानविधिः।

अथ तिलधेनुदानम्।

विष्णुधर्म्मात्।

वशिष्ठ उवाच।

तिलधेनुं प्रवक्ष्यामि केशवप्रीणनाय च।
दत्त्वा भवति यस्याश्च नरेन्द्र विधिरुत्तमः॥
यान्दत्त्वा ब्रह्महा गोघ्नः पितृघ्नो गुरुतल्पगः।
अगारदाही गरदः सर्व्वपापयुतोऽपि वा॥
महापातकयुक्तश्च संयुक्तश्चोपपातकैः।
मुच्यते ह्यखिलैःपापैर्विष्णुलोकञ्च गच्छति॥
अनुलिप्ते महीपृष्ठे वस्त्राजिनकुशावृते।
धेनुं तिलमयीं कृत्वा सर्व्वरत्नैरलङ्कृताम्॥
धेनुं द्रोणेन कुर्व्वीत आढकेन तु वत्सकम्।
सुवर्णशृङ्गीं रूप्यखुरीं गन्धघ्राणवतीं तथा॥
कुर्य्याच्च शर्कराजिह्वां गुडास्यामविकम्बलाम्।
इक्षुपादां ताम्रपृष्ठां शुचिमुक्ताफलेक्षणाम्॥
प्रशस्तपत्रश्रवणां फलदन्तवतीं शुभाम्।
स्रग्दामपुच्छां कुर्व्वीत नवनीतस्तनान्विताम्॥
सितसूत्रशिरालाञ्च सितसर्षपरोमिकाम्।
फलैर्मनोहरैर्भक्ष्यैर्मणिमुक्ताफलान्विताम्॥

सितवस्त्रयुगच्छन्नां घण्टाभरणभूषिताम्।
ईदृक्संस्थानसम्पन्नां कृत्वा श्रद्धासमन्वितः॥
कांस्योपदोहनां दत्त्वा केशवः प्रीयतामिति।
या लक्ष्मीः सर्व्वदेवानां या च देवेष्ववस्थिता॥
धेनुरूपेण सा देवी मम पापं व्यपोहतु।
देहस्था या च रुद्राणी शङ्करस्य सदा प्रिया॥
धेनुरूपेण सा देवी मम पापं व्यपोहतु।
विष्णोर्व्वक्षसि या लक्ष्मीः स्वाहा या च विभावसोः॥
चन्द्रार्कशक्रशक्तिर्या धेनुरूपास्तु सा श्रिये।
चतुर्म्मुखस्य या लक्ष्मीर्या लक्ष्मीर्धनदस्य च॥
या लक्ष्मीर्लोकपालानां सा धेनुर्व्वरदास्तु मे।
स्वधा त्वं पितृमुख्यानां स्वाहा यज्ञभुजान्तथा॥
सर्व्वपापहरा धेनुरस्माच्छान्तिं प्रयच्छ मे।

वह्निपुराणेत्वयं मन्त्रः।

तिलाश्च पितृदेवत्या निर्म्मितायेह गोसवे।
ब्रह्मणा तन्मयी धेनु र्दत्ता प्रीणातु केशवमिति॥
ततः प्रदक्षिणं कृत्वा पूजयित्वा प्रणम्य च।
सदक्षिणा मया तुभ्यं दत्तेत्युक्त्वा विसर्जयेत्॥
अनेन विधिना दत्त्वा तिलधेनुं नराधिपः।
सर्व्वपापविनिर्म्मुक्तः परं ब्रह्माधिगच्छति॥
यश्च गृह्णाति विधिवद्दीयमानां प्रमोदयेत्।
दीयमानां प्रपश्यन्ति येच संहृष्टमानसाः॥

तेऽप्यशेषाघनिर्मुक्ताः प्रयान्ति परमाङ्गतिं।
प्रशान्ताय सुशीलाय वेदव्रतधराय च॥
धेनुं तिलमयीं दत्त्वा न शोचति कृताकृते।
त्रिरात्रं यस्तिलाहारस्तिलधेनुप्रदो भवेत्॥
एकाहमथ तानत्ति तद्गतेनान्तरात्मना।
दानाद्विशुद्धपापस्य तस्य पुण्यकृतोनृप:॥
चान्द्रायणादप्यधिकं कथितं तिलभक्षणम्॥

वाराहपुराणे।

होता उवाच।

तिलधेनुं जलधेनुं रसधेनुञ्च पार्थिव।
देहि शीघ्रं येन भवान्क्षुत्तृषावर्जितो दिवि॥
रमते यावदादित्यस्तप्यते दिवि चन्द्रमाः।
एवमुक्तस्ततोराजा विधानं पृष्टवानिदम्॥
यथा भवेत्तिलधेनोस्तच्छृणुष्व नराधिप।
चतुर्भिः सेतिकाभिस्तु प्रस्थ एकः प्रकीर्त्तितः॥
ते षोडश भवेद्धेनुश्चतुर्भिर्वत्सको भवेत्।
इक्षुदण्डमयाः पादा दन्ताः पुष्पमयाः शुभाः॥
नासा गन्धमयी तस्या जिह्वा गुडमयी तथा।
पुच्छे स्रक्कल्पनीया स्यात् घण्टाभरणभूषिता॥
ईदृशीं कल्पयित्वा तु स्वर्णशृङ्गीं प्रकल्पयेत्।
कांस्यदोहां रूप्यखुरां पूर्व्वधेनुविधानतः॥
तिलधेनुं ततो दत्त्वा द्वादश्यां नियतः शुचिः।

आत्मानन्तारयेद्दुर्गान्नरकात्कामभाग्भवेत्॥

'सेतिका कुडवः, सच द्वादशप्रसृतिपरिमितः।

महाभारते।

सुदक्षिणां काञ्चनचारुशृङ्गीं
कांस्योपदोहान्द्रविणोत्तरीयां।
धेनुं तिलानान्ददतो द्विजाय,
लोका वसूनां सुलभा भवन्ति॥

तथा। धेन्वाः प्रमाणेन समप्रमाणं,
धेनुं तिलानामपिच प्रदाय।

तथा। पानीयवापीश्च यमस्य लोके,
न यातनां काचिदुपैति मर्त्यः॥

तथा। गोमत्या विद्यया धेनुं तिलानामभिमन्त्र्य यः।
रसरत्नमयीं दद्यान्नापि शोचेत् कृताकृते॥

गोमतीविद्यापि तत्रैव।

तद्यथा। गावोमामुपतिष्ठन्तु हेमशृङ्ग्यः पयोमुचः।
सुरभ्यः सौरभेय्यश्च सरितः सागरं यथा॥
गावः पश्याम्यहन्नित्यं गावः पश्यन्तु मां सदा।
गावोस्माकं वयन्तासां यतोगावस्ततोवयम्॥
एवं रात्रौ दिवा वापि समेषु विषमेषु च।
महाभयेषु च नरःकीर्त्तयन्मुच्यते भयादिति॥

आदित्यपुराणे।

दरिद्रः खलु योदद्यात्तिलधेनुं विधानतः।
गोमयेनोपलिप्याथ तत्र धेनुं समालिखेत्॥

तिलैराकीर्य्य सर्व्वाङ्गं तिलधेनुं प्रकल्पयं च।
खुरेषु चैव शृङ्गेषु देयं कनकमेवच।
सचेलां दक्षिणां चैव ब्राह्मणाय निवेदयेत्॥
तिलधेनुं प्रयच्छेत्तु स्वर्गलोकञ्च गच्छति।
पापैः सर्वैः प्रमुच्येत कर्म्मणा मनसा कृतैः॥
तिलसंख्या च यावद्वै तावान् कोटिशतानि च।
मोदते तत्र वर्षाणां वसुलोके न संशयः॥
अथ मानुष्यमायाति कदाचित् कालपर्य्ययात्।
धनधान्यसमृद्धे वै जायते महतां कुले॥

इति तिलधेनुदानविधिः।

पुलस्त्यउवाच। विधानं तिलधेनोर्यत्तच्छृणुष्व नराधिप।
षोडशाटकमयीधेनुश्चतुर्भिर्वत्सको भवेत्॥
इक्षुदण्डमयाः पादाः दन्ताः पुष्पमयाः शुभाः।
नासा गन्धमयी तस्या जिह्वा गुडमयी तथा॥
पुच्छे स्रक् कल्पनीया स्यात् घण्टाभरणभूषिता।
ईदृशीः कल्पयित्वा तु स्वर्णशृङ्गीं प्रकल्पयेत्॥
रौप्यखुरां कांस्यदोहां पूर्व्वधेनुविधानतः।
एवंविधानां तां कृत्वा ब्राह्मणाय तु दापयेत्॥
कृष्णाजिनस्थितां धेनुं वासोभिर्भूषितां शुभैः।
सूत्रेण सूत्रितां कृत्वा पञ्चरत्नसमन्विताम्॥
सर्वौषधिसमायुक्तां मन्त्रपूतान्तु दापयेत्।
अन्नं मे जायतां सद्यः पानं सर्व्वरसांस्तथा॥
कामान् सम्पादयास्माकं तिलधेनोर्द्विजार्पिता।

प्रार्थयामि देवि त्वां भक्त्या कुटुम्बार्थं विशेषतः॥
भरस्व कामैर्मां सर्व्वैस्तिलधेनो नमोस्तु ते।
एवं विधानतो दत्त्वा तिलधेनुर्नृपोत्तमः॥
सर्वकामसमावाप्तिं कुरुते नात्र संशयः।
जलधेनुस्तथैवेह कुम्भे धेनुः प्रकल्पिता॥
दत्ता तु विधिना कामान् सद्यः सर्व्वान् प्रयच्छति।
धेनुश्च तत्त्वतोदत्ता पौर्णमास्यां नराधिप॥
पितॄंस्तारयते दुर्गान्नरकात् कामदा भवेत्।
घृतधेनुस्तथा दत्ता विधानेन विचक्षणैः॥
सर्वकामं समाप्नोति कुरुते कामदा भवेत्।
रसधेनुं तथा दत्त्वा कार्त्तिके मासि पार्थिव॥
सर्व्वान् कामानवाप्नोति नित्यं सुगतिभाग्भवेत्॥

इति पद्मपुराणोक्तः पञ्चधेनुदानविधिः।

अगस्त्यउवाच। तिलधेनुं प्रवक्ष्यामि दुर्गा येन प्रसीदति।
अपि दुष्कृतकर्म्मापि यान्दत्त्वा निर्म्मलो भवेत्॥
प्रत्यक्षा येन देवी स्यात् राज्यपुत्रसुखावहा।
भवति न चिरेणैव तां शृणुष्व नृपोत्तम॥
देवदेवीमनुप्राप्य सुस्नातो विजितेन्द्रियः।
पूजयेत् पुष्पगन्धाद्यै र्दीपधूपविचित्रकैः।
हुत्वा हुताशने देवीं तथा द्रोणमयीं कुरु॥

'हुत्वा हुताशने देवी इति पूर्व्वोक्तहोमप्रकारेण देवीं प्रीणयित्वा'।

आढकेन भवेद्वत्स सर्व्वरत्नविभूषिता।

हेमशृङ्गीं रूप्यखुराङ्कंस्यघ्राणां सुशोभनां।
मुखं गुड़मयं कार्य्यं जिह्वामन्नमयीं तथा॥
कम्बला सूक्ष्मसूत्रन्तु पादा इक्षुमयास्तथा।
ताम्रपृष्ठं, भवेत्तस्या ईक्षणे मणिमौक्तिकैः॥
चारुपत्रमयौ कर्णौ दन्ताः फलमयास्तथा।
नवनीतस्तनौ कुर्यात् पुष्पमालामयीं कुरु॥
पुच्छन्तु मणिमुक्ताभिः फलैस्ताश्च समर्च्चयेत्।
सुभगस्रूयुगच्छन्नां चारुवस्त्रविभूषितां॥
इष्टक्संस्थानसम्पन्नां कृत्वा श्रद्धासमन्वितः।
कांस्योपदोहनां दद्याद्देवी मे प्रीयतामिति॥
मन्त्राभिमंत्रितां कृत्वा तद्भक्ताय निवेदयेत्।
यावन्ति तिलवस्त्राणां धातुमूलफलस्य च॥
विद्यन्ते च रजोविन्दून् तावत् स्वर्गे वसेन्नरः।
पितृन् विगतपापांश्च कृत्वाधस्ताद्गतानपि॥
प्राप्य देव्याःशुभान् लोकान् स्थापयेदविचारणात्।
तस्मिंस्तु रमते वत्स यावदाचन्द्रतारकौ॥
तथा कालादिहायातो जायते पृथिवीपतिः।
इहैव तेजःसम्पन्नो बहुपुत्रः सुखान्वितः॥
पुनर्देव्यां रतोनित्यं, पूजयेद्विधिनाचलं।
प्राप्य योगशतैर्यत्तत् प्राप्नोति परमं पदं॥

इति देवीपुराणोक्तस्तिलधेनुदानविधिः।

सनत्कुमार उवाच।

अतः परंप्रवक्ष्यामि तिलधेनुविधिं क्रमात्।

पूर्व्वोक्तमण्डलं कुर्य्याच्छिवपूजाञ्च पश्चिमे ॥
तस्याग्रे मध्यतो भूमौ पद्ममालिख्य शोभनं ।
वस्त्रैराच्छादितं पद्मं तन्मध्ये विन्यसेद्बुध ॥

पूर्व्वोक्तमण्डलं, लिङ्गन्तुलापुरुषदानविहितमण्डलं तस्य मण्डलस्य पश्चिमे प्राङ्मुखः शिवः पूज्यः शिवस्य पुरतो मण्डलस्य मध्यभागे शालिचूर्णादिना पद्मं विलिख्य वस्त्रैराच्छाद्य तत्र तिलपुष्पं न्यसेदित्यन्वयः ॥

त्रिलपुष्पन्तु कृत्वा तु हैमं पुष्पं विनिक्षिपेत् ।
त्रिंशन्निष्केण कर्त्तव्यं तदर्द्धार्द्धेन वा पुनः ॥
पञ्चनिष्केण कर्त्तव्यं-तदर्द्धार्द्धेन वा पुनः ।

तिलपुष्पं, द्रोणादिपरिमिततिलराशिमयं,

पद्मिनौ पुष्पं कृत्वा तत्र वस्त्राद्याच्छन्ने हेमपद्मं न्यसेत्
तस्याग्रे कारयेे द्विद्वान् पद्मं तिलमयं शुभं ।
अर्द्धं द्रोणेन कर्त्तव्यमथ भारेण कारयेत् ॥

वस्त्रैराच्छाद्य तन्मध्ये स्वर्णपद्मं विनिक्षिपेदितिकामिकोक्तेः ।

तमाराध्य विधानेन गन्धपुष्पादिभिः क्रमात् ।
पद्मस्योत्तरदिग्भागे विप्रानेकादश न्यसेत् ॥
तानभ्यर्च्य विधानेन गन्धपुष्पादिभिः क्रमात् ।
आच्छाद्य उत्तमं शृङ्गं विप्रेभ्यो दापयेत् क्रमात् ॥
उष्णीषं च प्रदातव्यं कुण्डलैश्च विभूषयेत् ।
हेमाङ्गुलीयकन्दत्त्वा ब्राह्मणेभ्यो विधानतः ॥
एकादशैव वस्त्राणि तेषामग्रे प्रकीर्य्य च ।

तेषु वस्त्रेषु निक्षिप्य तिलखारीं पृथक् पृथक्॥
कांस्यपात्रं शतपलं विभज्यैकादशांशकं।
इक्षुदण्डाश्च दातव्यास्तत्र तत्र पृथक् पृथक्॥
गोशृङ्गे च हिरण्ये च द्विनिष्केण तु कारयेत्।
राजतेन तु कुर्व्वीत खुरं निष्कद्वयेन तु॥
एवं पृथक् पृथक् दत्त्वा तत्तिलेषु विनिक्षिपेत्।

'षोड़शद्रोणा खारी, कांस्यपात्रं दोहनम् शतस्यैकादशांशक-प्रत्येकं प्रत्येकं नवपलमित्यर्थः, तत्तिलेषु विनिक्षिपेदिति,

एवं हेमशृङ्गादीनि प्रत्येकं तिलखार्य्यां, निक्षिप्य स्वर्णशृङ्गाद्युपेतास्तिलमध्ये धेनवः कल्पनीया इति रुद्रैकादशकमन्त्रैर्विप्रेभ्योदापयेत्।

तथा पद्मस्य पूर्व्वदिग्भागे रवीन् द्वादश पूजितान्।
एतेनैव तु मार्गेण तांश्च श्रद्धासमन्वितः॥
द्वादशादित्यमन्त्रेण दापयेद्देवमेव च।
पूर्व्वदक्षिणदिग्भागे द्विजान् षोड़श संस्थितान्
मूर्त्तिविद्येशैर्म्मन्त्रैश्च दापयेत् पूर्व्ववत् पुनः।

अत्र पद्मोत्तरदिग्भागे एकादश विप्रा रुद्ररूपाः पूज्याः तभ्यः प्रागुक्तमेकादशधा स्थितं तिलखार्यादि देयं।

मन्त्रस्तु ये देवासोदिव्येकादशस्थेत्यादिः।

तथा पद्मस्य पूर्वदिग्भागे द्वादश विप्रानादित्यरूपानर्च्चयेत्। तभ्योऽपि कांस्यपात्रं शतपलं द्वादशधा विभज्य पूर्व्ववत् सुवर्णशृङ्गादियुतां प्रत्येकं तिलखारीं दद्यात्।

मन्त्रश्च, यज्ञोदेवानामित्यादित्यलिङ्गकः।

तथा पद्मस्य दक्षिणे भागे षोडश विप्रान् मूर्त्तिविघ्नेशरूपानर्चयेत्।

मूर्त्तयोभवादिका अष्टौ।

तद्यथा। भवः शर्व्वश्च रुद्रश्च पशुपत्युग्रसंज्ञकौ।
महादेवश्च भीमश्च ईशानश्चाष्टमः स्मृतः॥

'विघ्नेशनामानि तु गणेशदाने वक्ष्यन्ते।

तेभ्योऽपि शतपलं कांस्यपात्रं षोडशधा विभज्य पूर्व्ववत् प्रत्येकं सुवर्णशृङ्गाद्युपेतां तिलखारीन्दद्यात्।

मन्त्रस्तु भवाय देवायेत्यादि-
प्रणवादिनमोन्तेन नाम्ना कर्त्तव्यः।

यजमानेन कर्त्तव्यं सर्व्वमेतद्यथाक्रमम्।
केवलं रुद्रदानं वा आदित्येभ्योऽथवा पुनः॥
मूर्त्यादीनाञ्च वा देयं यथाविभवविस्तरम्।
पद्मं विन्यस्य रजसा शेषं वा कारयेन्नृपः॥
दक्षिणा च प्रदातव्या पञ्चनिष्केण भूषणम्।

एतच्च पद्मदारादि विघ्नेशदानान्तं सर्व्वं रुद्राद्यन्यतमोद्देश्यकं वा दानं मध्यपद्ममेकमेव वा कार्य्यं।

सर्व्वत्र च मध्यपद्मं गुरवे देयम्।

एवं कृत्वा विधानेन हेमाब्जं गुरवे ददेदितिवातुलोक्तेः।

सर्व्वेष्वपि पक्षेषु भूषणं पञ्चनिष्कहेम्ना कार्य्यं शिवार्च्चा स्नपनं होमादि च प्राग्वत्।

दक्षिणाचार्य्यलिंगादेः। तदुक्तं कामिके।

पूर्व्ववन्मण्डपं कृत्वा कुर्य्याद्वै मण्डलान्वितं।
तद्वत् पूजाञ्च होमञ्च स्नपनाद्यं तथैव च॥
पञ्चाङ्गभूषणं पञ्चनिष्कैणात्र प्रकल्पयेत्।
दक्षिणां पूर्व्ववद्दद्यादनुक्तं पूर्व्ववद्भवेदिति॥

इति लिङ्गपुराणोक्तः तिलधेनुदानविधिः।

सप्तव्रीहिमयाःसप्त धेनवः परिकीर्त्तिताः।
यथा तिलमयी धेनुस्तथैवैतास्तु कारयेत्॥
यच्च व्रीहिमयी धेनुर्गोधूमा सतिला परा।
माषमुद्गमयी चैव सप्रियङ्गुश्च सप्तमी॥
उपस्करन्तु सर्व्वासु तिलधेनुवदीरितं।
एतासामेव धेनूनामङ्गानि तिलधेनुवत्॥
सप्तव्रीहिमयाः सप्त योददातीह मानवः।
स याति परमं स्थानं वायुभूतः खमूर्तिमान्॥
ब्रह्महा च सुरापश्च तस्करो गुरुतल्पगः।
धेनुदानेन पूतोऽसौ याति विष्णोः परम्पदं॥

इति विश्वामित्रप्रोक्तः सप्तव्रीहिधेनुदानविधिः।

अथ घृतधेनुदानविधिः।

वशिष्ठ उवाच। तिलाभावे तथा दद्यात् घृतधेनुं यतव्रतः।
येन भूप विधानेन तदिहैकमनाः शृणु॥
वासुदेवं जगन्नाथं घृतक्षीराभिषेचनात्।
संपूज्य पूर्व्ववत् पुष्पैर्गन्ध पुष्पादिभिर्नरः॥
अहोरात्रोषितोनाम्ना अभिष्टूय घृतार्चिषं।
'घृतार्च्चिषे जगन्नाथाय देवाय नम इति मनुः।

गव्यस्य सर्प्पिषः कुम्भं पुष्पमालादिभूषितं।
कांस्यापिधानसंयुक्तं सितवस्त्रयुगेन च॥
हिरण्यगर्भसहितं मणिविद्रुममौक्तिकैः।

अत्र पलसहस्रपरिमाणः कुम्भः।

द्वादशपलाधिकानि पञ्चपलशतानीति केचित्।

तदेतत् परिभाषायामुपवर्णितं।

कांस्यापिधानसहितं, कांस्यपात्रापिहितं।

हिरण्यगर्भसहितं, मध्यवर्त्तिना हिरण्येन सहितमित्यर्थः।

मणिविद्रुममौक्तिकैः सहितमितिशेषः।

इक्षुयष्टिमयान् पादान् खुरान् रौप्यमयांस्तथा।
सौवर्णे चाक्षिणी कुर्य्यात् शृङ्गे चागुरुकाष्ठजे॥

अत्र, सुवर्णादेरनुदितसंख्यतया यथा शक्ति विधानं।

सप्तधान्यमये पार्श्वे पत्तोर्णेन च कम्बलं।
कुर्य्यात्तुरुष्ककर्पूरैर्घ्राणं फलमयांस्तु तान्॥
तद्वच्छर्करया जिह्वां गुड़क्षीरमयं मुखं।

पत्तोर्णं धौतकौशेयं, तुरुष्कः, सिह्लकः,

क्षौमसूत्रेण लाङ्गूलं रोमाणि सितसर्षपैः।
ताम्रपात्रमयं पृष्ठं कुर्य्याच्छ्रद्धासमन्वितः॥
ईदृक्स्वरूपां सङ्कल्प्य घृतधेनुं नराधिप।
तद्वत् कल्पनया विद्वान् घृतवत्सं प्रकल्पयेत्॥

तद्वद्धेनुवत्, खुरशृङ्गादियुक्तमित्यर्थः।

सच धेनोश्चतुर्थभागेन कर्त्तव्यः।

तञ्च विप्रं महाभाग मनसैव घृतार्च्चिषं।

कल्पयित्वा ततस्तस्मै प्रयतः प्रतिपादयेत्॥
एतां ममोपकाराय गृह्णीष्व त्वं द्विजोत्तम।
प्रीयतां मम देवेशो घृतार्च्चिः पुरुषोत्तमः॥
इत्युदाहृत्य विप्राय दद्याद्धेनुं नराधिप।

स्कन्दपुराणे।

अयं मन्त्रः। घृतं गावः प्रसूयन्ते घृतं भूम्यां प्रतिष्ठितं।
घृतमग्निश्च देवाश्च घृतं मे सम्प्रदीयतां॥

विश्वामित्रः। घृतमग्निर्घृतं सोमस्तन्मयाः सर्व्वदेवताः।
घृतधेनुप्रदानेन सर्व्वास्तुष्यन्ति देवता इति॥
घृतरत्नं सुवर्णानां सम्यक् कल्पनया कृतं।
दत्त्वैकरात्रं स्थित्वा तु घृताहारो नराधिपः॥
मुच्यते सर्व्वपापेभ्यस्तथा दानफलं शृणु।
घृतक्षीरवहा नद्यो यत्र पायसकर्द्दमाः॥
तेषु सर्व्वेषु लोकेषु सुपुण्येषूपजायते।
पितुरूर्द्ध्वं नयेत् सप्त पुरुषांस्तस्य येऽप्यधः॥
तांस्तेषु नृप लोकेषु स नयत्यस्तकल्मषः।
सकामानामियं व्युष्टिः कथिता नृपसत्तम॥
विष्णुलोकं नरा यान्ति निष्कामा घृतधेनुदाः।
घृतमग्निर्घृतं सोमस्तन्मयाः सर्व्वदेवताः॥
घृतं प्रयच्छता दत्ता भवन्त्यखिलदेवताः।

सुवर्णमत्र दक्षिणा।

अनुक्तदक्षिणेषु तस्य यथाशक्ति विहितत्वात्।
इति विष्णुधर्म्मोक्तो घृतधेनुदानविधिः॥

अगस्त्यउवाच। तिलाभावे प्रदातव्या सर्पिर्धेनुर्व्विजानता
स्नापयित्वा भवानीं च घृतक्षीरैर्यथाविधि ॥
पूजयेत् पुष्पमालाभिर्नैवेद्यैः सुमनोहरैः।
आहरेत् सर्व्वद्रव्याणि उपकल्पेत तत्र तां ॥
गव्यस्य सर्प्पिषः कुम्भे पुष्पमालाविभूषिते।
कांस्यपात्रा तया वस्त्रैश्छादयीत विधाय तां ॥
हिरण्यगर्भसहितां मणिविद्रुममौक्तिकैः।
पादानिक्षुमयान् कुर्य्यात् कुर्य्याद्रौप्यमयान् शफान् ॥
हेमं चक्षुस्तथा शृङ्गे कृष्णागुरुमये शुभे।
सप्तधान्यैश्च तत्पार्श्वे पत्तोर्णेन च कम्बलं ॥
घ्राणं त्वगुरुकर्पूरैस्तनाः फलमयाः शुभाः।
मुखञ्च गुड़क्षीरेण सितां जिह्वां प्रकल्पयेत् ॥
'सिता' शर्करा। पुच्छं क्षौममयं कार्य्यं रोमाणि सितसर्षपैः।
ताम्रपृष्ठं विचित्रन्तु इष्टरूपां मनोरमां ॥
विधिना घृतवत्सञ्च कुर्य्याल्लक्षणलक्षितं।
एतैः कृत्वा तथा नत्वा पूजयित्वा विधानतः ॥
तद्भक्ताय प्रदातव्या मङ्गला शास्त्रपारगे।
इमां ममोपकाराय गृह्णीष्व मदनुग्रहात् ॥
प्रीयतां नन्दिनी देवी मङ्गला चर्च्चिका उमा।
इत्युक्त्वा चार्च्चयेदेनं कृत्वा नन्दां मनोनुगां ॥
अनेन विधिना देया सर्प्पिषोधेनुरुत्तमा।
हिरण्यरत्नधेनुश्च प्रदेया विधिनामुना ॥
मुच्यते सर्व्वपापेभ्यः सर्व्वान् कामानवाप्नुयात्।

यत्र क्षीरवहा नद्यो यत्र सर्प्पिर्वहा ह्रदाः ॥
पायसाः कर्द्दमा यत्र तस्मिंल्लोके महीयते ।
तेषां स्वामित्वमाप्नोति मुदा परमया युतः ॥
दश पूर्व्वापरांस्तार्थ्य आत्मानं त्वेकविंशकं ।
भूयः पृथ्वीशतां याति इह लोके स मानवः ॥
सकामानामियं व्युष्टिर्द्धेनोस्तावदुदाहृता ।
देव्यालोकमवाप्नोति निष्कामो घृतधेनुदः ॥

इति देवीपुराणोक्तो घृतधेनुदानविधिः ।

गवाभावे तथा दद्यात् घृतधेनुं प्रयत्नतः ।
येन कार्य्या विधानेन तदिहैकमनाः शृणु ॥
आदित्यन्तु जगन्नाथं घृतक्षीराभिषेचनैः ।
संपूज्य पूर्व्ववत् पुष्पैर्गन्धपुष्पादिभिर्नरः ॥
अहोरात्रोषितो भूत्वा अभिप्लुत्य घृतार्च्चिषा ।
गव्यस्य सर्पिषः कुम्भं पुष्पमालाविभूषितं ॥
कांस्योपधानसंयुक्तं सितवस्त्रयुगेनच ।
हिरण्यगर्भसहितं मणिविद्रुममौक्तिकैः ॥
इक्षुयष्टिमयाः पादाः खुरा रौप्यमयास्तथा ।
सौवर्णे चाक्षिणी कुर्य्यात् शृङ्गे चागुरुकाष्ठजे ॥
सप्तधान्यमये पार्श्वे पत्त्रोर्णेन च कम्बलं ।
कुर्य्यात्तुरुष्कर्पूरं घ्राणं फलमयांस्तनान् ॥
तद्वच्छर्करया जिह्वां गुड़क्षीरमयं मुखं ।
क्षौमसूत्रेण लाङ्गूलं रोमाणि सितसर्षपैः ॥
ताम्रपात्रमयं पृष्ठं कुर्य्याच्छ्रद्धासमन्वितः ।

ईदृक सुरूपां सङ्कल्प्य घृतधेनुं नराधिपः ।
तद्वत्कल्पनया धेनोर्घृतवत्सं प्रकल्पयेत् ॥
तञ्च विप्रं महाभाग मनसैव घृतार्च्चिषं ।
कल्पयित्वा ततस्तस्मै प्रयतः प्रतिपादयेत् ॥
इमां ममोपकाराय गृह्णीष्व त्वं द्विजोत्तम ।
प्रीयतां मम देवेशो घृतार्च्चिर्म्मिहिरोत्तमः ॥
इत्युदाहृत्य विप्राय दद्याद्धेनुं नरोत्तम ।
दत्त्वैकरात्रं स्थित्वा च घृताहारोनराधिपः ॥
मुच्यते सर्व्वपापेभ्यस्तस्य दानफलं शृणु ।
घृतक्षीरवहा नद्योयत्र पायसकर्द्दमाः ॥
तेषु लोकेषु नित्यं स सुपुण्येषु प्रमोदते ।
पितुरूर्द्धं नयेत्सप्तपुरुषां स्तस्य येऽप्यधः ॥
इति श्रीआदित्यपुराणोक्तो घृतधेनुदानविधिः॥

भविष्योत्तरे ।

घृतधेनुविधानेन नवनीतमयीशुभा ।
दातव्या नृपते धेनुर्न्यूनाधिक्यविवर्जिता ॥
मन्त्रः स एष निर्द्दिष्टो घृतधेनौ च यः स्मृतः ।
शृणु पार्थ महाबाहो प्रदानफलमुत्तमं ॥
घृतक्षीरवहा नद्यो यत्र पायसकर्द्दमाः ।
घृतधेनुप्रदोयाति तत्र कामैः प्रपूजितः ॥
पितुरूर्द्धं नयेत्सप्त पुरुषास्तस्य ये प्यधः ।
तान्श्रेष्ठेष्विह लोकेषु स नयत्यस्तकल्मषान् ॥

सकामानामियं व्युष्टिः कथिता नृपसत्तम।
निष्कल्मषं पदं यान्ति निष्कामास्तत्प्रदायिनः॥

आह कात्यायनः।

अलाभे योगवां दद्यात् घृतधेनुं यथाविधि।
दुर्गाणि तारितोधेन्वा देवनद्यां प्रमोदते॥
घृतालाभे तु यो दद्यात्तिलधेनुं समाहितः।
सर्व्वकामवहा नद्यः स्तं सेवन्ते दिवि स्थितं॥
तिलालाभे तु यो दद्याज्जलधेनुं समाहितः।
सर्व्वान् कामानवाप्नोति नात्र कार्या विचारणा॥
घृतधेनुं नरो दद्यात्तिलधेनुं यथाक्रमं।
जलधेनुं यथा योवै प्रख्यमव्यवते दिवः॥
जितेन्द्रियाय शान्ताय वैष्णवाय यथाविधि।
धेनुं दत्त्वा घृतमयीं विष्णुसालोक्यमश्नुते॥
पितरं चैव धर्म्मात्मा पितामहमथापि वा।
घृतधेन्वा परित्राति सप्त सप्त च सप्त च॥

इति घृतधेनुदानविधिः।

अथ जलधेनुदानं

वशिष्ठ उवाच।

जलधेनुं प्रवक्ष्यामि प्रीयते दत्तया यया।
देवदेवो हृषीकेशः सर्व्वगः सर्व्वभावनः॥
जलकुम्भं नरव्याघ्र सुवर्णरजतान्वितम्।
रत्नगर्भमशेषैस्त ग्राम्यैर्धान्यैः समन्वितम्॥

सितवस्त्रयुगच्छन्नं दूर्व्वापल्लवशोभितम् ।
कुष्ठ-मांसी-मुरो-शीर-वालका-मलकै-र्युतम् ॥
प्रियङ्गुपत्रसहितं सितवस्त्रोपवीतिनम् ।
सच्छत्रं स उपानत्कं दर्भविष्टरसंस्थितम् ॥
चतुर्भिः संवृतं भूप तिलपात्रैश्चतुर्द्दिशम् ।
स्थापितं दधिपात्रेण घृतचौद्रवता मुखे ॥
उपोषितः समभ्यर्च्य वासुदेवं जलेश्वरम् । *
पुष्पधूपोपहारैस्तु यथाविभवमादृतः ॥
सङ्कल्प्य जलधेनुञ्च कुम्भन्तमभिपूज्य च ।
पूजयेद्वत्सकन्तद्वत् कुम्भं जलमयं बुधः ॥
एवं संपूज्य गोविन्दं जलधेनुं सवत्सकां ।
सितवस्त्रधरः शान्तो वीतरागोविमत्सरः ॥
दद्यात् द्विजाय राजेन्द्र प्रीत्यर्थं जलशायिनः ।
जलशायी जगद्योनिः प्रीयतां मम केशवः ॥
इति चोच्चार्य्य भूनाथ विप्राय प्रतिपाद्यतां ।
अपक्कान्नाशिना स्थेयमहोरात्रमतःपरं ॥

जलकुम्भमित्यादि, कुम्भोऽत्र कलशः ।

सुवर्णरजतयोरनियतपरिमाणतया यथाशक्ति विधानं पञ्च-रत्नानि धान्यानि च परिभाषायामुक्तानि अथ यद्यपि सामान्येनो-पदेशः तथापि तत्सामान्यादितरेषु तथात्वमितिन्यायादितर धेनवद्विरुद्धधर्म्मानुष्ठानं वेदितव्यं ततश्च सुवर्णस्य शृङ्गाकृतित्वं

* अनश्वरमिति क्वचित पाठः ।

रजतस्य खुराकृतित्वं, तिलपात्राणां ताम्रपात्रमयत्वं, दधिपात्रस्य कांस्यपात्रमयत्वं, चानुसन्धेयं तथा धान्यानि पार्श्वद्वये, कुष्ठादीनि घ्राणदेशे, प्रियङ्गुपत्रं श्रवणे, यज्ञोपवीतं शिरःस्थाने स्थापयेत्। वत्सोऽपि चतुर्थांशेन धेनुवत् कार्य्यः।

क्वचित्तु पूजयेद्वत्सं तद्वत् कृतं घृतमयं बुध इति पाठात् घृतजलयो र्विकल्पोऽवगम्यते, दानवाक्यन्तु पूर्ववत् दक्षिणा चात्र यथाशक्ति सुवर्णमिति।

अनेन विधिना दत्त्वा जलधेनुं नराधिप।
सर्व्वान् कामानवाप्नोति ये दिव्या ये च मानुषाः॥
शरीरारोग्यमाबाधाप्रशमः सार्व्वकामिकः।
नृणां भवति दत्तायां जलधेन्वां न संशयः॥
इति विष्णुधर्म्मोक्तो जलधेनुदानविधिः॥

भानुरुवाच।

जलधेनुं प्रवक्ष्यामि प्रीयते दत्तया यया।
देवदेवो मयूखेशः सर्व्वगः सर्व्वभावनः॥

जलकुम्भं समानीयेत्यादि विष्णुधर्म्मतुल्यार्थं, विशेषस्तु।

ततःसंपूज्यचादित्यं जलधेनुं सवत्सकाम्॥
दद्याद्विप्राय देवाग्रे प्रीत्यर्थं मिहिरस्य तु।
आदित्यस्य जगद्योनिः प्रीयतां मिहिरः सदा॥
इति चोच्चार्य्य तां गान्तु विप्राय प्रतिपादयेत्।
अनेन विधिना यस्तु जलधेनुं महामुने॥
सर्व्वाह्लादानवाप्नोति यांश्च ध्यायति मानवः।

सर्व्वपापविनिर्म्मुक्तः पितरं सपितामहं।
प्रपितामहं यथापुर्व्वपुरुषाणां चतुष्टयं॥
आत्मानं तनयं पौत्रं तदधस्ताच्चतुष्टयं।
तारयेत् स मुनीन्द्रेह जलधेनुप्रदोनरः॥
यश्च गृह्णाति विधिवत् तस्याप्येवम्बिधाः कुले।
चतुर्द्दश तथा चैव ददतश्चानुमोदतः॥
दीयमानां प्रपश्यन्ति जलधेनुं च ये नराः।
तेप्यशेषाघनिर्म्मुक्ताः प्रयान्ति परमां गतिं॥
इति आदित्यपुराणोक्तो जलधेनुदानविधिः।

अगस्त्य उवाच।

तोयधेनुं शृणु वत्स यथादेवी प्रसीदति।
कुम्भं तोयसुसंपूर्णं रत्नवस्त्रयुगान्वितं॥
समस्तबीजसंयुक्तं दूर्व्वापल्लवशोभितं।
समस्तबीजानि, सर्व्वधान्यानि।
दूर्वाक्षतदधिशङ्खकुष्ठामलकचन्दनैः।
माल्यछत्रसमायुक्तं तिलपात्रैश्च संयुतं॥
दधिक्षीरघृतं पात्रं विधानेनोपकल्पयेत्।
वत्सकं कल्पयेत्तस्यास्तद्वत्तोयमयं बुधः॥
देवीमभ्यर्च्य विधिवत् सोपवासोऽथ नक्तवान्।
देवीभक्त प्रदद्याद्यः सर्व्वान् कामानवाप्नुयात्॥
जयारिसूदनी देवी देवानां भयनाशिनी।
वेदमातर्व्वरे दुर्गे सर्व्वगे सुभगे नमः॥

अनेन वस्त्रमन्त्रेण नन्दानाम्नाभिमन्त्रयेत्।
देवी मे प्रीयतां नित्यं यथोदितफला शिवा॥
इति देवीपुराणोक्तो जलधेनुदानविधिः।

स्कन्दपुराणे।

जलधेनुं च योदद्यात्तस्य दानफलं शृणु।
प्रपां सत्रं तड़ागं वा कूपं वापि सुपुष्कलं।
कृत्वा कुम्भान् सुवर्णांश्च गन्धमाल्यैरलंकृतान्॥
'प्रपा' पानीयशाला। 'सत्रशाला' सभाजनसमाश्रया।
'सुवर्णान्, शोभनवर्णान्।
पुष्पैश्च विविधाकारैरभ्यर्च्य द्विजसत्तमान्।
भक्ष्यभोज्यैः सुहृष्टानां तिलपात्राणि दापयेत्॥
दक्षिणां पुष्कलां दद्यादेभ्यस्त्वाशंसयेत्ततः॥

एभ्यः द्विजेभ्यः।

आपः शिवास्तु सौम्याश्च तर्पयन्तु पितॄन्मम।
कामदाः कामदानाय भवन्त्वितिच वै वदेत्॥
एवं दत्त्वा तु तां धेनुं पुनः कृत्वा च वै तदा।
आवाहयेत् प्रपां देवीं ब्रह्मलोकसमर्पिणीं॥
तिलपात्राणि दत्त्वा च तथावस्त्रयुगं शुभम्।
सुवर्णस्य च सान्निध्यं फलानि विविधानि च॥
ततोदद्याच्छुचिःस्नातो ब्राह्मणेभ्यो यथाविधि।
एवंविधानतोदत्त्वा ब्रह्मलोके महीयते॥

विश्वामित्रः,

शरीरारोग्यमावाधाप्रशमः सार्व्वकालिकः।
नृणां भवति दत्तायां जलधेन्वां न संशयः॥

इति जलधेनुदानविधिः।

अथ चीरधेनुदानं

विनीताश्व उवाच।

चीरधेनुं प्रवच्यामि तान्निवोध नराधिप।
अनुलिप्ते मह्रीपृष्ठे गोमयेन नरोत्तम॥
गोचर्म्ममात्रमानेन कुशानास्तीर्य्य सर्व्वतः।
तत्रोपरि महाराज न्यसेत कृष्णाजिनं बुधः॥
तत्रोपरि कुण्डलीकां गोमयेन कृतामपि।
चीरकुम्भं ततः स्थाप्य चतुर्थांशेन वत्सकं॥
सुवर्णमुखशृङ्गाणि चन्दनागुरुकाणिच।
प्रशस्तपत्रश्रवणां तिलपात्रोपरि न्यसेत्॥
मुखं गुड़मयं तस्या जिह्वा शर्करया तथा।
फलप्रशस्तदन्ताश्च मुक्ताफलमयेचणां॥
इचुपादां दर्भरोमां सितकम्बलकंवलां।
ताम्रपृष्ठां कांस्यदोहां पट्टसूत्रमयी तथां॥
पुच्छञ्च नृपशार्दूल नवनीतमयस्तनीं।
स्वर्णशृङ्गां रौप्यखुरां पञ्चरत्नमयां भुवि॥
चत्वारि तिलपात्राणि चतुर्दिच्वपि स्थापयेत्।
सप्तव्रीहिसमायुक्तां दिक्षु सर्व्वासु प्रचिपेत्॥

एवं लक्षणसंयुक्तां क्षीरधेनुं प्रकल्पयेत्।
आच्छाद्य वस्त्रयुग्मेन गन्धपुष्पैः समर्च्चयेत् ॥
धूपन्दीपादिकं कृत्वा ब्राह्मणाय निवेदयेत्।
आच्छाद्यालङ्कृतं कृत्वा मुद्रिकाकर्णमात्रकैः ॥
पादुकोपानहं छत्रं दत्त्वा दानं समर्पयेत्।
अनेनैव तु मन्त्रेण क्षीरधेनुं प्रकल्पयेत् ॥
या लक्ष्मीः सर्व्वभूतानामित्यादि नरपुङ्गव।
आप्यायस्वेति मन्त्रेण क्षीरधेनुं प्रसादयेत् ॥
गृह्णामि त्वां देवि भक्त्या ग्राहको मन्त्रमुच्चरेत्।
एवंधेनुं प्रदायाथ क्षीराहारोदिनं चरेत ॥
त्रिरात्रन्तु पयोभक्षो ब्राह्मणो राजसत्तम।
दीयमानां प्रपश्यन्ति ते यान्ति परमां गतिं ॥
एतां हेमसहस्रेण शतेनाथ स्वशक्तितः।
शतार्द्धमथवाप्यर्द्धं, तथैवार्द्धं यथेच्छया ॥
दत्त्वा धेनुं महाराज शृणु तस्यापि तत्फलं।
दिव्यं वर्षसहस्रन्तु रुद्रलोके महीयते ॥
पितृपितामहैः सार्द्धं ब्रह्मणोभवनं व्रजेत्।
दिव्यं विमानमारूढ़ो दिव्यगन्धानुलेपनः ॥
क्रीड़ित्वा सुचिरं कालं विष्णुलोकं स गच्छति।
द्वादशादित्यसङ्काशैर्विमानैर्वरमण्डितैः ॥
गीतवादित्रनिर्घोषैरप्सरोगणसेवितैः।
तत्रोपविष्टोऽसौ राजा विष्णुसायुज्यतां व्रजेत् ॥
य इदं शृणुयाद्राजन् पठेद्वा भक्तिभावितः।

सर्व्वपापविनिर्म्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति ॥
इति स्कन्दपुराणोक्तः क्षीरधेनुदानविधिः ।

अथ दधिधेनुदानं ।

विनीताश्व उवाच ।

दधिधेनोर्महाराज विधानं शृणु साम्प्रतं ।
अनुलिप्ते महीभागे गोमयेन नराधिप ॥
गोचर्म्ममात्रन्तु पुनः पुष्पप्रकरसंयुतं ।
कुशैरास्तीर्य्य वसुधां कृष्णाजिनकृतास्तराम् ॥
दधिकुम्भञ्च संस्थाप्य सप्तधान्यस्य चोपरि ।
चतुर्थांशेन वत्सन्तु सौवर्णमुखसंयुतम् ॥
प्रशस्तपत्रश्रवणां मुक्ताफलमयेक्षणाम् ।
चन्दनागुरुशृङ्गां च मुखं वै यत्नमालिम् ॥
जिह्वा शर्करया राजन् घ्राणं श्रीखण्डकं तथा ।
फलमूलमया दन्ताः सितसूत्रस्य कम्बला ॥
ताम्रपृष्ठा दर्भरोमा पुच्छं सूत्रमयं तथा ।
स्वर्णशृङ्गीं रौप्यखुरा नवनीतमयस्तनीं ॥
इक्षुपादां सुसंक्लृप्य सर्व्वाभरणभूषिताम् ।
आच्छाद्य वस्त्रयुग्मेन पुष्पगन्धैस्तु पूजिताम् ॥
ब्राह्मणाय कुलीनाय साधुवृत्ताय धीमते ।
समाधियमयुक्ताय तादृशाय प्रदापयेत् ॥
पुण्यदेशोपविष्टाय मुद्रिकाकर्णमातृकैः ।
पादुकोपानहौ छत्रं दत्त्वा मन्त्रमनुस्मरेत् ॥

दधिक्राव्णेतिमन्त्रेण दधिधेनुं प्रदापयेत् ।
एवं दधिमयीं धेनुं दत्त्वा राजर्षिसत्तम ॥
एकाहारो दिनं तिष्ठेद्दध्ना च नृपनन्दन ।
यजमानो वसेद्राजन् त्रिदिनं च द्विजोत्तम ॥
दीयमानां प्रपश्यन्ति तेऽपि यान्ति परां गतिम् ।
दशपूर्व्वान् दशपरानात्मानञ्चैकविंशकम् ॥
विष्णुलोकमवाप्नोति यावदाहूतसंप्लवम् ।
दाता च दापकश्चैव तेऽपि यान्ति परां गतिं ॥
यत्र मधुवहा नद्यो यत्र पायसकर्द्दमाः ।
मुनयो ऋषयः सिद्धास्तत्र गच्छन्ति धेनुदाः ॥
य इदं शृणुयाद्भक्त्या श्रावयेद्वापि मानवः ।
सोऽश्वमेधफलंप्राप्य विष्णुलोकं स गच्छति ॥
इति स्कन्दपुराणोक्तो दधिधेनुदानविधिः ।

अथ मधुधेनुदानं ।

मधुधेनुं प्रवक्ष्यामि सर्व्वपापप्रनाशिनीम् ।
अनुलिप्ते महीपृष्ठे कृष्णाजिनकुशोत्तरे ॥
धेनुं मधुमयींकृत्वा संपूर्णघटपूरिताम् ।
तद्वच्चतुर्थभागेन वत्सकं परिकल्पयेत् ॥
सौवर्णन्तु मुखं कृत्वा शृङ्गाण्यगुरुचन्दनम् ।
पृष्ठं ताम्रमयं तस्य पुच्छं सूत्रमयं तथा ॥
पादास्त्विक्षुमयाः कार्य्याः सितकम्बलकम्बलाम् ।
मुखं गुड़मयं कृत्वा जिह्वा शर्करयान्विता ॥

मौक्तिकं नयने तस्या दन्ताः फलमयास्तथा।
दर्भरोमधरा देवी रूप्यखुरविभूषिता॥
अश्वत्थपत्रश्रवणां नवनीतमयस्तनीम्।
सर्व्वलक्षणसंयुक्तां सप्तधान्यानि दापयेत्॥
चत्वारि तिलपात्राणि चतुर्द्दिक्षु च विन्यसेत्।
आच्छाद्य वस्त्रयुग्मेन घण्टाभरणभूषिताम्॥
कांस्योपदोहनोन्दत्त्वा गन्धपुष्पैस्तु पूजिताम्।
अयने विषुवे पुण्ये व्यतीपाते दिनक्षये॥
संक्रान्तावुपरागे च सर्व्वकालमतन्द्रिता।
द्रव्यब्राह्मणसम्पत्तिर्द्दृष्टमात्रेण दापयेत्॥
ब्राह्मणाय दरिद्राय श्रोत्रियाय कुटुम्बिने।
आर्य्यावर्त्तसमुत्पन्ने वेदवेदाङ्गपारगे॥
तादृशाय प्रदातव्या मधुधेनुर्नरोत्तम।
पुच्छदेशोपविष्टाय गन्धधूपादिपूजिताम्॥
आच्छाद्य वस्त्रयुग्मेन मुद्रिकाकर्णमात्रिकाम्।
स्वशक्त्या दक्षिणां दत्त्वा वित्तशाठ्यविवर्जितः॥
उदकपूर्व्वन्तु कर्त्तव्यं पश्चाद्दानं समर्पयेत्।
रसज्ञा सर्व्वदेवानां सर्व्वभूतहितेरता॥
प्रीयन्तां पितृदेवाश्च मधुधेनो नमोऽस्तु ते।
एवमुच्चार्य्य तां धेनुं ब्राह्मणाय निवेदयेत्॥
अहं गृह्णामि त्वां देवि कुटम्बार्थं विशेषतः।
कामङ्कामदुघे कामान् मधुधेनोनमोस्तु ते॥
मधुवातेति मन्त्रेण प्रदाप्धा यतचेतसा।

दत्त्वा धेनुं महाराज छत्रकोपानहौ तथा ॥
एवं यः कुरुते भक्त्या मधुधेनुं नराधिप।
दत्त्वा दानं पायसेन मधुना च दिनत्रयेत् ॥
ब्राह्मणोऽपि त्रिरात्रन्तु मधुपायससंयुतः।
एवं कृते तु यत्पुण्यन्तं निबोध नराधिप ॥
यत्र मधुवहा नद्यो यत्र पायसकर्द्दमाः।
ऋषयोमुनयः सिद्धास्तत्र गच्छन्ति धेनुदाः ॥
तत्र भोगान् वरान् भुङ्क्ते ब्रह्मलोके स तिष्ठति।
क्रीडित्वा सुचिरङ्कालं पुनर्म्मर्त्यमुपागतः।
स भुक्त्वा विपुलान् भोगान् विष्णुलोकञ्च गच्छति ॥
दशपूर्व्वान् दशपरानात्मानञ्चैकविंशकम्।
नयेत विष्णुसायुज्यं मधुधेनुप्रसादतः ॥
य इदं शृणुयाद्भक्त्या श्रावयेद्वापि मानवः।
सर्व्वपापविनिर्म्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति ॥
इति स्कन्दपुराणोक्तो मधुधेनुदानविधिः।

अथ रसधेनुदानं।

विनीताश्व उवाच।

रसधेनुं महाराज कथयामि समासतः।
अनुलिप्ते महीपृष्ठे कृष्णाजिनकुशोत्तरे ॥
रसस्य तु घटं राजन् सम्पूर्णमैक्षवस्य च।
तद्वत् सङ्कल्पयेत् प्राज्ञश्चतुर्थांशेन वत्सकम् ॥
इक्षुदण्डमयाः पादा राजतखुरसंयुता।
सुवर्णशृङ्गाभरणा वस्त्रपुच्छा घृतस्तनी ॥

पुष्पकम्बलसंयुक्ता शर्करामुखजिह्विका ।
दन्ताः फलमयास्तस्याः पृष्ठन्ताम्रमयं शुभम् ॥
पुष्परोमा तु राजेन्द्र मुक्ताफलकृतेक्षणां ।
सप्तव्रीहिसमायुक्तां चतुर्दिक्षु सदीपिकाम् ॥
सर्व्वोपस्करसंयुक्तां सर्व्वगन्धविभूषितां ।
चत्वारि तिलपात्राणि चतुर्दिक्षु निवेशयेत् ॥
ब्राह्मणे वेदविदुषे श्रोत्रियायाहिताग्नये ।
पुराणज्ञे विशेषेण साधुवृत्ताय धीमते ॥
तादृशाय प्रदातव्या रसधेनुः कुटुम्बिने ।
दाता स्वर्गमवाप्नोति सर्व्वपापविवर्जितः ॥
दाता वा ग्राहकोवापि एकाहं रसभोजनः ।
सोमपानं भवेत्तस्य सर्व्वएवफलं भवेत् ॥
दीयमानान्तु पश्यन्ति तेऽपि यान्ति परां गतिम् ।
धेनुं च पूजयित्वाग्रे गन्ध-धूपस्रगादिभिः ॥
पूर्व्वोक्तांश्च मन्त्रांश्च तानेव प्रयतः स्मरेत् ।
एवमुच्चारयित्वा तु दीयते वैद्विजोत्तमे ॥
दशपूर्व्वान् परां श्चैव आत्मानं चैक विंशकं ।
नयेत परमं स्थानं यस्मान्नावर्त्तते पुनः ॥
एषा ते कथिता राजन रसधेनुरनुत्तमा ।
ददस्व च महाराज पुण्यश्लोकानवाप्नुहि ॥
य इदं पठते नित्यं शृणुयाद्वापि भक्तितः ।
सर्व्वपापविनिर्म्मुक्तो विष्णुसायुज्यतां व्रजेत् ॥
इति स्कन्दपुराणोक्तोरसधेनुदानविधिः ।

अथ शर्कराधेनुदानं।

विनीताश्व उवाच।

तद्वत् शर्कराधेनुं राजन् कुर्य्यात् यथार्थतः।
अनुलिप्ते महीपृष्ठे कृष्णाजिनकुशोत्तरे॥
धेनुः शर्करया राजन् सदाभारचतुष्टयम्।
उत्तमा कथ्यते सद्भिश्चतुर्थांशेन वत्सकः॥
तदर्द्धं मध्यमा प्रोक्ता चतुर्थांशेन कन्यसा।
तद्वद्वत्सं प्रकुर्व्वीत चतुर्थांशेन मानवः॥
अथवाधेनुतः कुर्य्यादष्टांशेन तु वत्सकम्।
स्वशक्त्या कारयेदेनां यथात्मानं न पीड़येत्॥
सर्व्वबीजानि संस्थाप्य चतुर्दिक्षु समन्ततः।
सौवर्णमुखशृङ्गाणि मौक्तिकैर्नयनानि च॥
गुडेन च मुखं कार्य्यं जिह्वा पिष्टमयी तथा।
कम्बलं पट्टसूत्रेण घण्टाभरणभूषिता*।
इक्षुपादा रौप्यखुरा नवनीतमयस्तना॥
प्रशस्तपत्रश्रवणा सितचामरभूषिता।
पञ्चरत्नसमायुक्ता दर्भरोमसमन्विता॥
कांस्योपदोहना सम्यक् गन्धपुष्पैःसमन्विता।
ईदृक्विधानसंयुक्ता वस्त्रेणाच्छादितोपरि॥
गन्धपुष्पैरलंकृत्य ब्राह्मणाय निवेदयेत्।
श्रोत्रियाय दरिद्राय साधुवृत्ताय धीमते॥
वेदवेदाङ्गविदुषे विशेषेणाग्निहोत्रिणे।

* कण्ठाभरण संयुता इति पाठः पुस्तकान्तरं।

अनुसूयवे प्रदातव्या न मत्सरयुताय वै ॥
अयने विषुवे पुण्ये व्यतिपाते च षण्मुख।
येषु पुण्येषु कालेषु यदृच्छावापि दापयेत् ॥
सत्पात्रन्तु द्विजं दृष्ट्वा स्वागतं श्रोत्रियं गृहे।
तादृशाय प्रदातव्या पृच्छदेशे निवेदयेत् ॥
पूर्व्वामुखस्थितोदाता अथवा तु उदङ्मुखः।
धेनुं पूर्व्वमुखीङ्कृत्वा वत्समुत्तरतो न्यसेत् ॥
दानकाले तु ये मन्त्रास्तान् पठित्वा समर्च्चयेत्।
आच्छाद्य चैव तं विप्रं मुद्रिकाकर्णवेष्टकैः ॥
स्वशक्त्या दक्षिणां दद्यात् गन्धपुष्पं सचन्दनम्।
धेनुं समर्पयेत्तस्य मुखञ्च न विलोकयेत् ॥
एकाहं शर्कराहारो ब्राह्मणस्त्रिदिनं वसेत्।
सर्व्वपापहरा धेनुः सर्व्वकामप्रदायिनी ॥
सर्व्वकामसमृद्धस्तु जायते नात्र संशयः।
दीयमानां प्रपश्यन्ति तेऽपि यान्ति पराङ्गतिम् ॥
य इदं शृणुयाद्भक्त्या पठते वापि मानवः।
मुच्यते सर्व्वपापेभ्यो विष्णुलोकं सगच्छति ॥

इति स्कन्दपुराणोक्तः शर्कराधेनुदानविधिः।

अथ कार्पासधेनुदानविधिः।

वराह उवाच।

अतःपरं प्रवक्ष्यामि धेनुं कार्पासकीं शुभाम्।
विश्वस्य गुह्यगुप्त्यर्थं ब्रह्मणा वांशुकङ्कृतम् *

* ब्राह्मणाय स्वयं कृतमिति क्वचित् पाठः।

कार्पासमूलकञ्चापि तेनासावुत्तमः स्मृतः।
सा च कार्पासभारेण धेनुः श्रेष्ठा प्रकीर्त्तिता॥
मध्यमा च तदर्द्धेन तस्याप्यर्द्धेन कन्यसा।
पूर्ववद्वस्त्रधान्यञ्च हिरण्यञ्च तथैव च॥
वत्सकन्तु चतुर्थांशे दानमन्त्रोऽभिधीयते।
कुर्व्वीत पूर्ववद्वत्सं वस्त्रधान्याद्युपस्करम्॥

पूर्व्ववदिति, वराहपुराणोक्ततिलधेनुवदित्यर्थः।

हेम कुन्देन्दुदेवेश क्षीरार्णव समुद्भवे।
सोमप्रिये सुधेन्वाख्ये सौरभेयि नमोऽस्तु ते॥
इतेयमिन्दुनाथाय शशांकायामृताय च।
अत्रिनेत्रप्रजाताय सोमराजाय वै नमः॥

दानमन्त्रः।

यस्त्वेवं परया भक्त्या ब्राह्मणाय प्रयच्छति।
स याति सोमलोकन्तु * सोमेन सह मोदते॥
नरोगी न ज्वरी कुष्ठी कुले तस्य प्रजायते।
पुत्रदारसमोपेतो जीवेच्च शरदांशतं॥
इति वराहपुराणोक्तः कार्पासधेनुदानविधिः।

अथ लवणधेनुदानम्।

युधिष्ठिर उवाच।

कृष्ण कृष्ण महाबाहो सर्व्वशास्त्रविशारद।
कथयस्व हि दानानामुत्तमं यत् प्रकीर्त्तितम्॥

---

* चन्द्रलोकन्तिति क्वचित पाठः।

येन दत्तेन दत्तानि सर्व्वाण्यपि भवन्त्युत ।
सर्व्वकामसमृद्धश्च सर्व्वपापक्षयो भवेत् ।
प्रायश्चित्तविशुद्धश्च तन्मे कथय सुव्रत ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि लवणस्येह कल्पितां ।
गोमयेनोपलिप्ते तु दर्भसंस्तरसंस्थितां ॥
आविकञ्चर्म्म विन्यस्य पूर्वाशाभिमुखां स्थिताम् ।
वस्त्रेणाच्छादितां कृत्वा धेनुं कुर्व्वीत मध्यगां ॥
आढकेनैव कुर्व्वीत बहुवित्तोऽल्पवानपि ।
स्वर्णशृङ्गीं रौप्यखुरां इक्षुपादां फलस्तनीं ॥
कार्य्या शर्करया जिह्वा गन्धघ्राणवती तथा ।
समुद्रोदरजां शुक्तिं कर्णौ च परिवेष्टयेत् ॥*
शृङ्गे चन्दनकाष्ठाभ्यां मौक्तिके चाक्षिणी शुभे ।
कपोलौ सक्तुपिण्डाभ्यां यथानास्ये प्रदापयेत् ॥
कम्बलं पट्टसूत्रेण ग्रीवायां क्षुल्लिका तथा ।
पृष्ठे वै ताम्रपात्रन्तु अपाने गुडपिण्डकाम् ॥
लाङ्गूले कम्बलं दद्यात् स्तनान् क्षीरप्रदेशतः ।
योनिप्रदेशे च मधु सर्व्वतस्तु फलान्वितां ॥
एवं सम्यक् परिस्थाप्य लवणस्य कृतां च गां ।
स्थापयेत् वत्सकञ्चापि चतुर्भागेन मानवः ॥
एवं धेनुं समभ्यर्च्य माल्यवस्त्रविभूषणैः ।

* परिकल्पयेदिति पुस्तकान्तरे ।

स्नात्वा देवार्च्चनं कुर्य्याद्ब्राह्मणानभिपूज्यच ॥
कृत्वा प्रदक्षिणन्तान्तु पुत्रभार्य्यासमन्वितः।
ब्राह्मणाय सुशीलाय वृत्तयुक्ताय वै नृप ॥
दद्यात् पर्व्वसु सर्व्वेषु मन्त्रेणानेन मानवः।
लवणे वै रसाः सर्व्वे लवणे सर्व्वदेवताः ॥
सर्व्वदेवीमयि देवि लवणाख्ये नमोऽस्तु ते।
एवमुच्चार्य्य मन्त्रान्ते विप्राय प्रतिपादयेत् ॥
सम्यक् प्रदक्षिणं कृत्वा दक्षिणासहितं नृप।
प्रदक्षिणा मही तेन कृता भवति भारत ॥
सर्व्वदानानि दत्तानि सर्व्वर्त्तुकफलानि च।
सर्व्वे रसाः सर्व्वमन्त्राः सर्व्वमेतच्चराचरं ॥
सौभाग्यञ्च परां वृद्धिं शरीरारोग्यसम्पदः।
नृणां भवति दत्त्वा तु रसधेनुं न संशयः ॥
स्वर्गे च नियतं वासो यावदाभूतसंप्लवं ॥
पत्तोर्णकम्बलगलां लवणोदकेन
कृत्वा फलस्तनवतीमतिचर्म्म पृष्ठे।
दत्त्वा द्विजाय विधिवद्रसधेनुमेतां
लोकं गवां सकलसौख्ययुतं प्रयाति ॥
इति भविष्यत्पुराणोक्तोलवणधेनुदानविधिः।

अथ कर्पूरादिधेनुदानं।

कर्पूरधेनुं वक्ष्यामि सर्व्वगन्धमयीं शुभां।
यान्दत्वा सर्व्वगन्धास्तु प्रदत्ताः स्युर्म्महीपते ॥

चन्द्रग्रहे वाथ भानोः कार्त्तिक्यां विषुवत्यथ ।
द्वादश्यामयने पुण्ये दद्यात् कर्पूरगां विभो ॥
ब्राह्मणाय दरिद्राय शीलवृत्तपराय च ।*
भूमावास्तीर्य्य नेत्रन्तु शङ्खशुक्लाम्बरं शुभं ॥
कार्य्या चतुष्पला धेनुः पलमात्रस्तु वत्सकः ।
अथवा पलिका धेनुर्वत्सः कार्य्यस्तु कार्षिकः ॥
सुवर्णशृङ्गा रौप्यखुरा पुच्छं कुङ्कमसम्भवम् ।
मृगनाभिमया दन्ता ग्रन्थिपर्णमयं मुखं ॥
अक्षिणी सिह्लकमये कर्णौ चागुरुकाष्ठजौ ।
देवदारुमयं पुच्छं गुदं गुग्गुलसम्भवं ॥
कुष्ठं कपोलकं प्रोक्तं उशीरं चर्म्म चैव तु ।
उदरे चन्दनं दद्यात् खुराग्रे नखमेव च ॥
एवं संकल्प्य कर्पूराख्येमुं वस्त्रेण पूजितां ।
विप्रं संपूज्य कर्पूरां वस्त्रयुग्मेन चैव हि ॥
कर्पूरधेनुं विप्रेश गृहाण मां सुपूजितां ।
पुष्पगन्धस्थिता सा मे कमला प्रीयतामिति ॥
अनेनैव तु मन्त्रेण दानं विप्राय दापयेत् ।
दत्त्वा धेनुमिमां राजन् गन्धर्व्वाणां समोभवेत् ॥
कल्पत्रयं वसेत् स्वर्गे राजराजो भवेदिह ।
सर्व्वान् कामानवाप्नोति गौरीलोके महीयते ॥
तथा सर्व्वकामप्रदा धेनुः शर्करायाः प्रकीर्त्तिता ।
सर्व्वपापहरा चैव तस्माद्दद्यात्समाहितः ॥

---

* शृतवृत्तरतायचेति क्वचित् पाठः ।

गुडधेनुवदत्रापि मन्त्रावाहनपूजनं ।
दत्त्वा फलमयीं धेनुं कामानां फलभाग्भवेत् ॥
तथा कास्तूरिकां धेनुं श्रद्धावित्तसमन्वितः ।
पात्रे दद्यान्नृपश्रेष्ठ मन्त्रमेतमुदीरयेत् ॥
इति विष्णुधर्म्मोक्तः कर्पूरादिधेनुदानविधिः ।

अथ सुवर्णधेनुदानं ।

श्रीभगवानुवाच ।

कथयामि रहस्यन्ते दानधर्म्मोपबृंहितं ।
सुवर्णधेनुसम्बन्धि सर्व्वपापोपशान्तिदं ॥
यद्ब्रह्मणापि राजेन्द्र विहितं विष्णुणा पुरा ।
तत्ते विस्तरतो राजन् कथयाम्यनुपूर्व्वशः ॥
सुवर्णस्य सुवर्णस्य शुद्धस्य परिकल्पितां ।
एकः सुवर्णशब्दः, हिरण्यवचनः, परः परिमाणवचनः ।
रौप्यवत्सकसंयुक्तां मुक्ताफलविभूषितां ।
प्रवालशृङ्गोपयुतां पद्मरागाक्षिशालिनीं ॥
घृतपात्रस्तनवतीं कर्पूरागुरुनासिकाम् ।
शर्करारसनोपेतां मृष्टान्नमुखसंमितां ॥
शङ्खशृङ्गान्तरां शुक्तिललाटस्थानकल्पितां ।
फलदन्तां वस्त्रयुग्मपार्श्वां क्षौमसुकम्बलां ॥
इक्षुपादां नालिकेरश्रवणां गुडजानुकाम् ।
पञ्चगव्यापानवतीं कांस्यपृष्ठसमन्विताम् ॥
सुपट्टसूत्रलाङ्गूलां सप्तधान्यसमन्विताम् ।

फलपुष्पसमोपेतां छत्रोपानत्समन्विताम्।
सुवर्णधेनुं विप्राय प्रतिपाद्येदृशीश्वरः॥
हिरण्यरेताः पुरुषः पुराणः कृष्णपिङ्गलः।
तप्तहेमच्छविः स्रष्टा विश्वात्मा प्रीयतामिति॥
अनेनैव तु मन्त्रेण धेनोर्दानं प्रकीर्त्तितं।
अश्वमेधसहस्रस्य फलमाप्नोत्यसंशयम्॥
कुलानान्तु सहस्रन्तु स्वर्गं नयति तद्बुधः।
किमन्यैर्व्वहुभिर्दानैः पर्य्याप्तं हेमधेनुना॥
सुवर्णधेनुं दत्त्वा हि कृतकृत्यो भवेन्नरः।
हिरण्यगर्भो भगवान् प्रीयतामिति कीर्त्तयेत्॥
उपवासविशुद्धात्मा दद्यात् सोमरविग्रहे।
रक्षः पिशाचास्तद्गेहं न पश्यन्ति नराधिप॥
कार्त्तिक्यां प्रयतो दद्याद्द्वादश्यां कार्त्तिकस्य तु।
दत्त्वा तत्पदमाप्नोति यत्र गत्वा न शोचति॥
इति विष्णुधर्म्मोक्तः सुवर्णधेनुदानविधिः।

अगस्त्य उवाच।

मनुना यं विधिं कृत्वा प्राप्ता लोका अनुत्तमाः।
ब्रवीमि तदहं हेमधेनुदानविधिं नृप।
शुभां हेममयीङ्गाञ्च कारयेद्राजतान् खुरान्॥
शुभां शुद्धसुवर्णैस्तु घटितान्, अत्र सुवर्णपरिमाणचतुर्थांश वत्सनिर्माणादिरनुक्ताङ्गोपसंहारः, पूर्व्वोक्तसुवर्णधेनोरवगन्तव्यः।
तां वस्त्रप्रावृतां कृत्वा प्राप्नुयाल्लोकमुत्तमम्।

विचित्रचित्रपुष्पैश्च गन्धधूपविलेपनैः।
तथा समापयेद्देवीं ताङ्गात्तत्र समर्पयेत्॥
देवि त्वदीयादादेशात्तवभक्तेषु दीयते।
पुनस्तां विप्रराजाय दापयेच्छिवभाविने॥

शिवभाविने, शिवध्यायिने।

अक्षय्यफलकामेन प्रायश्चित्तविशुद्धये।
ममुना चीर्णमेतद्धि सम्प्रतेयु नराः किल॥
सप्तपूर्व्वापरान्वंशान् रुद्रकिल्बिषसंस्थितान्।
उद्धृत्य वानयेद्यस्तु देवीलोकमनुत्तमम्॥
इति देवीपुराणोक्तो हेमधेनुदानविधिः।

वह्निपुराणात्। सुवर्णधेनुश्चाप्यत्र सुवर्णाश्च चतुर्दश।
सुनिर्णिक्तसुवर्णैश्च सप्तभिर्मध्यमा स्मृता॥
चतुर्भिः कन्यसा प्रोक्ता चतुर्थांशेन वत्सकः।
गुडधेनुविधानेन दत्ता सर्व्वफलप्रदा॥

विश्वामित्रः।

हिरण्यरेताःपुरुषः पुराणः कृष्णपिङ्गलः।
रत्नहेमच्छविः स्रष्टा विश्वात्मा प्रीयतामिति॥
हिरण्यगर्भोभगवान् प्रीयतामिति कीर्त्तयेत्।
सुवर्णधेनुन्दत्त्वा च कृतकृत्योभवेन्नरः॥

इति सुवर्णधेनुदानविधिः।

अथाह वृद्धगौतमः।

धेनुं स्वर्णमयीं कुर्य्यात् पूर्वेण विधिना ततः।

सुवर्णशृङ्गीं रत्नाढ्यां तथारौप्यखुरामपि ॥
तथा च तर्णकं कुर्य्यादष्टभागेन पूर्व्ववत् ।
ब्राह्मणं श्रुतसम्पन्नं वैष्णवं च कुटुम्बिनं ॥
आचारवन्तं धर्म्मिष्ठं द्विजशुश्रूषणोद्यतं ।
गृहमाहूय विधिवत् पूजयेत् पूर्व्ववच्च तं ॥
यथा विभवतोभक्त्या हेमः पूर्व्ववदेव हि ।
मन्त्रैस्तु वैष्णवैः सम्यक् पालाशसमिधस्तथा ॥
होमान्ते तां प्रदद्याच्च मन्त्रेणानेन मेहवान् ।
चक्रं सुदर्शनं यस्य राजतेजस्तथैव हि ॥
प्रमेहं हरतु क्षिप्र-विष्णुर्गरुडवाहनः ।
दानमन्त्रः । दानं प्रमेहरोगघ्नमेतत् कार्य्यं मनीषिभिः ।
कृतेनानेन शाम्यन्ति प्रमेहा दारुणा अपि ॥
अत्र पूर्ववदिति राजतवृषभदानवदिति ज्ञेयं ।

इति प्रमेहघ्नसुवर्णधेनुदानविधिः

अथाह बौद्धायनः ।

सौवर्णीं गां प्रकुर्व्वीत पलेनार्द्धेन वा पुनः ।
वित्तशाठ्यं न कुर्व्वीत कुर्व्वन्नैवं फलं भवेत् ॥
रत्नशृङ्गीं रौप्यखुरां नानावस्त्रैरलङ्कृतां ।
ग्रहाणामुपरि स्थाप्य नव धान्यानि विन्यसेत् ॥
होमस्तु पूर्व्ववत्कार्य्योगोविन्दप्रीतये हितः ।
एवं विष्णुप्रतद्विष्णुर्विष्णोर्मुकमितिक्रमात् ॥
समिदाज्यचरुं हुत्वा पूर्णाहुत्यन्तएव हि ।

ततस्तांतु शुची रोगी ब्राह्मणं वेदपारगं॥
श्रुतवृत्तोपसम्पन्नं कुलीनं धर्म्मवादिनं।
वृद्धं ज्ञानोपसम्पन्नमनुद्वेगकरं नृणां॥
भक्त्या स्वयं समानीय पूजयेत् प्रीतिपूर्व्वकं।
अङ्गुलीयकपात्राद्यैरुपानच्छत्रकैरपि।
मन्त्रेणानेन तां पात्रे दद्याद्रोगी यतात्मवान्॥
गोविन्दं मनसा ध्यायन् गवां मध्ये स्थितं शिशुं।
बर्हापीडकसंयुक्तं वेणुवादनतत्परं॥
गोपीजनैः परिवृतं वन्यपुष्पावतंसकं।

गोविन्द गोपीजनवल्लभेश
कंसासुरघ्न त्रिदशेन्द्रवन्द्य।
गोदानतुष्टः कुरु मे दयालो
अर्शोविनाशं क्षयितारिवर्गः॥

दानमन्त्रः। दानेनानेन नियतमर्शसां जायते क्षयः।
तस्मात् कुर्य्यात् प्रयत्नेन सुखार्थं ह्येतदर्शसो॥

इत्यर्शोघ्नसुवर्णधेनुदानविधिः।

अथ वायुपुराणे।

चतुर्विधाच या वन्ध्या भवेद्वत्सवियोजनात्।
वक्ष्ये तस्याः प्रतीकारन्तत्स्वरूपं निबोध मे॥
हिरण्येन यथा शक्त्या सवत्सां कारयेद्दृढां।
धेनुं पलेन वत्सञ्च पादेन गुरुरब्रवीत्॥
धेनुं रौप्यखुरां रत्नं तस्याः पुच्छे नियोजयेत्।

घण्टाङ्कले च बध्नीयात्सवत्सां प्राङ्मुखः शुचिः ॥
चन्दनागुरुकर्पूरैर्गन्धमाल्यैः सुशोभनैः ।
उपचारैः षोड़शभिर्नैवेद्यं पायसञ्चवेत् ॥
मोदकं च तथा पूपं गुड़ं लवणमेव च ।
जीरकं तु सुविस्तीर्णे सूपे वेणुमये दृढे ॥
धेनोरिकं प्रदातव्यं ब्राह्मणस्तोषु चैव हि ।
षड़ष्टौ दश वा दद्यात् तदनन्तरमेव च ॥
ब्राह्मणं सर्व्वशास्त्रार्थकुशलं धर्म्मवेदिनं ।
विद्याविनयसम्पन्नं शान्तं चैव जितेन्द्रियं ॥
अलोलुपं सर्व्वजनप्रियं कल्मषवर्ज्जितं ।
आहूय भक्त्या सम्पूज्य वस्त्राद्यैर्गन्धपुष्पकैः ॥
तेनैव कारयेत् पूजामाहतो धेनुवत्सयोः ।
होमं च कारयेत् तत्र समिदाज्यचरूत्कटम् ॥
सोमोधेनुमिति मन्त्रं समुच्चार्य्य ततः पुनः ।
प्राङ्मुखायोपविष्टाय प्रदद्यात्तामुदङ्मुखः ॥
मन्त्रेणानेन विधिवत् पुच्छे हस्तं विधाय च ।
धेनुर्याङ्गिरसः सा तु वशिष्ठे सुरभी च या ॥
दुहिता या तथा भानोरग्नेश्च वरुणस्य च ।
याश्च गावः प्रवर्त्तन्ते वनेषूपवनेषु च ॥
प्रीणन्तु ता मम सदा पुत्रपौत्रप्रदाः सुखं ।
प्रयच्छति दिवारात्रमविच्छेदश्च सन्ततेः ॥
दानमन्त्रः । एवं दत्त्वा तु तद्दानं प्रणिपत्य विसर्जयेत् ॥

इति बन्ध्यात्वहरसुवर्णधेनुदानविधिः ।

तथा । प्रखिन्नपाखिपादः स्यात् योऽहरेत रसादिकं ।
वक्ष्यामि तत् प्रतीकारं दानहोमादिकर्म्मणा ॥
पलार्द्धेन तदर्द्धेन तदर्द्धेनाथवा पुनः ।
कुर्य्याद्धेनुं सुवर्णेन वत्सस्तत्पादतो भवेत् ॥
एवं कृत्वा तु तां धेनुं वस्त्रेणावेष्ट्य शोभनां ।
गुड़स्योपरि संस्थाप्य पूजयेद्गन्धधूपकैः ॥
गुड़स्य च परीमाणं चत्वारिंशत्पलं भवेत् ॥
यद्वा तदर्द्धमेव स्याद्यथाविभवमेव वा ।
हव्यकव्यादि च घृतदधिक्षीरचतुष्टयं ॥
पादेष्वेकैकशः स्थाप्य पूर्व्वदक्षिणतः क्रमात् ।
शृङ्गाणि च पुनस्तस्याः कुङ्कुमेनानुलेपयेत् ॥
एवं विधाय तां धेनुं आचार्य्यः स्वर्णरूपिणीं ।
होमं समारभेत् कुण्डे स्थण्डिले वाथ पूजिते ॥
अग्निप्रणयनं कृत्वा ह्याचार्य्यः सर्व्ववेदवित् ।
धर्म्मज्ञो यज्ञवेदस्तु कुशलः क्रोधवर्जितः ॥
अनुद्वेगकरो नृणां पुराणार्थविदङ्गवित् ।
समिदाज्यतिलैश्चापि मन्त्रैरेभिः क्रमेण तु ।
आयंगौरितिमन्त्रेण समिद्धोमः प्रशस्यते ॥
शोभिर्द्येयदिमन्त्रेण आज्यहोमो बुधैः सह ।
तिलहोमो व्याहृतिभिरष्टोत्तरसहस्रकं ॥
एवं होमं च निर्वर्त्य नियोतस्याभिषेचनं ।
अग्नेः पूर्व्वोत्तरे देशे स्थापयेत् कुम्भमव्रणं ॥
क्षेतेन वाससा चैव मृत्तिकां गुग्गुलं तथा ।

गोरोचना सम्भवे च पञ्चभङ्गसमिश्रुते॥
मन्त्रैरथापोहिष्ठेति तिसृभिस्तन्तु रोगिणं।
हिरण्यवर्णाइति च पावमानेन चैव हि॥
शन्नोवातानुवाकेन शान्तिं प्रथममेव हि।
कृत्वाभिषेचनं कुर्य्यात् शुक्लाम्बरधरस्य तु॥
आहुतीनां च सम्पातैः पाणिपादौ च लेपयेत्।
ततस्तां पूजयेद्धेनुं रोगी गन्धाक्षतादिभिः।
गावएव सुरभय इतिमन्त्रेण भक्तितः॥
आचार्य्यायाथ तां दद्यात् प्राङ्मुखाय ह्युदङ्मुखः।
मन्त्रेणानेन विधिवत्पूजितायां न संशयः॥
आदित्यस्य सुता यास्तु देवानां याश्च धेनवः।
पितृणामपि यक्षाणां गन्धर्व्वाणां च सर्व्वशः॥
यक्षाणां गुह्यकानां तु वशिष्ठसुरभिस्तथा।
एतास्तुष्टा मम क्षिप्रन्धेनोरस्याः प्रदानतः॥
रसचौर्य्येण यज्जातं वैरूप्यं पाणिपादयोः।
तत्सर्व्वं नाशयन्त्याशु धेनवः सर्व्वतोषिताः॥
दानमन्त्रः। अनेन विधिना स्वर्णधेनुदानं करोति यः।
पूर्व्वकर्म्मविपाकोत्थं दुःखं सर्व्वं प्रणश्यति॥
दक्षिणां ब्राह्मणे दद्याद्यथाशक्त्याथ भक्तितः।
ब्राह्मणान् भोजयेच्चापि बन्धूनपि च भोजयेत्॥
स्वयं स्नात्वा च भुञ्जीत मृष्टाहारैस्तु संयतः।
दानेनानेन नियतं पादप्रस्वेदजां रुजं।
जयन्ति रोगिणः कार्य्यं पादप्रस्वेदिना ततः॥

इति पादप्रस्वेदस्वसुवर्णधेनुदानविधिः।

अथ स्वरूपतो गोदानं महाभारते।

दानानामिह सर्व्वेषां गवां दानं विशिष्यते।

गावः श्रेष्ठा पवित्राश्च पावना जगदुत्तमाः॥

ऋते दधिघृताभ्यां च नेह यज्ञः प्रवर्त्तते।

तेन यज्ञमशेषं हि गोमूलं सम्प्रचक्षते॥

गावोधिकास्तपस्विभ्यः सदा सर्व्वेभ्य एव च।

तस्मान्महेश्वरोदेवस्तदेताभिः सह स्थितः॥

पयसा हविषा दध्ना शकृताप्यथ चर्म्मणा।

अस्थिभिश्चोपकुर्व्वन्ति बालैः शृङ्गैश्च भारत॥

गोभिस्तुल्यं न पश्यामि धनं किञ्चिदिहाच्युत।

कीर्त्तनं श्रवणं दानं दर्शनं चापि पार्थिव॥

गवां प्रशस्यते वीर सर्व्वपापहरं परं।

गावोलक्ष्म्याः सदा मूलङ्गोषु पाप्मा न विद्यते॥

स्वाहाकारवषट्कारौ गोषु नित्यं प्रतिष्ठितौ।

गावो यज्ञप्रणेत्र्योवै तथा यज्ञस्य गौर्मुखं॥

अमृतं ह्यक्षयं दिव्यं रक्षन्ति च वहन्ति च।

अमृतायतनं चैताः सर्व्वलोकनमस्कृताः॥

न गोदानात्परं दानं किञ्चिदस्तीति मे मतिः।

सा गौर्न्यायार्ज्जिता दत्त्वा कृत्स्नन्तारयते कुलं॥

अमृतं वै गवां क्षीरमित्युवाच प्रजापतिः।

तस्माद्ददाति यो धेनुममृतत्वं स गच्छति॥

लिङ्गपुराणे। अग्न्यागाराणि विप्राणां देवतायतनानि च।

पूज्यन्ते गन्धता यासां किं देयमधिकं ततः॥
देवलः। विमानवरमारूढो दिव्याभरणभूषितः।
योगन्तु वाञ्छति स्वर्गं स गोदानं प्रयच्छतु॥
दानमप्यधिकं धेनोर्व्विद्यते वा समम्भुवि।
नियतं त्रिदशैर्व्वासः कल्पितोस्यास्तु विग्रहे॥

भविष्यत् पुराणे।

ब्रह्मोवाच।

आदित्यदुहिता गौर्हि पृथ्वीयं परिकीर्त्तिता।
श्रेयोऽर्थं सर्व्वलोकानामुत्पन्ना क्रतुसिद्धये॥
ब्राह्मणाश्चैव गावश्च कुलमेकं द्विधा कृतं।
एकत्र मन्त्रास्तिष्ठन्ति हविरेकत्र तिष्ठति॥
गोभ्यो यज्ञाः प्रवर्त्तन्ते गोभ्योदेवाः समुत्थिताः।
गोभ्यो वेदाः समुद्गीर्णाः सषड़ङ्गपदक्रमाः॥
शृङ्गमूले गवां नित्यं ब्रह्मविष्णू समाश्रितौ।
शृङ्गाग्रे सर्व्वतीर्थानि स्थावराणि चराणि च॥
शिरोमध्ये महादेवः सर्व्वभूतमयः स्थितः।
ललाटाग्रे स्थिता देवी नासावंशे च षण्मुखः॥
कम्बलेश्वतरौ नागौ नासापुटसुपालितौ।
कर्णयोरश्विनौ देवौ चक्षुषोः शशिभास्करौ॥
दन्तेषु वायवः सर्वे जिह्वायां वरुणः स्थितः।
सरस्वती च हुंकारे यमयक्षौ च गण्डयोः।
सन्ध्याद्वयं तथोष्ठाभ्यां ग्रीवामिन्द्रः समाश्रितः॥

रक्षांसि कक्षदेशे तु साध्याश्चोरसि संस्थिताः॥
चतुष्पात् सकलोधर्म्मः स्वयं जङ्घासु संस्थितः।
खुरमध्ये तु गन्धर्व्वाः खुराग्रेषु च पन्नगाः॥
खुराणां पश्चिमाग्रेषु गणाश्चाप्सरसां स्थिताः।
रुद्राश्चैकादश पृष्ठे वसवः सर्व्वसन्धिषु॥
श्रोणीतटस्थाः पितरः सोमोलाङ्गूलमाश्रितः।
आदित्यरश्मयोबालाः पिण्डीभूता व्यवस्थिताः॥
साक्षाद्गङ्गा च गोमूत्रे गोमये यमुना स्थिता।
क्षीरे सरस्वती देवी नर्म्मदा दधिसंस्थिताः॥
हुताशनः स्वयं सर्पिर्ब्राह्मणानां गुरुः परः।
अष्टाविंशतिर्द्देवानां कोटीरोमसु संस्थिताः॥
उदरे पृथिवी ज्ञेया सशैलवनकानना।
चत्वारः सागराःपूर्णा गवां ये तु पयोधराः॥
एतद्भिः कथितं सर्व्वं यथा गोषु प्रतिष्ठितं।
जगद्वै देवशार्दूल सदेवासुरमानवं॥

स्कन्दपुराणे।

तृणानि खादन्ति वसन्त्यरण्ये
पिबन्ति तोयान्यपरिग्रहाणि।
दुह्यन्ति वाह्यन्ति पुनन्ति पापं
गवां रसैर्जीवति जीवलोकः॥
तुष्टास्तु गावः शमयन्ति पापं
दत्तास्तु गावस्त्रिदिवन्नयन्ति।

संरक्षिताश्चोपनयन्ति वित्तं
गोभिर्न तुल्यं धनमस्ति किञ्चित् ॥
गव्यंसमश्नाति ददाति नित्यं
पापापहं मित्रविवर्द्धनं च ।
स एव चाढ्यः परिभुज्यते च
गोभिर्न तुल्यं धनमस्ति किञ्चित् ॥
तृणानि शुष्काणि वने चरित्वा
पीत्वापि तोयान्यमृतं स्रवन्ति ।
यद्गोमयाद्याश्च पुनन्ति लोकान्
गोभिर्न तुल्यं धनमस्ति किञ्चित् ॥

हारीतः । बहुक्षीराश्च योगा वै ब्राह्मणायोपपादयेत् ।
उत्तारयेत्स आत्मानं सप्त सप्त कुलानि च ॥

देवलः । सुशीलां लक्षणवतीं युवतिं वत्ससंयुतां ।
बहुदुग्धवतीं स्निग्धां धेनुं दद्याद्विचक्षणः ॥

वेदव्यासः । यश्चात्मविक्रयं कृत्वा गाः क्रीत्वा संप्रयच्छति ।
आत्मविक्रयतुल्यास्ताः शाश्वतीः ब्रह्मकौशिकः ॥

तथा । संग्रामेष्वर्जयित्वा तु यो वै गाः सम्प्रयच्छति ।
यावतीः स्पर्शयेद्गावः स तावत्फलमश्नुते ॥

तावदिति पूर्वोक्ततावद्गोरोमसम्मित ।
'संवत्सरं' स्वर्गफलमित्यर्थः ।
यो वैद्यूते धनं जित्वा क्रीत्वा गाः संप्रयच्छति ।
स दिव्यमयुतं शक्र वर्षाणां फलमश्नुते ॥
'अन्तर्जाताः, सुक्रयज्ञानलब्धाः

पणक्रीता निर्जिताश्चौकजाश्च।
कृच्छ्रोत्सृष्टाः पोषणाभ्यागताश्च द्वारैरेतैर्गोविशेषाः प्रशस्ताः॥
अन्तर्जाता गर्भिण्य इति भारतपदप्रकाशकारः।

शुक्रशलब्धाः यथामूल्यक्रयप्रासाः, पणक्रीताः भृतिलब्धाः, निर्जिता युद्धादिना औकजाः, गृहजाताः कृच्छ्रोत्सृष्टाः पोषणाभ्यागताइति, व्याध्यादिकृच्छ्राक्रान्ताः सत्यः स्वामिना यास्त्यक्ताः स्वयं च पोषणं कृत्वा लब्धाः।

कृष्टा दुष्टा दुर्व्वला व्याधिताच
न दातव्या याच मूल्यैरदत्तैः।
क्लेशैर्विप्रंया फलैः संयुनक्ति
तस्यावीर्य्याश्चाफलाश्चापि लोकाः॥
मूल्यैरदत्तैः स्वीकृतेति शेषः।

तथा। न कृशां पापवत्सां वा वन्ध्यांरोगान्वितां तथा।
न व्यंगामपरिश्रान्तां दद्याद्गां ब्राह्मणाय वै॥
योदद्यादुपयुक्तार्थां जीर्णान्धेनुञ्च निष्फलाम्।
तमः संप्रविशेद्दाता द्विजं क्लेशेन योजयेत्॥

ब्रह्मपुराणे।

पीतोदकां जग्धतृणां दुग्धचौषां निरिन्द्रियाम्।
उन्मत्तामङ्गहीनाञ्च मृतवत्सां महाशनां॥
केशवालपुरीषास्थिक्रव्यादां सन्धिनीं खलाम्।
पुटधेनुं यमलसूंनित्यं व्रणयितस्तनीं॥
न दद्याद्ब्राह्मणेभ्यश्च सदोषं वृषभन्तथा।
पीतोदकां जग्धतृणामिति, वृद्धत्वोपलक्षणपराम्।

दुग्धचोषां, स्वकीयस्तनपायिनीं, महागनाम्
अहुभग्नां, पुटघेनुं वाल्यावस्थेव या गर्भिणी

विश्वामित्रः।

नैकशृङ्गाञ्च निष्कृङ्गां स्फुटिताक्षीं चलत्खुराम्।
न दद्यात् त्रिस्तनीञ्चैव गां शुभामिव दापयेत्॥

**महाभारते।**

अम्बरीषोगवां दत्त्वा ब्राह्मणेभ्यः प्रतापवान्।
अर्बुदानि दशैकञ्च सराष्ट्रोऽभ्यपतद्दिवम्॥
दत्त्वा शतसहस्रन्तु गवां राजा प्रसेनजित्।
सवत्सानां महातेजा गतोलोकाननुत्तमान्॥
तथा। प्रासादा यत्र सौवर्णाः शय्या रत्नोज्ज्वलास्तथा।
वराश्चाप्सरसो यत्र तत्र गच्छन्ति गोप्रदाः॥
गोप्रदानरकत्वेति पयः पीत्वाम्बुजञ्जलम्।
विमानेनार्कवर्णेन दिवि राजन् विराजते॥
तञ्चारुवेषाः सुश्रोण्यः शतशोयरयोषितः।
रमयन्ति विमानस्थं दिव्याभरणभूषिताः॥
वेणूनां वल्लकीनाञ्च नूपुराणाञ्च निःस्वनैः।
हासैश्च हरिणाक्षीणां सुप्तः सन् प्रतिबुध्यते॥

यावन्ति रोमाणि भवन्ति धेन्वा
स्तावन्ति वर्षाणि महीयते स्वः।
स्वर्गाच्युतश्चापि ततस्त्रिलोके
कुले समुत्पत्स्यति गोमतां सः॥

विष्णुः। गोप्रदानेन स्वर्गमाप्नोति दशधेनुप्रदो गोलोकं शत-
प्रदश्च ब्रह्मलोकं।

जाबालः।

होमार्थमग्निहोत्रस्य योगान्दद्यादयाचिताम्।
त्रिर्वित्तपूर्णा पृथिवी तेन दत्ता न संशयः॥

याज्ञवल्क्यः।

यथाकथञ्चिद्दत्त्वा गां धेनुं वाधेनुमेव वा।
अरोगामपरिक्लिष्टां दाता स्वर्गे महीयते॥

अङ्गिराः। गौरेकस्यैव दातव्या श्रोत्रियस्य विशेषतः।
सा हि तारयते पूर्व्वान् सप्त सप्त च सप्त च॥

नन्दिपुराणे।

अपात्रे सा तु गौर्दत्ता दातारन्नरकं नयेत्।
कुलैकविंशत्यायुक्तं ग्रहीतारञ्च तारयेत्॥
विधिना च यदा दत्ता पात्रे धेनुः सदक्षिणा।
तदा तारयते जन्तून् कुलानामयुतैः शतैः॥
पात्राण्याध्यात्मिका मुख्या सुश्रुवाश्चाग्निहोत्रिणः।
देवताश्च तथा मुख्या गोदानं ह्येतदुत्तमं॥

महाभारते।

वृत्तिग्लानं सीदति चाति मात्रम
कृष्यार्थं चाहोमहेतोः प्रसूत्यां।
गुर्व्वर्थे वा बालसंवृद्धये वा
धेनुन्दद्याद्देशकालौ विशिष्टे॥

प्रस्तुत्यां सोमयागे,।

तथा न वधार्थं प्रदातव्या न कीनाशे न नास्तिके।
गोजीवे न च दातव्या तथा गौः पुरुषर्षभ॥

'कीनाशो' हलवाहकः,।

आत्रेयः। सीदते बहुभृत्याय श्रोत्रियायाहिताग्नये।
अतिथिप्रियाय दान्ताय देया धेनुर्गुडान्विता॥
अकुलीनाय मूर्खाय लुब्धाय पिशुनाय च।
हव्यकव्यव्यपेताय गौर्न देया कथञ्चन॥

अथ दानविधिः।

विश्वामित्रः। प्राङ्मुखीं गामवस्थाप्य सवत्सान्तां सुपूजितां।
पुच्छदेशे तु दाता वै स्नातो बद्धशिखो भवेत्॥
उदङ्मुखस्तु विप्रः स्यात्साचलक्षणलक्षितः।
आज्यपात्रं करे कृत्वा कनकेन समन्वितं॥
निक्षिप्य पुच्छं तस्मिंस्तु घृतदिग्धं प्रगृह्य च।
सतिलं विप्रपाणिन्तु प्रागग्रन्तु निधापयेत्॥
सतिलं स कुशञ्चापि गृहीत्वा दानमाचरेत्।
अनेनैव तु मन्त्रेण पात्रहस्तो जलं क्षिपेत्॥
यज्ञसाधनभूता या विश्वस्याघप्रनाशिनी।
विश्वरूपः परोदेवः प्रीयतामनया गवा॥
अनुव्रज्य तु तां धेनुं ब्राह्मणेन समन्वितां।
गोमतीन्तु ततो विद्यां जपेत प्रयतः शुचिः॥
उद्दिश्याथ वासुदेवं प्रीयतामिति चानघ।

पात्रं मनसि सञ्चिन्त्य तोयमप्सु विनिक्षिपेत् ॥
जलशायी ब्रह्मपिता पद्मनाभः सनातनः।
अनन्तभोगशयनः प्रीयतां परमः पिता ॥

गोमतीमाह यमः।

गावः सुरभयोनित्यं गावोगुग्गुलगन्धिकाः।
गावः प्रतिष्ठा भूतानां गावःस्वस्त्ययनं महत् ॥
अन्नमेव परं गावो देवानां हविरुत्तमं।
पावनं सर्व्वभूतानां रक्षन्ति च वहन्ति च ॥
हविषा मन्त्रपूतेन तर्पयन्त्यमरान्दिवि।
ऋषीणामग्निहोतॄणां गावो होमप्रतिष्ठिकाः ॥
सर्व्वेषामेव भूतानां गावः शरणमुत्तमम्।
गावः पवित्रं परमं गावो मङ्गलमुत्तमम् ॥
गावः सर्व्वस्य लोकस्य गावोधन्याः सवाहनाः।
नमोगोभ्य श्रीमतीभ्यः सौरभेयीभ्य एवच ॥
नमो ब्रह्मसुताभ्यश्च पवित्राभ्यो नमो नमः।
ब्राह्मणाश्चैव गावश्च कुलमेकं द्विधा कृतम् ॥
एकत्र मन्त्रास्तिष्ठन्ति हविरेकत्र तिष्टति।

अन्यापि गोमती, महाभारतोक्ता तिलधेनुदाने दर्शिता।
ततश्चानयोर्विकल्पानुष्ठानमिति।

सर्व्वगोदानसाधारणं मन्त्रमाह वशिष्ठः ॥

घृतक्षीरप्रदा गावो घृतयोन्यो घृतोद्भवाः।
घृतनद्यो घृतावर्त्तास्ता मे सन्तु सदा गृहे ॥

घृतं मे हृदये नित्यं घृतं नाभ्यां प्रतिष्ठित ।
घृतं मे सर्व्वतश्चैव घृतं मे मनसि स्थितम् ॥
गावोममाग्रतोनित्यं गावः पृष्ठत एव च ।
गावोमे सर्व्वतश्चैव गवां मध्ये वसाम्यहम् ॥
इत्याचम्य जपन् सायं प्रातश्च पुरुषः सदा ।
यदह्ना कुरुते पापं तस्मात्सपरिमुच्यते ॥

दक्षिणाचात्र सुवर्णं ।

यदाह वशिष्ठः ।

सुवर्णं दक्षिणामाहुर्गोप्रदाने महाफले ।
सुवर्णं परमं ह्यायुर्दक्षिणार्थे न संशयः ॥
गोप्रदानन्तारयते सप्त पूर्व्वान् नरांस्तथा ।
सुवर्णं दक्षिणां दत्त्वा तावद्द्विगुणमुच्यते ॥
सुवर्णं परमं दानं सुवर्णं दक्षिणा परा ।
सुवर्णं पावनं प्राहुः परिमाणं परन्तथा ॥

अत्र सुवर्णशब्दस्य हिरण्यपर्य्यायत्वे यथाशक्त्यानुष्ठानं आपरेत्वाहुः सकृदुच्चरितसुवर्णशब्दावगतपरिमाणार्थपरित्यागानुपपत्तेः सुवर्णशब्दस्य प्राहुरित्यादिक्रियाकर्म्मभूततया द्वितीयान्तत्वेन लिङ्गविशेषनिर्द्धारणाच्च परिमाणार्थतैव न्याय्येति एवं च सत्य नियतानुष्ठानप्रसङ्गभङ्गः तथापरिमाणपरन्तथेत्येतदपि समञ्जसं स्यात् ।

अत्र केचित्चोदयन्ति ।

एतदेव विधानं स्यात्तएवोपस्कराः स्मृताः ।

विधानमेतद्धेनूनां सर्व्वासामपि पठ्यते।

इति वचनात् प्रत्यक्षधेनोरपि सकलगुडधेनुधर्म्मप्राप्तौ शुक्तिकर्णत्तुपादादित्वमाचरणीयमिति तदसत् दशमी स्यात् स्वरूपत इति स्वरूपशब्द एव सवत्साङ्गीरूप धारिणीमुपकरणादिविहीनान्धेनुमवगमयन् शुक्त्यादिमयीं कर्णादिप्रतिकृतिकृतिं निवारयति सर्व्वशब्दस्य प्रकृतापेक्षोपि स्वरूपधेनुवर्जमवतिष्ठते तस्मात् तत् स्वरूपधेन्वा गुडधेनोरितिकर्त्तव्यता कर्त्तव्येति वक्ष्यमाणसुवर्णशृङ्गिकाविधिस्तु भिन्न एवेति सर्व्वमनवद्यं।

इति गोदानविधिः।

अथ स्कन्दपुराणे।

सवत्सां कांस्यदोहनां हेमशृङ्गीं रूप्यखुराम्।
दुकूलक्षौमवासितां शय्यास्तरणसम्पन्नाम्॥
तद्दृपुष्पफलैर्युतां ब्राह्मणान् तर्पयित्वात्।
यो नरोगां प्रयच्छेत्तु गन्धमाल्यैरलङ्कृतां।
देवैरध्यासितां तां तु सर्वैस्तद्दद्द्येन तु॥
मृदुबन्धेन बध्नीयात्ततः श्लक्ष्णेन रज्जुना।
कुशान् सुवर्णबीजानि तिलाः सिद्धार्थकास्तथा॥
प्रदद्यात्तान्ततोद्दिश्य मन्त्रेणानेन सुव्रत।
सर्व्वदेवमयीं दोग्ध्रीं सर्व्वलोकमयीं तथा॥
सर्व्वलोकनिमित्तास्तां सर्व्वदेवनमस्कृतां।
प्रयच्छामि महात्वामक्षयाय शुभामिति॥

एवं स दत्त्वा योगान्तु यत्र यत्र प्रजायते ।
तत्र तत्र गता सा तान् जन्तूंस्तारयते भयात् ॥
सर्व्वलोकान्तरे गत्वा रमते च यथानरः ।
स तथा मानवीजातो गोसहस्री महाबलः ॥
रूपवान् धनवांश्चैव बहुपुत्रश्च जायते ।

कात्यायनः ।

शीलोपपन्नां सवनोत्तरीयां
कांस्योपदोहां कनकान्तशृङ्गीं ।
विप्राय दत्त्वा भगवन् प्रियाय
प्रयाति लोकानमृतान् सुपुण्यान् ॥

संवर्त्तः । योददाति शफैरौप्यैर्हेमशृङ्गीमरोगिणीं ।
सवत्सां वस्त्रसंयुक्तां सुशीलां गां पयस्विनीं ॥
यावन्ति तस्या रोमाणि सवत्साया दिवङ्गतः ।
तावती वत्सरामास्ते स नरोब्रह्मणोन्तिके ॥

देवलः । चामीकरमये शृङ्गे कृते रौप्यमयाः खुराः ।
कांस्यजं दोहनं पृष्ठं ताम्रं वस्त्रयुगान्विता ॥
पुष्पमालावृता धूपघण्टाचामरमण्डिता ।
दीयते पुच्छदेशेन अथवा दक्षिणान्विता ।
दत्त्वैवं दत्तभोगाढोदिव्यस्त्रीवृन्दसंवृतः ।
गोवत्सरोमतुल्यानि वर्षाणि दिवि मोदते ॥

इति हेमशृङ्गीदानविधिः ।

नन्दिपुराणे।

योगां सुपरिपूर्णाङ्गीं हेमशृङ्गीमकोपनां।
सुशीलां राजतैः पादैश्चित्रवस्त्रसुसंवृतां॥
सलोहपात्रां कुतपे निविष्टचरणां तथा।

कुतपोऽत्र नेपालकम्बलः।

स दक्षिणां प्रदद्यात्तां सोऽक्षयं स्वर्गमाप्नुयात्॥
यदि रोमाणि यावन्ति प्रसूतिकुलसंश्रितः।
तावन्त्यब्दानि वसति स्वर्गे दाता न संशयः॥

इत्यपरहेमशृङ्गीदानविधिः।

एतच्छतगुणं पुण्यं कपिलादानतः स्मृतम्।

अथ मत्स्यपुराणे।

दशसौवर्णिके शृङ्गे खुराः पञ्चपलान्विताः।
पञ्चाशत्पलिकं कांस्यन्ताम्रं वापि तथैव च॥
दाता स्यात् स्वर्गमाप्नोति यावदाहूतसंप्लवं।

'पञ्चपलानि' रौप्यस्येति विज्ञेयं।

ताम्रं पृष्ठे कांस्य दोहनं।

आच्छादनार्थं वासोयुगं सुवर्णदक्षिणेत्यपि बोद्धव्यं।

इति कनकशृङ्गीदानविधिः।

ब्रह्म पुराणे।

गान्दद्यादिदपूर्णाय विप्राय गृहमेधिने।
सुवर्णालङ्कृतशृङ्गीं वस्त्रघण्टासमन्वितां॥

प्रत्यग्रां त्रिसमृद्धां तु ललाटतटतर्पणां।
राजतच्छन्नचरणां मुक्तालाङ्गूलभूषितां॥
कांस्योपदोहां-तस्माच्च लवणादितृणोदकैः।
गवां पुच्छं गृहीत्वा च ससुवर्णेन पाणिना॥
गृहस्थोवेदविद्विप्रोदापयेत् तत्प्रतिग्रहं।
भोगसौख्यप्रदाश्चैता गोमाता पापनाशिनी॥
कृष्णा स्वर्गप्रदा ज्ञेया गौरी च कुलवर्द्धनी।
रक्ता रूपप्रदा ज्ञेया पीता दारिद्र्यघातिनी॥
पुत्रप्रदा कृष्णसारी नीला धर्म्मविवर्द्धनी।
कपिला सर्व्वपापघ्नी नानावर्णा च मोक्षदा॥

प्रत्यग्रा नववयस्का, त्रिसमृद्धा गोलक्षीरप्रसवगुणयुक्ता, लवणादितृणोदकैस्तृप्तेति सर्वदा लवणादिषु तुष्टेत्यर्थः।

इति सुवर्णशृङ्गीदानविधिः।

आदित्यपुराणे।

कृष्णाङ्गान्ददते यस्तु पट्टच्छन्नां स्वलङ्कृतां।
घण्टामालाकुलां कृत्वा पुष्पैश्चैवाप्यरस्कृतां॥
विधिवच्च द्विजातिभ्यो यमलोकं न पश्यति।
आयुरारोग्यमैश्वर्य्यं दाता कामांश्च मानसान्॥
श्वेताङ्गान्ददते यस्तु दिव्यं रत्नैरलङ्कृतां।
घण्टामालाकुलां कृत्वा पुष्पैश्चैवाप्यलङ्कृतां॥
मुखे धूपः प्रदातव्यो घृतेनास्यञ्च पूरयेत्।
सुवर्णशृङ्गाभरणा तथा रौप्यखुरा शुभा॥

पट्टच्छन्ना शुभाचैव दातव्या ध्यानयोगिने ।
यस्तु दद्याच्च गां श्वेतां तस्य पुण्यफलं शृणु ॥
जन्मप्रभृति यत् पापं मातृकं पैतृकं च यत् ।
कुलोद्भवस्य हस्तस्य तत्क्षणादेव नश्यति ॥
गान्ददानीह इत्येव वाचा पूर्येत सर्व्वशः ।
पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः ॥
नरकस्थाः प्रमुच्यन्ते सोमलोकं व्रजन्ति ते ।
गौरीं चैव प्रयच्छेत्तु यस्तु गां वै नरः शुचिः ॥
अहोरात्रोषितश्चैव कृतशौचो नरः सदा ।
सुवर्णशृङ्गीं रौप्यखुरां मुक्तालाङ्गूलभूषितां ॥
घण्टामालाकुलां चैव गन्धपुष्पैरलङ्कृतां ।
कृतपश्चास्तरेत् प्राज्ञो मुखे धूपं प्रदापयेत् ॥
भक्ष्यभोज्यान्नपानेन ब्राह्मणान् भोजयेच्छुभान् ।
गान्ददानीह इत्येव वाचा पूर्येत सर्व्वशः ॥
मातृकं पैतृकं चैव यच्चान्यद्दुष्कृतं भवेत् ।
पापञ्च तस्य तत् सर्व्वं दहत्यग्निरिवेन्धनम् ॥
वर्षकोटिसहस्रन्तु पुमान् स दिवि मोदते ।
दासीदासैरलङ्कारैस्तूयते सर्व्वजन्तुभिः ॥
अरोगश्चैव जायेत तेजस्वी च भवेन्नरः ।
नीलवर्णाञ्च गान्दद्याद्दोगध्रीं शीलगुणान्विताम् ।
सुवर्णशृङ्गीं रौप्यखुरां मुक्तालाङ्गूलभूषिताम् ॥
पट्टच्छन्नां शुभां सौम्यां घण्टादामैरलङ्कृताम् ।
पञ्चरङ्गेण सूत्रेण गण्डवेष्टनशोभिताम् ॥

रुद्रस्य प्रमुखे देया विष्णोश्च ब्रह्मणश्च ह।
गां ददानीह इत्येववाचा पूयेत सर्व्वशः॥
पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः।
नरकस्थाः प्रमुच्यन्ते नीलां गां ददते तु यः॥
वर्षकोटिसहस्राणि लोके तिष्ठति वारुणे।
दधिक्षीरवहा नद्यो वर्त्तन्ते सर्व्वतः सदा॥
घृतशैलाः प्रपद्यन्ते नवनीतस्य पर्व्वताः।
कृषिभागी बहुधनो दुर्भिक्षञ्च न पश्यति॥

इति नानागोदानविधिः।

महाभारते। समानवत्सां कपिलां धेनुं दत्त्वा पयस्विनीम्।
सुव्रतां वस्त्रसम्पन्नां ब्रह्मलोके महीयते॥

समानवत्सां समानवर्णवत्सां।

रोहिणीन्तुल्यवत्सां च धेनुं दद्यात्पयस्विनीं।
सुव्रतां वस्त्रसंवीतां इन्द्रलोके महीयते॥
समानवत्सां शवलां धेनुं दत्त्वा* पयस्विनीं।
सुव्रतां वस्त्रसंवीतां सोमलोके महीयते॥

'शवला, कर्व्वुरा।

समानवत्सां कृष्णान्तु धेनुं दत्त्वा पयस्विनीं।
सुव्रतां वस्त्रसंवीतां अग्निलोके महीयते॥
वातरेणुसुवर्णान्तु सवत्सां कामदोहिनीं।
प्रदाय वस्त्रसंवीतां वायुलोके महीयते॥

---

* श्वेतान्त्विति क्वचित् पाठः।

समानवत्सां धूम्रान्तु धेनुं दत्त्वा पयस्विनीं।
सुव्रतां वस्त्रसंयुक्तां यमलोके महीयते॥
अर्थ्यां हेमसवर्णान्तु सवत्सां कामदोहनाम्।
प्रदाय वस्त्रसंवीतां वारुणं* लोकमश्नुते॥

अर्घ्या, गौः, कामदोहनां अनायासदोह्याम्।

हिरण्यवर्णां पिङ्गाक्षीं सवत्सां कामदोहनाम्।
प्रदाय वस्त्रसम्वीतां कौवेरं लोकमाप्नुयात्॥
पलालधूमवर्णान्तु सवत्सां कामदोहनाम्।
प्रदाय वस्त्रसंवीतां पितृलोके महीयते॥
सवत्सां पीवरीन्दत्त्वा सितकण्ठीमलङ्कृताम्।
वैश्वदेवमसम्बाधं स्थानं श्रेष्ठं प्रपद्यते॥

सितकण्ठीं कृष्णगलां।

समानवत्सां गौरीन्तु धेनुन्दत्त्वा पयस्विनीं।
सुव्रतां वस्त्रसंवीतां वसूनां लोकमश्नुते॥

'सुव्रता, सुखदोह्या।

पाण्डुकम्बलवर्णान्तु सवत्सां कामदोहनाम्।
प्रदाय वस्त्रसंवीतां साध्यानां लोकमश्नुते॥
वत्सोपपन्नांनीलाङ्गीं सर्व्वरत्नसमन्विताम्।
गन्धर्वाप्सरसां लोकान् दत्त्वा प्राप्नोति मानवः॥
गोप्रदानरतोयाति पीत्वा जलदसञ्चयान्।
विमानेनार्कवर्णेन दिवि राजन् विराजते॥

* कौवेरमिति क्वचित् पाठः

तस्याश्चैषाः सुश्रोण्यः सहस्रं वरयोषितः।
रमयन्ति नरश्रेष्ठं गोप्रदानरतन्नरम्॥

इति समानवत्सगोदानविधिः।

आदित्य पुराणे।

कपिलां ये प्रयच्छन्ति चेलच्छन्नां स्वलङ्कृताम्।
सुवर्णशृङ्गीं रौप्यखुरां मुक्तालाङ्गूलभूषिताम्॥
श्वेतवस्त्रपरिच्छन्नां घण्टास्वनरवैर्युताम्॥

घण्टास्वनरवैः, घण्टाशब्दकोलाहलैः।

सहस्रं योगवान्दत्त्वा कपिलाश्चापि सुव्रत।
सममेव पुरे प्राह ब्रह्मा ब्रह्मविदांवरः॥
यावन्ति रोमकूपाणि कपिलाङ्गे भवन्ति हि।
तावत्कोटिसहस्राणि वर्षाणां दिवि मोदते॥
रुक्मशृङ्गीं रौप्यखुरां मुक्तालाङ्गूलभूषिताम्।
कांस्योपदोहनां धेनुं दत्त्वच्छन्नामलङ्कृताम्॥
दत्त्वा द्विजेन्द्राय नरः स्वर्गलोके महीयते।
दशधेनुप्रदानेन तुल्यैका कपिला मता॥

याज्ञवल्क्यः।

हेमशृङ्गी शफैरौप्यैः सुशीला वस्त्रसंयुता।
सकांस्यपात्रा दातव्या क्षीरिणी गौः सदक्षिणा॥
दातास्याः स्वर्गमाप्नोति वत्सरान् रोमसंमितान्।
कपिला चेत्तारयति भूयश्चासप्तमं कुलम्॥

व्यासः। रुक्मशृङ्गीं रौप्यखुरां वस्त्रकांस्योपदोहनाम्।

सवत्सां कपिलान्दत्त्वा वंशान् सप्त समुद्धरेत् ॥
यावन्ति तस्या रोमाणि सवत्सायाा भवन्ति हि।
सुरभीलोकमासाद्य रमते तावतीः समाः ॥

लोकोत्तरे।

घण्टाचामरसंयुक्ता किङ्किणीजालमण्डिता।
दिव्यवस्त्रसमायुक्ता हेमदर्पणभूषिता ॥
पयस्विनी सुशीला च तरुणी वत्सकान्विता।
कपिलैवं प्रदातव्या शिवस्याग्रे विधानतः ॥

दानमन्त्रस्तु मत्स्यपुराणे

कपिले सर्व्वभूतानां पूजनीयासि रोहिणि।
तीर्थदेवमयी यस्मादतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥

इति कपिलादानविधिः।

कूर्म्मपुराणात्।

दशसौवर्णिके शृङ्गे खुराः पञ्चपलान्विताः।
पञ्चाशत्पलिकन्ताम्रं कांस्यं चैतावदेव तु ॥
वस्त्रन्तु त्रिगुणञ्चैवा दक्षिणा च चतुर्गुणा।
एतैरलङ्कृतां धेनुं घण्टाभरणभूषिताम् ॥
कपिलां विप्रमुख्याय दत्त्वा मोक्षमवाप्नुयात्।
द्विगुणोपस्करोपेता महती कपिला स्मृता ॥
दत्त्वा सा विप्रमुख्याय स्वर्गमोक्षफलप्रदा।
सप्तजन्मकृतात्पापान्मुच्यते दशसंयुतान् ॥

यानन्यान् प्रार्थते कामांस्तांस्तान् प्राप्नोति मानवः ।
अन्ते स्वर्गापवर्गं चौ फलमाप्नोत्यसंशयः ॥

इति कपिलादानविधिः ।

अथ देवतोद्देशेन गोदानं ।

लिङ्गपुराणे ।

देवदक्षिणदिग्भागे धेनुः कार्य्या उदङ्मुखी ।
प्राङ्मुखं वत्सकं कृत्वा ब्राह्मणं च उदङ्मुखम् ॥
प्राङ्मुखो यजमानस्तु पूजयेद्ब्राह्मणं ततः ।
कोदादितिचमंन्त्रेण गृह्णीयाद्ब्राह्मणः स्वयम् ॥

देवोऽत्र महेश्वरः ।

एवंविधानतो दत्त्वा याति दाता शिवालयं ।
तत्र भुक्त्वाक्षयान् भोगानन्ते ब्रह्मैति शाश्वतम् ।

देवीपुराणे ।

नीलां वा यदि वा श्वेतां पाटलां कपिलामपि ।
सदुग्धां वत्सलाश्चैव सुखदोह्यां सुगामपि ॥
आदाय विधिवद्देवीं पूजयेच्छुभपङ्कजैः ।
धूपन्तु पञ्चनिर्य्यासन्तुरुष्कागुरुचन्दनम् ॥
दत्त्वा तु मन्त्रपूर्व्वन्तु नैवेद्यमुपकल्पयेत् ।
पायसं घृतसंयुक्तं चामयेच तथा तु ताम् ॥
द्विजाय शिवभक्ताय सवत्साङ्गां निवेदयेत् ।
सहेमवस्त्रकांस्याञ्च महापुण्यमवाप्नुयात् ॥

यावत्तद्रोमसंख्यानं तावद्देव्याः पुरम्वसेत्।
इहैव गतपापोऽसौ जायते नृपसत्तम॥

विष्णुधर्म्मे मान्धाता उवाच।

ब्राह्मणः प्रीणनार्थाय केशवस्य शिवस्य च।
यानि दानानि देयानि तान्याचक्ष्व द्विजोत्तम॥
येन चैव विधानेन दानं पुंसः सुखावहम्।
ऐहिकामुष्मिकांस्तिञ्च करोति न विहन्यते॥

वसिष्ठ उवाच।

गोदानमादौ वक्ष्यामि प्रत्यक्षक्रमयोगतः।
येनचैव विधानेन धेनुं नाधिकविस्तरम्॥
पुण्यन्दिनमथासाद्य स्नात्वातर्प्य पितॄंस्तथा।
कृतोपवासः सम्प्राश्य पञ्चगव्यं नरेश्वर॥
घृतक्षीराभिषेकञ्च कृत्वा विष्णोः शिवस्य च।
तमभ्यर्च्य यथान्यायं पुष्पादिभिरनुक्रमात्॥
उदङ्मुखीं प्राङ्मुखीं वा गृष्टिं कृत्वा पयस्विनीं।

'गृष्टिः' सकृत्प्रसूतेत्यर्थः।

सपुत्रां वस्त्रसंवीतां सितयज्ञोपवीतिनीम्।
स्वर्णशृङ्गीं रौप्यखुरां सुवर्णोपरि संस्थिताम्॥
शक्तितोदक्षिणायुक्तां ब्राह्मणाय निवेदयेत्।
गावो ममाग्रतः सन्तु गावो मे सन्तु पृष्ठतः॥
गावो मे हृदये सन्तु गवां मध्ये वसाम्यहम्।

प्रदक्षिणं ततः कृत्वा धेनुं द्विजवरञ्च तम् ॥
इमां नः प्रतिगृह्णीष्व धेनुर्दत्ता मया तव ।
स मे पापापनोदाय गोविन्दः प्रीयतामिति ॥

वह्निपुराणे तु

अयमधिको मन्त्रः ।

या धेनुः काश्यपस्यासीदत्रेर्व्वा गौतमस्य च ।
साभिकामफला देवि इह लोके परत्र चेति ॥
एवमुच्चार्य्य तं विप्रं गोविन्दं नृप कल्पयेत् ।
अनुव्रजेत्तु गच्छन्तं पदान्यष्टौ नराधिप ॥
अनेन विधिना धेनुं यो विप्राय प्रयच्छति ।
सर्व्वकामसमृद्धात्मा विष्णुलोकं स गच्छति ॥
सप्तावरान् सप्तपरानात्मानञ्चैव मानवः ।
सप्तजन्मकृतात्पापान्मोचयत्यवनीपते ॥
पदे पदेऽश्वमेधस्य गोसवस्य च मानवः ।
फलमाप्नोति राजेन्द्र इत्याहैवञ्जगौ हरिः ॥
सर्व्वकामदुघा सम्यक् सर्व्वकालेषु पार्थिव ।
भवत्यघौ पापहरा यावदिन्द्राश्चतुर्द्दश ॥
सर्व्वेषामेव पापानां कृतानामविजानता ।
प्रायश्चित्तमिदं प्रोक्तमनुतापोपवृंहितम् ॥
सर्व्वेषामेव दानानामेकजन्मानुगं फलम् ।
हाटकक्षितिगौरीणां सप्तजन्मानुगं फलम् ॥
ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैश्चान्यैश्च मानवैः ।

लोकाः कामदुघाः प्राप्ता दत्त्वैतद्विधिना नृप ॥
गोभ्योऽधिकं जगति नापरमस्ति किञ्चि-
द्दानम् पवित्रमिति शास्त्रविदोवदन्ति।
ताः सम्प्रदैः सुरसदश्च समीहमानै-
र्देया सदैव विधिना द्विजपुङ्गवेभ्यः।

इति देवतोद्देशेन गोदानविधिः।

अथ देवताभ्यो गोदानम्।

स्कन्दपुराणे।

शिवाय विष्णवे चापि यस्तु दद्यात्पयस्विनीम्।
धेनुं स्नानोपहारार्थं स परं ब्रह्म गच्छति ॥

भविष्यत्पुराणे।

सौरीं सूर्य्याय योदद्यात्तरुणीश्च पयस्विनीम्।
तेन दत्तं भवेत्सर्व्वं जगत् स्थावरजङ्गमम् ॥
'सौरी, सूर्य्यसुता धेनुरित्यर्थः।
स्नानाग्निकार्य्यमुद्दिश्य सुरूपां सुपयस्विनीम्।
कुलीनां कपिलान्दत्वा दत्तं भवति गोशतम् ॥
य एवं गामलङ्कृत्य दद्यात् सूर्य्याय मानवः।
सोऽश्वमेधस्य यज्ञस्य फलमष्टगुणं लभेत् ॥
तथा। योदद्यादुभयमुखीं सौरभेयीं दिवाकरे।
सप्तद्वीपां महीं दत्त्वा यत् फलं तदवाप्नुयात् ॥
पादद्वयं शिरोऽश्च यदा स्यादेव निर्गतम्।
तदा सा पृथिवी ज्ञेया सशैलवनकानना ॥

अथ वृषभैकादशीदानम्।

शिवधर्म्मात्।

दश गावः स वृषभा वृषभैकादशी स्मृता।
शिवाय विनिवेद्यैवं विशुद्धेनान्तरात्मना॥
रुद्रैकादशतुल्यात्मा बलभोगादिभिर्गुणैः।
शिवादिसर्व्वलोकेषु यथेष्टं मोदते वशी॥

भविष्यत्पुराणे।

दश गावः स वृषभा वृषभैकादशश्च ताः।
सूर्य्याय विनिवेद्येह यत्फलं लभते शृणु॥
द्वादशादित्यतुल्यात्मा अणिमादिर्गुणैर्युतः।
सौरादिसर्व्वलोकेषु यथेष्टं मोदते दिवि॥

अथ वृषभाधिकगोशतदानं।

शिवधर्म्मोत्तरात्।

वृषभं गोशतं दद्याच्छिवायातीव शोभनम्।
त्रिःसप्तकुलजैः सार्द्धं शृणु यत् फलमाप्नुयात्॥
सूर्य्यकोटिप्रतीकाशैर्व्विमानैः सार्व्वकामिकैः*।
अनेकयानसंख्यानैरसुरासुरपूजितैः॥
शतरुद्रबलोपेतो वीरभद्र इवापरः।
गत्वा शिवपुरन्दिव्यमशेषाधिपतिर्भवेत्॥

भविष्यत्पुराणे।

सवृषं गोशतं दत्त्वा भास्कराय नराधिप।

* सार्व्वभौमिकैरिति क्वचित् पाठः।

त्रिः सप्तकुलजैः सार्द्धं शृणु यत्फलमाप्नुयात्॥
सूर्य्यकोटिप्रतीकाशैर्दिवाकर इवापरः।
गत्वादित्यपुरं रम्यं क्रीड़ते सूर्य्यवन्नृपः॥
भुक्त्वा तु विपुलान् भोगान् प्रलये सर्व्वदेहिनाम्।
मोहकञ्चुकमुत्सृज्य विशत्यादित्यमण्डलम्॥
सर्व्वज्ञः सूर्य्यपरमः शुद्धस्वात्मनि संस्थितः।
सर्व्वगः परिपूर्णत्वात् सूर्य्यवद्दीप्तिमान् भवेत्*॥

इति देवतागोदानविधिः।

अथ त्रिरात्रगोदानविधिः।

विष्णुधर्म्मोत्तरे।

हेमशृङ्गीं रौप्यखुरां मुक्तालाङ्गूलभूषणाम्।
अहताम्बरसंवीतां तथाकांस्योपदोहनाम्॥
त्रिरात्रं स्थण्डिले सुप्त्वा त्रिरात्रं गोरसाशनः।
तस्यान्तु तर्पिते दत्त्वा वाससा संवृते द्विजे॥
सदक्षिणा महाभाग त्रिरात्रं गोरसैस्ततः।
प्राणसन्धारणङ्कृत्वा शिवलोके† महीयते॥
यावन्ति धेनोरोमाणि तावद्वर्षाणि मानवः।
दत्त्वैवं कपिलां विप्राः प्राप्नोत्यभ्यधिकं फलम्॥

महाभारते।

---

* सूर्य्यवद्दीप्तिमाप्नुयादिति क्वचित्पाठः।

† गवां लोके इति क्वचित् पाठः।

तिस्रोरात्रीस्त्वद्भिरुपोष्य भूमौ
तृप्ता गावः स्तर्पितेभ्यः प्रदेयाः ।
वत्सैः पीताः सुप्रजाः सोपचारा
स्त्र्यहं दत्त्वा गोरसैर्व्वर्त्तितव्यं ॥

तथा । द्विजातिमभिसत्कृत्य श्वःकल्पमुपवेद्य च ।
प्रदानार्थे नियुञ्जीत रोहिणीं नियतव्रतः ॥

श्वःकल्पमुपवेद्य प्रातःकाल उपस्थानं कर्त्तव्य इति ज्ञापयित्वा, आह्वानञ्च प्रयुञ्जीत समङ्गे बहुले इति ।

प्रविश्य च गवां मध्यमिमां श्रुतिमुदाहरेत् ।
गौर्मे माता वृषभश्च पिता मे
दिवं शर्म्म मे प्रतिष्ठा प्रपद्ये ।
प्रपद्यैकां सर्व्वरीमुष्यगोषु
मुनिर्वाणीमुत्सृजे गोप्रदाने ॥
समतामेति वै गोभिः समसख्यः समव्रतः ।
एकात्म्यगमनात्सद्यः कल्मषात् द्विप्रमुच्यते ॥
उत्सृष्टवृषवत्सा हि प्रदेया सूर्य्यदर्शने ।

उत्सृष्टौ त्यक्तौ वृषवत्सौ यया सा तथा,

ऊर्ज्जस्विन्य ऊर्ज्जमेधाश्च यज्ञो
गर्भो अमृतस्य प्रतिष्ठा क्षितौ
प्रवाहाः पुण्यभावाः प्राजापत्याः
सर्व्वमित्यर्थवादः श्रुतौहि सः ॥
गावोममैनः प्रमुदन्तु सौर्य्या
स्तथा सौम्याः स्वर्गयानाय सन्तु ।

आहृता मे ददतस्ताश्रयन्तु।
तथा मुक्ताः सन्तु सर्व्वाशिषो मे॥
शेषोत्सर्गे कर्म्मभिर्देहमोक्षे
सरस्वत्यः श्रेयसि सम्प्रवृत्ताः।
यूयन्नित्यं पुण्यकर्म्मोपवत्यः।
दिश त्वं मे गतिमिष्टां प्रपन्नाः॥
या वै यूयं सोऽहमाद्यैकभावो।
युष्मान् दत्त्वा चाहमात्मप्रदाता॥
नमस्कृता मन एवोपपन्नाः।
संरक्षध्वं सौम्यरूपोग्ररूपाः॥
एवन्तस्याग्रे पूर्व्वमर्द्धं वदेद्वै।
गवां दाता विधिवत् पूर्व्वदृष्ट्या॥
प्रतिभूयाच्छेषमर्द्धं द्विजातिः
प्रतिगृह्णन् गोप्रदाने विधिज्ञः॥
पूर्व्वमर्द्धं, यावैयूयमित्यादिकं।
गां ददानीति वक्तव्यमर्घ्यं मुस्रावसुप्रदत्।
उधस्या नमितव्याच वैष्णवीतिच चोदनात्।
नाम संकीर्त्तयेत्तस्या यथासंख्यं यथोत्तरं॥
फलषट्त्रिंशदष्टौ च सहस्राणि च विंशति।
एवमेतान् गणान् वुद्धा गवादीनां यथा क्रमं॥
गोप्रदाता समाप्नोति समस्तानष्टमेक्रमे।
'अर्घ्यं' अर्घार्हं, 'उस्रावसु, गोधनं प्रदत्,
प्रददत्, उधस्यं चौरं तद्युक्ता उधस्या

अष्टमे क्रमे, गवि दत्तायां गच्छन्त्यामष्टमे पदे।

गोदः शीलां निर्भयश्चार्घदाता
नस्योती वै वसुदाता च कामी।
उपस्योढाभारं नयस्व विद्वान्।
विख्यातास्ते वैष्णवाश्चन्द्रलोकाः।
गां वै दत्त्वा गोव्रती स्याच्चिरात्रं
निशां चैकां सम्बसेतेह ताभिः॥
काम्याष्टम्यां वर्त्तितव्यं त्रिरात्रं
गवां रसैर्वा प्रकृता प्रस्रवैर्वा।
वेदव्रती स्यादृषभप्रदाने
वेदावाप्तिर्गोयुगस्य प्रदाने॥
तथा, गवां विधि मासाद्य यज्वा
लोकानग्र्यान् विन्दते नाविधिज्ञः।

वसुदा द्रव्यदाः।

'कामी, काम्यफलवान्।
'उधस्योढा, उपस्थावाहयिता गायत्र्या इत्यर्थः।
'काम्याष्टमी, रोहिणीयुक्ताष्टमी। रसैर्दध्यादिभिः।
'प्रस्रवैः, क्षीरैः।
'वेदव्रती, वेदव्रतफलवान्।
'गवांयज्वा, गोप्रदाता।

कामान् सर्व्वान् पार्थिवानेकसंस्थान्।
योवै दद्यात् कामदुग्धाश्च धेनुं।

सम्यक्तास्थहं व्यकव्यौघवत्य
स्तासामुक्तं श्रायस संप्रदानं ॥
न चाशिष्यायाव्रतायोपकुर्य्यात्
नाशान्ताय नच वक्रबुद्धये।
गुह्याह्ययं सर्व्वलोकस्य धर्म्मा
नेमान् धर्म्मान्यत्र तत्र प्रकल्पयेत् ॥

इति त्रिरात्रगोदानविधिः।

अथाह वृद्धगौतमः।

धेनुं पयस्विनीं कृत्वा घण्टाभरणभूषितां।
हेमशृङ्गीं रौप्यखुरां वासोभिर्वेष्टितां नरः ॥
नवधान्यैः समायुक्तामेकैकं द्रोणपञ्चकं।
सहिरण्यां तु तां दद्यात् ब्राह्मणाय कुटुम्बिने ॥
अलोलुपाय शान्ताय धर्म्मज्ञाय विशेषतः।
होमश्च पूर्व्ववत् कार्य्यः समिदाज्यचरूत्कटं ॥

पूर्व्ववदिति रूप्यवृषभदानवदित्यर्थः।

तस्मै हुतवतो दद्यात् पूजितायांगुलीयकैः।
गां कृष्णां कृष्णरूपायमन्त्रेणानेन रोगवान् ॥
देवकीपुत्र चाणूरकंसारिष्टविनाशनः।
नाशय ग्रहणीं कृष्ण गोपीजनमनोत्सवः ॥

दानमन्त्रः। कृतेनानेन दानेन ग्रहणीशान्तिमृच्छति।

तस्मादेतत्तु कर्त्तव्यं ग्रहणीरोगिणा सदा।
इति ग्रहणीहरधेनुदानविधिः ॥

तथा। धेनुं पयस्विनीं दाता लोहितां हेमशृङ्गिकां।
तथा रूप्यखुरां रक्तवस्त्रेण समलङ्कृतां।
ब्राह्मणायाग्निवर्णाय दद्यात्सतकृत्य मानवः॥
पलेन वा पलार्द्धेन तदर्द्धेनाथवा पुनः।
सुवर्णेन युतां शुभ्रां यद्वा स्वविभवेन तु॥
द्विजोत्तमाय श्रेष्ठाय सर्व्वशास्त्रार्थवेदिने।
धेनुस्तामतिसंहृष्टो मन्त्रेणानेन भक्तितः॥
गावोमे हृदये सन्तु गावोमे सन्तु पृष्ठतः।
देवानायातु सुरभी कृपयासृग्दरं मम॥

दानमन्त्रः।

विनाशयत्यदोदानमपि दीर्घमसृग्दरम्।
तेनेदं यत्नतः कुर्य्यादसृग्दरगदार्द्दितः॥
इति असृग्दरनाशनधेनुदानविधिः।

अथ वैतरणीगोदानं।

आह व्यासः।

आसन्नमृत्युना देया गौः सवत्सा तु पूर्व्ववत्।
तदभावे तु गौरेव नरकोद्धरणाय वै॥
पूर्व्ववत्, सुवर्णशृङ्गिकाविधिना।
तदा यदि न शक्नोति दातुं वैतरणीं तु गां।
शक्तोऽन्यो ऽरुक् तदा दद्याच्छ्रेयोदद्यात् मृतस्य च॥
अरुक्, रोगरहितः।

अथ दानमन्त्रः।

यमद्वारे महाघोरे* कृष्णा वैतरणी नदी।
तां ततुँ गां ददाम्येतां तुभ्यं वैतरणीमिति॥

ब्रह्मवैवर्त्ते युधिष्ठिर उवाच।

यमद्वारे महाघोरे या सा वैतरणी नदी।
किंरूपा किंप्रमाणा सा कथं सा गर्हिता किल॥
कथं तस्याः प्रमुच्यन्ते केषां वासस्तु सन्ततं।
केषां तथानुकूला सा एतद्विस्तरतोवद॥

श्रीमार्कण्डेय उवाच।

या सा वैतरणी नाम यमद्वारे महानदी।
तस्याः प्रमाणं रूपं च शृणु सर्व्वभयावहं॥
शतयोजनविस्तीर्णा पृथुले सा महासरित्।
अगाधानन्तरूपा सा दृष्टमात्रात् भयावहा॥
पूयशोणिततोया सा मांसकर्द्दमनिर्म्मिता।
कृमिभिः सङ्कुलं भयं वज्रतुण्डैरयोमुखैः॥
शिशुमारैश्च मकरैर्वज्रकर्त्तरिसंयुतैः।
अन्यैश्च जलजैर्घोरैर्युक्ता सा मर्म्मभेदिभिः॥
पतन्ति तत्र वै मर्त्यास्क्रन्दमानाः सुदारुणाः।
हा भ्रातः पुत्र तातेति प्रलपन्तो मुहुर्म्मुहुः॥
चिरमन्तर्निमज्जन्ति ग्लानिं गच्छन्ति देहिनः।
चतुर्विधैः प्राणिगणैर्दृष्टव्या सा महानदी॥

* तप्ता इति क्वचित् पाठः।

तरन्ति तस्या दानेन अन्यथा तु पतन्ति ते।
धार्म्मिका दानशीलाश्च तां तरन्ति नरोत्तम॥
सानुकूला भवेद्येन नदी वैतरणी नृणां।
तत् शृणुष्व नरव्याघ्र कथ्यमानं युधिष्ठिर॥
अयने विषुवे पुण्ये व्यतीपाते दिनक्षये।
अन्येषु पुण्यकालेषु दीयते दानमादरात्॥
पाटलामथवा कृष्णां कुर्य्याद्वैतरणीं शुभां।
सुवर्णशृङ्गीं रौप्यखुरां कांस्यपात्रसुदोहनां॥
कृष्णवस्त्रयुगच्छन्नां सप्तधान्यसमन्वितां।
कार्पासद्रोणशिखरे आसीनां ताम्रभाजने॥
यमं हैमं प्रकुर्य्याद्वै लोहदण्डसमन्वितं।
महामहिषमारूढ़मूढपाशाङ्कुरं परं॥
इक्षुदण्डमयं बद्धा उडुपं पट्टबन्धनैः।
उडूपोपरि तां धेनुं सूर्य्यदेहसमुद्भवां॥
कृत्वा प्रकाशयेद्विद्वान् छत्रोपानहसंयुतां।

सप्तधान्यानि द्रोणश्च, परिभाषायां व्याख्यातानि उडूपं क्षुद्र-नौका।

इममुच्चारयेत् मन्त्रं संगृह्योदकमण्डलं।
यमद्वारे महाघोरे दृष्ट्वा वैतरणीं नदीं॥
तर्त्तुकामोददाम्येनां तुभ्यं वैतरणीं च गां।

अधिवासनमन्त्रः।

ओं विष्णुरूप द्विजश्रेष्ठ भूदेवपंक्तिपावन।

सदक्षिणा मया तुभ्यं दत्ता वैतरणी नदी ॥

दानमन्त्रः। धर्म्मराजं च विप्रं च धेनुं वैतरणीं तथा।

सर्व्वं प्रदक्षिणीकृत्य ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥

पुच्छं संगृह्य तद्धेनोरग्रे कृत्वा च ब्राह्मणं।

धेनुके त्वं प्रतिक्षस्व यमद्वारे महालये।

उत्तितीर्षुरहं देवि वैतरण्यै नमो नमः ॥

अनुव्रजनमन्त्रः।

अनुव्रजेच्च गच्छन्तं सर्व्वं तस्य गृहे नयेत्।

एवं कृते महीपाल सा रसरित् सुखदा भवेत्॥

तरते च तया धेन्वा सा सरिज्जलवाहिनी।

सर्वाह्लादानवाप्नोति ये दिव्या ये च मानुषाः।

रोगी तु रोगनिर्म्मुक्तः तथैवोपरमेत् स्मृतिः॥

इतीदमुक्तं तव धर्म्मसूनोः

पुण्यं मया वैतरणीप्रदानं।

शृणोति भक्त्या पठती ह सम्यक्

स याति विष्णोः पदमप्रमेयं ॥

इति वैतरणीधेनुदानविधिः।

अथोभयतोमुखीदानं।

स्कन्दपुराणे।

प्रसूयमाणां योगां च दद्यादुभयतोमुखीं।

यथोक्तेन विधानेन स जातिस्मरतां लभेत् ॥

नन्दिपुराणे ।

यश्चोभयमुखीं दद्याद्गां विप्रे वेदवादिनि ।
देवाय वाप्यभीष्टाय स कुलान्येकविंशतिः ॥
समुद्धृत्य नरस्तिष्ठेन्नरकात् ब्रह्मणोऽन्तिके ।
युगानि रोमतुल्यानि यदि श्रद्धापरो नरः ॥

याज्ञवल्क्यः । सवत्सारोमतुल्यानि युगान्युभयतोमुखीं ।
दत्त्वा स्वर्गमवाप्नोति पूर्व्वेण विधिना ददत् ॥

पूर्व्वेण विधिना, हेमशृङ्गीशफैरौप्यैरित्यादिना प्रत्यक्षधेनूक्तेन,

विष्णुः ।

अथ प्रसूयमाना गौः पृथिवी भवति तामलङ्कृत्य ससुवर्णां विप्राय दत्त्वा पृथिवीदानफलमाप्नोति ।

अत्र गाथा भवति ।

सवत्सारोमतुल्यानि युगान्युभयतोमुखीं ।
दत्त्वा स्वर्गमवाप्नोति श्रद्दधानः समाहितः ॥

महाभारते ।

यावद्वत्सप्रसूता गौस्तावत्सा पृथिवी स्मृता ।
पृथिवी तेन दत्ता स्यात्तादृशीं गां ददाति यः ॥

देवलः । यावद्वत्समुखा योनौ नयायाद्गर्भनिष्कृतिः ।
यावन्न जायते धेनुस्तावद्भूः सचराचरा ॥
अलङ्कृत्योक्तविधिना सुवर्णत्रिपलान्विता ।
दातव्या द्विपला मध्या पलाढ्या वान्यसा मता ॥
दत्त्वेमां पुरुषः स्वर्गे वसत्यमरपूजितः ।

गोवत्सरोमतुल्यानि युगानीप्सितभोगभाक् ॥

मत्स्यपुराणे।

रुक्मशृङ्गीं रौप्यखुरां मुक्तालाङ्गूलभूषितां।
कांस्योपदोहनां राजन् सवत्सां द्विजपुङ्गवे ॥
प्रसूयमानां योदद्याद्धेनुं द्रविणसंयुतां।

द्रविणं अत्र दक्षिणारूपं, तच्च भूरिदक्षिणा इत्यग्रेऽभिधाना-दनल्पं प्रदेयं।

यावद्वत्सोयोनिगतोयावद्गर्भं न मुञ्चति।
तावद्गौः पृथिवी ज्ञेया सशैलवनकानना ॥
प्रसूयमानां योदद्याद्धेनुं द्रविणसंयुताम्।
ससमुद्रगुहा भूमिः सशैलवनकानना ॥
चतुरन्ता भवेद्दत्ता पृथिवी नात्र संशयः।
यावन्ति धेनुरोमाणि वत्सस्य च नराधिप ॥
तावत् संख्यान् युगगणान् देवलोके महीयते।
पितॄन् पितामहांश्चैव तथैव प्रपितामहान् ॥
उद्धरिष्यत्यसन्देहो नरकाद्भूरिदक्षिणः।
घृतक्षीरवहाः कुल्याः दधिपायसकर्दमाः ॥
यत्र तत्र गतिस्तस्य भवेच्चेप्सितकामदा।
गोलोकः सुलभस्तस्य ब्रह्मलोकस्य पार्थिवः ॥

स्त्रियश्च तं चन्द्रसमानवक्त्रा
प्रतप्तजांबूनदतुल्यवर्णाः।
महानितम्बस्तनमध्यवृत्ता*।

---

* नवाढ्ति कचित् पाठः।

भजन्त्यजस्रं नलिनाभानेशाः॥

वराह पुराणे।

सुवर्णशृङ्गीं यः कृत्वा रौप्ययुक्तां खुरेऽथ वा।
ब्राह्मणस्य करे दत्वा सुवर्णं रौप्यमेव वा।
कपिलाया स्तदापुच्छं ब्राह्मणस्य करेन्यसेत्।
उदकञ्च करे दत्त्वा वाचयेत् श्रद्धयान्वितः॥
ससमुद्रवना तेन सशैलवनकानना।
रत्नपूर्णा भवेद्दत्ता पृथिवी नात्र संशयः॥
पृथिवीदानतुल्येन दानेनैतेन मानवः।
तारितैर्याति पितृभिर्व्विष्णवाख्यं पदमव्ययं॥
ब्रह्मस्वहारको गोघ्नोभ्रूणहा पाकभेदकः।
महापातकयुक्तोऽपि वञ्चको ब्रह्मदूषकः॥
निन्दको ब्राह्मणानां च तेषां कर्म्माभिदूषकः।
एवं पातकयुक्तोऽपि गवां दानेन शुद्ध्यति॥
यश्चोभयमुखीं दद्यात् प्रसूतकनकाहृतां।
तद्दिने पायसाहारः पयसा वापि वाहयेत्॥
सुवर्णस्य सहस्रेण तदर्द्धेनापि तामिति।
तस्याप्यर्द्धं शतं वाथ पञ्चाशञ्च ततोऽर्द्धकं॥
यथा शक्त्या प्रदातव्यं वित्तशाठ्यविवर्जितं।
इमां गृहाणोभयमुखीं भवां स्नाता-ममास्तुवै॥
मम वंशविशुद्धस्य सदा स्वस्तिकरी भव।
इरावती धेनुमती च जप्त्वादेवस्योनात्त्वंदनन्तरं॥
प्रतिगृह्णामि त्वां धेनु कुटुम्बार्थे विशेषतः।

स्वस्ति भवतु ते नित्यं रुद्रमातर्नमोनमः ॥
द्यौस्त्वे प्रतिददामि पृथिवी ते प्रतिगृह्णामि ।
क इदं कस्मादद्देति जपेन्मन्त्रं वसुन्धरे ॥
विसृजेत् ब्राह्मणं देवि गाञ्च तस्य गृहं नयेत्।

उभयशिरसं दद्यादित्यनुवृत्तौ च्यवनः ।

तस्याः प्रदानकाला प्रसवकालीनान्यं कालं प्रतीचते

व्यतीपात-विषुवा-यन-षडशीति-मुख-विष्णुपदी-ग्रहणान्ताः सर्व्वएव पुण्यकालाः तदैव यत्र चार्द्धप्रसूता तत्र स्नातो ब्राह्मणं ब्रूयात् श्रुत-शील-सत्य शौच-वृत्त-जातिक्रिया-यैर्गुणैरूपेतं च कालेन प्रणिपत्य ब्रूयाद् दहमतीवार्त्तोभीतोऽस्मादगाधादपारात् संसारार्णवात् समुत्तारयामि दशापरान् दशपरानात्मानञ्च च स्वामिन् भवन्तं दानपात्रमासाद्य स चानुग्रहबुद्धा नार्थलिप्सया गृह्णीत दाता च तामनुमन्त्रयेत् त्वं महीमवनिं विश्वदेनुः कइदं कस्माद् इति गृह्णीतायां दक्षिणेन पाणिना वत्समाकर्षयेत् गर्भं नु सत्वेषामवेदमिति जपेत् निष्क्रान्तेऽग्निमुपसमाधाय देवान् पितॄन् नदीः पर्व्वतान् वनस्पतीन्नदधोन्नागानोषधीस्तर्पयंस्तैस्तैर्मन्त्रैस्तेषां मन्त्रपदानि भवन्ति येदेवासो दिव्येकादशस्थाः उशन्तस्त्वानिधीमहि इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति अद्रिभिः सुतोमतिभिश्च नोहिते वनस्पते शतवत्सो विरोह समुद्रज्येष्ठाः सलिलस्य मध्याद्दहिरिवभोगैः पर्य्येति राहुं मधुवाताऋतायत इति मन्त्राः तदनु पार्थिवीभिः पृथिवीं तर्पयेदृत्नैर्द्यावापृथिवी पूर्व्व चित्तं ये मही द्यौ पृथिवी च नः उर्व्व पृथ्वी बहुले दूरे अन्ते गौरीर्मिमाय सलिलानि तच्चतीत्यादिभिश्चतुरशीत्याज्याहुतीर्जुहोति ब्राह्मणान् भोजयेत्

स्वस्त्ययनं वाचयीत अथास्य कर्म्मणो व्युष्टिमुदाहरन्ति अभक्ष्य-भक्ष्यमपेयपायिनं ब्रह्मघ्नं पितृघ्नं सद्यएव पुनाति उपाध्यायिनीं सुतां मित्रभार्य्यां मातरं मातृष्वसारं मातुलानीं भगिनीं भागिनेयीं शिष्यजायां धात्रीमन्यामप्यगम्यां गत्वोभयशिरसंस-परिकरां ब्राह्मणाय दद्यात् परिकरोस्याः सुवर्णं रूप्यं रत्नादि क्षेत्राणि ग्रामाणि वा धान्यानि वस्त्राणि लवणाद्याश्चन्दनाद्या गन्धाःशतं गवां तदर्द्धमर्द्धं वा सर्वस्वम्वा सत्कृतया ब्राह्मणाय दद्यात् महापातक मुक्तये, विमुक्तये ।

इति उभयतो मुखीदानविधिः ।

अथ गोदानप्रसङ्गेन वृषभदानमप्यभिधीयते ।

तत्र स्कन्दपुराणे ।

उत्पाद्य सस्यानि तृणञ्चरन्ति
तदेव भूयःसकलं वहन्ति ।
नभारखिन्नाः प्रवदन्ति किञ्चित्
अहो वृषैर्जीवति जीवलोकः ॥

ब्रह्मपुराणे ।

पुरा निर्म्मितवान् ब्रह्मा वृषभं धर्म्मरूपिणं ।
श्वेतवर्णं चतुष्पादं सत्वैकगुणधारणात् ॥
धर्म्म इत्याह धर्म्मः स धर्म्मेण विधृताः प्रजाः ।
प्रजा धरत्ययं भूमौ धर्म्ममूर्त्तिर्वृषो यतः ॥
अतो वृषभदानेन दत्तं स्यात्सचराचरं ।
कृत्वा तत्पार्श्वतस्तत्र छत्रोपानहकम्बलं ॥

वृषं संपूज्य पुष्पाद्यैर्वित्तशाठ्याद्दते नरः।
श्रद्धया चैव योदद्यात्तन्नमुञ्चति धर्म्मराट्॥
सर्व्वसस्यैः सुखैश्चैव दातारं योजयत्यसौ।

आदित्यपुराणे।

यो वै दद्यात्यनड्वाहं सुशीलं साधुवाहिनं।
उभयोः पार्श्वयोर्दत्त्वाछत्रोपानहकम्बलं॥
शीलवेदाङ्गसम्पन्ने हृष्टे शिष्टे द्विजे नरः।
पुष्येच जन्मनचत्रे अयने विषुवेषु च॥
दत्त्वा तस्य अनड्वाहं सर्व्वरत्नैरलङ्कृतं।
दत्त्वा तस्य अनड्वाहं तस्मिं स्थाने महामुने॥
चुत्पिपासाद्दितस्यापि अग्रतः प्रतिपद्यते।
दत्त्वा प्रजापतेर्लोकान्विशोकः प्रतिपद्यते इति॥

कण्ठं प्रलम्बगलकंवलं तथा
अनड्वाहं ब्राह्मणायाथ धुर्य्यं
दत्त्वायुवानं बलिनं विनीतं।
हलस्यवोढारमनन्तवीर्य्यं
प्राप्नोति लोकान्दशधेनुदस्य॥

स्कन्दपुराणे।

निवेद्य सद्गुणोपेतमनड्वाहं शिवाश्रये।
दशधेनुप्रदानस्य फलं शोभनमाप्नुयात्॥

वृहस्पतिः।

वेदव्रतीस्याद्वृषभप्रदाने वेदावाप्तिर्गोयुतस्य प्रदाने।

देवलः ।

वृषयुग्मं वृषं वापि दत्त्वा गच्छेत् सुरालयं ।
भुङ्क्ते मन्वन्तरं भोगान् द्विगुणान् युग्मलाङ्गली ॥
अनड्वाहौ तु योदद्याद्द्विजे सीरेण संयुतौ ।
अलङ्कृत्य यथा शक्त्या सुवाहौ शुभलक्षणौ ॥
सर्व्वपापविशुद्धात्मा सर्व्वकामसमन्वितः ।
वर्षाणि वसति स्वर्गे रोमसंख्याप्रमाणतः ॥
यो ददाति बलीवर्द्दमुक्तेन विधिना शुभं ।
अव्यङ्गं गोप्रदानाच्च भुङ्क्ते दशगुणं फलं ॥

महाभारतं ।

युवानमिन्द्रियोपेतं शतेन सह यूथपं ।
गवेन्द्रं ब्राह्मणेन्द्राय भूरिशृङ्गमलङ्कृतं ॥
ऋषभं ये प्रयच्छन्ति श्रोत्रियाय परन्तप ।
ऐश्वर्य्यन्तेऽभिजायन्ते जायमानान् पुनः पुनः ॥
शतेन, स्त्रीगवीनामिति शेषः ।
भूरिशृङ्गं, सुवर्णशृङ्गं ।

यमः ।

दान्तन्धुरन्धरं दत्त्वा छत्रोपानहसंयुतं ।
दशधेनुप्रदानाच्च यत् फलन्तत्समश्नुते ॥
भविष्योत्तरात् युधिष्ठिर उवाच ।
युष्मत्वाक्यामृतमिदं शृण्वानोऽहं जनार्द्दन ।
न तृप्तिमधिगच्छामि जातकौतूहलं हि मे ॥

गोपतिः किल गोविन्दस्त्रिषुलोकेषु विश्रुतः।
गोवृषस्य प्रदानेन त्रैलोक्यमभिनन्दति॥
तस्मे वृषभदानस्य फलं वै कथयाच्युत॥

श्रीकृष्णउवाच।

वृषदानफलं दिव्यं शृणुष्व कथयामि ते।
पवित्रं पावनं चैव सर्व्वदानोत्तमन्तथा॥
दशधेनुसमोऽनड्वानेकश्चैव धुरन्धरः।
दशधेनुप्रदानाद्धि वृषएको विशिष्यते॥
वृषभस्यापि पुष्टाङ्गोह्यरोगः पाण्डुनन्दन।
युवा भद्रः सुशीलश्च सर्व्वदोषविवर्जितः॥
धुरन्धरःस्थापयति एकएव कुलंमहत्।
त्राता* भवति संसारेनात्र कार्य्या विचारणा॥
अलङ्कृत्य वृषं शान्तं पुण्येऽह्नि समुपस्थिते।
रौप्यलाङ्गूलसंयुक्तं ब्राह्मणाय निवेदयेत्॥
मन्त्रेणानेन राजेन्द्र तं शृणुष्व वदामि ते।
धर्म्मस्त्वं वृषरूपेण जगदानन्दकारकः॥
अष्टमूर्त्तेरधिष्ठानमतः पाहि सनातनः।
दत्त्वैवं दक्षिणायुक्तं प्रणिपत्य विसर्जयेत्॥
सप्तजन्मकृतं पापं वाङ्मनःकायकर्म्मणा।
तत्सर्व्वं विलयं याति गोदानसुकृतेन वै॥
यानं वृषभसंयुक्तं दीप्यमानं सुशोभितं।

* भ्रातादृति पुस्तकान्तरे पाठः।

आरुह्य कामगन्दिव्यं स्वर्लोकमधिरोहति ॥
यावन्ति तस्य रोमाणि गोवृषस्य महीपते।
तावद्वर्षसहस्राणि गवां लोके महीयते ॥
गोलोकादवतीर्णस्तु इहलोके द्विजायते*।
सत्रयाजी महातेजाः सर्व्वब्राह्मणपूजितः॥

ओजस्विनं भरसहं दृढकन्धरञ्च
यच्छन्ति ये वृषमशेषगुणोपपन्नं।
दत्तेन यद्भवति गोदशकेन पुण्यं
सर्व्वं भवन्ति भुवि तत्फलभागिनस्ते ॥

इति वृषदान विधिः।

सनत्कुमार उवाच।

हिरण्यवृषदानं च कथयामि समासतः।
वृषरूपं हिरण्येन सहस्रेणाथ कारयेत् ॥
तदर्द्धेनाथवा धीमांस्तदर्द्धार्द्धेन वा पुनः।
अष्टोत्तरशतेनापि वृषभं धर्म्मरूपिणं ॥

अत्र तु पात्रपरिमाणविशेषस्य हिरण्यस्य सहस्रादिसंख्यया-व्यवच्छेदः कर्त्तुं न शक्यत इति पूर्व्वप्रक्रान्तनिष्कशब्देनाकाङ्क्षापूरणीया लिङ्गपुराणोक्तदानेषु निष्कैरेव व्यवहारदर्शनाच्च।

ललाटे कारयेत्पुण्ड्रमर्द्धचन्द्रं कलाकृतिं।
स्फटिकेन तु कर्त्तव्याः खुराश्च रजतेन च ॥

पुण्ड्रं तिलकं, स्फटिकं, खुरा रजतेन विधेयाः,

---

* द्विजोभवेदिति क्वचित्पाठः।

ग्रीवान्तु पद्मरागेण ककुद्गोमेदकेन च।
ग्रीवायां घण्टावलयं रत्नचितं तु कारयेत्॥
वृषाङ्कङ्कारयेत्तत्र किङ्किणीकृतपन्नगं।
पूर्व्वोक्तदेशकाले च वेदिकोपरिमण्डले॥

वृषाङ्को, महेश्वरः।

तन्मूर्त्तिलक्षणमाह विश्वकर्म्मा।
त्रिनेत्रस्तु चतुर्बाहुर्जटामण्डलमण्डितः।
शूलखट्वाङ्गवरदाभयपाणिर्महेश्वर इति॥

पूर्वोक्तदेशकालइत्यत्र, देश-काल-कुण्ड-मण्डप-वेदिकादि-लिङ्गपुराणोक्तं तुलापुरुषदानविहितं वेदितव्यं।

वृषञ्च स्थापयेत्तत्र पश्चिमामुखमग्रतः।
ईश्वरं पूजयेद्भक्त्या वृषारूढं वृषध्वजं॥
वृषेन्द्रं पूज्य गायत्र्या नमस्कृत्य समाहितः।

ओं तीक्ष्णशृङ्गाय विद्महे धर्म्मपादाय धीमहि तन्नोवृषःप्रचोदयात्

इति वृषगायत्री।

मन्त्रेणानेन संपूज्यो वृषोधर्म्मविवृद्धये।
होतव्यञ्च घृताद्यैश्च यथाविभवविस्तरं॥
वृषःसम्पूज्य दातव्यो ब्राह्मणेभ्यःशिवाय च।
दक्षिणाचैव दातव्या यथावित्तानुसारतः॥
एतद्यः कुरुते भक्त्या वृषदानमनुत्तमं।
शिवस्यानुचरोभूत्वा सुचिरन्तत्र मोदते॥

प्रत्यङ्मुखञ्च वृषभं शिवाग्रतःस्थापयेत् ।

शिवस्य तत्पश्चिमे स्थापनात् ।

तदुक्तं वातुले

वृषाङ्गे परितःकार्य्यं किङ्किणीवलयं शुभम् ।
ईश्वरंपूजयेत्पश्चात्पश्चिमान्दिशमास्थितं ॥
पूजयित्वा विधानेन वृषयागन्तु कारयेत् इति ।

शिवायचेति, चकारःसमुच्चये ।

कामिकेत्वेकाग्निपक्षोपि ।

समिदाज्यचरूपेतमेकमग्निमथापिवेति ।

दक्षिणादिकं प्राग्वत् ।

इति लिङ्गपुराणोक्तो हिरण्यवृषदानविधिः ।

अम्बरीष उवाच ।

यत्सूर्य्येण समाख्यातं दानंसर्व्वसुखावहं ।
ईश्वराणाञ्च निःस्वानां तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥

वसिष्ठ उवाच ।

येनेश्वरोहरिद्रोवा करोति विधिना नृप ।
दानंसर्व्वगुणोपेतं तच्छृणुष्व यथा तथा ॥
भारादौ त्रिपलानाञ्च वृषं कृत्वा विधानतः ।
युतं धेन्वाथवा दद्याच्छक्तितोनृपसत्तम ॥
या मया धेनवः प्रोक्तावृषास्तावन्त एव हि ।
हरये ता नियोज्याः स्युर्हरायच तथा वृषाः ॥

सर्व्वभावात्ततोराजन् तिलपात्राणि नित्यशः।
सर्व्वपापविनाशाय दीयते नृपसत्तमः॥
गोमयेन समालिप्ते पट्टवस्त्रसमावृते।
वृषं हेममयं तत्र रौप्यं वा रत्नसंयुतं॥
तस्य नीलमये शृङ्गे मौक्तिके चक्षुषी रदाः।
द्वात्रिंशच्छुभवस्त्राणि विद्रुमौष्ठौ च नासिका॥
मरकतं विनिर्द्दिष्टं कर्णौ वै हरिताश्मके।
पद्मरागस्य वै पादा खुरा रौप्यमयाः शुभाः* ॥
राजतानि च रोमाणि चौमवस्त्रेण कम्बलं।
पादेन पुच्छमुद्दिष्टं सर्व्वेषामप्ययं विधिः॥
वृषणौ स्फटिकस्यापि लिङ्गे मणिः प्रकीर्त्तितः।
तथा धेनुर्यथानड्वान् सुवर्णस्य तु कारयेत्॥
अभीष्टदेवतापूजां कुर्व्वीत तदनन्तरं।
मन्त्रेणानेन राजेन्द्र तं द्विजाय निवेदयेत्॥
योवृषोयज्ञदानेऽभूच्छतानीकस्य निष्फलः।
जातरूपमयं सोऽयं तारिता मां न संशयः॥
एतस्य विभवाद्दानं भक्त्या यः प्रतिपादयेत्।
पृथुले वाप्यशक्ते वा तदनन्तफलं स्मृतं।
निःस्वोवाप्येवमेवं हि कृत्वा दानमतन्द्रितः॥
तत्फलं समवाप्नोति स्वल्पदानान्न संशयः।

इति वह्निपुराणोक्तोहेमवृषदानविधिः।

---

* खुरा इति पुस्तकान्तरे।

सनत्कुमार उवाच।

आषाढ़पौर्णमास्यां तु कार्त्तिके वाथ फाल्गुने।
श्रद्दधानैर्जितक्रोधैर्देयमेतद्यथाविधि॥
जाम्बूनदस्य शुद्धस्य पलैस्त्रिंशतिभिस्तथा।
तदर्द्धमर्द्धेन तथा यथाशक्त्या पलैस्त्रिभिः॥
द्वाभ्यामेकेन वा कार्यो वृषः सर्व्वाङ्गशोभनः।
पलादूनो न कर्त्तव्यो दुःखशोकभयावहः॥
मण्डपं कारयेद्दिव्यं परार्द्ध्यपट्टनिर्म्मितम्।
तन्मध्ये तन्दुलैः शुक्लैर्मण्डलं कारयेच्छुभं।
ततः प्रभाते विमले समुत्थाय जितेन्द्रियः।
शुक्लाम्बरधरःस्नातः शुक्लमाल्यानुलेपनः।
कृतनित्यक्रियः शुक्लमालारत्नविभूषितः॥
नरो वा यदि वा नारी दिव्यभोगाभिलाषिणी।
सितवस्त्रयुगच्छन्नं स्थापयित्वा ततो वृषं॥
सौवर्णमण्डपे तस्मिन् सुवर्णैर्व्वहुभिश्चितं।
चन्दनागुरुकर्पूरैः सुमनोभिस्तथा सितैः॥
संपूजयेत्ततः सम्यक् मन्त्रैः पौराणसम्भवैः।
नमस्ते जगदाधार प्रियः पुण्यकृतामसि॥
त्वद्विहीने जगत्यस्मिन्नकश्चिच्छुभमश्नुते।
नमस्ते धर्म्मराजाय वृषरूपधराय वै॥
त्वं मामुद्धर देवेश दुर्गसंसारसागरात्।
यशः कीर्त्तिर्धनं धान्यं यदन्यदपि संस्थितं॥
तत्तत्प्रयच्छ देवेश परत्र च शुभां गतिं।

इति संपूज्य विधिवत्तं देवं वृषरूपिणं ॥
नैवेद्यं संहरेत् तत्र हविषा निर्मितं शुभं ।
कालोद्भवं मूलफलं सर्वं देवसमन्ततः ॥
हविष्यान्नेन भुञ्जीत भोजयित्वा ततो द्विजान् ।
सायाह्ने तु ततः कुर्य्यात्पुष्पगृहमनुत्तमं ॥
सितपुष्पैः शुभैर्गन्धैर्लुब्धमधुकराकुलैः ।
फलमूलानि चान्नानि दीपाः शुक्लदशान्विताः ॥
घृतपूर्णास्तु कर्त्तव्याः संप्रद्योतितमण्डपाः ।
रात्रौ जागरणं कार्य्यं देवदेवस्य सन्निधौ ॥
वारमुख्याः समानार्य्यो गान्धर्वान् श्रुतिसौख्यदान् ।
गीतवादित्रशब्देन ब्रह्मघोषरवेण च ।
नर्म्मालापैश्च नृत्यैश्च गमयेत्तां निशान्ततः ॥
अरुणोदयवेलायां समुत्थाय जितेन्द्रियः ।
पूजयित्वा द्विजांस्तत्र गोहिरण्यैर्नरोत्तम ॥
वृषरूपं ततो धर्म्मं प्रीयतां वृषभध्वज ।
इत्युच्चार्य्य परं मन्त्रमाचार्य्याय निवेदयेत् ॥
दत्त्वा दानमिदं सम्यक् विधिनानेन पार्थिव ।
कुर्य्याद्दिग्विजयं विप्रो वेदकर्म्म समाचरेत्* ॥
वैश्यः समुद्रगमनं शूद्रः कर्म्म यथेप्सितं ।
फाल्गुन्यामथवा दद्याद्दानमेतन्नरोत्तम ॥
रौद्रं कर्म्म विनिर्द्दिष्टं ब्रह्मणा शङ्करस्य हि ।

---

* समरभेदिति पुस्तकान्तरे ।

इति गारुड़पुराणोक्तः सुवर्ण-
वृषदान विधिः।

अथ रूप्य वृषदानं।

अथ कुष्ठहरं वक्ष्ये वृषदानमनुत्तमं।
यत्कार्य्यं कुष्ठरोगार्त्तैः शरीरसुखकारकं॥
पलैस्त्रिभिस्तु कुर्व्वीत द्वाभ्यामेकेन वा पुनः।
राजतं वृषभं शुभ्रं हेमशृङ्गखुरन्तथा॥
महेश्वरेणोमया च कुर्व्वीत तमधिष्ठितं।
सौवर्णे प्रतिमे द्वे च पूर्व्वोक्तेन क्रमेण तु॥
यथा विभवमानेन वित्तशाठ्यं न कारयेत्।
पलाष्टके कांस्यपात्रे स्थापयेत्ते विचक्षणः॥
श्वेतपुष्पैरक्षताभिः श्वेतवस्त्रैरलङ्कृतम्।
ब्राह्मणं विद्यासम्पन्नं स्वाचारं संयतेन्द्रियं॥
सर्व्वशास्त्रप्रवक्तारं प्रतिग्रहपराङ्मुखं।
दान्तं कुलीनं धर्म्मज्ञमनुद्वेगकरं नृणां॥
क्रोधलोभविहीनञ्च सर्व्वशास्त्रार्थकोविदं।
गृहमाहूय भक्त्या तं यथा विधि समर्च्चयेत्॥
केयूरकटकैर्वस्त्रैर्माल्यैश्चैवाङ्गुलीयकैः।
होमञ्च पूर्व्ववत् कुर्य्यात् मन्त्रैर्माहेश्वरैस्तथा॥
उदङ्मुखोपविष्टाय महादेवस्य सन्निधौ।
प्राङ्मुखोव्याधितो दद्यान्मन्त्रेणानेन धर्म्मवित्॥
अष्टमूर्त्तिर्महेशानः कृपया वृषभध्वजः।
श्वेतमौदुम्बरं सर्व्वमथवाचितमेव च॥

त्वग्दोषजनितं यच्च मण्डलाद्यघवानघ।
सर्व्वं कर्म्म विपाकोत्थं पार्व्वतीनाथ सर्व्वग॥
कुष्ठहा भव सर्व्वेश रक्ष मां पार्व्वतीपते।
इति वायुपुराणोक्तो रूप्यवृषदान विधिः।

आह बौधायनः।

शुक्लपक्षस्य चाष्टम्यां द्वादश्यामथवा पुनः।
पलेन कुर्याद्वृषभं सान्द्रलोम सुराजतम्॥
हेमशृङ्गं सुवर्णाक्षं रत्नपुच्छशुभाननं।
महेश्वरेणोमया च सौवर्णेन ह्यधिष्ठितं॥
अथाविभवतस्तत्र परिमाणं विधीयते।
उमामहेश्वररूपमत्र निरन्तरोक्त वृषदानवदवधेयं।
पलाष्टके ताम्रपात्रे वस्त्रेणावेष्ट्य भक्तितः।
देवस्यैकं वृषस्यैकं पार्व्वत्याश्चैकमेव हि॥
श्वेतपुष्पै रक्तताभिः कुङ्कुमागुरुचन्दनैः।
पूजयेन्मूलमन्त्रेण तिलहोमञ्च कारयेत्॥
अष्टोत्तरशतं चाज्यमिश्रेण चार्य्यकेण तु।
आचार्य्यो वित्तसम्पन्नः स्वाचारः संयतेन्द्रियः॥
सर्व्वशास्त्रार्थवक्ताच शान्तोदान्तस्तथैवच।
धर्म्मप्रवीणोधिषणस्त्वनुद्वेगकरोनृणाम्॥
वृषदानप्रयोगज्ञो हरोमाभ्यामधिष्ठितम्।
वृषभं घण्टिकोपेतं दद्याद्ग्रैवेयभूषितम्॥
उदङ्मुखोपविष्टाय महादेवस्य सन्निधौ।

प्राङ्मुखो व्याधितो भक्त्या मन्त्रेणानेन संयतः ।
अष्टमूर्त्ते महेशान कृपया वृषभध्वज ।
उदुम्बरं वाजिनं वा दण्डमण्डलकान्तथा ॥
त्वग्दोषजनितं यच्च पूर्व्वकर्म्मविपाकिनः ।
इह कर्म्मोद्भवं वापि मातृदोषेण वा पुनः ॥
पितृदोषेण वा सर्व्वं रक्तदोषोद्भवं तथा ।
विनाशय शरीरोत्थं पार्व्वतीप्रिय शङ्कर ॥
वृषभस्य प्रदानेन उभाभ्याधिष्ठितस्य हि ।

दानमन्त्रः ।

ब्राह्मणान् भोजयेच्चापि भक्त्या परमया युतः ॥
कृतेनानेन कुष्ठानि व्रजन्ति विलयं ध्रुवं ।
तस्मात् कुष्ठाभिभूतानां करणीयमिदं जगुः ॥

इत्यपररौप्यवृषदानविधिः ॥

गारुड़पुराणे ।

पलाष्टकेन रौप्येण कृत्वा वृषभमुत्तमं ।
मुक्ताफलैरलङ्कुर्य्यात् पद्मरागैः सुशोभनैः ॥
सुवर्णतिलकोपेतं चारुचामरभूषितं ।
गत्वा शिवालयं सम्यक् पूजां कृत्वा शिवे ततः ॥
रुद्राध्यायं जपित्वा तु सषड़ङ्गरहस्यकं ।
होमश्च शिवमन्त्रेण तिलाज्येन विधीयते ॥
अथाहूय द्विजवरं वेदवेदाङ्गपारगं ।

वस्त्रालङ्कारमाल्याद्यैः पूजयित्वा शिवं ततः ॥
उमापते त्रिलोकेश जगत्कारणकारण।
स्ववाहनप्रदानेन प्रीतोभव नमोस्तु ते ॥
मन्त्रेणानेन तद्दद्याद्धेमदक्षिणयान्वितं।
दानस्यास्य प्रदानेन शिवलोके महीयते ॥

इति तृतीयरूप्यवृषदानविधिः।

स्कन्दपुराणे।

रौप्यानडुहदानेन नरो यानेन गच्छति।
अक्षयाल्लभते लोकानिन्द्रेण सह मोदते ॥
त्रिंशत्पलात् समारभ्य पलत्रितयमन्ततः।
वृषं रूप्यमयं कृत्वा सर्व्वरत्नैरलङ्कृतं ॥
क्षौमवस्त्रपरिच्छन्नं धान्यविन्यासभूषितं।
यथोक्तकाले पात्राय पवित्रायोपपादयेत् ॥
एवं कृत्वा नरोदानं सर्व्वान् कामानवाप्नुयात्।
दानमन्त्रमिमं प्राज्ञो दानकाले समुच्चरेत् ॥
धर्म्मस्त्वं वृषरूपेण जगदानन्दकारकः।
अष्टमूर्त्तेरधिष्ठानमतः पाहि सनातनः ॥
एवं ददाति यो भक्त्या कलधौतमयं वृषं।
सर्व्वपापविनिर्मुक्तो देववद्दिवि मोदते ॥

इति चतुर्थरूप्यवृषदान विधिः।

अथ भूमिदानाख्यमतिदानमारभ्यते तत्र महाभारते।

भीष्म उवाच ।

अतिदानेषु सर्व्वेषु पृथिवीदानमुच्यते ।
अचलाह्यक्षया भूमि र्दोग्धि कामाननुत्तमान् ॥
दोग्धि वासांसि रत्नानि पशून् व्रीहियवांस्तथा ।
भूमिदः सर्व्वभूतेषु शाश्वतीरेधते समाः ॥
यावद्भूमेरायुरिति तावद्भूमिद एधते ।
न भूमिदानादस्तीह परं किञ्चित् युधिष्ठिर ॥
भूमिमेव ददुः पूर्व्वं ये भूमिं भुञ्जतेऽधुना ।
स्वकर्म्मणोपजीवन्ति नरा इह परत्र च ॥
य एतां दक्षिणां दद्यात् पृथिवीं पृथिवीपतिः ।
पुनश्च जननं प्राप्य स भवेत् पृथिवीपतिः ॥
संग्रामे वा तनुं जह्यात् दद्याद्वा* पृथिवीमिमां ।
इत्येतां क्षत्रबन्धूनां वदन्ति परमाशिषं ॥
पुनाति दत्ता पृथिवी दातारमिति सत्तम ।
अपि पापसमाचारं ब्रह्मघ्नमपि वानृतं ॥
सैव पापात् तारयति सैव पापात् प्रमुञ्चति ।
अपि पापकृतां राज्ञां प्रतिगृह्णन्ति साधवः ॥
पृथिवीं नान्यदिच्छन्ति पावनं ह्येतदुत्तमं ।
नामास्याः प्रियदत्तेति गुह्यं देव्याः सनातनं ॥
दानं वा प्यथवादानं नामास्याः परमं शिवं ।
यः साधोर्भूमिमादत्ते न भूमिं विन्दते हि सः ॥

---

* जह्याद्वेति वा पाठः ।

भूमिं दत्त्वा तु साधुभ्यो विन्दते भूमिमेव हि।
यस्य विप्रानुशासन्ति साधोर्भूमिं सदैव हि॥
न तस्य श्रवयो राज्ञः प्रशासन्ति वसुन्धरां।
यत्किञ्चित् कुरुते पापं पुरुषो वृत्तिकर्षितः॥
अपि गोचर्म्ममात्रेण भूमिदानेन पूयते।
येऽपि सङ्कीर्णकर्म्माणो राजानो रौद्रकर्म्मिणः॥
तेभ्यः पवित्रमाख्येयं भूमिदानमनुत्तमं।
अल्पान्तरमिदं शश्वत् पुराणा मेनिरे जनाः॥
योयजेताश्वमेधेन दद्याद्वा साधवे मह।
सुवर्णं रजत वस्त्रं मणिमुक्तावसनि च॥
सर्व्वमेतत् महीपाल ददाति वसुधान्ददत्।
सागरान् सरितः शैलान् काननानि च सर्व्वशः॥
सर्व्वमेतन्नरश्रेष्ठ ददाति वसुधां ददत्।
ओषधीःक्षीरसम्पन्ना नगान् पुष्पफलान्वितान्॥
काननान्युपशैलांश्च ददाति वसुधां ददत्।
अग्निष्टोमप्रभृतिभिरिष्ट्वाच स्वाप्तदक्षिणैः॥
न तत्फलमवाप्नोति भूमिदानाद्यदश्नुते।
तपो यज्ञः श्रुतं शील-मलोभः सत्यवादिता॥
गुरुदैवतपूजा च नातिवर्त्तन्ति भूमिदं।
भर्तुर्निःश्रेयसे युक्तास्त्यक्तात्मानो रणे हताः॥
ब्रह्मलोकगताः सन्तु नातिक्रामन्ति भूमिदं।
यथा जननी क्षीरेण स्वपुत्रं भरते सदा॥
अनुगृह्णाति दातारं तथा सर्व्वरसैर्म्मही।

मृत्योर्वै किंकरो दण्डस्तापो वह्नेः सुदारुणः ॥
घोराश्च वारुणाः पाशा नोपसर्पन्ति भूमिदम्।
पितॄंश्च पितृलोकस्थान्देवलोकेऽथ देवताः ॥
सन्तर्पयति शान्तात्मा यो ददाति वसुन्धरां।
क्लिश्यमानाय चात्यर्थं वृत्तिग्लानाय सीदते ॥
भूमिं वृत्तिकरीं दत्त्वा सत्री भवति मानवः।
यथा धावति गौर्वत्सं क्षरन्ति सततं पयः ॥
एवमेव महाभाग भूमिर्भरति भूमिदम्।
फालकृष्टां महीन्दत्वा सवीजां सफलामपि ॥
उद्यानं शरणं वापि तथा भवति कामदं।
यथा चन्द्रमसोवृद्धिरहन्यहनि जायते ॥
तथा भूमिकृतं दानं सस्ये सस्ये विवर्द्धते।
अत्र गाथां भूमिकृतां कीर्त्तयन्ति पुराविदः ॥
यां श्रुत्वा जामदग्न्येन दत्ता भूः कश्यपाय वै।
नृपा ददति मामेव मां दत्त्वा मामवाप्स्यथ ॥
अस्मिन् लोके परे चैव ततश्चाजनने पुनः।
य इमां व्याहृतीं देव ब्राह्मणीं ब्रह्मसंस्थितां ॥
श्राद्धस्य क्रियमाणस्य बृह्मभूयं स गच्छति।
कृत्यया वाभिशस्तानां दुरिष्टशमनं महत् ॥
प्रायश्चित्तं महीन्दत्त्वा पुनात्युभयतो दश।
यो ब्राह्मण इमं वेद वेदवादंस्तथैव च ॥
प्रकृतिः सर्व्वभूतानां भूमिर्वै शास्वती मता।
अभिषिच्यैव नृपतिं श्रावयेदिममागमम् ॥

यथा श्रुत्वा महीन्द्यामादद्यात्साधुतश्च तां।
स कुलीनः स पुरुषः स बन्धुः स च पुण्यकृत्॥
स च दाता स विक्रान्तो यो ददाति वसुन्धरां।
आदित्या इव दीप्यन्ते तेजसा भुवि मानवाः॥
ददन्ति वसुधां स्फीतां ये वेदविदुषे द्विजे।
यथा बीजानि रोहन्ति प्रकीर्णानि महीतले॥
यथाकामाः प्ररोहन्ति भूमिदानसमार्जिताः।
आदित्यो वरुणो विष्णुः ब्रह्मा सोमो हुताशनः॥
शूलपाणिश्च भगवान् अभिनन्दन्ति भूमिदं।
सौवर्णा यत्र प्रासादा वासोधाराश्च कामदाः॥
गन्धर्वाप्सरसो यत्र तत्र गच्छन्ति भूमिदाः
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्।
वृहस्पतेश्च संवादमिन्द्रस्य च युधिष्ठिर॥
इष्ट्वा क्रतुशतेनाथ महता दक्षिणावता।
मघवान् वाग्मिनां श्रेष्ठं पप्रच्छेदं वृहस्पतिम्॥

इन्द्र उवाच।

भगवन् केन दानेन स्वर्गतः सुखमेधते।
यदक्षय्यमहार्घ्यञ्च तं ब्रूहि वदताम्बर॥
इत्युक्तः स सुरेन्द्रेण ततो देवपुरोहितः।
वृहस्पतिर्वृहत्तेजाः प्रत्युवाच पुरन्दरम्॥

वृहस्पतिरुवाच।

सुवर्णदानं गोदानं भूमिदानञ्च वृत्रहन्।

ददाति यो महाप्राज्ञः सर्व्वपापैः प्रमुच्यते ॥
न भूमिदानाद्देवेन्द्र परं किञ्चिदिति प्रभो ।
विशिष्टमभिमन्यामि यथाप्राहुर्म्मनीषिणः ॥
पञ्च पूर्व्वादिपुरुषाः षट् येच वसुधाङ्गताः ।
एकादश ददद्भूमिं पवित्रातीह मानवः ॥
रत्नोपकीर्णां वसुधां यो ददाति पुरन्दर ।
स मुक्तः सर्व्वकलुषैः स्वर्गलोके महीयते ॥
महीं स्फीतां ददद्राजा सर्व्वकामगुणान्वितां ।
राजाधिराजो भवति तद्दानमनुत्तमम् ॥
सर्व्वकामसमायुक्तां काश्यपिं यः प्रयच्छति ।
सर्व्वभूतानि मन्यन्ते मान्ददातीति वासव ॥
सर्व्वकामदुघां भूमिं सर्व्वकामपुरोगमां ।
ददातीह सहस्राक्ष स स्वर्गं याति मानवः ॥
मधु-सर्पिः-प्रवाहिन्यः पयो-दधि-वहास्तथा ।
सरितस्तर्पयन्तीह सुरेन्द्र वसुधाप्रदं ॥
भूमिप्रदानान्नृपतिर्म्मुच्यते सर्व्वकिल्बिषात् ।
न हि भूमिप्रदानेन दानमन्यद्विशिष्यते ॥
पुण्यां मृदुरसां भूमिं यो ददाति पुरन्दर ।
न तस्य लोकाः क्षीयन्ते भूमिदानगुणार्ज्जिताः ॥
सर्व्वथा पार्थिवेनेह सततं भूतिमिच्छता ।
भूर्द्देया विधिवच्छक्र पात्रे सुखमभीप्सता ॥
अपि कृत्वा नरः पापं भूमिन्दत्त्वा द्विजातये ।
समुत्सृजति तत्पापं जीर्णान्त्वचमिवोरगः ॥

सागराः सरितः शैलास्तीर्थानि विविधानि च।
एतानि भूमिदानस्य कलां नार्हन्ति षोड़शीं॥
तस्मात् प्राप्यैव मेधावी दद्याद्विप्राय पार्थिव।
न भूमिपतिना भूमिरधिष्ठेया कथञ्चन॥
अग्निष्टोमप्रभृतिभिरिष्ट्वा, यज्ञैः सदक्षिणैः।
न तत्फलमवाप्नोति भूमिदानाद्यदश्नुते॥
दाता दशानुगृह्णाति दश हन्ति तथा क्षिपन्।
पूर्व्वदत्तां हरन् भूमिं नरकायोपगच्छति॥
न ददाति प्रतिश्रुत्य दत्त्वा वा हरते तु यः।
तौ च द्वौ वारुणैः पाशैस्तप्येते मृत्युशासनात्॥
विन्ध्याटवीष्वतोयासु शुष्ककोटरवासिनः।
कृष्णसर्पास्तु जायन्ते ये हरन्ति वसुन्धरां॥
पतन्त्यश्रूणि रुदतां दीनानामवसीदताम्।
ब्राह्मणानां हृते क्षेत्रे हन्युस्त्रिपुरुषं कुलम्॥
आहिताग्निं समादाय कृशभृत्यं प्रियातिथिं।
वसुधां ये प्रयच्छन्ति नोपसर्पन्ति ते यमम्॥
तथा। इक्षुभिः सततां भूमिं यव-गोधूम-शालिनीं।
गोऽश्ववाहनसम्पूर्णां बहुवीर्य्यसमार्जितां॥
बीजगर्भान्ददद्भूमिं सर्व्वरत्नपरिच्छदां।
अक्षयाल्लभते लोकान् भूमिसत्वं हि तस्य तत्॥
विधूय कल्मषं सर्व्वं राजा स्यात् सम्मतः सतां।
लोके महीयते सद्भिर्यो ददाति वसुन्धरां॥
यथाप्सु पतितः शक्र तैलबिन्दुः प्रसर्पति।

तथा भूमिकृतं दानं सस्ये सस्येऽभिवर्द्धते ॥
नृत्य-गीतपरा-नार्य्यो दिव्यमालाविभूषिताः ।
उपतिष्ठन्ति देवेन्द्र सदा भूमिप्रदन्नरं ॥
मोदते च सुखं स्वर्गे देवगन्धर्व्वपूजितः ।
यो ददाति महीं सम्यक् विधिनेह द्विजातये ॥
शतमप्सरसाञ्चैव दिव्यमालां विभूषितां ।
उपतिष्ठन्ति देवेन्द्र ब्रह्मलोके धराप्रदं ॥
उपतिष्ठन्ति भूतानि सदा भूमिप्रदन्नरम् ।
शङ्खं भद्रासनं छत्रं धराश्वा वरवारणाः ॥
भूमिदानस्य पुष्पाणि हिरण्यनिचयास्तथा ।
आज्ञा सदाप्रतिहता जयशब्दो भवत्यथ ॥
भूमिदानस्य पुष्पाणि फलं स्वर्गः पुरन्दर ।
हिरण्यपुष्पाश्चौषध्यः कुश-काञ्चन-शाद्वलाः ॥
अमृतप्रसवां भूमिं प्राप्नोति पुरुषो ददत् ।
नास्ति भूमिसमं दानं नास्ति यज्ञसमो गुरुः ॥
नास्ति सत्यपरो धर्म्मो नास्ति दानसमो निधिः ।
एतदाङ्गिरसीं श्रुत्वा वासवो वसुधामिमां ॥
वसुरत्नसमाकीर्णां ददावाङ्गिरसे तदा ॥
य इदं श्रावयेच्छ्राद्धे भूमिदानस्य संस्तवं ।
न तस्य रक्षसाम्भागो नासुराणां भवत्युत ॥
अक्षयञ्च भवेद्दत्तं पितृभ्यश्च न संशयः ।
देवलः । श्रेष्ठाच्छ्रेष्ठतरं प्रोक्तं भूमिदानं द्विजातिभिः ॥
तद्दत्वा पुरुषः स्वर्गे पूज्यते त्रिदशोत्तमैः ।

वाञ्छन्ति पितरोऽप्येवं स्वर्गलोके व्यवस्थिताः॥
यद्यस्मत्कुलजः कश्चित् भवत्यत्रनिदानकृत्।
नरकस्था मर्त्यलोके स्वर्गस्थाः परमं पदम्॥
यथा वयमतीता ये व्रजामस्तत्प्रभावतः।
किमत्र चित्रं दातारं यत्समुद्धरते धरा॥
प्रतिग्रहग्रहीतारमपि तारयति द्विजम्।
न तथान्यैर्व्रतैर्दानैर्दातृभिः फलमाप्यते॥
अपि यद्दत्तया भूम्या दण्डत्रितयमात्रया।
यद्दानन्दीयते किञ्चित् परत्र स्यादिहैव हि॥
भूदानेन पुनः सर्व्वदानानां प्राप्यते फलम्।
ते धन्यास्ते सुकृतिनः कृतार्थास्ते न संशयः॥
सत्पात्राय प्रदत्तं यैर्भूदानं विधिना नरैः।

विष्णुधर्म्मोत्तरे हंसउवाच।

हस्तमात्रन्तु यो दद्याद्भुवः पुरुषसत्तमः।
तेनैव ध्रुवमायाति भूमिदानफलं नरः॥
गोचर्म्ममात्रान्तान्दत्त्वा वसूनां लोकमाप्नुयात्।
शाकभूमिं नरोदत्त्वा लोकमाङ्गिरसं लभेत्॥
आरामभूमिं दत्त्वा च मारुतं लोकमाप्नुयात्।
जलाशयार्थं यो दद्याद्वारुणं लोकमाप्नुयात्॥
यस्य देवस्य वेश्मार्थं तस्य देवस्य सोऽश्नुते।
उद्यानभूमिं दत्त्वा च गन्धर्व्वैः सह मोदते॥
रत्नाकरभवं दत्त्वा शक्रलोके महीयते।

अन्येषामाकरभुवं लोकानां यः प्रयच्छति ॥
तस्यापि गतिरुद्दिष्टा लोके ह्रीताग्रने द्विजाः ।
धान्याकरभुवं दत्त्वा नागपृष्ठे महीयते ॥
अञ्जनाकरभूमिञ्च यः प्रयच्छति वै द्विजाः ।
पितृभिर्यमलोकस्थः पूज्यतेऽसौ नरोत्तमः ॥
लवणाकरभूमिञ्च सोमलोके महीयते ।
ओषधाकरभूमिञ्च ब्रह्मलोके महीयते ॥
शिरवीशस्यप्ररोहान्तु भुवं दत्त्वा नरोत्तमः ।
साध्यानां लोकमाप्नोति नात्र कार्य्या विचारणा ।
इन्धनाकरभूमिञ्च वह्निलोके महीयते ॥
सर्व्वदानभुवं दत्त्वा रुद्रलोके महीयते ।
केदारभूमिं धर्म्मज्ञोः यः प्रयच्छति धर्म्मतः ॥
महत्पुण्यमवाप्नोति ब्रह्मलोकञ्च गच्छति ।
इक्षुभूमिं नरो दत्त्वा शालिभूमिमथापि वा ॥
सोमलोकमवाप्नोति सर्व्वकामांश्च विन्दति ।
गुल्मपुष्पलताकीर्णां यो भुवं संप्रयच्छति ॥
विमाने नन्दनेसोऽथ क्रीडत्यप्सरसाङ्गणैः ।
पुष्पदं फलदं वृक्षं दधन्तीं पृथिवीं ददत् ॥
स्वर्गलोकपरिभ्रष्टो नगराधिपतिर्भवेत् ।
ब्राह्मणाय गृहं दत्त्वा वसूनां* लोकमश्नुते ॥
सारामभूमिदो विप्रः क्रीड़ते नन्दने वने ।
ग्रामप्रदः स्यान्नृपतिः सम्राट् नगरदो भवेत् ॥

* वायूनामितिपाठान्तरम ।

समग्रवसुधेशःस्याच्चक्रवर्त्ती च राज्यदः।
स्वदत्तां परदत्तां वा यो हरेच्च वसुन्धरां॥
अप्येकाङ्गुलमात्रां वा प्रमादाज्ञानमोहितः।
बह्वन्यब्दसहस्राणि धर्म्मोऽपि पुरुषोत्तमः॥
विष्ठायां क्रमितामेति पितृभिः सहितस्तथा।
स्वेराष्ट्रे परराष्ट्रे वा देवब्राह्मणसतकृतां॥
चिरं नरकमाप्नोति हृत्वा भूमिपतिर्भुवम्।
भूमिं कृत्वा तु यः कुर्य्याद्देवब्राह्मणसान्नरः॥
स्वर्गलोकमवाप्नोति पुरुषोऽपि सुदारुणः।
षष्टिर्व्वर्षसहस्राणि स्वर्गे वसति भूमिदः॥
आच्छेत्ता चानुमन्ता च तावन्ति नरकं वसेत्।
पञ्चसस्यां वसुमतीं योऽलङ्कृत्य प्रयच्छति॥
कामगेन विमानेन ब्रह्मलोकं स गच्छति।

भविष्यत्पुराणे।

निवर्त्तनसहस्रायां सर्व्वसस्यप्ररोहिणीं।
दद्याद्भूमिं फलोपेतां भूमिदानन्तदुच्यते॥
एकच्छत्रां महीं कृत्वा द्विजेभ्यः प्रतिपादयेत्।
सम्पूर्णां यो नृपः कश्चित् भूमिदानन्तदुच्यते॥

कूर्म्मपुराणे।

गोचर्म्ममात्रं भूखण्डमधिकं वा स्वशक्तितः।
त्रिधासदक्षिणं कृत्वा दत्त्वा शिवपुरं व्रजेत्॥

त्रिधासदक्षिणमिति, पूर्व्वोक्तैक-द्वि-त्रि-सुवर्णैः सह-दक्षिण-मित्यर्थः।

वृहस्पतिः।

अपि गोचर्म्ममात्रेण* सम्यग्दत्तेन मानवः।
धौतपापो विशुद्धात्मा स्वर्गलोके महीयते॥
दशहस्तेन दण्डेन त्रिंशद्दण्डा निवर्त्तनम्।
दश तान्येव गोचर्म्म ब्राह्मणेभ्यो ददाति यः॥
यत्किञ्चित् कुरुते पापं पुरुषो लोभमोहितः।
तत्सर्व्वं भूमिदानेन क्षिप्रमेव विनश्यति॥

कात्यायनः।

मुच्यते ब्रह्महा गोघ्नः पितृघ्नो गुरुतल्पगः।
भूमिं सर्व्वगुणोपेतां दत्त्वा पापात् प्रमुच्यते॥

वृद्धवसिष्ठः।

दशहस्तेन दण्डेन दशहस्तात् समन्ततः।
पञ्चचाभ्यधिकान्दद्यादेतद्गोचर्म्म कथ्यते॥

मत्स्यपुराणे।

सप्तहस्तेन दण्डेन त्रिंशद्दण्डा निवर्त्तनं।
त्रिभागहीनं गोचर्म्ममानमाह प्रजापतिः॥
मानेनानेन योदद्यान्निवर्त्तनशतन्बुधः।
विधिनानेन तस्याशु क्षीयते पापसंहतिः॥
तदर्द्धमथवादद्यादपि गोचर्म्ममात्रकम्।

* गोकर्णमात्रेणेति पुस्तकान्तरे।



34—:

भवनस्थानमात्राञ्च सोऽपि पापात् प्रमुच्यते॥

तथा। यत्किञ्चित् कुरुते पापं जन्मप्रभृति मानवः।

अपि गोचर्म्ममात्रेण भूमिदानेन शुध्यति॥

गवां शतं वृषश्चैको यत्र तिष्ठेदयन्त्रितः।

तद्धि गोचर्म्ममात्रन्तु प्राहुर्व्वेदविदो जनाः॥

अत्रचैतेषु गोचर्म्मप्रकारेषु उत्तममध्यमाधमभावेन व्यवस्था वेदितव्या सुवर्णञ्चात्र दक्षिणा।

यदाह माण्डव्यः॥

न हि भूमेः परं वस्तु गोः सुवर्णाच्च किञ्चन।

अतो भुवि गवि प्राज्ञैः सुवर्णं दक्षिणा मतेति॥

भूमिदानमन्त्रस्तु।

मत्स्यपुराणे।

तथा भूमिप्रदानस्य कलान्नार्हन्ति षोडशीं।

दानान्यन्यानि मे शान्ति भूमिदानाद्भवत्विह॥

तत्रैव प्रयोगः।

ओं अद्य अमुकस्मिन् काले अमुकस्मिन् देशे अमुकसगोत्राय अमुकप्रवराय अमुकशर्म्मणे अमुकसगोत्रोऽहं अमुकप्रवरः अमुकशर्म्मा इमां भूमिं प्रियदत्तां विष्णुदैवतां अमुककामस्तुभ्यमहं सम्प्रददे न ममेति सपुष्पं कुशतिलोदकं ब्राह्मणहस्ते निक्षिपेत् तेन च मनसा भूमिं प्रदक्षिणीकृत्य प्रतिग्रहः कार्य्यः भूमिःसमीपे

क्षेत्राध्यात् प्रदक्षिणीकुर्य्यात् ओं अद्य अमुकसगोत्रायेत्यादि एतद्भूमिदानप्रतिष्ठार्थं एतत्सुवर्णं दक्षिणान्तुभ्यमहं सम्प्रददे न ममेति।

विश्वामित्रः।

गोचर्म्ममात्रां यः पृथ्वीं ब्राह्मणाय प्रयच्छति।
सर्व्वदः स तु विज्ञेयः शक्रवद्दिवि मोदते॥
ग्रामं वा नगरं वापि विप्रेभ्यो यः प्रयच्छति।
क्षेत्रं वा सस्यसम्पन्नं सर्व्वपापैः प्रमुच्यते॥

बृहस्पतिः।

आस्फोटयन्ति पितरः प्रगल्पन्ति पितामहाः।
भूमिदोऽस्मत्कुले जातः सोऽस्माकन्तारयिष्यति॥

नन्दीपुराणे।

दत्त्वाच भूमिं पुरुषः सश्रेयां सस्यमेदिनीम्*।
सुमेध्यां रम्यसंस्थानां फलवृक्षमनोरमां॥
अनूषरामनाबाधां पात्रे बहुगुणान्विते।
अप्येकपुरुषाधारां दत्त्वा भूमिं महात्मने॥
दशकल्पानि वसति स्वर्गे विगतपातकः।

महाभारते।

शीत-वाता-तपसहां गृहभूमिं सुसंस्कृताम्।
प्रदाय सुरलोकस्थः पुन्यान्तेऽपि न चाल्यते॥

---

* सस्यदायिनीमिति पुस्तकान्तरे पाठः।

तथा। प्रादेशमात्रां भूमिन्तु योदद्यादशुपस्कृताम्।
न स सीदति कृच्छ्रेण न च दुर्गाण्यपाप्नुते॥
मुदितो राजते प्राज्ञः प्राज्ञेण सह नन्दति।
यावन्ति लाङ्गलमुखेन रजांसि भूमे-
र्भासाम्यते दुहितुरङ्गजरोमकाणि।
तावन्ति शङ्करपुरे स युगानि तिष्ठेत्
भूमिप्रदानमिह यः कुरुते मनुष्यः॥
गन्धर्व-किन्नर-सुरा-सुर-सिद्ध-सङ्घै-
राधूतचामरमुपेत्य महद्विमानं।
सम्पूज्यते पितृपितामहबन्धुयुक्तः
शम्भोः पुरं व्रजति चामरनायकः स्यात्॥
स्वदत्तां परदत्तां वा यो हरेच्च वसुन्धराम्।
स विष्ठायां कृमिर्भूत्वा पितृभिः सह मज्जति॥

इति भूमिदानविधिः।

तत्र शिवधर्मात्।

यः शिवाय हलोपेतां सर्व्वसस्यप्ररोहिणीं।
महीं महीपतिर्द्द्यात्तस्य पुण्यफलं शृणु॥
यावद्दण्डा भवेद्भूमि र्मीयमाना समन्ततः।
स तावत्कल्पसंख्यानं रुद्रलोके महीयते॥
एवं सर्व्वत्र विज्ञेयं फलं दण्डप्रमाणतः।
ग्रामं खेटं पुरं क्षेत्रं विषयादि निवेदयेत्।

सर्व्वसस्यजलोपेतं सर्व्वबाधाविवर्जितम् ।
ग्रामं शिवाय योदद्यात्तस्य पुण्यफलं शृणु ॥
सर्व्वतीर्थेषु यत्पुण्यं ग्रामदानेन यत्फलम् ।
सूर्य्यकोटिप्रतीकाशैर्हि व्यस्त्रीकोटिसंयुतः ॥
संयुक्तः कोटिशोऽनेकैः सर्व्वकामसमन्वितैः ।
विमानैर्ग्रामदानेन त्रिसप्तकुलसंयुतः ॥
यथेष्टमैश्वरे लोके क्रीड़ते कालमक्षयम् ।
पुण्यं नगरदं तस्य ग्रामदानाच्छताधिकम् ॥
देशदानेन चात्यन्तं न शक्यं तत् प्रकीर्त्तितुम् ।
रत्ना-न्न-पान-गो-स्त्रा-द्यं सर्व्वं भूमौ प्रजायते ॥
तस्माद्भूमिप्रदानेन नरोभवति सर्व्वदः ।

इति शिवभूमिदानविधिः ।

वराहपुराणे ।

विष्णवे विषयं ग्रामं ग्रामार्द्धमपि शक्तितः ।
दत्त्वा क्रीडति वैकुण्ठोपकण्ठेषु निरत्ययम् ॥
राजराजेश्वरः श्रीमानरोगः सुभगः सुखी ।
विद्यानां पारदृश्वैव जायते कीर्त्तिमानपि ॥
निवर्त्तनसहस्रं यो विष्णवे विनिवेदयेत् ।
सर्व्वगीर्व्वाणदेवेषु* स क्रीडति युगावधि ॥
निवर्त्तनशतेनापि यः प्रीणयति केशवम् ।
शतयोजनविस्तीर्णे स राजा भूतले भवेत् ॥

* वेदेष्विति क्वचित्पाठः ।

अपि गोचर्ममात्रां यो ददाति हरयेभुवम ।
सप्तजन्मानि राजेन्द्र स श्रीमानभिजायते ॥
विष्णवे भोगमुद्दिश्य क्षेत्रं वा गृहमेव वा ।
यो ददाति स पुण्यात्मा सर्व्वपापैः प्रमुच्यते ॥

इति विष्णवे भूमिदानं ।

भविष्यत्पुराणे ।

यः सूर्य्याय फलोपेतां सर्व्वसस्यप्ररोहिणीं ।
मह्हीं मह्हीपतिर्दद्यात्तस्य पुण्यफलं शृणु ॥
भूभागाश्चैव यावन्तो भूतले भान्ति सत्तम ।
तावद्युगसहस्राणि स्वर्गलोके* महीयते ॥
एवं सर्व्वत्र विज्ञेयं फलं द्रव्यानुसारतः ।
ग्राम-खेट-पुर-क्षेत्र-विषयादि निवेदने ॥
सर्व्वसस्यफलोपेतं सर्व्वशत्रुविवर्जितं ।
ग्रामं सूर्य्याय योदद्यात्तस्य पुण्यफलं शृणु ॥
सर्व्वतीर्थेषु यत्पुण्यं सर्व्वव्रतेषु यत्फलं ।
सर्व्वदानेषु यत्पुण्यं ग्रामदानेन तल्लभेत् ॥
सूर्य्यकोटिप्रतीकाशैर्दिव्यस्त्रीकोटिसंकुलैः ।
नानारत्नसमाकीर्णैः नानाकारसमन्वितैः ॥
विमानैर्ग्रामदानेन त्रिःसप्तकुलसंवृतः ।
यथेष्टं सर्व्वलोकेतु क्रीडते कालमक्षयं ॥
पुण्यं नगरदानस्य ग्रामदानशतद्वयं ।

---

* सूर्य्यलोके इति क्वचित्पाठः ।

देयदानि तदानन्त्यं फलमाहुर्मनीषिणः॥

इति भानुभूमिदानं।

अथ विद्यादानाख्यमतिदानमारभ्यते।

तत्रादित्यपुराणे।

त्रीणि तुल्यप्रदानानि त्रीणि तुल्यफलानि च।
सर्व्वकामदुघा नूनं गावः पृथ्वी सरस्वती।

नन्दिपुराणे॥

यस्तु पुण्यपरो मर्त्त्योजिगीषुः कीर्त्तिसाधकः।
सविधानेन वै दद्याद्विद्यां विविधकामदां॥
नित्यं विद्याप्रदानं वै सर्व्वकामगुणाधिकं।
यतेत पात्रे सन्त्यक्तुं रहस्यं चैतदुत्तमं॥
उद्दिश्य देवतां दत्तं प्रदानं यत्र कुत्रचित्।
तस्याः समस्तपुण्यस्य फलं केन निरूप्यते॥

गारुडपुराणे।

दानानामुत्तमन्दानं विद्यादानं विदुर्ब्बुधाः।
आहुः समस्तविद्यानां श्रियमेवाधिदैवतं॥
यथा वरिष्ठो देवानां विष्णुः कारणपूरुषः।
यथा च योषित्प्रवरा कमला पङ्कजालया॥
*आहुर्ब्बलवतां श्रेष्ठो यथाज्योतिष्मतां रविः।

---

* वायुर्ब्बलवतामिति क्वचित्पाठः।

जलाशयानां प्रवरो यथायं सरितां पतिः।
तथा विद्याप्रदः श्रेष्ठो गरीयांश्च गरीयसां॥
पुण्यश्चापि स सर्व्वत्र यश्च विद्यां प्रयच्छति।
इहामुत्रसुखक्षेममाहुर्विद्याधनं धनं॥
विद्ययामलया युक्तो विमुक्तिं याति संयमी।
विद्यया च सुखं गच्छेद्विद्यया च परां गतिं॥
विद्या प्रतिष्ठा भूतानां विद्यायोनिश्च देवता।
तस्माद्विद्याप्रदोलोके सर्व्वदः प्रोच्यते बुधैः॥

बृहस्पतिः।

सहस्रमेव धेनूनां शतं चानडुहा समं।
दशानडुत्समं यानन्दशयानसमो हयः॥
दशवाजिसमा कन्या भूमिदानञ्च तत्समं।
१भूमिदानात्समं नास्ति विद्यादानं ततोऽधिकं॥

विष्णुधर्म्मोत्तरे

विद्या कामदुघा धेनुर्व्विद्या चक्षुरनुत्तमं।
विद्यादानात्परं दानं न भूतं न भविष्यति॥
विद्यावान् सर्व्वकामानां भाजनं पुरुषो भवेत्।
तस्माद्विद्यां हि ददतासर्व्वं दत्तं भवेदिह॥
पराध्यापनशक्तो हि पुरुषस्तु यदश्नुते।
तपस्तत्परमन्तस्य ब्रह्मलोकसमं स्मृतं॥
दानानामुत्तमं लोके तपसश्च तथोत्तमं।
विद्यादानं महाभागः सर्व्वकामफलप्रदं॥

देवीपुराणे ।

विद्याविवेकबोधेन शुभाशुभविचारणात् ।
विन्दते सर्व्वकामाप्तिं यस्माद्विद्या परा मता ॥
विद्यादानात्परं दानं त्रैलोक्येऽपि न विद्यते ।
येन दत्तेन चाप्नोति शिवं परमकारणम् ॥

तथा　सिद्धान्तमोक्षशास्त्राणि वेदाः स्वर्गादिसाधकाः ।
वेदाङ्गानीतिहासाश्च देया धर्म्मविवृद्धये ॥
गारुड़ं बालतन्त्रञ्च भूततन्त्राणि भैरव ।
शास्त्राणां पाठनाद्दानान्मातरः फलदा नृणां ॥
ज्योतिषं वैद्यशास्त्राणि कलाः काव्यं शुभागमाः ।
दानादारोग्यमाप्नोति गान्धर्व्वं लभते पदं* ।
विद्यया वर्त्तते लोको धर्म्माधर्म्मञ्च विन्दति ॥
विद्या तस्मात् सदा देया दृष्टादृष्टफलार्थिभिः ।

विष्णुधर्म्मोत्तरे ।

धर्म्मशास्त्रप्रदानेन धर्म्मेण सह मोदते ।
सिद्धान्तानां प्रदानेन मोक्षं प्राप्नोति वैदिकम्† ॥
शास्त्राणि दत्त्वा चान्यानि नरः स्वर्गे महीयते ।

नन्दिपुराणे ।

विद्याश्चतुर्दश प्रोक्ताः क्रमेण तु यथास्थितिः ।

* फलमिति क्वचित्पाठः ।

† मोक्षमाप्नोत्यसंशयमिति क्वचित् पुस्तके ।

षड़ङ्गाश्चतुरोवेदा धर्म्मशास्त्रं पुरातनं॥
मीमांसा तर्कमपि च एता विद्याश्चतुर्द्दश।

धर्म्मशास्त्रं, स्मृतयः।

पुरातनं, पुराणम्।

आसामेवान्तरोत्पन्नाः परा विद्याः सहस्रशः।
आयुर्व्वेदः सस्यवेदोबहुभेदः प्रकीर्त्तितः॥

सस्यवेदः, कृषिशास्त्रं।

सर्व्वात्मा चात्मविद्या च संसारभयनाशिनी।
सर्व्वदुःखान्तकरणी सर्व्वपापप्रणाशनी॥
एता विद्याः समाख्याता बहुभेदोपभेदजाः।
कलाविद्यास्तथाचान्याः शिल्पविद्यास्तथापराः॥

शिल्पविद्या, प्रतिमादिनिर्म्माणशास्त्रं।

सर्व्वा एता महाभागाः सर्व्वाः सर्व्वार्थसाधकाः॥
मताश्च तारतम्येन विशिष्टफलसाधिकाः।
आत्मविद्या प्रधाना तु तथायुर्वेदसंहिताः॥
धर्म्माधर्म्मप्रणयिनी कलाः शिल्पार्थसाधिकाः।
सस्यविद्या च वितता एता विद्या महाफलाः॥
धर्म्माधर्म्मप्रणयिनी धर्म्माधर्म्मप्रसाधिका।
ययैको जीवति प्राणी कयापि किल कुत्रचित्॥
अप्रधानापि सा विद्या कृत्वानां शतमुद्धरेत्।

अप्रधाना, अवान्तरविद्या ।

यापि साप्यवबोधत्वाद्विद्या वै यत्र कुत्रचित् ।
प्रयास्यत्यस्तयाल्लोकान्विधिना वाविधानतः ॥

अवबोधत्वादवबोधहेतुत्वात् प्रयास्यतीत्यन्तर्भावितो ण्यर्थः तेन प्रयापयिष्यतीत्यर्थः ।

शिल्पविद्यां नरोदत्त्वा यान्ति वै ब्रह्मणोऽन्तिकं ।
कलाविद्यां नरो दत्त्वा वैष्णवं लोकमाप्नुयात् ॥
कल्पमेकं न सन्देहः स्वर्गभोगसमन्वितः ।
सस्यविद्यां नरो दत्त्वा तृप्तिमान् कामसंयुतः ॥
प्रजापतिपुरं गच्छेन्नरकात्तारयेत् पितॄन् ।
आयुर्वेदं नरोदत्त्वा लोकान् प्राप्नोति निर्म्मलान् ॥
अश्विनोर्दिव्यकामाद्यान् दिव्यमन्वन्तरं नरः ।
तर्कविद्यां नरो दत्त्वा वारुणं लोकमाप्नुयात् ॥*
मीमांसान्तु बुधे दत्त्वा शास्त्रमिन्द्रपुरे वसेत् ।
धर्म्मशास्त्रं नरो दत्त्वा स्वर्गलोके महीयते ॥
दशमन्वन्तराण्यर्थस्तारयेन्नरकात् पितॄन् ।
वेदविद्यां नरो दत्त्वा स्वर्गलोकत्रयं वसेत् ॥
आत्मविद्याञ्च यो दद्यात् तस्य सङ्ख्या न शक्यते ।
पुण्यस्य गदितुं सम्यगपि वर्षशतायुतैः ॥
एतावच्छक्यते वक्तुं यत्कल्पायुतमुत्तमं ।
सत्यलोके वसेन्मर्त्यो यत्र ब्रह्मा वसेत्प्रभुः ॥

* स्वर्गे कल्पत्रयमिति क्वचित् पाठः ॥

अप्येकं निरुजीकृत्य जन्तुं यादृशतादृशं।
आयुर्वेदप्रभावेन किन्न दत्तं भवेद्भुवि ॥
शस्यवेदप्रसादेन सम्पन्नाः शस्यशालयः।
किं न नाम कृतं तत्र पुण्यं भवति शाश्वतं ॥
मीमांसाशास्त्रमाहात्म्यं बुद्ध्वा वै वेदनिर्णयं।
किं न नाम शुभं दातुर्यज्ञकर्म्मप्रवर्त्तनात् ॥
आत्मविद्या च पौराणी धर्म्मशास्त्रात्मिका च या।
एता विद्यास्त्रयीमुख्याः सर्व्वदानक्रियाफलैः ॥
धर्म्मशास्त्रं नरो बुद्धा यत्किञ्चिद्धर्म्ममाश्रयेत्।
तस्य धर्म्मं शतगुणं धर्म्मशास्त्रप्रदस्य च ॥
पुराणाख्यानविद्वांसः पितृदेवार्च्चने रताः।
लोकान् सर्व्वान् कामपूर्णान् यान्ति सर्व्वशुभोदयात् ॥
पुराणविद्यादातारस्त्वनन्तफलभागिनः।
आत्मविद्याप्रदातारो नरा धर्म्मसमाश्रयात् ॥
न पुन र्योनिनिरयं प्रविशन्ति दुरत्ययं।
उत्तीर्णाः सर्व्वपापेभ्यः सपुत्रपशुबान्धवाः ॥
मुच्यन्ते निरयैर्घोरैरसंख्यैर्यातनात्मकैः।
तथा। श्लोकं प्रहेलिकां गाथामन्यथा वा शुभाषितं ॥
दत्त्वा प्रीतिकरं याति लोकमप्सरसां शुभं।

वाराहपुराणे।

रामायणं भारतञ्च दत्त्वा स्वर्गे महीयते।
पुराणं तर्कशास्त्रञ्च छन्दोलङ्कारलक्षणम् ॥

वेदमीमांसिकान्दत्त्वा शिवधर्म्मांश्च वै नृप ।
सप्तद्वीपपृथिव्याश्च राजराजो भवेत्तु सः ॥
पाणिनीयं निरुक्तादि वेदाङ्गं स्मृतयस्तथा ।
दत्त्वा ज्ञानमवाप्नोति वेदान्तञ्च विशेषतः ॥
नित्यं देयानि राजेन्द्र गावः पृथ्वी सरस्वती ।

इति विद्यादानप्रशंसा ।

अथ वेददानं तावन्निरूप्यते ।

आदित्यपुराणे ।

सर्व्वेषामेव दानानां ब्रह्मदानं विशिष्यते ।
कार्य्यं न गोमहीवासतिलकाञ्चनसर्पिषां ॥

ब्रह्मदानं, वेददानं ।

याज्ञवल्क्यः ।

सर्व्वधर्म्ममयं ब्रह्म प्रदानेभ्योऽधिकं यतः ।
तद्ददत्समवाप्नोति ब्रह्मलोकमविच्युतः ॥

महाभारते ।

योब्रूयाच्चापि शिष्याय धर्म्म्यां ब्राह्मीं सरस्वतीं ।
पृथिवीगोप्रदानाभ्यां स तुल्यं फलमश्नुते ॥

ब्राह्मी, वेदार्थानुगमा ।

तथा  अधीत्यापि च यो वेदान् न्यायविद्यः प्रयच्छति ।
गुरुकर्म्मप्रशस्तोऽयं सोऽपि स्वर्गे महीयते ॥

विष्णुधर्म्मोत्तरे।

वेददानादवाप्नोति सर्व्वयज्ञफलं नरः।
उपवेदप्रदानेन गन्धर्व्वैः सह मोदते॥
वेदाङ्गानाञ्च दानेन शक्रलोकमवाप्नुयात्।

गारुड़पुराणे।

विद्यानाञ्च परा विद्या ब्रह्मविद्या समीरिता।
अतस्तद्दानतो राजन् सर्व्वदानफलं भवेत्॥
आयुःसमस्तविद्यानां वेदविद्यामनुत्तमम्।
अतस्तद्दातुरस्यैव लाभः स्वर्गापवर्गयोः॥

देवीपुराणे।

वेदएव द्विजातीनां साधनं श्रेयसः परं।
अतःस्वाध्यापनाभ्यासात् परं ब्रह्माधिगच्छति॥
तमेव शीलयेत् प्राज्ञः शिष्येभ्यस्तं प्रदापयेत्।
तदभ्यासप्रदानाभ्यां तत् किं यन्नाधिगच्छति॥
अङ्गोपाङ्गसमायुक्तं यो वेद वेदकृत्स्नशः।
न स लिप्यति पापेन दद्मोक्षमवाप्नुयात्॥

तथा मनुरुवाच।

किं वेदरूपं मानञ्च उपाङ्गसङ्ख्याभेदतः।
अङ्गानि चैव वेदानां तन्नो ब्रूहि सनातन॥

ब्रह्मोवाच।

ओंकारप्रभवा वेदा गायत्री वेदसम्भवा।

षडङ्गास्ते समाख्याता सहोपाङ्गास्तथैव च ॥
छन्दोलक्षणसंयुक्ता मातृकागर्भजाः स्मृताः ।
एकएव भवेद्वेदश्चतुर्व्वेदः पुनः कृतः ॥
शाखार्थमल्पयुक्तानां* प्रकृणाथातिविस्तरात् ।
सव्विभक्ता मया वत्स ऋग्यजुःसामाथर्व्वकाः ॥
तत्र भेदास्तु ऋग्वेदे दशचैव प्रकीर्त्तिताः ।
आस्तयाः† साङ्ख्यचर्चाश्च श्रावका चर्च्चकास्तथा ॥
श्रावणीयावक्रमाषाःषट्क्रमाःषड्नुक्रमाः ।
दण्डाश्चेति समासेन पुनरेकैव पारणाः ॥
शाखाश्च त्रिविधा भूप शाकला-याष्क-माण्डुकाः ।
तेषामध्यापनं प्रोक्तं मण्डलानि च सप्ततिः ॥
चर्चानां परिसङ्ख्या तु चतुर्व्विंशच्छतानि च ।
ऋचां दशसहस्राणि ऋचां पञ्चशतानि च ।
ऋचामशीतिः पादश्च एतत् पारणमुच्यते ।
ऋग्वेदे तु भवेत्संख्या यजुर्वेदस्य श्रूयताम् ॥
षडशीतिर्विभेदेन मया भिन्नाःशिवाज्ञया ।
दशधा चरकास्तत्र करकाहारिद्रवीयाः,
कठाः प्राच्यठाश्चैव कपिष्ठलकठास्तथा ।
नारायणीयाः श्वेताः श्वेताश्वतरमैत्रायणाः ॥
पुनः सप्त विभेदेन मैत्रायण्याः प्रकीर्त्तिताः ।
मानवा दुन्दुभा वाराहा छागेया हारिद्रवीयाः,

* शाखार्थमल्पशक्त्यानामिति क्वचित्पाठः ।

† चस्तया इति क्वचित्पाठः ।

श्यामाः श्यामायनीयाश्च तेषामध्ययनमुच्यते ।
अष्टादशसहस्राणि पाठावेदविदोविदन् ॥
द्विगुणं पादपारीया स्त्रिगुणं क्रमपारगाः ।
षडङ्गानि यदाधीते स षडङ्गविदुच्यते ॥
शिक्षाकल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दोज्योतिषम् ।
षडङ्गानि भवन्त्येतान् उपाङ्गानि शृणुष्व भो ॥
प्रतिपदमनुपदं छन्दोभाषासमन्वितम् ।
मीमांसा-न्यायतर्कश्च उपाङ्गाः परिकीर्त्तिताः ॥
परिशिष्टाश्च संख्याता अष्टादश शृणुष्व तान् ।

यूपलक्षणं छागलक्षणं प्रतिष्ठा-नुवाकसंख्या-चरणव्यूह-श्राद्ध-कल्पसूत्राणि परिषदृग्यजुषमिष्टकापूरणं प्रवराध्यायो-

व्छशास्त्रं क्रतुसंख्या निगमा यज्ञपार्श्वहोत्रकम् ।
व्रतञ्च प्रसवोत्थानकूर्म्मलक्षणसंयुतम् ।
कथिताः परिशिष्टास्तु द्यूनविंशतिसंख्यया ॥
कठानां पुनर्व्याख्याहुश्चत्वारिंशच्चतुर्युतान् ।
प्राच्योदीच्या निरुक्ताश्च वाजसनेयास्तु पञ्च च ।
दशभेदविभिन्नाश्च द्रष्टव्या मुनिपुङ्गव ॥
जाबालाबौधेयाकान्वामाध्यन्दिनाश्चशापेथाः ।
सुपायिनः कपालाख्याः पौण्ड्रवसावटिकाः ॥
परमा रविकाः पराशरा ऋत्वशावैधायनीयाः ।
आयोध्या आयोधेयाश्च तेषामध्ययनानिच ॥
दिसहस्रे शतन्यूने वेदे वाजसनेयके ।
ऋग्गणोयं प्रसंख्यातस्ततोन्यानि यजूंषिच ॥

एतत्प्रमाणं यजुषांहि केवलं।
सखिलं सशुक्रियं परिसंख्यातं ब्राह्मणम्।
चतुर्गुणन्तु जानीयात्तैत्तिरीया द्विधा पुनः॥
ऋषयाः खाण्डिकेयाश्च खण्डिकाः पञ्चधा पुनः।
कालेया बौधायनीया हिरण्यकेशास्तथैवच॥
भारद्वाजापस्तम्बाश्च तेषां भेदाः प्रकीर्त्तिताः।
अध्ययनं सौमिकञ्चैव प्रवचनीयं तथापरम्॥
सामवेदस्तु विस्तीर्णः सहस्रभेदशः पुरा।
अनध्यायेष्वधीयन्ते तदा इन्द्रेण धीमता॥
वज्रेण निहताः शेषास्तान्वच्मि शृणु सत्तम।
राणायणीयाः कौथुमास्तत्र भेदान् पुनः शृणु॥
राणायणीयाः सप्तैव शुग्राह्यास्तपताव्हर।
कालवेया महाकालवयालाङ्गलवैद्युताः॥
कौथुमानामपि सप्त असुरावानरायणाः।
प्राजालाद्वैनभृत्याश्च परियोग्याः परिकायनाः॥
अध्ययनमपि तेषां केषान्तु यथावत् कथितं शृणु
अष्टौ सामसहस्राणि सामानि च चतुर्द्दश॥
अष्टौ शतानि नवतीः दश सवालखिल्यकाः।
ससुपर्णाश्च प्रख्याश्च एतं सामगणं विदुः॥
अथो अथर्व्ववेदस्य नवभेदा भवन्ति हि।
पिप्पलादा वर्मदाश्च भूतायनाः कातयस्तथा॥
अञ्जला ब्रह्मवेदाश्च शौनकी कनखी तथा।
वेदऋषिश्चौरविद्या तेषामध्ययनं शृणु॥

पञ्चकल्पा भवन्ति।

नक्षत्रकल्पोवैतानः संहिताविधिः आङ्गिरसं।

शान्तिकल्पश्च अथर्वणो भवन्ति ह।

सर्व्वेषामेव वेदानामुपवेदान् शृणुष्व तान्।

ऋग्वेदस्यायुर्वेदो यजुर्व्वेदो धनुस्तथा॥

सामवेदस्य गान्धर्वमर्थशास्त्राण्यथर्व्वणः।

ऋग्वेदस्यात्रेयं गोत्रं सोमं देवं विदुर्बुधाः॥

काश्यपश्च यजुर्व्वेदं रुद्रदेवन्तु तं विदुः।

सामवेदोपि गोत्रेण भारद्वाजः-पुरन्दरम्॥

अधिदेवं विजानीयात् वैतानन्तु अथर्व्वणे।

ब्रह्मदेवं विजानीयाद्रूपाण्यस्मात् शृणुष्व भो॥

ऋग्वेदः पद्मपत्राक्षः प्रलम्बजठरः शुचिः।

भग्नग्रीवः कुञ्चितकेशश्मश्रुः प्रमाणेनापि वितस्ती॥

पद्मराजत मौक्तिकजोऽथ पूज्योवरप्रदो भक्तियुतो द्विजाय।

यजुर्व्वेदः पिङ्गलाक्षःक्षाममध्यस्थूलगलकपोलस्ताम्रायतवर्णः,

कृष्णचरणः प्रसादेन् पद्दीर्घत्वेन,

चित्रे लिङ्गेऽथवा पूज्यः सर्व्वकामानवाप्नुयात्।

सामवेदोनित्यं कृष्णचरणः प्रसादेन् पद्दीर्घत्वेन,

चित्रे लिङ्गेथवा पूज्यः सर्व्वकामानवाप्नुयात्।

सामवेदो नित्यस्रग्वी सुव्रतः शुचिः,

शुचिवासा क्षमी दान्तश्च महादण्डोकाचरणनयन।

आदित्यवर्णो वर्णेन षडरत्निमात्रः,

ताम्रेवाथ मणौ देवः पूजितः शुभदो भवेत्।

अथर्व्ववेदस्तीक्ष्णदण्डः कामरूपी विश्वात्मा विरक्तजर्द्ध ज्वालः।

क्षुद्रकर्म्मा शास्त्रकृती स्थायी नीलोत्पल वर्णोवर्णेन स्वदार-तुष्टः।

परस्त्रीष्ववशः पद्मरागे वाथ प्रपूजयेत्।
सर्व्वकामानवाप्नोति अथर्व्वविहितानि च।
य एतं नामरूपन्तु गोत्रवेदप्रमाणजम्॥
वर्णं वर्णञ्च यो विद्यात् स पुण्यफलभाग्भवेत्।

गारुडपुराणे।

अथ दानविधिं वक्ष्ये रहस्यं परमं मतं।
यं विधाय नरोघोरान्निरयान्नोपसर्पति॥
आम्नायरूपाणि विधाय सम्यक्
हैमानि पूर्व्वोदितलक्षणानि।
विशुद्धमानामणिभूषितानि
ऋगादिवेदक्रमतो निवेश्य॥
ऋग्वेदादिलक्षणं, महाभूतघटदाने दर्शितं,
वासांसि देयानि यथाक्रमेण
पीतानि शुक्लान्यथ लोहितानि।
नीलानिचैवं कुसुमानि दत्त्वा
संपूज्य गन्धाक्षतधूपदीपैः॥
आमोदिमोदकयुतं घृतपायसञ्च,

सचैाद्रमनमथ यूपद्दतं क्रमेण।
तेभ्यो निवेद्य प्रथितं विधिवत् प्रणम्य।
सम्यक् प्रदक्षिणविधिं विदधीत विद्वान्॥
तेषां पूजाविधिः कार्य्योगायत्र्या धीमताम्बर।
व्याहृत्य व्याहृतीःकुर्य्यादावाहनविसर्ज्जने॥
मन्त्रैरेतैस्ततः कुर्य्यादमीषामनुमन्त्रणम्।
ऋग्वेद पद्मपत्राक्ष रक्ष रक्ष क्षिपाशुभम्॥
शरणं त्वां प्रपन्नोऽस्मि देहि मे हितमद्भुतं।
यजुर्वेद नमस्तेऽस्तु लोकत्राणपरायण॥
त्वत्प्रसादेन मे क्षेमाः निखिलाः सन्तु सन्ततं॥
सामवेद महाबाहो त्वं हि साक्षादधोक्षजः।
प्रसादसुमुखोभूत्वा कृपयानुगृहाण मां॥
अथर्व्वन् सर्व्वभूतानां त्वदायत्ते हिताहिते।
शान्तिं कुरुष्व देवेश पुष्टिमिष्टां प्रयच्छत॥
इति सम्प्रार्थ्य देवेशान् विप्रेभ्यः प्रतिपादयेत्।
प्रदद्यादेकमेकस्मिन् सुवर्णत्रिपलान्वितं॥
दद्यादेकपलोपेतमेकैकमिह दुर्व्वलः।
अथ स्वशक्तितो वापि दानमेषां विधीयते॥
एतदेव प्रमाणं स्यात्तेषां मूर्त्तिविनिर्म्मितो।
अनधीतवतो वेदान्-वेददानविधिस्त्वयं॥
सदाध्ययनयुक्तस्य शिष्याध्यापकमेव हि।
स्वयं शुचिः शुचीन् विप्रान् प्रातःस्नातो यतेन्द्रियः॥
दर्भानादाय पाणौ तु पाठयेत्तां तथाविधान।

अनध्यायान् परिहरन् नीचानश्रावयन्नपि ॥
एवं विधानतो यस्तु ऋचमेकां प्रयच्छति।
त्रिवित्तपूर्णसम्पूर्णा तेन दत्ता मही भवेत् ॥
न तत् कल्पसहस्रेण गदितुं शक्यते फलं ॥
यद्वेददानादाप्नोति स्वल्पादपि महामते।
यावन्ति वेदगीतानि पुण्यवेदव्रतानिच ॥
तावन्ति वेददानेन प्राप्नुयाद्भक्तिभावितः।
उपाध्यायस्य यो वृत्तिं दत्त्वाध्यापयते जनं ॥
किं न दत्तं भवेत्तेन धर्म्मकामार्थदर्शितं।
छात्राणां भोजनाभ्यङ्गं वस्त्रं भिक्षामथापि वा
दत्त्वा प्राप्नोति पुरुषः सर्व्वकामान्न संशयः।
विवेकी जीवितं दीर्घं धर्म्मकामार्थमाप्नुयात् ॥
सर्व्वमेव भवेद्दत्तं छात्राणां भोजने कृते।

वह्निपुराणे।

प्रातरुत्थाय यो वेदान् वेदाङ्गमपि पाठयेत्।
पृथिवीदानतुल्यं स्यात् फलं तस्य नृपोत्तम ॥
योवृत्तिं पठमानानां करोत्यनुदिनं नृप।
स यज्ञफलमादत्ते दानाच्छादनभोजनैः ॥

भविष्यत्पुराणे।

अपुत्रो लभते पुत्रान् निर्धनो धनमाप्नुयात्।
अविद्वान् विद्यां प्राप्नोति दुःखी दुःखात् प्रमुच्यते ॥
सदाध्ययनयुक्तास्तु परे ब्रह्मणि लीयते।

इति वेददानविधिः॥

अथ शास्त्रदानं।

तत्र नन्दिपुराणे।

शास्त्रे यस्माज्जगत्सर्व्वं संश्रितञ्च शुभाशुभं।
तस्माच्छास्त्रं प्रयत्नेन दातव्यं शुभकर्म्मणे॥
यमः। य इमां पृथिवीं दद्यात् सर्व्वरत्नोपशोभितां।
दद्याच्छास्त्रञ्च विप्राणां तच्चैतानि च तत्समं।
तत्सर्व्वरत्नोपशोभितं
पृथिवीदानं
एतानि पूर्व्वोक्तानि दानानि तदुभयं विद्यादानसममित्यर्थः।
शास्त्रं चक्षुर्हि लोकानां स्वर्गमार्गप्रकाशकम्।
शास्त्रेण धार्य्यते नूनं त्रैलोक्यं सचराचरम्॥
योजनानां सहस्रेऽपि वर्षकोटिशतेन च।
सद्यस्तिरोहितं वस्तु शास्त्रं दर्शयितुं क्षमम्॥
अतः शास्त्रात्परन्नास्ति त्रिषु लोकेषु किञ्चन।
संसारनिविडध्वान्ततरणिस्तत्प्रकीर्त्तितम्॥
दद्यादेतत्प्रयोगेण नरः सन्ततमादृतः।
किं न दत्तं भवेत्तेन शास्त्ररत्नं ददाति यः॥
तत्र सकलशास्त्रप्रधानतया धर्म्मशास्त्रप्रदानमेव तावदुच्यते।

नन्दिपुराणे।

श्रुतिः स्मृतिश्च विप्राणां चक्षुषी द्वे प्रकीर्त्तिते।
काणस्तत्रैकया हीनो द्वाभ्यामन्धः प्रकीर्त्तितः॥

तथा, धर्म्मशास्त्रं नरोदत्त्वा नाकपृष्ठे महीयते ।
दशमन्वन्तराण्यत्र स्तारयेन्नरकात् पितृन् ॥
आत्मविद्याच पौराणी धर्म्मशास्त्रात्मिका च या ।
तिस्रोविद्या इमामुख्याः, सर्व्वदानक्रिया फले ॥
धर्म्मशास्त्रं नरोबुद्धा यत्किञ्चिद्धर्म्ममाश्रयेत् ।
तस्य धर्म्मः शतगुणो धर्म्मशास्त्रप्रदस्य च ॥
अतः सदा बुधैर्श्रेयं* धर्म्मशास्त्रं विचक्षणैः ।
न तस्य पुण्यसंख्यानं ब्रह्मापि गदितुं क्षमः ॥

अग्निपुराणे ।

कपिलानां सहस्रेण सम्यक् दत्तेन यत्फलं ।
तद्राजन् सकलं लेभे धर्म्मशास्त्रप्रदायकः ॥

तत्र धर्म्मशास्त्रप्रणेतृकथनद्वारा तदनु क्रममाहतुः शङ्ख-लिखितौ ।

स्मृतयो धर्म्मशास्त्राणि तेषां प्रणेतारोमनुः-

विष्णु-र्य्यम-दक्षा-ङ्गिरो-त्रि-बृहस्प-त्युशन-आपस्तम्ब-वशिष्ठ-कात्यायन-पराशर-व्यास-शङ्ख-लिखित-सम्बर्त्त-गौतम-शातातप-हारीत-याज्ञवल्क्य-प्रचेत-सादयः । आदिशब्दाच्च बुध-देवल-सोम-प्रजापति-वृद्धशातातप-पैठीनसि-छागलेय-च्यवन-मरीचि-वत्स-पारस्कर-पुलस्त्य-पुलह-क्रतु-ऋष्यशृङ्गा-त्रेया-णां ग्रहणं ।

आह पैठीनसिः ।

तेषां मन्व-ङ्गिरो-व्यास-गौतमो-लिखिता-यमः ।

* देयमिति वा पाठः

वसिष्ठ-दक्ष-संवर्त्त-शातातप-पराशराः ॥
विष्णा-पस्तम्ब-हारीताः-शङ्खः कात्यायनोगुरुः।
प्रचेता-नारदो योगी बौधायन-पितामहौ ॥
सुमन्तुः काश्यपो-बभ्रुः-पैठीनो व्याघ्र एव च।
सत्यव्रतो भरद्वाजो गार्ग्यः कार्ष्णाजिनिस्तथा ॥
जावालिर्ज्जमदग्निश्च लौगाक्षिः ब्रह्मसम्भवः।
इति धर्म्मप्रणेतारः षड्त्रिंशहृषयः स्मृताः ॥

भविष्यत्पुराणे।

षड्त्रिंशदतिरिक्ताः, स्मृतयः सन्तीति दर्शितं।
अष्टादशपुराणेषु यानि वाक्यानि पुत्रक ॥
तान्यालोच्य महाबाहो तथास्मृत्यन्तरेषु च।
मन्वादिस्मृतयो याश्च षड्त्रिंशत्परिकीर्त्तिताः ॥
तासां वाक्यानि क्रमशः समालोच्य ब्रवीमि त इति।

आह मनुः।

विष्णुः पराशरो-दक्षः संवर्त्त-व्यास-हारिताः।
शातातपो वशिष्ठश्च यमा-पस्तम्ब-गौतमाः ॥
देवलः शङ्ख-लिलितौ-भरद्वाजोशना-त्त्रयः।
शौनको याज्ञवल्क्याश्च दशाष्टौ स्मृतिकारिणः ॥
तथा। भार्गवीनारदीया च वार्हस्पत्याङ्गिरस्यपि।
स्वायम्भुवस्य शास्त्रस्य चतस्रः संहिता मताः ॥
अङ्गिराः। जावालि-र्नाचिकेतश्च स्कन्दो लौगाक्षि-काश्यपौ।
व्यासः सनत्कुमारश्च शतर्जु-र्जनक-स्तथा ॥

व्याघ्रः कात्यायनश्चैव जातूकर्ण्यः कपिञ्जलः ।
बौधायनः कणादश्च विश्वामित्रस्तथैव च ॥
उपस्मृतय इत्येताः प्रवदन्ति मनीषिणः ।
यमः । एतैर्यानि प्रणीतानि धर्म्मशास्त्राणि वै पुरा ॥
तान्येवातिप्रमाणानि न हन्तव्यानि हेतुभिः ।

स्कन्दपुराणे ।

स्मृतयोधर्म्ममूलं हि धर्म्मःसर्व्वार्थसाधनं ।
अतः स्मृतिषु दत्तासु सर्व्वदानफलं लभेत् ॥
एकमेव समुद्धृत्य प्राणिनं दुःखसागरात् ।
अनन्तफलमाप्नोति किं पुनर्ज्ञानदोर्मिङ्गन् ॥
किमतः स हि धर्म्मोऽस्ति किं वा ज्ञानं तथाविधं ।
अन्यद्वा तत्किमस्तीह यद्वा स्मृतिषु दृश्यते ॥
अतस्तासु प्रदत्तासु ज्ञानवानभिजायते ।
पारं प्राप्य च शास्त्राणां ब्रह्मलोके महीयते ॥

इति स्मृतिदानं ।

अथ पुराणदानं तत्र नारदीये ।

वेदाः प्रतिष्ठिता देवि पुराणैर्न्नात्र संशयः ।
बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं प्रतरिष्यति ।
इतिहासपुराणैश्च कृतोयं निश्चलः पुरा ॥
यन्न दृष्टं हि वेदेषु तद्दृष्टं स्मृतिभिः किल ।
उभाभ्यां यन्नदृष्टं हि तत्पुराणेषु गीयते ॥

मत्स्यपुराणे ।

पुराणं सर्व्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम् ।
अनन्तरञ्च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गताः ॥
पुराणमेकमेवासीदस्मिन् कल्पान्तरेऽनघ ।
त्रिवर्गसाधनं पुण्यं शतकोटिप्रविस्तरम् ॥
निर्दग्धेषु च लोकेषु वाजिरूपेण वै मया ।
अङ्गानि चतुरो वेदाः पुराणन्यायविस्तराः ॥
मीमांसा-धर्म्मशास्त्राणि परिगृह्यात्मसात्कृतम् ।
मत्स्यरूपेण च पुनर्कल्पादावुदकार्णवे ॥
अशेषमेतत् कथितमुदकान्तर्गतेन च ।
श्रुत्वा जगाद च मुनीन् प्रतिवेदश्चतुर्म्मुखः ॥
प्रवृत्तिः सर्व्वशास्त्राणां पुराणस्याभवत्ततः ।
कालेन ग्रहणं दृष्ट्वा पुराणस्य ततोनृपम् ॥
व्यासरूपमहं कृत्वा संहरामि युगे युगे* ।
चतुर्लक्षप्रमाणेन द्वापरे द्वापरे सदा ॥
तदष्टादशधा कृत्वा भूर्लोकेऽस्मिन् प्रभाष्यते ।
अद्यापि देवलोके तत् शतकोटिप्रविस्तरम् ॥
तदर्थोत्र† चतुर्लक्षं संक्षेपेण निवेदितः‡ ।
पुराणानि दशाष्टौ च साम्प्रतं तदिहोच्यते ॥
नामतस्तानि वक्ष्यामि शृणुध्वमृषिसत्तमाः ।

---

* सम्भवामि युगे युगे इति क्वचित् पाठः ।

† यद्यथात्रेति क्वचित् पाठः ।

‡ निवेशित इति क्वचित्पाठः ।

वाराहपुराणे ।

ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवञ्च शैवं भागवतं तथा ।
तथान्यन्नारदीयञ्च मार्कण्डेयञ्च सप्तमम्१ ॥
आग्नेयमष्टमं प्रोक्तं भविष्यन्नवमन्तथा ।
दशमं ब्रह्मवैवर्त्तं लिङ्गमेकादशं तथा२ ॥
वाराहं द्वादशं प्रोक्तं स्कान्दञ्चात्र त्रयोदशम् ।
चतुर्द्दशं वामनञ्च कौर्म्मम्पञ्चदशं तथा३ ॥
मात्स्यञ्च गारुड़ञ्चैव ब्रह्माण्डमष्टादशं तथा* ।

कालिकापुराणे ।

शैवं यद्वायुना प्रोक्तं वैरिञ्चिं वैष्णवं तथा ।
यदिदं कालिकाख्यञ्च मूलं भागवतं स्मृतम ॥
सौरञ्च नारदीयञ्च मार्कण्डीयञ्च वह्निजम् ।
वामनं कौर्म्मं मात्स्यञ्च सप्तदशञ्च गारुड़म् ॥
ब्रह्माण्डमष्टादशं ज्ञेयं पुराणञ्च न संशयः ।

सौरपुराणात् ।

यदुक्तं भानुना पूर्व्वं पुत्राय मनवे द्विजाः ।
तदहं संप्रवक्ष्यामि शृणुध्वं वदतो मम ॥
सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशमन्वन्तराणि च ।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणं ॥
यततोपपुराणानां लिखित्वा लक्षणं स्मृतं ।
ब्राह्मं पुराणं तत्राद्यं संहिताभ्यां विभूषितं ॥

* ब्रह्माण्डश्च तत परं [illegible] कल्पितपाठ

श्लोकानां दशसाहस्रं नानापुण्यकथायुतं।
पाद्मं द्वितीयं कथितं तृतीयं वैष्णवं स्मृतं॥
चतुर्थं वायुना प्रोक्तं वायवीयमितिस्मृतं।
ततो भागद्वयं प्रोक्तं* भागद्वयविभूषितं॥
चतुर्भिः पर्व्वभिः प्रोक्तं भविष्यं तदनन्तरं।
मार्कण्डेयमथाग्नेयं नारदीयमतः परं॥
दशमं ब्रह्मवैवर्त्तं लिङ्गमेकादशं स्मृतं।
भागद्वयेन लिङ्गञ्च ततो वाराहमुत्तमं॥
संयुक्तमष्टभिः खण्डैः स्कान्दञ्चैवात्र विस्तरं।
ततस्तु वामनं कौर्म्मं भागद्वयविराजितं॥
मात्स्यञ्च गारुडं प्रोक्तं ब्रह्माण्डं च ततः परं।
भागद्वयेन कथितं ब्रह्माण्डमभिसंज्ञितं॥
खिलान्युपपुराणानि यानि चोक्तानि सूरिभिः।
इदं ब्रह्मपुराणस्य खिलं सौरमनुत्तमं॥
संहिताद्वयसंयुक्तं पुण्यं शिवकथाश्रयं।
आद्या सनत्कुमारोक्ता द्वितीया सूर्य्यभाषिता॥

कूर्म्मपुराणे।

अन्यान्युपपुराणानि मुनिभिः कथितानि तु।
आद्यं सनत्कुमारोक्तं नारसिंहमतः परं॥
तृतीयं नारदमुद्दिष्टं कुमारेण तु भाषितं।
चतुर्थं शिवधर्म्माख्यं साक्षान्नन्दीशभाषितं॥

---

* ततो भागवतं प्रोक्तमिति पुस्तकान्तरे पाठः।

दुर्व्वाससोक्तमाश्चर्य्यं नारदोक्तमतः परं ।
कापिलं मानवं चैव तथैवोशनसेरितं ॥
ब्रह्माण्डं वारुणं चाथ कालिकाह्वयमेव च ।
माहेश्वरं तथा शाम्बं सौरं सर्व्वार्थसञ्चयं ॥
पराशरोक्तं प्रवरं तथा भागवतं द्वयं ।
इदमष्टादशं प्रोक्तं पुराणं कौर्म्मसंज्ञितं ॥
चतुर्द्धा संस्थितं पुण्यं संहितानां प्रभेदतः ।

मत्स्यपुराणे ।

पाद्मे पुराणे या प्रोक्ता नरसिंहोपवर्णना ।
तत्राष्टादशसाहस्रं नारसिंहमिहोच्यते ॥
नन्दाया यत्र माहात्म्यं कार्त्तिकेयेन वर्ण्यते ।
नन्दीपुराणं तल्लोकैर्व्याख्यातमिति कीर्त्यते ॥
यत्र साम्बं पुरस्कृत्य भविष्यति कथा न कम् ।
प्रोच्यते तत्पुनर्लोके साम्बमेव मुनिव्रताः ॥
एवमादित्यसंज्ञञ्च तत्रैव परिपठ्यते ।
अष्टादशभ्यस्तु पृथक् पुराणं यत् प्रदृश्यते ॥
विजानीध्वं* द्विजश्रेष्ठास्तदेतेभ्यो विनिर्मितं ।
पञ्चाङ्गवत्पुराणं स्यादाख्यानमितरत् स्मृतम् ॥
सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशमन्वन्तराणि च ।
वंशानुचरितञ्चेति पुराणं पञ्चलक्षणं ॥
ब्रह्मविष्ण्वर्करुद्राणां माहात्म्यं भुवनस्य च ।

* विनिर्गतमिति क्वचित् पाठः

स संहारं प्रवक्ष्येत पुराणं पञ्चवर्णता ॥
धर्म्मश्चार्थश्च कामश्च मोक्षश्च परिकीर्त्त्यते ॥
सर्व्वेष्वपि पुराणेषु तद्विरुद्धे च यत्फलं ।
सात्विकेषु च कल्पेषु माहात्म्यमधिकं हरेः ॥
राजसेषु च माहात्म्यमधिकं ब्रह्मणोविदुः ।
तद्वदग्नेश्च माहात्म्यान्तामसेषु शिवस्य च ॥
सङ्कीर्णेषु सरस्वत्याः पितृणाञ्च निगद्यते ।

तथा । अष्टादश पुराणानि कृत्वा सत्यवतीसुतः ॥
भारताख्यानमखिलं चक्रे तदुपबृंहितम् ।
लक्षणैकेन तत् प्रोक्तं वेदार्थपरिबृंहितं ॥
वाल्मीकिनापि यत् प्रोक्तं रामायणाख्यमुत्तमं ।
ब्रह्मणाभिहितं यच्च शतकोटिप्रविस्तरात् ॥
आहृत्य नारदेनैव वाल्मीकाय पुनः पुनः ।
वाल्मीकिना च लोकेषु धर्म्मकामार्थसाधनं ॥
एवं सपादाः पञ्चैते लक्ष्यास्तेषु प्रकीर्त्तिताः ।

मत्स्यपुराणे ।

ऋषय ऊचुः ।

पुराणसंख्यामाचक्ष्व सूत विस्तरतः क्रमात् ।
दानं धर्म्ममशेषञ्च यथावदनुपूर्व्वशः ॥

सूत उवाच ।

इममेव पुरा प्रश्नं नोदितः पुरुषोत्तमः ।
यदुवाच सविश्वात्मा मुनयस्तन्निबोधत ॥

पुराणानि दशाष्टौ च साम्प्रतं तदिहोच्यते ।
नामतस्तानि वक्ष्यामि शृणुध्वमृषिसत्तमाः ॥
ब्रह्मणाभिहितं पूर्व्वं यावन्मात्रं मरीचये ।
ब्राह्मन्तद्दशसाहस्रं पुराणं परिकीर्त्त्यते ॥
लिखित्वा तच्च योदद्याज्जलधेनुसमन्वितम् ।
वैशाख्यां पौर्णमास्यान्तु ब्रह्मलोके महीयते ॥
एतदेव यदापद्ममभूद्वैरण्मयञ्जगत् ।
तद्वृत्तान्ताश्रयं तद्वत्पाद्ममित्युच्यते बुधैः ॥
पाद्मं तत् पञ्चपञ्चाशत्साहस्राणीह पठ्यते ।
तत्पुराणं च योदद्यात्सुवर्णकमलान्वितम् ॥
ज्यैष्ठे मासि तिलैर्युक्तं सोऽश्वमेधफलं लभेत् ।
वाराहकल्पवृत्तान्तं अधिकृत्य पराशरः ॥
यत्राह धर्म्मानखिलान् तद्युक्तं वैष्णवं विदुः ।
तदाषाढे च योदद्याद्घृतधेनुसमन्वितम् ॥
पौर्णमास्यां विपूतात्मा सपदं याति वारुणं ।
त्रयोविंशतिसाहस्रं तत्पुराणं विदुर्व्बुधाः ॥
श्वेतकल्पप्रसङ्गेन धर्म्मान् वायुरिहाब्रवीत् ।
यत्र तद्वायवीयं स्याद्रुद्रमाहात्म्यसंयुतम् ॥
चतुर्व्विंशत्सहस्राणि पुराणं तदिहोच्यते ।
श्रावण्यां श्रावणे मासि गुडधेनुसमन्वितं ॥
योदद्याद्दधिसंयुक्तं ब्राह्मणाय कुटुम्बिने ।
शिवलोके स पूतात्मा कल्पमेकं वसेन्नरः ॥
यत्राधिकृत्य गायत्रीं वर्ण्यते धर्म्मविस्तरः ।

वृत्रासुरवधोपेत तद्भागवतमुच्यत ॥
सारस्वतस्य कल्पस्य मध्ये येस्युर्नरामराः ॥
तद्वृत्तान्तोद्भवं लोके तद्भागवतमुच्यते ।
लिखित्वा तच्च योदद्याद्धेमसिंहसमन्वितं ।
पौर्णमास्यां प्रौष्ठपद्यां स याति परमं पदं ॥
अष्टादशसहस्राणि पुराणं तत् प्रकीर्त्तितं ।
यत्राह नारदोधर्म्मान् वृहत्कल्पाश्रितांस्त्विह ॥
पञ्चविंशत्सहस्राणि नारदीयं तदुच्यते ।
तदिदं पञ्चदश्यां तु योदद्याद्धेमसंयुतं ॥
उत्तमां सिद्धिमाप्नोति पुनरावृत्तिदुर्लभं ।
यत्राधिकृत्य शकुनीन् धर्म्माधर्म्मविचारणं ॥
पुराणं नवसाहस्रं मार्कण्डेयमिहोच्यते ।
परिलिख्य च योदद्यात्सौवर्णकरिसंयुतं ॥
कार्त्तिक्यां पौण्डरीकस्य यज्ञस्य फलभाग्भवेत् ।
यत्तदीशानकल्पस्य वृत्तान्तमधिकृत्य च ॥
वशिष्ठायाग्निना प्रोक्तमाग्नेयं तत् प्रचक्षते ।
लिखापयित्वा योदद्यात् हेमपद्मसमन्वितं* ॥
मार्गशीर्षे विधानेन तिलधेन्वान्वितं तथा ।
एतत् षोड़शसाहस्रं सर्व्वक्रतुफलप्रदं ॥
यत्राधिकृत्य माहात्म्यमादित्यस्य चतुर्म्मुखः ।
अघोरकल्पवृत्तान्तप्रसङ्गेन जगत्पतिः ॥

---

* हेमपद्मसमन्वितमिति क्वचित् पाठः ।

नवमे कथयामास भूतग्रामस्य लक्षणं ।
चतुर्दशसहस्राणि तथा पञ्चशतानि च ॥
भविष्यच्चरितप्रायं भविष्यत्तदिहोच्यते ॥
तत्पौषे मासि योदद्यात् पौर्णमास्यां विमत्सरः ।
गुडकुम्भसमायुक्तमग्निष्टोमफलं लभेत् ॥
रथन्तरस्य कल्पस्य वृत्तान्तमधिकृत्य च ।
सावर्णिना नारदाय कृष्णमाहात्म्यसंयुतं ॥
यत्र ब्रह्मवराहस्य चरितं वर्ण्यते मुहुः ।
तदष्टादशसाहस्रं ब्रह्मवैवर्त्तमुच्यते ।
पुराणं ब्रह्मवैवर्त्तं योदद्यान्माघमासि च ॥
पौर्णमास्यां स भवनं ब्रह्मलोके महीयते ।
यत्राग्निलिङ्गमध्यस्थः प्राह देवो महेश्वरः ॥
धर्म्मार्थकाममोक्षार्थमाग्नेयमधिकृत्य च ।
कल्पं तल्लैङ्गमित्युक्तं पुराणं ब्रह्मणा स्वयं ॥
तदेकादशसाहस्रं फाल्गुन्यां यः प्रयच्छति ।
तिलधेनुसमायुक्तं स याति शिवसात्मतां ॥
महावराहस्य पुनर्माहात्म्यमधिकृत्य च ।
मानवस्य प्रसङ्गेन कल्पस्य मुनिसत्तम ।
चतुर्व्विंशत्सहस्राणि तत्पुराणमिहोच्यते ॥
विष्णुनाभिहितं क्षौण्यै तद्वाराहमिहोच्यते ॥
काञ्चनं गरुडं कृत्वा तिलधेनुसमन्वितं ।
पौर्णमास्यां मधौ दत्त्वा ब्राह्मणाय कुटुम्बिने ॥

वराहस्य प्रसादेन* पदमाप्नोति वैष्णवं।
यत्र माहेश्वरान् धर्म्मानधिकृत्य च षण्मुखः॥
कल्पे तत्पुरुषे वृत्ते चरितैरुपबृंहितं।
स्कान्दनाम पुराणं तदेकाशीतिर्निगद्यते॥
सहस्राणि शतं चैकमिति मर्त्त्येषु पठ्यते।
परिलिख्य च यो दद्याद्धेमशूलसमन्वितं॥
शैवस्य पदमाप्नोति मकरोपगमे रवेः।
त्रिविक्रमस्य माहात्म्यमधिकृत्य चतुर्म्मुखः॥
त्रिवर्गमभ्यधात्तच्च वामनं परिकीर्त्तितं।
पुराणं दशसाहस्रं कूर्म्मकल्पानुगं शिवं॥
यश्चशरद्विषुवे दद्याद्वैष्णवं यात्यसौ पदं।
यत्र धर्म्मार्थकामानां मोक्षस्य च रसातले॥
माहात्म्यं कथयामास कूर्म्मरूपी जनार्द्दनः।
इन्द्रद्युम्नप्रसङ्गेन ऋषीणां शक्रसन्निधौ॥
सप्तदशसहस्राणि लक्ष्मीकल्पानुसङ्गिकं।
योदद्यादयने कूर्म्मं हेमकूर्म्मसमन्वितं॥
गोसहस्रप्रदानस्य स फलं प्राप्नुयान्नरः।
श्रुतीनां यत्र कल्पादौ प्रवृत्त्यर्थं जनार्द्दनः॥
मत्स्यरूपी च मनवे नरसिंहोपवर्णनं।
अधिकृत्याब्रवीत्सप्तकल्पवृत्तं मुनिव्रताः॥
तन्माहात्म्यमिति जानीध्वं सहस्राणि चतुर्द्दश।
विषुवे हेममत्स्येन धेन्वा चैव समन्वितं॥

* प्रदानेनेति क्वचित् पाठः।

यो दद्यात् पृथिवी तेन दत्ता भवति चाखिला ।
यदा च गारुडे कल्पे विश्वाण्डाद्गरुडोद्भवं ॥
अधिकृत्याब्रवीत् कृष्णो गारुडं तदिहोच्यते ।
तदष्टादश चैकञ्च सहस्राणीह पठ्यते ॥
सौवर्ण-हेममिथुनसंयुक्तं विषुवे नरः ।
यो ददाति परां सिद्धिमाप्नोति शिवसन्निधिं ॥
ब्रह्मा ब्रह्माण्डमाहात्म्यमधिकृत्याब्रवीत्पुनः ।
तच्च द्वादशसाहस्रं ब्रह्माण्डं द्विशताधिकं ॥
भविष्याणाञ्च कल्पानां श्रूयते यत्र विस्तरः ।
तद्ब्रह्माण्डपुराणन्तु ब्रह्मणा समुदाहृतं ॥
योदद्याच्च व्यतीपाते पत्तोर्णयुगसंयुतं ।
राजसूयसहस्रस्य फलमाप्नोति मानवः ॥
हेमधेन्वा युतं तच्च ब्रह्मलोकफलप्रदं ।

सौरपुराणे ।

तदेव पुराणमधिकृत्याह ।

इयं पुण्यतमाख्याता संहिता पापनाशिनी ॥
वैवस्वताय मनवे कथिता रविणा पुरा ।
दानमस्य पुराणस्य दानानामुत्तमं द्विजाः ।
योदद्याच्छिवभक्ताय ब्राह्मणाय तपस्विने ॥
यानि दानानि लोकेषु प्रसिद्धानि द्विजोत्तमाः ।
सर्व्वेषां फलमाप्नोति चतुर्द्दश्याञ्च संशयः ॥
अन्यान्यपपुराणानि संहितस्थानि पर्व्वणि ।

लिखित्वा यः प्रयच्छेत्तु स विद्यापारगो भवेत् ॥
शिवधर्म्मादिशास्त्राणि यः प्रयच्छति पुण्यधीः ।
सोऽनन्तफलमाप्नोति शिवधर्म्मप्रकाशनात् ॥

ब्रह्मपुराणे ।

धर्म्मा-र्थ-काम-मोक्षाणां सारभारतमुच्यते ।
तदेकस्य प्रदानेन वेदशास्त्रप्रदो भवेत् ॥
रामायणं लिखित्वा तु यः समग्रं प्रयच्छति ।
तस्य प्रसन्ना भवति यज्ञबन्धैः सरस्वती ॥

वह्निपुराणे ।

पुराणं भारतं वापि रामायणमथापि वा ।
दत्त्वा यत्फलमाप्नोति न तत्सर्व्वैर्महामखैः ॥

कूर्म्मपुराणे ।

तदेव पुराणमधिकृत्याह ।

ब्राह्मी पौराणिकी चेयं संहिता पापनाशिनी ।
लिखित्वेमाञ्च योदद्याद्वैशाखे मासि सुव्रत ॥
विप्राय वेदविदुषे तस्य पुण्यं निबोधत ।
सर्व्वपापविनिर्म्मुक्तः सर्व्वैश्वर्य्यसमन्वितः ॥
भुक्त्वातु विपुलान् भोगान् विद्यावान् धनवान् भवेत् ।

इति पुराणदानविधिः ।

अथ पुराणश्रवणदानं ।

तत्र महाभारते ।

अतः परं प्रवक्ष्यामि यानि देयानि भारत ।
वाच्यमाने तु विप्रेभ्यो राजन् पर्व्वणि पर्व्वणि ॥

स्वस्तिवाच्य विधानादौ ततः कार्य्यं प्रवर्त्तते ।
समाप्ते पर्व्वणि ततः स्वशक्त्या तर्पयेद्द्विजान् ॥
आदौ तु वाचकं पूज्य रसगन्धसमन्वितम् ।
विधिवद्भोजयेद्राजन् मधुपायसमुत्तमं ॥
ततो मूल-फलप्रायं पायसं मधुसर्पिषी ।
आस्तिके भोजयेद्राजन् दद्याच्चैव गुडोदनम् ॥
अथ धूपैश्च पूपैश्च मोदकैश्च समन्वितं ।
सभापर्व्वणि राजेन्द्र हविष्यं भोजयेद्द्विजान् ॥
आरण्यकैर्म्मूलफलैस्तर्पयेच्च द्विजोत्तमान् ।
आरण्यपर्व्वण्यासाद्य जलकुम्भान् प्रदापयेत् ॥
तर्पणानि च मुख्यानि धान्यमूलफलानि च ।
सर्व्वकामगुणोपेतो विप्रेभ्यस्तं प्रदापयेत् ॥
विराटपर्व्वणि तथा वासांसि विविधानि च ।
उद्योगे भरतश्रेष्ठ सर्व्वकामसमन्वितः ।
भोजनं भोजयेद्विप्रान् गन्धमाल्यैरलङ्कृतान् ॥
भीष्मपर्व्वणि राजेन्द्र दत्त्वा पानमनुत्तमं ।
ततः सर्व्वगुणोपेतं अन्नन्दद्यात् सुसंस्कृतं ॥
द्रोणपर्व्वणि विप्रेभ्यो भोजनं परमार्जितम् ।
शराश्च देया राजेन्द्र चापान्यसिवरास्तथा ॥
कर्णपर्व्वण्यपि तथा भोजनं सार्व्वकामिकम् ।
विप्रेभ्यः संस्कृतं सम्यग्दद्यात्संयतमानसः ॥
शल्यपर्व्वणि राजेन्द्र मोदकैः सगुडोदनैः ।
सधूपैस्तर्पणैश्चैव सर्व्वमन्नं प्रदापयेत् ॥

गदापर्व्वस्वपि तथा मुद्गमिश्रं प्रदापयेत्।
स्त्रीपर्व्वणि तथा रत्नैस्तर्पयेद्द्विधिवद्द्विजान्॥
छतोदनं पुरस्तात्तु ऐषीके दापयेत् पुनः।
ततः सर्व्वगुणोपेतमन्नं दद्यात्सुसंस्कृतं॥
शान्तिपर्व्वणि च तथा हविष्यं भोजयेद्द्विजान्।
आश्वमेधिकमासाद्य भोजनं सार्व्वकामिकं॥
तथाश्रमनिवासे तु हविषा भोजयेद्द्विजान्।
मौशले सार्व्वगुणिकं गन्धमाल्यानुलेपनं॥
हरिवंशे तथा पायं पायसं चात्र भोजनं।
पारणे पारणे राजन् यथावद्भरतर्षभ॥
समाप्य सर्व्वां प्रयतः संहितां शास्त्रकोविदः।
शुभे देशे निवेश्याथ क्षौमवस्त्रादिसंवृतं॥
शुक्लाम्बरधरस्तत्र शुचिर्भूत्वा स्वलङ्कृतः।
अर्च्चयेत्तु यथान्यायं गन्धमाल्यैः पृथक् पृथक्॥
संहितापुस्तकान् राजात् प्रयतः सुसमाहितः।
भक्ष्यैर्भोज्यैश्च पेयैश्च कौतुकैर्व्विविधैः शुभैः॥
हिरण्यञ्च सुवर्णञ्च दक्षिणां तत्र दापयेत्।
देवताः कीर्त्तयेत्सर्व्वान् नरनारायणौ तथा॥
ततो गन्धैश्च माल्यैश्च स्वलङ्कृत्य द्विजोत्तमान्।
तर्पयेद्द्विविधैः कामैर्दानैरन्नादिकैस्तथा॥
भुक्तवत्सु च विप्रेषु यथावत्सम्प्रचारयेत्।
वाचकं भरतश्रेष्ठ भोजयित्वा स्वलङ्कृतं॥
ब्राह्मणेषु प्रसन्नेषु प्रसन्नास्तस्य देवताः।

वाचके परितुष्टे तु शुभा प्रीतिरनुत्तमा ॥
ततो विवरणं कार्य्यं संहितानां भरतर्षभ ।
इतिहाससमं श्रुत्वा यथावदनुपूर्व्वशः ॥
संयतात्मा शुचिर्भूत्वा पारङ्गत्वा तु भारते ।
तेषां श्रवाणि देयानि श्रुत्वा भारत भारतं ॥
ब्राह्मणेभ्यो यथाशक्ति भक्त्या च भरतर्षभ ।
महादानानि देयानि यानानि विविधानि च ॥
गावः कांस्योपदोहाश्च कन्याश्च सुमनोहराः ।
सर्व्वकामगुणोपेता यानानि विविधानि च ॥
भवनानि विचित्राणि भूमिवासांसि काञ्चनं ।
वाहनानि च देयानि हया मत्ताश्च वारणाः ॥
शयनं शिविकाश्चैव स्यन्दनाश्च स्वलङ्कृताः ।
यद्यद्गृहे वरं किञ्चित् किञ्चिदस्ति महद्वसु ॥
तत देयं द्विजातिभ्य आत्मा दाराश्च सूनवः ।
श्रद्धया परया युक्ता क्रमशः पाठपारगाः ॥
शक्तितः सुमना भूत्वा सुश्रुतश्च विमत्सरः ।
एवं करोति यो विद्वान्दानं पर्व्वप्रतिष्ठितं ॥
सर्व्वयज्ञफलं प्राप्य स देवैः सह मोदते ।
यथानेन प्रकारेण भारतं श्रावयेन्नरः ॥

तद्दिव्यादानमाहात्म्यात् लोकानुत्तरति ह्यसौ ।

इति पुराणश्रवणदानविधिः ।

अथ सर्व्वशास्त्रसाधारणदानविधिः ।

तत्र देवीपुराणे ।

विद्यादानं प्रवक्ष्यामि येन तुष्यन्ति मातरः ।
लिख्यते दीयते येन विधिना तं शृणु प्रभो ॥
तथा । शृण्वतां जायते भक्तिस्ततो गुरुमुपासते ।
स च विद्यागमाख्याति विद्यायुस्त्वाश्रितो नृप ॥
श्रीताडपत्रके सम्वे समे पत्रसुसञ्चिते ।
विचित्रकञ्चिका पार्श्वे चर्म्मणा संपुटीकृते ॥
रक्तेन वाथ कृष्णेन मृदुना रञ्जितेन च ।
दृढसूत्रनिबद्धेन एवं विधिकृतेन च ।
यस्तु द्वादशसाहस्रीं संहितामुपलेखयेत् ।
ददाति चाभियुक्ताय स याति परमाङ्गतिम् ॥
पूर्व्वोत्तरप्लवे देशे सर्व्ववाधाविवर्जिते ।
गोमयेन शुभेनैव कुर्य्यान्मण्डलकं बुधः ॥
धनुर्हस्तप्रमाणेन शुभञ्च चतुरस्रकम् ।
तस्य मध्ये लिखेत्पद्मं सितरक्तासितादिभिः ॥
सर्व्वर्त्तुकामजैः पुष्पैर्भूषयेत् सर्व्वतो दिशम् ।
वितानन्दापयेत् मूर्द्ध्नि शुभञ्चित्रविचित्रितम् ।
पार्श्वतोसितवस्त्रैश्च सम्यक् शोभां प्रकल्पयेत् ॥
कन्दुकैरर्द्धचन्द्रैश्च दर्पणैश्चामरैस्तथा ।
घण्टाकिङ्किणिशब्दैश्च सर्व्वतश्चोपकल्पयेत् ॥
तस्य मध्ये न्यसेद्यम्वं नागदन्तमयं शुभम् ।
अधः किञ्चिन्निबद्धन्तु ऊर्द्धतोपि सुसंयुतम ॥
शोभितं दृढबन्धेन बद्धं सूत्रेण बुद्धिमान् ।

तस्योर्द्धं विन्यसेद्विद्वान् पुस्तकं लिखितं शुभम् ॥
आलेख्यमपि तत्रैव पूजयेद्विधिना ततः ।
निरूद्‌कैस्तथा पुष्पैः कृमिकीटविवर्जितैः ॥
चन्दनेन सदर्पेण भस्मना वावधूलयेत् ।

सदर्पेण, मृगमदसहितेन ।

धूपश्च गुग्गुलुर्देयस्तुरुष्कागुरुमिश्रितः ।
दीपमाला तथाचाग्रे नैवेद्यं विविधं पुनः ॥
खाद्यं पेयं सितं लेह्यं चूष्यञ्चा विनिवेदयेत् ।
पूजयेच्च दिशां पालान् लोकपालान् यथाक्रमं ॥
कन्याः स्त्रियश्च सम्पूज्य मातरः कल्पयेच्च वा ।
पुस्तकं देवदेवीश्च विप्राणां दक्षिणां तथा ॥
स्वशक्त्या चैव दातव्या नृपः पौरांश्च पूजयेत् ।
तथा सम्पूजयेद्दक्ष लेखकं शास्त्रपारगम् ॥
छन्दोलक्षणतत्त्वज्ञं सत्कविं मधुरस्वरम् ।
प्रनष्टं स्मरति ग्रन्थं श्रेष्ठं पुस्तकलेखकम् ॥
नाभिसन्ततिविच्छिन्नं नच श्लक्ष्णैर्न कव ॰ ।
नन्दिनागरकैर्वर्णैर्लेखयेच्छिवपुस्तकम ॥
प्रारभ्य पञ्च वै श्लोकान् पुनः शान्तिन्तु कारयेत् ।
रात्रौ जागरणं कुर्य्यात्सर्व्वप्रेक्षां प्रकल्पयेत् ॥
नट-चारण-नग्नैश्च देव्याः कथनसंभवैः ।

सर्व्वप्रेक्षां, सर्व्वप्रकारप्रेक्षणकं ।

प्रत्यूषे पूजयेल्लोकांस्ततः सर्व्वान्विसर्जयेत् ॥

एकान्ते सुमनस्केन विशुद्धेन दिने दिने।
निष्पाद्य विधिमाने सूक्ते नव शुभवासरे॥

सूक्ते, शुभनक्षत्रे।

ततः पूर्वोक्तविधिना पुनः पूजां प्रकल्पयेत्।
तथा विद्याविमानं तु सप्तपञ्चत्रिभूमिकं॥
विचित्रवस्त्रशोभाढ्यं शुभलक्षणलक्षितं।
कारयेत्सर्व्वतोभद्रं किङ्किणीरवकान्वितं॥
दर्पणैरर्द्धचन्द्रैश्च घण्टा-चामरमण्डितं।
तस्मिन् धूपं समुत्क्षिप्य सुगन्धचन्दनागुरु॥
तुरुष्कं* गुग्गुलं वत्स शर्करामधुमिश्रितं।
पूजयेत् पूर्व्ववत्सर्व्वान् कन्या-स्त्री-द्विजदुःखितान्॥
तथा तत्पुस्तकं वत्स विन्यसेद्विधिपूर्व्वकं।
एवं कृत्वा यथा विद्याः प्रीयन्तां मातरो मम॥
यस्यैव सक्तं तच्छास्त्रन्तं पुस्तं परिकल्पयेत्।

यस्यैव सक्तं यस्यैव देवस्य सक्तं सम्बन्धितं पुस्तं परिकल्पयेत् पुस्तकं तं देयं परिकल्पयेत् भावयेदित्यर्थः।

तथा तपस्विनः पूज्याः सर्व्वशास्त्रार्थपारगाः।
शिवव्रतधरा मुख्या विष्णुधर्म्मपरायणाः॥
महता जनसङ्घेन रथस्थं दृढवाहनैः।
युवभिश्चाभितो नेयं यस्य देवस्य चागमं॥

* चतुष्कमिति क्वचित् पुस्तके पाठः।

सामान्यं सर्व्वतीर्थेषु* मातॄणां भवनेषु च ।
तस्मिन् पूजां तथा कृत्वा देवदेवस्य शूलिनः ॥
समर्पयेत् प्रणम्येशं प्रीयन्तां मातरो मम ।
सदाध्ययनयुक्ताय विद्यादानरताय च ॥
विद्यासंग्रहयुक्ताय कृतशास्त्रश्रमाय च ।
तेनैव वर्त्तते यस्तु तस्य तं विनिवेदयेत् ॥
जगद्धिताय वै शान्तिं सन्धाय वाचयेत्तथा ।
तेन तोयेन दातारं मूर्द्धि सम्यक् निषेचयेत् ॥
शिवं वन्दे ततः शब्दमुच्चार्य्य जगतस्तथा ।
एवङ्कृते महाशान्तिर्देशस्य नगरस्य च ॥
जायते नात्र सन्देहः सर्व्वबाधाः शमन्ति च ।
अनेन विधिना यस्तु विद्यादानं प्रयच्छति ॥
सभवेत्सर्व्वलोकानां दर्शनादघनाशनः ।
मृतोऽपि गच्छति स्थानं ब्रह्म-विष्णुनमस्कृतम् ॥
सप्तपूर्व्वापरान् वंशान् आत्मनः सर्व्वमेव च ।
उद्धृत्य पापकलिलाद्विष्णुलोके महीयते ॥
यावन्ति पत्रसंख्यानि अक्षराणि भवन्ति हि ।
तावत् स विष्णुलोकेषु क्रीडते विविधैः सुखैः ॥
ततः क्षितिं समायातो देव्या भक्तिपरो भवेत् ।
समस्तभोगसम्पन्नो विदुषां जायते कुले ॥

नन्दिपुराणे ।

यदेतत् पुण्यमाख्यातं विद्यादानस्य साम्प्रतम् ।

---

* शिवतीर्थेष्विति क्वचित् पाठः ।

देश-काल-विधिश्रद्धा-पात्र-योगात्तथा बुधः ॥
प्राप्नोति कोटिगुणितं फलं विद्याप्रदानतः ।
गुरुमाराध्य यत्नेन विद्याव्याख्यानपारगं ॥
शक्त्या भक्त्या प्रणामेन विद्यादानं समारभेत् ।
तथा । विद्या च मुख्या दानानां गुरुतोऽस्य विधिम्बुधः ॥
श्रुत्वा विद्याञ्च विधिवत् श्रद्धया भावितात्मना ।
सत्पात्रेभ्यस्तु तान्दद्याद्विशेषाद्गुणशालिषु ॥
उपयोग्यञ्च यद्यस्य तत्तस्य प्रतिपादयेत् ।
सुरालयेषु सिद्धेषु यथाविभवविस्तरैः ॥
दातव्यास्तु प्रयत्नेन महापुण्यफलार्थिभिः ।
शुभे नक्षत्रदिवसे शुभे वापि दिनग्रहे ॥
लेखयेत् पूज्य देवेशान् रुद्रब्रह्मजनार्द्दनान् ।
पूर्व्वं दिग्विजितो भूत्वा लिपिज्ञो लेखकोत्तमः ॥
निरोधिहस्तबाहुश्च मषीपात्रावधारणात् ।
एकान्तशोपकरणं यस्यासौ लेखकोत्तमः ॥
विद्याधारं प्रकुर्व्वीत हेमरूप्यमयं शुभम् ।
नागदन्तमयं वापि शुभदारुमयं तथा ॥
मनोज्ञमगुरुं रम्यं श्लक्ष्णयन्त्रप्रयोगजम् ।
सङ्कोचपत्रसंयुक्तं विकासेन समन्वितम् ॥
नागदन्तमयः, हस्तिदन्तनिर्म्मित इत्यर्थः ।
तत्र विद्यां विनिहितां कुर्य्यात् पुस्तकसंस्थिताम् ॥
कुर्य्याच्च पुस्तकं तस्य लिखेद्द्वाङ्गुलविस्तृतम् ।
शुभं श्लक्ष्णञ्च रम्यञ्च कृष्णं मेचकितञ्च वा ॥

अथवा रक्तपद्माभं मेचकालङ्कृतं शुभम् ।
कार्पाससूत्रग्रथितं नानागन्धाधिवासितम् ॥

मेचकालङ्कृतं, मयूरार्द्धचन्द्रालङ्कृतम् ।

मषीभिश्चापि नैकाभिश्चतुर्व्वर्णाभिरेव च ।
दृढस्तम्भनयुक्ताभिर्मेचकैश्चाप्यनेकशः ॥

स्तम्भनं, मषीस्थैर्य्यहेतु ।

लेखनीभिश्च दिव्याभिर्हैमचित्राभिरेव च ।
बहिश्च वर्णं कुर्व्वीत पुस्तकस्य मनोरमं ॥
पीतैः रक्तैः कषायैर्व्वा सुनिबद्धं विचित्रितम् ।
रम्यं लघु सुविस्तीर्णं निग्रन्थिग्रन्थिसंयुतम् ॥
विद्याधारं ततोयन्त्रसंस्थितं पूर्व्वपुस्तकम् ।
गृहे मनोरमे शुभे सुधालेपितभित्तिके ॥
नानारागाङ्करोपेते शुक्लविम्बमनोरमे ।
धूपामोदमनोज्ञे तु वितानकपरिस्तृते ॥
लेखको बुद्धिमान् स्नातः शुक्लपुष्पांबरोज्वलः ।
सुवर्णमुक्ताकेयूरी मुद्रिकाशोभिताङ्गुलिः ॥
सुसमिद्धे मषीभाण्डे लेखनीशास्त्रसंयुते ।
आरभेत्तूर्य्यघोषेण पूजां देवान् पितॄंस्तथा ॥
ब्राह्मणान् स्वस्तिवाच्यादौ शास्त्रञ्च श्रावयेद्बुधः ।
श्लोकपञ्चकमादौ तु दशकं वापि लेखयेत् ॥
ततो नक्षत्रयोगेन द्वितीयेऽहनि तल्लिखेत् ।
तादृशेनैव विधिना पुण्याहैः शुभसंयुतैः ॥
ततः समाप्ते शास्त्रे तु पुनः पुण्याहसंयुतम् ।

कुर्य्यात्तदहोरात्रे च पानभोजनवस्तुभिः॥
उभयं वापि तल्लेख्यं समीकुर्य्याच्च वाचकम्।
उभयं लेख्यं वाचयन् समीकुर्य्यादित्यर्थः॥
ऊनाधिक्येन संयुक्तं वर्णैर्मात्रादिभिस्तथा।
अनुस्वारविसर्गैश्च युक्तायुक्तैर्व्विचारयेत्॥
शास्त्रं प्रकृतया युक्त्या पुनरुक्तं विशोधयेत्।
अनार्थोक्त्या प्रसङ्गेन छन्दयोग्यतया तथा॥
सूत्रान्तरार्थबोधेन प्रश्नोत्तरविवेकतः।
असूत्रत्वाच्च शास्त्रस्य समुदायार्थबोधतः॥
प्रक्रान्तसूत्रमोहैश्च गर्गदितैर्बोदितैरपि।
बह्वर्थानाञ्च शब्दानां योग्यासत्तिं परीक्ष्य तु॥
सर्व्वशास्त्रावबोधेन कारकाद्यैरविप्लुतैः।
क्वचिच्च शब्दं वर्ज्यैव प्रकृतार्थं निरूपयेत्॥
छन्दसाञ्चापि बुद्ध्वा तं वृत्तसं योगमीप्सितम्।
एवं त्रिद्यां तु मेधावी शास्त्रं सत्कृत्य कृत्स्नशः॥
शद्व्याहिभवर्द्दिव्यैः सुरायतनवेश्मसु।
व्यक्तादेशलिपिन्यासं व्यक्तनागरमुच्यते॥
व्यक्तदेशलिपिन्यासव्यक्तोद्देशानुसारिणी।
लिपिपत्रन्यासे, अक्षरनिर्म्माणे स तथा।
आरोप्य याने रत्नाढ्ये शुभवस्त्रपरिष्कृते।
घण्टाचामरशोभाढ्ये रत्नदण्डातपत्रिणि॥
गजवाजिरथस्थं वा महाशोभसमन्वितम्।
पुरतो गीतनृत्येन नानावाद्यरवेण च॥

मङ्गलैर्ब्वेदनिर्घोषैर्द्देवाय विनिवेदयेत्।
नानारूपोपहारैश्च सम्पूज्य तु दिवौकसः॥
दत्त्वा च पुस्तकं तत्र पितॄणां धर्म्ममुद्दिशेत्।
बान्धवानाञ्च सर्व्वेषां अनन्तफलमिच्छया॥
ततोदत्त्वा विधानेन तां विद्यां शिवमन्दिरे।
ततश्च भक्षयेद्विप्रान् रुद्रभक्तांश्च मानवान्॥
यथाशक्ति च कर्त्तव्या उत्सवाःस्वेषु वेश्मसु।
राज्ञा तु नगरे कार्य्या ग्रामे ग्रामाधिपैस्तथा॥
गृहे गृहस्थैः कर्त्तव्य उत्सवो बन्धुभिः सह।
स्नातैः शुक्लैः समालब्धैः स्रग्विभिः सुसमाहितैः॥
प्रीतियुक्तैस्ततः श्राव्यं शास्त्रं श्रद्धासमन्वितैः।
वाचकं दर्चयेत्तत्र यथाविभवविस्तृतः॥
गुरुञ्च भक्त्या मतिमान् यथाशक्ति ह्यमायया।
ततः पुष्पैश्च धूपैश्च श्रावकान् सम्प्रपूजयेत्॥
याचको ब्राह्मणः प्राज्ञः श्रुतशास्त्रो महामनाः।
अभ्यस्ताक्षरविन्यासो वृत्तशास्त्रविशारदः।
शब्दार्थवित् प्रगल्भश्च विनीतो मेधया पुनः॥
गीतज्ञो वाक्यसुश्राव्यः स्वरोनाविलभाषकः।
गुरुश्च धर्म्मवान् प्राज्ञः श्रुतशास्त्रो विमत्सरः॥
विप्रः प्रकृतिसंशुद्धः शुचिः स्मितमुखः सदा।
सुवृत्तो वृत्तशास्त्रज्ञः शब्दशास्त्रविशारदः* ॥

* सर्व्वशास्त्रविशारद इति क्वचित् पुस्तके पाठः।

अभ्यस्तशास्त्रसन्दोहः प्रकृतार्थप्रवर्त्तकः।

वृत्तशास्त्रज्ञः, छन्दःशास्त्रवित्। प्रकृतार्थप्रवर्त्तकः,

प्रस्तुतार्थाभिधायिना प्रक्रमकृतव्याख्या-
पौर्वापर्य्यार्थविष्टम्भी।

अध्याय-सर्ग-विच्छेद-विभक्त्यर्थप्रयोजकः।
शास्त्रार्थपदविज्ञीमान् पदश्लोकार्थबोधकः॥
समुदायप्रकीर्णार्थमुख्यशास्त्रानुषङ्गजम्।
अनक्षरश्च हृद्यस्तु व्यपदिश्यार्थबोधकः॥
प्रक्रान्तादिश्च शास्त्रार्थविभागपरिनिष्ठितः।
कष्टाभिमानगूढार्थभङ्गेन च विरोधकः॥
अदेयवागनालस्यः श्रोतृवृत्तप्रबोधकः।
संस्कारैः संस्कृतां विद्यां प्राकृतैः प्राकृतामपि।
आलापमात्रैर्व्याख्यानैर्यश्च शिष्यान् प्रबोधयेत्।
दशाभिधानविन्यासैर्बोधयेच्चापि यो गुरुः॥
स गुरुः स पिता माता स तु चिन्तामणिः स्मृतः।
यः शास्त्रोपायमाख्याय नरकेभ्यः समुद्धरेत्॥
कस्तेन सदृशो लोके बान्धवो भुवि विद्यते।
यस्य वाग्रश्मिवृन्देन हृदयान्मथ्यते तमः॥
महासंसाररजनीभवं सोऽर्को महाद्युतिः।
नेङ्गितेनास्य पारुष्येन च वैलोम्यमावहेत्॥
न चास्य व्याधिदुःखेषु मलेष्वप्रीतिकृद्भवेत्।
प्रसादयेत्तु कुपितं दुःखमग्नं समुद्धरेत्॥

रोगेभ्यश्चापि यत्नेन परित्राणेन चोद्धरेत् ॥
एवं व्याख्यां शुभां श्रुत्वा गुरुवक्त्रान्नरोत्तमः ।
विधेयं चिन्तयेत्तस्तु परत्र हितकारणात् ॥
शृणुयात् श्रद्धया युक्तः प्रयतोभिमुखोगुरोः ।
अनन्यसत्कथाक्षेपी निष्प्रमादो ह्यतन्द्रितः ॥
मृदुश्च संशये जाते पृच्छेद्वाक्यमुदीरयेत् ।
गुरुणा चोक्तमेकान्ते श्रद्धावान्वाक्यमाश्रयेत् ॥
एतत् सर्वं स्वयं कुर्य्यात् ससमिद्धाञ्जलान्वितः ।

एतत्कृतं, गुरुचेष्टितं ।

अप्रस्तुतकथाक्षेपं यः कुर्य्यादयतो गुरोः ॥
स ब्रह्महत्यामाप्नोति गुरुवाक्येष्वनिश्चयः ।
यश्च श्रुत्वान्यतः शास्त्रं संस्कारं चाप्य वाशुभं ॥
अन्यस्य जनयेत् कीर्त्तिं स गुरोर्ब्रह्महा भवेत् ।
विस्मारयेच्च व्यामोहाद्योऽपि शास्त्रार्थमुत्तमं ॥
स याति नरकं घोरमक्षयं भीमदर्शनं ।
यस्तु वुद्ध्वा नरः शास्त्रं किञ्चित् कुर्य्यात् शुभाशुभं ॥
अविकृतगुणं तद्दै विद्यामेभ्योरतस्य च ।
एवं विधानतो वाच्यं वाचकेन विपश्चिता ॥
तपः समात्मकं सर्व्वं स्वर्गादिफलसाधकं ।
शनैर्विबोध्य वै वाच्यमध्यात्मादि च यद्भवेत् ॥
कुद्दालियुद्धसंक्षोभं धारावर्त्तेन वाचयेत् ।

धारावर्त्तेन, वेगेन।

सरागं ललितैर्वाक्यैर्वाचयेद्रसपकमे ॥
नानारसानुरूपेण लालित्येन च श्रावयेत्।
सर्गाध्याये समाप्ते च कथापर्य्यन्त एव वा ॥
प्रशब्दशब्दसंयोगे कुर्य्यादिति विरामकं ।
समाप्ते वाचके भीष्म ब्रूयादेवं विचक्षणः ॥
अवधार्य्य जगच्छान्तिमन्ते शान्त्युदकं सृजेत्।
सुश्रुतं सुश्रुतं ब्रूयादस्तु वाख्यातमित्यदः ॥
लोकः प्रवर्त्ततां धर्म्मे राजावास्तु सदा जयी।
धर्म्मवान् धनसंपन्नो गुरुश्चास्तु निरामयः ॥
इति प्रोच्य यथा ज्ञातं गन्तव्यं च विभावितः।
शिष्यैः परस्परं शास्त्रं चिन्तनीयं विचक्षणैः ॥
कथा-वस्तुप्रसङ्गेन नानाव्याख्यानभावनैः।
युक्तिभिश्च परैर्व्याख्यां चिकीर्षापि स्वयंकृतैः ॥
एवं दिने दिने व्याख्यां शृणुयान्नियतो नरः।

समग्रशास्त्रश्रवणेन पुंसः
श्रद्धाप्रधानं भवतीह चेतः।
रागश्च शास्त्रात्मकमभ्युपैति
दोषाश्च नाशं निमिषेण यान्ति ॥
यथा कथञ्चित् शृणुयान्नशास्त्र-
मश्रद्धयाचेष्टितधर्म्मसङ्गः।
ततः समाप्तावथ शास्त्रसर्गे
कथोदये चापि वितीतबुद्धिः ॥

शक्त्यार्च्चयेद्दादशकल्पमेवं
गुरुञ्च भक्त्या पितृवत्रिकार्थी ।
एष विद्याप्रदानस्य प्रधानो विधिरुच्यते ।
अनेनैव विधानेन ब्राह्मणः शीलशालिनि ॥
प्रबोधयति धीयुक्ते युक्तमे वेदवादिनि ।
विन्यसेत्त् शुभं शास्त्रं महापुण्यजिगीषया ॥
धनैर्व्वा विपुलैर्द्दत्वैर्गुरुं कृत्वा सुतर्पितम् ।
अध्यापयेच्छुभान् शिष्यानभिजातान् सुमेधसः ।
एवं विद्याप्रदानं तु सर्व्वदानोत्तमं स्मृतं ॥
सर्व्वदा सर्व्ववर्णानां नरकप्लवमुत्तमं ।
अनेन विधिना दत्त्वा विद्यां पुण्यपरोनरः ॥
यत्फलञ्चाश्वमेधानां शतस्य सुकृतस्य च ।
राजसूयसहस्रस्य सम्यगिष्टस्य यत्फलं ॥
तत्फलं लभते मर्त्त्यो विद्यादानेन भाग्यवान् ।
सर्व्वसस्यसुसंपूर्णां सर्व्वरत्नोपशोभितां ॥
ब्राह्मणेभ्यो महीं दत्त्वा ग्रहणे चन्द्रसूर्य्ययोः ।
यत्फलं लभते मर्त्त्यो विद्यादानेन तत् फलं ॥
यावदक्षरसंख्यानं विद्यते शास्त्रसंश्रये ।
तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गे विद्याप्रदोभवेत् ॥
यावन्त्यः पङ्क्तयस्तत्र पुस्तके ऽक्षरसंश्रिताः ।
यावच्चपत्रसंख्यानं पुस्तके विद्यते शुभं ॥
तावद्युगसहस्राणि सकुलो मोदते दिवि ।
तावतो नरकात् कुल्यानुद्धृत्य नयते दिवि ॥

यावच्च पातकन्तेन कृतं जन्मशतैरपि ।
तत्सर्व्वं नश्यते तस्य विद्यादानेन देहिनः ॥
स जातोमनुजो लोके स धन्यः सच कीर्त्तिमान् ।
योविद्यादानसम्पर्कप्रसक्तः पुरुषोत्तमः ॥
यथाविभवतो दद्यात् विद्यां शाठ्यविवर्जितः ।
याति पुण्यतमान् लोकानक्षयान् भोगभूषितान् ॥

वह्निपुराणे ।

अम्बरीष उवाच ।

गवां सुबहुधादानं भूमिदानं तथा मुने ।
ब्रह्माण्डादीनि सर्व्वाणि कथितानि त्वया मम ॥
इदानीं श्रोतुमिच्छामि विद्यादानफलं महत् ।
विधिवद्विविधं तद्वत्कथयस्व महामुने ॥

वशिष्ठ उवाच ।

विद्यादानं प्रवक्ष्यामि यथातथ्यन्तवाधुना ।
यथादेयं फलं यच्च तत् शृणुष्व नृपोत्तम ॥
शुभेऽह्नि शुभनक्षत्रे मण्डपं शुभवेदिकम् ।
चतुरस्रं वितानं वा कृत्वा तत्रोपलेपयेत् ॥
गोमयेनोपलिप्ते तु पुष्पप्रकरशोभिते ।
तत्र न्यस्यासनन्दिव्यं दिव्यगन्धाधिवासितं ॥
संस्थाप्य पुस्तकं तत्र धर्म्मशास्त्रस्य धीमतः ।
ब्राह्मणान् वेदसम्पूर्णांश्छन्दोलक्षणपारगान् ॥
लिखापयित्वा यत्नेन तत्समग्रं शुभाक्षरैः ।

चन्द्रसूर्य्योपरागे वा सङ्क्रान्त्ययनवासरे ॥
पुण्येऽह्नि तत् सुसम्पूज्य वस्त्रालङ्कारभूषणैः ।
घृतधेन्वायुतं दद्याद्विद्वान् गुणवते ततः ॥
शास्त्रसद्भावविदुषे वाचकेति प्रियम्वदे ।
तच्छास्त्रं शृण्वतां नित्यं जनानां नाशयत्यघं ॥
दातुस्तस्माद्विवेकफलन्तच्छृणु भूपते ।
यत्पुण्यं सर्व्वतीर्थानां विधिवद्यज्वनां तथा ॥
तत्पुण्यं समवाप्नोति विधिवच्छास्त्रदः पुमान् ।

वाराहपुराणे ।

विद्यादानविधिं वक्ष्ये यथातत्वेन ते पुनः ।
दत्तेन तत्फलं तस्य दातुरस्य समासतः ॥
उक्ते समारम्भकाले निर्म्मोषतविवर्जिते ।
सुसमे भूप्रदेशे च गोमयेनोपलेपयेत् ॥
पुष्पप्रकरसम्पन्ने गीतवाद्यसमाकुले ।
कमलाञ्चतुरस्त्राम्बा चन्दनेनैव कारयेत् ॥
पुस्तकं तत्र संस्थाप्य गन्धपुष्पैः प्रपूजयेत् ।
सौवर्णलेखनी कार्य्या मषीभाण्डञ्च रौप्यकम् ॥
जयशब्दं समुद्घोष्य आरभेल्लेखकः सुधीः ।
विनीतश्चाप्रमत्तश्च शास्त्रनिष्पत्तिमानयेत् ॥
ब्राह्मणस्य सुवृत्तस्य वाचकस्य विजल्पतः ।
अनेन विधिना दत्त्वा दातुरन्नस्य यत्फलम् ॥
तत्फलं कोटिगुणितं पुस्तकैकप्रदायकः ।

यत्पुण्यं तीर्थयातॄणां यत्पुण्यं यज्वनां नृणाम् ॥
तत्पुण्यं कोटिगुणितं विद्यादाने न संशयः।
कपिलानां सहस्रेण सम्यग्दत्तेन यत्फलम्।
तत्फलं समवाप्नोति पुस्तकैकप्रदानतः॥
अथाल्पवित्तस्य श्रद्धावतो विद्यादानमभिधीयते।

तत्र देवीपुराणे।

आत्मवित्तानुसारेण विद्यादानङ्करोति यः।
असाध्यं फलमाप्नोति आढ्यतुल्यं न संशयः॥
स्त्री वानेनैव विधिना विद्यादानफलं लभेत्।
भर्त्रा चैवाननुज्ञाता विधवा च तमुद्दिशेत्॥
विद्यार्थिने सदा दद्याद्वस्त्राभ्यङ्गञ्च भोजनम्।
छन्त्रिकामुदकं दीपं यस्मात्तेन विना मषी॥
लेखनीघटितं तीक्ष्णा मषीपात्रन्तु लेखनीं।
दत्त्वा तु लभते वत्स विद्यादानमनुत्तमं॥
पुस्तकस्तरणं दत्त्वा सुप्रमाणं सुशोभनम्।
विद्यादानमवाप्नोति सूत्रबन्धञ्च बुद्धिमान्॥
यन्त्रकं त्वासनञ्चैव दण्डासनमथापि वा।
विद्यावाचनशीलाय दत्तं भवति राज्यदं॥
अञ्जनं नेत्रपादानां दत्तं विद्यापरायणे।
भूमीर्गृहञ्च क्षेत्रञ्च स्वर्गराज्यफलप्रदं॥
यस्य भूम्यां स्थितोनित्यं विद्यादानं प्रवर्त्तयेत्।
तस्यापि भवति स्वर्गस्तत्प्रभावान्न संशयः॥

नन्दिपुराणे ।

येपि पत्रं मसीपात्रं लेखनीं सम्पुटादिकं ।
सम्प्रयच्छन्ति युक्ताय तेपि विद्याप्रदायिनां ॥
यान्ति लोकान् शुभान् मर्त्याः पुण्यभाजो नराधिप ।

विष्णुधर्म्मोत्तरे ।

विद्यादानमवाप्नोति प्रदानात्पुस्तकस्य च ।
शिल्पानि शिक्षयेद्यस्तु पौण्डरीकफलं लभेत् ॥
शिल्पभाण्डप्रदानेऽपि तद्विद्यादानजं फलं ।
अर्थितेषु प्रशस्तस्य तथा कृत्वा निवारणं ॥
विद्यादानफलं प्रोक्तं नात्र कार्य्या विचारणा ।
पापप्रशस्तस्य च तथा दत्त्वा चैव परां मतिं ॥
विद्यादानफलं प्राप्य स्वर्गलोके महीयते ।
येन जीवति भाण्डेन तस्मै तद्भाण्डदायकः ॥
सर्व्वकामसमृद्धस्य यज्ञस्य फलमश्नुते ।

स्कन्दपुराणे ।

दरिद्रः स्वानुसारेण वित्तशाठ्यविवर्जितः ।
कृत्वा विधिमिमन्त्वन्यथा विद्यादानफलं लभेत् ॥
यस्य यावद्भवेद्वित्तं स तस्येच्छानुसारितः ।
निवेद्य समस्ताभागैः शिवलोके महीयते ॥
पुस्तकास्तरणं दत्त्वा सहस्रं तत्प्रमाणतः ।
तदासनं वितानञ्चा शिवलोके महीयते ॥

यावत्तद्रक्षसूत्राणां परिसंख्या समन्ततः।
तावद्युगसहस्राणि महाभोगानवाप्नुयात्॥
यः श्रीपर्णसमुद्भूतं निम्नखातं सुसञ्चयं।
दद्यात्सम्पुटकं कृत्वा चर्म्मणावापि निर्म्मितं॥
शिवज्ञानाभियुक्ताय तदध्ययनहेतुना।
सुश्लक्ष्णं फलकं वापि विद्यादानफलं लभेत्॥
यः सौवर्णं सुसम्पूर्णं सर्व्वरत्नोपशोभितं।
सपिधानसुमञ्जूषं विद्याकोशसमाश्रयं॥
कारयेद्वापि रौप्येण ताम्रेण चतुरस्रकं।
कांस्यारकूटलोहैश्च दारुवंशादिनिर्म्मितं॥
सुकषायातिरक्तेन चर्म्मणाभिनवेन च।
अन्तर्वहिश्च मठयेत् विद्यादाननवं गृहं॥
सुदृढं कटकोपेतं दृढस्तम्भनिवेदनं।
कुर्य्यात्तालकसंयुक्तं विद्यारत्नकरण्डकम्॥
एवं वित्तानुसारेण कारयित्वा तु तं नृप।
विद्यासिंहासनं तत्र सम्पूज्य विधिवद्बुधः॥
तस्मिन् पुण्याहशब्देन विद्याकोशगृहं न्यसेत्।
एवं यः शिवविद्यायाः कुर्य्यादायतनं शुभं॥
समुक्तः पातकैः सर्व्वैर्व्विद्यादानफलं लभेत्।
विद्यामण्डलकं कृत्वा विद्याव्याख्यानमण्डपे॥
तत्राभ्यर्च्य शिवां विद्यां तद्व्याख्यां शृणुयात्ततः।
सोऽपि याति शिवस्थानं सर्व्वकामसमन्वितं॥
अनेन विधिना ज्ञानं यः शृणोति प्रवक्ति च।

स सम्प्राप्य श्रियं सौख्यं देहान्ते मुक्तिमाप्नुयात् ॥

नन्दिपुराणे ।

इति विद्याप्रदानस्य महाभाग्यं प्रकीर्त्तितम् ।
श्रुत्वैतत्पातकैर्मुक्तैर्नियतं सप्तजन्मजैः ॥

देवीपुराणे ।

तस्मात्सर्व्वप्रयत्नेन विद्या देया सदा नरैः ।
इहैव कीर्त्तिमाप्नोति मृतोयाति पराङ्गतिम् ॥
यस्तु देव्या गृहे नित्यं विद्यादानं प्रवर्त्तयेत् ।
सभवेत्सर्व्वलोकानां पूज्यः पूज्यपदं व्रजेत् ॥

वाराहपुराणे ।

ब्रह्माद्या देवताः सर्व्वा विद्यादाने प्रतिष्ठिताः ।
धर्म्माधर्म्मं न जानन्ति विद्यादानबहिष्कृताः ॥
तस्मात्सर्व्वप्रयत्नेन विद्यादानं* प्रयच्छति ।
चतुर्य्युगानि राजेन्द्र एकसप्ततियावता ॥
तावद्विष्णुपुरे राजन् क्रीडते कालमव्ययम् ।
क्षितिञ्चागत्य कालान्ते राजराजोभविष्यति ॥
त्रेतायुगे धर्म्मपरो जायते च पुनः पुनः ।
कुले महति जातश्च स राजा धार्म्मिको भवेत् ॥
हस्त्यश्वरथदानानां दाता भोक्ता विमत्सरी ।
भोक्ता पुरवराणाञ्च देशानाञ्चैव कोटिशः ॥

* प्रवर्त्तत इति क्वचित्पाठः ।

रूपसौभाग्यसम्पन्नो दीर्घायुर्नीरुजोभवेत् ।
पुत्रपौत्रैः परिवृतो जीवेच्च शरदां शतं ॥
लेखके दक्षिणान्दद्याद्वस्त्रालङ्कारभूषणम् ।
शुक्लञ्च वस्त्रयुग्मञ्च दद्याच्छास्त्रसमन्वितम् ॥
लिखापयित्वा तच्छास्त्रं देयङ्गुणवते सदा ।
तपस्विने धर्म्मरते परिपालनतत्परे ॥
वस्त्रयुग्मेन संवीतं पुस्तकं प्रतिपादयेत् ।
वाचकं पूजयेच्चैव वस्त्रालङ्कारभूषणैः ॥
क्षम्यतामिति वक्तव्यं लेखकः सुसमाहितः ।
अनेनैव विधानेन विद्यादानात्फलं लभेत् ॥

वह्निपुराणे ।

वाजपेयसहस्रस्य सम्यगिष्टस्य यत्फलम् ।
तत्फलं समवाप्नोति विद्यादानान्न संशयः ॥
तस्माद्देवालये नित्यं धर्म्मशास्त्रस्य वाश्रुतेः ।
पठनङ्कारयेद्राजन् यदीच्छेद्धर्म्ममात्मनः ॥
गो-भू-हिरण्य-वासांसि शयनान्या-सनानि च ।
प्रत्यहन्तेन दत्तानि भवन्ति नृपसत्तमः ॥
धर्म्माधर्म्मं न जानाति लोकोऽयं विद्यया विना ।
तस्मात्सदैव धर्म्मात्मन् विद्यादानरतोभवेत् ॥
वेदशास्त्र रहस्यानां यदि नैव नृपोत्तम ।
ततोऽज्ञानतमोन्धस्य कावस्था जगतो भवेत् ॥
ब्रह्मादयः सुराः सर्व्वे ऋषयो दग्धकिल्बिषाः ।

मनुष्याः पितरश्चैव विद्यादाने प्रतिष्ठिताः ॥
चतुर्य्युगानां राजेन्द्र एकसप्ततिसंख्यया ।
वेदशास्त्रप्रदः स्वर्गे पूज्यते सुरसत्तमः ॥
स तु कालादिहागत्य राजा भवति धार्म्मिकः ।
हस्त्य-श्व-रथ-यानाढ्यो दाता भोक्ता त्वमत्सरी ॥
रूपसौभाग्यसम्पन्नो दीर्घायुर्निरुजः सुखी ।
पुत्रपौत्रैर्वृतः कालान्मोक्षं याति न संशयः ॥
दानं विशेषफलदं जगतीह नान्य-
द्विद्यां विहाय वदनाब्जकृताधिवासां ।
गो-भू-हिरण्य-गज-वाजि-रथादिसर्व्वं
तद्यच्छतां किमिति भूप भवेन्न दत्तं ।

इति विद्यादानविधिः ।

इति श्रीमहाराजाधिराजश्रीमहादेवस्य समस्तकरणा-
धीश्वरसकलविद्याविशारदश्रीहेमाद्रिविरचिते
चतुर्व्वर्गचिन्तामणौ दानखण्डे
अतिदानप्रकरणं ॥

## दानखण्डम् अष्टमोऽध्यायः।

अथ दशमहादानान्युच्यन्ते।

तत्त्वाहृत्यविमलङ्कुलं निरवधिविद्यानवद्याकृतिः
सम्पत्कम्पितदैन्यसैन्यनिवहामाधुर्य्यधुर्य्यागिरः।
इत्यन्योन्यजिगीषयेव गुरुतां यस्मिन् भजन्ते गुणा-
स्तेनायं विधिरुच्यते दशमहादानेषु हेमाद्रिणा॥

तत्संग्रहश्लोकास्तु कूर्म्मपुराणे।

कनकाश्व तिला-नागा-दासी-रथ-मही-गृहाः।
कन्या च कपिला धेनुर्म्महादानानि वै दश॥
तत्र प्रथमनिर्दिष्टतया सुवर्णदानमेव तावदुच्यते।

वह्निपुराणे।

राम उवाच।

क्रोधादिदं मया कर्म्म कृतं मुनिवरोत्तमाः।
कथं तस्माद्विमुच्येऽहं पापात् प्राणिवधादिकात्॥
इत्युक्ताः धर्म्मतत्त्वज्ञाः पापानाम्पावनं परं।
दानञ्चेह सुवर्णस्य ते तमूचुर्म्महर्षयः॥

एतत्पवित्रमतुलं सम्भूतमिह सुश्रुमः ।
शम्भोर्व्वीजं परन्तेजो ह्यपत्यं जातवेदसः ॥
सहस्रं कार्त्तिकेयस्य रुद्रशुक्रसमुद्भवं ।
पवित्रत्वात् सुरैः सर्व्वैर्धार्य्यते मुकुटादिषु ॥
अग्निस्तु देवताः सर्व्वाः सुवर्णञ्च तदात्मकम् ।
तस्मात्सुवर्णं ददता प्रीताःस्युः सर्व्वदेवताः ॥
दशपूर्व्वान् परांश्चैव नरकात्तारयन्ति ते ।
सुवर्णं ये प्रयच्छन्ति प्रोवाचेदं बृहस्पतिः ॥
सर्व्वान्कामान् प्रयच्छन्ति ये प्रयच्छन्ति काञ्चनं ।
मरीचिर्भगवान् पूर्व्वं पितामहसुतोऽब्रवीत् ॥
यः सुवर्णनरोमित्यं ब्राह्मणेभ्यः प्रयच्छति ।
स चिरं विरजाविद्वान् देववद्दिवि मोदते ॥
सर्व्वेषामेव दानानामेकजन्मानुगं फलम् ।
हाटकक्षितिगौरीणां सप्तजन्मानुगं फलम् ॥
विद्यादानं सुवर्णन्तु यो लोभान्न प्रयच्छति ।
स सीदति च पापेन वेष्टितो नरकं व्रजेत् ॥
कृत्वापि सुमहत्पापं जातरूपं ददाति यः ।
स सद्यस्तेन पापेन मुच्यते नात्र संशयः ॥
एतत् कृत्वा तु यत्नार्थं सुवर्णं देहि भार्गव ।
इत्युक्तोमुनिभिस्तैस्तु रामोधर्म्मभृताम्बरः ॥
प्रादात्सुवर्णं विप्रेभ्यस्ततः पापाद्विमुच्यते ।
तस्मात्त्वमपि राजेन्द्र द्विजेभ्यो देहि काञ्चनम् ॥
विष्वक्सेनं समुद्दिश्य यदीच्छेच्छाश्वतीं गतिं ।

ब्रह्माण्डपुराणात्।

सुवर्णं परमं दानं सुवर्णं दक्षिणा परा।
पवित्राणां पवित्रञ्च दानानां नात्र संशयः॥
हिमवद्दुहिता पूर्व्वमुमा नाम पतिव्रता।
पूर्व्वजन्मनि सा चासीद्दक्षस्य तनया सती॥
दक्षकोपाच्च तत्याज सती चात्मकलेवरं।
हिमवद्दुहिता जज्ञे लोके गौरीति विश्रुता॥
दत्ता तेनापि सा तस्मै प्रणिपत्य पिनाकिने।
विवाहं कारयामास विधिवद्दुहितुस्तदा॥
वैवाहिकेन विधिना शुश्रावाग्निं पितामहः।
होमञ्च कुर्व्वतस्तस्य विकारी मन्मथो भवेत्॥
रूपं दृष्ट्वा तदा देव्या रेतस्कन्नं महात्मनः।
पद्मपाञ्च मृदितं तेन बहुधा समपद्यते॥
तत्रोत्पन्ना महात्मानो बालखिल्या मरीचयः।
अग्नौ च शेषमपतत् चाभूद्दानलप्रभं॥
जाज्वल्यमानन्दीप्त्या च अग्निमध्यगतं तथा।
शशंसिरे ततोदेवा दृष्ट्वा पुत्रं विभावसोः॥
जगृहुः शिरसा चैव पुण्यत्वात्ते पुटाञ्जिताः।
ऊचुश्च देवगन्धर्व्वा मुनयश्च यतव्रताः॥
विभूषणाञ्च ते देवा दृष्टापूर्व्वं विभावसोः।
देवपत्न्यस्तथा चैतद्भूषणेषु न्ययोजयन्॥
एवं सुवर्णमुत्पन्नं आग्नेयं ब्राह्ममेव च।

पवित्रमपरं लोके सुवर्णेन समं क्वचित् ॥
न विद्यते द्रव्यजातं दानं वा भूषणं तथा ।

अत्राह बृहस्पतिः ।

गृहादिके पुण्यफलं भवेन्मूल्यानुसारतः ।
तस्मात्सर्व्वप्रदानानां हिरण्यमधिकं स्मृतं ॥
यथा साान्तनिकादीनां हेम्ना सम्पद्यते क्रिया ।
तथा न गृहदानेन हिरण्यमधिकं ततः ॥

वेदव्यासः । सर्व्वान् कामान् प्रयच्छन्ति ये प्रयच्छन्ति काञ्चनं ।
एतद्धि भगवानत्रिः पितामहसुतोऽब्रवीत् ॥
पवित्रमथवा पुण्यं पितॄणामक्षयञ्च यत् ।
सुवर्णं मनुजेन्द्रेण मनुना सम्प्रकीर्त्तितं ॥

मनुः । भूमिदः सर्व्वमाप्नोति दीर्घमायुर्हिरण्यदः ।

सम्वर्त्तः । हिरण्यदोमहाबुद्धिं दीर्घमायुश्च विन्दति ।

विष्णुः । सुवर्णप्रदोऽग्निसालोक्यमाप्नोति ।

बृहस्पतिः ।

अग्नेरपत्यं प्रथमं सुवर्णं
भूर्वैष्णवी सूर्य्यसुताश्च गावः ।
लोकास्त्रयस्तेन भवन्ति दत्ता
यः काञ्चनङ्गाञ्च महीञ्च दद्यात् ॥

विश्वामित्रः ।

यत्रास्ते लिखिता गेहे स्वर्णदानस्य संस्तुतिः ।

रक्षो भूतपिशाचाद्यास्तन्न पश्यन्ति पार्थिव ॥

देवीपुराणे।

ज्ञात्वा मानं सुवर्णादेः पात्रेषु प्रतिपादयेत्।
कामानिष्टानवाप्नोति विधि-श्रद्धासमन्वितः ॥

वशिष्ठः। तस्मादग्निमुखाः सर्व्वदेवता इति शुश्रुमः।
ब्राह्मणो हि प्रसूतोग्निरग्नेरपि च काञ्चनं ॥
तस्माद्ये वै प्रयच्छन्ति हिरण्यं सर्व्वदैवतं।
तस्य वै वेधसो लोका गच्छतः परमां गतिं ॥
स्वर्लोके राजराज्येन सोभिषिच्येत भार्गव।

सुवर्णमित्यनुवृत्तौ कालिकापुराणे।

पूतमेतत्परं पुण्यं पुरा कार्येषु नित्यशः।
धारयन्ति यतः सर्वे मङ्गलार्थमरोगतः ॥
अतः पापानि सर्व्वाणि पात्रेभ्यो विधिपूर्व्वकम्।
दत्तं पुनाति काले च देशे च हरसन्निधौ ॥
श्रूयतां येन रामेण विधिना प्राक् तपोधन।
प्रदत्तं काञ्चनं पूर्व्वं रैचीकेन महात्मना ॥
सर्व्वहेममयं यज्ञमिष्ट्वा विप्राः प्रतर्पिताः।
हेमैराभरणैः पूज्य दत्तं फलशतं तथा ॥
भूय एवं तुलान्तेन स्वयमारोप्य यत्नतः।
हेमद्वितीयपार्श्वे च द्विजातिभ्यो ददौ स्वयं ॥
भूयोपि तन्मयान्येव सूर्य्यपात्राणि तेन च।

प्रभासादिषु तीर्थेषु ब्राह्मणेभ्यो ददौ तदा ॥
गवाञ्च दशवर्णानां विप्र कृत्वा पृथक् पृथक् ।
सहस्रं च सहस्रं च सवत्सानां सुरूपिणां ॥
बद्धा कम्बलमाक्रम्य पलान्येकादशैव तु ।
एकैकस्य पृथक्तेन दत्तं हेमन्तु तेनवै ॥
कारयित्वा सपद्मानि जातरूपमयानि च ।
भ्रमता तीर्थलिङ्गानां मूर्ध्नि दत्तानि तेनव ॥
तन्मयाभरणैः पूज्य शतशोऽथ सहस्रशः ।
सम्पूज्य तर्पिता विप्रा भूयस्तेनैव मानद ॥
पद्माश्चैव पताकाश्च मालाश्चैव विशेषतः: ।
रुद्रादीनां नियुक्ताश्च कारयित्वा गृहे गृहे ॥
उपवीतञ्च यष्टिश्च मेखला-पादुके तथा ।
लेखनीं मषीपात्रञ्च दत्त्वा विप्रेषु तेन वै ॥
मानसोपस्करङ्कृत्स्नमासनन्यानतन्मयम् ।
द्विजेभ्यश्चैव दत्तानि कारयित्वा सहस्रशः ॥
ग्रहाणां देवतानाञ्च कृत्वा रूपाणि भूरिशः ।
न्यस्तानि विधिवत्पूज्य द्विजानाञ्चैव मन्दिरे ॥
काञ्चनीं रोदसीं कृत्वा नगोदधिसमन्वितां ।
पुण्यौषधिवनैर्युक्तां ददौ विप्रेभ्य एव सः ॥
एवमाद्यैरनेकैश्च प्रकारैः काञ्चनं पुरा ।
पापापनुत्तये दत्तं पात्रमासाद्य भूयशः ॥

श्रीमहाभारते पिण्डदानपरितुष्टस्वप्रदृष्टस्वपितृदत्तोपदेश-



38-1

कथने युधिष्ठिरं प्रति भीष्मवाक्यानि।

वेदोपनिषदे चैव सर्व्वकर्म्मसु दक्षिणा।
सर्व्वक्रतुषु चोद्दिष्टा भूमिर्गावोऽथकाञ्चनम्॥
ततःश्रुतिस्तु परमा सुवर्णं दक्षिणेति वै॥
तदिदं सम्यगारब्धं त्वयाद्य भरतर्षभ।
किन्तु भूमेर्गवाञ्चार्थे सुवर्णन्दीयतामिति॥
एवं वयञ्च धर्म्मज्ञ सर्व्वचास्मत्पितामहाः।
तारिता वै तरिष्यन्ति पावनं परमं हि तत्॥
दश पूर्व्वान् दशैवान्यांस्तथातान् तारयन्ति ते।
सुवर्णं ये प्रयच्छन्तीत्येवं मां पितरोऽब्रुवन्॥

रामं प्रति वसिष्ठवाक्यानि।

सर्व्वरत्नानि निर्म्मथ्य तेजोराशिसमन्वितम्।
सुवर्णमेभ्योविप्रेन्द्र रत्नं परममुत्तमं॥
एतस्मात् कारणाद्देवा गन्धर्वोरगराक्षसाः।
मनुष्याश्च पिशाचाश्च प्रयता धारयन्ति तत्॥
मुकुटैरङ्गदयुतैरलङ्कारैः पृथग्विधैः।
सुवर्णविहृतैरत्र विराजन्ते भृगूत्तम॥
तस्मात्सर्व्वपवित्रेभ्यः पवित्रं परमं स्मृतम्।
पृथिवीगाश्च दत्त्वाऽहं तथान्यदपि किञ्चन॥
विशिष्यते सुवर्णस्य दानं परमकं विभो।
अक्षयं पावनञ्चैव सुवर्णमनुराजते॥
प्रयच्छ द्विजमुख्येभ्यः पावनं ह्येतदुत्तमं।

सुवर्णमेव सर्व्वत्र दक्षिणासु विधीयते ॥

सुवर्णं ये प्रयच्छन्ति सर्व्वदास्ते भवन्त्युत ।

नन्दिपुराणे

कृष्णलाः पञ्चमाषास्तु माषैः षोडशभिः स्मृतम् ।

सुवर्णमेकन्तद्दानाद्दाता स्वर्गमवाप्नुयात् ॥

तथा । तस्मात् स सर्व्वथा पात्रे दद्यात् कनकदक्षिणां ।

अपात्रे पातयेद्दत्तं सुवर्णं नरकार्णवे ॥

प्रमादतस्तु तन्नष्टं तावन्मात्रं नियोजयेत् ।

अन्यथा स्तेययुक्तः स्यात्तेनादत्ते विनाग्निनि ॥

दानार्थमेव तत् सृष्टं ह्यक्लिष्टं स्वर्गसाधनं ॥

दानात्परं सुवर्णस्य विधिरेव न विद्यते ।

सुवर्णं परमं दानं सुवर्णं दक्षिणा परा ॥

एतत्पवित्रं परममेतत् स्वस्त्ययनं महत् ।

दशपूर्व्वान् परांश्चैव आत्मानञ्च विशांपति ॥

अपि पापशतं कृत्वा दत्त्वा विप्रेषु तारयेत् ।

सुवर्णं ये प्रयच्छन्ति नराः शुद्धेन चेतसा ।

देवतास्तेन सन्दिष्टाः समस्ता इति नः श्रुतं ॥

अग्निर्हि देवताः सर्व्वाः सुवर्णं च हुताशनं ।

तस्मात्सुवर्णं ददता दत्ताः स्युःसर्व्वदेवताः ॥

अन्यभावे च कुर्व्वन्ति वह्निस्थानेषु काञ्चनं ।

सर्व्ववेदःप्रमाणज्ञाः श्रुतिशास्त्रनिदर्शनात् ॥

ये त्वेनं ज्वालयित्वाग्निमादित्योदयनं प्रति ।

दद्युर्वै व्रतमुद्दिश्य सर्व्वकामानवाप्नुयुः ॥
व्रतमुद्दिश्य, व्रतमनुसन्धायेत्यर्थः।
सुवर्णदः स्वर्गलोके कामानिष्टान् समश्नुते।
विराजोवरसम्वीतःपरियाति यतस्ततः ॥
विमानेनार्कवर्णेन भास्वरेण विराजितः।
अप्सरोगणसङ्कीर्णेन भास्वता स्वेन तेजसा ॥
हंसवर्हिणयुक्तेन विमानेन नरोत्तम।
दिव्यगन्धवहः स्वर्गे परिगच्छन्नितस्ततः।
तस्मात् स्वशक्त्या दातव्यं काञ्चनं मानवैर्भुवि ॥
नातः परतरं लोके सद्यः पापविमोचनं।
सुवर्णस्य तु शुद्धस्य स्वर्णं यस्तु प्रयच्छति ॥
वह्वन्यब्दसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते।

स्कन्दपुराणे।

सुवर्णस्य सुवर्णस्य सुवर्णं यः प्रयच्छति।
सर्व्वपापविनिर्म्मुक्तः स्वर्गलोके महीयते ॥
सुवर्णत्रितयं दत्त्वा अक्षयां गतिमाप्नुयात्।
दत्त्वा सुवर्णस्य शतं द्विजेभ्यः श्रद्धयान्वितः ॥
ब्रह्मलोकमनुप्राप्य ब्रह्मणा सह मोदते।
प्रथमं सुवर्णशब्देन, हिरण्यमभिधीयते
अपरेण तु तस्यैव शुद्धवर्णत्वं प्रतिपाद्यते
परिमाणविशेषः तृतीय इति।

अत्र चायं दानवाक्यप्रयोगः।

ओं अद्य अमुकस्मिन्देशे अमुकस्मिन् काले अमुकसगोत्राय अमुकशर्म्मणे ब्राह्मणाय अमुकसगोत्रः अमुकशर्म्मा इदं सुवर्णं अग्निदैवत्यं अमुकाय तुभ्यमहं संप्रददे नमम। ओं अमुकसगोत्रायेत्यादि एतत् सुवर्णदानप्रतिष्ठार्थं इदं सुवर्णं दक्षिणान्तुभ्यमहं संप्रददे न ममेति।

सुवर्णदाने रजतं दक्षिणेति केचित्।

अयञ्च दानमन्त्रः।

हिरण्यगर्भगर्भस्थं हेम वीजं विभावसोः।
अनन्त पुण्य फलदमतः शान्तिं प्रयच्छ मे॥

कूर्मपुराणे।

पलैकं द्विगुणं वापि त्रिगुणं शक्त्यनुक्रमात्।
कनकं स्यात् सुवर्णेन द्वाभ्यां त्रिभिः सदक्षिणं॥
पलादधो वा तत् कुर्य्याद्दक्षिणा स्याद्यथारुचि।
वित्ताधिक्यात्फलाधिक्यमिति न्यायनिदर्शनात्॥

इति सुवर्णदानविधिः।

आदित्यपुराणे।

आदित्योदयसम्प्राप्ते विधिमन्त्रपुरस्कृतं।
ददाति काञ्चनं यो वै दुःस्वप्नं प्रतिहन्ति सः॥
ददात्युदितमात्रे यस्तस्य पाप्मा विलीयते।
मध्याह्ने ददते रुक्मं हन्ति पापमनागतं॥

ददाति पश्चिमां सन्ध्यां यः सुवर्णं धृतव्रतः।
ब्रह्म-वाय्वग्नि-सोमानां सालोक्यमुपयाति सः॥
सुवर्णमक्षयान्दत्त्वा लोकांश्चाप्नोति पुष्कलान्।
यस्तु संज्वलयित्वाग्निमादित्योदयनं प्रति॥
दद्याद्वै व्रतमुद्दिश्य सर्व्वान् कामान् समश्नुते।
यन्त्वेवमर्च्चयेत्तेन यस्य चैव प्रयच्छति॥
तस्य लोके निवसति नित्यश्चैव ददाति यः।

व्रतमुद्दिश्य व्रतमनुसन्धायेत्यर्थः॥

सुवर्णदः स्वर्गलोके कामानिष्टान् समश्नुते।
विरजोवरसंवीतः परियाति यतस्ततः॥
विमानेनार्कवर्णेन भास्करेण विराजितः।
अप्सरोगणकीर्णेन भास्वता स्वेन तेजसा॥
हंसबर्हिणयुक्तेन कामगेन नरोत्तमः।
दिव्यगन्धवहः स्वर्गे परिगच्छन्नितस्ततः॥
तस्मात्स्वशक्त्यादातव्यं काञ्चनं मानवैर्भुवि।
नातः परतरं लोके सद्यः पापविमोचनं॥
सुवर्णस्य तु शुद्धस्य सुवर्णं यः प्रयच्छति।
बह्वन्यब्दसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते॥

इति नित्यसुवर्णदानविधिः।

वायुपुराणे।

हेमदानमथो वक्ष्ये यद्गतं रेतसा मम।

अग्निगर्भं पवित्रञ्च आयुरारोग्यवर्द्धनं ॥
निष्कमात्रं पविशं वा तदर्द्धं पादमेव च ।
तण्डुलाढकसम्पूर्णं पात्रे पात्रान्तरे न्यसेत् ॥
अर्द्धाढ़कतिलैः पूर्णं तस्योपरि घृतान्वितं ।
तिलार्द्धमानतः पात्रं घृतेतद्धेम विन्यसेत् ॥
गोमयेनोपलिप्तायां भूमौ तत्त्रितयं न्यसेत् ।
विप्रञ्च तद्धिरण्यञ्च शम्भुं स्मृत्वा प्रपूजयेत् ॥
आत्मच्छायां हिरण्यञ्च तिलतण्डुलमेव च ।
विलोक्य दद्याद्विप्राय शिवः सम्प्रीयतामिति ।
दद्यादनेन विधिना नित्यंमास्ययनेपि वा ।
सम्वत्सरेचामावास्यां मत्सायुज्यं परं यतः ॥
आयुरारोग्यसम्प्रीतिस्तस्मिन् काले भविष्यति ।
एवं सुवर्णदानेन नित्यं दद्यादनन्तकं ॥

इति हेमदानविधिः ।

कालिकापुराणे ।

अथायासविनिर्म्मुक्तो रुद्रोमाकलितं पदं ।
अनेन विधिना देही गच्छतीयाति मे शृणु ॥
दद्यात् गुञ्जार्द्धमात्रं वा नियतः प्रतिवासरं ।
कनकस्यस्य लिङ्गे तु व्रजेत्तत्पदमुत्तमं ॥
सर्व्वसस्यवतीं दद्याद्द्रोदशीं वा जलान्वितां ।
रोहिणीं योहरायैव गच्छेत्सोपि पदञ्च तत् ॥
महादानानि च तथा पात्रयुक्तान्यसंशयः ।

दत्त्वा भोगांश्च मोक्षञ्च प्रयात्येव न संशयः॥

अग्नेरपत्यं प्रथमं सुवर्णं
भूर्वैष्णवी सूर्य्यसुताश्च गावः।
लोकत्रयन्तेन भवेत् प्रदत्तं
यः काञ्चनं गाञ्च महीञ्च दद्यात्।

इति शिवसुवर्णदान विधिः।

ब्रह्माण्डपुराणात्।

ऋषयःसत्रमासीना नैमिषारण्यवासिनः।
उग्रश्रवसमासीनमपृच्छञ्छौनकादयः॥
तत्तोऽस्माभिश्रुतानीह धर्म्माणि विविधानि च।
वयमिच्छामहे भूयः श्रोतुन्दानमनुत्तमं।
इत्येवमुक्तोमुनिभिः सूतपुत्रोमहामतिः॥
उवाच दानमाहात्म्यं शतमानमिहाद्भुतं।
नारदेन पुरापृष्टः पर मेष्ठी चतुर्म्मुखः॥
यदाह दानं तत्सर्वं प्रवक्ष्यामि द्विजोत्तमाः।

ब्रह्मा उवाच।

शृणुष्वावहितो दानं ब्रवीमि तव नारद।
शतमानमिति प्रोक्तं सर्व्वपापप्रणाशनं॥
आयुष्यं श्रीकरं पुण्यं आरोग्यं सन्ततिप्रदं।
भुक्तिमुक्तिप्रदं सर्व्वं सर्व्वमाङ्गल्यकारणम्॥
पुण्यकालेषु सर्व्वेषु चन्द्रसूर्य्यग्रहादिषु।

नित्यं वा कारयेद्दानं जन्मर्क्षेषु विशेषतः ॥
पुण्यदेशेषु सर्व्वेषु गृहे देवालयादिषु ।
यत्र साधनसम्पत्तिस्तत्रदानं समाचरेत् ॥

गव्येन भूमिं शकृता जलेन
आलिख्य मध्ये सिततन्दुलैश्च ।
सरोरुहं केसरभूषणाढ्यं
सकर्णिकं चाष्टदलं विलेख्य ॥
तस्मिन् हिरण्यं शतमानमात्रं
निधाय तस्योपरि तं विचिन्त्य ।
ब्रह्माणमीशङ्कमलासनस्थ-
माराध्य गन्धादिभिरादरेण ॥
विप्रं तथा वेदविदं विचिन्त्य
विरिञ्चिबुद्ध्यातु समर्च्चयित्वा ।
दद्यात् सुवर्णं शतमानमस्मै
सम्प्रीयतामात्मभुरित्युदीर्य्य ॥
योऽसौदानं शतमानं हिरण्यं
दद्यादायुः सर्व्वमेवेति चोक्तं ।
अतः कुर्य्यान्नारदैतत्सकृद्वा
नित्यं मासं हायनं शक्तितोवा ॥
जाम्बूनदं जातरूपं सुवर्णं काञ्चनं तथा ।
हिरण्यञ्चेति शक्त्यातु क्रमादेतानि नारद ।

इति शतमानदानविधिः ।

( ७२ )

अथाह बौधायनः।

शतमानमचयेण सुवर्णेन मितञ्च यत्।
तत्कांस्ये निक्षिपेत्सम्यक् तिलाढकसमन्विते॥
कांस्यपात्रपरीमाणं पलानामष्टकं विदुः।
तिलानामुपरि स्थाप्य अक्षताः शुभ्रशालयः॥
आवाहयित्वा देवेशं द्युमणिं भानुमव्ययम।
गन्धमाल्यैः सुरभिभिर्भी रक्तमाल्यैर्व्विशेषतः॥
उपचारैः षोड़शभि रर्चयेत्भानुमव्ययम्।
अष्टाक्षरेण मन्त्रेण सावित्रेणातिभक्तितः॥
यद्वा सवितृलिङ्गेन मन्त्रेण प्रणिपत्य तु।
ब्राह्मणाय ततः पूजां कुर्य्याद्गन्धाक्षतैः शुभैः॥
अन्यैश्च विविधैः सम्यक् स्वकुटम्बाविरोधतः।
तस्मै दान्ताय सत्कृत्य स्वाचारायात्मवेदिने॥
प्राङ्मुखाय स्वयञ्चोदङ्मुखः प्रयतमानसः।
मन्त्रेणानेन सङ्कल्प्य पापव्याधिविमुक्तये॥
पद्मोद्भवः पद्मकरः सप्ताश्वरथवाहनः।
शतमानेन दत्तेन तुष्टः सर्व्वजगद्गुरुः॥
इह जन्मनि यत्पापं अन्यजन्मनि यत् कृतम्।
तत् प्रत्ययाप्रत्ययाभ्यां तत्सर्व्वं चपयत्वसौ॥

दानमन्त्रः।

ततः चमाप्य तं विप्रं प्रणिपत्य विसर्जयेत्।
यथा प्रसन्नोभवति तथासर्व्वं प्रकल्पयेत॥

इति पापरोगहरशतमानदानविधिः ।

वह्निपुराणात् ।

इन्द्र उवाच ।

भगवन् सर्व्वमाख्यातं वृषदानक्रियाफलम् ।
पृच्छाम्यन्यदहं पुण्यं सदाक्षयफलप्रदम् ॥
दानं त्रैलोक्यनाथस्य हरप्रीतिविवर्द्धनम् ।
तद्वदस्व मुने येन दत्तेनेशः प्रतुष्यति ॥
दिक्पालात्माच सन्नित्यसदानन्दमयोहरिः ।
तत् कथं भगवन् भक्तोभवेद्धेममयो हरिः ॥
केन दानेन तपसा व्रतेन यजनेन वा ॥
मुच्यते पातकाद्घोरादाजन्ममरणान्तिकात् ।
कथं भवेन्नरः श्रीमान् धीमान् पुत्री प्रतापवान् ॥
प्रमितायुस्तथारोग्यसकलैश्वर्य्यभाक् सुधीः ।
कस्य जन्मायुतान्तेऽपि दानस्यान्तोन विद्यते ॥
केन तत्पदमाप्नोति विष्णोर्यत्परमं पुमान् ।
श्रोतुमर्हाम्मि वै ब्रह्मन् वैष्णवं मन्यसे यदि॥
तत् प्रसीदाखिलं दानन्तत्त्वमाचक्ष्व मे गुरो ।

ब्रह्मोवाच ।

आनन्दो ब्रह्मणोरूपं नित्यं वेदेषु गीयते ।
सर्व्वावासोविभुः साक्षादानन्देन व्यवस्थितः ॥
तस्माद्दानमिदं पुण्यं देह्यानन्दनिधिं परम् ।

विप्रायाच्युतरूपाय वर्द्धयानन्दमुत्तमम्।
दानेनानेन ते शक्र धातुत्रययुतेन च॥

इन्द्र उवाच।

विधानं ब्रूहि मे ब्रह्मन् दानस्यास्य महानिधेः।
यथा देयं विशेषेण विष्णोरानन्दकारकम्॥

ब्रह्मोवाच।

पुण्यान्तिथिं प्राप्य तु पौर्णमास्यां
तथोपरागे शशिसूर्य्ययोर्व्वा।
चतुर्युगादिष्वयनद्वये वा
प्रबोधने प्रस्वपनेऽथ विष्णोः॥
कुर्य्यादथोदुम्बरमेव कुम्भं
हिरण्मभारेण यथात्मशक्त्या।
तथाविधानञ्च सुराजतं स्या-
द्धिरण्मभारेणनतु पूरयेत्तत्॥
तदर्द्धतोऽर्द्धेन तदर्द्धतोवा
स्वशक्तितः स्वर्णपलैः शतेन।
तदर्द्धमर्द्धेन तु वित्तशक्त्या
पलत्रयादूर्द्धमपि प्रकुर्य्यात्॥
तत्ताम्रभाण्डे कनकं निधाय
सवज्रनीलोत्पलपद्मरागं।
समुक्तवैदूर्य्यसविद्रुमञ्च
तद्राजतं पात्रमधोमुखं स्यात्॥

एवन्तु तं भद्रनिधिं सुविद्वान्
कृत्वासने प्रावरणोपयुक्ते ।
कुशोत्तरे दर्पणचामरादैश्च
सपादुकोपानहछत्रयुक्तं ॥
तत्क्षौमवस्त्रोत्तमयुग्मयुक्तं
संपूजयेन्मन्त्रवरैरथैतैः ।
आदौ तु पञ्चामृतमाद्यविष्णुं
संस्नाप्य संसारहरं समर्च्य ।
तत्रेश्वरं पावकमेव हुत्वा
आमन्त्रयेद्भद्रनिधिं ततस्तं ॥
श्रीखण्डकर्पूरसकुङ्कुमेन
पञ्चाक्षरं नाम श्रियः प्रलिख्य ।
नमस्तथोङ्कारयुतं च पात्रे
तद्राजते प्येवमथार्चयेत ॥
त्वया समस्तामरसिद्धयक्ष
विद्याधरेन्द्रोरगकिंनरेन्द्रैः ।
गन्धर्व्वविद्याधरदानवेन्द्रै
र्युतं कृतं विश्वमिदं नमस्ते ॥
समस्तसंसारकरी त्वमेव
विभोः सदानन्दमयी च माया ।
समस्तकल्याणनिधिः समाधिः ।
हरिप्रिये भद्रनिधिर्नमस्ते ।
एवं पूज्य विधानेन ततो विप्रमथार्चयेत् ।

किरीटाङ्गदनिष्काग्र्यकुण्डलाङ्गुलिभूषणैः॥
अलङ्कृत्य हरिं यद्वत्पीताम्बरधरं ततः।
पूजयेदच्युतं ध्यात्वा मन्त्रेणानेन भक्तिमान्॥
भूदेवोसीत्यतो नित्यं नित्यानन्दमयो हरे।
हर मे दुष्कृतं कृष्ण कृपाकर नमस्तु ते॥
भूदेव भगवद्धर्म्म भवभङ्गकरेश्वर।
भवभूतिकरोजिष्णो प्रभविष्णुर्नमोऽस्तु ते॥
एवं पूज्य हृदि ध्यात्वा तं द्विजं विष्णुरूपिणं।
ततोभद्रनिधिं दद्यान्मन्त्रेणानेन मानवः॥
स्वगोत्रोच्चारणेनादौ वपुर्नाम महात्मनः।
यवदर्भतिलैः सार्द्धमुदकं संपरित्यजेत्।
पितृसन्तारणार्थाय नित्यानन्दविवृद्धये।
सर्व्वाघौघविनाशाय विष्णोर्दानंमया कृतं।
तदनेन सरत्नेन धातुत्रययुतेन च।
सक्षौमाम्बरयुक्तेन सादर्शपादुकेन च।
आसनेन सछत्रेण चामरोपानहेन च।
सदानन्दविधानेन प्रीयतां विश्वरीश्वरः।
एवमुच्चार्य्य तन्दद्याद्विजाय हरिरूपिणे।
गोप्येन विधिना दद्याद्विमसंख्या न कीर्त्तयेत्।
प्रकीर्त्तिते कोटिगुणायुतं फलं
प्रगोपिते कल्पगुणैर्न संशयः।
इतीदमाम्नाय न कीर्त्तयेत् सुधी
निधान मध्ये निहितश्च यद्वसु॥

एवंकृते स्यान्मनुजः कृतात्मा
तपेन्नचा स्यान्मरणं कदाचित्।
प्रयाति विष्णोः पदमव्ययं तत्
शिवात्मकानन्दमयं ससंख्या ॥
इति भद्रनिधिदानविधिः।

तस्मिन्नेव पुराणे।

गरुड़उवाच।

प्रभो प्रसीदाच्युत विश्वभावन
प्रतापनित्योसि सुरारितापन।
प्रयच्छ मे प्रश्नमहंकरोमि यत्
मुकुन्द तस्योत्तरमुत्तमं विभो।
कथं जगन्नाथ जने निरन्तरं
महोत्सवीस्या द्विजयी सुखी सदा।
सुसंपदानन्दपदोजरोमरो
निरामयोयेन शुभेन तं वद ॥
विभुस्तथाकर्ण्य वचो गरुत्मतः
प्रसन्नरूपः प्रतिवाक्यमाह तं।
सुपर्ण यत् प्रष्टुमिदं त्वया कृतं
शृणुष्व तत्साधु न दानतः परं।
इहाप्यमुष्मिन्नपि संभृतोनिधिः
क्वचिन्न केनापि कदाचिदाप्यते ॥
युगायुतैः कल्पशतायुतैरपि

प्रभुञ्जतो दातुरहीन हीयते।
गतिञ्च यां यामपि याति दाता
योनिं तथाऽन्यच तथेह वापि॥
तान्तामनुप्रैति तु दत्तमन्ते
सुश्रद्धया यद्विजपुङ्गवेभ्यः।
तस्मान्निधानं शृणु सर्व्वदानतः
प्रभावदं नित्यफलप्रदञ्च॥
ऐश्वर्य्यदं मोक्षदमक्षयं य
द्दातु स्वयोभूतमनेकरत्नं।
कारयेत्कार्त्तिकान्तेवा माघ्यां वा माधवेऽपि वा।
अयने विषुवे वापि मन्वादिषु युगादिषु।
चन्द्रसूर्य्योपरागे वा स्वशक्त्योदुम्बरङ्घटम्॥
पिधानं राजतं तद्वत्मध्ये सौवर्णमुत्सृजेत्।
नानारत्नवरापूर्णं नानानानाभिराहृतं॥
हेमराजतताम्रोत्थैःसवित्तैरपि पूरितम्।
नानानानशतामूर्द्धमयुतादपि शक्तितः॥
एकोमानाशब्दो, बहुप्रकारवचनः
द्वितीयं नानेति महाराष्ट्रभाषायां नाणकं-
ततश्च नानारूपनाणकैःपूरयेदित्यर्थः।
शक्त्यापलसहस्रेण शतेनार्द्धशतेन वा।
तदर्द्धार्द्धेन वा राजन् पलाद्धीनं न कारयेत्।
काञ्चन्तद्विजितं हेम्ना वित्तशाठ्यमकुर्व्वता।
राजतेनाथ ताम्रेण रत्नैर्व्वांवस्त्रसंवृतं।

धान्यस्थानोपरि स्थाप्य* कल्पोक्तैरर्च्चयेत् पदैः ।
पौराणिकं पुरस्कृत्य स्वयं वा तदनुज्ञया ॥
कृतक्रियोऽग्निसान्निध्ये विष्णोरीशस्य वाऽब्जज ।
इमं समुच्चरेन्मन्त्रं कुशपाणिः प्रसन्नधीः ॥
ओँ नमः सर्व्वदानन्दसर्व्वसम्पत्तिवर्द्धन ।
वर्द्धयास्मान् समृद्धेरह आयुषा यशसा श्रिया ॥
नमस्तेऽनन्तसन्तान सदानन्द सदोदय ।
सदोदितं कुरुष्वेह सन्तत्या मां धनायुषा ॥
नमो नमः पद्मनिधे धनेश
शतक्रतो शङ्कर नैर्ऋतेश ।
शमनयास्मद्दुरितं दुरिष्ट-
ऽभीष्टदो मे भव शङ्करेश ॥
नमो नमः पाशधराप्रमेय
नमोस्तु रामाय सुनामधेय ।
नमः समीराय हुताशनाय
नमोस्त्वनन्ताय कजासनाय ॥
नमः सुरश्रेष्ठ हरीश्वराय
नमोऽस्तु सावित्रि शिवे श्रियेति ।
सरस्वति प्रीतिरतिक्रियेति
सतुष्टिःपुष्टिस्मृति-शान्ति-कीर्त्ते ॥
सर्व्वामराणां निधिरप्रमेय
त्वमेव पितृ-मुनि-रीश्वराणां ।

* नानाधान्योपरिस्थाप्यइति क्वचित्पाठः ।

आधारभूतोसि चराचरस्य
विश्वस्य यस्मात् प्रणतोऽस्मि तस्त्वां ॥
नमोस्तु सौन्दर्य्यनिधिः सुरेन्द्रः
नमोऽस्तु गाम्भीर्य्यनिधेःसमुद्र।
नमो नमः कान्तिनिधान इन्दो-
स्तेजोनिधे त्वां प्रणतोऽस्मि भानो॥
नमः पद्माय भद्राय नमस्ते स्वस्तिकाय च।
नमः शंखाय मणये मणिभद्राय ते नमः॥
नमो नन्दिविवर्त्ताय नन्द्यावर्त्ताय वर्त्तिने।
नमः कटककर्णाय कमलावर्त्ताय ते नमः॥
नमो नन्दप्रतिष्ठाय नमो हेमप्रियाय च।
नमो हिरण्यगर्भाय नित्यानन्दाय ते नमः॥
एवं पूज्य विधानेन नित्यानन्दनिधिं सुधीः।
ससिद्धार्थकदूर्व्वाभिः सकुशा-क्षत-चन्दनैः॥
तिललाजैःसमं पुण्यं भूमावुदकमुत्सृजेत्।
मन्त्रेणानेन विधिवत्कल्पोक्तेन खगेश्वर॥
अद्येह पुण्यकालेऽस्मिन् द्विज-देवा-ग्निसन्निधौ।
यशःश्रेयोऽभिवृद्ध्यर्थं मातापित्रोस्तथात्मनः॥
पुराण-न्याय-मीमांसा-वेद-वादिभ्य एव च।
नमो विद्याविधायिभ्यो नानागोत्रेभ्य एव च॥
विप्रेभ्योऽनेकशर्म्मभ्यो नित्यानन्दकरं* परम्।

* नित्यानन्दनिधिमिति पुस्तकान्तरे पाठः।

अहं सम्प्रददे तेभ्यो नानानानाव्रतेन च ॥
सस्वर्णरौप्यताम्रेण सरत्नेन सवाससा ।
सोपस्करेण पुरुषो ब्रह्म-विष्णु-शिवात्मकः ॥
प्रीयतां निधिदानेन श्रीयज्ञपुरुषोऽच्युतः ।
एवमुत्सृज्य उदकं विप्रेभ्यः प्रतिपादयेत् ॥
संविभज्य यथाशास्त्रं न कश्चिदपमानयेत् ।
महादानमिदं यस्मात्तस्मादेकोपि नार्हति ॥
अथान्ये केचिदिच्छन्ति समस्तविधिपारगाः ।
यज्ञदानव्रतानां वा सोप्येकोऽर्हति तद्गृहे ॥
एवं यः कुरुते दानं नित्यानन्दनिधेः परम् ।
एवं सम्पदमाप्नोति स संसारे निरन्तरम् ॥
दानानामप्यशेषाणामनन्तफलमुच्यते ।
नित्यानन्दविधानस्य प्रदानादपवर्गभाक् ॥
यश्चैवं सकृदत्त्वैव सदानन्दविधानकृत् ।
स करोत्यसकृद्राज्यमक्षये वेधसः पदे ॥
यथा कथञ्चिदत्वेति स्वकर्मगुणसंचयः* ।
तदाखिलमहोराज्यं प्राप्नोति व्रतसंज्ञके ॥
पुनः स्वधर्मसंयुक्तो राज्यं कृत्वा सहानुगः ।
प्राप्नोति पदमैशानं नित्यमक्षयमव्ययं ॥
तस्मादेत्य पुनाराज्यं लभेत् वैद्याधरे पदे ।
आकल्पमप्यनल्पश्रीः श्रीनिधानप्रदानतः ॥

---

* सञ्चय इति क्वचित् पाठः ।

पुनः प्रयाति कल्पान्ते वैष्णवं पदमव्ययं।
गतापि योगिनो यत्र प्राप्नुवन्ति पुनः परं॥
एतद्भद्रनिधानाख्यमाख्यातं वैनतेय ते।
मया प्रीत्या प्रयत्नेन* किमन्यत् कथयामि ते॥
नित्यानन्द निधेर्द्दानान्नित्यानन्दोऽभिजायते।
यःकुर्यात् सोच्युतायुः स्याद्दीर्घसन्तानमाप्नुयात्॥
यस्तु संकीर्त्तयेद्भक्त्या यः शृणोति समाहितः।
सदीर्घमायुराप्नोति मुच्यते सर्व्वकिल्बिषैः॥

इमं खगेन्द्र गदितं दयितं महतां
तव मयाङ्ग ततमं शमनं त्वघसां।
सुलभमवाप्य काञ्चनमिहाचरते
पदमुपैति वैष्णवमहो सुलभं॥

इत्यानन्दनिधिदानविधिः।

अथ स्कन्दपुराणे।

यः प्रयच्छति विप्राय रजतं वापि निर्म्मलं।
स विधूयाशु पापानि स्वर्गलोके महीयते।
रूपवान् सुभगः श्रीमानिह लोके च जायते॥

मत्स्यपुराणे।

पितॄणां राजतं पात्रं अथवा रजतान्वितं।
शिवनेत्रोद्भवं यस्मात्तस्मात्तत्पितृवल्लभं।

* प्रसन्नेनेति क्वचित् पुस्तकान्तरे।

अमङ्गलञ्च यज्ञेषु देवकार्य्ये च वर्जितं ।
रजतं दक्षिणामाहुः पितृकार्य्येषु सर्व्वदा ॥

इतिरजतदानविधिः ।

अथाश्वदानविधिः ।

तत्र स्कन्दपुराणे ।

अश्वं यस्तु प्रयच्छेद्दै हेमचित्रं सुलक्षणं ।
स तेन कर्म्मणा देवि गान्धर्व्वं लोकमश्नुते ।

महाभारते । सर्व्वोपकरणोपेतं युवानं दोषवर्जितं ।
योऽश्वं ददाति विप्राय स्वर्गलोके महीयते ॥

तथा । यावन्ति रोमाणि हये भवन्ति हि नरेश्वर ।
तावतो वाजिदा लोकान् प्राप्नुवन्तीह पुष्कलान् ।

कालिका पुराणे ।

अश्वं वा यदि वा युग्मं शोभने वाथ पादुके ।
ददाति यः प्रदानं वै ब्राह्मणेभ्यः सुसंयतः ॥
तस्य दिव्यानि यानानि रथा ध्वजपताकिनः ।
दुष्टः पन्था न चैवेह भविष्यति कदाचन ॥

कूर्म्मपुराणे ।

अश्वं तन्मूल्यमथवा कनीयोमध्यमोत्तमं ।
दद्याद्वित्तानुसारेण तारागणपरिच्छदं ॥

तारागण इति, तारानुकार्य्यश्वालङ्कारविशेषः ।

शफैः पञ्चपलै रौप्यैः सुवर्णालङ्कृतं क्रमात् ।

सदक्षिणं सवस्त्रञ्च ब्राह्मणायाग्निहोत्रिणे।
स्वर्णदः प्राप्नुयात् स्वर्गमश्वसालोक्यमश्वदः।
श्रद्धा देशश्च कालश्च सर्व्वदानेषु शस्यते॥

दानमन्त्रस्तु मत्स्यपुराणे।

उच्चैःश्रवास्त्वमश्वानां राज्ञां विजयकारकः।
सूर्य्यवाह नमस्तुभ्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे॥
कनीयस्त्वादितैविध्यं सुवर्णदानवदवधेयं।

इत्यश्वदानं।

गारुड़ पुराणे।

ब्रह्महत्यादिपापानि उपपापानि यानि च।
तानि सर्व्वाणि नश्यन्ति हयमेधेन निश्चितं॥
न कलौ क्रियते यज्ञोह्यश्वमेधोऽपि गोसवः।
नरमेधोऽक्षता नारी देवरात् पुत्रसन्ततिः।
गर्हितं सप्तकं ह्येतत् राजसूयं कमण्डलुः॥
अश्वमेधमखं यस्तु कलौ कर्तुमनीश्वरः।
अश्वदानन्तु तेनेह कर्त्तव्यं विधिपूर्व्वकं॥
विधिं तस्य प्रवक्ष्यामि ब्रह्मणा निर्म्मितं पुरा।
श्वेतमश्वं शुभं स्नातं हेमपर्य्याणभूषितं॥
रौप्यैस्तु कटकैः शुद्धैः करिदन्तोपशोभितं।
वज्रनेत्रं खुरैस्ताम्रैः क्षौमपुच्छं सुवाससं॥
शुभ्रेण पटकेनैव संवृतं स्नायधान्वितं।

धान्यरत्नोपरिस्थन्तु वडकास्तं सुपट्टकं ॥
एवं सुतेजसश्वाश्वं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ।
सुरूपाय सुवृत्ताय विदुषे च सुबुद्धये ।
दातव्यो मन्त्रमुख्याय दातव्यो भास्कराय च ॥
मन्वादौ च युगादौ च अयने विषुवे तथा ।
चन्द्र-सूर्य्यग्रहे चैवमश्वं दत्त्वा सुखी भवेत् ॥

अथ पूजामन्त्रः ।

मार्त्तण्डाय सुवेगाय काश्यपाय त्रिमूर्त्तये ।
जगद्बीजाय सूर्य्याय त्रिवेदाय नमस्तु ते ॥

अत्र अमुकसगोत्रायेत्यादि इमं अश्वं सुवर्णतिलकालङ्कृतं ललाटं ग्रैवेयकसुपर्य्याणान्वितं गन्धपुष्पाद्यलङ्कृतं रौप्यकटक-रत्नोपशोभितं वज्रनेत्रं ताम्रखुरं चौमपुच्छं सुवाससं शुभ्रपट्ट-कसंवृतं स्वायुधान्वितं धान्यरत्नोपरिस्थितं वडकास्तं सुपट्टकं स्वर्गकामस्तुभ्यमहं सम्प्रददे अमुकगोत्रायेत्यादि एतदश्वदान-प्रतिष्ठार्थं दक्षिणामिदं सुवर्णं तुभ्यमहं सम्प्रददे ।

एवं समुच्चरन्मन्त्रं कर्णे दद्यात्तिलोदकं ।
महार्णवे समुत्पन्न उच्चैःश्रवसपुत्रक ॥
मया त्वं विप्रमुख्याय दत्तो हय सुखी भव ।
इमं विप्र नमस्तुभ्यं अश्वन्ते प्रतिपादितम् ॥
प्रतिगृह्णीष्व विप्रेन्द्र मया दत्तं सुशोभनम् ।
कर्णे समर्पणं कृत्वा विप्रहस्ते जलं क्षिपेत् ॥
पश्चादश्वपुरो गच्छेत् पदानां सप्तसप्ततिं ।

भास्करं मनसि ध्यात्वा आलोक्य स्वगृहं व्रजेत् ॥
श्वेतमश्वन्तु यो दद्यात् फलं दशगुणं लभेत्।
वडवाञ्च तथा दत्त्वा तुल्यमेव फलं लभेत् ॥
एवंकृते नरव्याघ्र सूर्य्यलोकं व्रजेन्नरः।
ब्रह्महत्यादिपापानि तथान्यानि बहून्यपि।
तानि सर्व्वाणि नश्यन्ति दत्त्वा ह्यश्वं विधानतः ॥
त्रिंशत्पूर्वां स्त्रिंशदपरां स्त्रिंशच्चैव परावरान्।
सम्यक् दत्त्वा श्वदःपुत्रो नरकादुद्धरेत्पितॄन् ॥
नृत्यन्ति पितरः स्वर्गे वल्गन्ति च हसन्ति च।
वाजिप्रदः कलौ जात स्ततो वैमानिका वयं।
वाजिप्रदेन पुत्रेण उद्धृता नरकार्णवात् ॥
हयदानफलं ह्येतद्यल्लोका अक्षया नृणां।

इति श्वेताश्वदानविधिः।

आदित्य पुराणे।

दुर्व्वासा उवाच।

दानधर्म्मास्त्वया देव प्रोक्ता विस्तरतो मम।
अश्वानाञ्चैव नागानां दानञ्चैव दिवाकर ॥

भानुरुवाच।

तपः-शील-गुणोपेते पात्रे वेदस्य पारगे।
सुभगे परिपूर्णाङ्गे अग्निहोत्रपरायणे ॥
परिपूर्णाङ्गमुदितमुदासीनसमप्रभं।

सुविभक्तं सुकेशान्तं सुखश्यामं सुशोभनं ॥
सर्व्वालङ्कारशोभाढ्यं दिव्यस्रगनुलेपितं ।
सर्व्वोपकरणैर्युक्तं सर्व्वलक्षणसंयुतं ॥
दन्तेषु मुक्तिकास्तस्य प्रवालमधरौ-ष्ठयोः ।
दद्याद्वज्रन्तु नेत्राभ्यां वैदूर्य्यं चाप्यसंभवे ॥
हेमरूप्यञ्च हस्ताभ्यां ताम्रं पादेषु विन्यसेत् ।
अण्डजैर्नाण्डजैर्व्वस्त्रैर्विचित्रैः परिवेष्टयेत् ॥
सुगन्धैश्चैव गन्धैश्च पुष्पैश्चापि विभूषयेत् ।
वाहनाधिपतिं श्रीमान् यथेष्टं विनिवेदयेत् ॥
आदित्याभिमुखं कृत्वा ब्राह्मणेभ्यो निवेदयेत् ।
विविधैर्भक्ष्यभोज्यैश्च बलिं तत्रोपकल्पयेत् ॥
भोजयेत् तत्र विप्रांस्तु सूर्य्यभक्तान्विशेषतः ।
प्रीयतां मिहिरो नित्यं भुक्ताचोत्थापयेत् द्विजान् ॥
अनेन विधिना कुर्य्यादश्वदानं महामुने ।
यावन्ति देहरोमाणि तस्य सूतिश्च यावती ।
तावद्युगसहस्राणि सूर्य्यलोके महीयते ॥

इत्यपरोऽश्वदानविधिः ।

अथ शिवधर्म्मात् ।

शिवायाश्वमलंकृत्य यः पर्व्वणि निवेदयेत् ।
सोऽश्वमेधस्य यज्ञस्य फलमष्टगुणं लभेत् ॥

इति शिवाश्वदानविधिः ।

अथ तिलदानमुच्यते ।

आदित्यपुराणे ।

दुर्व्वासा उवाच ।

कथन्तिलाः समुत्पन्नाः कथञ्च अवतारिताः ।
एवं मे संशयं देव छेत्तुमर्हस्यशेषतः ॥

भानुरुवाच ।

शृणुष्वावहितो विप्र सर्व्वं वक्ष्याम्यशेषतः ।
पुरा कृतयुगे विप्र पितरः सर्व्व आगताः ॥
तपश्चरन्ति विपुलन्तिलार्थं नात्र संशयः ।
दिव्यं वर्षसहस्रन्तु निराहारास्तपस्विनः ॥
तपः कुर्व्वन्ति विपुलन्तिलार्थं मुनिसत्तमाः ।
तदा परिवृताः सर्व्वे देवैश्चैव विशेषतः ॥
प्रजापतिः पितृपतिः साक्षाद्देव पितामहः ।
परितुष्टोऽस्मि वो दद्मि ब्रूत यच्चेप्सितं हि वः ॥

पितर ऊचुः ।

तिलान् दद महाभाग काङ्क्षितान् वै न संशयः ।
तिलैर्व्विना न जीवामो नातिलस्तिष्ठते दिवि ॥

पितामह उवाच ।

गच्छध्वं वै तिला दत्ताः सर्व्वेषां वो द्विजोत्तमाः ।
परितुष्टाश्च पितरस्तिललाभात् प्रजापते ॥

तिलान् यस्तु प्रयच्छेत पितृणाञ्च विशेषतः।
अग्निष्टोमसहस्रस्य फलं प्राप्नोति मानवः॥
वैशाख्यां पौर्णमास्यां वा तिलान् क्षौद्रेण संयुतान्।
यः प्रयच्छेद्द्विजाग्रेभ्यः सर्व्वपापैः प्रमुच्यते॥
कृषिभागी बहुधनो जायते नात्र संशयः।
धर्म्मराजाय च तिलान् दत्त्वा चैवेह मानवः।
यमलोकं न पश्यन्ति ब्रह्मलोकं व्रजन्ति ते॥
ज्यैष्ठे मासि तिलान्दत्त्वा पौर्णमास्यां विशेषतः।
अश्वमेधस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः॥
माघे मासि तिलान् यस्तु ब्राह्मणेभ्यः प्रयच्छति।
सर्व्वसत्वसमाकीर्णं नरकं न स पश्यति॥
सर्व्वकामैः स यजते यस्तिलैर्यजते पितॄन्।
न चाकामेन दातव्यस्तिलैः श्राद्धं कथञ्च न॥
महर्षेः कश्यपस्यैते गात्रेभ्यः प्रसृतास्तिलाः।
ततो दिव्यङ्गताभावं प्रदानेषु तिलाः प्रभो॥
पौष्टिका रूपकाश्चैव तथा पापविनाशनाः।
तस्मात्सर्व्वप्रदानेभ्यस्तिलदानं विशिष्यते॥
आपस्तम्बश्च मेधावी शङ्खश्च लिखितस्तथा।
महर्षिर्गौतमश्चापि तिलदाने सदा रताः॥
तिलहोमरता विप्राः सर्व्वे संयतमैथुनाः।
सर्व्वेषामेव दानानां तिलदानं परं स्मृतं।
अक्षयं सर्व्वदानानां तिलदानमिहोच्यते॥

महाभारते।

तिलाःपवित्रमतुलं प्रवदन्ति महर्षयः।
प्रदाने यत्फलं तेषां तन्मे ब्रूहि पितामह॥

भीष्म उवाच।

सर्व्वेषामेव दानानां तिलदानं परं स्मृतं।
सर्व्वपापहरं तद्धि पवित्रं स्वर्गमेव च॥

मत्स्यपुराणे।

विष्णोर्देहसमुद्भूताः कुशाः कृष्णतिलास्तथा।
धर्म्मस्य रक्षणायालमेतत् प्राहुर्दिवौकसः॥

व्यासः।

महर्षेः कश्यपस्यैते गात्रेभ्यः प्रसृताः पुरा।
ते च दिव्यं गता भावं प्रदानेषु तिलाःस्मृताः॥
तिला भक्षयितव्याश्च होतव्याश्च विधानतः।
विप्रेभ्यश्च प्रदातव्याः श्रेयस्कामैर्नरैरिह॥

सम्वर्त्तः।

नित्ये नैमित्तिके काम्ये तिलान् दत्वा स्वशक्तितः।
प्रजावान् पुत्रवान्नित्यं धनवान् जायते नरः॥

वशिष्ठ उवाच।

नित्यं दाता तिलानाञ्च नरः स्वर्गे महीयते।

महाभारते।

ददतो जुह्वतश्चैव हरतः प्रतिगृह्णतः ।
तिले तिले तिलद्रोणसौवर्णानां युधिष्ठिर ॥
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनं ।
ब्राह्मणस्य च सम्वादं यमस्य च महात्मनः ॥
मध्यदेशे महाग्रामो ब्राह्मणानां बभूव ह ।
गङ्गायमुनयोर्म्मध्ये यामुनस्य गिरेरधः ॥
विद्वांसस्तत्र भूयिष्ठा ब्राह्मणाश्चावसन् सदा ।
अथ प्राह यमः कञ्चित् पुरुषं कृष्णपिङ्गलं ॥
रक्ताक्षमूर्द्धरोमाणं काकजंघाक्षिनासिकं ।
गच्छ त्वं ब्राह्मणं ग्रामं गत्वा ब्राह्मणमानय ॥
अगस्तिगोत्रं तं विप्रं नामतश्चापि शाल्मलिं ।
शमे निविष्टं विद्वांसमध्यापकसमावृतं ॥
सामान्यमानयेथास्त्वं सगोत्रं तस्य पार्श्वतः ।
स हि तादृग्गुणित्वेन तुल्योऽध्ययनजन्मना ॥
आकृत्या च तथा वृत्तैः समस्तेनैव धीमता ।
तमानय यथोद्दिष्टं पूजा कार्य्या हितस्य मे ॥
स गत्वा प्रतिकूलं तच्चकार यमशासनं ।
तमाकृष्यानयामास प्रतिषिद्धोऽयं मे नयः ॥
तस्मै यमः समुत्थाय पूजां कृत्वा च धर्म्मवित् ।
प्रोवाच नीयतामेष सभामानीयतामिति ॥
एवमुक्ते तु वचने धर्म्मराजेन स द्विजः ।
उवाच धर्म्मराजन्तं निविष्टो गमनेन वै ॥
यो मे कालो भवेच्छेषस्ते वसेयं त्वया सह ।

यमउवाच।

गच्छ विप्र त्वमद्यैव निलयं त्वं महामुने।
ब्रूहि वादं यथास्वैरं करवाणि किमत्युत॥

ब्राह्मण उवाच।

यत् कृत्वा सुमहत् पुण्यं स्वर्गे स्यां ब्रूहि तन्मम।
सर्व्वस्य हि प्रमाणं त्वं धर्म्माधर्म्मविनिश्चये॥
शृणु तत्त्वेन विप्रर्षे प्रदानविधिमुत्तमं।
तिलाः परमकं दानं पुण्यं चैवेह शाश्वतं॥
तिलाः पवित्रमतुलं प्रवदन्ति महर्षयः।
तान् प्रयच्छस्व विप्रेभ्यो विधिदृष्टेन कर्मणा॥
वैशाख्यां पौर्णमास्याञ्च अयने चोत्तरायने।
तिला भक्षयितव्याश्च सदाचालम्भनञ्च तैः॥
कार्य्यं सततमद्भिर्वै श्रेयःसर्व्वात्मना गृहे।
तिलान् श्राद्धे प्रशंसन्ति दानमेतदनुत्तमं॥
तिला नित्यं प्रदातव्या यथाशक्ति द्विजर्षभ।
नित्यदानात् सर्व्वकामफलं निर्व्वर्त्तयेत् पुनः॥
शृणु धर्म्मरहस्यञ्च यदद्य कथयामि ते।
तिलाः पवित्रमतुलं मा तेऽभूदत्र संशयः।
तिलेभ्यः प्राप्यते स्वर्गः स्वर्गान्मोक्षस्तथैव च॥

विष्णुधर्म्मे।

तिला गावो हिरण्यञ्च अन्नं कन्या वसुन्धरा।

दत्तान्येतानि विधिवत्तारयन्ति महाभयात्॥

तथा। मुलर्क्षगे शशधरे माघे मासि प्रजापते।

एकादश्यां कृष्णपक्षे सोपवासो जितेन्द्रियः।

द्वादश्यान्तु तिलान्दत्त्वा सर्व्वपापात् प्रमुच्यते॥

तिलोद्वर्त्ती तिलस्नायी तिलहोमी तिलोदकी।

तिलदाता च भोक्ता च षट्तिलाः पापनाशनाः॥

असकृत् षट्तिली भूत्वा सर्वपापविवर्जितः।

त्रिंशद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते॥

कूर्म्मपुराणे।

कृष्णाजिने तिलान्दत्त्वा सुवर्णं मधु-सर्पिषी।

द्रोणैकं वाससाच्छन्नं त्रिधा तद्वत्सदक्षिणां॥

त्रिधेति हीन-मध्यमो-त्तमभेदेन द्रोणैकं द्रोणद्वितयं द्रोणत्रितयञ्चेति तद्वत् सदक्षिणमिति क्रमादेक-द्वि-त्रि-सुवर्णदक्षिणा सहितमित्यर्थः।

आहिताग्नौ द्विजे दत्त्वा सर्व्वन्तरति दुष्कृतं।

इदञ्चात्र दानवाक्यं।

ओं अद्य अमुकसगोत्रायेत्यादि एवं कृष्णाजिनस्थितं सुवर्णं मधुसर्पिर्युतं वस्त्रच्छन्नान्वितद्रोणं सर्वपापक्षयकामस्तुभ्यमहं सम्प्रददे न ममेति। ओं अद्यअमुक सगोत्रायेत्यादि एतत्तिलदानप्रतिष्ठार्थमिदं सुवर्णं दक्षिणां तुभ्यमहं सम्प्रददे न ममेति।

इति तिलदानविधिः।

तस्मिन्नेव पुराणे।

मृगं तिलमयं कृत्वा सुवर्णरजतान्वितं।
दद्यात् कम्बलसंस्तीर्णं कृष्णमार्गाजिनेन वा॥
सर्व्वकामसमृद्धेन विमानेन दिवं व्रजेत्।
कालक्षयादिहागत्य राजराजो भवेत् पुनः॥

इति तिलमृगदानविधिः।

स्कन्दपुराणे।

तिलपात्राणि यो दद्याद्विप्रेभ्यः श्रद्धयान्वितः।
अमावास्यां समासाद्य नियतः सुसमाहितः॥
स पितॄंस्तारयित्वाशु नरकान्नरपुङ्गव।
पितृलोकं समाप्नोति स चिरं सुखमश्नुते॥

अत्रिः।

तिलपात्रन्तु सम्पूर्णं यो दद्यात् सुसमाहितः।
ध्रुवं स गच्छति स्वर्गं नरो वै नात्र संशयः॥
यमः। तिलपात्रञ्च यो दद्यात् प्रत्यहं वाथ पर्व्वणि।
सदक्षिणं सत्वभावात् हृदि कृत्वा जनार्द्दनं।
नाशयेत्त्रिविधं पापं धर्म्मस्य वचनं तथा॥

ब्रह्मपुराणे।

ताम्रपात्रं तिलैः पूर्णं प्रस्थमात्रैर्द्विजाय तु।
सहिरण्यञ्च यो दद्याच्छ्रद्धा-वित्तानुसारतः॥
सर्व्वपापविशुद्धात्मा लभते तु पराङ्गतिं।

अत्रेदं दानवाक्यं।

ओं अद्य अमुकसगोत्रायेत्यादि इदं तिलपूर्णताम्रपात्रं ससुवर्णं अशेषपापक्षयकामस्तुभ्यमहं सम्प्रददे न मम।

ओं अद्य अमुकसगोत्रायेत्यादि एतत्तिलताम्रपात्रदानप्रतिष्ठार्थं इदं सुवर्णं दक्षिणां तुभ्यमहं सम्प्रददे न ममेति।

इति तिलपात्रदानविधिः।

अथाह विष्णुः।

ताम्रपात्रे तिलान् कृत्वा पले षोडशकल्पिते।
सहिरण्ये स्वशक्त्या वा विप्राय प्रतिपादयेत्।
नाशयेत् त्रिविधं पापं वाङ्मनःकायसम्भवं॥

कूर्म्मपुराणे।

तिलपूर्णं ताम्रपात्रं सहिरण्यं द्विजातये।
प्रातर्दत्त्वा तु विधिवद्दुःस्वप्नं प्रतिहन्ति सः॥
तिलपात्रं त्रिधा प्रोक्तं कनिष्ठो-त्तम-मध्यमं।
ताम्रपात्रं दशपलं जघन्यञ्च प्रकीर्त्तितं॥
द्विगुणं मध्यमे प्रोक्तं त्रिगुणं चोत्तरे स्मृतं।
स्वर्णमेकं जघन्यन्तु द्विगुणं मध्यमे क्षिपेत्॥
त्रिगुणं चोत्तमे तद्वत् सुवर्णं परिकीर्त्तितं।
सुवर्णं दक्षिणां दत्त्वा सर्व्वपापक्षयो भवेत्॥

इति महातिलपात्रदानविधिः।

पितामह उवाच।

शृणुध्वन्देवताः सर्व्वा ऋषयश्च तपोधनाः।
मुक्ता भवन्ति येनेह मानवा मातृजादृणात्॥
यज्ञं सौत्रामणिं कर्त्तुं यदि शक्तिर्न विद्यते।
महासरस्तथावापीं कूपं कर्त्तुञ्च दीर्घिकां॥
एवं कृते मातृऋणान्मुक्तो भवति मानवः।
सदक्षिणं कांस्यपात्रमथ दत्त्वा प्रमुच्यते॥

ऋषय ऊचुः।

भगवन् कांस्यपात्रस्य विधिं सम्यक् प्रकीर्त्तय।
यत् प्रमाणं यत्स्वरूपं यस्मिन् काले च दीयते॥
यादृशाय च दातव्यं दानमेतद्द्विजातये।
यादृशेन च दातव्यं न दद्याद्यादृशाय च॥

पितामह उवाच।

शुद्धकांस्यस्य पात्रस्य प्रमाणं पञ्चविंशतिः।
पलानामत्र निर्द्दिष्टं तिलानां प्रस्थसप्तकं॥
सुवर्णमाषाश्चत्वारः पात्रोपरि विधारयेत्।
वस्त्रेण वेष्टयेत् पात्रं प्रधानेन सुभक्तितः॥
स्नानं कृत्वा निम्नगादौ पितॄन् देवांश्च तर्पयेत्।
ततोभिपूजयेच्छम्भुं शङ्करं हरिमेव च॥
गोमयेनाथ संलिप्य गृहमध्यञ्च सर्व्वतः।
लिखेत् पद्मं द्वादशारं कुङ्कुमेनाथ चन्दनैः॥

ततोवह्निं स्थापयित्वा होमं कुर्य्याद्यवैस्तिलैः ।
तत्र पात्रं प्रतिष्ठाप्य पूजयेद्भक्तिसंयुतः ॥
गन्ध-चन्दन-पुष्पाद्यैर्धूप-दीपैश्च शोभितम् ।
ततो ब्राह्मणमाहूय बहुभृत्यं सुसंयतम् ॥
परस्त्रीवर्ज्जकं शान्तमलङ्कृत्य यथाविधि ।
दाम्भिकं वर्जयेन्नित्यं परस्त्रीरतिलालसम् ॥
चुद्रं मत्सरशीलञ्च ब्रह्मभ्रष्टमशौचकम् ।
पादौ प्रचाल्य विधिवन्माल्यश्राद्धं समाचरेत् ॥
तत्र सम्पूजयेद्विप्रं पुष्प-धूप-विलेपनैः ।
वस्त्राणि परिधाप्योऽसौ सुभव्यानि मृदूनि च ॥
अलङ्कृत्य यथाशक्त्या माघ्यां वा मृतवासरे ।

मृतवासर इति, यस्मिन् दिने माता मृता भवति समृतवासरः ।

ग्रहणे रवि-सोमाभ्यां संक्रान्तिषु युगादिषु ।
तथान्यदपि यद्दत्तं माघ्यामुद्दिश्य मातरम् ।
तदक्षयफलं सर्व्वं पुरा प्राह महेश्वरः ॥
जीवन्तीं भूषयेद्वस्त्रैर्भोज्यैरपि विभूषणैः ।
मृतामुद्दिश्य दातव्यं माघ्यां सर्व्वं स्वशक्तितः ॥
अमावास्यां यथा दत्तं पितॄणाञ्च पुरा मया ।
यथा माघ्यां मया दत्ता मातॄणां मात संशयः ॥
दत्तं जप्तं हुतं स्नानं विधिवत्तर्पणं कृतम् ।
तदक्षयफलं सर्व्वं जायते सक्तिरेव च ॥

विप्रं सम्पूजयित्वा तु तत्पात्रं तस्य दापयेत्।
प्रणम्य विधिवद्भक्त्या मन्त्रमेतमुदीरयेत्॥
कांस्यपात्रं मया दत्तं मातुरानृण्यकाङ्क्षया।
भगवन्वचनात्तथ्यं यथा मुक्तिस्तथा वद॥
दशमासांश्च उदरे जनन्याः संस्थितेन मे।
क्लेशिता बाल्यभावे च स्तनपानाद्द्विजोत्तमः॥
गूथ-मूत्रादिसंलेपलिप्ता यच्च कृता मया।
भवतो वचनादद्य मम मुक्तिर्भवेदृणात्॥
कांस्यपात्रं सुवर्णञ्च तिलान् वस्त्राणि दक्षिणां।
सप्तधान्यं मया दत्तमृणान्मुक्तिर्भवेन्मम॥
कांस्यपात्रप्रदानेन तत्त्वज्ञानंशरीरकम्।
तथा हेमप्रदानेन परमात्मानमव्ययम्॥
आच्छादनन्तु ब्रह्माण्डं गुह्यमेतत्सनातनं।
विप्राच्छादनदानेन परमात्मा सुपूजितः॥
तिलसंख्याकृतं दुःखं जनन्या मम सेवितम्।
तिलदानप्रभावेन कृतमुक्तो भवाम्यहम्॥
फलादिखचितं कृत्वा तज्जलेन विभूषितम्।
एवमुत्क्रामतः पात्रं प्रदद्याद्ब्राह्मणाय च॥
ब्राह्मणेन ततो वाच्यं जननीसम्भवादृणात्।
मुक्तस्त्वं पात्रदानेन महेश्वरवचो यथा॥
दत्त्वा विप्रस्य पात्रन्तु होमं कुर्य्यात् प्रयत्नतः।
सोपस्करं सताम्बूलं समाप्य विप्रं विसर्जयेत्॥
अन्येषामपि विप्राणां भोजनादि प्रदापयेत्।

भक्त्या शक्त्या ससम्मानं पूज्य विप्रान् प्रयत्नतः ॥
एवं कृते ततो देवाहृणान्मुक्तिर्न संशयः ।
जननीसम्भवादस्मान्नान्यथा क्वचिदेव हि ॥
पुरामातृवधोद्भूतपापशङ्कितचेतसा ।
जामदग्न्येन रामेण प्रदत्तं कांस्यभाजनम् ॥
वशिष्ठस्तनयान् हत्वा विश्वामित्रेण धीमता ।
पुरा दानमिदं दत्तं पातकव्रतशान्तये ॥
अकृत्वा मातृवचनं पन्नगैः शाप संयुतैः ।
कैश्चिच्छङ्कापरैर्भूत्वा माता पश्चात् प्रसादिता ॥
शापतो निष्कृतिं ब्रूहि न वाक्यं यत्कृतं तव ।
शापोभि भवते देवि नानृणानां दुरात्मनाम् ॥
कथयामास सा तेभ्यः कांस्यपात्रं सविस्तरम् ।
दत्त्वा दानं विनिर्मुक्तो भविष्यति न संशयः ॥
भुजङ्गैस्तत् कृतं सर्व्वं मातृवाक्येन गर्हितैः ।
कांस्यपात्रप्रदानन्तु पापमुक्तास्ततोऽभवन् ॥
विधानं कांस्यपात्रस्य सर्व्वमेतन्मयोदितम् ।
अन्यथा किन्तरिष्यन्ति ऋणान्मातृसमुद्भवात् ॥ ।

वशिष्ठ उवाच ।

इति श्रुत्वा ततो देवा कश्यपाद्या महर्षयः ।
प्रजग्मुः स्वान्यधिष्ठानि हर्षयुक्ता महौजसः ॥
इति ते सर्व्वमाख्यातं पात्रदानं महीपते ।
कुरु सर्व्वप्रयत्नेन मावज्ञां क्वचिदेव हि ॥

इत्यादित्य पुराणोक्तं कांस्यपात्रदानविधिः।

आह यमः।

सर्व्वपातकसङ्घातः कामतो वाप्यकामतः।
शुद्धिं तस्य प्रवक्ष्यामि स्वर्गसाधनमेव च॥
शुक्लैः कृष्णैर्यथा लब्धैर्द्वात्रिंशदङ्गुलोत्थितः।
राशिस्तिलैः समे देशे कर्त्तव्यः पुरुषायतः॥
यथाविभवविस्तारं यदि वा शक्तितो नरैः।
प्रतिमाष्टाङ्गुला स्थाप्या सौवर्णी तत्र माधवी॥

माधवमूर्त्तिस्तु, नारदीये।

आरभ्य वामोर्द्धकरादपसव्यक्रमेण तु।
शङ्खं चक्रं गदां पद्मं दधानो माधवः स्मृतः॥
क्षीरेण पयसा दध्ना घृतेनापूरयेद्घटान्।
स्थापयेत्तत्र तं कुम्भं पुष्पस्रग्वस्त्रभूषितान्॥
भक्त्या वाभ्यर्च्य तत्सर्व्वं ब्राह्मणे श्रोत्रियेऽर्थिनि।
दद्यात् माघेऽथ वैशाखे विषुवे चोत्तरायणे॥
अज्ञानाद्यदि वा मोहाल्लोभाद्वा जन्म जन्मनि।
अर्जितं यन्मया किञ्चिद्दुष्कृतं मधुसूदन।
तत्सर्व्वं विलयं यातु दानेनानेन माधव॥
एवमुच्चार्य्य तत्सर्व्वं ब्राह्मणाय निवेदयेत्।
यावज्जीवकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति॥

इति तिलराशिदानविधिः।

अथ महाभारते।

यम उवाच।

सर्व्वयज्ञेषु यत्पुण्यं सर्व्वदानेषु यत्फलम्।
यद्दत्वा लभते विप्र तद्दानं कथयामि ते॥
रहस्यं सर्व्वदानानां कथ्यमानं मया शृणु।
पुण्येऽस्मिन् भारते वर्षे देवानामपि दुर्लभम्॥
तिलपद्ममितिख्यातं सुरा-सुरनमस्कृतम्।
माघमासे तु सम्प्राप्ते शुक्लपक्षे द्विजोत्तम॥
गोमयं मण्डलं कृत्वा चतुरस्रं महामते।
नवं वस्त्रं समास्तीर्य्य कृष्णाजिनसमन्वितम्॥
द्रोणाज्जरांस्तिलांस्तत्र निधाय वसनोपरि।
पद्ममष्टदलं कृत्वा शुभं तत् कर्णिकोपरि॥
निष्कत्रयं सुवर्णस्य स्थापयेच्च ततोपरि।
श्रीनिवासं जगन्नाथं भुक्ति-मुक्तिप्रदायकम्॥
ध्यायेच्चतुर्भुजं देवं प्रणतार्त्तिहरं हरिं।
हिरण्यगर्भममृतं श्रीगर्भं परतः परं॥
शङ्ख-चक्र-गदा-पाणिं पीतवाससमच्युतम्।
श्रीयस्माज्जगद्वीजं सर्व्वकारणकारणम्॥
आदिं पुराणं विश्वेशं पुण्डरीकनिभेक्षणं।
आसीनं कर्णिकामध्ये सर्व्वशक्तिसमन्वितम्॥
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा नमस्कृत्य पुनः पुनः।
पूजयेत्परमेशानं श्रद्धावित्तानुसारतः॥

इन्द्रनीलमहानीलमणिमुक्ताफलादिभिः।
आराधय यथाशक्त्या देवदेवं जनार्द्दनं॥
गन्ध-पुष्पैस्तथा दीपैर्नैवेद्यैश्च मनोरमैः।
क्षीरान्नैर्घृतपक्वैश्च फलैर्दिव्यैरनेकधा॥
पुष्पाणां प्रकरैश्चैव गीत-नृत्यादिभिस्तथा।
इत्थमाराध्य देवेशं ताम्बूलं विनिवेदयेत्॥
पञ्चसौगन्धिकोपेतं श्रद्धापूतेन चेतसा।
तैलप्रस्थं घृतप्रस्थं दध्याढकमतः परम्॥
स्थापयेत्पार्श्वतस्तस्य धान्यपात्राणि षोडश।
एवमाराध्य तत्पद्मं तिलद्रोणमयं शुभं॥
एकरात्रं द्विरात्रं वा त्रिरात्रमथवा द्विज।
तिलाहारो भवेत्त्वं मुपवासमथापि वा॥
कुर्य्यात् स्वकार्य्यशुद्ध्यर्थं वासुदेवमनुस्मरन्।
ततो दद्याच्च तत्पद्मं शुचिर्भूत्वा समाहितः॥
विख्यातकुल-शीलाय ब्राह्मणाय कुटुम्बिने।
जितेन्द्रियाय शान्ताय प्रसन्नायात्मवेदिने।
राग-द्वेषविहीनाय वैष्णवाय विशेषतः॥
एतद्गुणान्वितायैवं यथायोगं यथाक्रमं॥
दातव्यं तत् प्रयत्नेन तिलपद्मं विधानतः।
प्रीयतां माधवो देव इत्युक्त्वा तमनुस्मरन्॥
हिरण्यगर्भ देवेश पद्मनाभ जनार्द्दन।
हिरण्याक्ष गुणाधार सर्व्वाधारधरेश्वर॥
धनधान्यसमृद्धञ्च सर्व्वसम्पत्समन्वितम्।

पुत्रपौत्रादिसंयुक्तं दासी-दास-समन्वितम् ॥
आरोग्यञ्च सुमन्त्रञ्च सर्व्वदुःखविवर्जितम्।
कुरु मां परमोदारं भक्तायमिति चिन्तयन् ॥
इत्थं प्रसाद्य देवेशं वासुदेवं सनातनं।
दद्यात्तिलमयं पद्मं सर्व्वकामसमृद्धये ॥
ब्राह्मणश्चापि गृह्णीयाद्वाचयेत्तु प्रतिग्रहं।
कोदात् कस्मा अदादिति वैदिकं मन्त्रमुच्चरेत् ॥
एवन्तिलमयं पद्मं योददाति विधानतः।
सर्व्वसत्वसमाकीर्णं नरकं स न पश्यति ॥
स्वयम्भवति पूतात्मा पितॄनथ पितामहान्।
प्रपितामहांश्च धर्म्मात्मा तारयत्यखिलं कुलं ॥
धर्म्मार्थी धर्म्ममाप्नोति धनार्थी धनमाप्नुयात्।
मोक्षार्थी मोक्षमाप्नोति नात्र कार्य्या विचारणा ॥
पातकी मुच्यते पापात् पितृघ्नो गुरुतल्पगः।
सर्व्वपापरतोवापि मुच्यते नात्र संशयः ॥
इच्छन्ति पितरः पुत्रान् पौत्रांस्तद्वंशसंभवान्।
अस्मद्वंशभवः कश्चित्तिलपद्मं प्रदास्यति ॥
यस्तु राजा धनपतिः समृद्धोतीवधार्म्मिकः।
आराध्य विप्रं विधिना वस्त्रालङ्कारभूषणैः ॥
वाहनादिभीरत्नैश्च ग्रामक्षेत्रादिकैस्तथा।
यत्फलं जायते तस्य द्विज दानपरस्य च।
परिच्छन्नं भवेत्तन्तु नात्र कार्य्या विचारणा ॥
यस्त्विमं विविधद्दद्यात् तिलपद्मञ्च धार्म्मिकः।

तस्य दानफलं यत्स्यान्न तस्यान्तोऽत्र विद्यते ॥

इति तिलपद्मदानविधिः।

लिङ्गपुराणे।

अथान्यत्परमं वक्ष्ये अल्पद्रव्यं महाफलं।
द्रव्यमन्त्रोपसंयुक्ते कालेऽप्यस्य विधिः स्मृतः ॥

काल इति देशस्याप्युपलक्षणं तेन यत्र यदा च द्रव्यसत्पात्रयोगौ तावेवैतस्य देशकालौ न पूर्वोक्ताविव्यर्थः।

सर्वत्र सर्वकाले च कर्त्तव्यमिह कथ्यते ॥

इतिकामिकोक्तत्वात्।

गोमयालेपिते देशे अम्बराणि प्रकीर्य्य च।
तन्मध्ये निक्षिपेद्धीमांस्तिलभारत्रयं शुभं ॥
पद्ममष्टदलङ्कृत्वा कर्णिकाकेसरान्वितं।
दशनिष्केण तत् कार्य्यं तदर्द्धार्द्धेन वा पुनः ॥
तिलमध्ये न्यसेत्पद्मं पद्ममध्ये महेश्वरं।
आराध्य विधिवद्देवं वामादीनि प्रपूजयेत् ॥
शक्तिरूपं सुवर्णेन त्रिनिष्केण तु कारयेत्।
तासाञ्च पुरतः कार्य्या विद्येशाः प्रविभागशः ॥
पूर्व्वोक्त हेममानेन विद्येशानपि कारयेत्।
तानभ्यर्च्य विधानेन गन्धपुष्पादिभिः क्रमात् ॥

पद्ममध्ये. महेश्वरमिति. सहस्रशतादिनिष्कनिर्म्मितं शिवं

पद्ममध्ये विन्यस्य तदर्द्धमानहेमकृतां मनोन्मनीं शिवस्य वाम भागे न्यसेत्। तदुत्तरे तदर्द्धेन कारयेत् मनोन्मनीमिति

कामिकोक्तिः।

तत्परितोऽष्टौ वामादिशक्तीः पूजयेत् तद्यथा।
वामा ज्येष्ठा तथा रौद्री काला विकरणी तथा।
बालप्रथमनी देवी दमनीच यथाक्रममिति॥

तद्वाह्ये विद्येशानर्च्चयेत् ते च यथा।

अथानन्तश्च शूक्ष्मश्च शिवश्चाप्येकनेत्रकः।
एकरुद्रस्त्रिमूर्त्तिश्च श्रीकण्ठश्च शिखण्डिक इति॥

पूर्व्वोक्तहेममानेन, त्रिनिष्केणेत्यर्थः। प्रविभागश्च इति, पूर्व्व त्रापि सम्बध्यते तेन वामादिशक्तीनां विद्येशानाञ्च रूपं प्रत्येकं निष्कत्रयेण कार्य्यं, तत्र महेशरूपमुक्तं।

ब्रह्माण्डदाने।

मनोन्मनीवामादीनान्तु लिङ्गे।
सर्व्वाश्च द्विभुजा देव्यो बालभास्करसन्निभाः।
पद्मशङ्खधराः शान्ता रक्तस्रग्वस्त्रभूषिताः इति॥
विद्येशानान्तु गणेशदाने वक्ष्यते।

इत्यपरतिलपद्मदानं।

वायुपुराणात्।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि तिलपद्मस्य लक्षण।
यत् कृत्वा सर्व्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः॥

विषुवे ग्रहणे वापि व्यतीपाते दिनक्षये।
अयने जन्मनक्षत्रे कृष्णपक्षे चतुर्द्दशी॥
एषु कालेषु देशेषु पुण्येष्वायतनेषु च।
तिलानान्द्रोणमात्रेण नववस्त्रे सुशोभने॥
पद्ममष्टदलं कुर्य्यात् कर्णिकादलशोभिते।
तस्मिन् पद्मं सुवर्णेन पलमात्रेण कल्पितं॥
पलार्द्धेनार्द्धपादेन कर्णिकोपरि शोभितं।
विन्यसेत्तत्र देवेशमावाह्य शशिशेखरं॥
पाण्डुराङ्गं चतुर्बाहुं कृत्तिवाससमीश्वरं।
अर्च्चयेत् पुण्डरीकैश्च पद्मैर्व्वा शतपत्रकैः॥
धूपञ्च गुग्गुलं दद्यात् घृताक्तं परमेष्ठिनः।
एवमभ्यर्च्य देवेशं कृत्वा चैव प्रदक्षिणं॥
ततोविप्रं समाहूय पुण्यकाल उपस्थिते।
यथादेवं तथा विप्रमर्च्चयित्वा विधानतः॥
मूलमन्त्रेण कर्त्तव्यं सर्व्वमेवार्च्चनादिकं।
इमं मन्त्रं ततः प्रोक्ता तस्मै विप्राय दापयेत्॥
एतत्तिलमयं पद्ममत्र संनिहितोहरः*।
एतत् प्रदानादनिशं शिवः संप्रीयतामिति॥
यथासौ भगवान्देवः सर्व्वभूतान्तरस्थितः।
तेन सत्येन मे पापं विलयं यातु सर्व्वतः॥
एवं यस्तिलपद्मस्य विधानं सम्यगाचरेत्।

---

* मन्त्रमिति क्वचित् पुस्तकेपाठः।

सर्व्वपापविनिर्म्मुक्तः स याति शिवमन्दिरं ॥
तत्र कल्पशतं सार्द्धं शिववन्मोदते सुखं ।
यत्किञ्चित् कुरुते पापं कर्म्मणा मनसा गिरा ।
तिलपद्मप्रदानेन तत् सर्व्वं क्षयमेष्यति ॥

इति तृतीयं तिलपद्मदानं ।

आह बौधायनः ।

सौवर्णं कारयेत् पद्मं पलेनार्द्धपलेन वा ।
यथा स्वशक्त्या मतिमान् दृढमष्टदलं शुभं ॥
वित्तशाठ्यं न कुर्व्वीत भवेन्निष्फलमन्यथा ।
द्रोणे तिलाधिके वापि ताम्रपात्रं जलावृतं ॥
तस्य मध्ये तु तं पद्मं निदध्यात् कुङ्कुमान्वितं ।
ब्राह्मणं श्रुतसम्पन्नं दरिद्रं चाग्निहोत्रिणं ॥
आहूय गन्धमाल्याद्यैर्व्विधिना चातिभक्तितः ।
ततः स्वर्णमयं पद्मं दद्यान्मन्त्रेण संयुतं ॥
खगःपूषा पतङ्गोऽसौ द्वादशात्मा त्रयीतनुः ।
पद्मेनानेन दत्तेन प्रीतस्तरणिरस्तु मे ॥

दानमन्त्रः ।

कृतेनानेन मनुजो मूत्रकृच्छ्रात् प्रमुच्यते ।
मूत्रकृच्छ्रातुरस्तस्मादेतत् कुर्य्यात् प्रयत्नतः ।
मूत्रकृच्छ्ररोगहरं तिलपद्मदानं ।

वायुपुराणे।

क्षये तु राजतं पद्मं ब्राह्मणाय निवेदयेत्।
तिलाढकोपरि यत्तज्जलं कांस्यमये दृढे॥
पलेनाथ तदर्द्धेन यथाशक्त्याथ वा कृतं।
निधाय तत्र पद्मन्तु ब्राह्मणाय निवेदयेत्॥
पद्मेन राजतेनेह प्रदानादग्निनेलज।
जातं कर्म्मविपाकेन क्षयं नाशय मेऽनघ॥

दानमन्त्रः।

कृत्वैवं क्षयरोगी तु शीघ्रं रोगात् प्रमुच्यते॥

इति क्षयरोगहरं तिलपद्मदानविधिः।

आह बौद्धायनः।

सुवर्णेन तदर्द्धेन तदर्द्धार्द्धेन वा पुनः।
पद्मन्तु कारयेच्छुभ्रं व्यक्तमष्टदलं शुभं॥
मध्ये तु कर्णिकां कुर्य्याद्राजतेन च नालकं।
पद्ममेवं विधं कुर्य्यात् स्थाप्यं द्रोणतिलोपरि॥
वस्त्रेणावेष्ट्य परया भक्त्या प्रयतमानसः।
ब्राह्मणं ज्ञानवृत्तस्थं स्वाचारं संयितेन्द्रियं॥
पद्मदानप्रयोगन्तु आदित्येऽहनि कारयेत्।
आहूय विप्रवर्य्यं तं पूजयेद्वस्त्रपूर्व्वकं॥
आज्येन च तिलैर्होमः कार्य्याष्टोत्तरंशतं।
पद्मे नावाहयेद्देवं भास्करं ग्रहनायकं॥

एह्येहि भगवन् देव पद्मेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु ।
त्रयीतनो द्वादशात्मन् सर्व्वप्राणिहिताय च ॥

आवाहनमन्त्रः ।

आवाह्य तस्मिन् देवेशं पूजयेद्रक्तचन्दनैः ।
पुष्पैश्चरक्तरपरैः कुंकुमागुरुचन्दनैः ॥
नैवेद्यं पायसं दद्यादलाभे चौरमेवच ।
मन्त्रेणानेन विधिवद्दद्यात् पद्मं सिताम्बरं ॥
भगवन् सूर्य्य भूतेश द्युमणे लोकनायक ।
रक्तवर्णः प्रतापेन्द्र रक्तस्त्रैलोक्यपावनः ॥
सत्पात्राय मया दत्तं मम जन्मनिचैवहि ।
औषधादि तु तत् सर्व्वं नाशमायात्तु दानतः ॥
ततः प्रदक्षिणी कृत्य ब्राह्मणं विनयान्वितः ।
पायसं गुड़संमिश्रं भोजनाय प्रदापयेत् ॥
ततः स्नात्वा मङ्गलेन पुण्याहेन तु भक्तितः ।
भर्त्तारं देववन्मन्ये भुञ्जीत घृतपायसं ॥
एवं कृतेन दानेन नाशं याति न संशयः ।
संपन्नौषधदानेन रक्तशूलमुपार्ज्जितं ॥
रक्तशूलयुजा नार्य्या दानं कार्य्यमिदं ततः ।

इति रक्तशूलघ्नं तिलपद्मदानं ।

आह गौतमः ।

गवां यः पीडनं कुर्य्यान्नरो रोधनबन्धनैः ।

दद्रुरोगी सति कण्डुयुक्तो भवति सर्व्वदा॥
वक्ष्यामि तत् प्रतीकारं पद्मदानादिकर्म्मणा।
व्यावहारिकनिष्केण पद्मं कुर्य्यात सुशोभनं॥
नालञ्च राजतं कुर्य्यात्तदर्द्धेनापि कण्ठकं।
मध्ये रत्नं प्रदातव्यं तदलाभे च मौक्तिकं॥
श्रीगन्धकुङ्कमाभ्याञ्च प्रक्षाल्य ह्यनुलेपयेत्।
तण्डुलोपरि संस्थाप्य वस्त्रयुक्तं तिलेषुवा॥
तेषामपि परिमाणं द्रोणत्रितयमिष्यते।
तदलाभे द्वयं ग्राह्यमथवा स्वस्य शक्तितः॥
उपचारैः षोडशभिरर्च्चयेत् मूलमन्त्रतः।
आवाहयेच्च देवेशं भास्करं सूर्य्यमण्डलात्॥
देव देव जगन्नाथ द्युमणे लोकपावन।
लोकानां चक्षुःसूर्य्य त्वं पद्मेस्मिन् सन्निधिङ्कुरु॥

आवाहन मन्त्रः।

एवंमावाह्य सूर्य्यन्तं भानुं सर्व्वजनप्रियं।
उपचारैः षोडशभिरर्च्चयेत् मूलमन्त्रतः॥
होमञ्चापि प्रकुर्व्वीत आग्नेय्यान्दिशि तस्य तु।
समिदाज्यतिलैःसम्यगाचार्य्यः सर्व्वशास्त्रवित्॥
सूर्य्यन्तेचक्षुर्म्मन्त्रेण समिद्धोमं प्रकल्पयेत्।
आज्यहोमं प्रकुर्व्वीत हंसः शुचिसदित्यपि॥
व्याहृत्या च तिलैःहोमं कुर्य्यात्त्वयुतसंख्यया।
समिदाज्यैश्चाष्टशतमष्टाविंशतिमेव वा॥

हुत्वा चाहुतिसम्पातान् पात्रे चास्मिन्विनिक्षिपेत् ।
तेन गात्राणि चाभ्यज्य दद्रुरोगार्हितस्य तु ।
अक्षिभ्यामनुवाकेन यथा लिङ्गश्च वाससा ॥
मार्जयीताहतेनाथ दद्रुणो मुष्टिना तथा ।
सम्पूज्यानन्तरं भक्त्या नैवेद्यं पायसं क्षिपेत् ॥
दद्याद्रोगी तु तं पद्मं प्राङ्मुखाय ह्युदङ्मुखः ।
मन्त्रेणानेन विधिवत्पूजितायातिभक्तितः ॥
देवदेव जगन्नाथ देवरूप परात्पर ।
जगतां परमानन्दकारक द्युमणे प्रभो ॥
प्रभाकर सुसप्ताश्व देवेशारुणसारथे ।
रोधनैर्व्यथनैश्चैवं वैरूप्यं यच्छरीरके ॥
पूर्व्वकर्म्मविपाकेन दद्रुकल्काादिकश्मलं ।
पद्मदानेन तुष्टस्त्वं नाशयाशु शरीरके ॥

दानमन्त्रः ।

एवं दत्त्वा तु तं पद्मं दद्रुरोगविवर्जितः ।
विना कण्डुं विना कुष्ठं त्वग्दोषैश्च विवर्जितः ॥
जायते रूपवान् सद्य आदित्यस्य प्रभा यथा ।
जीवेद्वर्षशतं मर्त्यो धनधान्यसमन्वितः ॥
अनन्तरं ब्राह्मणेभ्यः पायसञ्च निवेदयेत् ।
एवं यः कुरुते दानं गौतमोक्तविधानतः ॥
रोगैरन्यैर्व्विमुक्तश्च मोदते भानुवद्भुवि ।
इति दद्रुरोगघ्नतिलपद्मदानविधिः ॥

( ७८ )

अथ वायुपुराणे।

स्वरोपघाती वाचाञ्च हर्त्ता मूकः प्रजायते।
वक्ष्यामि तत्प्रतीकारं येन सम्पद्यते सुखम्॥
कुर्य्यात् स्वर्णमयं पद्मं पलार्द्धार्द्धतदर्द्धतः।
यथाविभवतः सम्यग्वित्तशाठ्यं न कारयेत्॥
रक्तवस्त्रेण सम्वेष्ट्य ताम्रपात्रोपरि न्यसेत्।
ताम्रपात्रपरीमाणं पलानामष्टकं विदुः॥
यद्वा स्वविभवेनैव पूजयेद्रक्तचन्दनैः।
तिलाढकोपरि स्थाप्य पीतवस्त्रेण वेष्टयेत्॥
उपचारैः षोडशभिराचार्य्यः सर्व्वशास्त्रवित्।
धर्म्मज्ञश्च विनीतश्च दयालुः सत्यवाक् शुचिः॥
मन्त्रेणानेन विधिवत्प्राङ्मुखोऽलङ्कृतः शुचिः।
ब्रह्मणः सदनं त्वं हि विष्णोरभिजनाभिज॥
अभिप्रीतिकरं भानोरग्नेरुद्रस्य चैवहि।
गृहाण पूजामेतां त्वं सर्व्वक्लेशविनाशकः॥

पूजामन्त्रः।

आग्नेय्यां दिशि वै होमः कर्त्तव्यो मन्त्रपूर्व्वकः।
समिदाज्यतिलैश्चैव सावित्र्याष्टाक्षरेण तु॥
समिद्धोमं प्रकुर्व्वीत सर्व्वरोगप्रशान्तये।
आज्यहोमश्च कर्त्तव्यश्चित्रमित्यनया ऋचा॥
तिलानायातिइन्द्रेति व्याहृतीभिरथापि वा।
अग्नेरुत्तरतोभागे कलशस्थापनं भवेत्॥

पूर्वोक्तेन विधानेन चाभिषेकादि कारयेत् ।
प्रनीतामोक्षपर्य्यन्तं कर्म्म कृत्वा प्रयत्नतः ॥
अतः स्नातः शुचिः श्वेतवस्त्रो रोगी तु भूषितः ।
तस्मै हुतवते पद्मं दद्यात् स्मृत्वा चतुर्म्मुखं ॥
देवानामथ सर्व्वेषां पद्म त्वं प्रीतिकारणं ।
विशेषतो ब्रह्मणश्च सरस्वत्या हरेरपि ॥
यत् प्राग्वाचाग्निरोधेन वैरूप्यं मम देहजं ।
अघभेदभवन्तीव्रन्दुःख रोगाकरन्तथा ॥
तत्सर्व्वं नाशयन्त्वत्र ब्रह्मसूर्य्यशिवाग्नयः ।
त्रिदशाद्यो ये च देवा हविषस्तस्तथा भुवि ॥

दानमन्त्रः ।

एवं दत्त्वा तु तं पद्मं आचार्य्यायातिभक्तितः ।
पृष्ठतस्तमनुव्रज्य ह्यघभेदाद्विमुच्यते ॥
एवं पद्मोद्भवः प्राह नारदाय महात्मने ॥

इति मूकत्वहरतिलपद्मदानविधिः ।

अथ त्रिपद्मपञ्चकदानविधिः ।

ब्रह्माण्ड पुराणात् ।

अथ दानं प्रवक्ष्यामि त्रिपद्ममिति विश्रुतं ।
आयुष्य श्रीकरं पुण्यं आरोग्यं पापनाशनं ॥
माघमासे विशेषेण जन्मर्क्षेषु च कारयेत् ।
व्याधिग्रस्ते च दातव्यं दुःखप्राप्तदर्शने ॥

अथान्यदा भयं पश्येत्सर्व्वदोष प्रशान्तये।
भूमौ गोमयलिप्तायां तिलैराढ़कसंमितैः॥
पद्ममष्टदलं कृत्वा कर्णिकाकेसरान्वितं।
तस्मिन्विधाय सौवर्णं ततः कृत्वा सरोरुहं॥
वस्त्रेणावेष्ट्य गन्धाद्यैरर्च्चयेत् परमेष्ठिनं।
विप्रं वैतानिकं धर्म्मशास्त्रज्ञं शान्तमानसं॥
अभ्यर्च्य दापयेत्तस्मै मन्त्रमेतमुदीरयेत्।
सम्प्रीयतां मे भगवान् आत्मभूश्चतुराननः॥
दानेनानेन सर्व्वात्मा जगत्स्रष्टा जगत्पतिः।
तथान्यत् तण्डुलैरेव तृतीयं लवणेन तु।
विष्णवे स्थाणवे चेति दानमन्त्रैर्विबोधयेत्॥
सम्प्रीयतां मे भगवान् परमात्मा जगन्मयः।
दानेनानेन विश्वात्मा परमः पुरुषोत्तमः॥
सम्प्रीयतां मे भगवान् शङ्करः शङ्करोतु मे।
दानेनानेन विश्वात्मा चन्द्रार्द्धकृतशेखरः॥
इतिमन्त्रान् समुच्चार्य्य दद्यादेतान् पृथक् पृथक्।
जातरूपमयान् कृत्वा ब्रह्मविष्णुमहेश्वरान्॥
एवं कृते तु यत्पुण्यं जायते द्विजपुङ्गवाः।
न तद्वर्णयितुं शक्यं कल्पकोटिशतैरपि॥
इत्याह भगवान् ब्रह्मा नारदाय महात्मने।
उक्तं मयापि तत्सर्व्वं युष्माकं मुनिसत्तमाः॥
अत्र ब्रह्मविष्णुमहेश्वराणां रूपनिर्म्माणं धान्यपर्व्वतवद्द्रष्टव्यं।

इति त्रिपद्मदानविधिः ।

वायुपुराणात् ।

तिलदानमथो वक्ष्ये दशधा देवि साम्प्रतं ।
रहस्यं सर्व्वपापघ्नं सर्व्वकल्याणकारकं ॥
जन्मर्क्षेषु चतुर्द्दश्यां कृष्णायाञ्च समाचरेत् ।
सन्निधौ देवदेवस्य शिवस्य परमेष्ठिनः ॥
चक्रे पञ्चरजःक्लिप्ते द्वादशारं सरोरुहं ।
दलैर्द्वादशभिर्युक्तं कृत्वा तस्मिन्नरञ्जकं ॥
अव्रणं तिलसम्पूर्णं विन्यस्याभ्यन्तरं शिवं ।
चन्द्राकारञ्च* सौवर्णं मण्डले शक्रदैवते ॥
पूजयेद्गन्ध-नैवेद्य-दीप-पुष्पैः-फलैस्तथा ॥

शक्रलक्षणं लोकपालप्रसङ्गेन ब्रह्माण्डदाने दर्शितं शक्रदैवतमण्डलं पार्थिवमण्डलञ्चतच्चतुष्कोणं विधेयं ।

धूपं सर्जरसं कृत्वा दद्यात्तं शिवयोगिने ।
भूगन्धपति-रीशानः शक्ररूपी तिलाशयः ॥
न्यासोत्थं पृथिवीजात स मत्पापं व्यपोहतु ।
इति कृत्वा विनश्यन्ति पापानि चितिजानि च ॥
भोजने यानि हिंस्यन्ते स्थावराणि चराणि च ।
कण्डूतिवमने यानि शवमद्यादिगन्धयोः ॥

---

* इन्द्राकारञ्चेति क्वचित्पाठः ।

घ्राणे घ्राणे गवां गन्धे श्रोत्रियस्यातुरस्य च ।
पुनः शिवपुरे तिष्ठेद्यावदिन्द्राश्चतुर्द्दश ॥
इतरेष्वपि सर्व्वेषु विधिः साधारणः स्मृतः ।
विशेषेण च वक्ष्यामि तत्र तत्र शुचिस्मिते ॥

इति तिलारञ्जकदानविधिः ।

वायुपुराणात् ॥

तिलपीठमथो वक्ष्ये सारदारुमये शुभे ।
पीठे रत्निद्वयायामे तिलपूर्णे सभित्तिके ।
व्योमाधिपं गणेशानरूपिणं शिवमर्च्चयेत् ॥

गणेशरूपमाहात्म्यः ।

चतुर्भुजोगजमुखो मूषकस्थश्च तुण्डिलः ।

विषाणं चाक्षसूत्रञ्च परशुं मातुलाङ्गकं

दधानोविघ्नराजः स्यादिति ॥

शुक्लैर्गन्धैश्च धूपैश्च कर्पूरं धूपयेत्तथा ।
क्षौमे च वाससी दद्यात् पुस्तकं तत्र विन्यसेत् ॥
व्योमध्वनिपतिः शम्भो गणनाथ तिलाश्रयः ।
व्योमशब्दश्रुतिप्राप्तं पापमीश व्यपोहतु ॥

इति दत्तेऽस्य नश्यन्ति पापान्याकाशजानि च
अनिबद्धकथोत्थानि परनिन्दाकथानि च।
कूटसाक्षिसमुत्थानि पैशुन्यजनितानि च।
वेदनिन्दा गुरोर्निन्दा तयोश्च श्रवणेन च।
हन्ति पापान्यशेषाणि तिलपीठप्रदानतः।
शिवलोके च कल्पांश्च मोदते दशपञ्च च॥

इति तिलपीठदानविधिः।

तस्मिन्नेव पुराणे।

अथान्यत् सम्प्रवक्ष्यामि तिलदानमनुत्तमं।
पूर्व्वोक्तकल्पिते पीठे चतुःकुम्भपरिष्कृते॥
आदर्शं विमलं न्यस्य तत्र देवं मनोमयं।
विष्णुरूपधरं शम्भुं विन्यस्य परितोन्यसेत्॥

विष्णुरूपमुक्तं।

नारदेन।

तद्यथा। शङ्खचक्रगदापद्मधरो वामोर्द्ध्वबाहुतः।
विष्णुर्विधेयो भगवान् विशेषोन्यासमूर्त्तिष्विति॥
पीतवस्त्रयुगन्दिद्यु चक्रादीन्यायुधानि च।
पञ्चलोहप्रतिष्ठानि तुलसीभिः समर्च्चयेत्॥
मनोमय नमस्तेऽस्तु सौम्यरूप वृषध्वज।
मनस्कृत्यानि पापानि सर्व्वाण्याशु विनाशय॥
इति दत्तेऽस्य नश्यन्ति मानसानि कृतानि वै।

परद्रोहप्रवृत्तानि कामलोभोद्भवानि च॥
क्रोधजानि च सर्व्वाणि पापानि च विशेषतः।
अवाच्यवाचने यानि अध्येयध्यानजानि च॥
मदनोत्सवजातानि क्रोधोद्भूतानि यानि च।
ध्येयान्यावृत्तवृत्तानि नश्यन्ति सकलान्यपि॥
शिवलोके वसेद्वर्षाण्यर्व्वुदान् दश कामतः॥

इति तिलादर्शदानविधिः।

वायुपुराणात्।

तिलकुम्भमथो वक्ष्ये कुम्भे पूर्व्ववदास्थिते।
वारुणे मण्डले देवं वरुणाकारमर्च्चयेत्।
श्वेतैः पुष्पैः फलैर्गन्धैः कर्पूरेण तु पूजयेत्॥

वरुणलक्षणमुक्तं।

ब्रह्माण्डदाने।

"वारुणं मण्डलं प्राप्य मण्डलं" तच्च अर्द्धचन्द्राकारं कर्त्तव्यं।
षड्रसान् परितोन्यस्य ततोमन्त्रमिमं जपेत्॥
नमोवरुणरूपाय रसाम्बुपतये नमः।
रसवारिनिमित्तानि यान्तु नाशमघानि मे।
तिलकुम्भप्रदानेन प्रसीद परमेश्वर॥
इति दत्ते विनश्यन्ति पापानि जलचारिणां।
हिंसोद्भवानि स्नानेषु पानपाकेवगाहने॥
रसोपादानभक्षाणां अपेयानाञ्च वाञ्छया।

औषधश्चापि देवेश सर्व्वमेध्यं भविष्यति ।
शिवलोके वसेत्कल्पान् शतपञ्चदशावरान् ॥

इति तिलकुम्भदानविधिः ।

वायुपुराणात् ।

करकं तिलसम्पूर्णं मण्डले वह्निदैवते ।
शिवं वह्निवदाधाय पूजयेत् करवीरकैः ।
रक्तचन्दनगन्धेन निर्य्यासेन च धूपयेत् ॥

'वह्निदैवतमण्डलं' त्रिकोणं मण्डलमित्यर्थः ।
'शिवं वह्निवदिति' वह्निरूपिणं शिवमाधायेत्यर्थः ।

तद्रूपमुक्तं ।

ब्रह्माण्डदाने

निर्य्यासः; सर्जरसः ।

आदर्शञ्च ततोदद्याद्दीपानाञ्च चतुष्टयं ।
वह्निरूपपतिः शम्भुर्व्वह्निरूपी तिलाश्रयः ॥
तेजोरूपकृतं पापं चक्षुषञ्च व्यपोहतु ।
इति दत्तेऽस्य नश्यन्ति पापान्यग्निकृतानि च ।
पाकहोमेषु काष्ठेषु हिंस्यन्ते यानि वह्निना ।
अङ्गारवनदाहादिसम्भवानि च यानि वै ॥
विरुद्धकरणोत्थानि रूपयोगोद्भवानि च ।
परदारपरद्रव्यपुत्रदर्शनजानि च ॥

शवादिदर्शनोत्थानि मेतदोषकृतानि च।
य एवं कुरुते दानं शिवभक्त्या यतव्रतः।
शिवलोके वसेद्भूप कल्पत्रयमशङ्कितः॥

इति तिलकरकदानविधिः।

वायुपुराणात्।

अतः परमहङ्कारं नाम दानं वदामि ते।
पूर्व्ववत् कल्पिते पीठे तिलानामुपरि न्यसेत्॥
राजतं मण्डलं शुद्धं विश्वगष्टाङ्गुलायतं।
तत्र देवमहंकारं पविशक्तिधराकृतिं॥
विन्यस्य राजतानन्यान् कुमारान् परितोन्यसेत्।
नैगमेशं विशाखञ्च कुमारं गुहमेव च॥
'पूर्व्ववदिति, तिलपीठदानवदित्यर्थः।
पविः वज्रं,
अहङ्कारस्य पुरुषाकृतिःद्विभुजो वज्रशक्तिधरोविधेयः।
नैगमेषादिलक्षणमुक्तं विश्वकर्म्मणा।
ततः स्कन्दग्रहा जाता दारुणा विकृताननाः।
नैगमेषमुखाः शक्तिधरा द्विबाहवस्तथेति॥
कौसुम्भे वाससी दद्यात् घण्टाञ्च परितो न्यसेत्।
कुङ्कुमं गन्धकार्य्ये स्यात्पुष्पञ्च करवीरजं॥
अहङ्कारपते देव ग्रहरूप दुरन्तक।
अभिमानकृताद्दोषात् सर्व्वस्मात्पाहि मां प्रभो॥

इति दत्तेऽस्य नश्यन्ति यान्यहंकारजानि तु ।
पारुष्यस्तोनिषेध्यादिविप्रत्तत्रियजानि च ।
तानि सर्व्वाणि नश्यन्ति यानि कृत्यविलङ्घनैः ॥
अनात्मन्यात्मबुद्ध्या तु गृहक्षेत्रादिसङ्गमे ।
अन्यानि यानि पापानि तानि नश्यन्ति सर्व्वतः ॥
पापानि तानि नश्यन्ति शिवलोके वसेन्नरः ।
कल्पानां शतमेकञ्च नात्र कार्य्या विचारणा ॥

इति अहङ्कारदानविधिः ।

ब्रह्माण्डपुराणात् ।

अतः परं प्रवक्ष्यामि तिलदानमनुत्तमं ।
यद्दत्वा पुरुषः स्त्री वा वैरिञ्चिं लोकमाप्नुयात् ॥
आयुरारोग्यदं पुण्यं सर्व्वपापप्रणाशनं ।
शिवप्रीतिकरं नृणां पुत्रवृद्धिकरं शुभं ॥
रुद्रैकादशबुद्ध्या तु विप्रानेकादशान् सुधीः ।
प्राङ्मुखः प्रत्यगासीनान् गन्धादिभिरथार्च्चयेत् ॥
तिलप्रस्थद्वयं पात्रे प्रत्येकं निक्षिपेत्तथा ।
प्रत्येकं मण्डलं हैमं पात्रेषु विनिवेदयेत् ॥
पात्राणि चैवमाराध्य शिवबुद्ध्या यथाक्रमं ।
रुद्रैकादशमन्त्रैश्च दद्यादुदकपूर्व्वकं ॥
रुद्रैकादशमन्त्रा, वक्ष्यमाणैर्नामभिर्नमोन्तैर्ज्ञातव्याः ।

मृगव्याधश्च सर्व्वश्च नैर्ऋतिश्च महायशाः।
अजैकपादहिर्बुध्नः पिनाकी च परन्तपः॥
दहनोऽथेश्वरश्चैव कपाली च महाद्युतिः।
स्थाणुर्भवश्च भगवान् रुद्रा एकादश विदुः॥

इति रुद्रैकादशतिलदानविधिः।

तस्मिन्नेव पुराणे।

अतः परं प्रवक्ष्यामि तिलगर्भमनुत्तमं।
यत्संप्रदानान्मनुजो दीर्घमायुरवाप्नुयात्॥
अपमृत्युजयोपायो व्याधिनिर्म्मोचणक्षमः।
तिलगर्भइतिख्यातो रहस्यः पापनाशनः॥
यदा ग्रहोपरोधःस्याज्जन्मर्क्षस्यातिदारुणः।
व्याधीनाञ्च समुत्थानमुत्पातस्यापि चोदयः॥
तिलगर्भस्तदा कार्य्यः सर्व्वदोषोपशान्तये।
निमित्तानन्तरं कुर्य्यान्नैमित्तिकविधिक्रमं॥
गोमयेनोपलिप्तायां क्षितावास्तीर्य्य वाससी।
शालीनामाढ़कं मध्ये तदर्द्धन्तण्डुलं न्यसेत्॥
तेषु पद्मं प्रविस्तीर्य्यमष्टपत्रं सुकर्णिकं।
कर्णिकायां न्यसेत्पद्मं सौवर्णं शक्तितः कृतं॥
नवरत्नानि तत्पद्मे निधातव्यानि यत्नतः।
ततस्तद्वाह्यतः शुद्धान् तिलान् कुर्य्यात् समन्ततः॥
गर्भवस्त्रासमा भूयः समास्तीर्य्य ततः शनैः।
गर्भन्तं योनिमन्त्रेण समाधाय यथाविधि॥

तत उपविश्य पुरुषं कृष्णकृतसुमुष्टिकं* ।
तस्याङ्गेषु न्यसेन्मन्त्रं मृत्युञ्जयमनुक्रमात् ॥
तत्र देवं विरूपाक्षमर्द्धचन्द्रविभूषणं ।
कल्पयित्वार्चयेत् मन्त्रं पञ्चब्रह्मभिरादरात् ॥

योनिमन्त्रः ।

यस्यै यज्ञियोगर्भो यस्यै योनि र्हिरण्मयीत्यादिवाजसनेयानां प्रसिद्धः ।

मृत्युञ्जयन्यासमाह शौनकः ।
त्र्यम्बकं यजामहे शिखायां,
न्यसेत् सुगन्धिं पुष्टिवर्द्धनमिति हृदये.
उर्वारुकमिव बन्धनादितिबाह्वोः,
मृत्योर्मुक्षीय मामृतादिति नाभौ,
पादे गुल्फेच जङ्घोरुजघने कटिमेढ्रयोः ।
नाभौ कुक्षिद्वये पार्श्वे कक्षयोः कुचयोर्हृदि ॥
स्कन्धे कृकाटिकायाञ्च कूर्परे मणिबन्धके ।
कनिष्ठानामिकामध्यातर्जन्यङ्गुष्ठपाणिषु ॥
कण्ठेऽथ चिबुके वक्त्रे नासिकाकर्णचक्षुषि ।
ललाटे मूर्ध्नि चूडायां वर्णान् मन्त्रस्य विन्यसेत् ॥
इति, देवीपुराणोक्तोवा मृत्युञ्जयमन्त्रन्यासो गृह्यते,

---

* कृष्णगुल्ममुष्टिकमिति क्वचित्पाठः ।

स च गारुड़पुराणोक्तनानारोगघ्नतुलापुरुषदाने द्रष्टव्यः।

पञ्च ब्रह्माणास्तत्पुरुषादिमन्त्राः

तस्य मूर्द्धि पुनः पद्मं सौवर्णं पूर्व्ववत् कृतं।
विन्यसेदस्त्रमावेष्ट्य तिलैरापूरयेत् पुनः॥
तं गर्भमर्च्चयेद्रूपश्चिन्तयित्वामृतोद्भवं।
अमृतस्राविणं चन्द्रं स्वेनमन्त्रेण मन्त्रवित्॥
ततः शतावृतं मन्त्रं मृत्युञ्जयमनुत्तमं।
तत उत्थापयेत्तस्मात् गर्भस्थानात् समाहितः॥
पुनः संप्रोक्ष्य वारुण्या पावमानीभिरेवच।
पूर्व्वदेहविनिर्म्मुक्तः शंकरोस्मीति चिन्तयेत्॥
ब्राह्मणाय विनीताय क्षामिणे वीतमन्यवे।
ब्रह्मनिष्ठाय तत्सर्व्वं संप्रदद्यात्तिलादिकं।
प्रीयतां भगवान् शम्भुश्चन्द्रमौलिरिति ब्रुवन्॥

तत्र तिलगर्भउपवेशनं,

शङ्करोस्मीतिच ध्यानमुत्थानं, समन्त्रकं। तिलादिदानं यजमानकर्तृकं। अन्यत् सर्व्वमाचार्य्यः कुर्यात्।

अनेन विधिना यस्तु तिलगर्भं समारभेत्।
अकालमृत्युर्नभवेत्तस्य नास्त्यत्र संशयः॥
व्याधीनांविप्रमोक्षःस्यान्महतामपि निश्चयः।
ग्रहदोषाश्च नश्यन्ति प्रसीदन्ति ग्रहाः पुनः॥
उत्पातानां प्रशान्तिश्च त्रिविधानामपि क्षणात्।

त्रिविधानामपि भौमान्तरिक्षदिव्यानां॥

तिलगर्भदानविधिः।

इति श्रीमहाराजाधिराजश्रीमहादेवस्य समस्तकरणाधीश्वर-
सकलविद्याविशारदश्रीहेमाद्रि-विरचिते-चतुर्व्वर्ग
चिन्तामणौ-दानखण्डे तिलगर्भदाना-
न्तानि दानानि समाप्तानि।

# दानखण्डम् नवमोऽध्यायः।

---

प्रथममारभ्यते ।

अथ गजदानं ।

कूर्म्मपुराणे ।

दद्याद्गजं पुराणोक्तमूल्यं पञ्चशतानि वा ।
वित्तानुसारात् तत्रापि कनिष्ठोत्तममध्यमं ॥

पुराणोक्तं मूल्यमत्र हेममाषशतद्वयं तथास्वरूपगजदानेन सह वित्तानुसारात्त्रैविध्यं तत्र स्वरूपगजदानं उत्तमः पञ्चः पञ्चशतानीति मध्यमः, शतद्वयं कनीयानिति पञ्चशतानीत्यत्राह हेममाषाः संबध्यन्ते ।

रूप्यस्थूणालंकरणं तारागणविभूषणं ।
सदक्षिणं वित्तशक्त्या दत्त्वा विष्णुपुरं व्रजेत् ॥
स्थूणा रज्जुः । तारागणो मौक्तिकादिकृतोगज ।

भूषणविशेषः ।

इति गजदानविधिः ।

अथ लिङ्गपुराणे।

गजदानं प्रवक्ष्यामि यथावदनुपूर्व्वशः।
द्विजाय वाथ दातव्यं देवदेवाय वा पुनः॥
गजन्तु लक्षणोपेतं हैमं वा राजतं तु वा।
सहस्रनिष्कमात्रेण तदर्द्धेनापि कारयेत्॥
तदर्द्धार्द्धेन वा कुर्य्यात् सर्व्वलक्षणभूषितं।
पूर्व्वोक्तदेशकाले च देवाय विनिवेदयेत्॥
अष्टम्यां वा प्रदातव्यः शिवाय परमेष्ठिने।
ब्राह्मणाय दरिद्राय श्रोत्रियायाहिताग्नये।
शिवमुद्दिश्य दातव्यः शिवं संपूज्य पूर्व्ववत्॥

पूर्व्ववदिति लिङ्गपुराणोक्ततुलापुरुषदानवदित्यर्थः।

एवद्यः कुरुते दानं शिवभक्तिसमन्वितः।
स्थित्वा स्वर्गे चिरं कालं राजा गजपतिर्भवेत्॥

इत्यपरोगजदानविधिः।

विष्णुसंहितायां।

कक्षारज्जुभिरायत्तं शुभासनसमन्वितं।
मणिकाञ्चनमालाभिर्भूषितं कर्णचामरैः॥
सूत्रखण्डैश्च पुष्पैश्च भूषितं दोषवर्जितं।
यथालाभोपपन्नं वा यः प्रयच्छति दन्तिनं।
ब्राह्मणाय दरिद्राय स्वर्गलोके महीयते॥
कर्म्मक्षयादिहागत्य महाराजोगणाधिपः।

सर्व्वपापविनिर्मुक्तोजायते नात्र संशयः॥

अथ वातुलशास्त्रे।

गजदानमथो वक्ष्ये संक्षेपाद्विधिना शृणु।
द्विजानामेव दातव्यं देवानां प्रीतिकारकं॥
श्रीकरं परमं धन्यं बलपुष्टिविवर्द्धनं।
रोगघ्नं सन्ततिकरं जगदापद्विनाशनं॥
गजं सुलक्षणोपेतं शुद्धदेशसमुद्भवं।
युवानं रूपसम्पन्नं सर्व्वाभरणभूषितं॥
पूर्व्वोक्तदेशकालेच देवालयसमीपके।
आनीय गजराजानमैरावतकुलोद्भवं।
अभ्यर्च्य गन्धपुष्पाद्यै र्विप्रमुख्याय दापयेत्॥
पुण्याहं तत्र कर्त्तव्यं शिवपूजा तथैवच।
आचार्य्यपूजनं चात्र कर्त्तव्यं विधिपूर्व्वकं॥

अथ महाभारते।

हस्त्यश्वशकटादीनि यः प्रयच्छति शक्तितः।
द्विजाय सुविशिष्टाय श्रोत्रियायाहिताग्नये।
यत् फलं समवाप्नोति तन्मे निगदतः शृणु॥
षष्टिर्व्वर्षसहस्राणि षष्टिर्व्वर्षशतानि च।
भोगान् भुक्तामरपुरे राजा कालक्षयादिह॥

इदं चात्रदानवाक्यं।

"ओं अद्य अमुकसगोत्रायेत्यादि।

इमं हस्तिनं कक्षारज्जुस्थिरासनसहितं काञ्चनमालाकीर्णं चामरगन्धपुष्पालंकृतं प्रजापतिदैवतं अक्षयस्वर्गकामस्तुभ्यमहं संप्रददे, नममेति, ओं अद्य अमुकसगोत्रायेत्यादि । एतद्धस्तिदान प्रतिष्ठार्थं दक्षिणामिदं सुवर्णं तुभ्यमहं संप्रददे न ममेति ।

इति हस्तिदानविधिः ।

अथाह बौधायनः ।

वाग्विरोधं गुरोः कृत्वा मुखरोगी भवेन्नरः ।
तस्य दानेन विहितः प्रतीकारोऽयमुच्यते ॥
सौवर्णं राजतं ताम्रं पलेनार्द्धपलेन वा ।
कारयेत् करिणं सौम्यं यथाविभवतोऽथवा ॥
तस्यैव कारयेद्दन्तौ शुभ्रेण रजतेन तु ।
पुच्छम्बा मौक्तिकैः कुर्य्याद्रत्नाभ्यामक्षिणी तथा ॥
सम्वेष्ट्य पीतवस्त्रेण गन्धपुष्पाक्षतादिभिः ।
अर्चयेद्धान्यराशिस्थं धान्यं द्रोणाष्टकं मतं ॥
श्रुतवृत्तोपसंपन्नं ब्राह्मणं संयतेन्द्रियं ।
दान्तं कुलीनं धर्म्मिष्ठमनुद्वेगकरं नृणां ॥
आहूय परया भक्त्या वस्त्रालङ्कारभूषणैः ।
पूजयेत् प्रयतो भूत्वा तेनैतत् कर्म्म कारयेत् ॥
समिदाज्यतिलैस्तेन होमं चापि प्रवर्त्तयेत् ॥
अग्निनाग्निं तथाधाय शुक्रं चरति च क्रमात् ।
मन्त्रा एते विनिर्द्दिष्टा इध्म आश्वत्थइष्यते ॥
कृत्वा चैवाप्रणोम्यस्ततोहस्त्यर्चनं भवेत् ।

स्वाचान्तः कर्म्म कृत्वाथ प्रणीतामोचणं तथा ॥
ततः शुक्लाम्बरधरः शुक्लमाल्यानुलेपनः।
तस्मै हुतवते दद्यात् करिणं तं सदक्षिणं ॥
मन्त्रेणानेन विधिवत् प्राङ्मुखाय विशेषतः।
सुप्रतीकगजेन्द्र त्वं सरस्वत्याभिषेचनं ॥
इन्द्रस्य वाहनं शश्वत्सर्व्वदेवैश्च पूजितं।
दानेनानेन दत्तेन मुखरोगं विनाशय ॥

दानमन्त्रः।

ब्राह्मणान् भोजयेदन्ते सार्द्धं भुञ्जीत बन्धुभिः।

इति मुखरोगहरगजदानविधिः।

अथाह वृद्धगौतमः।

पलेन वा तदर्द्धेन तदर्द्धार्द्धेन वा पुनः।
कारयेद्वाहनं हैमं चतुर्दन्तं तु वारणं ॥
दन्ताःस्वर्णमयाःकार्य्या रत्नैर्नानाविधैर्युताः।
सर्व्वाभरणसंयुक्तं करिणं चोपकारकं ॥
यत्तत्सर्व्वं प्रदाने तु तस्य पार्श्वे समाहितः।
उपचारैः षोड़शभिरर्च्चयेद्गन्धपुष्पकैः॥
ततो ब्राह्मणमाहूय सर्व्वशास्त्रार्थकोविदं।
श्रुतवृत्तोपसम्पन्नमनुद्वेगकरं नृणां ॥
भक्त्या संपूज्य वस्त्राद्यैर्होमं तेन च कारयेत्।
मन्त्रैःपौराणिकैः सम्यक् संहिताशास्त्रचोदितैः ॥

चत्वारोदिग्गजा ये च पुष्पदन्तादयश्च ये ।
सार्व्वभौमादयोयेच आहृत्यातोषयामि तान् ॥
समिदाज्यतिलैर्होमो गजस्य प्रीतये भवेत् ।
तस्मै हुतवते सम्यक् दृणिप्रीत्यर्थमाहृतः ॥
मन्त्रेणानेन विधिवद्दद्याद्भक्तिसमन्वितः ।
प्राङ्मुखस्य व्रणोचोदङ्मुखायेन्द्रस्य वाहनं ॥
ऐरावतश्चतुर्द्दन्तो गजानां नायकस्तु यः ।
दिग्दन्तिनां पूज्यतमो व्रणं चपयतु प्रभुः ॥
अनन्तरमनुव्रज्य तमाचार्य्यो मुदान्वितः ।
ब्राह्मणान् भोजयित्वा च स्वयंभुञ्जीत वाग्यतः ॥
एवं कृते व्रणाबाधात् तत्चणादेव सर्पति ।
तेनैव व्रणिभिर्नूनं कार्य्यमारोग्यहेतवे ॥

इति व्रणघ्नगजदानविधिः ।

अथ देवताभ्यो गजदानं ।

शिवधर्म्मात् ।

निवेदयति योनागं भक्त्या स्वर्णाद्यलंकृतं ।
शिवाय पर्व्वदिवसे तस्य पुण्यफलं शृणु ॥
स मत्तैरावतप्रख्यै र्गजैर्युक्तैः सुशोभनैः ।
प्रक्रीडति महायानैः शतसंख्यैरनेकशः ॥
कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानि च

रुद्रलोके गतश्चान्ते भवेदिह सुराधिप ॥
चतुर्युगसहस्रान्ते स्वर्गं प्राप्य नराधिपः।
भवेदिन्द्रसमः श्रीमान् रूपवीर्य्यसमन्वितः॥

इति शिवगजदानं।

गारुड़पुराणे।

योजगन्निधये नागं प्रयच्छति महामतिः।
भद्रजातिसमुद्भूतं पद्मनाभाय शक्तितः।
कुप्यकं बलशोभाढ्यं घण्टाचामरभूषितं॥
वराङ्कुशसंयुक्तं अनेकस्वर्णभूषणम्।
नानामण्डनभूयिष्ठं चारुडिण्डिमडम्बरं॥
कृत्वा विष्णोर्म्महापूजां कार्त्तिकैकादशीदिने।
द्वादश्यामर्पयेत्तं तु देवदेवाय चक्रिणे॥
त्रिलोकीनाथ देवेश सर्व्वभूत कृपानिधे।
गजदानेन तुष्टस्त्वं प्रयच्छ मम वाञ्छितं॥
इत्युच्चार्य्याथ दत्त्वा तं प्रणिपत्य जगत्प्रभुं।
सुरेन्द्रलोकमासाद्य क्रीड़ते कालमक्षयं॥
वर्षार्व्बुदसहस्राणि क्रीड़ित्वा सुचिरं दिवि।
ततोभूर्लोकमासाद्य सार्व्वभौमो नृपोभवेत॥

इति विष्णुगजदानविधिः।

आदित्यपुराणे॥

निवेदयति योनागं भक्त्या स्वर्णाद्यलङ्कृतं।

सूर्य्याय पर्व्वदिवसे तस्य पुण्यफलं शृणु ॥
स मत्तैरावतप्रख्यै र्गजयुक्तैः सुशोभनैः ।
प्रक्रीड़ति महायानैः शतसंख्यैरनेकशः ।
सप्तद्वीपसमुद्रायां क्षितौ नरपतिर्भवेत् ॥
भुक्त्वा तु विपुलान् भोगान् प्रलये समुपस्थिते ।
सूर्य्ययोगं समासाद्य स तत्रैव प्रलीयते ॥

इति सूर्य्यगजदानविधिः ।

अथ दासीदानं ।

तत्र वह्निपुराणे ।

गृहदानं श्रुतं राजन् दासीदानं ततः शृणु ।
तव भक्त्या प्रवक्ष्यामि महासौख्यप्रदायकं ॥
चतुर्णामाश्रमाणां हि गृहस्थः श्रेष्ठ उच्यते ।
गृहस्थाच्च गृहं राजन् सुगृहे तु वरस्त्रियः ॥
अहिरण्यमदासीकमल्पान्नाद्यमगोरसं ।
गृहकृपणवृत्तीनां नरकस्यापरोविधिः ॥
अदण्डवासिकं ग्राममदासीकञ्च यद्गृहं ।
अनाज्यभोजनं यच्च वृथा तदिति मे मतिः ॥
विभ्रमाभरणा दास्यो यद्गृहं समुपासते ।
तत्रास्ते पङ्कजकरा लक्ष्मीः क्षीरोदशायिनी ॥
न तत्रास्ति गृहे शौचं न सुखं व्यावहारजं ।
यत्र कर्म्मकरी नास्ति सर्व्वकर्म्मकरी सदा ॥
किंकराणां कृतं कर्म्म न करोतीह यद्व्रतं ।

यदेका कुरुते दासी गृहस्थेन भृता सती॥
बहुलोकाकुलोग्रामोदासीदासाकुलं गृहं।
बुद्धिर्द्धर्म्माकुला यस्य तस्य चेतः किमाकुलं॥
यस्य भार्य्या गृहे दक्षा दासी कर्म्मण्यनुव्रता।
भृत्याः सत्वोद्यतकरास्त्रिवर्गस्तत्र सिद्ध्यति॥
यद्यदिष्टतमं लोके यच्चास्य दयितं गृहे।
तत्तद्गुणवते देयं तदेवाक्षयमिच्छता॥
एतद्विचार्य्य हृदये दासीं दद्याद्द्विजातये।
स्थिरनक्षत्रसंयुक्ते सौम्ये सौम्यग्रहान्विते।
दानकालं प्रशंसन्ति सन्तः पर्व्वणि वा पुनः॥
अलङ्कृत्य यथाशक्त्या वासोभिर्भूषणैस्तथा।
ब्राह्मणाय प्रदातव्या मन्त्रेण भक्तितस्तथा॥
इयं दासी मया तुभ्यं श्रीमती प्रतिपादिता।
सदा कर्म्मकरी भोग्या यथेष्टं भद्रमश्नुते*॥

इदमिह दानवाक्यं।

ओं अद्य अमुकसगोत्रायेत्यादि इमां दासीं सुवर्णालङ्कारवतीं गन्धपुष्पाद्यलङ्कृतां अक्षयसुखप्राप्तिकामस्तुभ्यमहं सम्प्रददे। न ममेति।

ओं अद्य अमुकसगोत्रायेत्यादि एतद्दासीदानप्रतिष्ठार्थं दक्षिणामेतत् सुवर्णं तुभ्यमहं सम्प्रददे, न ममेति।

पञ्चवर्षाधिका सा तु चत्वारिंशत्समावधिः।

* भोगमश्नुते इति क्वचित्पाठः।

दासी द्विजाय दातव्या दासदानेप्ययं विधिः ।
दत्त्वा क्षमापयेत्पश्चाद्ब्राह्मणं वस्त्रकाञ्चनैः ॥
अनुगत्वा तु सीमायां द्विजं विसर्जयेत् ततः ।
एवं दत्त्वा महाराज कृतकृत्यो भवेत्पुमान् ॥
इह लोके परे चैव सप्तजन्मान्यखण्डितः ।
गृहकर्म्मकरीं दद्यात्तरुणीं रूपशालिनीं ।
बहुद्रव्योपसंयुक्तां ग्रामवेश्मसमन्वितां ॥

दासीं समीक्ष्य बहुशो गृहकर्म्मदक्षां
यो ब्राह्मणाय कुलशीलवते ददाति ।
विद्याधराधिपतिभिस्त्वभिपूजितोऽसौ
मर्त्यः प्रयाति स्वजनैः सह विष्णुलोकं ॥

कूर्म्मपुराणं ।

दासीं दद्याद्यथाशक्ति मूल्येनालङ्कृतां शुभां ।
सुवर्णरजतैः सार्द्धं विधिवद्दक्षिणायुतां ॥
वित्तानुसारात्तां दत्त्वा विप्राय गृहमेधिने ।
मोदतेऽप्सरसां लोके यावत्कल्पशतत्रयं ॥

इति दासीदानविधिः ।

अथ कालोत्तरे ।

योऽलंकृत्य स्त्रियं शर्भाकृत्तमां विनिवेदयेत् ।
सोऽश्वमेधस्य यज्ञस्य फलं शतगुणं लभेत् ॥

सुविनीतां स्त्रियं दासीं भृतकार्थ्यं निवेदयेत्।
नरमेधस्य यज्ञस्य फलं शतगुणं लभेत्॥

इति शिवाय दासीदानविधिः।

अथ रथदानं।

कूर्म्मपुराणे।

रथं चतुर्व्वलीवर्द्दैरूढं धान्यावृतन्त्रिधा।
वित्तानुसारात् सर्व्वैश्च रथोपकरणैर्युतं।
सदक्षिणञ्च विप्राय दत्त्वा शिवपुरं व्रजेत्॥

धान्यावृतमिति,

अष्टादशधान्यानि परिभाषायां व्याख्यातानि, त्रिधेति त्रिहिरकसुवर्णदक्षिणानुसारादुत्तम-मध्यम-कनिष्ठ-भेदेन-त्रैविध्यं रथोपकरणानि युगयोक्त्रप्रतोदवरत्रादीनि।

तत्र दानवाक्यं।

अद्य अमुकसगोत्रायेत्यादि चतुर्व्वलीवर्द्दैर्युक्तं अष्टादशधान्यपरिवृतं सकलस्वोपस्करयुतं एतं रथं विश्वकर्म्मदैवतं निरत्ययस्वर्गादिसुखकामस्तुभ्यमहं सम्प्रददे न ममेति।

अमुकसगोत्रायेत्यादि एतद्रथदानप्रतिष्ठार्थं दक्षिणामिदं सुवर्णं तुभ्यमहं सम्प्रददे न ममेति।

दानमन्त्रस्तु।

स्कन्दपुराणे।

रथाय रथनाथाय नमस्ते विश्वकर्म्मणे।
विश्वभूताय नाथाय अरुणाय नमो नमः॥

गारुडपुराणे।

गन्त्रीं तुरङ्गसंयुक्तां योददाति द्विजातये।
सर्व्वकामसमृद्धात्मा स राजा जायते भुवि॥

गन्त्री नाम रथविशेषः।

सचक्राख्यां युगोपेतां मत्तवारणभूषितां।
आस्तीर्णवृत्तास्तरणां योक्त्रयुक्तां सकूवरां॥
युक्तां चतुर्भिस्तुरगैर्द्वाभ्यां वा शक्तितो युतां।
वलीवर्द्दयुताञ्चापि द्विजाय प्रतिपादयेत्॥
पुण्येह्नि विप्रमाहूय कृत्वा वस्त्रादिभूषितां।
सदक्षिणां यथाशक्त्या दद्यात् प्रयतमानसः॥

दानमन्त्रः।

गन्त्रीमिमां प्रयच्छामि विश्वकर्म्माधिदैवतां।
दानेनानेन भगवान् प्रीयतां मे परः पुमान्॥
एवं प्रदाय विधिवद्गन्त्रीं मन्त्रेण मानवः।
विमानेनार्कवर्ण्णेन देववद्दिवि मोदते॥
इह लोके भवेद्राजा वलवान् धर्म्मवत्सलः॥

महाभारते।

प्रदानं सर्व्वदानानां शकटस्य विशिष्यते॥
एवमाह महाभागः शाण्डिल्यो भगवान् ऋषिः।
शकटं दम्यसंयुक्तं योदद्यात्तु द्विजातये।
तस्य स्वर्गे विमानन्तु सर्व्वहेममयं शुभं॥
दिव्याङ्गनाभिराकीर्णं सर्व्वरत्नविभूषितं।
उपतिष्ठति विप्रेन्द्र सर्व्वकामफलप्रदं॥

इति रथदानविधिः।

अथ रथदानप्रसङ्गेन शिविकादानमुच्यते॥

वह्निपुराणे।

वसिष्ठ उवाच।

शृणु चान्यत् महीपाल महादानमनुत्तमं।
येन वै दत्तमात्रेण मुच्यते नरकार्णवात्॥
मार्गशीर्षे शुभे पक्षे समुपोष्य हरेर्दिनं।
माघफाल्गुनयोर्व्वापि वैशाखस्य शरत्सु च।
द्वादश्यां हरिमभ्यर्च्य कलशोपरिसंस्थितं॥
शङ्ख-शार्ङ्ग गदा-चक्र-धरं शक्त्या हिरण्मयं।
शिविकां चक्रवंशोत्था-मृजुदारुमयीमथ॥
आनीय सन्निधिं विष्णोः शुभच्छत्रसमन्वितां।
सम्भूष्य च स तां भूषां जागरं तत्र कारयेत्॥

विद्याभिजनसम्पन्नं विदग्धं* शास्त्रवित्तमं ।
आज्ञासारं शुचिन्दक्षं कलत्रापत्यभूषितं ॥
प्रातः सभार्य्यमभ्यर्च्य वासोभिः कर्णभूषणैः ।
उपान-च्छुरिका-खड्गपट्ट-कञ्चक-वेणिका ॥
आदर्शस्थगिकापानपात्रञ्च कांस्यभाजनं ।
चत्वारो वृषभा देया धेनवश्च सुलक्षणाः ॥
शिविकावाहनानान्तु तथैव छत्रधारिणः ।
वृत्तिर्देया तथान्नञ्च वर्षार्हं ब्राह्मणस्य च ॥
वर्षे वर्षे पुनर्देयं ब्राह्मणस्यैतदेव तु ।
वृत्तिरेव त्वसम्पत्तौ वर्षे वर्षे पि वार्षिकी ॥
इहामुत्रातपत्राणं कुरु केशव मे प्रभो ।
छत्रन्त्वत्प्रीतये दत्तं ब्राह्मणाय मया शुभं ॥
देव देव जगन्नाथ विश्वात्मन् दत्तयानया ।
प्रभो शिविकया देव प्रीतोभव जनार्द्दन ॥

इति दानमन्त्रः ।

दत्त्वा तु ज्ञानविदुषे सपत्नीकाय पुत्रिणे ।
सुरापःस्तेनकृत् सङ्गी ब्रह्महा गुरुतल्पगः ॥
शिविकादानमाहात्म्यात् मुच्यते पातकात् स्फुटं ।
पितृपक्षं मातृपक्षं पत्नीपक्षं तथैव च ।
आत्मानं बन्धुपक्षञ्च तारयेन्नरकार्णवात् ॥

* विद्वांसमिति क्वचित् पाठः ।

भुक्त्वा तु विपुलान् भोगानिहामुत्रसुखप्रदान् ।
सपत्नीकः सपितृको विष्णुसायुज्यमश्नुते ॥

इति शिविकादानविधिः ।

अथ क्रमप्राप्तस्य महादानस्यातिदानप्रकरणे निरूपितत्वात् रथदानानन्तरं गृहदानमारभ्यते ।

तत्र सम्वर्त्तः ।

गृहदाता सुखी प्राज्ञो विलक्षणः सर्व्ववस्तुषु ।
प्रज्ञा-सुख-विवृद्ध्यर्थं पात्रे-देयमतोगृहं ॥

बृहस्पतिः ।

रसान्नोपस्करयुतं गृहं विप्राय योऽर्पयेत् ।
न हीयते तस्य वंशः स्वर्गं प्राप्नोत्यनुत्तमं ॥

वेदव्यासः ।

सर्व्वकामैः सुसम्पूर्णं दत्त्वा वेश्म हिरण्मयं ।
मुद्गलाय गतः स्वर्गं शतद्युम्नो महामतिः ॥
सर्व्वरत्नं वृषाः दर्भा युवानोऽश्वाः प्रियाःस्त्रियः ।
रम्यमावसथञ्चैव दत्त्वामुं लोकमास्थितः ॥

महाभारते ।

नैवेशिकं सर्व्वगुणोपपन्नं
ददाति यश्चैव नरो द्विजाय ।

स्वाध्यायचारित्रगुणाय राजं-
स्तस्यापि लोकाः कुरुजाङ्गलेषु ॥
बीजैरशून्यं शयनैरुपेतं
दद्याद्गृहं यः पुरुषो द्विजाय ।
मुख्याभिरामं बहुरत्नपूर्णं
लभेदधिष्ठानवरं स राजन् ॥

तथा । यस्तु नैवेशिकं शुद्धं ब्राह्मणाय प्रयच्छति ।
त्रिंशत्कोट्योऽथ वर्षाणां स्वर्गलोके महीयते ॥
ततोवतीर्णः कालेन मानुषं लोकमागतः ।
नगराधिपतिः श्रीमान् राजराजोभवेत् ध्रुवं ॥

आह व्यासः ।

गृह-न्दीपप्रभोद्योत-शयना-सन-भाजनैः ।
उपस्करैश्च सम्पूर्णं सर्व्वधान्यप्रपूरितं ॥

सर्व्वधान्या-न्युक्तानि, उपस्कराः मञ्चक-तूलिको-पधाना-सन कांस्यादिभाजन-दीपिका-पेषणयन्त्रधान्यादिमानभाण्ड-दण्डो-लूखल-मूषल-मृण्मयस्थाली-कलश-वारिधानी-शूर्प-व्यजन-च्छत्रो-पानह-खड्गासिपुत्रिका-सम्मार्जनी-गोबलीवर्द्दाश्च महिषी-तण्डुल-घृत-तैलपूर्णपात्र-दात्र-वस्त्र-चन्दनादिगन्धद्रव्य-ताम्बूलोपकरण-काष्ठ-चुल्ली-दास-दासीप्रभृतयः ।

ब्राह्मणाय दरिद्राय सुशीलाय ददाति यः ।
तथाध्ययनशीलाय शृणु तस्यापि यत्फलं ॥
देवैः पितृगणैर्युक्तो ब्रह्मर्षिमनुजर्षिभिः ।

हृष्टा वर्षशतान्येव दशतिष्ठन्त्यनामयाः॥
तस्मादिह समागत्य समृद्धोपाधिपोभवेत्।
बहुप्रदो बहुधनो द्विजो वा वेदपारगः॥

गरुड़पुराणे।

ऐष्टकं दारवं वापि मृण्मयं वापि शक्तितः।
सर्व्वोपस्करणोपेतं योदद्याद्विपुलं गृहं॥
ब्राह्मणाय दरिद्राय विदुषेच कुटुम्बिने।
क्रीड़ित्वा सुचिरं स्वर्गे मानुष्यं लोकमागतः।
भवत्यव्याहतैश्वर्य्यः सर्व्वकामसमन्वितः॥

कूर्म्मपुराणे।

शक्तितः सर्व्ववित्तेन पूर्णं गृहमपि त्रिधा।
सदक्षिणं द्विजे दत्त्वा ब्रह्मलोकं व्रजेन्नरः॥

'सर्व्ववित्तेन, सर्व्वोपस्करेणेत्यर्थः।
'त्रिधा, पूर्व्ववदुत्तम-मध्यमा-दिभेदेन।
ब्रह्मवैवर्त्तवह्निपुराणयोः,

न गार्हस्थात्परोधर्म्मो नैव दानं गृहात्परं।
नानृतादधिकं पापं न पूज्यो ब्राह्मणात्परः॥
धनधान्यसमायुक्तं कलत्रापत्यसङ्कुलं।
गोगजाश्वगणाकीर्णं गृहं स्वर्गाद्विशिष्यते॥
यथा मातरमाश्रित्य सर्व्वे जीवन्ति जन्तवः।
एव गृहस्थमाश्रित्य सर्व्वे जीवन्ति चाश्रमाः॥

धर्म्म-मर्थश्च कामश्च मिश्रा स्व प्रथितं यशः।
प्राप्तकामैर्नरै राजन् सदा सेव्यो गृहाश्रमः॥
न गृहेण विना धर्म्मोनार्थकामौ सुखन्न च।
लोकयात्रा यशः स्वर्गः प्राप्यते राजसत्तम॥
न स्वर्गे नापवर्गेषु नचान्येष्वपि धामसु।
प्रसार्य्य पादौ यद्रात्रौ स्वगृहे स्वपतां सुखं॥
दिनानि तानि गण्यन्ते यानि यान्ति गृहाश्रमे।
अपि शाकम्पचानस्य स्वगृहे परमं सुखं॥
इति मत्वा महाराज कारयित्वा सुशोभनं।
भवनं ब्राह्मणे देयं महतीं भूतिमिच्छता॥

ब्रह्माण्डपुराणे।

गृहं कृत्वा शुभस्तम्भं बहुचित्रं सुशोभनं।
सप्राकारप्रतोलीकं कपाटार्गलयन्त्रितं॥
सुधावलिप्तं चतुरं विस्तीर्णगणशोभितं।
शुभप्रवेश-निष्काश-मुपकार्य्यादिसंयुतं॥
मत्तवारणशोभाढ्यं गवाक्षादिविभूषितं।
दत्त्वा द्विजातिमुख्याय न शोचति कृताकृते॥

मत्स्यपुराणे।

पक्केष्टकामयं कृत्वा शैलजं वापि दारुजं।
मृण्मयं वापि भवनं शुभलक्षणसंयुतं॥
प्रभूतबलिपुष्पाढ्यं धेन्वा चैव समन्वितं।

अर्जुनैः सरलैः सालैरन्यैश्चैव मनोरमैः ॥
तिमिषैः सर्जवृक्षैश्च कदम्बैः सह वञ्जुलैः।
शुभस्थानसमुत्पन्नैर्वास्तुलक्षणसंयुतं ॥
स्थापनञ्च यथान्यायं भूमिश्चैव तु शोभनं।
मार्जनं सिञ्चनं चैवं सन्तानीयेन कारयेत् ॥
मङ्गल्यानुपहारांश्च वास्तुविद्योदितांस्तथा।
देवतापञ्चकं तत्र चत्वारिंशत्समन्वितं।
पूजयित्वा यथान्यायं ततोदद्याद्गृहं गृही ॥

वास्तुलक्षणं, पञ्चचत्वारिंशद्देवता-

क्रमश्च तस्मिन्नेव पुराणे।

एकाशीतिपदङ्कृत्वा रेणुभिः कनकेन च।
पश्चात्पिष्टेनानुलिम्पेत् सूत्रेणालोड्य सर्व्वतः ॥
दशपूर्व्वापरा रेखा दश चैवोत्तरायताः।
सर्व्ववास्तुविभागेषु विज्ञेया न*वका न च ॥
एकाशीति पदङ्कृत्वा वास्तुवित्सर्व्ववास्तुषु।
पदस्थान् पूजयेद्देवांस्त्रिंश-त्पञ्चदशै-व तु।
द्वात्रिंशद्वाह्यतः पूज्याः पूज्याश्चान्तस्त्रयोदश ॥

अत्रैवं प्रयोगः।

पूर्वन्तावदमेध्य-श्मशाना-दिरहितामनूषरां शुभवर्णगन्धादि-लक्षणान्वितां चतुरस्रां प्रागुदक्प्रवणां भूमिं परीक्ष्य गोमयादि-

* नरकायचेति क्वचित्पाठः।

नोपलिप्य तत्र सुधालिप्तानि समान्तरालानि दशसूत्राणि पातयेत् तथैव दश दक्षिणोत्तरायतानि ततश्च नवकोष्ठकासु नवपङ्क्तिषु सर्व्वमेकाशीतिपदं मण्डलं सम्पद्यते, तत्र मध्यमकोष्ठनवकमुत्सृज्य नवकमेव पदं विदध्यात् तत्पूरस्थितञ्च पार्श्वस्थितकोष्ठद्वयाभ्यामेकीकुर्य्यात् आग्नेय्यान्त्वेकमेव एवं दक्षिणपश्चिमोत्तराणि त्रीणि त्रीण्येकीकृत्य कोणेष्वेकैकं परिशिष्य ब्रह्मस्थानस्य परिधिं निष्पादयेत् बाह्यतश्चेशानादिकोणेष्वेककोष्ठकान्येव चत्वारि चत्वारि पदानि परिशिष्य प्राच्यादिदिक्षु कोष्ठकानि श्रेणीभूतानि पञ्च पञ्च पदानि विदध्यात् ततश्च पञ्चचत्वारिंशत्पदानि निष्पद्यन्ते ।

मध्ये नवपदस्त्वेकः चत्वारस्त्रिपदाः स्मृताः ।
विंशतिस्त्वेकपदिकास्तावन्तो द्विपदाःस्मृताः ॥
एवं प्रतिष्ठिता देवाश्चत्वारिंशच्च पञ्च च ।
नामतस्तान् प्रवक्ष्यामि स्थानानि च निबोधत ॥
ईशानकोणादिसुरान् पूजयेत् क्रमशोन च ।
शिखी चैवाथ पर्जन्यो जयन्तः कुलिशायुधः ॥
सूर्य्यः सत्योभृशश्चैव आकाशोवायुरेव च ।
पूषाथ वितथश्चैव गृहक्षतयमावुभौ ॥
गन्धर्वो भृङ्गराजश्च* मृगः पितृगणास्तथा ।
दौवारिकोऽथ सुग्रीवः पुष्पदन्तश्च वारुणः ॥
असुरः†श्चैव शोषश्च पापयक्ष्मावरोगकः ।

* भृङ्गराजश्चेति क्वचित्पाठः ।
† असुरः शोषपापौच रोगोऽपि मुख्यएवच इति क्वचित् पाठः ।

भल्लाटसोमनागौ च अदितिश्च दितिस्तथा ॥
फणावान् मुख्यभल्लाटौ सोमनागौ तथापरौ।
अदितिश्च दितिश्चैव स्थाप्याः प्रणवनामभिः ॥
बहिर्द्वात्रिंशदेते तु तदन्तश्चतुरः शृणु।
आपश्चैवाथ सावित्रो जयो रुद्रस्तथैव च।
अर्य्यमा सविता चैव विवस्वान् विबुधाधिपः ॥
मित्रोऽथ राजयक्ष्मा च तथा पृथ्वीधरः क्रमात्।
अष्टमश्चापवत्सस्तु परितो ब्रह्मणः स्मृताः ॥

अत्र तावद्द्वात्रिंशत्पदे बहिःपरिधौ प्रथममीशानकोणे शिखिनं संस्थाप्य प्रदक्षिणक्रमेण पर्जन्यादिदेवान् स्थापयेत् तदन्तश्चतुर इति, पर्जन्यात् पश्चिमे एककोष्ठके पदे आपः, आकाशात् पश्चिमे सावित्रः दौवारिकात् पूर्व्वस्मिन् जयः, आपः पूर्व्वस्मिन् रुद्र इति बहिः परिधिरन्तश्चतुरो देवान् स्थापयेत् परितो ब्रह्मण इति, मध्यपदस्थितस्य ब्रह्मणः पुरस्तादर्य्यमणं संस्थाप्य प्रदक्षिणक्रमेणाष्टौ देवान् स्थापयेत्।

अथोपसंहरति।

आपश्चैवापवत्सश्च पर्जन्योऽग्निर्दितिस्तथा।
पदिकानान्तु वर्गोऽयमेवं कोणेष्वशेषतः ॥
तन्मध्ये तु बहिर्व्विंशद्द्विपदास्ते तु सर्व्वतः।
अर्य्यमा च विवस्वांश्च मित्रः पृथ्वीधरस्तथा।
ब्रह्मणः परितो दिक्षु त्रिपदाश्चैव सर्व्वतः ॥

पद्रिकानामित्यादि ।

अयमेकपदानां पञ्चानां देवानामीशानकोणे वर्गः संपद्यते एवमाग्नेयादिकोणेष्वपि एकपदाः पञ्च देवता भवन्ति तन्मध्ये वह्निरिति । कोणमध्ये वाह्यपरिधौ विंशतिर्द्विपदा भवन्ति अब-माद्यश्चत्वारस्त्रिपदा मध्ये ब्रह्मा नवपद इति एवं पञ्चचत्वारिंश द्देवान् गन्धमाल्यादिभिः पूज्य वास्तुविद्योक्तप्रकारेण गृहारम्भं कुर्य्यात् ।

तस्मिन्नेव पुराणे ।

वास्तौ परिचिते सम्यग्वास्तु गेहे विचक्षणः ।
वास्तूपशमनं कुर्य्यात्समिद्भिर्बलिकर्म्म च ॥
जीर्णोद्धारे तथाद्याने तथाच नववेश्मनि ।
नवप्रासादभवने प्रासादपरिवर्त्तने ॥
द्वाराभिवर्त्तने तद्वत् प्रासादेषु गृहेषु च ।
वास्तूपशमनं कुर्य्यात् पूर्व्वमेव विचक्षणः ॥
एकाशीतिपदं लिख्य वास्तुमध्ये तु पिष्टकैः ।
होमस्त्रिमेखले कार्य्यः कुण्डे हस्तप्रमाणके ॥
यवैःकृष्णतिलैश्चैव समिद्भिः क्षीरवृक्षजैः ।
पालाशैः खादिरैर्व्वापामार्गोदुम्बरसंभवैः ॥
कुशदूर्वामयैर्वापि मधुसर्पिःसमन्वितैः ।
कार्य्यस्तु पञ्चभि र्विप्रैर्व्विल्वबीजैरथापि वा ॥
होमान्ते भक्ष्यभोज्यैस्तु वास्तुदेशे वलिं हरेत् ।
तद्वद्विशेषनैवेद्यमिदं दद्यात्क्रमेण तु ।
ईशकोणे घृताक्तान्नं शिखिने विनिवेदयेत् ॥

ओदनं सोत्पलं दद्यात्पर्जन्याय घृतान्वितं।
जयन्ताय ध्वजं पीतं पैष्टं कूर्म्मञ्च विन्यसेत् ॥
इन्द्राय पञ्चरत्नानि पैष्टञ्च कुलिशन्तथा।
वितानकञ्च सूर्य्याय धूपं सक्तुं तथैव च ॥
सत्याय घृतगोधूमं मत्स्यान-दद्याद्भृशाय च।
सष्कुल्यश्चान्तरिक्षाय दद्यात् सक्तूंश्च वायवे ॥
लाजाः पूष्णे तु दातव्या वितथे चणकौदनम्।
गृहक्षताय मध्वन्नं यमाय पिशितौदनं ॥
गन्धौदनञ्च गान्धर्वे भृङ्गे मेषस्य जिह्विकां।
दौवारिके दन्तकाष्ठं पैष्टं कृष्णावलिं तथा।
मृगाय यावकं दद्यात् पितृभ्यः कृशरांस्तथा ॥
सुग्रीवे पूपकान्दद्यात् पुष्पदन्ताय पायसं।
कुशस्तम्बेन संयुक्तं तथापद्मञ्च वारुणे ॥
पैष्टं हिरण्मयं दद्यादसुराय सुरासवं।
घृतौदनञ्च शोषाय यवान्वै पापयक्ष्मणे ॥
घृतलड्डुकांस्तु रोगाय नागपुष्पं फणावते।
भक्ष्यं मुख्याय दातव्यं मुद्गौदनमतः परं ॥
भल्लाटस्थानके दद्यात् सोमाय मधुपायसं।
नागाय शालिकं पिष्टं अदित्यै लोपिकास्तथा ॥
दितेस्तु पूरिकां दद्यादित्येवं बाह्यतोवलिः।
क्षीरमापाय दातव्यं आपवत्साय वै दधि ॥
सावित्रे लड्डुकान्दद्यात् समरीचं कुशोदकम्।
सवितु र्गुडपूपांश्च जयाय घृतचन्दनं ॥

विवस्वते पुनर्दद्याद्रक्तचन्दनपायसं ।
हरितालोल्वनं दद्यादिन्द्राय घृतसंयुतं ॥
गुड़ोदनन्तु मित्राय रुद्राय घृतपायसं ।
आमपक्वन्तथा मांसं देयं स्याद्राजयक्ष्मणे ॥
पृथ्वीधराय मांसानि कुष्माण्डानि च दापयेत् ।
शर्करापायसन्दद्यादर्य्यम्णे पानमेव तु ॥
पञ्चगव्यं यवांश्चैव तिलाचतहविश्चरुं ।
भक्ष्यं भोज्यञ्च विविधं ब्रह्मणे विनिवेदयेत् ॥
एवं सम्पूजिता देवाः शान्तिं कुर्व्वन्ति ते सदा ।
सर्व्वेषां काञ्चनं दद्याद्ब्रह्मणे गां पयस्विनीं ॥
राक्षसानां बलिर्देयो मांसोदनसमन्विता ।
ईशाने नागमातृभ्यश्चरुञ्च विनिवेदयेत् ॥
मांसोदनं सरुधिरं हरिद्रौदनमेव च ।
आग्नेयीन्दिशमाश्रित्य विदार्य्यै विनिवेदयेत् ॥
दध्योदनं सरुधिरं मत्स्यखण्डैश्च संयुतं ।
पीतरक्तं बलिन्दद्यात् पूतना या तु राक्षसी ॥
वायव्ये पापराक्षस्यै मत्स्यं मांसं सुरासवं ।
पायसञ्चापि दातव्यं स्वनाम्ना सर्व्वतः क्रमात् ॥
नमस्कारानुयुक्तेन प्रणवाद्येन सर्व्वतः ।
प्राक्‌मांस्यौदनं स्कन्दाय दक्षिणस्यां तथापरं ॥
कृशरापालिकादानमर्य्यम्णे मूलमन्त्रतः ।
मांसं सरुधिरं दद्यात् जृम्भकाय तु पश्चिमे ।
पिलिपिच्छये रक्ताक्तपिष्टान्नमुत्तरतोऽपि च ॥

भक्ष्यभोज्यैर्हिंगीशानां तन्मन्त्रैश्च बलिं हरेत्।
सर्व्वासां पायसं साज्यं यथोक्तभक्ष्यसम्भवे॥
तदभावे दर्भपुष्पैर्दध्यक्षतघृतैर्बलिः।
गोमयेनोपलिप्तायां मण्डलान् पूर्व्वतःक्षितौ॥
गन्धादिपूर्व्वकं सर्व्वं भौतिकञ्च बलिं हरेत्।
भूतेभ्योऽथ पितृभ्यश्च राक्षसेभ्यो नमो नमः॥
पिशाचेभ्योऽथ मातृभ्यो गणेभ्यश्च पृथक् पृथक्।
दिव्यान्तरिक्षभौमेभ्यः प्रणवाद्यनमोन्तकैः॥
ततः सर्व्वौषधिस्नानं यजमानस्य कारयेत्।
द्विजांस्तु पूजयेद्भक्त्या ये चान्ये गृहमागताः।
एतद्वास्तूपशमनं कृत्वा कर्म्म समाचरेत्॥
प्रासाद-भवनो-द्यान-प्रारम्भे परिवर्त्तने।
पुरवेश्मप्रवेशेच सर्व्वदोषोपशान्तये॥
वास्तूपशमनं कृत्वा ततः सूत्रेण वेष्टयेत्।
रक्षोघ्नपावमानेन सूक्तेन भवनादिकं॥
नृत्यमङ्गलवाद्यैश्च कुर्य्याद्ब्राह्मणवाचनं।
अनेन विधिना यस्तु प्रतिसम्वत्सरं बुधः॥
गृहे वायतने कुर्य्यान्न स दुःखमवाप्नुयात्।
नच व्याधिभयन्तस्य नच बन्धुधनक्षयः।
जीवेद्वर्षशतं स्वर्गे कल्पमेकं वसेन्नरः॥

अथ ब्रह्मवैवर्त्ते।

कारयित्वा गृहान् रम्यान् ऋतुवत्सरसंख्यया।

भुवनाष्टादशत्रिंशत्तत्तच्चत्वसंख्यया ॥
शक्त्या तद्द्विगुणान्येव शतं यावत्सहस्रकं।
कुडास्तम्भगवाक्षाद्यान्विचित्रान् बहुभूमिकान् ॥
सप्राकारप्रतोलीकान् कपाटार्गलयन्त्रकान्।
सुधाधवलितान् रम्यान् विस्तीर्णाङ्गणवाटकान् ॥
सप्तधातुमयैर्भाण्डैः पञ्चरत्नैः समन्वितैः।
चर्म्मकाष्ठमयैर्हस्तिदन्तवस्त्रमयैस्तथा ॥
मृण्मयोपस्कराकीर्णान् वस्त्रोपकरणान्वितान्।
सर्व्वोपस्करसम्भारशणवल्कलराजितान् ॥
राजितांस्तृणपाषाणैः काष्ठसञ्चयसंयुतान्।
सर्व्वधान्यसमायुक्तैः कुशूलैश्च विराजितान् ॥
गो-महिष्या-श्व-वृषभ-प्रेष्य-दासीजना-न्वितान्।
चित्रारामजलासन्नान् दृढान् हर्म्यवरान् शुभान् ॥
सम्पूर्णान् सप्तधान्यैश्च घृततैलगुड़ादिभिः ॥
तिल-तण्डुल-शाली-क्षु-माष-गोधूम-सर्षपैः।
प्रियङ्गुयव-नीवार-निष्पाव-राजमुद्गकैः ॥
मसूर-चणका-वर्त्तसकुष्ठककुलोत्थकैः।
लवणा-र्द्रक-खर्ज्जूर-द्राक्षा-जीरक-धान्यकैः ॥
हिङ्गु-कुङ्कुम-कर्पूर-स्नानद्रव्यैः सचन्दनैः।
रूप्योपस्करपर्य्यङ्कतूलीगण्ड.पधानकैः ॥
चुल्लीच्छेदन-मन्थान-भद्रासन-कदुत्थकैः।
पिठरो-लूखल-स्थाली-सूर्पदर्पण-यन्त्रकैः।
मुषला-सि-कृपाणी-घुदण्ड-कोदण्ड-मुद्गरैः ॥

गृहटतापिकादर्वीदृषद्गोष्टकहस्तकैः।
चरकालकलोहीन्द्रदीपिकाग्निष्टिका घटी॥
कुण्डनी पेषणी तद्वदुदकुम्भप्रमार्जनी।
मञ्जूषालिञ्जरान्दोलमुख्योपस्करसंयुतान्।
शक्त्या स्वर्णसहस्रेण शतेनार्द्धेन संयुतान्॥
यथाशक्त्या रूप्ययुतान् कृतान् निर्म्मलचेतसा।
इत्येवमादिसम्पूर्णान् गृहान् दद्याद्द्वितार्तिषु॥

वह्निपुराणे।

कर्त्तुश्चन्द्रबलोपेते स्थिरनक्षत्रसंयुते।
शुभेऽह्नि विप्रकथिते दानकालः प्रशस्यते॥
शुक्लपक्षे तृतीयायां पूर्णिमायामथापि वा।
एवंसंभृतसम्भारं गृहं कृत्वा द्विजोत्तमान्।
कुलशीलसमायुक्तान् शतसंख्यान्निमन्त्रयेत्॥
अधीतवेदशास्त्रज्ञान् पुराणस्मृतिपारगान्।
गृहधर्म्मरतान् दान्तान् निस्वान् बहुकुटुम्बिनः।
निराश्रयांस्तथा राजंस्तेभ्यो दत्तं महाफलं॥
अलङ्कृत्य सपत्नीकान् वस्त्राभरणकुण्डलैः।
कृत्वाग्नियजनं भूयो वास्तुं पूज्य विधानतः॥
समुच्चरन्निदं दाता विदधीत गतस्मयः।
जगदीशो गृहावासो गोविन्दः प्रीयतामिति।

ब्रह्मवैवर्त्ते।

गृहाङ्गणे कारयित्वा कुण्डमेकं समेखलं।

गृहयज्ञः प्रकर्त्तव्यस्तुष्टिपुष्टिकरः सदा ॥

गृहयज्ञविधानन्तु, व्रतखण्डे विलोकनीयं ।

रक्षोघ्नानि च सूक्तानि पठेयुर्ब्राह्मणास्ततः ।
वास्तोः पूजा प्रकर्त्तव्या दिक्पालानां बलिं क्षिपेत् ॥
ततः पुण्याहघोषेण ब्राह्मणास्तेषु वेश्मसु ।
प्रवेशयित्वा शय्यासु सभार्य्यासूपवेशयेत् ॥
यजमानस्ततः प्राज्ञः शुक्लाम्बरधरः शुचिः ।
यद्यस्य विहितं पूर्व्वं तत्तस्मै प्रतिपादयेत् ॥

अत्रेदं दानवाक्यं ।

ओं अद्य अमुकसगोत्रायेत्यादि इदं गृहं शयनासनभाजनोपस्करयुतं सर्व्वधान्यप्रपूरितं सर्व्वदैवतं अमुककामस्तुभ्यमहं सम्प्रददे नममेत्युक्ता इदं गृहं गृहाणेत्यादिवक्ष्यमाणमन्त्रं पठेत् ।

ओं अद्यामुकसगोत्रायेत्यादि एतद्गृहदानप्रतिष्ठार्थं दक्षिणामिदं हिरण्यन्तुभ्यमहं सम्प्रददे न ममेति ।

दक्षिणासंख्या तु, शक्त्या स्वर्णसहस्रेणेत्यादिना दर्शितैव । प्रतिग्रहीता स्वस्तीत्युक्ताकोदादितियजुर्वेदप्रसिद्धं मन्त्रमुदाहरेत् ।

इदंगृहं गृहाण त्वं सर्व्वोपस्करसंयुतं ।
तव विप्र प्रसादेन ममास्त्वभिमतं फलं ॥
एवमेकैकशो दत्त्वा प्रणिपत्य समर्पयेत् ।
स्वस्तीति ब्राह्मणैर्वाच्यं कोदादितिच पूजितैः ॥

बृहस्पतिस्मृतौ पुनरयं मन्त्रः ।

गृहं मम विभूत्यर्थं गृहाण त्वं द्विजोत्तम ।

प्रीयतां मे जगद्योनिर्व्वास्तुरूपी जनार्द्दन॥

मत्स्यपुराणे।

प्राप्ते दानदिने कार्य्यमैशान्यां हस्तसंमितं।
चतुरस्रं समं कुण्डमेखलायोनिभूषितं॥
पूर्व्वोत्तरे हस्तमिता च वेदी
गृहादिदेवेश्वरपूजनाय।
अर्च्चार्च्चनं ब्रह्मशिवाच्युतानां
सूर्य्यस्य कार्य्यं फलपुष्पगन्धैः॥
ब्रह्मादिप्रतिमालक्षणमुक्तं तुलापुरुषे।
द्वारेषु कार्य्याणि च तोरणानि
पत्रैरपि क्षीरवनस्पतीनां।
मध्येव संस्थाप्य च पूर्णकुम्भं
स्रग्गन्धधूपाम्बररत्नयुक्तं॥
गृह्योक्तेन विधानेन कृत्वाचाग्निमुखं ततः।
गव्येन पयसा दिव्यं स्थालीपाकं चरुं श्रपेत्॥
ततश्च तस्यैव चरुं जुहोमि
मध्यस्थिताभ्यो गृहदेवताभ्यः।
बलिञ्च सम्यग्विधिसंप्रयोगात्
क्षीरेण धारापरितस्तु दद्यात्॥
ब्राह्मणं अर्च्चयेत्पूर्व्वं परितुष्टं क्षमापयेत्।
शय्यां दक्षिणभागे तु सोपधानां सदीपिकां।
सितवस्त्रैश्च संछन्नां लक्ष्मीनारायणान्वितां॥

लक्ष्मीनारायणलक्षणं देवतादानप्रकरणे लक्ष्मीनारायणदाने, वक्ष्यते, तद्रूपञ्च सुवर्णमयं यथाशक्ति निर्माय,

सिताम्बरं कुण्डलहेमभूषितं
केयूर-कण्ठाभरणा-भिरामं ।
पत्नीसमेतं च करे गृहीत्वा
दाता पठेन्मन्त्रमिमं गृहस्थः ॥
एह्येहि नारायण दिव्यरूप
सर्व्वामरैर्व्वन्दितपादपद्म ।
शुभाशुभानन्दसुधाम धीर
लक्ष्मीयुतस्त्वं हि गृहं गृहाण ॥

नमः कौस्तुभनाथाय हिरण्यकवचायच ।
क्षीरोदार्णवसुप्ताय जगद्धात्रे नमो नमः ॥
नमोहिरण्यगर्भाय जगन्नाथाय वै नमः ।
चराचरस्य जगतो गृहभूताय वै नमः ॥
भूर्लोकप्रमुखालोकास्तव देहे व्यवस्थिताः ।
नन्दन्ति यावत्कल्पान्तं तथा तस्मिन् भवान गृही ॥
त्वत्प्रसादेन देवेश पुत्रैः पौत्रैर्युतोगृही ।
पञ्चयज्ञक्रियायुक्तो वसेदाचन्द्रतारकं ॥
एवमुक्ता तु देवेशं सपत्नीकं द्विजोत्तमं ।
तिलप्रस्थोपरिस्थायां शय्यायामुपवेश्य च ॥
वदेदिदं ततोवाक्यं सर्व्वधान्ययुतं त्विदं ।
सर्व्वोपस्करसंयुक्तं गृहं गृह्ण द्विजोत्तम ॥
तत्रोपकरणं सर्व्वं दाम्पत्यस्य निवेदयेत् ।

पादुको-पानह-च्छत्र-भूषणा-सन-भाजनैः॥
सम्पन्नञ्चार्थसम्पन्नं गृह्योपस्करभूषणं।
सर्व्वसम्पूर्णमेवास्तु पठित्वैवं निवेदयेत्॥

ब्रह्मवैवर्त्ते।

गृहोपकरणैस्तुल्यां दक्षिणा भवनं विना।
उपदेष्टुरपीच्छन्ति तन्मूलत्वान्महर्षयः।
सुयतीन् पूजयित्वा तु ततः स्वभवनं व्रजेत्॥
दद्यादनेन विधिना बह्वन्येकमथो गृहं।
ससंख्यानियमः कार्य्यः शक्तिरत्र नियामिका॥
शीतवातातपहरं दत्त्वा तृणकुटीरकं।
इष्टान् कामानवाप्नोति प्रेत्य स्वर्गे महीयते॥
ऋग्भितं वा यजुर्मध्यसामस्वरविभूषिता।
अत्यन्तसुखलभ्येन देया ब्रह्मपुरी प्रिया॥
गो-भू हिरण्यदानानि नियमाःसंयमास्तथा।
गृहदानस्य कौन्तेय कलां नार्हन्ति षोड़शीं॥

वह्निपुराणे।

एवं दत्त्वा गृहं राजन् सर्व्वोपस्करसंयुतं।
नरोविष्णुपुरं याति सेव्यमानोऽप्सरोगणैः॥
तत्र कल्पत्रयं भुक्ता भोगान् देवैः सुदुर्लभान्।
कालादिह समायातो राजा भवति धार्म्मिकः॥
पुनर्विष्णुपुरं लब्धा सप्तजन्मनि पार्थिवः।
रूपसौभाग्यसम्पन्नो दीर्घायुर्निरुपद्रवः॥

पुत्रपौत्रयुतोलक्ष्म्या वियोगरहितः सुखी ।
भवेन्नरो महाराज गृहं तस्मात् प्रदीयते ॥

मत्स्यपुराणे ।

यएवं सर्व्वसम्पन्नं पक्केष्टं विनिदयेत् ।
कल्पकोटिशतं यावत् ब्रह्मलोके महीयते ॥
शैलजं दारुजं वापि योदद्याद्विधिपूर्व्वकं ।
वसेत् क्षीरार्णवे रम्ये नारायणसमीपतः ॥
मृण्मयञ्चैव योदद्याद्गृहञ्चोपस्करान्वितं ।
पुरेषु लोकपालानां प्रीत्या मन्वन्तरं वसेत् ॥
कलिकलुषविमुक्तः पूजितः सिद्धसङ्घै
रमरचरसालावीज्यमानोप्सऽरोभिः ।
पितृशतमपि बन्धून् पुत्रपौत्रप्रपौत्रा-
नपि नरकनिमग्नांस्तारयेदेकएव ॥
दिव्यभोगांस्ततो भुक्त्वा राजराजो भवेद्भुवि ।
नारायणबलोपेतो नारायणपरायणः ।
नारायणकथासक्तो जीवेद्दर्षशतं सुखी ॥

भविष्यत्पुराणे ।

यः कारयेत् सुदृढहर्म्म्यवतीं महार्घां
सन्सेवितां द्विजपुरीं सुजनोपभोग्यां ।
दिव्याप्सरोभिरभिनन्दितचित्तवृत्तिः
प्राप्नोत्यसावनुपसम्पदमिन्द्रमौलेः ॥

इति गृहदानविधिः।

सुमन्तुरुवाच।

मृण्मयं दारुजं शैलं पक्केष्टकमथापि वा।
कृत्वानन्तगृहंवापि यथाविभवसंभवात्॥
सर्व्वोपकरणोपेतं सर्वधान्यसमन्वितं।
सूर्य्यायेत्थं गृहंदत्त्वा सर्व्वान् कामानवाप्नुयात्॥

इति भविष्यत्पुराणोक्त

सूर्य्यगृहदानविधिः।

महाभारते।

तथा गवार्थे शरणं शीतवातहरं शुभं।
आसप्तमन्तारयित्वा कुलं भरतसत्तम॥

स्कान्दपुराणे।

यः कारयित्वा सुदृढ़ं विस्तीर्णं सुसमस्थलं।
शीतवातातपहरं सिकताभिर्म्मृदुत्तरं॥
शरीरकण्डूतिहरंस्तंभसंभारसंकुलं।
भक्ष्यप्रकल्पितानेकलवणाधारवद्गण्डकं॥
अतीक्ष्णाग्रसुखस्पर्शदामनीशङ्कुसङ्कुलं।
हर्तुं धूमैश्च दंशादीन् प्रकृष्टासनमाश्रयं॥
कृतकूपनिपानादिजलाशयनिवेशनं।
अवकरतिरस्कारकारिकर्म्मकरान्वितं॥

तृणोदकादिनिर्वाहक्षमकल्पितवृत्तिकं ।
एवंविधं महारम्यं प्राकारद्वारभूषितं ।
कृत्वा गृहं गवामर्थे यः पर्व्वणि निवेदयेत् ॥
स राजराजो भवति भाग्यारोग्यसमन्वितः ।
सुरभीलोकमासाद्य दिव्यभोगसमन्वितं ॥
क्रीड़ित्वा सुचिरं कालं ततोमानुष्यमागतः ।
धनरूपसमायुक्तः कुले महति जायते ॥

इति गोगृहदानं ।

अथाश्रयदानं ।

तत्र कालिकापुराणे ।

शङ्करात्परमं नान्यदतस्तस्मै विकल्पयेत् ।
यतीनामाश्रयं वापि कृत्वा पक्षेष्टकामयम् ॥

विकल्पः ।

संकल्पः ।

सुशीलं चारुनिर्वातं परिचारसमन्वितं ।
व्याख्यामण्डपसंयुक्तमासनैर्व्विविधैर्युतं ।
पुष्पोद्यानसमायुक्तं सोदकं शङ्करालयं ।
ग्रामं दीपेन्धनाद्यर्थं प्रेष्याणाञ्चैव चेतने ।
कौपीनोपानहाद्यर्थमाश्रये विनियोजयेत् ॥
ततोऽभ्यर्च्य यतीन् भक्त्या भोजयित्वा विशेषतः ।
वस्त्रैश्चैव प्रपूज्येशं भक्त्या तेभ्यो निवेदयेत् ॥

प्रीयतां मे महादेव-श्चन्द्रमौलिर्महेश्वरः।
इत्युक्ता पुण्यदिवसे दत्त्वाचैवात्र दक्षिणां॥
अनेनाश्रयदानेन सर्व्वकामयुतोनरः।
तस्मिंस्त्वमरलोकानां भोगान् गच्छेत्तदालयं॥

तदालयं।

शङ्करालयं।

शैवपुराणे।

स्थावरं जङ्गमञ्चैव द्विविधं लिङ्गमुच्यते।
प्रासादे स्थावरं कार्य्यं जङ्गमन्तु मठे स्थितं॥
स्थावराज्जङ्गमं श्रेष्ठमिति प्राहुर्म्महर्षयः।
दीक्षादिस्थापनञ्चैव ज्ञानक्रियाप्रकाशनं॥
जङ्गमात्तु प्रवर्त्तेत तेनाधिक्यन्तु जङ्गमे।
तस्माज्जङ्गमलिङ्गेभ्यो विद्यापीठस्य गुप्तये॥
कारयित्वा मठं दिव्यं शुद्धशैलेष्टकामयं।
शयनासनसंयुक्तं पुष्पारामादिशोभनं।
अक्षयापरयोपेतं पुण्यकाले समुत्सृजेत्॥

ब्रह्मवैवर्त्ते।

मठदानमधिकृत्याह मार्कण्डेयः।
यावत्सन्तिष्ठते भूमौ स मठे जनसेविते।
तावद्वर्षप्रमाणेन कर्त्ता च शुभभाग्भवेत्॥
यः कारयेन्मठं शैलं शिवायतनसन्निधौ

स शैवं पदमासाद्य कल्पायुतशतं वसेत् ॥
तस्मात्पुण्यक्षयादेतत् पृथिवीमीश्वरप्रियः ।
लभेद्दीर्घायुरारोग्यं सम्पदैश्वर्य्यसन्ततिं ।
त्रेतायुगे नृपाधीशः सहस्रक्रतुक्कद्भवेत् ॥
विष्णोरायतने पुण्ये सन्निधौ कारयेन्मठं ।
यः सः स्यात्मकलैश्वर्य्यसम्पदामालयः सदा ॥

भगवतीपुराणे ।

विजयायैव कर्त्तव्यं पुण्यारामसठादिकं ।
सजलं कारयेत्तस्मान्मठारामादिकं नरः ॥
कृत्वा मठं प्रयत्नेन शयनासनसंयुतं ।
पुण्यकाले द्विजेभ्योऽथ यतिभ्योवा निवेदयेत् ॥
सर्व्वान् कामानवाप्नोति निष्कामो मोक्षमाप्नुयात ॥

ब्रह्मप्रोक्ते ।

मठ-प्रतिश्रयं वापि सर्व्वोपकरणैर्युतं ।
कारयित्वा द्विजातिभ्यः पुण्यकाले समुत्सृजेत् ॥
तस्य पुण्यकृता लोका क्षीयन्ते न कदाचन ॥

अगस्त्यः ।

सर्व्वकाममवाप्नोति तस्य सम्पद्यते सदा ।
देवायतनकर्त्ता च यतीनामाश्रयस्य च ॥
सत्रमण्डपकारीच क्रीडन् याति गृहोत्तमैः ।

देवीपुराणे।

प्रासादमण्डपगृहे मठे चित्रशिलातले।
उन्नता पट्टशालायां सर्व्वं सं पूजयन्ति ये॥
खरामान्तर्जलोपेतं मठं भूमित्रयोच्छ्रितं।
शान्तिधामाग्निप्रख्येन विद्याकोशजपादिभिः।
युक्तं देवाय दातव्यं सर्व्वकामप्रदायकं॥
महापापारिशमनं समस्तभूमलापहं।
राज्यायुःसुतसौभाग्यवर्द्धनं कीर्त्तिनं तथा॥
विजलं नैव कुर्व्वन्ति मठारामौ विवर्ज्जितौ।
सर्व्वेषां विघ्नदं कर्त्तुं नृपलोकभयावहं॥
तथा। देवायतनकोटिस्थं कुर्य्याद्धेमा[illegible]।
एकं सर्व्वेश्वरं धाम कृतं तस्याधिकं फलं॥
गङ्गोदके च यत्पुण्यं स्नात्वा च परिकीर्त्तितं।
तत्पुण्यं स्वजनैः स्नाप्य तामीशा[illegible]ति लभेत्॥

स्कन्दपुराणे।

मठदानमधिकृत्याह।

यः कारयेन्महद्रम्यं सुवेदीसंस्थितं मठं।
पञ्चभौमन्त्रिभौमं वा शिवज्ञानरतात्मना॥
गुह्यापवरकैर्युक्तं मन्त्रस्थानसमन्वितं।
वास्तुविद्याविभक्तञ्च प्राकारपरिवारितं॥
धूमनिर्गमनोपेतं पूर्व्वतः सत्रमण्डलं।
गन्धपुष्पगृहं कार्य्यमैशान्यां मठसंयुतं॥
भाण्डागारञ्च कौवेर्य्यां कोष्ठागारञ्च वायवे।

जलाशयश्च वारुण्यां वातायनसमन्वितं ॥
समित्कुशेन्धनस्थानमायुधानाञ्च नैर्ऋते।
अभ्यागतालयश्चैव रम्यं शय्यासमन्वितं।
तोयाग्निदीपसम्भूतैर्युक्तं दक्षिणतो भवेत् ॥
गृहान्तराणि सर्व्वाणि सजलैः कदलीगृहैः।
पञ्चवर्णैश्च कुसुमैः शोभितानि प्रकल्पयेत् ॥
प्राकारञ्च बहिर्दद्यात् पञ्चहस्तप्रमाणतः।
प्राकाराच्च बहिः कुर्य्यात् सर्व्वदिक्षु समन्ततः ॥
दिव्यं शिवाश्रयं रम्यं नानापुष्पोपशोभितं।
सर्व्वर्त्तुकुसुमोपेतं नानावृक्षसमन्वितं ॥
प्रियङ्गुशिखराशोकपुत्रजीवकरिष्टकैः।
पुन्नागवकुलैश्चैव पाटलाबिल्वचम्पकैः ॥
श्वेतमन्दारविजयैर्जातीतगरकुब्जकैः।
सुवर्णश्वेतयूथीभिर्वर्षाम्लानकुरण्टकैः ॥
करवीरैः कर्णिकारैर्नानावर्णैरनेकशः।
स्थानविन्यासचरितैः सन्मार्गाधारसंयुतैः ॥
वृक्षैर्व्वहुविधैर्युक्तं दिग्विदिक्षु जलान्वितं।
सितरक्ताब्जकुसुमैर्नीलरक्तोत्पलैर्युतं ॥
लतावितानगृहकैः क्वचित् क्वचिदवस्थितैः।
कदलैःस्तम्भखण्डैश्च दाडिमाद्यैर्विराजितं।
इति कृत्वाबहिस्तस्य प्राकारं कारयेन्महत् ॥
कपाटगोपुरोपेतं परिखावटसंयुतं।
तृतीयाञ्च पुरादूर्द्ध्वं विद्याव्याख्यानमण्डपं ॥

गवाक्षनिर्गमोपेतं विचित्रं परिकल्पयेत्॥
पुराच्च पश्चमं कार्य्यं शिवस्य वसतीगृहं।
षट्हस्तमष्टहस्तं वा दारुपट्टविनिर्म्मितं॥
तत्र मृद्दारुशैलं वा स्थापयेद्विधिवच्छिवं।
सर्व्वविद्याविधातारं सर्व्वज्ञं कुलमीश्वरं॥
वृतं शिष्यप्रशिष्यैश्च व्याख्यानोद्यतपाणिकं।
पद्मासनस्थं सुखितं प्रसन्नवदनं गुरुं॥
एवं शिवाश्रमं कृत्वा भक्त्या वित्तानुसारतः।
तत्प्रतिष्ठां ततः कुर्य्यात् पूजालङ्कारलक्षणां॥
विद्यादानोक्तविभवैः शोभां कृत्वा मठाग्रतः।
पञ्चभिः पञ्चगव्यैस्तं स्थाप्यैशान्यान्दिशि क्रमात॥
स्नापयेद्गन्धतोयाद्यैः शिवशास्त्रपरिश्रुतैः।
तूर्य्यघोषैस्तमानीय स्थापयेत् पुष्पमण्डपे॥
ततश्चन्दनपुष्पाद्यैः पूजयित्वाधिवासयेत्।
जप्ता पञ्चविधं स्तोत्रं शिवं विज्ञापयेत्ततः॥
अद्याधिवासनं देव श्वः प्रतिष्ठा भवेत्तव।
भक्तानामनुकम्पार्थं सान्निध्यमुपकल्पयेत॥
प्रातः संस्नाप्य देवेशं पूजयित्वा प्रवेशयेत।
पवित्रैः स्थापयेद्देव्यां पादादारभ्य पञ्चभिः।
ततः सुगन्धगन्धाद्यैर्निलयं शोध्यं शिवालयं॥
शिवञ्च पूजयेत्पुष्पैः स्नानवस्त्रयुगान्वितैः।
सशिष्यस्तं प्रणम्येशं गुरुर्व्याख्यां प्रवर्त्तयेत्॥
प्राङ्मुखोदङ्मुखोवापि पुराणार्थं शिवाग्रतः।

ततः सम्पूजयेद्भक्त्या यजमानः स्वयंगुरुं ॥
दक्षिणाभिर्विचित्राभि र्भोजनाद्यैश्च पूजयेत् ।
निवेदयेत्ततः स्थानं सर्व्वेषां शिवयोगिनां ।
सर्व्वोपकरणोपेतं प्रणिपत्य पुनः पुनः ॥
एवं यः कारयेदाढ्यः श्रीमच्छिवपुरं महत्
सर्व्वपापविनिर्म्मुक्तः शिवलोके महीयते ॥
स्वगोत्रविंशकोपेतः सभृत्यपरिवारितः ।
पुत्रमित्रादिसंयुक्तः शान्तःपुरपरिच्छदः ॥
सुविचित्रैर्म्महायानैरसंख्यैः सर्व्वकामिकैः ।
शिववत् क्रीडते भोगैरणिमादिगुणैर्युतः ॥
ततः कालेन महता विद्यादानप्रभावतः ।
ज्ञानयोगं समासाद्य तत्रैव प्रतिमुच्यते ॥
स्थपतिस्थापका वृत्ता वलीवर्द्दाश्च कर्म्मिणः ।
यान्ति रुद्रपुरं सर्व्वे तदध्यचाश्च ये नराः ॥
येचान्ये वृत्तिभृतकाः शिवायतनकर्म्मिणः ।
तेऽपि याति मृताःस्वर्गं शिवकर्म्मानुभावतः ॥

भविष्यत्पुराणे ।

कारयित्वा दृढ़स्तम्भं शुभंपक्केष्टकामयं ।
मठं कमठपृष्ठाभमाभासितदिगन्तरं ।
सुधानिलिप्तं शुभञ्च सुखशालाविराजितं ।
दद्यादनन्तफलदं शैववैष्णवयोगिनां ।

वाराहपुराणे।

त्रिभौमं वा द्विभौमं वा कुर्य्यादथैकभूमिकं।
मठं विचित्रशालाढ्यं विराजन्मत्तवारणं॥
ध्यानाध्ययनहोमादिव्याख्यानस्थानभूषितं।
सुधया वा शिलाभिर्व्वा सममक्लिष्टभूमिकं॥
विन्यस्तपुस्तकाधारभूतनूतनसङ्कुलं।
नानाफलाकुलोद्यानराजिमण्डलमण्डितं॥
निर्म्मलस्वादुपानीयसुसम्भृतजलाश्रयं।
यतीनां पथिकानाञ्च निवासमुपसेदुषां॥
पादुकोपानहच्छत्रकौपीनेन्धनवाससां।
उपयोगिपदार्थानामन्येषामपि लब्धये॥
ग्रामं वा विपुलां भूमिं प्रदद्याच्छ्रद्धयान्वितः।
एवं समाश्रयं कृत्वा तापसानां हितावहं॥
अन्येषामपि लोकानां दुःखिनामाश्रयार्थिनां।
समाश्रयं प्रयच्छामि प्रीयतां मे जगन्निधिः॥
एवं दत्त्वा महाराजन् सुविचित्रं समाश्रयं।
अश्वमेधसहस्रस्य फलमाप्नोत्यसंशयं॥
शिव विष्णुपुरे स्थित्वा तद्रूपबलविक्रमः।
भोगानपि बहून् भुक्त्वा परं निर्व्वाणमृच्छति॥

यः कारयेदितिविचित्रविशालशाल।
मालाकुलं रुचिरकुड्य वितानयुक्तं॥
दिव्याङ्गनापरिवृतोऽथ भवेन्मुरारेः।
पारे भवार्णवजलस्य स सौख्यमेति॥

इत्याश्रयदानं।

अथ प्रतिश्रयदानं।

तत्र भविष्यत्पुराणे।

प्रतिश्रये सुविस्तीर्णे कारिते सजलेन्धने।
दीनानाथजनार्थाय ततः किन्न कृतं भवेत्॥

वह्निपुराणे।

कारयित्वा दृढस्तम्भं शुभं पक्केष्टकामयं।
प्रतिश्रयं सुविस्तीर्णं सुभूमिं लक्षणान्वितं॥
सुधानुलिप्तं गुप्तञ्च सुखशालाविराजितं।
दद्यादनन्तफलदं शैववैष्णवयोगिनां॥
प्रतिश्रयं सुविस्तीर्णं सदन्नं सुजलान्वितं।
दीनानाथजनार्थाय कारयित्वा गृहं शुभं।
निवेदयेत् पथिस्थेभ्यः शुभद्वारं मनोहरं॥

देवीपुराणे।

शक्र उवाच।

पुरस्य पश्चिमे भागे दक्षिणेचोत्तरेऽथ वा।
पूर्व्वे वा मध्यतोवापि ये कुर्व्वन्ति प्रतिश्रयं॥
देवतास्तत्र काः स्थाप्याः का न स्थाप्या द्विजोत्तम।
दिग्विभागगतां ब्रूहि स भवेद्येन शान्तिदः॥

ब्रह्मोवाच।

दक्षिणोत्तरपूर्व्वेण पश्चिमेन सुरेश्वरः।
अथ मध्यगतःशक्रः कार्य्योऽयं तत्प्रतिश्रयः॥

यत्र श्रान्ताश्च खिन्नाश्च विश्राम्यन्ति द्विजातयः।
प्रतिश्रयस्य कर्त्तारः स्वर्गे तिष्ठन्ति ते चिरं॥
तस्मात् प्रतिश्रयः कार्य्यो दृष्टादृष्टफलार्थिभिः।
देवताधिष्ठितः शक्तः सर्व्वसौख्यप्रदोभवेत्॥
देवतानान्त्वयं प्रोक्तं चतुर्थी नोपपद्यते।
महिषघ्नीं तथा यक्षं नायकं चात्र कारयेत्॥
महिषघ्नी भवेन्मध्ये ज्येष्ठस्थाने नचान्यथा।
वामतो नायकः कार्य्यो दक्षिणे यक्षराट् तथा॥
अथवा द्विगता कार्य्या तत्रापि कथयामि ते।
यद्द्वारं संमुखं तस्य देवीं तत्र प्रतिष्ठयेत्॥
न यक्षं नायकं कार्य्यं द्वाराभ्यां मध्यतः स्थितं।
एवं कृते फलं यत्तु वक्तुं तत्केन शक्यते।
केवलं फलमेतस्य सुखं राज्यं यशः श्रियं॥

यमः।

आसनं पादशौचञ्च दीपमन्नं प्रतिश्रयं।
ददात्येतानि यः पञ्च स यज्ञः पञ्चदक्षिणः॥
अन्नदः प्राणदोज्ञेयो रूपदोवस्त्रदः स्मृतः।
स हि सर्व्वप्रदोनाम योददाति प्रतिश्रयम्॥
अश्वमेधसहस्रस्य राजसूयशतस्य च।
पुण्डरीकसहस्रस्य योगिष्ववसथोनरः॥

विष्णुः प्रतिश्रयं तथा शय्यापादाभ्यङ्गञ्च दीपकं।
प्रत्येकदानेनाप्नोति गोप्रदानसमं फलं॥

दक्षः, आश्रमे च यतिर्य्यस्य विश्राम्यति मुहूर्त्तकं।

*किं तस्यान्येन धर्म्मेण कृतकृत्योहि स स्मृतः ॥
जन्मप्रभृति यत्पापं गृहस्थेन तु सञ्चितं ।
निर्म्मार्ज्जयति तत्सर्व्वं एकरात्रोषितोयतिः ॥
तथा । तपोजपैः कृशीभूतो व्याधितोऽवसथार्हकः ।
वृद्धोग्रहगृहीतश्च तथान्योविकलेन्द्रियः ॥
नीरुजश्च युवाचैव भिक्षुर्नावसथार्हकः ।
नीरुजश्च युवाचैव ब्रह्मचर्य्याद्विनश्यति ॥
ब्रह्मचर्य्याद्विनष्टस्तु कुलं गोत्रञ्च नाशयेत् ।
वसन्नवसथे भिक्षुर्मैथुनं यदि सेवते ॥
तस्यावसथनाथस्य मूलान्यपि निकृन्तति ।

बृहस्पतिः ।

। आगतस्यासनन्दद्याच्छ्रान्तस्य शयनं तथा ।
तृषितस्य तु पानीयं क्षुधितस्य तु भोजनं ॥
चक्षुर्द्द्यान्मनोदद्याद्वाचन्दद्याच्च सूनृतां ।
एष साधारणोधर्म्मश्चातुर्व्वर्ण्योऽब्रवीन्मनुः ॥
प्रीयते स्वागतेनाग्निरासनेन शतक्रतुः ।
पितरः पादशौचेन भोजनेन प्रजापतिः ॥

मनुविष्णुशातातपाः ।

येषामनश्नन्नतिथिःर्विप्राणां व्रजते गृहात् ।
ते वै खरत्वमुष्ट्रत्वमश्वत्वं प्रतिपेदिरे ॥
यस्य चैव गृहे विप्रोवसेत्कश्चिदभोजितः ।
न तस्य देवाः पितरः हव्यं कव्यञ्च भुञ्जते ॥

* तस्यातिथिधर्म्मेणेति क्वचित् पाठः ।

अतिथिर्यत्र वै ग्रामे भिक्षमाणः प्रयत्नतः।
शेते निरशनस्तत्र ब्रह्महत्या विधीयते ॥
अपि शाकम्पचानस्य शिलोञ्छेनापि जीवतः।
स्वदेशे परदेशे वा नातिथिर्व्विमना वसेत् ॥
एकरात्रन्तु निवसन्नतिथिर्ब्राह्मणः स्मृतः।
अनित्यं हि स्थितो यस्मात् तस्मादतिथिरुच्यते ॥

यमः।

तिथिपर्व्वोत्सवाः सर्व्वे त्यक्ता येन महात्मना।
सोऽतिथिः सर्व्वभूतानां शेषानभ्यागतान्विदुः ॥
व्रती यतिर्व्वैकरात्रं निवसन्नुच्यतेऽतिथिः।
यस्मान्नित्यं नवसति तस्मात्तमतिथिं विदुः ॥

पर्व्वाण्यमावास्यादीनि उत्सवा विवाहादयः
तिथिस्तद्व्यतिरिक्ता दीपालिकाप्रतिपदादिः।

एतान्यन्नविशेषप्राप्तिहेतूनि येन धर्म्मपरेण त्यक्तानि सोऽतिथिरित्यर्थः।

गौतमः।

असमानग्रामोऽतिथिरेकरात्रिकोऽधिवृक्षसूर्य्योपस्थायीति ॥

'एकरात्रिकः' एकरात्रवसनशीलः।
'अधिवृक्षः सूर्य्यशब्दः' सायङ्कालपरः,।

दक्षः। सुधावस्तूनि वक्ष्यामि शिष्टेच गृहमागते।
मनश्चक्षुर्मुखं वाचं सौम्यन्दद्याच्चतुष्टयं ॥

सुधावस्तूनि, अनायाससम्पाद्यानि,
अभ्युत्थानमिहागच्छपूर्व्वालापः प्रियान्वितः।

उपासनमनुव्रज्या कार्य्याण्येतानि यत्नतः ॥

'उपासनं, समीपे स्थितिः ।

ईषद्वस्तूनि चान्यानि भूमिरापस्तृणानि च ।

पादशौचं तथाभ्यङ्गमाश्रयः शयनन्तथा ॥

ईषद्वस्तुत्वं, चाल्पायाससाध्यत्वात् ।

किञ्चिद्दद्याद्यथाशक्ति नास्यानश्नन् गृहे वसेत् ॥

मनुः ।

आसनाशनशय्याभिरद्भिर्मूलफलेन वा ।

नास्य कश्चिद्वसेद्गेहे शक्तितोऽनर्च्चितोऽतिथिः ॥

श्रीमार्कण्डेय पुराणे ।

कुर्य्यात् प्रतिश्रयगृहं पथिकानां हितावहं ।

निजगेहैकदेशे वा साधून् पान्थान्निवासयेत ॥

अक्षयं पुण्यमुद्दिष्टं तस्य स्वर्गापवर्गदं ।

सर्व्वकामसमृद्धोऽसौ देववद्दिवि मोदते ॥

इति प्रतिश्रयदानं ।

अथ कन्यादानमुच्यते ।

तत्र लिङ्गपुराणे ।

कन्यादानं प्रवक्ष्यामि सर्व्वदानोत्तमोत्तमं ।

वृहस्पतिः ।

सहस्रमेव धेनूनां शतञ्चानडुहां समं ।

दशानडुत्समं यानं दशयानसमो हयः ॥

*दशयानसमा कन्या भूमिदानञ्च तत्समं ।

* दशवाजिसमा कन्येति क्वचित्पाठः ।

तस्मात्सर्व्वेषु दानेषु कन्यादानं विशिष्यते ॥

अत्रिः।

वालुकायाः कृतो राशिर्य्यावत्सप्तर्षिमण्डलं।
गते वर्षसहस्रे तु पलमेकं विशीर्य्यते॥
क्षयश्च दृश्यते तस्याः कन्यादाने न विद्यते॥

महाभारते।

करन्धमस्य पुत्रस्तु मरुतो नृपतिस्तथा।
कन्यामङ्गिरसे दत्त्वा दिवमाशु जगाम ह॥
राजा मित्रसहश्चापि वशिष्ठाय महात्मने।
दमयन्तीं प्रियां दत्त्वा तया सह दिवङ्गतः॥
मदिराश्वश्च राजर्षिर्दत्त्वा कन्यां सुमध्यमां।
हिरण्यहस्ताय गतो लोकान् देवैरभिष्टुतान्॥
लोमपादश्च राजर्षिः शान्तां दत्त्वा सुतां प्रभुः।
ऋष्यशृङ्गाय विपुलां सर्व्वकामैरयुज्यत॥

कश्यपः।

अग्निष्टोमातिरात्राणां शतं शतगुणं शतं।
लभते कन्यकां दत्त्वा मन्त्रहोमैरलङ्कृतां॥
अनडुहां सहस्राणां दशानां धुर्य्यवाहिनां।
सुपात्रे विधिवद्दानं कन्यादानञ्च तत्समं॥

देवलः।

तिस्रः कन्या यथान्यायं पालयित्वा निवेद्य च।
न पिता नरकं याति नारी वा स्त्रीप्रसूयिनी॥

वशिष्ठः ।

सर्वेषामेव दानानामेकजन्मानुगं फलं ।
हाटकक्षितिगौरीणां सप्तजन्मानुगं फलं ॥

संवर्त्तः ।

अलङ्कृत्य तु यः कन्यां भूषणाच्छादनाशनैः ।
दत्त्वा स्वर्गमवाप्नोति पूज्यते वासवादिभिः ॥

वह्निपुराणे ।

कन्यां ये तु प्रयच्छन्ति यथाशक्त्या स्वलंकृतां ।
ब्रह्मदेयां द्विजश्रेष्ठ ब्रह्मलोकं व्रजन्ति ते ॥

कूर्म्मपुराणे ।

कन्यामलङ्कृतां वित्तशक्त्या दत्त्वा सकौतुकं ।
गौरीलोकमवाप्नोति विप्राय गुणशालिने ॥

नारदीयपुराणे ।

चतुर्णामाश्रमाणान्तु गृहस्थः श्रेष्ठ उच्यते ।
गृहस्थाच्च गृहं श्रेष्ठं गृहाच्छ्रेष्ठा वरस्त्रियः ॥
तस्मात् कन्याप्रदानस्य नान्यदानैस्तुला स्मृता ।
अतः प्रदेया विद्वद्भिः कन्या सर्व्वार्थकाङ्क्षिभिः ॥

याज्ञवल्क्यः । पिता पितामहो भ्राता सकुल्यो जननी तथा
कन्याप्रदः पूर्व्वनाशे प्रकृतिस्थः परः परः ॥

नारदः । पिता दद्यात् स्वयं कन्यां भ्राता वानुमते पितुः ।
मातामहो मातुलश्च सकुल्या बान्धवास्तथा ॥
माता त्वभावे सर्व्वेषां प्रकृतौ यदि वर्त्तते ।

तस्यामप्रकृतिस्थायां दद्युः कन्यां स्वजातयः ॥

स्कन्दपुराणे।

आत्मीकृत्य सुवर्णेन परकीयान्तु कन्यकां।
धर्म्मेण विधिना दातुमसगोत्रोऽपि युज्यते ॥

विवाहाधिकारिणमाह मनुः।

वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं वापि यथाक्रमं।
अविप्लुतब्रह्मचर्य्यो गृहस्थाश्रममावसेत् ॥
गुरुणानुमतः स्नात्वा समावृत्तो यथाविधि।
उद्वहेत द्विजोभार्य्यां सवर्णां लक्षणान्वितां ॥

याज्ञवल्क्योपि।

वेदं व्रतानि वा पारन्नीत्वाप्युभयमेव वा।
अविप्लुतब्रह्मचर्य्यो लक्षण्यां स्त्रियमुद्वहेत् ॥

विश्वामित्रः।

कन्यामलङ्कृतां दत्त्वा समाहूय नराधिप।
विद्यार्थिने ब्राह्मणाय कन्यादानं तदुच्यते ॥

भविष्यत्पुराणे।

कन्यामलङ्कृतां दद्यादनादाय नराधिप।
द्विजाय वेदविदुषे कन्यादानं तदुच्यते ॥
दद्याद्गुणवते कन्यां नग्निकां धर्म्मचारिणीं।
अपि नो गुणहीनाय नोपरुध्याद्रजस्वलां ॥

तथा,—कन्या देया श्रोत्रियाय ब्राह्मणाय तपस्विने।

साक्षादधीतवेदाय विधिना ब्रह्मचारिणे ॥

ब्रह्माण्डपुराणे ।

कन्यान्तु परया भक्त्या अलङ्कृत्य प्रयत्नतः ।
कुलीनाय सुरूपाय गुणज्ञाय विशेषतः ॥
कन्यां वरयमाणाय दद्यादेष विधिः स्मृतः ।

गारुड़पुराण ।

सुशीलाय सुवृत्ताय सुविद्याय तपस्विने ।
कन्या देया प्रयत्नेन नेतरस्मै कथञ्चन ॥

परिणेयकन्यालक्षणानि तु ।

स्कन्दपुराणे ।

सुरूपां लक्षणोपेतामव्यङ्गाङ्गीं कुलोद्भवाम् ।
कन्यां भ्रातृमतीञ्चैव धर्म्मार्थार्थी समुद्वहेत् ॥
विशालनेत्रां सुमुखीं नीलकुञ्चितमूर्द्धजाम् ।
आताम्रपाणिपादाग्रां कम्बुग्रीवां सुमध्यमां ॥
विशालजघनाञ्चारुनितम्बस्थलभूषितां ।
अस्थूलगुल्फदशनां आश्यामाधरतालुकां ॥
अपिङ्गाक्षीमकपिलामस्फुरच्चरणां शुभां ।
अस्थूलगण्डनासाग्रां शस्तामाहुर्म्मनीषिणः ।
उद्वहेत्तादृशीं कन्यां रोगदोषविवर्ज्जितां ॥

वर्ज्जनीयकन्यानि

रूपणं वह्निपुराणे ।

महान्त्यपि समृद्धानि गोजाविधनधान्यतः ।

स्त्रीसम्बन्धे दशेमानि कुलानि परिवर्ज्जयेत् ॥
हीनजातिसुपाषण्डसुजनोद्वेगकारिणां।
छन्नामयसदावाह्यश्विचिकुष्ठिकुलानि च ॥
यस्यास्तु न भवेद्भ्राता न च विज्ञायते पिता।
नोपयच्छेत तां प्राज्ञः पुत्रिकाधर्म्मशङ्कया ॥

अथाह सम्वर्त्तः।

अष्टवर्षा भवेद्गौरी नवमे नग्निका भवेत्।
दशमे कन्यका प्रोक्ता द्वादशे वृषली स्मृता ॥

आहाङ्गिराः।

अप्राप्तरजसा गौरी प्राप्ते रजसि रोहिणी।
अव्यञ्जनकृताश्यामा कुचहीना तु नग्निका ॥

काश्यपः।

सप्तवर्षा भवेद्गौरी दशवर्षा तु कन्यका।
प्राप्ते तु द्वादशे वर्षे कुमारीत्यभिधीयते ॥
रोमकाले तु सम्प्राप्ते सोमोभुञ्जीत कन्यकां।
रजःकाले तु गन्धर्व्वाः शक्रस्तु कुचदर्शने ॥
तस्मादुद्वाहयेत् कन्यां यावन्नर्तुमती भवेत्।
विवाहस्त्वष्टवर्षीयाः कन्यायाः शस्यते बुधैः ॥

अथाह मनुः।

चतुर्णामपि वर्णानां प्रत्येह च हिताहितान्।
अष्टाविमान् समासेन स्त्रीविवाहान्निबोधत ॥
ब्राह्मो दैव-स्तथाचार्षः प्राजापत्यस्तथासुरः।

गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमोमतः ॥*
चतुरो ब्राह्मणस्याद्यान् प्रशस्तान् कवयोविदुः ।
राक्षसं क्षत्रियस्यैवमासुरं वैश्यशूद्रयोः ॥
पञ्चानाञ्च त्रयोधर्म्या द्वावधर्म्मौ स्थिताविह ।
पैशाचश्चासुरश्चैव न कर्त्तव्यो कथञ्चन ॥
पृथक् पृथक् विमिश्रौ वा विवाहौ पूर्व्वमोदितौ ।
गान्धर्व्वो राक्षसश्चैव धर्म्मौ क्षत्रस्य तौ स्मृतौ ॥

पैठीनसिः ।

गान्धर्व्वासुरो राजन्यस्य, राक्षसोवैश्यस्य, पैशाचः शूद्रस्य, सर्व्वेषामार्षः प्रमाणम् ।

आह प्रचेताः ।

पैशाचःसंस्कृतप्रसूतानां प्रतिलोमजानाञ्च ।

मनुः ।

योयश्चैषां विवाहानां मनुना कीर्त्तितो गुणः ।
सम्यक् शृणुत तं विप्राः सर्व्वं कीर्त्तयतो मम ॥
दश पूर्व्वान् परान्वंश्यानात्मानञ्चैकविंशकं ।
ब्राह्मीपुत्रः सुकृतकृन्मोचयत्येनसः पितृन् ॥
दैवोढ़ाजः सुतश्चैव सप्त सप्त परावरान् ।
आर्षोढ़ाजः सुतस्त्रींस्त्रीन् षट्कं कायोढ़जः सुतः ॥
ब्राह्मादिषु विवाहेषु चतुर्ष्वेवानुपूर्व्वशः ।
ब्रह्मवर्च्चस्विनः पुत्रा जायन्ते शिष्टसम्मताः ॥

---

* अधम इति पुस्तकान्तरे पाठः ।

रूपसत्त्वगुणोपेता धनवन्तो यशस्विनः।
पर्य्याप्तभोगा धर्म्मिष्ठा जीवन्ति च शतं समाः॥
इतरेषु च शिष्टेषु नृशंसानृतवादिनः।
जायन्ते दुर्व्विवाहेषु ब्रह्मधर्म्मद्विषः सुताः॥
अनिन्दितैः स्त्रीविवाहैरनिन्द्या भवति प्रजा।
निन्दितैर्निन्दिता नृणां तस्मान्निन्द्यान् विवर्ज्जयेत्॥

अथ तेषां लक्षणानि।

तत्र विष्णुः।

आहूय गुणवते कन्यां कन्यादानं स ब्राह्मः।

बौधायनः।

श्रुतशीले विज्ञाय ब्रह्मचारिणे ऽर्थिने देयेति स ब्राह्मः।

प्रचेताः।

सवर्णाय नग्निकामुदकेन दद्यात् स ब्राह्मो विवाहः।

व्यासः।

आच्छाद्यालङ्कृतां कृत्वा त्रिः परिक्रम्य पावकं।
नामगोत्रे समुद्दिश्य दद्याद्ब्राह्मोविधिस्त्वयम्॥

मनुः।

यज्ञे तु वितते सम्यक् कर्म्मकुर्व्विति ऋत्विजे।*
अलङ्कृत्य सुतादानं दैवं धर्म्मं प्रचक्षते॥
एकङ्गोमिथुनं द्वेवा वरादादाय धर्म्मतः।
कन्याप्रदानं विधिवदार्षो धर्म्मः स उच्यते॥

* ऋत्विजे कर्म्मकुर्व्वते इति पुस्तकान्तरे पाठः।

हारीतः।

अनिन्द्यमन्येरवितर्कयन् विधिवद्वस्त्रयुगं दत्त्वा अनया सह धर्म्मश्चर्य्यतामिति प्राजापत्यः॥

मनुः।

सहोभौ चरतां धर्म्ममिति वाचानुभाष्य तु।
कन्यादानं समभ्यर्च्य प्रजापत्योविधिः स्मृतः॥
ज्ञातिभ्यो द्रविणं दत्त्वा कन्यायै चैव शक्तितः।
कन्याप्रदानं स्वाच्छन्द्यादासुरोधर्म्म उच्यते॥
इच्छयान्योन्यसंयोगः कन्यायाश्च वरस्य च।
गान्धर्व्वः स च विज्ञेयो मैथुन्यः कामसम्भवः॥
हत्वा छित्वा च भित्वा च क्रोशन्तीं रुदतीं गृहात्।
प्रसह्य कन्याहरणं राक्षसो विधिरुच्यते॥
सुप्तां* मत्तां रहश्छद्म कृत्वा यत्रोपनीयते।
स पापिष्ठो विवाहानां पैशाचः प्रथितोऽष्टमः॥

अथ वह्निपुराणे।

ब्राह्मेण तु विवाहेन यस्तु कन्यां प्रयच्छति।
ब्रह्मलोकं व्रजेत् क्षिप्रं ब्रह्माद्यैः पूजितः सुरैः॥
दैवेन तु विवाहेन यस्तु कन्यां प्रयच्छति।
भित्वा द्वारन्तु सूर्य्यस्य स्वर्गलोकञ्च गच्छति॥
गान्धर्व्वेण विवाहेन यस्तु कन्यां प्रयच्छति।
गन्धर्व्वलोकमासाद्य क्रीड़ते देववच्चिरम्॥

---

* सुप्तां मत्तां प्रमत्तां वा रहोयत्रोपगच्छतीति पाठान्तरम्।

शुल्केन दत्त्वा यः कन्यान्तां पश्चात्सम्यगर्चयेत्।
स किन्नरैश्च गन्धर्व्वैः क्रीडते कालमक्षयं॥

भविष्यत्पुराणे।

विलोक्य गोत्रनक्षत्रे राशिकूटादिकं शुभम्।
सुलग्ने सुमुहूर्त्ते च दद्याच्चैव यथाविधि॥
उभयस्यापि पक्षस्य मनोऽभ्युदयपूर्व्वकम्।
कुमार्य्यास्त्वष्टवर्षाया: शस्यते पाणिपीड़नम्॥

आह पैठीनसिः।

पाणिग्रहणसंस्कारः सवर्णासूपदिश्यते।
असवर्णास्वयं ज्ञेयो विधिरुद्वाहकर्म्मणि॥
शरः क्षत्रियया ग्राह्यः प्रतोदो वैश्यकन्यया।
वसनस्य दशा ग्राह्या शूद्रयोत्कृष्टवेदने॥

ऋष्यशृङ्गः।

वरगोत्रं समुच्चार्य्य प्रपितामहपूर्व्वकम्।
नाम सङ्कीर्त्तयेद्विद्वान् कन्यायाश्चैव मेव हि॥
तिष्ठेत्पूर्व्वमुखो दाता वरः प्रत्यङ्मुखो भवेत्।
मधुपर्कार्च्चितां चैनां तस्माद्दद्यात् सदक्षिणां।
उदपात्रं ततोऽगृह्य मन्त्रेणानेन दापयेत्॥
गौरीं कन्यामिमां विप्र यथाशक्ति विभूषितां।
गोत्राय शर्म्मणे तस्मै दत्तां विप्रसमाश्रयां इति॥

इदमिह दानवाक्यं।

ओं अद्य अमुकसगोत्रस्य अमुकप्रवरस्य अमुकशर्म्मणः प्रपौ-

त्राय, अमुकसगोत्रस्य अमुकप्रवरस्य अमुकशर्म्मणः पौत्राय, अमुकसगोत्रस्य अमुकप्रवरस्य अमुकशर्म्मणः पुत्राय, अमुकसगोत्राय अमुकप्रवराय अमुकशर्म्मणे वराय, अमुकसगोत्रस्य अमुकप्रवरस्य अमुकशर्म्मणः प्रपौत्रीं, अमुकसगोत्रस्य अमुकप्रवरस्य अमुकशर्म्मणः पौत्रीं, अमुकसगोत्रस्य अमुकप्रवरस्य अमुकशर्म्मणः पुत्रीं, अमुकसगोत्रां अमुकप्रवरां अमुकाभिधानामिमाङ्कन्यां सालङ्कारां प्रजापतिदैवतां अमुककामस्तुभ्यमहं सम्प्रददे। एतत्कन्यादानप्रतिष्ठार्थं दक्षिणामिदं हिरण्यं सम्प्रददे न ममेत्युच्चार्य्य दानमन्त्रं पठेत्, प्रतिग्रहीता तु प्रणवपूर्व्वं स्वस्तीत्युक्त्वा कोदादिति मन्त्रमुदाहरेत् ।

भूमिं गावश्च दासीश्च वासांसि च स्वशक्तितः ।
महिष्योवाजिनश्चैव दद्यात्स्वर्णमणीनपि ॥
ततः स्वगृह्यविधिना होमाद्यं कर्म्म कारयेत् ।
यथाचारं विधेयानि मङ्गल्यकुतुकानि च ॥

## लिङ्गपुराणे ।

कन्यां लक्षणसम्पन्नां सर्व्वदोषविवर्जिताम् ।
मातापित्रोस्तु सम्वादं कृत्वा दत्त्वा धनं महत् ॥
आत्मीकृत्य तु संस्थाप्य वस्त्रं दत्त्वा नवं शुभम् ।
भूषणैर्भूषयित्वा च गन्धमाल्यैरथार्च्चयेत् ॥
निमित्तानि समीक्ष्याथ गोत्रनक्षत्रकादिकम् ।
उभयोश्चित्तमालोच्य उभौ संपूज्य यत्नतः ॥
दातव्या श्रोत्रियायैव ब्राह्मणाय तपस्विने ।

साक्षादधीतवेदाय विधिना ब्रह्मचारिणे ॥
दासीदासासनाद्यञ्च भूषणानि विशेषतः ।
क्षेत्राणि च धनं वापि तथान्यानि प्रदापयेत् ॥
यावन्ति सन्ति रोमाणि कन्यायाश्च तनौ पुनः ।
तावद्वर्षसहस्राणि रुद्रलोके महीयते ॥

वह्निपुराणे ।

एवं यच्छन्ति ये कन्यां यथाशक्त्या स्वलङ्कृतां ।
विवाहकाले संप्राप्ते यथोक्ते सदृशे नरे ।
क्रमात्क्रमं क्रतुशतमनुपूर्व्वं लभन्ति ते ॥
श्रुत्वा कन्याप्रदानञ्च पितरः प्रपितामहाः ।
विमुक्ताः सर्व्वपापेभ्यो ब्रह्मलोकं व्रजन्ति ते ॥
तथा । न मन्युङ्कारयेत्तासां पूज्याश्च सततं गृहे ।
ब्रह्मादयो विशेषेण ब्रह्मभोज्यं सदा भवेत् ॥
अप्रजायाश्च कन्याया न भुञ्जीयात् कदाचन ।
दौहित्रस्य मुखं दृष्ट्वा किमर्थमनुशोचसि ॥
महासत्त्वसमाकीर्णान्नास्ति ते नरकाद्भयं ।
तीर्णस्त्वं सर्व्वदुःखेभ्यः परं स्वर्गमवाप्स्यसि ॥
दौहित्रस्य तु दानेन नन्दन्ति पितरः सदा ।
यत् किञ्चित् कुरुते दानं तदानन्त्याय कल्पते ॥
दृष्ट्वा कन्यां न शोचेत क्षुधिता ताड़िता पिवा ।
नानादुःखाभिभूता वा तथैवाशरणा कृशा ॥
कुर्य्यान्मन्युं न चैवास्या आगताञ्चैव पोषयेत् ।

शोचन्ति यामयो यत्र विनश्यत्याशु तत्कुलं ।
न भुञ्जन्ति* च यत्रैव निर्दहन्त्यप्रपूजिताः ।
तस्मादेताः सदाभ्यर्च्या भूषणाच्छादनाशनैः ॥
भूतिकामैर्नरैर्नित्यं सुतापुत्रस्तु सर्व्वदा ।
सन्तुष्टः स्यात्तथा पूज्यः स श्राद्धोत्सवेषु च ॥
यस्मिन्नेवं कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवं ।
इह कीर्त्तिर्भवेत् स्वर्गः परत्र द्विजसत्तम ॥
तिलराशिः कृतोयावद्दिवाकरसमुच्छ्रितः ।
वर्षान्ते गृह्यते तस्मात् तिल एकस्तु यावता ॥
संक्षयं लभते तावद्ब्रह्मलोकस्य निश्चितं ।
शतगव्यूतिमानेन सञ्चितैर्हषरोमभिः ॥
विशीर्य्यते तुरालिङ्गं वर्षैं कन्याप्रदस्तथा ।
तावत्स्वर्गं लभेत् यावत्सर्व्वलोम्नान्तु संक्षयः ॥
महीदातुश्च गोदातुः कन्यादातुश्च ये रथाः ।
कन्यादानानुगाः पश्चात्समं यान्ति त्रयोरथाः ॥
अयाचितप्रदातुश्च सत्यवादिन एव च ।
नित्यं स्वाध्यायशीलस्य समं यान्ति त्रयोरथाः ॥
कूकुदश्चाश्वमेधी च प्राणदाता द्विजेषु च ।
समं यान्ति रथा ह्येते त्रयोवै नात्र संशयः ॥

अलङ्कृत्य कन्याप्रदाता 'कूकुदः ।'

कन्यादानं दरिद्रस्य योददाति परिष्कृतं ।
पूर्त्तं धर्म्ममवाप्नोति यथावद्विधिकल्पितं ।

---

* न शोचन्ति चेति क्वचित्पाठः ।

तस्मात् कन्या प्रयत्नेन दातव्या श्रेय इच्छता ॥

स्कन्दपुराणे।

वैवाहिकप्रदानं वा योददाति दयापरः।
विमानेन विचित्रेण किङ्किणीजालमालिना।
महेन्द्रभवने याति सेव्यमानोऽप्सरोगणैः॥

इति कन्यादानविधिः।

अथ द्विजस्थापनं तत्र दक्षः।

मातापितृविहीनन्तु संस्कारोद्वहनादिभिः।
यः स्थापयति तस्येह पुण्यसंख्या न विद्यते॥

कालिकापुराणे।

कारयित्वा तथोद्वाहं श्रोत्रियाणां कुलेषु च।
वेदवच्छीलवृत्तेषु द्विजेष्वेकादशस्तथा॥
वातागृहाणि रम्याणि कुर्य्यादेकादशैव तु।
कारयित्वा तु धान्यैश्च विविधैश्च प्रपूरयेत्॥
दासीगोमहिषीश्चापि शयनासनपादुकाः।
भाजनानि विचित्राणि ताम्रमृण्मयकानि च॥
पात्राणि भोजनार्थैच कलसश्चोपस्करञ्च यत।
लोहञ्च कनकं चैव वस्त्राणि तु विशेषतः॥
संभृत्यैतं सुसम्भारं तद्गृहेषु नियोजयेत्।
योजयेच्चैव वृत्त्यर्थं शक्तितो वा शतं शतम्॥
पृथक् पृथक् लाङ्गलानां निवर्त्तनशताङ्कितः।
विषयं कर्व्वटं खेटं ग्रामं ग्रामार्द्धमेव वा॥

योजयेत्सोममूर्त्तिञ्च चिन्तितेषु द्विजेषु वै ॥
एकादशैव तास्तत्र दाम्पत्योमाहरात्मकाः ।
विचिन्त्य परया भक्त्या तद्गृहेषु प्रवेशयेत् ॥
ग्राहयेदग्निहोत्राणि प्रवेश्यैतान् द्विजोत्तमान् ।
विधिपूर्व्वं यथान्यायमात्मनः श्रेयसे नरः ॥
अदुष्टकुलजानाञ्च विधिरेषां चिरन्तनः ।
शिवभक्त्या विभक्तानां द्विजानां कारयेत्सदा ॥
यश्च प्रेष्यान् द्विजान् मूढो योजयेद्व्यक्तव्ययोः ।
न भवेत्तत्फलं तस्य वैदिकोयं श्रुतिर्ध्रुवा ॥
यज्ञदानं व्रताद्यञ्च तीर्थयात्रादिकं च यत् ।
यस्त्वेवं कारयेज्जन्तुं तेन सर्व्वमनुष्ठितम् ।
स यात्यर्कसमानाभं विमानं रत्नमालिनम् ॥
आरुह्य तत्पदं पुण्यं सुरस्त्रीभिरलङ्कृतम् ।
विमानैश्चापरैर्दिव्यैः सहस्रैः परिवारितः ॥
सर्व्वलोकगतान् भोगान् भुक्त्वा तस्मिन् प्रपद्यते ।
ज्ञात्वा स्ववित्तसामर्थ्यं एकं चोद्वाहयेद्द्विजम् ॥
तेन प्राप्नोति तत्स्थानं शिवभक्तो नरोध्रुवं ।
स्थामेन स्थानसम्प्राप्तिर्व्विधिदत्तेन जायते ॥

अथ राजस्थापनं ।

आदित्यपुराणे ॥

वृहस्पतिश्रुतौ च ।

भूमिपालं च्युतं राज्यात् यस्तु संस्थापयेत्पुनः ।
तस्य वासो मुनीन्द्रेह नाकपृष्ठे न संशयः ॥

विष्णुधर्म्मोत्तरे।

भूपालं यं च्युतं राज्यात् स्वराज्ये स्थापयेत्पुनः।
स याति शक्रसालोक्यं यावच्छक्राश्चतुर्दश॥
ततो मानुष्यमासाद्य राजा भवति धार्म्मिकः।
तस्माद्दानं श्रीविहीने दातव्यं भूतिमिच्छता॥
श्रीविहीनेषु यद्दत्तं तदनन्तं प्रकीर्त्तितं।

तथा,

स्थानभ्रष्टस्य यः कुर्य्याद्भूयस्त्वारोपणं नरः।
नाकलोकमवाप्नोति चिरन्तेनेह कर्म्मणा॥

कन्यादानप्रसङ्गेन द्विजातिस्थापनमुक्तम् क्रमप्राप्तस्य कपिलादानस्य गोदानप्रकरणे निरूपितत्वात् पर्य्यवसितानि, दशमहादानानीति।

इति श्रीमहाराजाधिराजश्रीमहादेवस्य समस्तकरणाधीश्वर-सकलविद्याविशारद-श्रीहेमाद्रि-विरचिते चतुर्व्वर्गचिन्तामणौ दानखण्डे दशमहादानप्रकरणं।

# अथ दशमोऽध्यायः

अथ कृष्णाजिनदानान्यभिधीयन्ते ।

योमन्यते सततमध्वरदीक्षणेषु
क्षौमाम्बरादपि मृदूनि मृगाजिनानि ।
हेमाद्रिरेष तदशेषमशेषमुक्तं
कृष्णाजिनप्रमुखदानविधानमाह ॥

तत्संग्रहश्लोकास्तु ।

सौरपुराणे ।

कृष्णाजिनं च महिषीं मेषीञ्च दशधेनवः ।
ब्रह्मलोकप्रदायीनि तुलापुरुष एव च ॥

तत्र कृष्णाजिनदाने, यमः ।

गोभूहिरण्यसंयुक्तं मार्गमेकं ददाति यः ।
सर्व्वदुष्कृतकर्म्मापि सायुज्यं ब्रह्मणो व्रजेत् ॥

मरीचिः ।

कृष्णाजिनोभयमुखीं योदद्यादाहिताग्नये ।
सप्तजन्मकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ॥

कात्यायनः।

कृष्णाजिने तिलान् कृत्वा हिरण्यं मधुसर्पिषी।
ये प्रयच्छन्ति विप्राय न ते शोच्याः कृताकृते॥
सर्व्वांश्च लोकांश्चरति कामचारविहङ्गमः।
आहूतसंप्लवं यावत् स्वर्गलोके महीयते॥
कृष्णाजिनसमन्दानं नचास्ति भुवनत्रये।
प्रतिग्रहोपि पापीयानिति वेदविदोविदुः॥
कृष्णाजिनन्तु योभक्त्या ब्राह्मणाय प्रयच्छति।
स तिष्ठेद्वैष्णवे लोके यावच्चन्द्रार्कतारकं॥
कृष्णाजिनन्तु यः पश्येद्दीयमानन्तु भक्तितः।
सोपि पापैः प्रमुच्येत आजन्मजनितैरपि॥
ब्रह्मणा पूर्व्वरूपन्तु कृष्णाजिनं* विनिर्म्मितम्।
संसिद्धये च यागानां श्राद्धानाञ्च सुसिद्धये॥
अह्नोरूपं सितं तस्य कृष्णं रात्रिमयं वपुः।
बहुरूपन्तु सन्ध्याया विज्ञेयं तन्नराधिप॥
कृष्णाजिनस्य सामानि शुक्लानि च ऋचस्तथा।
यजूंषि बहुरूपाणि श्रुतिरेषश्चरेन्मृगः॥
स्वेच्छया रमते यत्र स देशो याज्ञिकः स्मृतः।
इतरे म्लेच्छदेशास्तु श्रुतिधर्म्मविवर्ज्जिताः॥
न कृष्णेन विना यज्ञो न श्राद्धं न क्रिया क्वचित्।
भवन्ति धर्म्मशास्त्राणि वेदकार्य्याणि पार्थिव॥

---

* कृष्णसारमितिक्वचित् पाठः।

तद्दानं सर्व्वदानानामधिकं श्रुतिकर्म्मणाम् ॥

आह विष्णुः ।

अथ वैशाख्यां पौर्णमास्यां कृष्णमृगाजिनं सखु रंसशृङ्गं रौप्यखुरं मुक्तालाङ्गूलभूषितं कृत्वा आविकेन च वस्त्रेण प्रसारिते प्रसारयेत् तत स्तिलैः प्रच्छादयेत् सुवर्णनाभञ्च कुर्य्यादहतेन वासोयुगेन प्रच्छादयेत् सर्व्वरत्नगन्धैश्चालंकुर्य्याच्चतसृषु च दिक्षु चत्वारि तैजसानि पात्राणि क्षीर-दधि-मधु-सर्पिः-पूर्णानि निधायाहिताग्नये ब्राह्मणाय वासोयुगप्रच्छादिताय दद्यात् ।

अत्र च गाथा भवन्ति ।

यस्तु कृष्णाजिनं दद्यात् सखुरं शृङ्गसंयुतं ।<br>
तिलैः प्रच्छाद्य वासोभिः सर्व्वरत्नैरलङ्कृतं ॥<br>
ससमुद्रगुहा तेन सशैलवनकानना ।<br>
चतुरन्ता* भवेद्दत्ता पृथिवी नात्र संशयः ॥<br>
कृष्णाजिने तिलान् कृत्वा हिरण्यं मधुसर्पिषी<br>
ददाति यस्तु विप्राय सर्व्वन्तरति दुष्कृतं ॥

मत्स्यपुराणे ।

मनुरुवाच ।

कृष्णाजिनप्रदानस्य विधिङ्कालं ममानघ ।<br>
ब्राह्मणं च समाचक्ष्व तत्र मे संशयो महान् ॥

---

* वसुरत्ना इति क्वचित् पाठः ।

मत्स्य उवाच।

वैशाखी पौर्णमासी च ग्रहणं शशिसूर्य्ययोः।
पौर्णमासी तु या माघे आषाढ़ी कार्त्तिकी तथा॥
उत्तरायणद्वादशी वा तस्यान्दत्तं महाफलं।
आहिताग्निर्द्विजोयश्च तद्देयं तस्य पार्थिव॥
यथा येन विधानेन तन्मे निगदतः शृणु।
गोमयेनोपलिप्ते तु शुचौ देशे च पार्थिव॥
आदावेव समास्तीर्य्य शोभनं वस्त्रमाविकम्।
ततः सशृङ्ग सखुरमास्तर कृष्णमार्गेण॥
कर्त्तव्यं रुक्मशृङ्गञ्च रौप्यन्दन्तं तथैव च।
लाङ्गूलं मौक्तिकैर्युक्तं तिलच्छन्नं तथैव च।
तिलैरात्ममङ्कृत्वा वाससाच्छादयेद्बुधः॥
तिलैस्तु शिखरङ्कृत्वेति क्वचित्पाठः।
सुवर्णनाभन्तत् कुर्य्यादलङ्कुर्य्याद्विशेषतः।
रत्नैर्गन्धैर्यथाशक्त्या तस्य दिक्षु च विन्यसेत्॥
कांस्यपात्राणि चत्वारि दिक्षु दद्याद्यथाक्रमं।
मृण्मयेषु च पात्रेषु पूर्व्वादिषु क्रमेण तु।
घृतं क्षीरं दधि क्षौद्रमेवं दत्त्वा यथाविधि॥

अत्र सरत्नानि कांस्यपात्राणि चतसृषु दिक्षु विन्यसेत् अन्यानि च मृण्मयानि पात्राणि घृत-क्षीर-दधि-मधु पूर्णानि यथाक्रमं पूर्व्वादिदिक्षु स्थापनीयानीति।

पञ्चकस्य तथाशाखामव्रणं कुम्भमेव च।

ब्राह्मोपस्थानमकृत्वा शुभचित्तो निवेशयेत्।
जीर्णवस्त्रेण पीतेन सर्व्वाङ्गानि च मार्जयेत्॥

ब्राह्मोपस्थानकमिति दानप्रदेशाद्वाह्मे, उप समीपे स्थानं यस्य स तथेति कुम्भविशेषणं, मार्जयेदिति दानानन्तरं स्नात्वा जीर्णवस्त्रेण प्रच्छादयेदित्यर्थः।

धातुमयानि पात्राणि पादेष्वस्य प्रदापयेत्।
यानि काम्यानि पापानि मया लोभात् कृतानि वै॥
लोहपात्रप्रदानेन प्रणश्यन्तु ममाशु वै।
तिलपूर्णन्तु तत् कृत्वा वामपादे निवेशयेत्॥
यानि पापानि काम्यानि कर्णोत्थानि कृतानि च।
कांस्यपात्रप्रदानेन तानि नश्यन्तु मे सदा।
मधुपूर्णन्तु तत् कृत्वा पादे वै दक्षिणे न्यसेत्॥

एतत्पात्रद्वयं, पश्चिमपादयोः स्थापनीयं।

परापवादपैशून्यात् पृष्ठमांसस्य भक्षणात्।
तत्रोत्थितस्य मे पापं ताम्रपात्रात् प्रणश्यतु॥
कन्यानृतं गवाञ्चैव परदारप्रधर्षणं।
रौप्यपात्रप्रदानेन क्षिप्रं नाशं प्रयान्तु मे।
ऊर्द्धपादेष्विमे कार्य्ये ताम्रस्य रजतस्य च॥

ऊर्द्धपादे, अग्रपादयोः एकवचनमत्राविवक्षितं।

अत्र ताम्रपात्रं मधुपूर्णं, दक्षिणपादे रजतपात्रं, तिलपूर्णं वामपादे स्थापनीयं।

जन्मजन्मसहस्रेषु कृतं पापं कुबुद्धिना।
सुवर्णपात्रदानात्तन्नाशयाशु जनार्द्दन॥

एतच्च सुवर्णपात्रमक्षतपूर्णं मध्यदेशे स्थापयेत्।

हेममुक्ताविद्रुमञ्च दाड़िमं बीजपूरकं।
प्रशस्तपत्रं श्रवणे खुरे शृङ्गाटकानि च॥
एवं कृत्वा यथोक्तेन सर्व्वशाकफलानि च।
तत्प्रतिग्रहविद्विद्वानाहिताग्निर्द्विजोत्तमः॥
स्नातोवस्त्रयुगच्छन्नः स्वशक्त्याचाप्यलङ्कृतः।
प्रतिग्रहश्च तस्योक्तः पुच्छदेशे महीपते॥
सुवर्णनाभिकं दद्यात् प्रीयतां वृषभध्वजः॥

इदमिह दानवाक्यं।

ओम् अद्य अमुकसगोत्रायेत्यादि इदं कृष्णाजिनं कुशोपरिगत-कम्बलोपरि स्थितं, वस्त्रयुगप्रच्छादिततिलराशिं, सुवर्णशृङ्गं, रौप्य-खुरं, रौप्यदन्तं मुक्ताफललाङ्गूलं, सुवर्णनाभं पञ्चरत्नालङ्कृतं गन्ध-पुष्पान्वितं चतुर्द्दिगवस्थितघृत-क्षीर-दधि-मधु-पूर्णपात्रचतुष्टय-सहितं सकांस्यपात्रं शिवदैवतं अमुककामस्तुभ्यमहं सम्प्रददे, न ममेति, अद्य अमुकसगोत्रायेत्यादि एतत् कृष्णाजिनदानप्रतिष्ठार्थं दक्षिणामिदं सुवर्णन्तुभ्यमहं सम्प्रददे न ममेति।

अनेन विधिना दद्याद्यथावत् कृष्णमार्गणं।
न स्पृश्यः स द्विजोराजन् चितियूपसमोहि सः॥
दाने च श्राद्धकालेच दूरतः परिवर्ज्जयेत्।
स्वगृहात् प्रेष्य तं विप्रं मण्डले स्थानमाचरेत्।
तद्वस्त्रं कुम्भसहितं नीत्वा क्षेप्यं चतुष्पथे॥

अहत, मपरिहितमप्रक्षालितं च वीतः, कृतपरिधानः॥

दक्षिणासंख्यातु गरुडपुराणे ।

शतनिष्कसमोपेतं तदर्द्धार्द्धमथापि वा ।
अतोन्यूनं न दातव्यमधिकं फलमूर्ज्जितं ॥
उत्तमन्तु शतेनैव मध्यमन्तु तदर्द्धतः ।
तदर्द्धेन कनिष्ठन्तु देयं कृष्णमृगाजिनं
न वित्तशाठ्यं कुर्व्वीत फलहानिस्तु कारणात् ॥

मत्स्यपुराणे ।

कृतेनानेन या तुष्टि र्न सा शक्या सुरैरपि ।
वक्तुञ्च नृपतिश्रेष्ठ तथाप्युद्देशतः शृणु ॥
ससागरभूमिदानस्य फलं प्राप्नोति मानवः ।
सर्व्वांस्तु लोकांश्चरति कामचारी विहङ्गमः ॥
आहूतसम्प्लवं यावत्स्वर्गमाप्नोत्यसंशयं ।
न पितृपुत्रमरणं वियोगं भार्य्यया सह ।
धनदेशपरित्यागं नचैवेहाप्नुयात् क्वचित् ॥

कृष्णाजिनं कृष्णमृगस्यचर्म्म
दत्त्वा द्विजेन्द्राय समाहिताय ।
यथोक्तमेतन्मरणं न शोचेत्
प्राप्नोत्यभीष्टं मनसः फलन्तत् ॥

वैष्णवपदाधिकारे ।

कालिकापुराणे ।

येऽपि रुक्मादिपात्रे च हुत्वा वह्निं ददन्ति च ।
तिलद्रोणसमायुक्तं वस्त्रयुग्मेन वेष्टितं ॥

पञ्चार्द्धार्द्धमथार्द्धं वा वित्तमान् हेमसंयुतं।
सूक्ष्मयुग्मेन वस्त्रेण अन्येनाच्छादयेद्द्विजं॥
मोदकं चापरं दत्त्वा सतिलं न्यस्य तत्करे।
ततः कृष्णाजिनं दद्यात्तिलद्रोणान्वितञ्च यत्॥
दत्त्वा तु भोजयेत्तत्र नत्वाचैव विसर्जयेत्।
अयने विषुवे चैव चन्द्रसूर्य्यग्रहे तथा॥
युगादौ वा प्रयच्छन्ति विधिना ये तु वै द्विजे।
तेपि तत्पदमासाद्य दशाब्दं ब्राह्मआयुषः॥
क्रीड़न्ति विविधैर्भोगैः कलारूपगुणान्विताः।
अनेन च विधानेन दशद्रोणप्रदायकः।
आब्रह्माण्डभवं कालं मोदते स पुरोत्तमे॥
योघटं पयसा पूर्णं हेमपद्मनियोजितं।
संपूज्य वस्त्रयुग्मेन दद्यात्सोपि व्रजेत् ध्रुवं॥

आदित्यपुराणे।

वैशाख्यां पूर्णमास्यां च तिलदानं ददन्ति ये।
कृष्णाजिनञ्च संपूर्णं प्रच्छाद्याष्टौ तिलस्य वै॥
स्वर्णशृङ्गं रौप्यखुरं मुक्तालाङ्गूलभूषितं।
श्वेतवस्त्रयुगोपेतं कृष्णचैलाद्यलङ्कृतं॥
लोहभाजनचतुष्कञ्च घृतक्षौद्रेण पूरितं।
दधिक्षीरं तथा चैव संपूर्णञ्च ततः परं॥
परिचिते गुणाधारे ब्राह्मणे सुसमाहिते।
अग्निहोत्ररते शान्ते देवद्विजपरायणे॥

नित्यस्नाते शौचपरे सर्व्वशास्त्राद्यलङ्कृते।
तस्मै तद्दीयते दानं कृष्णाजिनमनुत्तमं॥
सप्तद्वीपसागरां वै सशैलवनकाननां।
पृथिवीं रत्नसम्पूर्णां दत्त्वा भवति यत्फलं।
उद्धृत्य नरकाद्घोरात् कुलान्येकोत्तरं शतं॥
गच्छति ब्रह्मलोकञ्च विमानैश्चन्द्रसन्निभैः।
चामरैर्धूयमानश्च गीतवंशमनोरमैः॥
अप्सरोभिः परिवृतः पताकाध्वजसङ्कुलः।
जयघोषश्च क्रियते तस्याग्रे सुरकिन्नरैः॥
ब्रह्मलोकं ततः प्राप्य प्रविश्य च पुरीमिमां।
सर्व्वरत्नोज्ज्वलां दिव्यां मुक्ताजालविभूषितां॥
प्रवालस्तम्भशोभाढ्यां सौवर्णालङ्कृतां मुने।
त्रिंशत्कोट्यस्तु लक्षाणि अशीत्यभ्यधिका पुरा॥
सिंहासनोपविष्टस्तु श्वेतवस्त्रपरिच्छदः।
वसते तत्र वै कालं यावदाभूतसंप्लवं॥
यदि मानुष्यमायाति कदाचित् कालपर्य्यये।
चतुर्व्वेदगृहे जन्म जायते महताङ्कुले॥
रूपवान्बलवांश्चैव दीर्घायुः प्रियदर्शनः।
वल्लभः सर्व्वनारीणां दाता भोक्ता तथैव च॥

इति कृष्णाजिनदानविधिः।

अथ वह्निपुराणे।

ब्रह्मा उवाच।

विधिमा केन दातव्या कृष्णाजिनयुतास्तिलाः।

एतन्मे सर्व्वमाचक्ष्व यदि तुष्टोसि मे प्रभो ॥

यम उवाच ।

ग्रहणे अयनेचैव संक्रान्तौ सर्व्वपर्व्वसु ।
युगादिषु युगान्तेषु द्वादश्यान्नियतः शुचिः ॥
समुपोष्य समभ्यर्च्च्य केशवं कल्मषापहं ।
द्वादश्यान्तु चतुर्द्दश्यां कृष्णायान्तु विशेषतः ॥
संलिप्य गोमयेनाथ चतुर्हस्तप्रमाणतः ।
वस्त्राणि प्रस्तरेद्भूम्यामजिनं तत्र विन्यसेत् ॥
कृष्णैस्तिलैस्तु सञ्छन्नं कृत्वा तत्रोपरि न्यसेत ।
मधुसर्पिर्युतं पात्रं हैमञ्चौदुम्बरं तथा ॥
सुवर्णं प्रक्षिपेत्तत्र पलं वा त्रिपलं शतं ।
शक्तितो दानमेवं हि भक्तिरेवात्र कारणं ॥
संछाद्य तच्छुभैर्वस्त्रैः पात्रं यज्ञोपवीतिनं ।
कुम्भाश्चाष्टौ तथा दिक्षु सवस्त्राः पात्रसंयुताः ॥
तांस्थाप्य हवनङ्कृत्वा विधिवत्पूज्य केशवं ।
कृष्णाजिनं समभ्यर्च्य ब्राह्मणायोपपादयेत् ॥
कृष्णोऽस्मि कर्म्मणा कृष्ण कृष्णाजिनमतस्तिलैः ।
कृष्णैर्युतं प्रतिच्छस्व कृष्णः सम्प्रीयतामिति ॥
एवं दत्त्वा द्विजेभ्यस्तु दद्यात्पश्चाच्च दक्षिणां ।
तिलाहारो भवेत्तत्र ब्राह्मणान् भोजयेत्ततः ॥
एवं कृष्णाजिनन्दत्त्वा नरोविगतकल्मषः ।
पितामहान् समुद्धृत्य स्वर्गं याति न संशयः ॥

तत्र भोगांश्चिरं भुक्ता पितृपितामहैर्वृतः ।
स नरोऽस्य प्रभावाद्धि याति विष्णोः परम्पदं ॥

इत्यपरकृष्णाजिनदानविधिः ।

अथ मध्यमकृष्णाजिनदानं ।

तत्र पुलस्त्यः ।

अथातः कृष्णाजिनदानविधिं वक्ष्यामः । कार्त्तिक्यां पौर्णमास्यां वैशाख्यां वा, चन्द्रसूर्य्यग्रहे विषुवत्ययनयोर्व्वा, कृष्णमृगाजिनं सखुरं सशृङ्गं अव्रणं मनोहरं हिरण्यशृङ्गं रौप्यखुरं मुक्तालाङ्गूलभूषितं अन्तर्म्मांसम्बहिर्लोम प्राक्ग्रीवं स्यात्, गोमयलिप्तायां भुवि, कुतपानाविस्तीर्य्य तस्मिन्नाविकं वस्त्रं प्रसार्य्य, तस्मिन्नजिनं हिरण्यनाभं कृत्वा, तिलैः प्रच्छाद्य तद्रूपं कृत्वा वस्त्रयुगेन तिलान् प्रच्छादयेत् चतसृषु दिक्षु चत्वारि पात्राणि ताम्ररौप्यकांस्यसौवर्णानि यथाशक्तितः पूर्व्वस्यान्दिशि क्षीर पूर्णं, दक्षिणस्यान्दिशि दधिपूर्णं, पश्चिमस्यान्दिशि घृतपूर्णम्, उत्तरस्यान्दिशि क्षौद्रपूर्णन्निदध्यात्, चतसृषु दिक्षु चरस्त्रो गृष्टीर्निदध्यात्, पश्चिमे भागे सुसमिद्धमग्निं कृत्वा परिसमूह्य पर्य्युक्ष्य, परिस्तीर्य्य प्रागग्रे दर्भे महाव्याहृतिभिस्तिलान् घृताक्तान् जुहुयात्, शूद्रस्य नमस्कारेणेति तत आहिताग्नये ब्राह्मणाय सर्व्वाङ्गसम्पूर्णाय पात्रसंयुक्ताय विदुषे वस्त्रयुगोपच्छन्नायालङ्कृताय दद्यात् सर्व्वगुणविशिष्टं कृष्णाजिनं ददामीति नाभिं-स्पृशन्नदितये कृष्णाजिनं प्रतिगृह्णामीति असावपि गृह्णीयात्, प्रतिग्रहं वाचयेत् ।

अत्र हिरण्यशृङ्गमित्यादौ हिरण्यादिपरिमाणं यथारुचि वित्तशाठ्यरहितेनाचरणीयं। 'बहिर्लोमेति' 'उत्तरलोमेत्यर्थः' कुतपाः कुशाः। आविकं, वस्त्रकम्बलः। गृष्टिः, एकवारप्रसूता गौः। नाभिं स्पृशन्निति तिलमयीं सुवर्णाद्यलङ्कृतां नाभिं-दाता स्पृशन्नित्यर्थः। अदितये कृष्णाजिनमिति, प्रतिग्रहमन्त्रः। असाविति प्रतिग्रहीता स्वनामोच्चारयन् पुच्छदेशे प्रतिगृह्णीयात्।

विष्णुधर्म्मोत्तरे।

कृष्णाजिनविधिं ब्रूहि मम माधव पृच्छतः।
अन्यान्यपि तु दानानि सर्व्वपापहराणि च॥

श्रीभगवानुवाच।

वैशाख्यां पौर्णमास्याञ्च कार्त्तिक्यां विषुवे तथा।
अयने ग्रहणे वापि दद्यात् कृष्णमृगाजिनम्॥
भूमौ गोमयलिप्तायां दर्भानास्तीर्य्य मानवः।
तत्राविकं तथावस्त्रं प्रागग्रंच प्रसारितं॥
तस्मिन् कृष्णाजिनं भूप निर्मांसं सम्प्रसारयेत्।
प्रागग्रीवमुत्तरमुखं सशृङ्गं सखुरं तथा॥
स्वर्णशृङ्गं रौप्यखुरं मुक्तालाङ्गूलभूषितं।
तिलैः संच्छाद्य कृष्णैस्तु यथाशक्त्या यथाविधि॥
सौवर्णं क्षीरपात्रन्तु पूर्व्वस्यान्दिशि दापयेत्।
राजतं दधिपात्रन्तु दक्षिणस्यान्निधापयेत्॥
ताम्रपात्रंघृतपूर्णं पश्चिमायां निधापयेत्।
शङ्खं सुनाभिं सुमुखं क्षौद्रपूर्णं तथोत्तरे॥

चतसृषु तथा दिक्षु चतस्रो गृष्टिकाः क्रमात् ।
तत्स्वरूपन्तु राजेन्द्र तिलानाच्छाद्य वाससा ॥
पश्चिमे तु ततोभागे विधिना स्थाप्य पावकं ।
तिलान् घृताक्तान् जुहुयात् व्याहृतिभिः समाहितः ॥
आहिताग्निं ततोविप्रमव्यङ्गाङ्गं सुपाठकम् ।
प्रवक्तारं याज्ञिकञ्च दातारं स्मृतिविस्तरं ॥
सम्पूज्य वस्त्रयुग्मेन अलङ्कारैस्तु शोभितैः ।
दिशः सम्प्रोक्ष्य गायत्र्या तिलमिश्रेण वारिणा ॥
कृष्णाजिनं द्विजश्रेष्ठ सशिरो गृष्टिभिर्युतं ।
ददामि प्रतिगृह्णीष्व प्रीयतां धर्म्मराड़िति ॥
नाभिं स्पृशंस्तन्निनयेत् प्रतिगृह्णात्वसाविति ।
अदितिर्द्यौरिति जपेत् प्रणवेनादिना ततः ॥

सप्रणवं मन्त्रं प्रतिग्रहाद्यन्तयोः प्रतिग्रहीता जपेत् ।

गोभूहिरण्यसंयुक्तं मार्गमेतद्ददाति यः ॥

गोभूहिरण्यसंयुक्तमित्यत्र यथाशक्त्या गोभूहिरण्यं दक्षिणा ।

स सर्व्वपापकर्म्मापि सायुज्यं ब्रह्मणो व्रजेत् ।

इति मध्यमकृष्णाजिनदानविधिः ।

अथ महाकृष्णाजिनदानम् ।

विष्णुधर्म्मोत्तरे ।

श्रीभगवानुवाच ।

मुण्डिते या तु या प्रोक्ता प्रायश्चित्तं पुराभवत् ।
हत्यायां ब्राह्मणस्यैव तां प्रवक्ष्यामि मानद ॥

भूमिं प्राक्प्रवणां शुद्धां गोमयेनानुलेपयेत्।
तस्यां हरितदर्भांस्तु घनानास्तीर्य्य यत्नतः॥
मध्ये कृष्णाजिनं राजन् नार्द्रं सर्व्वाङ्गिकं दृढं।
आस्तीर्य्य शृङ्गसहितं प्राग्ग्रीवं शिरसा सह।
केतितं ब्राह्मणं पूर्व्वं पात्रलक्षणलक्षितं॥
केतितमिति, निमन्त्रितमित्यर्थः।
प्रक्षाल्य पादौ तस्यैव दद्यात् कृष्णे तु वाससी।
सौवर्णे कुण्डले देये कण्ठाभरणमेव च॥
सौवर्णे कङ्कणे देये हस्ताभरणमेव च।
स्रग्दामभिस्तु सम्पूज्य शृङ्गयोर्म्मध्यदेशतः॥
प्राङ्मुखं ब्राह्मणं स्थाप्य मृगं सौवर्णशृङ्गिकम्।
तिलैः प्रच्छादयेत् कृष्णैर्ब्राह्मणं शिरसा सह॥
यदा शिरो ब्राह्मणस्य मग्नं भवति भूभुज।
जपेद्वै मूलमन्त्रन्तु गायत्रीं वा समाहितः॥
पापं सञ्चिन्त्य चित्तेन हननं ब्राह्मणस्य तु।
नाभिमात्रं समुद्धृत्य तिलैः सञ्छादयेत्पुनः॥
सञ्छादिते पुनर्व्विप्रे जपेन्मन्त्रन्तु पूर्व्ववत्।
पुनरुद्धृत्य विप्रन्तु नाभिमात्रन्तु पार्थिव॥
पुनः सञ्छादयेत्तस्य शिरः कृष्णैस्तिलैस्तथा।
त्रिकृत्वस्तु निमज्ज्यैवं दाता दद्यान्मृगाजिनम्॥
पात्रं मनसि सञ्चिन्त्य तोयमप्सु विनिक्षिपेत्।
प्रीयतां विश्वकर्म्मा तु विश्वात्मा विश्वरूपधृक्॥
एवं कृष्णाजिनं दत्त्वा ब्रह्महत्यां व्यपोहति।

पापिष्ठः परमं स्थानं याति यत्र न शोचति ॥
इति ते गुह्यमाख्यातं दानं सर्व्वाघनाशनं।
मुण्डितेन तु कृच्छ्राय ब्राह्मणे घातिते सति।
सहस्रं दक्षिणां दद्यान्नियतं ब्राह्मणाय तु ॥

इति महाकृष्णाजिनदानविधिः।

अथ कृष्णाजिनप्रसङ्गेन मृगदानमुच्यते।

आह बौद्धायनः।

हरिणं कारयेत्ताम्रं घनन्तु दशभिः पलैः।
तदर्द्धेन तदर्द्धेन शृङ्गे रूप्यमये दृढ़े।
तण्डुलोपरि संस्थाप्य ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥
आढकत्रितयं वापि तदर्द्धं वा स्वशक्तितः।
पादेषु चतुर्षु स्थाप्य कांस्यपात्रचतुष्टयम्।
वायुदैवतमन्त्रैश्च होमं तत्र प्रकल्पयेत् ॥
समिदाज्यचरून् कृत्वा शतमष्टोत्तरं द्विज।
अष्टाविंशतिरेवाथ दानमन्त्रेण कारयेत् ॥
वायो चरसि भूतानामन्तस्त्वं लोकपावन।
वाहनस्य प्रदानेन वातव्याधिं विनाशय ॥
अनेन कृतमात्रेण यथोक्तेन विधानतः।
वातव्याधिविनिर्म्मुक्तोनीरुजः सुखमश्नुते ॥

इति मृगदानविधिः।

वायुपुराणे।

गुरोरलीकनिर्वन्धादपतन्त्री भवेन्नरः।

वक्ष्ये तस्य प्रतीकारं दानं होमादिसंयुतम् ॥
पलेनवा तदर्द्धेन तदर्द्धमाथ वा पुनः।
कारयेद्धरिणं हैमं वायोर्वाहनमुत्तमं ॥
शृङ्गे च राजते कार्य्ये पर्व्वत्रयसमन्विते।
तण्डुलोपरि संस्थाप्य ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥
आढ़कत्रितयं यद्वा तदर्द्धं वाथ शक्तितः।
पात्रेषु चतुर्षु स्थाप्य कांस्यपात्रचतुष्टयम् ॥
वायुदैवतमन्त्रैश्च होमं तत्र प्रकल्पयेत्।
समिदाज्यचरुं हुत्वा शतमष्टोत्तरं द्विजः ॥
आचार्य्यः सर्व्वशास्त्रज्ञः सर्व्वविद्यासु निष्ठितः।
एतद्दानप्रयोगज्ञो वेदवेदाङ्गपारगः ॥
अग्नेरीशानदिग्भागे सुकुम्भं स्थापयेत्सुधीः।
नवरत्नानि देयानि अलाभे स्वर्णमेव तु ॥
निक्षिपेत् मृत्तिकां वापि रोचनाङ्गुलं तथा।
चतुर्भिर्ब्राह्मणैश्चापि शान्तिकर्म्म प्रकल्पयेत् ॥
आपोहिष्टादिभिर्मन्त्रैर्हिरण्यादिभिरेव च।
पवमानानुवाकेन देवस्यत्वेतिचैव हि ॥
ततः पीठे समासीनमभिषिञ्चेयुराहताः।
वस्त्रेणावेष्टितं कुम्भमादाय चतुरा द्विजाः ॥
ततः शुक्लाम्बरधरो नरो शुक्लानुलेपनः।
आचार्य्येण समं पूजां हरिणस्य प्रकल्पयेत् ॥
वायोःशतेन मन्त्रेण तल्लिङ्गेनाथ वा पुनः।
ततस्तं हरिणं दद्यात् प्राङ्मुखाय ह्युदङ्मुखः ॥

मन्त्रेणानेन विधिना आचार्य्यायाथ भक्तितः।
वायो चरसि भूतानामन्तस्त्वं लोकपावन॥
प्राणा-पान-व्यानो-दान-समाना-द्यभिधानतः।
अलीकं यत् कृतं देव पूर्व्वजन्मनि मारुत॥
त्वं वेत्सि सर्व्वमेतद्धि परमात्मा यथैव हि।
वाहनस्य प्रदानेन अपतन्त्वं विनाशय॥
ब्राह्मणानां चतुर्णाञ्च यथाशक्त्या च दक्षिणा।
आचार्य्यस्त्वहतं वासो गृहीत्वा शुक्लमेव त॥
तेन तस्य यथालिङ्गमङ्गानि विमृजेत्सुधीः।
अक्षिभ्यामनुवाकेन यथालिङ्गं प्रयत्नतः॥
दर्भाग्रमुष्टिनाचैव दर्भपिञ्जलकैरपि।
हिरण्यवर्णाः शुचयः आपोहिष्ठेति वै पुनः॥
पवमानानुवाकेन आपो अस्मांस्तथैव च।
अन्यैश्च पावनैर्मन्त्रैर्य्यजुर्भिर्लोकपूजितैः॥
ब्राह्मणान् भोजयेच्चापि यथाविभवतोनरः।
एवङ्कृत्वा तु नियतमपतन्त्वाद्विमुच्यते॥
आयुरारोग्यसम्पन्नः सुखीभवति मानवः।
महाव्याधिषु चान्येषु दानमेतत् करोति यः।
तत्तद्दोषैर्व्विनिर्म्मुक्तो नीरुजोभवति प्रभो॥

इत्यपरमृगदानविधिः।

अथ महिषीदानं।

विश्वामित्रः।

महिषीं सुप्रजां राजन् क्षीराढ्यां युवतिं तथा।

दत्त्वा चैव तु कार्त्तिक्यां धेनूपस्करसंयुतां॥
दशधेनुप्रदानेन यत्फलन्तत्समश्नुते।
प्राप्नोति पुत्रपौत्रांश्च सूर्य्यलोकञ्च गच्छति॥

भविष्योत्तरे।

श्रीभगवानुवाच।

महिषीदानमाहात्म्यं कथयामि युधिष्ठिर।
पुण्यं पवित्रमायुष्यं सर्व्वकामसुखप्रदं॥
चन्द्रसूर्य्यग्रहे पुण्ये कार्त्तिक्यामयने तथा।
शुक्लपक्षचतुर्दश्यां सूर्य्यसङ्क्रान्तिवासरे॥
यदा वा जायते वित्तं चित्तञ्च कुरुनन्दन।
तदैव देया महिषी संसारभयभीरुणा॥
सुपयोधरा सुजघना सुशृङ्गी सुखुरा तथा।
प्रथमप्रसूता तरुणी सुशीला दोषवर्ज्जिता॥
सुवर्णशृङ्गतिलका घण्टाभरणभूषिता।
रक्तवस्त्रावृता रम्या ताम्रदोहनिकान्विता॥
पिण्याकपिटकोपेता सहिरण्या च शक्तितः।
सप्तधान्ययुता देया ब्राह्मणे वेदपारगे॥
पुराणपाठके तद्वज्ज्योतिःशास्त्रविदे तथा।
देया न वेदरहिते नबकव्रतिने क्वचित्॥
द्रव्यैरेभिः समायुक्ता पुण्येह्नि विधिपूर्व्वकं।
दद्यान्मन्त्रेण राजेन्द्र पुराणपठितेन तु॥
इन्द्रादिलोकपालानां या राजमहिषी शुभा।

महिषीदानमाहात्म्यात् सास्तु मे सर्व्वकामदा ॥
धर्म्मराजस्य साहाय्ये यस्याः पुत्रः प्रतिष्ठितः ।
महिषासुरस्य जननी या सास्तु वरदा मम ॥

दानमन्त्रः ।

दद्यात् प्रदक्षिणीकृत्य ब्राह्मणे तां पयस्विनीं ।
प्रतिग्रहः स्मृतस्तस्याः पृष्ठदेशे स्वयम्भुवा ॥

अत्रेदं दानवाक्यं ।

ओं अद्य अमुकसगोत्रायेत्यादि इमां महिषीं प्रथमप्रसूतां तरुणीं सुवर्णशृङ्गीं*, सुवर्णतिलकां सुवर्णाभरणां घण्टाताम्र-दोहनकान्वितां पिण्याकपिटकोपेतां सप्तधान्ययुतां पादुकवतीं यमदैवतां अमुककामस्तुभ्यमहं सम्प्रददे न ममेत्युक्ता पूर्वोक्तं मन्त्रमुदाहरेत् ।

अमुकसगोत्रायेत्यादि एतन्महिषीदानप्रतिष्ठार्थं दक्षिणा-मिदं हिरण्यं तुभ्यमहं सम्प्रददे न ममेति ।

एवं दत्त्वा विधानेन ब्राह्मणस्य गृहं नयेत् ।
क्षमापयेत्ततोविप्रान् सुसंतुष्टो भवेतिच ॥
अनेन विधिना दत्त्वा महिषीं द्विजपुङ्गवे ।
सर्व्वान् कामानवाप्नोति इह लोके परत्र च ॥
या स्त्री ददाति महिषीं सा राजमहिषी भवेत् ।
महाराजः पुमान् राजन् व्यासस्य वचनं यथा ।
यज्ञयाजी भवेद्विप्रः क्षत्रियोविजयी भवेत् ॥

* स्वर्णशृङ्गीमिति क्वचित्पाठः ।

वश्यस्तु धान्यधनवान् शूद्रः सर्व्वार्थसंयुतः।
तस्मान्नरेण दातव्या महिषी विभवे सति॥
पुत्रपौत्रप्रपौत्रार्थमात्मनः शुभमिच्छता।
दशधेनुसमां राजन्महिषीं नारदोऽब्रवीत्॥
विंशद्धेनुसमां व्यासः सर्व्वदानोत्तमां कविः।
सगरेण ककुत्स्थेन धुन्धुमारेण गाधिना॥
दत्ताः संस्कृत्य विप्रेभ्यो महिष्यः सर्व्वकामदाः।
महिषीदानमहात्म्यं यः शृणोति सदा नरः।
सर्व्वपापविनिर्म्मुक्तः शिवलोके महीयते॥
दुग्धाधिकां हि महिषीं नवमेघवर्णां
सन्तुष्टतर्णकवतीं जघनाभिरामां।
दत्त्वा सुवर्णतिलकां द्विजपुङ्गवाय
लोकद्वयञ्च जयतीह किमत्र चित्रं॥

इतिमहिषीदानविधिः।

अथ मेषीदानं।

तत्र कश्यपः।

योपि दद्यादविञ्चात्र ब्राह्मणाय मनोरमां।
सोप्यग्निलोकमासाद्य भुङ्क्ते भोगान् सुशोभनान्॥

विष्णुधर्म्मोत्तरे।

मेषीमशेषपापघ्नीं दत्त्वा याति परं पदं।
वारुणं लोकमाप्नोति दत्त्वोरभ्रं नरोत्तम॥

भविष्योत्तरे ।

श्रीभगवानुवाच ।

शृणु पार्थ परं दानं सर्व्वकिल्विषनाशनं ।
यद्दत्त्वा विविधं पापं सद्योविलयमृच्छति ।
सुवर्णरोमां सौवर्णीं प्रत्यर्चां वा सुशोभनाम् ।
सुवर्णतिलकोपेतां सर्व्वालङ्कारभूषिताम् ।
कौशेयपरिधानाञ्च दिव्यचन्दनभूषिताम् ।
दिव्यपुष्पोपहारान्तु सर्व्वधातुरसैर्युतां ॥
सप्तधान्यसमायुक्तां फलपुष्पवतीं तथा ।
शतेन कारयेत्ताञ्च सुवर्णस्य प्रयत्नतः ॥
यथा शक्त्याथवा कुर्य्याद्वित्तशाठ्यं न कारयेत् ।
अयने विषुवे पुण्ये ग्रहणे शशिसूर्य्ययोः ॥
दुःस्वप्नदर्शनेचैव जन्मर्क्षे तिथिसंक्षये ।
यदा वा जायते वित्तं चित्तं श्रद्धासमन्वितम् ।
तदैव दानकालः स्याद्यतोऽनित्यं हि जीवितं ।
दद्यात्तीर्थे गृहे वापि यत्र वा रमते मनः ॥
तत्र संस्थाप्य देवेशमुमया सह शङ्करम् ।
ब्रह्माणं सह गायत्र्या सश्रीकं श्रीधरं तथा ॥
रत्या सह तथानङ्गं लोकपालान् ग्रहानपि ।
तान्तु पूज्य विधानेन गन्धपुष्पनिवेदनैः ॥

उमाशङ्कररूपमाह ।

विश्वकर्म्मा ।

चर्म्माम्बरश्चतुर्व्वाहुः शूलखट्वाङ्गपाशधृक् ।

वृषाङ्कः शङ्करो गौरी वामोत्सङ्गे स्थिता भवेत् ॥

ब्रह्मगायत्रीरूपन्तु, पद्मपुराणोक्तब्रह्माण्डदाने द्रष्टव्यं।

लक्ष्मीनारायणयोस्तु, हेमहस्तिरथदाने। रत्यनङ्गयोस्तु, कल्पपादपदाने, लोकपालानाञ्च, ब्रह्माण्डदाने, ग्रहरूपाणि च, ग्रहदानेषु वक्ष्यन्ते तानि च यथाशक्ति सुवर्णमयानि कर्त्तव्यानीति।

तदग्रे कारयेद्धोमन्तिलाज्येन महीतले।
अलङ्कृत्य द्विजं शान्तं वासोभिः परिपूज्य च।
तल्लिङ्गमन्त्रैर्होमश्च कर्त्तव्योज्वलितेऽनले।
ततस्तांस्तिलकुम्भस्थान् लवणाभिमुखस्थितान्।
पूजयित्वा विधानेन मन्त्रमेतमुदीरयेत्।
रोमत्वङ्मांसमज्जाद्यैः सर्व्वोपकरणैः सदा।
जगतः संप्रवृत्तोसि त्वामतः प्रार्थयेच्छिवं।
वाङ्मनःकायजनितं यत्किंचिन्मम दुष्कृतं।
तत् सर्व्वं विलयं यातु त्वद्दानमुपसेवितं।
एवमुच्चार्य्य तां दद्याद्ब्राह्मणाय कुटुम्बिने।

दानवाक्यन्तु, महिषीदानवदवगन्तव्यं

केवलं महिषीस्थाने मेषीप्रयोग इति।
नाभिभाषेत्ततोदत्त्वा न मुखञ्चावलोकयेत्।
दुष्टप्रतिग्रहहतोविप्रो भवति पातकी ॥
नोर्ध्वायुर्दक्षिणाहीना दातव्या नाविधानतः।
दक्षिणा विधिना हीना दुःखशोकावहा भवेत् ॥
पुरा दत्तमिदंदानं गौर्य्या दक्षगृहस्थया।

तेन शुभपतिर्लब्धः सर्व्वदेवनमस्कृतः॥
इन्द्राण्या स्वर्णरोमाणां शतं दत्तं विधानतः।
सर्व्वदेवपतिर्लब्धः साद्यापि दिवि मोदते॥
नलेन दत्तमेतद्धि राज्यं कृत्वा दिवङ्गतः।
रुक्मिण्याहं पतिर्लब्धः सौभाग्यमतुलं तथा॥
दानस्यास्य प्रभावेण पुत्रा बहुवलान्विताः।
अपुत्रोलभते पुत्रं अधनोलभते धनं॥
दत्त्वा दानं शुभाङ्कान्तिं विपुलाञ्च तथा श्रियम्
य इमं शृणुयान्नित्यन्दानकल्पमनुत्तमम्।
अहोरात्रकृतात् पापान्मुच्यते नात्र संशयः॥

मेषोमर्षणकलुषापहरातिरम्यां
दाने सदैव रसधातुयुतां सधान्यां।
तामादरेण कुरुनन्दन देहि दत्त्वा
येनास्तपापतिमिरः सवितेव भासि।

इति मेषीदानविधिः।

अथ मेषदानम्।

तत्र वौधायनः।

अग्नेर्मान्द्यं भवेत्तस्य यस्तेताग्निविनाशकः।
वक्ष्यामि तत्प्रतीकारं यथोक्तं ब्रह्मणा पुरा॥
पलार्द्धेन तदर्द्धेन तदर्द्धार्द्धेन वा पुनः।
राजतं कारयेत् सौम्यमग्नेर्वाहनमुत्तमम्।

सौवर्णाश्च खुराः कार्य्याः श्वेतवस्त्रेण वेष्टयेत्।
श्वेतमाल्यैः श्वेतगन्धैर्धूपन्दद्याच्चधूत्कटम्।
तण्डुलोपरि संस्थाप्य पुनस्तं पूजयेत् सुधीः।
तन्दुलानां परीमाणं द्रोणद्वयमुदाहृतम्॥
आग्नेय्यां दिशि होमश्च समिदाज्यतिलैरपि।
आचार्य्येण विनीतेन सर्व्वशास्त्रार्थवेदिना॥
बह्वृचेनच कर्त्तव्यस्तत्र मन्त्रानिमान् शृणु।
अग्निर्मूर्द्धति मन्त्रेण समिद्धोमः प्रशस्यते॥
अग्नेनयेत्याज्यहोमोप्यग्निनाग्निस्तिलाक्षतैः।
मन्त्राध्यायोक्तमन्त्रेण चाग्निसंस्थापनं भवेत्॥
अग्नेः प्रागुत्तरे देशे शुभं कुम्भन्तु विन्यसेत्।
प्रणीतामोक्षपर्य्यन्ते कृते स्नानं विधीयते॥
आपोहिष्ठेत्यपि ऋचं हिरण्येति चतुर्ऋचं।
पवमानानुवाकेन मार्जयेद्रोगिणं ततः॥
शन्नोदेव्यनुवाकेन शान्तिं चापि प्रकल्पयेत्।
तस्मै हुतवते रोगी प्राङ्मुखाय ह्युदङ्मुखः।
पूजिताय यथाशक्त्या दद्यात्तन्तु सदक्षिणं।
देवानां योमुखं हव्यवाहनः सर्व्वपूजितः॥
तस्य त्वं वाहनं पूज्यं देवैः सेन्द्रैर्महर्षिभिः।
अग्निमान्द्यं पूर्व्वकर्म्मविपाकोत्थन्तु यन्मम।
वत्सत्व्वं नाशय क्षिप्रं जठराग्निं प्रवर्द्धय॥

दानमन्त्रः।

एवं विप्राय योदद्यादग्नेर्वाहनमुत्तमम्।

बलवानग्निमान्मर्त्यो जीवेद्वर्षशतं पुनः ।
ततःस्वबन्धुभिर्व्विप्रैः स्नात्वा भुञ्जीत मानवः ॥

इति मेषदानं ।

अथ क्रमप्राप्तानां दशधेनुदानानां प्रागभिहितत्वान्मेषोदानप्रसङ्गादजादानमारभ्यते ।

अत्राह सुमन्तुः ।

प्रजापतिस्तपस्तप्ता प्रजामुत्पाद्य यत्नतः ।
यज्ञार्थं तत्सुतं कल्प्य पशुं यज्ञसमुद्भृतौ ।
द्विरूपं त्रिपुरं श्लक्ष्णं कृष्णसारं युवानकं ।
असमासिस्तु यज्ञानां सत्राणां पितृकर्म्मणां ।
तत्समं विहितं देवैस्तद्दानञ्च निगद्यते ॥
अजापालो महीपालो ह्यजादानैर्द्दिवङ्गतः ।
अयने विषुवे चैव युगादौ ग्रहणेषु च ॥
अमावास्यामजादानं पौर्णमास्याञ्च शस्यते ।
विधिं तस्य प्रवक्ष्यामि विश्वामित्रेण निर्म्मितं ॥
सर्व्वरत्नोपसम्पन्नां सप्तधान्योपरि स्थितां ।
वस्त्रमाल्योपमालाञ्च भूषितां पशुजानकीं ॥
वज्रनेत्रां हेमशृङ्गीं ताम्रपृष्ठां सदोहनीं ।
ससुतां रौप्यपादाञ्च कुचौ दद्यात्तिलोदकं ॥
गोदानवत् प्रयुञ्जीत मन्त्रेणानेन संयतः ।
मन्त्रवासे अजे श्लक्ष्णे यज्ञसंपत्कारे शुभे ।
सृष्टा त्वं दह मे पापं जन्मान्तरशतैः कृतं ॥

दानमन्त्रः।

एवं समुच्चरेद्भक्त्या द्विजहस्ते जलं क्षिपेत्।
प्रीयतां यज्ञनाथाय वासुदेवाय वै नमः॥
एवं प्रदक्षिणीकृत्य सूर्य्यं समवलोकयेत्।
ततश्च गच्छेत् स्वगृहं हरिं संस्मृत्य मानवः॥
ये बालत्वे कृताः पापाः कामतोवाप्यकामतः।
यौवने वार्द्धकौमारे प्रसङ्गेनापि पातकं॥
अजादानस्य माहात्म्यात् निष्पापोजायते नरः।
पुत्रपौत्रसमायुक्तः सदाचारमतिश्चिरम्।

महाभारते।

अजामलङ्कृतां दत्त्वा वह्निलोके महीयते।
तमेव लोकमाप्नोति दत्त्वाजं विधिवन्नरः।
सर्व्वान् कामानवाप्नोति ये ये चेतसि संस्थिताः॥

तथा।

अजाविकञ्च महिषं दत्त्वा विप्राय शक्तितः।
घृतक्षीरवहा नद्यो यत्र यत्र स मोदते॥

विष्णुधर्म्मोत्तरे।

उष्ट्रस्था गर्द्दभस्थापि यः प्रयच्छति तु द्विजे।
अजामुरभ्रं तुगरं यथा शक्त्या सदक्षिणं॥
अलकां स समासाद्य यक्षेन्द्रैः सह मोदते।
सर्व्वकामसमृद्धात्मा सर्व्वयज्ञफलं लभेत्॥

तस्मादजां प्रयच्छ त्वं ततः सर्व्वमवाप्स्यसि।
मन्त्रेणानेन विधिवदलङ्कृत्य स्वशक्तितः॥
त्वं पूर्व्वं ब्रह्मणा सृष्टा पवित्रा भवती परं।
त्वत्प्रसूतोत्थिता यस्मात्तस्माच्छान्तिकरी भव॥
प्रतिगृह्णीत ताञ्चैव पृष्ठदेशे द्विजोत्तमः॥

दानवाक्यन्तु, महिषीदानवद्विज्ञेयं।

एवं प्रदाय विप्राय सर्व्वपापैः प्रमुच्यते।
अश्वमेधफलं प्राप्य मोदते वैष्णवे पुरे॥

इत्यजादानविधिः।

इति श्रीमहाराजाधिराज-श्रीमहादेवस्य समस्तकरणाधीश्वर-
सकलविद्याविशारद श्रीहेमाद्रि-विरचिते चतुर्व्वर्ग-
चिन्तामणौ दानखण्डे कृष्णाजिनादि-
दानप्रकरणम्॥

# अथ एकादशोऽध्यायः ।

---

## अथ देवतादानानि ।

आहूता यस्य यज्ञेष्वनवरतपरीरम्भसम्भोगलीला-
शर्म्म स्वर्गाङ्गनानां कथमपि शिथिलीकृत्य तीकान्निवृत्ताः ।
गीर्व्वाणश्रेणिमुख्यास्त्रिभुवनजयिभिर्य्यच्चरित्रैः पवित्रां
धात्रीमामाद्य सद्यः स्वभवनगमनं विस्मिता विस्मरन्ति ॥
विश्वोपकृतिशीलेन तेन हेमाद्रिसूरिणा ।
क्रमेण देवतादानमिदानीमुपवर्ण्यते ॥

## तत्र बौद्धायनः ।

सौवर्णं राजतं ताम्रं कारयेत् कांस्यतोपिवा ।
यद्वार्कमूलकाष्ठेन विघ्नं विभवतोनरः ॥
पुष्करं कल्पयेद्धेमं सौवर्णं लोचनद्वयं ।
आखुञ्च कल्पयेत्तस्य यथा देवो विनिर्म्मितः ॥
नागयज्ञोपवीतञ्च कल्पयेत्तस्य गुल्मवान् ।
अनन्तरं तं वासोभिश्चन्दनागुरुपूजितं ॥
सहिरण्यं ब्राह्मणाय स्वशक्त्या पूजिताय तु ।
कृतहोमाय शान्ताय सर्व्वशास्त्रार्थवेदिने ॥

मन्त्रेणानेन विधिवद्दक्षिणाभिमुखाय तु ।
विनायक गणेशान सर्व्वदेवनमस्कृत ॥
पार्व्वतीनन्दन मम गुल्ममाशु विनाशय ।

दानमन्त्रः ।

कृतेनानेन दानेन निरोगो जायते नरः ॥

इति विनायकदानविधिः ।

तथा ।

ब्राह्मणश्वासरोधेन ह्यपस्मारो भवेन्नरः ।
वक्ष्ये तस्य प्रतीकारन्दानहोमक्रियादिभिः ॥
पलेनवा तदर्द्धेन तदर्द्धार्द्धेन वा पुनः ।
विनायकप्रतिकृतिं कुर्य्यात् स्वर्णेन शोभनां ॥
राजतञ्च तथा नागमुपवीतं प्रकल्पयेत् ।
पुष्करं पद्मरागेण हस्तं रत्नैः प्रकल्पयेत ॥
विनायकार्द्धमानेन चाखुन्देवस्य कल्पयेत् ।
तस्याप्यङ्गे प्रदेयानि रत्नानि विविधानि च ॥
माणिक्येन प्रकुर्व्वीत चक्षुषो तस्य शोभने ।
पूर्व्वेद्युर्म्मण्डपङ्कुर्य्याद्धस्तैः षोड़शभिर्दृढं ॥
यद्वा द्वादशभिः कुर्य्यादष्टाभिर्व्वा प्रयत्नतः ।
मण्डपस्य चतुर्भागां वेदिकामपि कल्पयेत् ॥
रात्रौ विनायकस्यापि ह्यधिवासनमिष्यते ।
चतुर्भिर्ब्राह्मणैः सार्द्धमाचार्य्यः सर्व्वशास्त्रवित् ॥
स्वयमेव हि आचार्य्यो धर्म्मज्ञः सत्यवाक् शुचिः ।

कुलीनो नच वृद्धश्च सर्व्वप्राणिहिते रतः॥
रात्रौ जागरणं कृत्वा मध्यरात्रे बलिं हरेत्।
मत्स्यमांसेन सहितं तथा चौरोदनेन च॥
आचार्य्यः प्रयतोभूत्वा मन्त्रेणानेन संयतः।
पूर्व्वस्यान्दिशि तं दद्याद्बलिं वै सार्व्वकामिकं॥
आदित्या वसवोरुद्रा देवा भूतानि सर्व्वशः।
सर्पाः पिशाचा डाकिन्यः शाकिन्यः पान्यदेवताः॥
अपस्माराभिदैवश्च वेताला नैर्ऋतास्तथा।
बलिदानेन दत्तेन शान्तिं कुर्व्वन्तु सर्व्वशः॥

बलिदानमन्त्रः।

ततः प्रभाते विमले स्नात्वा स्वच्छवाससः।
भूषिताः कटकैः सम्यक् उपवीताङ्गुलीयकैः॥
कुण्डानि दिक्षु चत्वारि मेखलासंभृतानि तु।
कुर्य्यात्तेषु प्रकुर्व्वन्ति होममन्त्रैः स्वकैः सदा॥
पूर्व्वस्मिन्बह्वृचः कुर्य्यात्समिदाज्यचरुत्कटं।
विनायकं समुद्दिश्य गणानांत्वेति मन्त्रतः॥
तत्पुरुषाय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि तन्नोदन्तो प्रचोदयात्।
अध्वर्य्युर्दक्षिणे कुण्डे कुर्य्याद्धोमं समाहितः।
छन्दोगः पश्चिमे वा पि तद्दैवत्येन होमयेत्॥
आथर्व्वणश्चोत्तरे च कुण्डे होमं प्रकल्पयेत्।
विनायकाय देवाय सर्व्वभूतहिताय च॥
गाणपत्ये नियुक्ताय हूं फट् स्वस्ति स्वधा नमः॥

समिदाज्यचरुं हुत्वा पूर्णाहुत्यन्तमेव हि।
आचार्य्यः प्रतिमानां तु ब्राह्मणैः सह संयुतः॥
आसने वेदिकामध्ये वितानादिसुशोभिते।
तिलानामुपरि स्थाप्य गन्धमाल्यैः प्रपूजयेत्॥
वस्त्रैर्नानाविधैः शुभ्रैः केयूरकटकादिभिः।
उपचारैः षोड़शभिर्नैवेद्याय च मोदकाः।
यथा देवे तथा चार्य्यैप्यलङ्कारादि कल्पयेत्॥
आचार्य्यः परया भक्त्या गणेशाय प्रकल्पयेत्॥
अपूपादि तथान्यच्च कारयेत् भक्ष्यकादिकं।
निवेद्य पार्व्वतीञ्चापि देवदेवं महेश्वरं॥
पूजयेत् परया भक्त्या आचार्य्यः स्वयमेव हि।
तथैव रोगवान् भक्त्या संपूज्य गणनायकं।
गणानान्त्वेति मन्त्रेण तूष्णीं शूद्रस्तु पूजयेत्॥
ततो मध्यन्दिने प्राप्ते प्रतिमां दक्षिणायुतां।
मन्त्रेणानेन दद्याच्च स रोगी प्राङ्मुखः स्वयं॥
उदङ्मुखोपविष्टाय ब्राह्मणायातिभक्तितः।
विनायक प्रपन्नार्त्तिहर विघ्नविनायक॥
त्वं देवैः प्रथितः पूर्व्वं विघ्नविघ्नपरायणैः।
ब्राह्मणश्वासरोधेन यज्जातं मम वैकृतं॥
पूर्व्वकर्म्मविपाकेन ह्यपस्मारोन्मदादिकं।
जाड्यं वाप्य थ वाधिर्य्यं नासिक्यं वाथ भाषिणं।
त्वद्दत्तायाः प्रदानेन रोगमाशु विनाशय॥

दानमन्त्रः।

चतुर्णां ब्राह्मणानाञ्च यथा शक्त्या च दक्षिणां।
एवं कृत्वा गणपतेर्दानं मर्त्त्यः सुखी भवेत्॥

इति विनायकदानविधिः।

सौवर्णं राजतं ताम्रं कांस्यपित्तलतोपि वा।
यद्वार्कमूलकाष्ठेन विघ्नं विभवतो नरः॥
पुष्करं कल्पयेद्धेमं सौवर्णं लोचनद्वयं।
आखुञ्च कल्पयेत्तस्य पादेन च सुवर्णकं॥
नागाकारं चोपवीतं सुवर्णेन प्रकल्पयेत।
तिलाढ़कद्वये वस्त्रयुग्मस्योपरि स्थापयेत्॥
भूमौ शुद्धप्रदेशे तु भक्त्या प्रयतमानसः।
वस्त्रेणावेष्ट्य मतिमान् पूजयेत्तं विनायकं॥
चन्दनागुरुधूपैश्च कुङ्कुमेनोपलेपयेत्।
पूजयेद्वाहनं वापि यथा देवं तथैव हि॥
आचार्य्यस्तु तिलैर्होमं कुर्य्यादष्टोत्तरं शतं।
गणानान्त्वेतिमन्त्रेण तथैवाज्याहुतीः क्रमात्॥
तस्मै होमं कृतवते शान्ताय प्रयतात्मने।
धर्म्मशास्त्रप्रवीणाय वेदवेदाङ्गवेदिने॥
स्वाचारायातिशिष्टाय दक्षिणाभिमुखाय च।
शुक्लपक्षे चतुर्थ्यान्तु सर्व्वमेतत् प्रकल्पयेत्॥
पूजयेत्तं तथाचार्य्यं वस्त्रेण प्रयतः शुचिः॥
पूर्व्वकर्म्मविपाकेन इह कर्म्मकृतेन च॥
प्लीहगुल्मोदराष्ठीला उदरव्याधयस्तु ये।

तत्सर्व्वं नश्यते तूर्णं दाने दत्ते न संशयः ॥
मन्त्रेणानेन विधिवद्भक्त्या परमया युतः ।
विनायक गणेशान सर्व्वदेवनमस्कृत ॥
पार्व्वतीनन्दन मम शमय व्याधिमौदरं ।
गुल्म प्लीहानमष्ठीलं व्याधिजातं यदौदरं ॥
तव दानेन महता युक्तेनाखुरतेन हि ।
नाशयाशु महेशानपुत्र भक्तस्य च प्रभो ॥

दानमन्त्रः ।

एवं कुर्य्याद्गणपतेर्द्दानं व्याधिविमोचनं ॥

इति विघ्नेशदानविधिः ।

अथ सरस्वतीदानम् ।

वायु पुराणे ।

वाग्विरोधं गुरोःकृत्वा भवेद्गद्गदवाक् नरः ।
तस्य वक्ष्ये प्रतीकारन्दानेन ऋषिभाषितं ॥
पलेनाथ तदर्द्धेन तदर्द्धार्द्धेन वा पुनः ।
सारस्वतीञ्च प्रतिमां कुर्य्याद्भुजचतुष्टयां ॥
वरदञ्चाक्षसूत्रं च बिभ्रतीं दक्षिणे करे ।
पुस्तकञ्चाभयं वामे दधानां हंसवाहनां ॥
अतिशुभ्रेण रौप्येण कूटस्वर्णेन वा भवेत् ।
आसनञ्च प्रकुर्व्वीत सौवर्णं पद्ममुत्तमम् ॥
तस्योपरि च संवेश्य देवीं वागीश्वरीं पराम् ।

मुक्तादामभूषिताङ्गीं शुक्लवस्त्रेण संयुतां।
वागीश्वरेण मन्त्रेण पूजयेत् सिततण्डुलैः॥
श्वेतपुष्पैः श्वेतगन्धैः संस्कृत्य विधिपूर्व्वकं।
ब्राह्मणः सर्व्वशास्त्रज्ञः कुशलः सर्व्वसम्मतः॥
मन्त्रवादप्रवीणश्च तेन होमञ्च कारयेत्।
पायसञ्जुहुयादष्टशतं शालिमयं तथा॥
जुहुयात् समिधश्चापि तथाज्यञ्च तिलानपि।
सरस्वतीप्रेदमवद्गतिवा मन्त्र उच्यते॥
कृते ब्रह्मोद्दासने तामाचार्य्याय निवेदयेत्॥
मन्त्रेणानेन विधिवत् प्राङ्मुखाय ह्युदङ्मुखः।
सम्पूज्य ब्राह्मणं सम्यक् वस्त्रालङ्कारपूर्व्वकम्॥
या वक्त्रे ब्रह्मणो देवी या सा वागीश्वरी परा।
ब्रह्मविष्णुशिवैश्चान्यैः पूजिता सर्व्ववन्दिता॥
तुष्टा भवतु दानेन दत्तेनानेन वाक्परा।
वाग्विरोधं गुरोः कृत्वा यन्मे गद्गदभाषणं।
तत् सर्व्वं क्षपय क्षिप्रं ब्राह्मी त्वं लोकपावनी॥

तथा दानमन्त्रः।

अनुज्ञाप्य ब्राह्मणं तं स्वयं भुञ्जीत मानवः॥

इति स्वरस्वतीदानविधिः।

तथा।

स्वरोपघाती वाचाश्च हर्त्ता मूकः प्रजायते।
वक्ष्ये तस्य प्रतीकारन्दानहोमैर्नरोत्तमः॥

पलार्द्धेन तदर्द्धेन तदर्द्धार्द्धेन वा पुनः।
रजतेन सुशुद्धेन कुर्य्यात् प्रतिकृतिं शुभां॥
स्वरस्वतीं चतुर्हस्तां पाशाङ्कुशकमण्डलुम्।
तथैवाभयहस्ताञ्च श्वेतवस्त्रेण संयुतां॥
श्वेतमाल्यैः श्वेतगन्धैर्मूलमन्त्रेण पूजयेत्।
होमञ्च कारयेत् तत्र समिदाज्यचरूत्कटं॥
सरस्वतिप्रेदमव इति मन्त्रश्च चोदितः।
आचार्य्यः सर्व्वशास्त्रज्ञः स्वाचारः संयतेन्द्रियः॥
धर्म्मज्ञः सत्यवादी च मेधावी सुपदस्तथा।
एवंलक्षणसंयुक्तः सर्व्वत्राचार्य्य इष्यते।
प्रणम्य गृहमानीय पूजयेद्भक्तिपूर्व्वकं।
एवं होमञ्च कृत्वा तु पूजयेच्च सरस्वतीं।
सरस्वत्यै नम इति यथा लिङ्गन्तु मन्त्रतः।
तस्मै हुतवते तान्तु देवीं दद्यात् सदक्षिणाम्॥
मन्त्रेणानेन विधिवत् प्राङ्मुखाय ह्युदङ्मुखः।
सौम्ये देवि महाभागे सर्व्वदेवनमस्कृते॥
पद्मासनगते सर्व्वजगतामार्त्तिहारिणि।
स्वरोपघातान्मदीयन्तु प्रज्ञाजाड्यमपानुद॥

दानमन्त्रः।

एवं दत्त्वा तु प्रकृतिं सरस्वत्याः प्रयत्नतः।
स्वरोपघातजनितात् प्रज्ञाजाड्याद्विमुच्यते॥
मेधाकरमिदं दानं सर्व्वेषां च विशेषतः।

विशेषश्चायमुदितोजपस्योपक्रमो भवेत्॥
तद्दैतत् प्रथमं दानं कृत्वा जपमुपक्रमेत्।
नैवेद्यं पायसन्दद्यात् स्वयन्तदुपयोजयेत्॥
पूर्व्वेद्युरुपवासञ्च कृत्वैवोपक्रमोभवेत्।
कायशुद्धिश्च कर्त्तव्या यावतालवणोभवेत्॥

इत्यपरसरस्वतीदानविधिः।

अथ घण्टादानम्।

ब्रह्मवैवर्त्तपुराणे।

गुरुणाह्यननुज्ञातो यो वेदाध्ययनं चरेत्।
स प्रज्ञया विहीनस्तु संसारे जायते नरः॥
वक्ष्यामि तत्प्रतीकारं शुद्धकांस्यमयीं दृढ़ां।
शोभनां घाटयेद्घण्टां शुभरेखाविभूषिताम्॥
पलैस्तु कुर्य्याद्विंशद्भिस्त्रिंशद्भिर्व्वा तदर्द्धतः।
सुस्वरान्तामतिश्लक्ष्णां पञ्चगव्येन धावयेत्॥
श्वेतवस्त्रेण सम्वीतान्तण्डुलोपरि विन्यसेत्॥
तण्डुलानां परीमाणन्द्रोणानान्त्रयमेव च।
तदर्द्धमथवा ग्राह्यं परीमाणं स्वशक्तितः॥
आचार्य्यः सर्व्वशास्त्रज्ञो वेदवेदाङ्गपारगः।
धर्म्मशास्त्रे च कुशलः स्वाचारः सञ्जितेन्द्रियः*।
आहूय परया भक्त्या स्वयमेव गृहं गतः॥

---

* संयतेन्द्रिय इति पुस्तकान्तरे।

तेनैव कारयेत् पूजां घण्टायाः शास्त्रचोदितैः ॥
उपचारैः षोड़शभिर्मन्त्रेणानेन भक्तितः ।
आवाहयेत्तु वागीशां घण्टायां परमेश्वरीं ॥
एह्येहि देवि सर्व्वेशि घण्टायां सन्निधिं कुरु ।
सर्व्वसत्त्वोपकारी त्वं ज्ञानमुद्रे परात्परे ॥

आवाहन मन्त्रः ।

एवमावाह्य तां घण्टां ब्राह्मणञ्चापि पूजयेत् ।
ब्रह्मयज्ञानमन्त्रेण घण्टां पूज्य तथाम्बरं ॥
मन्त्राध्यायोक्तमार्गेण प्रतिष्ठाप्याथ भक्तितः ।
होमं कुर्य्यात् प्रयत्नेन समिदाज्यतिलैरपि ॥
नैवेद्यं पायसन्दद्यात् देव्यै च ब्रह्मणे तथा ।
सरस्वतिप्रेदमिति मन्त्रः सर्व्वत्र सम्मतः ॥
तस्मै हुतवते दद्यात्तां घण्टां पूजिताय तु ।
मन्त्रेणानेन विधिवद्रोगी पूर्व्वमुखः शुचिः ॥
उदङ्मुखोपविष्टाय सतोयामथ भक्तितः ।
गुरोरवज्ञया यच्च स्वाध्यायाध्ययनं कृतं ॥
सरस्वति जगन्मातर्जगज्जाड्यापहारिणी ।
साक्षाद्ब्रह्मकलत्रं त्वं विष्णुरुद्रादिभिस्तुता ॥
तन्ममाध्ययनोत्पन्नं जाड्यं हर वरानने ।
घण्टादानेन तुष्टा त्वं ब्रह्माणी लोकपावनि ॥
एवं दानञ्च दत्त्वा च तमाचार्य्यं क्षमाप्य च ।
अन्येभ्यः शक्तितोदद्याद्ब्राह्मणेभ्यश्च भोजनम् ॥

ततः स्वबन्धुभिः सार्द्धं स्नात्वा भुञ्जीत मानव. ॥
एवं यः कुरुते दानं प्रज्ञाहीनो जडो वा।
प्रज्ञावानजडोजन्तु र्जायते वाक्पतिर्यथा।
जायते वाक्प्रवाहश्च, साक्षाद्गङ्गाप्रवाहवत् ॥

इति घण्टादानविधिः।

अथ लक्ष्मीदानं।

लिङ्गपुराणे।

लक्ष्मीदानं प्रवक्ष्यामि महदैश्वर्य्यवर्द्धनम्।
लूतादिव्रणनाशाय विशेषेण शिवोदितम् ॥
पूर्व्वोक्तमण्डपं कृत्वा वेदिकोपरिमण्डले।
श्रीदेवीमतुलां कृत्वा हिरण्येन यथाविधि ॥
सहस्रेण तदर्द्धेन तदर्द्धार्द्धेन वा पुनः।
अष्टोत्तरशतेनापि सर्व्वलक्षणसंयुतां ॥
मण्डले विन्यसेल्लक्ष्मीं सर्व्वालङ्कारसंयुतां।
तस्यास्तु दक्षिणे भागे स्थण्डिले विष्णुमर्च्चयेत् ॥

पूर्व्वोक्तेति, कुण्डमण्डप-मण्डलवेदिका-वितानादि-लिङ्गपुराणोक्ततुलापुरुषविहितमिति वेदितव्यं,सहस्रादिसंख्याचात्र निष्कैः परिपूरणीया, लिङ्गपुराणोक्तदानेषु प्रायशस्तैरेव व्यवहारदर्शनात्।

लक्ष्मीलक्षणमुक्तं कल्पपादपप्रदाने।

अर्च्चयित्वा विधानेन श्रीसूक्तेन सुरेश्वरीं।
अर्च्चयेद्विष्णुगायत्र्या विष्णुं विश्वगुरुं हरिं ॥

आराध्य विधिना सिद्धिं पूर्व्वतोहोममारभेत्।
समिद्धृत्या विधानेन आज्याहुतिमुपाचरेत्॥
पृथगष्टोत्तरशतं होमयेद्ब्राह्मणोत्तमः॥

श्रीसूक्तं, हिरण्यवर्णां हरिणीमित्यादि, विष्णुगायत्री तु लिङ्गपुराणएवोक्ता, नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि तन्नो विष्णुः प्रचोदयात् इति, पूर्वोक्तमण्डले लक्ष्मीं विन्यस्य तस्या दक्षिणतः स्थण्डिले विष्णुदेवत्या गायत्र्या विष्णुदेवमाराध्य ततः पञ्चदशर्चेन श्रीसूक्तेन यथाक्रमं षोड़शोपचारैः श्रियं पूजयेत् आराध्य सिद्धिमिति, सिद्धिर्लक्ष्मीः।

कामिके तु।

श्रीमन्त्रेण यजेल्लक्ष्मीं श्रीसूक्तेनाथ वार्च्चयेत्।
पूर्व्ववच्छिवपूजाच होमश्चैव विशेषतः॥
एकहोमन्तु वा कुर्य्यात् प्रागुक्तविधिना गुरुः।
सहस्रकलशाद्यैश्च श्रियमर्च्च्य श्रियन्ददेदिति॥

होमश्च श्रीसूक्तेनैव आहूय यजमानं तु तस्याः पूर्व्वदिशि स्थले।

त स्यैतां दर्शयेद्देवीं दण्डवत् प्रणमेत् क्षितौ।
प्रणम्य विष्णुं तत्रस्थं शिवं पूर्व्ववदर्च्चयेत्॥

पूर्व्ववदिति लिङ्गपुराणोक्ततुलापुरुषवदित्यर्थः।

तस्या विंशतिभागस्तु दक्षिणा वै प्रकीर्त्तिता।
तद्दशांशा तु दातव्या इतरेषां यथार्हतः।
ततस्तान् भोजयेद्विप्रान् वेदवेदाङ्गपारगान्॥

तस्या लक्ष्मीप्रतिमायाः विंशांशस्य समानतो ॥

अन्यदनं गुरवे दक्षिणां दशांशमानं प्रत्येकमृत्विग्भ्यः इतरेभ्यो द्वारजापकेभ्योपि ऋत्विगर्द्धं।

तदुक्तं वातुले।

लक्ष्मीं प्रणम्य विद्वद्भ्यः श्रोत्रियेभ्यः समर्पयेत्।
तस्माद्विंशतिभागस्तु दक्षिणा देशिकस्य हि ॥
तद्दशांशस्तु दातव्योजस्रा वेदविदाम्बरः।
पुण्याहवाचकानां तु पूर्व्वोक्तं दापयेत् तथा ॥

इति लक्ष्मीदानविधिः।

अथ नारायणदानम्।

ब्रह्मप्रोक्तं।

यज्ञविघ्नकरोमर्त्योजायते चाल्पबुद्धिमान्।
वक्ष्यामि तत्प्रतीकारन्दानहोमादिकर्म्मणा ॥
कुर्य्यात् स्वर्णमयीं मूर्त्तिं शुभां नारायणस्य तु।
व्यावहारिकनिष्काभ्यामेकेनाथ तदर्द्धतः ॥

नारायणलक्षणमुक्तं,

हेमहस्तिरथदाने।

प्रक्षाल्य पञ्चगव्येन स्थापयेत् कुङ्कुमोपरि।
श्वेतवस्त्रेण संवेष्ट्य गन्धमाल्यैः समर्च्चयेत् ॥
उपचारैः षोडशभिराचार्य्यो वैष्णवः शुचिः।
सर्व्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञो ब्रह्मविद्यासुनिष्ठितः ॥

होमश्च कारयेत्तत्र ह्याग्नेय्यां दिशि शास्त्रतः ।
समिदाज्यतिलैश्चैव मूलमन्त्रेण वै समित् ॥
आज्यं नारायणायेति तिलान् व्याहृतिभिर्हुनेत् ।
रोगी तथार्च्चयेद्देवं नारायणमनामयं ।
मूलमन्त्रेण विधिवन्नैवेद्यं चरुरिष्यते ।
नमोन्तं नाम सोङ्कारं मूलमन्त्रः प्रकीर्त्तितः ॥
ततस्तां प्रतिमान्दद्यात् प्राङ्मुखाय ह्युदङ्मुखः ।
मन्त्रेणानेन विधिवद्भक्त्या परमया युतः ॥
नारायण जगन्नाथ शङ्खचक्रगदाधर ।
पूर्व्वजन्मनि यत्पापैर्विप्राद्यैर्हैसतं मम ॥
अन्नवृद्धिमहारोगं दानेनानेन तोषितः ।
चक्रहस्त गदापाणे शमयाशु जगत्पते ॥

दानमन्त्रः ।

एवं दत्त्वा तु तं देवं क्षमाप्य ब्राह्मणं ततः ।
विप्राणां भोजनं दद्यात् स्नात्वा भुञ्जीत बन्धुभिः ॥
एवं कृत्वा समाप्नोति नीरोगत्वं नरोभुवि ।
आरोग्ययुक्तोनित्यं स सुचिरं सुखमेधते ॥
इति नारायणमूर्त्तिदानविधिः ।

अथ गोपालमूर्त्तिदानं ।

तथा ।

नक्ताम्ध्यं जायते तस्य योगवां नयनद्वये ।

करोति शूलप्रक्षेपं तस्य वक्ष्यामि निष्कृतिं ॥
विष्णोः श्रीगोपवेषस्य यथा शक्त्या च भक्तितः।
सुवर्णेन प्रतिकृतिं वेणुवादनतत्परां।
वर्हापीडकसंयुक्तां द्विभुजामूर्द्धसंस्थितां ॥
कारयित्वा शुभाकारां प्रक्षाल्य शुभवारिणा।
वस्त्रेण वेष्टयित्वाथ गन्धमाल्यैः समर्च्चयेत्।
तण्डुलोपरि संस्थाप्य यथा विभवतः स्वयं ॥
पूजाञ्च मूलमन्त्रेण कुर्य्याद्देवस्य भक्तितः।
आचार्य्यः सर्व्वशास्त्रज्ञो वेदवेदाङ्गपारगः ॥
एवंभूतं समानीय तेन पूजां प्रकल्पयेत्।
होमं चैव प्रकुर्व्वीत समिदाज्यतिलैरपि ॥
इदं विष्णुः प्रतद्विष्णुर्व्विष्णोर्नुकमितिक्रमात्।
मन्त्राध्यायोक्तमार्गेण चाग्नेः संस्थापनं भवेत् ॥
प्रणीतामोक्षपर्य्यन्तं कृत्वा देवं प्रपूजयेत्।
देवस्य दद्यान्नैवेद्यं हविः सर्व्वं समन्ततः ॥
अष्टोत्तरशतेनापि मूलमन्त्रेण वै श्रुतं।
जुहुयादथ रोगी तु प्राङ्मुखः प्रयतः शुचिः ॥
शुक्लाम्बरधरः शुक्लगन्धमाल्यानुलेपनः।
सदक्षिणां च तान्दद्यात् प्राङ्मुखाय ह्युदङ्मुखः ॥
मन्त्रेणानेन विधिवन्नमस्कृत्यातिभक्तितः ॥

गोविन्द गोपीजनवल्लभेश
कंसासुरघ्न त्रिदशेन्द्रवन्द्य।
गोवर्द्धनाद्रिप्रवरैकहस्त

संरक्षिता शेषगवामनीक ॥
गोचक्षुषां चातिनिरोधजेन
पापेन मे नाशय भाग्यमेतत् ।
त्वदीयदानेन सुकृष्टरूपं
नक्षाग्र्यमेतत् समुपाकरोतु ॥

दानमन्त्रः ।

एवं कृत्वा प्रतीकारं गोपवेषधरस्तु ।
तत् क्षणादेव हि सुखी जायते नात्र संशयः ॥

इति गोपालमूर्त्तिदानविधिः ।

अथ वराहदानं ।

भविष्योत्तरात् ।

श्रीकृष्णउवाच ।

दानमादिवराहस्य कथयामि युधिष्ठिर ।
धरण्यां यत् पुरा प्रोक्तं वराहवपुषा मया ॥
पुण्यं पवित्रमायुष्यं सर्व्वदानोत्तमोत्तमं ।
महापापादिदोषघ्नं पूजितं मुनिसत्तमैः ॥
देयं सङ्क्रमणे भानोर्ग्रहणे द्वादशीतिथौ ।
यज्ञोत्सवविवाहेषु दुःस्वप्नाद्भुतदर्शने ॥
यदा वा जायते वित्तं चित्तं श्रद्धासमन्वितं ।
तदैव तस्य कालः स्यादध्रुवं जीवितं यतः ॥
कुरुक्षेत्रादितीर्थेषु गङ्गाद्यासु नदीष च ।

गोष्ठे देवालये वापि रम्ये वाथ गृहाङ्गणे ॥
देयं पुराणविधिना ब्राह्मणाय कुटुम्बिने ।
अव्यङ्गाय सुशीलाय वेदवेदाङ्गवादिने ॥
देशं कालञ्च पात्रञ्च यथावत्तु मयोदितं ।
शृणु दानविधिं पुण्यं सर्व्वपापहरं परं ॥
पूर्व्वोत्तरप्लवां भूमिं गोमयेनोपलेपयेत् ।
कुशैरास्तीर्य्य तां पार्थ प्रणवाक्षरमन्त्रितैः ॥
उपरिष्टात्तिलैस्तेषां वाराहं परिकल्पयेत् ।
द्रोणैश्चतुर्भिः सम्पूर्णन्तदर्द्धेनाथ वा पुनः ॥
आढ़केनापि कुर्व्वीत वित्तशाठ्यं न कारयेत् ।
सुवर्णेन खुरौ कार्य्यौ भुजौ चक्रगदान्वितौ ॥
राजतीङ्कारयेद्दंष्ट्रां पद्मरागविभूषितां ।
शङ्खञ्च स्थापयेत् पार्श्वे वनमालां हिरण्मयीं ॥
पुष्पैर्व्वा कारयेद्विद्वान् पादौ रौप्यमयौ तथा ।
दंष्ट्राग्रलग्नवसुधां सौवर्णीं कारयेच्छुभां ।
सर्व्वधान्यरसोपेतां वस्त्रालङ्कृतविग्रहां ॥

द्रोणादिलक्षण मुक्तं, परिभाषायां ।

पृथ्वीलक्षणञ्च धरादाने द्रष्टव्यं ।

प्रच्छाद्य वस्त्रैर्देवेशं वराहं सर्व्वकामदम् ।
रोमराजिङ्कुशैः कृत्वा गन्धपुष्पैरथार्च्चयेत् ॥
नवग्रहमखः कार्य्यो होमश्चात्र तिलैः स्मृतः ।
एवं संस्थाप्य विधिवत्ततः स्तोत्रमुदीरयेत् ॥

वराहा शेषदुष्टानि सर्व्वपापफलानि च ॥
महं महं महादंष्ट्र भास्वत्कनककुण्डल।
शङ्खचक्रासिहस्ताय हिरण्याचान्तकाय च ॥
दंष्ट्रोद्धृतक्षितिपते त्रयीमूर्त्तिमते नमः।
इत्युच्चार्य्य नमस्कृत्य त्रिःकृत्वा तु प्रदक्षिणं ॥
ततस्तं ब्राह्मणे दद्याद्यथालङ्कारविग्रहम्।
प्रतिग्रहश्च तस्योक्तः पादयोः परमर्षिभिः ॥
अनेन विधिना दत्त्वा वराहं दक्षिणान्वितम्।
आचार्य्यमथ संपूज्य प्रणिपत्य क्षमापयेत् ॥
एवं दत्त्वा महीनाथ वराहं सर्व्वकामदं।
यत्फलं समवाप्नोति पार्थ तत् केन वर्ण्यते ॥
सर्व्वदानेषु यत् पुण्यं सर्व्वक्रतुषु यत् फलं।
तत् फलं समवाप्नोति दत्त्वा देवं जनार्द्दनं ॥
यथा समुद्धृता देवी वराहेण वसुन्धरा।
तथा कुलं समुद्धृत्य विष्णुलोके महीयते ॥
ब्राह्मणक्षत्रियविशां स्त्रीणां शूद्रजनस्य च।
एतत्साधारणं दानं शैववैष्णवयोगिनाम् ॥

विप्राय वेदविदुषे नृवराहरूपं
दत्त्वा तिलानपि सुवर्णमयं सुवस्त्रं।
उद्धृत्य पूर्व्वपुरुषान् सकलत्रमित्रः
प्राप्नोति विष्णुभुवनं सुरसिद्धजुष्टं ॥

इति वराहदानविधिः।

अथ नरसिंहदानम्।

कालिकापुराणे।

नृसिंहं चाथ रौक्मन्तु कृत्वा चतुर्भुजं विभुं।
ताम्रपात्रे प्रतिष्ठाप्य रौप्ये दंष्ट्रे प्रकल्पयेत्॥
चक्षुषी पद्मरागेण नखानां विद्रुमास्तथा।
पुष्परागं भ्रुवोर्द्देशे कर्णयोर्हीरकावुभौ॥

नृसिंहरूपन्तु विष्णुधर्म्मोत्तरात्।

कार्य्यस्तु भगवान् विष्णुर्नरसिंहवपुर्द्धरः।
पीनस्कन्ध-कटि-ग्रीवः कृशमध्यः कृशोदरः॥
सिंहासनो नृदेहश्च नीलवासाः प्रभान्वितः।
आलीढ़स्थानसंस्थानः सर्व्वाभरणभूषणः॥
ज्वालमालाकुलमुखोज्ज्वलत्केसरमण्डलः।
हिरण्यकशिपोर्व्वक्षःपाटयन्नखरैः खरैः॥
देवजानुगतः कार्य्यो हिरण्यकशिपुस्तथा।
देवस्य शङ्खचक्राभ्यां भूषितोर्द्धकरद्वयइति॥
गन्धपुष्पैस्तथा धूपैर्जागरन्तत्र कारयेत्।
राजवर्त्म च वैदूर्य्यं इन्द्रनीलं सुमस्तके॥
कृत्वा रूपमिदं रम्यं तत्पात्रं मधुना बुधः।
पूरयेत् खण्डमिश्रेण तत्र देवं पुनर्न्यसेत्॥
वस्त्रयुग्मेन संछन्नं आसने विनिवेशयेत्।
नैवेद्यं कल्पयेदग्रं भक्ष्यैर्नानाविधैर्ब्बुधः॥
वितानोपरि संयुक्तं पुष्पदामभिरर्च्चयेत्।

गन्धपुष्पैस्तथाधूपैर्जागरं चात्र कारयेत्॥
कृत्वा समस्तमेतत्तु हरये पूर्व्ववद्ददेत्।
यत्किञ्चित् प्राग्विनिर्द्दिष्टं कुर्य्यात् सर्व्वमिहापि तत्॥

प्राग्विनिर्द्दिष्टमिति वैष्णवमन्त्रेण पूजनं, मूलमन्त्रेण अष्टोत्तरशतं तिलाज्यहोमः द्वादशेभ्यो ब्राह्मणेभ्यः सदक्षिणमन्नदानमिति।

कार्त्तिक्यां वाथ वैशाख्यामाश्रित्य द्वादशीमथ।
कृत्वा विधिमिमं सम्यक् नूनं तत्पदमश्नुते॥
अरण्ये वाथ संग्रामे तस्करैर्द्दंष्ट्रिभिर्वृते।
न भयं जायते तस्य सकृद्यस्त्वं तदाचरेत्॥
विदार्य्य चापदो घोरान् धनमायुः प्रयच्छति।
सन्ततिं चैव रूपञ्च सौभाग्यञ्च मनोरथान्॥
एवं भवति यत् पुण्यं नृसिंहाकृतिदानतः।
तेन विष्णोः पदं प्राप्य तत्र क्रीड़न्ति देहिनः॥
एतत् श्रुत्वा महत् पुण्यं सर्व्वपापैः प्रमुच्यते।
धनमायुर्व्विवर्द्धेत श्रावकस्य विशेषतः।
श्रावके दक्षिणान्दद्याच्छक्त्या चात्मविभूतये॥

इति नृसिंहदानविधिः।

## अथ लक्ष्मीनारायणदानम्।

तत्र वौद्धायनः।

लक्ष्मीनारायणं रूपं सुवर्णेन प्रकल्पयेत्।

लक्ष्मीनारायणरूपमुक्तं कामिके॥

पलेन वा तदर्द्धेन तदर्द्धेनाथ वा पुनः।
पद्मासनगतं कुर्य्याद्देवदेवं चतुर्भुजं॥
दक्षिणाधःकरे पद्मं शङ्खमूर्द्धकरे न्यसेत्।
वामोर्द्धे च भवेच्चक्रं लक्ष्मीपृष्ठे करोऽपरः॥
वामोत्सङ्गगता लक्ष्मीरत्नपात्रकरा भवेत्।
दक्षिणञ्च भुजादेव्याः पृष्ठे देवस्य चक्रिण इति॥
गरुडं राजतं कुर्य्याद्देवदेवस्य वाहनम्।
पक्षौ च तस्य सौवर्णौ सौवर्णी चैव नासिका॥
वस्त्रै रत्यन्तरुचिरैः परिधाप्यातिकौतुकम्।
मुक्तादामपरिक्षिप्तं चन्दनागुरुलेपितम्॥
अर्च्चयेत् कुसुमैर्युग्मं लक्ष्मीनारायणात्मकं।
प्रसन्नं रमणीयञ्च गरुडोपरिसंस्थितं* ॥
ततो विप्रं समाहूय सुशीलं लक्षणान्वितम्।
आचारवन्तं-धर्म्मज्ञं वेदवेदाङ्गपारगम्॥
प्रतिग्रहनिवृत्तञ्च श्रुतिस्मृतिपथे स्थितं।
स्वयं भक्त्या समानीय पूजयेद्वस्त्रकुण्डलैः॥
कुङ्कुमागुरुकर्पूरैरुपवीताङ्गुलीयकैः।
पूर्व्वोक्तेन विधानेन होमं तत्र तु कारयेत्॥
मन्त्रेणानेन तद्दद्यात् सर्व्वलोक नमस्कृतम्।

लक्ष्मीपते देवकिनन्दनेश
क्षीराब्धि शायिन् वचसामगम्य।

---

* गरुडस्योपरिस्थितमिति क्वचित् पाठः।

गोविन्ददामोदर वातरक्तं ।
विनाशयाशु क्षपितारिवर्ग ॥

दानमन्त्रः ।

लक्ष्मीनारायणस्यैवं मूर्त्तिं दत्त्वातिभक्तितः ॥
आरोग्यवान् सुखी नित्यं जायते नात्र संशयः ।

इति लक्ष्मीनारायणमूर्त्तिदानविधिः ।

अथ गरुड़दानं ।

ब्रह्माण्डपुराणे ।

सौवर्णं राजतं वापि गरुड़ं कारयेत् सुधीः ।
ताम्रेण वा थ पलतः स्वशक्त्या वापि नारद ॥
नासिकां स्वर्णमयीं कुर्य्यात् कुर्य्यान्नेत्रद्वयं तथा ।

गरुड़मूर्त्तिलक्षणन्तु, तिथिदानप्रकरणस्थितैकादशीविहित्त गारुडदाने विलोकनीयम् ।

श्वेतवस्त्रेण सम्वेष्ट्य ताम्रपात्रोपरि स्थितम् ।
चन्दनागुरुकर्पूरैः श्वेतमाल्यैर्व्विशेषतः ॥
पूजयेत्परया भक्त्या गायत्र्या गरुड़ाह्वयम् ।
होमं कुर्य्याच्च तत्रैव समिदाज्यतिलैस्तथा ॥
ब्राह्मणः सर्व्वशास्त्रार्थकुशलोनिर्म्मलात्मवान् ।
वैष्णवोधार्म्मिकः शान्तःस्वाचारः सज्जितेन्द्रियः* ॥

तत् पुरुषाय विद्महे पक्षिराजाय धीमहि तन्नः सुपर्णः प्रचोदयात् ।

---

* संयतेन्द्रिय इति क्वचित्पाठः ।

तत् पुरुषाय विद्महे वायुवेगाय धीमहि तन्नोऽमृतमथनः प्रचोदयात्।

तत् पुरुषाय विद्महे वैनतेयाय धीमहि तन्नस्तार्क्ष्यः प्रचोदयात्।

समिदाज्य तिलानान्तु मन्त्रा एते यथा क्रमम्।
ततः शुक्लाम्बरधरः* शुक्लगन्धानुलेपनः॥
यजमानः स्वयं भक्त्या शुचिः प्रयतमानसः।
ब्राह्मणाय प्रदद्यात्तं हृदि नारायणं स्मरन्॥
मन्त्रेणानेन सम्पूज्य वस्त्राद्यैश्च स्वशक्तितः।
विहङ्गराज पक्षीश सुपर्णीतनय प्रभो॥
सर्पाशन वियद्गत्र पूर्व्वजन्मनि यत् कृतं।
देवद्रव्यापहरणं तेन यद्दैकृतं मम॥
विनाशयाशु मे सर्व्वं श्रीनारायणवाहन।
ततो निष्कल्मषो भूत्वा नीरुजोजायते नरः॥
सप्तजन्मकृतात्पापात् यस्माज्जातं हि वैकृतं।
ब्राह्मणान् भोजयेद्भक्त्या स्वशक्त्या तु विशेषतः॥

इति गरुड़दानविधिः।

अथाह वृद्धगौतमः।

कामली भक्तचौरः स्यात्तस्य वक्ष्यामि निष्कृतिं।
कुर्य्याच्च शतमानाभ्यां विष्णोर्व्वाहनमुत्तमं॥
सुवर्णेनातिशुद्धेन पक्षयोर्मौक्तिकद्वयम्।

---

* शुक्लमाल्याम्बरधर इति क्वचित्पाठः।

नासिकायां तथा वक्त्रमुत्तरीयञ्च राजतम् ॥
एवं कृत्वा गरुत्मन्तं घृतद्रोणोपरि न्यसेत् ।
श्वेतवस्त्रेण संवेष्ट्य श्वेतमाल्यैः समर्च्चयेत् ॥
सर्व्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञो वैष्णवोधर्म्मपाठकः ।
ब्राह्मणस्त्वर्च्चितोभक्त्या यजमानेन शक्तितः ॥
उपचारैः षोड़शभिर्द्दिजमभ्यर्च्चयेत्तथा ।
आग्नेय्यां दिशि होमश्च कर्त्तव्यः स्थण्डिले शुभे ॥
समिदाज्यन्तिलैस्तत्र पलाशसमिधोपि च ।
मन्त्रोगरुड़गायत्री समित्वाज्यञ्च कीर्त्तिता ।
तिलहोमोव्याहृतिभिः कार्य्यः स्विष्टकृतं यजेत् ॥

गरुड़गायत्री प्रागभिहिता ।

स्थापयेदव्रणं कुम्भं सितवस्त्रेण वेष्टितम् ।
निक्षिपेन्नवरत्नानि मृत्तिकां रोचनां तथा ॥
अश्वस्थानाग्गजस्थानाद्वल्मीकात्सङ्गमात् ह्रदात् ।
पञ्चत्वक्पल्लवानि स्युः पूरयेत्तीर्थवारिणा ॥
तेनाभिषेकं कुर्व्वीत आपोहिष्टादिभिः क्रमात् ॥
हिरण्यवर्णेति ऋचा पवमानेन एव हि ।
ततः स्नात्वा शुची रोगी विष्णोर्व्वाहनमुत्तमम् ॥
सदक्षिणं मुदा युक्तः प्राङ्मुखाय निवेदयेत् ।
मन्त्रेणानेन विधिवदाचार्य्याय ह्युदङ्मुखः ॥
श्रीकृष्ण परमानन्द जगतः परिपालक ।
पूर्व्वजन्मनि यत्पापं भक्तचौर्य्यं मया कृतं ॥

तेनाशामन्तु वैरूप्यं तन्मयं ह्यतिदुःसहं ।
कामलोयमिमं देव तव वाहनदानतः ॥
विनाशयाशु मे कृष्ण जगतां पालकोह्यसि ।

दानमन्त्रः ।

एवं गरुड़दानन्तु कृत्वा मर्त्यः सुखी भवेत् ।
आचार्य्यं भोजयित्वा च प्रणिपत्य विसर्ज्जयेत् ॥

इत्यपरगरुड़दानविधिः ।

अथ पद्मपुराणे ।

जन्मान्तराक्षिरोधेन जायते ह्यक्षिवेदना ।
वक्ष्यामि तत्प्रतीकारं ब्रह्मणा भाषितं पुरा ॥
पलेन कारयेद्धेम्ना गरुड़ं विष्णुवाहनम् ।
राजतौ च तथा पक्षौ रत्नैर्नद्धौ सुविस्तृतौ ॥
कर्त्तव्यञ्चाक्षियुगलं माणिक्याभ्यां प्रकल्पयेत् ।
पादयोः स्वर्णकटकं रत्नाभ्यां परिकल्पयेत् ॥
ग्रैवेयकं स्वर्णमयं ग्रीवायामपि विन्यसेत् ।
नासिकां वज्रवैदूर्य्यं मौक्तिकोपरि कल्पयेत् ॥
वस्त्रैर्नानाविधैर्नद्धमलङ्कृत्य शुभाकृतिं ।
स्थापयेत्पुरतोविष्णोः प्रीत्यर्थञ्च नगाधिपम् ॥
गन्धपुष्पाक्षतैर्व्वस्त्रैः पूजयेद्ब्राह्मणोत्तमः ।
वेदवेदाङ्गकुशलो ब्रह्मविद्यासुनिष्ठितः ॥
होमश्च तत्र कर्त्तव्यो मन्त्रैस्तद्वाचकैः शुभैः ।

यद्वा गरुड़गायत्र्या समिदाज्यतिलादिभिः ।
अग्नेः प्रतिष्ठा कार्य्या तु स्वगृह्योक्तविधानतः ॥
गरुड़गायत्री प्रथम. गरुड़दाने दर्शिता ।
पुण्याहवाचनं कार्य्यं ब्राह्मणैर्व्वेदपारगैः ॥
तस्मै हुतवते दद्याच्छौरिप्रीत्यर्थमादृतः ।
भक्त्या संपूज्य विधिवत् केयूरकटकादिभिः ।
मन्त्रेणानेन विधिवत् प्राप्नुयाच्चिरोगवान् ॥
देवदेव जगन्नाथ लक्ष्मीप्रिय परात्पर ।
वाहनस्य प्रदानेन तुष्टः कर्म्मविपाकजं ॥
अक्षिरोगं जगन्नाथ नारायण जगन्मय ।
पुष्पं वा पटलं वापि वातरक्तमथापि वा ।
रक्तं वाप्यथ नक्तान्ध्यं तथान्यद्बुद्बुदादिकम् ॥

दानमन्त्रः ।

ततो विसृज्य विप्रेन्द्र शिष्टैरिष्टैश्च बन्धुभिः ।
स्नात्वा विप्रान् भोजयित्वा सुखी भवति मानवः ॥

इति गरुड़मूर्त्तिदानविधिः ।

अथोमामहेशदानं ।

आह बौधायनः ।

ब्राह्मणाङ्गानि योऽहिंस्याद्दद्रुरोगी भवेत्तु सः ।
तस्योपशमनं वक्ष्ये सुवर्णेन तु कारयेत् ॥
तदर्द्धेन तदर्द्धेन तदर्द्धार्द्धेन वा पुनः ।

उमामहेश्वरं रूपं वृषभेण त्वधिष्ठितं।
चतुर्भुजन्तु द्विभुजामुमां कुर्य्याद्विचक्षणः॥
एकवक्त्रो भवेत् शम्भुस्त्रिनेत्रश्च महाभुजः।
अक्षमालां त्रिशूलञ्च तस्य दक्षिणहस्तयोः॥
देवीपृष्ठगतश्चैको वरदश्चापरः करः।
वामोत्सङ्गगता देवी शिवपृष्ठैकपाणिका॥
वृषभोराजतश्चात्र कार्य्योघण्टादिसंयुतः।
स्वशक्त्या वित्तशाठ्यन्तु कुर्व्वतोनिष्फलं भवेत्॥
तत्राप्यारोप्य देवेशं उमया सहितं प्रभुं।
वस्त्रैर्माल्यैस्तथागन्धैर्मूलमन्त्रेण पूजयेत्॥
ततो ब्राह्मणमाहूय दरिद्रं धर्म्मकोविदं।
श्रुतवृत्तोपसम्पन्नं शान्तञ्चैवात्मवेदिनम्।
वस्त्राङ्गुलीयकैस्तस्य पूजां भक्त्या प्रकल्पयेत्॥
होमञ्च कारयेत्तेन समिदाज्यतिलैरपि।
मन्त्रश्च रुद्रगायत्री सर्व्वत्रेति विनिश्चयः॥

रुद्रगायत्री तु लिङ्गपुराणे।

सर्व्वेश्वराय विद्महे शूलहस्ताय धीमहि तन्नोरुद्रः प्रचोदयात्।
यद्वा त्र्यम्बकेनैव समिधोजुहुयात् सुधीः।
रुद्रायेतिमन्त्रेण जुहुयादाज्यमादृतः॥
तिलांश्च मूलमन्त्रेण सर्व्वत्रैवं क्रमोभवेत्।
तथा ब्रह्मोद्वासनान्ते मिथुनं ब्राह्मणाय तु॥
वृषभोपरि तिष्ठन्तं भक्त्या तु विनिवेदयेत्।

मन्त्रेणानेन विधिवद्दद्रोगी जितात्मवान् ॥
कैलाशवासी भगवान् उमया सहितः परः ।
भगनेत्रहराद्दद्रोगमाशु व्यपोहतु ॥

दानमन्त्रः ।

ततश्च ब्राह्मणं सम्यक् प्रणिपत्य चमापयेत् ।
ब्राह्मणान् भोजयेच्चापि स्वयं भुञ्जीत वाग्यतः ॥
एवं दत्त्वा महादानन्दद्रोगाद्विमुच्यते ।

इति उमामहेश्वरदानविधिः ।

अथ रुद्रमूर्त्तिदानम् ।

वायुपुराणे ।

अन्नचौरो भवेद्यस्तु सोऽकस्माज्जायते कृशः ।
वच्ये तस्य प्रतीकारं दानहोमाभिषेचनैः ॥
पलेनवा तदर्द्धेन तदर्द्धेनाथवा पुनः ।
सुवर्णेन प्रतिकृतिं कुर्य्यात् रुद्रस्य भक्तितः ॥
यद्वा विभवसारेण त्रिनेत्रं चतुराननं ।
चतुर्व्वाहुन्ध्यानपरं उपविष्टं सुखासने ॥
व्याघ्रचर्म्मपरीधानं नागयज्ञोपवीतिनम् ।
श्वेतवस्त्रेण संवेष्ट्य तण्डुलोपरि विन्यसेत् ॥
तण्डुलानां परीमाणं द्रोणानान्तु चतुष्टयं ।
यद्वा स्वविभवेनैव तत्र पूजां प्रकल्पयेत् ॥
गन्धमाल्यैः सुरभिभिः श्वेतैर्नानाविधैरपि ।

उपचारैः षोड़शभिराचार्य्यः सर्व्वशास्त्रवित्॥
मूलमन्त्रेण सर्व्वञ्च कार्य्यं पूजादिकञ्चरेत्।
होमश्च तत्र कर्त्तव्यः स्थण्डिले सुपरिष्कृते॥
मन्त्राध्यायोक्तमार्गेण चाग्नेः संस्थापनं भवेत्।
समिदाज्यतिलैर्म्मन्त्रानिमांस्तत्र प्रकल्पयेत्॥
त्र्यम्बकं कद्रुद्राय वामदेवइति क्रमात्।
संख्याचाष्टोत्तरशतं प्रत्येकमिह गृह्यते॥
हुत्वा हुत्वा च सम्पातान् पात्रे कृत्वा विधानतः।
अग्नेः पूर्व्वोत्तरे देशे स्थापयेत् सकलं दृढ़ं॥
वाससा वेष्टयित्वा च पञ्चपल्लवसंयुतं।
अश्वस्थानात् गजस्थानाद्वल्मीकात् सङ्गमाद्ध्रदात्।
प्रत्येकशः मृत्तिका च रोचनां गुग्गुलुं तथा॥
तेनाभिषेकं कुर्व्वीत होमान्तेच गुरुः स्वयं।
आपोहिष्टादिभिस्तद्वद्धिरण्यादिभिरेव च॥
पवमानानुवाकेन शन्नोवाकेन चैव हि।
शरीराभ्यञ्जनं कार्य्यं सम्पातैर्येन सर्व्वशः॥
ततः शुक्लाम्बरधरः शुक्लमाल्यानुलेपनः।
यजमानः शुचिर्भूत्वा देवेशं पूज्य भक्तितः॥
मूलमन्त्रेण च पुनस्तस्मै हुतवतेऽर्च्चिते।
दद्यात्तां देवदेवस्य प्रतिमां शङ्करस्य तु॥
मन्त्रेणानेन विधिवत् प्राङ्मुखाय ह्युदङ्मुखः।
देवदेव महेशान वृषभध्वज शङ्कर॥
अन्नचौर्य्येण यत् पापं कृतं जन्मान्तरे मया।

तेन यज्जनितं कार्श्यमसह्यं मम देहजं।
तव दानेन दत्तेन पीनोस्मि रक्ष पापिनं।

दानमन्त्रः।

एवं यो विधिनानेन शङ्करप्रतिमां नरः।
ददाति विप्रवर्य्याय स कार्श्यादिप्रमुच्यते॥
पुण्याहवाचनं कृत्वा ब्राह्मणानपि भोजयेत्।

इति रुद्रमूर्त्तिदानविधिः।

अथ दक्षिणमूर्त्तिदानं।

वायुपुराणे।

श्रूयतां परमं गुह्यं दानं सर्व्वोत्तमोत्तमं।
नमस्कृत्य प्रवक्ष्यामि देवदेवस्य शूलिनः॥
सर्व्वेषामेव पापानां येन नाशः प्रजायते।
पापानां निष्कृतिः प्रोक्ता मुनिभिः शास्त्रदर्शिभिः॥
तपोहोमजपप्राया सा हि कार्य्या प्रयत्नतः।
एतत्तु सर्व्वपापानां प्रायश्चित्तमनुत्तमं॥
महापातकदोषेषु पातके चोपपातके।
अन्येषामपि दोषाणां निष्कृतिः परिवर्त्तते॥
पलत्रयेण देवेश सुवर्णस्य प्रकल्पयेत्।
ईशानं दक्षिणामूर्त्तिं सर्व्वज्ञं लोकसाक्षिणम्॥
गोमयेनोपलिप्तायां भूमौ विन्यस्य पङ्कजं।
नानारजोभिस्तन्मध्ये पुण्डरीकं न्यसेत्ततः॥

ततकर्णिकायां देवेशमर्च्चयेद्धेमरूपिणम्।
सर्व्वज्ञं सर्व्वगं शान्तं सर्व्वकारणकारणम्॥
सर्व्वदेवनमस्कृत्यं सर्व्ववेदान्तवेदिनम्।
सर्व्ववेदान्तवेद्यञ्च भक्तवत्सलमच्युतम्॥
पापेन्धनमहावह्निं संसारार्णवतारणम्।
करुणौघमहासिन्धुं चन्द्रमौलिं महेश्वरम्॥
वरदानाभयकरं सर्व्वाङ्गञ्च महार्णवन्।
एवं सञ्चिन्त्य देवेशमर्च्चयेत् ब्रह्म पङ्कजैः॥
श्वेतैर्व्विकसितैः पद्मैः सितचन्दनवारिणा।
कर्पूरविद्धमगुरुन्धूपार्थञ्च निवेदयेत्॥
क्षौमे च वाससी दद्यात् पायसञ्च निवेदयेत्
प्रदक्षिणं ततः कृत्वा निवेद्य परमात्मने॥
आत्मानमर्च्चयित्वा तु ततोविप्रं समर्च्चयेत्।
वेदवेदाङ्गविदुषं शान्तं शिवपरायणं॥
ज्ञाननिर्द्दग्धकर्म्माणं नित्यनैमित्तिके रतं।
तमेव देवं सङ्कल्प्य पूजयित्वा विधानतः।
प्रणिपत्य तु तं देवं ततोमन्त्रमुदीरयेत्॥
भगवन् सर्व्वभूतज्ञ सर्व्वज्ञामृतशङ्कर।
त्वत्प्रसादेन मे शेषं पापं नश्यतु सर्व्वतः॥
यत्पापं वाङ्मनःकायसम्भवं मम शङ्कर।
तव रूपप्रदानान्मे विलयं यान्तु सर्व्वतः॥
अज्ञे पापे निराचारे त्वमेव शरणङ्गते।
मयि सर्व्वौघनाशेन दयाङ्कुरु महेश्वर॥

इत्यामन्त्र्य ततोदद्याच्छिवः सम्प्रीयतामिति।
क्रियाकलापमखिलमात्मानं मलसञ्चयम्॥
सर्व्वं निवेदयेत्तस्मै विश्वरूपाय शम्भवे।
अनेन विधिना यस्तु प्रदद्यात् सर्व्वनिष्कृतिं॥
तस्य सर्व्वाणि पापानि विनश्यन्ति न संशयः।
यथा नश्यन्ति सूर्य्यस्य सन्निधौ सकलन्तमः॥
तथा शिवप्रदानेन सर्व्वं पापं विनश्यतु।
यथैधांसि समिद्धोग्निर्भस्मसात् कुरुते क्षणात्॥
तथायं भगवान् शम्भुः शरणागतदुष्कृतं।
सर्व्वधर्म्मविहीनस्य सर्व्वपापैः प्रमुच्यते॥
अपिचेत्स्यात् स सर्व्वेभ्यः पापेभ्यः कृतमानसः।
सर्व्वं शिवप्लवेनैव वृजिनं सन्तरिष्यति॥
तस्माद्यः सर्व्वमुत्सृज्य शरणं याति शङ्करम्।
भक्त्या परमया तस्य न भयं विद्यते क्वचित्॥
जीवतो हि भवेत्पापमवश्यं मानुषात्मनः।
तस्य पापस्य वै नास्ति प्रायश्चित्तं विना क्षयः॥
तस्मात् कुर्य्यात् प्रयत्नेन निष्कृतिं प्रतिवत्सरं।
अनित्यं जीवितं यस्मात् सम्पदारोग्यमेव च।
नरकोत्तारणं कार्य्यं तस्मादात्महितेच्छया॥

इति दक्षिणामूर्त्तिदानविधिः।

अथ परशुदानम्।

वायुपुराणात्।

ऋषय ऊचुः।

समीरण नमस्तुभ्यं यत्प्रोक्तं भवता व्रतात्।
प्रायश्चित्तमशेषेण तदस्माभिर्हृदीकृतम्॥
वक्तुमर्हसि भूयोनः प्रसादसुमुख प्रभो।
यस्तु मानसिकम्पापं बुद्धिपूर्व्वं सुरोत्तम॥
वक्तुमर्हसि दानेन तस्य पापक्षयोभवेत्।

वायुरुवाच।

मनसोदुर्व्विचारत्वाद्बहुत्वाच्च तपोधनाः।
अवश्यमेव भवति महतामपि निश्चयः॥
विना दानेन भूयोऽपि नरकाय प्रवर्त्तते।
तस्मात्तस्य क्षयोपायं दानं वक्ष्यामि साम्प्रतम्॥
उपपातकसंयुक्तं येन पापं विनश्यति।
अष्टम्यां कृष्णपक्षस्य पूर्व्वाह्णे शालितण्डुलैः॥
भारत्रयेण कुर्व्वीतरूपं वस्त्रेण शूलिनः।
चतुर्व्वाहुस्त्रिनेत्रञ्च सुखासीनं सरोरुहे॥
तस्य दक्षिणहस्तेतु सुवर्णं पलनिर्म्मितम्।
परशुं कल्पयित्वा च ततः सम्प्रति पूजयेत्॥
सर्व्वं परशुहस्ताय मन्त्रेणाराधनं भवेत्।
बिल्वपत्रैः कुशैश्चापि पूजयेत् परमेश्वरम्॥
परशुञ्च पृथक् पुष्पै रक्तैरभ्यर्च्य शान्तधीः।

पृथक्तं शिवभक्तञ्च ब्राह्मणं वेदपारगं ।
अर्च्चयित्वा यथा पूर्व्वं ततो मन्त्रमुदीरयेत् ॥
नीललोहित देवेश सर्व्वपापभयापह ।
परशुव्यग्रहस्तस्त्वं तवाहं शरणं गतः ॥
यन्मया मनसा पापं कृतमाजन्मनःप्रभो ।
तत्सर्व्वं क्षपयाशेष विभोपरशुदानतः ॥
अनेन सर्व्वपापानि मानसानि विनाशय ।
मयि दीने दयां देव दर्शयाद्य प्रसादतः ॥
इत्युक्ता तं द्विजेन्द्राय परशुन्तण्डुलादिकम् ।
त्रिवेदवेदकलशं भूमिदेवं द्विजोत्तमं ॥
इत्युक्तं परशोर्दानं मानसाघविनाशनं ।
यद्यत्करोति मनसा पापमाजन्मनः पुरा ॥
निष्कृतिस्तस्य पापस्य दानमेतत् प्रयत्नतः ।
मासि मासि ततोदेयं दानमेतत्तपोधनाः ।
वत्सरे वत्सरे वापि सर्व्वदोषापनुत्तये ॥

इति परशुदानविधिः ।

अथ शूलदानं वायुपुराणात् ।

ऋषयऊचुः ।

समीरण जगत् प्राण पवमानक्रियाविभो ।
वक्तुमर्हसि नोदानं येन पापं व्यपोहति ॥
कर्म्मणा मनसा वाचा यदबुद्धिकृतं भवेत् ।

पापं तस्य क्षयोपायं वक्तुमर्हसि नः प्रभो ॥
यस्माद्भोगादृते नास्ति क्षयः पापस्य कर्म्मणः।
करदण्डेन वाचाथ प्रायश्चित्तेन वा पुनः ॥
राजदण्डः प्रकाशस्य पापस्य कथितः पुरा।
अबुद्धिपूर्व्वं यत्पापं अज्ञानाच्च महीपते ॥
निष्कृतिर्न कृता यस्य तस्य वैवस्वतः प्रभुः।
तस्मात्तस्य क्षयोपायो वक्तव्यश्चरताम्वर ॥

वायुरुवाच।

अहं वः कथयिष्यामि शृणुध्वं मुनिसत्तमाः।
या निष्कृतिस्तु पापानां कृतानां प्रज्ञया विना ॥
यत्पाशुपतमाख्यातमस्त्रं देवस्य शूलिनः।
तस्य प्रदानात्सकलं तत्पापं सम्प्रणश्यति ॥
कृष्णपक्षे चतुर्द्दश्यामष्टम्यां वा सितेतरे।
कुर्य्याद्द्वादशनिष्केण त्रिशूलं लक्षणान्वितं ॥
युगान्तकरणं घोरमघविध्वंसनक्षमम्।
नानारजोविरचिते चक्रे षडारभूषिते ॥
नाभौ निधाय सम्पूर्ण्णे तिलानां ताम्रनिर्म्मितं
पात्रमाढ़कसमानं तत्र शूलं न्यसेत्पुनः ॥
कुर्य्यात्तेनैव मन्त्रेण तस्य पूजामनुक्रमात्।
विरूपाक्षञ्च तत्पार्श्वे कमलोपरि पूजयेत्।
अघोरेभ्योपि मन्त्रेण पूजान्ते प्रणिपत्य च ॥

अघोर मन्त्रस्तु लिङ्गपुराणे।

ओं अघोरेभ्यो घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यश्च सर्व्वतः सर्व्वेभ्यो नमस्तेस्तु रुद्ररूपेभ्य इति ।

विप्रश्च शानिनन्तद्वत्सं पूज्य मुनिपुङ्गवाः ।
प्रदक्षिणं ततोगत्वा इमं मन्त्रमुदीरयेत् ॥
भगवन् भगनेत्रघ्न दक्षयज्ञविमर्द्दन ।
तवायुधप्रदानान्मे पापं नश्यतु शङ्कर ॥
युगान्ते येन लोकानां त्वमन्तकविनाशनं ।
विदग्धन्तन्मयाप्येतत्तेन पापं प्रणाशय ॥
येन दग्धं क्षणार्द्धेन त्रिपुरं सुरदुर्जयं ।
तेन पाशुपतेनाशु मम पापं प्रणाशय ॥
यदबुद्धिकृतं पापं मम चाशस्य मानसं ।
तत्सर्व्वं क्षयमभ्येतु तव शूलप्रदानतः ॥
इत्यामन्त्र्य ततोदद्याच्छूलं तस्मै द्विजातये ।
यदात्मनः कृतं पापमज्ञानाद्यत्पुरा भवेत् ॥
निष्कृतिस्तस्य सर्व्वस्य शूलदानमिदं मतं ।
अवश्यं कुरुते पापमज्ञानान्मानवोयतः ।
वर्षे वर्षे ततो दद्यात्तस्य तस्यापनुत्तये ॥

इति शूलदानविधिः ।

आह वौडायनः ।

अतःपरं विपाकोत्थं सर्व्वं शूलविनाशनं ।
दानं यद्ब्रह्मणा प्रोक्तन्तत्सम्यक् कथयाम्यहं ॥
सौवर्णं राजतं वापि शूलं कुर्य्यात् प्रयत्नतः ।

यथावित्तानुसारेण पलार्द्धेनाथवा पुनः ॥
ताम्रेणाथायसा वापि खदिरेणाथवा पुनः ।
महादेवप्रहरणं यथा तद्वत् प्रकल्पयेत् ॥
रक्तवस्त्रेण संवेष्ट्य रक्तचन्दनचर्च्चितं ।
रक्तमाल्येन संवेष्ट्य तिलानामुपरि न्यसेत् ॥
तिलानान्तु परीमाणन्द्रोणं वाथ तदर्द्धकं ।
तदर्द्धं वा यथाशक्त्या पूजयेद्ब्राह्मणः शुचिः ॥
अर्घ्यादि मूलमन्त्रेण षोड़शैवोपचारकान् ।
क्रियाविद्ब्राह्मणं पूज्य कर्त्ता होमं प्रकल्पयेत् ॥
शूलस्य दक्षिणे पार्श्वे दक्षिणाग्निः* प्रणीयते ।
समिदाज्यतिलान् हुत्वा पुरुषस्येति वै समित् ॥
त्र्यम्बकेन च मन्त्रेण आज्यहोमं प्रकल्पयेत् ।
यतइन्द्रेण च तिलान् शन्नः शान्तिं प्रकल्पयेत् ॥
तेनोदकेन वा सिञ्चेच्छूलिनं रोगिणं नरं ।
ततो हुतवते शूलं संपूज्य च स्वशक्तितः ॥
दद्यात्सदक्षिणन्तन्तु प्राङ्मुखाय ह्युदङ्मुखः ।
मन्त्रेणानेन परया भक्त्या सर्व्वंपरं स्मरन् ॥
त्वं शूलं ब्रह्मणा सृष्टं त्वं पुराणं विनाशकम् ।
दैत्यानां दानवानाञ्च शङ्करस्यायुधं सदा ॥
कुक्षिस्थमथ पार्श्वस्थमथवा पृष्ठसङ्गतं ।
शूलं विनाशय त्वं मे महादेवेन धारितं ॥

---

* स्थण्डिलेऽग्निरिति क्वचित्पाठः ।

ततः स्नात्वा च भुञ्जीत ब्राह्मणैर्बन्धुभिः सह ।
शूलहिंसासमुत्पन्नां वेदनामाशु नाशयेत् ॥

इत्यपरशूलदानविधिः।

अथ सूर्य्यमूर्त्तिदानम्।

आह वृद्धगौतमः।

विभ्रामयति यो मूढानौषधादिप्रयोगतः।
भ्रामणं जायते तस्य देहिनोतीव दुःसहम् ॥
वक्ष्यामि तत्प्रतीकारन्दानहोमादिकर्म्मणा ।
व्यावहारिकनिष्कैस्तु त्रिभिर्द्वाभ्यामथापि वा ॥
एकेन वा स्वशक्त्या च सूर्य्यप्रतिकृतिं शुभां ।
कुर्य्याद्दिहस्तामूर्द्धन्तु पद्मद्वयसुभूषितां ॥
रथोपरि स्थितां रक्तवाससा समलङ्कृतां ।
कुङ्कुमेनाङ्कितां सम्यक् रक्तमाल्यैरलङ्कृतां ॥
स्नापितां पञ्चगव्येन ताम्रपात्रोपरि न्यसेत् ।
पात्रस्य च परीमाणं तिलानामष्टकं विदुः ॥
तदर्द्धं वा तदर्द्धं वा यथा विभवतो भवेत् ।
पात्रन्तिलानामुपरि विन्यसेद्दर्भसंस्तृते ॥
एवं भूतान्तु तां मूर्त्तिं आचार्य्यः पूजयेत् सुधीः
गन्धमाल्यैः सुरभिभिर्हंसः शुचिःषड्विलृचा ॥
उपचारैः षोड़शभिर्नैवेद्यं पायसं क्षिपेत् ।
आग्नेय्यां दिशि होमश्च कर्त्तव्यः शुभमीप्सुभिः ॥

समिदाज्यतिलैश्चैव मन्त्रैरेभिर्य्यथाक्रमं।
चित्रंदेवानां तच्चक्षुरुदुत्यञ्जातवेदसं॥
यदस्य कर्म्मणश्चेति स्विष्टकृद्धोमइष्यते।
अग्नेरुत्तरतोभागे कलशस्थापनं भवेत्॥
अभिषेकादिकं सर्व्वं शान्तिकर्म्मपुरःसरं।
सुखासनोपविष्टस्य कर्त्तव्यं ब्राह्मणैः शुभैः॥
प्रणीतामोचपर्य्यन्तं ब्रह्मोद्वासनमेव च।
ततः स्नातः शुचिर्हृष्टः शुक्लगन्धानुलेपनः॥
शुक्लमाल्यैः शोभितश्च आचार्य्याय ह्युदङ्मुखः।
प्राङ्मुखायोपविष्टाय दद्यात् प्रतिकृतिं शुभां॥
सहस्रकिरणो देवः खगः पूषा गभस्तिमान्।
सर्व्वदेवमयोब्रह्म जगच्चक्षुस्त्रयीतनुः॥
ओषधादिप्रयोगेण पुरा यद्ब्रामणं कृतं।
विप्राणां पादमभ्यर्च्य यद्भूतं भ्रमणं मम॥
प्रतिमायाः प्रदानेन तुष्टो देवोबृहस्पतिः।
भ्रमणं देहगं सर्व्वं वासुदेवोव्यपोहतु॥

दानमन्त्रः।

एवं दत्त्वा तु तद्दानमाचार्य्यायातिभक्तितः।
आसीमान्तादनुब्रज्य प्रणिपत्य क्षमापयेत्॥
अन्येभ्योपि ब्राह्मणेभ्यो दद्याच्छक्त्या च दक्षिणां।
एवं दानं पुरा प्रोक्तं दत्त्वा मर्त्त्योऽतिभक्तितः।
पूर्व्वकर्म्मविपाकोत्थं भ्रमंत्यक्त्वा सुखी भवेत्॥

इति सूर्य्यमूर्त्तिदानविधिः।

तथा।

ब्राह्मणं घातयेद्यस्तु स कुष्ठी जायते नरः।
वक्ष्यामि तत् प्रतीकारं सूर्य्यदानं विधानतः॥
पलेन वा तदर्द्धेन तदर्द्धार्द्धेन वा पुनः।
सूर्य्यप्रतिकृतिं कुर्य्यात् कदलीश्चैव सन्निधौ॥
कुष्ठोपहतदेहानां शान्त्यर्थं कारयेच्छुभां।
सुवर्णेन पलार्द्धेन पत्रपुष्पैरलङ्कृतां॥
सूर्य्यस्तु द्विभुजः कार्य्योराजते च रथे स्थितः।
रक्तवस्त्रेण संवेष्ट्य कुङ्कुमेनानुलेपयेत्॥
रम्भान्तु श्वेतवस्त्रेण श्वेतपुष्पैश्च चन्दनैः।
तण्डुलोपरि संस्थाप्य नानाफलसमन्वितां॥
तण्डुलानाम्परीमाणन्द्रोणमात्रं प्रकीर्त्तितं।
श्रुताध्ययनसम्पन्नं ब्राह्मणं शान्तमानसं॥
सर्व्वविद्यासु कुशलं दरिद्रं चाग्निहोत्रिणं।
गृहमाहूय भक्त्या तं पूजयेद्वस्त्रमाल्यकैः॥
ततो होमं प्रकुर्व्वीत समिदाज्यतिलाक्षतैः।
लाजाश्च मधुना मिश्राहुत्वा चाष्टोत्तरं शतं॥
मन्त्रेण चैव गायत्र्या दुर्गाग्रहाधिदेवताः।
जुहुयाच्च ततोभक्त्या समिदाज्यचरूनपि॥
तथैव ह्याज्यसंपतेरक्षिता इत्यनेन तु।
समञ्जनं प्रकुर्व्वीत यथा लिङ्गं शरीरके॥

शन्नोदेव्यनुवाकेन शान्तिं कुर्य्याद्विशेषतः ॥
तस्मै हुतवते रोगी दद्यात् भक्ति पुरःसरम्।
मन्त्रेणानेन विधिवत् प्राङ्मुखाय ह्युदङ्मुखः ॥
आदित्य सूर्य्य द्युमणे सर्व्वरोगविनाशक।
सहस्रकिरणाऽम्भोजबन्धो तिमिरनाशन ॥
द्वादशात्मंस्त्रयीदेह जगच्चक्षुर्दिवाकर।
पूर्व्वकर्म्मविपाकोत्थं कुष्ठमाशु विनाशय ॥

इति सूर्य्यप्रतिकृति दानमन्त्रः।

कदली सर्व्वदेवानां मातॄणां सर्व्वशर्म्मदे।
लक्ष्म्या शच्या च पार्व्वत्या देवकन्याभिरेवच ॥
सावित्र्या रम्भयाचैव कार्य्यार्थं पूजिता पुरा।
अङ्गप्रत्यङ्गजं सर्व्वं कुष्ठजातमपानुद ॥

कदलीदानमन्त्रः।

ततः स्नात्वाच भुञ्जीत ब्राह्मणैर्व्वंधुभिः सह ॥

इत्यपर सूर्य्यमूर्त्तिदानविधिः।

अथ वह्निमूर्त्तिदानं।

तत्र बौद्धायनः।

सुवर्णेनाथ ताम्रेण कुर्य्यात् प्रतिकृतिं बुधः।
वह्नेर्व्विभवसारेण पलेनार्द्धेन वा पुनः ॥

वह्निलक्षणन्तु लोकपालप्रसङ्गेन ब्रह्माण्डदाने दर्शितम् ।

तथा, ज्वालाकुलां रक्तचन्दनेन विलेपितां ।
रक्तवस्त्रेण सम्वीतां मेषस्योपरि संस्थितां ।
रक्तमाल्यैस्तु सञ्छन्नां मुक्तादामपरिष्कृतां ।
कनकाचलवर्णाभां द्वादशार्कनिभां शुभां ।
ब्रह्मचर्य्यान्विते विप्रे कर्म्मनिष्ठे ऽग्निहोत्रिणि ।
अङ्गुलीयकवस्त्राद्यैर्भूषिते तां निवेदयेत् ॥
मन्त्रेणानेन विधिवदग्निप्रीत्यर्थमादृतः ।
त्रेतारूपोऽग्निरीड्यस्त्वमन्तश्चरसि वै नृणां ।
त्वं वेत्थ प्राकृतं पापमतीसारं विनाशय ।
एवं कृत्वा नरः सम्यगतीसारं व्यपोहति ।
नीरुजः सुसुखी नित्यं दीर्घमायुश्च विन्दति ॥

इत्यग्निमूर्त्तिदानविधिः ।

अथ कालपुरुषदानं ।

भविष्योत्तरे ।

युधिष्ठिर उवाच ।

दानान्यन्यानि मे कृष्ण कथयस्व यदुत्तमम् ।
मङ्गल्यानि पवित्राणि सर्व्वपापहराणि च ॥
संसारसागरोत्तारहेतुभूतानि माधव ।
धर्म्माधर्म्म परिज्ञाने त्वदन्योनेह कश्चन ॥

श्रीकृष्ण उवाच।

दानानि बहुरूपाणि कथितानि मया तव।
पुनरेव प्रवक्ष्यामि यद्यस्ति तव कौतुकं॥
कथितानि मया तुभ्यं कथयिष्याम्यहं तव।
महतार्थेन सिद्ध्यन्ति प्रयच्छन्ति महत् फलं।
काम्योदानविधिः पार्थ क्रियमाणो यथातथं।
फलाय मुनिभिः प्रोक्तो विपरीतो भयाय च॥
ज्ञेयं निष्कशतं पार्थ दानेषु विधिरुत्तमः।
मध्यमस्तु तदर्द्धेन तदर्द्धेनाधमः स्मृतः* ॥
मेषाश्च कालपुरुषे तथान्येषु महत्सु च।
एवं हृषे रथेऽश्वे च धेनोः कृष्णाजिनस्य च॥
अशक्तस्यापि कृष्णोयं पञ्चसौवर्णिकोविधिः।
अतोप्यल्पेन योदद्यात् महादानं नराधिप।
प्रतिगृह्णाति वा तस्य दुःखशोकावहं भवेत्।
पुण्यन्दिनमथासाद्य भूमिभागे समे शुभे।
चतुर्द्दश्यां चतुर्थ्यांवा विष्ट्यांवा पाण्डुनन्दन॥

विष्टि, भद्राकरणं।

पुमान् कृष्णतिलैः कार्य्योरौप्यदन्तःसुवर्णदृक्।
सुवर्णादिपरीमाणं, मत्र यथाशक्ति सम्पादनीयं॥
खड्गोद्यतकरोदीर्घोजवाकुसुमकुण्डलः।

* तदर्द्धेनावरःस्मृत इति पुस्तकान्तरे।

रक्ताम्बरधरः स्रग्वी अक्षमालाविभूषितः।
तीक्ष्णासिपुत्रीबन्धेन विस्फ्दारिकटीतटः॥*

'असिपुत्री, छुरिका।

उपानद्युगयुक्ताङ्घ्रिः कृष्णकम्बलपार्श्वगः।
गृहीतमांसपिण्डश्च वामे करतले तथा॥
एवंविधं पुमान् कृत्वा गृहीतकुसुमाञ्जलिः।
यजमानः प्रसन्नात्मा इमं मन्त्रमुदीरयेत्॥
सम्पूज्य गन्धकुसुमैर्नैवेद्यं विनिवेद्य च।
सर्व्वं कलयसे यस्मात् कालस्त्वन्तेन चोच्यसे॥
ब्रह्मविष्णुशिवादीनां त्वमसाध्योसि सुव्रत।
पूजितस्त्वं मया भक्त्या पार्थिवस्य तथासुखं॥
तद्बध्यते तव विभो तत्कुरुष्व नमोनमः।
एवं संपूजयित्वा तं ब्राह्मणाय निवेदयेत्॥
ब्राह्मणं प्रथमं पूज्य वासोभिर्भूषणैस्तथा।
दक्षिणां शक्तितो दद्यात् प्रणिपत्य विसर्ज्जयेत्

दक्षिणां पूर्व्वोक्तां निष्कादिकां।

अनेन विधिना यस्तु दानमेतत् प्रयच्छति।
नच मृत्युभयं तस्य नच व्याधिकृतं भवेत्॥
भवत्यव्याहतैश्वर्य्यः सर्व्वबाधाविवर्ज्जितः।
देहान्ते सूर्य्यभवनं भित्वा याति परं पदं॥
पुण्यक्षयादिहागत्य राजा भवति धार्म्मिकः।

---

* विष्फ्रारितकटीतट इति पाठः पुस्तकान्तरे।

सत्वयाजी श्रिया युक्तः पुत्रपौत्रसमन्वितः॥

संपूज्य कालपुरुषं विधिवद्द्विजाय
दत्त्वा शुभाशुभफलोदयहेतुभूतं।
रोगातुरे सकलदोषमयेऽत्र देहे
देही न मोहमुपगच्छति तत् प्रभावात्॥

इति कालपुरुषदानविधिः।

अथ कालचक्रदानं।

मृत्युञ्जयात्।

चक्रं रौप्यमयं कृत्वा मुक्तारश्मिमयात्मकं।
कृत्वा मूर्द्ध्नि शरच्चन्द्रं रश्मिमध्यान्तरस्थितं॥
त्वङ्मांसानि तु रौप्याणि गात्रेषु च समन्ततः।
एवं ध्यानवतस्तस्य सचन्द्रः कृष्णतां व्रजेत्॥
ततोऽप्यनन्तरं पश्चात् स्थित्वा विप्रप्रदक्षिणं।
तं गृहीत्वा व्रजेद्दूरं अदृष्टत्वमपि व्रजेत्॥
स्वयञ्चामृतसंघातपूर्णकायस्थितिस्थितः।
कालचक्रमिदं नाम्ना दानं मृत्युविनाशनं॥
इमन्ते राजतं चान्द्रं रश्मिजालसमाकुलं।
अपमृत्युविनाशाय ददामीति समुच्चरन्॥
सुवर्णं दक्षिणायुक्तं ब्राह्मणाय निवेदयेत्।
एवं कृते विनश्येत अपमृत्युर्न संशयः॥
ततस्तस्मात्सदा देयमपमृत्युभयान्वितैः।
ज्वरादिरोगग्रस्तैर्वा महापत्पतितैरपि॥

ततो गृह्योक्तविधिना स्थापयेज्जातवेदसं।
जुहुयात् कालनाम्ना तु शतमष्टोत्तरन्तिलैः॥
ततस्तु भोजयेद्भक्त्या विप्रान् द्वादशसंख्यया।
स्वयमक्षारलवणं भुञ्जीत सकृदेवहि।
एवं कृते नरोनूनं चिरंजीवेन्न संशयः॥

इति कालचक्रदानविधिः।

अथ यमदानं।

मृत्युञ्जयात्।

लोहपात्रस्थितं कांस्यं तत्र पद्मन्तु राजतं।
तस्मिन् कालेश्वरः स्वर्णैः पुरुषाकारताङ्गतः॥

यमरूपमुक्तं।

ब्रह्माण्डदाने।

वस्त्रालङ्कारसंयुक्तो भयदास्त्राणि सर्व्वतः।
त्रिलोहाकारपुरुषैः कालदूतैश्च पार्श्वतः।

भयदास्त्राणि खड्गच्छुरिकादीनि त्रिलोहं ताम्र कांस्य-पित्त-लाख्यं कालदूताः, पुरुषाकृतयो दण्डहस्तास्त्रयः।

कृत्वा च महिषं पृष्ठे तन्दद्याद्यममालपन्।
अष्टम्याञ्च चतुर्द्दश्यां करोति विधिना तु यः।
स मुच्यते ध्रुवं नाशाद्दत्वा घृतघटोत्तरं॥

यममालपन्निति महिषपृष्ठस्थित लोहपात्रो परिस्थित कांस्य

पात्रनिविष्ट पद्मारूढं यमं ददामीत्युच्चारयन्नित्यर्थः घृतघटस्य उत्तरे दक्षिणास्थाने यस्येति दानविवेककारः अपरेतु सुवर्ण-दक्षिणेति।

इति यमदानविधिः।

अथोदकुम्भदानं।

शौनकीयात्।

मार्कण्डेय उवाच।

भगवन् केन दानेन तपसा केन कर्म्मणा।
अप्राप्य नरकं घोरं स्वर्गं प्राप्नोति मानवः॥
नरकेषु विपच्यन्ते जन्तवः सततं मुने।
अल्पायासेन देवर्षे परिहारोस्ति चेद्वद॥

सूतउवाच।

एवमुक्तोऽथ भगवान् मार्कण्डेयेन धीमता।
उवाच नारदोदानमल्पवित्तं महाफलं॥
मार्कण्डेय शृणुष्वेदं ब्रह्मविष्णोः पुरानघ।
तदाह भगवाञ्छम्भुर्हर्योः पृष्टस्तयोस्तथा॥
श्रूयतामुदकुम्भाख्यं दानं वक्ष्यामि सुव्रतौ।
यत् कृत्वा पुरुषः स्त्रीवा न याति नरकं क्वचित्॥
स्वर्ग्यं यशस्य-मायुष्य-मारोग्यं पापनाशनं।
मम प्रीतिकरं पुण्यं युवयोश्च प्रियं तथा॥

वैशाख्यां पौर्णमास्याञ्च कार्त्तिक्यामथ तद्दिने।
स्वजन्मदिवसे कार्य्यं दुःस्वप्नाद्युतदर्शने।
भूमौ गोमयलिप्तायां उदकुम्भं न्यसेद्बुधः॥
पुष्पैः फलैश्च संवेष्ट्य वस्त्रेण सितरूपिणं।
विधानेन तिलैर्मिश्रं गुण्डं तत्रैव निक्षिपेत्॥
धर्म्मराजं न्यसेद्देवं सौवर्णं शक्तितः कृतं।
सुमुखं द्विभुजं देवमासीनं दण्डहस्तकं॥
वरदं कृपया युक्तं भक्तानां हितकारिणं।
एवं सप्तघटान् कृत्वा गन्धादिभिरथार्च्चयेत्।
विप्रेभ्यो दापयेत् कुम्भानेभिर्म्मन्त्रैर्यथाक्रमं॥
यमाय धर्म्मराजाय मृत्यवे चान्तकायच।
वैवस्वताय कालाय सर्व्वभूतक्षयाय च॥
एवमाराध्य तान् कुम्भान् दद्यादुदकपूर्व्वकं।
प्रीयताम्भगवानेवमन्वाते समुदाहरेत्॥
एवं कुम्भप्रदानेन देव देवः स तुष्यति।
कर्त्ता कारयिता स्वर्गं प्राप्नोतीति न संशयः।
न याति नरकं घोरं न प्राप्नोत्यशुभं क्वचित्।
यमस्वरूपी भगवान् प्रीतो भवति तस्य वै।
यः कुम्भदानं विप्रेभ्योददाति च यथाविधि।

इत्युदकुम्भदानविधिः।

अथ मकरदानं।

तत्र बौधायनः।

कुर्य्यात्तु मकरं सम्यग्राजतं ताम्रमेव च।
पलत्रयेण द्वाभ्यां वा यद्वैकेन शुभाकृतिं॥
पुच्छे रत्नानि देयानि कटिं रूप्येण कारयेत्।
नेत्रे स्वर्णमये कार्य्ये जिह्वा कार्य्या प्रकल्पयेत्॥
पादयोः प्रक्षिपेत्तत्र घृतपात्रे पुरोहयोः।
कृष्णावस्त्रेण संवेष्ट्य चन्दनागुरुचर्च्चितं।
ताम्रेऽथ जलपात्रेऽथ स्थापयेन्मकरं शुभं।
ब्राह्मणं वृत्तसम्पन्नं वृद्धं दान्तमलोलुपं।
वस्त्रैः कटककेयूरैः पूजयेदङ्गुलीयकैः।
होमोवारुणदैवत्यैर्मन्त्राध्यायोक्तमार्गतः।
ततस्त्वौदरिके विप्रे मकरन्तं निवेदयेत्।
जलाधिदेव देवेश पश्चिमाशापते विभो।
उदरव्याधिनाशं मे कुरु दानेन तोषितः।

इति मकरदानविधिः।

अथ धनदमूर्त्तिदानं।

वायुपुराणे।

दरिद्रो जायते मर्त्त्यो दानविघ्नं करोति यः।
ऐश्वर्य्यं जायते येन कर्म्मणा तच्छृणुष्व मे।
पलार्द्धेन तदर्द्धेन तदर्द्धेनाथ वा पुनः।
धनदस्य प्रतिकृतिं कुर्य्यात् स्वर्णमयीं शुभां।
द्विभुजां वाहनीपेतां नयनानन्दकारिणीं।

धनदलक्षणं धान्य पर्व्वत दानेद्रष्टव्यं ।
शङ्खपद्मनिधिभ्याञ्च युक्तान्तां पार्श्वयोर्द्दयोः ।
श्वेतवस्त्रेण संवेष्ठ्य तण्डुलोपरि विन्यसेत् ॥
तण्डुलानां परीमाणं भवेद्द्रोणचतुष्टयं ।
तदर्द्धं वा तदर्द्धं वा वित्तशाठ्यं न कारयेत् ॥
श्वेतमाल्यैस्तथा गन्धैरनुलिप्य प्रपूजयेत् ।
आग्नेय्यां दिशि होमश्च समिदाज्यतिलैर्भवेत् ॥
मन्त्रोराजाधिराजायेत्येष योज्यः सलिङ्गकैः ।
व्याहृत्या तिलहोमश्च कर्त्तव्योधनकाङ्क्षिभिः ॥
आचार्य्यः सर्व्वशास्त्रज्ञो विनीतः सर्व्वसम्मतः ।
महाकुलप्रसूतश्च धर्म्मज्ञः सत्यवाक् शुचिः ॥
कारयेदर्च्चनं तेन धनदस्यातिभक्तितः ।
तद्दैवत्येन मन्त्रेण सच कामेश्वरोभवेत् ॥
तस्मै होमं कृतवते प्रदद्यात् प्रतिमान्तु तां ।
मन्त्रेणानेन विधिवत् प्राङ्मुखाय ह्युदङ्मुखः ॥
उत्तराशापते देव कुवेर नरवाहन ।
पद्मशङ्खनिधीनां त्वं पतिः श्रीकण्ठवल्लभः ॥
दानाद्येन यथा प्राप्तं दारिद्र्यं मम दुःखदं ।
तत्सर्व्वमात्मदानेन पापमाशु विनाशय ॥

दानमन्त्रः ।

एवं कुवेरदानं यः करोति विधिपूर्व्वकं ।
धनदेन समोमर्त्त्यस्तत् क्षणादेव जायते ॥

इति धनदमूर्त्तिदानविधिः।

अथ नागदानं।

तत्र वृद्धवौधायनः।

सर्पैस्तु यः खाद्यति स विसर्पी भवेन्नरः।
दानेनोपशमः कार्य्यो होमेन च विशेषतः॥
पलेन वा तदर्द्धेन तदर्द्धेनाथ वा पुनः।
कुर्य्यान्नागं सुवर्ण्णेन फणापञ्चकसंयुतं॥
माणिक्यानिच देयानि प्रत्येकं फणपञ्चके।
रत्नं पुच्छे तथा देयं वज्रे लोचनयोस्तथा॥
एवं कृत्वा शुभं नागं कुङ्कुमेन तु लेपयेत्।
रक्तवस्त्रेण संवेष्ट्य ताम्रपात्रोपरि न्यसेत्॥
पात्रस्य च परीमाणं पलानामष्टकं विदुः।
उपचारैः षोड़शभिरर्च्चयेन्नागमुत्तमं॥
आचार्य्यः सर्व्वशास्त्रज्ञो धर्म्मशास्त्रपरायणः।
होमञ्चापि प्रकुर्व्वीत समिदाज्यतिलैः शुभैः॥
नमोस्तु सर्पेभ्य इति त्रिभिर्म्मन्त्रै र्यथाक्रमं।
अष्टोत्तरसहस्रन्तु अष्टोत्तरशतन्तु वा।
अष्टाविंशतिरेवाथ परिमाणं पृथग्भवेत्॥
हुत्वा चाहुतिसंपातैः पात्रेचैकीकृते स्वयं।
आवयोगानिचाभ्यज्य रोगिणन्तु विसर्पिणं॥
ऋग्भिस्तु सर्पराज्ञीभि र्भूमिर्भूम्नादिभिः क्रमात्।
स्वस्थो यथासौ भवति गात्राणामप्यरोगतः॥

गुग्गुलञ्च सुगन्धिञ्च पत्रिदारु च निक्षिपेत्।
प्रकल्प्य कलशं कुर्य्यादभिषेकं जलैः शुभैः॥
ओं नमः सर्पेभ्य इति चाद्यैस्तल्लिङ्गकैरपि।
हिरण्यवर्णाः शुचयः पवमानोनुवाकतः॥
आपोहिष्टामयइति शन्नोवात इतीरयेत्।
उत्सादिताङ्गरुचिरं लिम्पेदगुरुचन्दनैः॥
ततः शुक्लाम्बरधरः शुक्लमाल्यानुलेपनः।
ततः समर्च्चयेन्नागङ्गन्धपुष्पाक्षतादिभिः॥
सर्पदैवत्यमन्त्रेण आचार्य्योपि समर्च्चयेत्।
अनन्तं सर्पराजन्तमाचार्य्याय निवेदयेत्॥
योधत्ते पृथिवीं कृत्स्नां सशैलवनकाननां।
क्षीराब्धौ यस्य शय्या च वासुदेवस्य शार्ङ्गिणः॥
स्वीयदानेन नागोऽसौ तुष्टोव्याधिमपोहतु।
वैसर्पिकविकारं मे वाग्दोषजनितं तथा॥
रक्तदोषोद्भवं वापि मातृतः पितृतोपि वा।
अङ्गप्रत्यङ्गसम्भूतं विकारं मे व्यपोहतु॥

दानमन्त्रः।

एवं दत्त्वा तु तं नागमाचार्य्याय सदक्षिणं।
भूमौ प्रणम्य शिरसा शनैः शतपदं व्रजेत्॥
आचार्य्येण ह्यनुज्ञातः स्वगृहं प्रविशेत् सुधीः।
ब्राह्मणान् भोजयित्वा च स्वयम्भुञ्जीत बन्धुभिः॥

इति नागदानविधिः।

अथात्मप्रतिकृतिदानं।

भविष्योत्तरात्।

कृष्ण उवाच।

आत्मप्रतिकृतिर्नाम यन्नोक्तं कस्यचित्पुरा।
तत्तेऽहं सम्प्रवक्ष्यामि दानं मानविवर्द्धनं॥
दानकालः सदा तस्य मुनिभिः परिकीर्त्तितः।
पुण्यैः पुण्यदिनं पार्थ प्राप्यते जीवितेचले॥
हैमीं प्रतिकृतिं भव्यां कारयित्वा ततोनृप।
अभीष्टवाहनगतामिष्टालङ्कारसंयुतां।
अभीष्टलोकसहितां सर्व्वोपस्करसंयुतां॥

अभीष्टलोकसहितामिति, प्रियजनसहितामित्यर्थः।

तत्र पट्टपटीवस्त्रैश्छादितां स्रग्विभूषितां।
कुङ्कुमेनानुलिप्ताङ्गीं कर्पूरागुरुवासितां॥
स्त्री चेद्ददाति शयने शयितां कारयेत् स्वयं।
यद्यदिष्टतमं किञ्चित् तत्सर्व्वं पार्श्वतो न्यसेत्॥
उपकारकरं स्त्रीणां पुरुषाणाञ्च यद्भवेत्।
तत्सर्व्वं स्थापयेत्पार्श्वे स्वयं सञ्चिन्त्य चेतसि॥
एतत् सर्व्वं मेलयित्वा स्वे स्वे स्थाने नियोजयेत्।
पूजयित्वा लोकपालान् ग्रहान् देवीं विनायकं॥

देवीशब्देनात्र दुर्गोच्यते, विनायकसाहचर्य्यात्

ततः शुक्लाम्बरः स्नात्वा गृहीतकुसुमाञ्जलिः।
इममुच्चारयेन्मन्त्रं विप्रस्य पुरतः स्थितः॥
आत्मनः प्रतिमा चेयं सर्व्वोपकरणैर्युता।
सर्व्वरत्नसमायुक्ता तव विप्र निवेदिता॥
आत्मा शम्भुः शिवः शौरिः शक्रः शिवगणैर्युतः।
तस्मादात्मप्रदानेन मम चात्मा प्रसीदतु॥
इत्युच्चार्य्य ततोदद्याद्ब्राह्मणाय युधिष्ठिर।
ब्राह्मणश्चाथ गृह्णाति कोदादितिच कीर्त्तयन्॥

कोदादिति, वाजसनेयप्रसिद्धमन्त्रग्रहणं।

ततः प्रदक्षिणीकृत्य प्रणिपत्य विसर्ज्जयेत्॥
विधिनानेन राजेन्द्र दानमेतत् प्रयच्छति।
यः पुमानथवा नारी शृणु यत् फलमाप्नुयात्॥
सार्द्धं वर्षशतं दिव्यं सर्व्वलोकैः सुरैर्वृतः।
अभीष्टफलदानेन चाभीष्टफलभाग्भवेत्॥
यत्रैवोत्पद्यते जन्तुः प्राप्तकर्म्मक्षयक्षणं।
तत्रैव सर्व्वकामानां फलभाक् स भवेन्नृप॥
इष्टबन्धुजनैः सार्द्धं न वियोगं कदाचन।
प्राप्नोति पुरुषोराजन् स्वर्गञ्चानन्तमश्नुते॥

यश्चात्मनः प्रतिकृतिं वरवाहनस्थां
हैमीं विधाय धनधान्यसमाकुलाञ्च।
सोपस्करां द्विजवराय ददाति भक्त्या
चन्द्रार्कवद्दिवि विभाति स राजराजः॥

इत्यात्मप्रतिकृतिदानविधिः।

अथाश्विनोर्दानं।

ब्रह्माण्डपुराणे।

अथापृच्छन्मुनयः सूतसूनुं
तदारण्ये नैमिषे सत्रिणःस्ते।
उग्रश्रवः परिपृच्छामहे त्वां
कथं विद्वान् शमयेद्रोगपीड़ां॥
एवं पृष्टोमुनिभिः सूतसूनु
मुवाचेदं दानमाहात्म्य मत्र।
शृणुध्वं वः कथयिष्यामि दानं
यत् कृत्वासौ मुच्यते रोगपूगैः॥
अभीष्टसिद्धिर्भवतीह कर्त्तु-
रायुष्यमारोग्य मुपैति चाग्र्यं।
उग्राणि सर्व्वाणि शमं प्रयान्ति
श्रियं तथा प्राप्नुयाद्येन दाता॥
स्वर्भानुना ग्रसिते चन्द्रसूर्य्यै
राश्यन्तरे संक्रमे वाथ भानोः।
ग्रस्ते रोगैस्त्रिविधैश्चाद्भुते वा
मनोनित्यं रमते यत्र भूमौ॥
तस्मिन् कुर्य्यादाश्विनं नाम दानं

* जायते इति क्वचित्पाठः।

शुचौ देशे गोमयेनोपलिप्ते ।
वेदीद्वये हस्तमात्रे समन्तात्
कृत्वा तिलैस्तण्डुलैराढकाख्यैः ॥
तत्र देवावश्विनौ जातरूपौ
प्रत्यङ्मुखोऽभ्यर्च्चयित्वा जातरूपौ ।
जातरूपौ सुवर्णमयौ अश्विनौ

तल्लक्षणमुक्तं,

विष्णुधर्म्मोत्तरे ।

द्विभुजौ देवभिषजौ कर्त्तव्यौ चारुलोचनौ ।
तयोरोषधयः कार्य्यादिव्या दक्षिणहस्तयोः ॥
वामयोः पुस्तकौ कार्य्यौ दर्शनीयौ तथा द्विज ।
एकस्य दक्षिणे पार्श्वे वामे चान्यस्य यादव ॥
नारीयुगं प्रकर्त्तव्यं सुरूपञ्चारुदर्शनं ।
तयोश्च नामनी प्रोक्ते रूपसम्पत्तथाकृतिं ॥
रत्नभाण्डं करे कार्य्यं चन्द्रशुक्लाम्बरे तथेति ॥

गन्धैर्वस्त्रैः पुष्पधूप प्रदीपैः
प्रदक्षिणं देवमुख्यौ च कृत्वा ।
पुष्पाञ्जलिंतौ प्रददे, प्रणम्य
अभ्यर्च्चा विप्रद्वयमादरेण ॥
प्रत्येकमेकन्तु हिरण्यरूपं
दद्यात्तु तस्योदकपूर्व्वमत्र ।
समीरयेन्मन्त्रमथ क्रमेण

दाता समाधाय मनः प्रसन्नं॥
नासत्यदस्रौ युवयोर्हिरण्य
रूपप्रदानान्ममशान्तिरस्तु।
यथायुवां देवभिषग्भवेतां
तथाच मे रोगशमाय देवौ॥

इत्यश्विदानविधिः।

अथ चन्द्रसूर्य्यदानं।

विष्णुधर्म्मोत्तरात्।

भगवानुवाच।

अतः परं प्रवक्ष्यामि दानं राजन्नराधिप।
यद्दत्वा तु बली राजा शक्रराज्यमवाप ह॥
शक्रश्च बलिनोराज्यं दत्वा पुनरवाप ह।
चन्द्रसूर्य्योपरागेच विषुवे अयने यथा॥
द्वादश्यां चन्द्रक्षये च वैशाख्यां पुत्रजन्मनि।
कार्त्तिक्याञ्च महामाघ्यां सप्तम्यां जयायान्तथा॥
चन्द्रादित्यौ च दातव्यौ सूर्य्यः सौवर्णउच्यते।
शुद्धस्य रजतस्यैव मण्डलं हिमरोचिषः॥
द्वादशाङ्गुलवृत्तन्तु उभयोरपि मण्डलं।
वृत्तौ पद्मसमाकारौ मध्येचैव तु कर्णिकां॥
भानुन्ताम्रमये पात्रे घृतपूर्णे तु निक्षिपेत्।
सोमं शङ्खे क्षीरपूर्णे उपरि स्थापयेद्बुधः॥

सूर्य्यन्तु रक्तकुसुमैः सोमं शुक्लैस्तथैव च ।
आदित्याय तु धूपं वै सुगन्धिञ्चैव दापयेत् ॥
सोमस्य गुग्गुलोदेयोगन्धः शुक्लस्तथैव च ।
कुङ्कुमं तु पतङ्गाय दीपञ्चैव घृतेन तु ॥
एवं संपूज्य यत्नेन चन्द्रादित्यौ पृथक् कृतौ ।
अमृतमूर्त्तये सोमं नमोन्तेनैव पूजयेत् ॥
खखोल्कायेति वै सूर्य्यं नमोन्तेन पुनः पुनः ।
आहूय ब्राह्मणं भक्त्या वेदवेदाङ्गपारगं ॥
कुटुम्बिनं दरिद्रञ्च आहिताग्निं तथैव च ।
रक्तेन वाससाच्छाद्य कुङ्कुमेनानुलिप्य च ।
संपूज्य पुष्पधूपैश्च द्विजं सूर्य्यमिवापरं ॥
रविविम्बं चन्द्रविम्बं घृतस्थन्तु निरीक्ष्य वै ।
समर्पयेद्ब्राह्मणाय मन्त्रेणानेन भूमिप ॥
रुक्मञ्च पुरुषञ्चैव पर्शं पुष्करमेव च ।
त्रयी तु विद्या साङ्गा तु यस्याङ्गं विश्वरूपिणः ॥
स वै चण्डकरोदेवः प्रीयतां विप्र माचिरं ।
एवमुच्चार्य्य भानुन्तु ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥
क्षीरजं देवदेवञ्च द्विजराजं तथैव तु ।
अमृतमूर्त्तिं-शीतांशुं ददामि च द्विजोत्तम ॥
गायत्र्याचैव सूर्य्यस्य ग्रहणं जायते विभो ।
सोमन्त्वस्त्रमन्त्रोग्रं जपन् शुद्धेन चेतसा ॥
एवं चन्द्र-रविन्दत्त्वा बली राज्यमवाप ह ।
सर्व्वमेतेन तु दत्तं स्याद्योदद्याच्चन्द्रभास्करौ ॥



51-1

सर्व्वस्तेन कृतं राजन् सर्व्वस्तेन च संश्रुतं ।
सर्व्वं दक्षिणया यष्टं संसारे तु नरोत्तम ।
पूज्यते सिद्धगन्धर्व्वै र्ऋषिभिर्द्देवदानवैः ॥

इति चन्द्रादित्यदानविधिः ।

अथ ध्वजपाशदानं ।

आह बौधायनः ।

ध्वजं पाशं पलैकेन कुर्य्यात्तु रजतेन वै ।
पलार्द्धेनाथवा शुद्धस्फटिकोपममाहृतः ॥
रत्नैर्म्मरकतैः सम्यक् वज्रमङ्गेषु सर्व्वतः ।
कुम्भञ्च स्थापयेत्तत्र तिलानां द्रोणपञ्चकं ॥
कुम्भस्योपरि संस्थाप्यो ध्वजपाशश्च शोभनः
सहिरण्यं द्वयन्तत्तु ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥
वस्त्रेणावेष्टयेत् कुम्भं गन्धमाल्याक्षतार्च्चितं ।
श्रुतवृत्तैः समृद्धाय श्रोत्रियाय कुटुम्बिने ॥
वरुणस्य तथा वायोः प्रीत्यर्थं विनिवेदयेत् ।
नमः पाशभृते तुभ्यं नमोध्वजधराय ते ॥
जलाधिपतये तुभ्यं वायोः सर्व्वजनप्रियः ।
युवयोः प्रीतये दत्तौ ध्वजपाशौ सुराजतौ ॥
श्वासकासौ हरेतां मे प्रीतौ सर्व्वजनाश्रयौ ।
एवं कृत्वा श्वासकासौ नीरोगस्तत्क्षणात् भवेत् ॥

इति ध्वजपाशदानविधिः ।

अथ ब्रह्मविष्णुमहेश्वरदानम् ।

लिङ्गपुराणे ।

अथान्यत् सम्प्रवक्ष्यामि सर्व्वदानोत्तमोत्तमं ।
पूर्व्ववद्देशकाले च मण्डपे वा विधानतः ॥
प्रपायां कूटमध्ये वा स्थण्डिले शिवसन्निधौ ।
पूर्व्वं-विष्णुं-समाराध्य पद्मयोनिं-ततः परं ॥
मन्त्राभ्यां विधिना ताभ्यां प्रणवादिनमोन्तकं ।

अत्र पूर्व्ववच्छब्देन लिङ्गपुराणोक्ततुलापुरुषदानविहितं कुण्ड-मण्डपादि सर्व्वमुपसंगृह्यते तत्रैतस्य तत्प्रकरणे पठितत्वात् । 'प्रपाकूटौ' मण्डपविशेषौ ।

उक्तमण्डपविशेषे, स्थण्डिलं विधाय शिवसन्निधौ ब्रह्मविष्णू पूजयेदित्यर्थः शिवसन्निधावित्यनेनैव शिवप्रतिमाकरणमपि गम्यते ।

तथाचोक्तं कामिके ।

मण्डलान्तःशिवं हैमं पार्श्वयो र्ब्रह्म-केशवौ ।
तानुद्दिश्य प्रदातव्यं श्रोत्रियेभ्यो धनं बहु ॥
उत्तमन्त्रिसहस्रन्तु मध्यमन्द्विसहस्रकं ।
सहस्रं कन्यसं प्रोक्तं समासात् प्रोच्यते मया ।
पूर्व्ववच्छिवपूजा च ऋत्विगाचार्य्यदक्षिणा ॥

मन्त्राभ्यामिति वक्ष्यमाणाभ्यामुभाभ्यां विष्णुब्रह्माणौ पूजयेत् प्रणवादिनमोन्तकमिति क्रियाविशेषणं।

नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि तन्नो विष्णुः प्रचोदयात्।

वृहद्‌हणभेदाय ब्रह्मणे धनदाय ते।
शिवाय हरये स्वाहा स्वधा-वौषट्-वषट्-नमः॥

इति विष्णुब्रह्ममन्त्रौ।

शिवस्य तु, जप्त्वारुद्रानिति वक्ष्यति।

पूजयित्वा विधानेन पश्चाद्धोमं समारभेत्।*
सर्व्वद्रव्यञ्च होतव्यं द्वाभ्यां कुण्डे विधानतः॥
जप्त्वा रुद्रांस्तु नियतः शिवैकगतमानसः।
ऋत्विजौ द्वौ तु कर्त्तव्यौ गुणाढ्यौ वेदपारगौ॥
तानुद्दिश्य यथान्यायं विप्रेभ्योदापयेद्धनं।
शतमष्टोत्तरन्तेभ्यः पृथक् पृथगनुत्तमं॥
वस्त्राभरणसंयुक्तं यथाविभवविस्तरं।
गुरुञ्च ऋत्विजौ चैव ब्रह्मविष्णुमहेश्वरान्॥
तेषां पृथक् पृथक् दद्याद्भोजयेद्ब्राह्मणानपि॥
शिवार्च्चना च कर्त्तव्या स्नपनादि यथाक्रमं॥

सर्व्वद्रव्यमित्यादि, सर्व्वद्रव्यं लिङ्गपुराणोक्ततुलापुरुषदाने निरूपितं, द्वाभ्यांकुण्डइति, द्वाभ्यामृत्विग्भ्यां एकस्मिन् कुण्डे होतव्यमित्यर्थः, तानुद्दिश्येत्यादि, तान् ब्रह्मविष्णुमहेश्वरानुद्दिश्य प्रतिदैवतं

*समाचरेदिति पुस्तकान्तरे पाठः।

ऋत्विगाचार्य्यव्यतिरिक्तेभ्यो विप्रेभ्यः पृथगकैकशो अष्टोत्तरशत-संख्यं धनं दापयेदित्यर्थः अत्रानुपात्तजातिपरिमाणविशेषेऽपि-धनशब्देन, सर्व्वत्र बहुशोनिष्काणां प्रक्रान्तत्वात्तैरेव अष्टोत्तरशतं सम्पूरणीयं। गुरुश्चेत्यादि, एकोगुरुः द्वौ ऋत्विजौ तेभ्यो ब्रह्मविष्णु-महेश्वरान् सुवर्णमयान् विधाय दद्यात्। तेषां लक्षणमुक्तं ब्रह्माण्ड दाने तेभ्यो दक्षिणादानं ब्राह्मणभोजनं स्वस्तिवाचनञ्च कार्य्यं. दैशिकं पूर्व्ववत् संपूज्य ऋत्विजावपि पूजयेत्।

पुण्याहवाचकान् विप्रान् पूर्व्ववत् पूजयेद्बुधः।

इति वातुलोक्तिः।

एवं कृतेन लभते सर्व्वयज्ञफलं नरः।
सर्व्वान् कामानवाप्नोति निर्व्वाणं चाधिगच्छति॥

इति ब्रह्मविष्णुमहेश्वरदानं।

अथ त्रिमूर्त्तिदानं।

ब्रह्माण्डपुराणात्।

सूतउवाच।

अपृच्छन्मुनयः सर्व्वे नैमिषारण्यवासिनः।
उग्रश्रवसमासीनं रोमहर्षणमादरात्॥
उक्तानि भवतास्माकं दानानि विविधानि च।
मूर्त्तिदानञ्च नोक्तं वै त्वया ब्रह्मविदाम्वर॥
कदा वा कुत्र वा कार्य्यं यथा वा धर्म्मसाधनं।

ब्रूहि त्वं सर्व्वधर्म्मज्ञ दानशुश्रूषवो वयं ॥
इत्येवमुक्तोऽञ्जलिभिः शौनकप्रमुखैस्तथा।
उवाच दानमाहात्म्यं मुनीनां सूतनन्दन ॥
शृण्वन्तु मुनयः सर्व्वे दानं सर्व्वार्थसिद्धिदं।
सर्व्वपापहरं यच्च मङ्गल्यं सर्व्वमुक्तिदं ॥
पुरा देव युगे देवः प्रोवाच मधुसूदनः।
स्वनाभिकमलस्थाय विरिञ्चये महात्मने ॥
तथाहमपि वः सर्व्वं वदामि शृणुतानघाः।
त्रिमूर्त्तिदानं दानानामुत्तमोत्तममुच्यते ॥
विषुवत्ययने वापि चन्द्रसूर्य्यग्रहादिषु।
नित्यं वा पञ्चदश्याञ्च जन्मर्क्षेषु समाचरेत् ॥
देवालये नदीतीरे पुण्येष्वायतनेषु च।
गृहे वा कारयेद्दानं पञ्चभूमिः शुचिर्भवेत् ॥
चतुरस्रां समां भूमिं गोमयेनोपलेपयेत्।
तत्राक्षताभिर्व्विकिरेत् पुष्पाञ्जलीन् समन्ततः ॥
तत्रैकहस्ता द्विहस्ता वा त्रिगुणा दैर्घ्यतः स्मृता।
त्रिवेदिका भवेत्तिर्य्यक् श्वेततण्डुलमिश्रिता।

ब्रह्माथ विष्णुर्भगवान् मुरारि
हिरण्मयास्तत्र निवेशनीयाः।
चतुर्भुजाः स्वायुधभूषणाढ्या
किरीटिनश्चापि यथा क्रमेण ॥

ब्रह्मादिलक्षणमुक्तं, ब्रह्माण्डदाने।
स्नानार्घपाद्याचमनीय वस्त्र

गन्धादिभिस्तानभिपूज्य भक्त्या ।
प्रदक्षिणीकृत्य सपुष्पहस्तः ।
प्रणम्य चोद्दाश्य ततःप्रदद्यात्
प्रत्येकमेवं बहुदानपूर्व्वं ॥
संपूज्य दातव्यमनुक्रमेण
त्वया जगत्सृष्टिकृता स्वमेतत् ।
त्वमेव सर्व्वस्य पितामहोऽसि
त्वमेव कर्त्ता जगतां विकर्त्ता ॥
त्वमेव धाता जगतां विधाता
त्वत्सम्प्रदानादनघो यथाहं ।
त्वया च सायुज्यमुपैति देव
तथा कुरु त्वं शरणं पपन्ने ॥
मयि प्रभो देववरप्रसादं
त्वया जगद्व्याप्तमिदं समस्तं ।
त्वं विष्णुरित्येव वदन्ति सन्तः
त्वत्स्थानि सर्व्वाणि वदन्ति देव ।
त्वया धृतं विश्वमनन्तमूर्त्ते
त्वत्संप्रदानादनघो भवामि ।
यथा जगत् कारणकारणेश
तथा कुरु त्वं शरणं प्रपन्ने ॥
मयि प्रभो देववर प्रसादं
त्वया नराणाममृतं विधाय ॥
हालाहलं संहृतमेव यस्मात्

तथासुराणां त्रिपुरञ्च दग्धं।
एकेषुणा लोकहितार्थमीश
त्वद्रूपदानादहमप्यशेषं॥
दोषैर्विमुक्तांस्तु गणान् प्रपद्ये
तथा कुरु त्वं शरणं प्रपन्ने।
मयि प्रभो देववर प्रसादं
इत्येव मुक्ता विधिवद्ददाति॥
स याति सायुज्यमथ त्रिमूर्त्तेः
यःकारयेद्दिप्रवराय तस्मै।
सुवर्णसंख्यागणितं हिरण्यं
दद्याच्च वासोयुगमादरेण॥
तथा कृतेऽयं लभते फलं तत्।

इति त्रिमूर्त्तिदानविधिः।

अथ त्रिपुरुषदानविधिः।

मृत्युञ्जयात्।

सुवर्णरत्निकानाञ्च शतेनैकेन शक्तितः।
कार्य्योब्रह्माथ विष्णुश्च शङ्करश्च तथैवच।
पलद्वादशमानेन पीठं लोहेन कारयेत्।
देवानां स्थापनार्थाय चक्रवत्परिमण्डलं।
तत्र ब्रह्मादयःस्थाप्या यमदूतं पुरोन्यसेत्।
चतुर्मुखश्चतुर्व्वाहुः पद्महस्तः पितामहः।
शङ्करोद्विभुजः शूली वृषारूढ़स्त्रिलोचनः।

विष्णुश्चतुर्भुजश्चक्री गदागरुड़वाहनः ।
यमदूतः पाशपाणिर्दंष्ट्रवान् विकृताननः ।
स तु लोहमयः कार्य्योभीतो बद्धइवाग्रतः ।
ततो विधाय देवानां पूजां पुष्पफलादिभिः ।
यजमानः करे खड्गं गृहीत्वा निशितं नवं ।
इदं शिरश्छिनद्मीति दूतस्यास्य दुरात्मनः ।
इत्युच्चार्य्य शिरश्छित्वा दूतस्य यमदिङ्मुखः ।
ततश्चतुर्भिर्विप्रैस्तु कार्य्यं ब्राह्मणवाचनं ।
ततो ब्रह्मादिदेवानां दानं कुर्य्यात् प्रयत्नतः ।
देवालये गृहे वापि तीर्थे वान्यत्र कुत्रचित् ॥
ब्राह्मणाय तु तान् दद्यात् दिव्याङ्गाय च शीलिने ।
सुवर्णदक्षिणायुक्तान् ब्रह्मादीननुपूर्व्वशः ।
अपमृत्युभयात् त्रस्तो योदद्याद्देवतात्रयं ।
तस्य मृत्युर्व्विनश्येत दानादस्मान्न संशयः ।
मृत्युना गृह्यमाणोपि जीवत्येव नरः स्फुटं ॥

चामीकरप्रतिकृतित्रितयं विधाय
ब्रह्मादिदानमिह यः पुरुषः करोति ।
रोगाग्निरस्य सकलानपिदुर्निवारा-
न्नैवापमृत्युभयमेति नरः कदाचित् ॥

इति पुरुषत्रयदानविधिः ।

अथ चतुर्म्मुर्त्तिदानं ।

ब्रह्माण्डपुराणात् ।

ऋषयः सत्रमासीना नैमिषारण्यवासिनः।
उग्रश्रवस-मासीनं पप्रच्छुर्मुनिसत्तमाः।
रोमहर्षणसूनो त्वं सर्व्वज्ञानमहार्णवः।
इत्युक्तोमुनिभिः सूतः प्रोवाच वदताम्वरः।
यथाह भगवान् ब्रह्मा नारदस्य पितामहः।
शृणु नारद भद्रन्ते दानं सर्व्वाघनाशनं।
धर्म्मशुश्रूषवः सर्व्वे वयन्त्वत्तो महामते।
अनायासेन केनेवं संसाराब्धिं समुत्तरेत्॥
नरः प्रब्रूहि दानं वा व्रतम्वा श्रुतमेव वा।
इत्युक्तोमुनिभिः सूतः प्रोवाच वदताम्वरः।
यथाह भगवान् ब्रह्मा नारदस्य पितामहः।
शृणु नारद भद्रन्ते दानं सर्व्वाघनाशनं।
चतुर्म्मूर्त्तिविधानन्तत् स्त्रीणां मङ्गल्यकारणं।
धन्यमारोग्यमायुष्यं भुक्तिमुक्तिफलप्रदं।
पुत्रदं श्रीकरं पुण्यमभीष्टफलदं शुभं।
सर्व्वेषु पुण्यकालेषु चन्द्रसूर्य्यग्रहादिषु।
देवागारादिदेशेषु गृहे वा दानमाचरेत्।
चतुरस्रां समां भूमिं लिप्तां-गोमयवारिणा।
चतस्रस्तत्र लेखाः स्युः प्राच्योदीच्यश्च ताः समाः।
नव कोष्ठानि तत्र स्युः कोणकोष्ठानि वर्ज्जयेत्।
तत्र तेषु च मूर्त्तीश्च चतुर्द्दिक्षु निवेशयेत्।
प्रागाद्युत्तरपर्य्यन्तं जातरूपमयीः शुभाः।
श्वेततण्डुलपद्मेषु पुष्पवत्सु निवेशयेत्।

पुरतो वासुदेवञ्च सङ्कर्षणमतः परं।
प्रद्युम्नञ्चानिरुद्धञ्च चतुर्म्मूर्त्तिं यथाक्रमं।
शङ्खचक्रगदापाणिं पीतवासससमच्युतं।
श्रीवत्साङ्कञ्चतुर्व्वाहुं केयूरमुकुटोज्ज्वलं।
नीलाम्बरधरं देवमनन्तं मुशलायुधं।
सङ्कर्षणं चतुर्व्वाहुं कटकादिविभूषणं।
प्रद्युम्नञ्चानिरुद्धञ्च शङ्खचक्रगदाधरौ।
पीतश्वेताम्बरधरौ केयूरादिविभूषितौ।
एवं कृत्वा चतुर्म्मूर्त्तिं चतुर्व्वाहुं समर्च्चयेत्।
पलस्यार्द्धात् सुवर्णेन यथाशक्ति विनिर्म्मितं।
प्रागाद्युत्तरपर्य्यन्तं देवानामर्च्चनक्रमः।
स्वस्वमन्त्रेण देवानामाराधनमनुक्रमात्।
स्नानं वासोयुगं चार्घ्यंपाद्यमाचमनीयकं।
गन्धसुमनसौ धूपं दीपं नैवेद्यमेव च।
धारात्रयं शुद्धजलै स्ताम्बूलञ्च निवेदयेत्।
परितोलोकपालांश्च गन्धादिभिरथार्च्चयेत्
त्रिः प्रदक्षिणमावृत्य गृहीतकुसुमाञ्जलिः।
उद्धास्य विप्रानाराध्य दद्यान्मन्त्रमुदीरयेत्।
नमोस्तु वासुदेवाय जगतां पतये नमः।
तव सङ्कीर्त्तनाद्दानाच्छ्रेयः स्यात्तु सदा मम।
सङ्कर्षण नमस्तेऽस्तु जगत्स्थित्यन्तकर्म्मणे।
तव देव प्रदानेन सर्व्वपापहरं भवेत्।
प्रद्युम्नायाखिलेशाय भक्तानां दुःखहारिणे।

नमोऽस्तु देवदेवाय भक्तानामार्त्तिहारिणे ।
सदा नमोस्तु जगतः सृष्टिस्थित्यन्तहेतवे ।
अनिरुद्धाय देवाय विष्णवे परमात्मने ।
यदि दद्याच्चतुर्मूर्त्तिं श्रद्धायुक्तस्तु नारद ।
नारी वा पुरुषोवापि यथोक्तं फलमश्नुते ।
इत्याह नारदायैवं ब्रह्मालोकपितामहः ।
यथा ममापि तत्सर्व्वं ब्रुवन्मुनिसत्तमाः ।

इति चतुर्म्मूर्त्तिदानविधिः ।

अथ आयुष्करदानं ।

ब्रह्माण्डपुराणात् ।

सूतउवाच ।

अथ दानं प्रवक्ष्यामि शृणुध्वं मुनिसत्तमाः ।
आयुष्करमिति प्रोक्तमारोग्यं सर्व्वसिद्धिदं ।
यत्र साधनसिद्धः स्यात्तत्र दानं समाचरेत् ।
भूमौ गोमयलिप्तायां दक्षिणोत्तरतः शुभं ।
निधाय तत्र पाणिभ्यां पूर्णानि सिततण्डुलैः ।
चत्वारि तेषु हैमानि मण्डलानि निवेशयेत् ।
सौवर्णांश्च ततो देवानर्च्चयेच्च यथाक्रमं ।
पूर्व्वमात्मभुवं तत्र विष्टरश्रवसंयुतं ।
कृत्तिवाससमीशानं वज्रपाणिं शतक्रतं ।

आत्मभूर्ब्रह्मा, विष्टरश्रवा विष्णुः ईशानः शिवः प्रसिद्धः एतेषां लक्षणमुक्तं ब्रह्माण्डदाने, एते च यथाशक्ति सुवर्णमया विधातव्याः ।

गन्धादिभिरथाभ्यर्च्य दक्षिणोत्तरतः क्रमात् ।
प्रत्येकमेकं विप्रेभ्यो दद्यादाराध्य भक्तितः ।
तं तं देवमिति ध्यात्वा मन्त्रानेतानुदाहरेत् ।
संप्रीयतां मे भगवानात्मभूरित्युदीरयेत् ।
संप्रीयतां जगद्व्यापी भगवान् विष्टरश्रवाः ।
संप्रीयतां मे भगवान् कृत्तिवासा इति ध्रुवं॥
संप्रीयतां मे भगवान् वज्रपाणिः शतक्रतुः ।
एवमाह पुरा ब्रह्मा नारदाय सुरर्षये ।
प्रोक्तं मयापि तत्सर्व्वं युष्माकं मुनिपुङ्गवाः ।

इत्यायुष्करदानविधिः ।

अथ पञ्चमूर्त्तिदानं ।

ब्रह्माण्डपुराणात् ।

अथ दानं प्रवक्ष्यामि पञ्चमूर्त्तिरिति श्रुतं ।
यत्कृत्वा पुरुषः स्त्री वा सर्व्वसिद्धिमवाप्नुयात् ।
यत्पापं मनसा वाचा कर्म्मणा च पुरा कृतं ।
जन्मान्तरसहस्रेषु तन्नाशं याति सर्व्वतः ।
यथा हेदं पुरा देवो नारदाय महात्मने ।
पृष्टस्तेनापि भगवानब्जयोनिः पितामहः ॥
तथाहमपि तत्सर्व्वं युष्माकं मुनिपुङ्गवाः ।

प्रवक्ष्यामि महादेवं पञ्चमूर्त्तिरिति श्रुतं ॥
शृणुष्व त्वं च देवर्षे दानं सर्व्वाघनाशनं।
दानमारोग्यमायुष्यं श्रीकरं भुक्तिमुक्तिदं ॥
चन्द्रसूर्य्यग्रहे वाथ विषुवत्ययनादिषु।
सर्व्वेषु पुण्यकालेषु गृहे वायतनेषु च।
आचार्य्यं वरयेद्विप्रं तस्याज्ञामवाप्य च।
विद्याविनयसम्पन्नं सर्व्वैस्तैनैव कारयेत्।
लेपयेत्तु समां भूमिं गोमयेनोदकेन च ॥
चतस्रस्तत्र रेखाः स्युःप्राच्योदीच्यस्तु ताः समाः।
त्रिहस्तमात्रास्ताः सर्व्वास्तत्र स्युर्नवकोष्ठकाः ॥
तत्र पञ्चैव संग्राह्या चतुष्कोणानि वर्जयेत्।
तेषु पञ्चसु कोष्ठेषु प्रत्येकं कमलं न्यसेत् ॥
श्वेततण्डुलपुञ्जेषु अष्टपत्रं सकर्णिकं।
तेषु तण्डुलपद्मेषु पञ्चमूर्त्तीर्निवेशयेत् ॥
सुवर्णनिर्म्मिताः पञ्च मूर्त्तीः कृत्वा विधानतः।
ईशं सौवर्णमासीनं केयूरमुकुटोज्वलं ॥
चतुर्व्वाहुमुदाराङ्गं कटकादिविभूषितं।
दक्षिणे परशुं हस्ते सव्ये तु मृगपोतकं ॥
अभयं दक्षिणे सव्ये शूलं नेत्रत्रयं न्यसेत्।
सद्योजातं वामदेवमघोरं पुरुषं तथा ॥
सुवर्णेनैव कुर्व्वीत प्रदामादर्द्धमानतः।
सद्यं पश्चादुत्तरे वामदेवं
तथा चाप्यद्दक्षिणे चाप्यघोरं।

सद्यं, सद्योजातमित्यर्थः

तच्छन्दोक्तं पुरुषं पूर्व्वकोष्ठे ॥

तेषां मध्ये चैव मीशानमेव

स्नानं वस्त्रं चार्घ्यपाद्याचमनीयं।

गन्धं पुष्पं धूपदीपौ हविष्यं

अभ्यर्च्चिताः पञ्चमूर्त्तीः क्रमेण ॥

मन्त्रैःपञ्च ब्रह्मभिर्मानपूर्व्वं

संपूज्य चैवं विधिनोदितेन।

सद्यादिदेवांश्च यथा क्रमेण

सद्योजातादिलक्षणमुक्तं

लिङ्गपुराणोक्ततिलपर्व्वतदाने,

पञ्च ब्राह्मणाः सद्योजातादि

मन्त्राः, तैत्तिरीयाणां प्रसिद्धाः।

ते नैव विप्रेण च सर्व्वमेतत्

कृत्वैव दानं स्वयमेव कुर्य्यात् ॥

दानकाले तु संप्राप्ते दाता नारी नरोथ वा।

स्नापितो गुरुणा तेन मन्त्रपूतैः कुशोदकैः ॥

अभ्यर्च्च विप्रङ्गन्धाद्यैर्मन्त्रानेतानुदीरयेत् ॥

प्रत्येकमेका दातव्या देवमूर्त्तिरनुक्रमात्।

नमोस्तु सद्योजाताय भवाय भवसङ्गिने ॥

भवभङ्गो भवेन्मह्यन्तव रूपप्रदानतः।

सोमाय वामदेवाय शिवाय शिवरूपिणे ॥

सदा मे शिव मेवास्तु तव रूपप्रदानतः।

नमोघोराय घोराय जगत्संहृतिकर्म्मणे ॥
शरणं त्वां प्रपन्नोऽहमशंङ्कं मम शङ्कुरु।
पुरुषाय पुराणाय हराय वरदाय च ॥
तस्य रूप प्रदानाम्मे श्रेयसे स्तु नमोऽस्तु ते।
ईशानोजगतामीशो देवानामभयङ्करं ॥
रक्ष त्वं शेषभूतानामीशो मां शरणं गतं।
त्रिःप्रदक्षिणमाहृत्य गृहीतकुसुमाञ्जलिः ॥
प्रणिपत्य ततोदद्यादेभिर्मन्त्रैर्यथाक्रमं।
मध्यमङ्गुरवे दद्यादन्यस्मै वा प्रदापयेत ॥
दक्षिणाङ्गुरवे दद्यात् सुवर्णञ्चैव वाससी।
एतन्नरोथवा नारी नारदेह समाचरेत् ॥
मुच्यते सर्व्वपापेभ्यः शिवसायुज्यमाप्नुयात्।
इत्येव मृषयोदानं नारदाय चतुर्म्मुखः ॥
यथोवाच तथा प्रोक्तं मया वै पञ्चमूर्त्तिकं।

इति पञ्चमूर्त्तिदानविधिः।

अथ दिग्दानं।

विष्णुधर्म्मोत्तरात्।

कार्त्तिक्यामग्निदैवे भे विष्णोर्ब्रह्मात्मकस्य वा।
प्राच्यादि कुर्व्वीत दिशश्चतस्रः पृथिवीयुताः ॥
स्त्रीवेषाश्चैव कर्त्तव्याः पूर्णकुम्भकराः शुभाः।
गोरूपा पृथिवी कार्य्या सर्व्वलक्षणसंयुता।

कृत्वा कमलसंस्थाना: सुवर्णद्वितयेन तु ॥
पूजयित्वा द्विजान् पञ्च सुवस्त्राभरणैस्ततः ।
ताम्रपात्रं दले कृत्वा कदल्याः पीठसंयुताः ॥
योददाति प्रदत्ता स्यात् पृथिवी तेन पार्थिव ।
पितरः पितृलोकस्था देवलोके दिवौकसः ॥
संप्रीणयन्ति तं तुष्टा वसुपुत्रधनेप्सितैः ।
अमापमन्नं भुञ्जीत दत्त्वैतद्विधिपूर्व्वकं ॥

इति दिग्दानविधिः ।

अथ पञ्चदैवत्यदानं ।

ब्रह्माण्ड पुराणात् ।

अथ दानं प्रवक्ष्यामि शृण्वन्तु मुनयोऽमलाः ।
पञ्चदैवत्यमित्युक्तं नारदाय स्वयम्भुवा ॥
शरीरारोग्यमायुष्यं श्रीकरं पापनाशनं ।
यत् कृत्वा पुरुषः स्त्री वा सर्व्वमायुरवाप्नुयात् ॥
पुण्यकालेषु सर्व्वेषु जन्मर्क्षेषु विशेषतः ।
पुण्यदेशे गृहे वाथ नित्यं वा दानमाचरेत् ।
दुःस्वप्नाद्भुतदृष्टौ तु सर्व्वदोषप्रशान्तये ।
दानमेतत्समं कुर्य्याच्छ्रद्धया परया युतः ॥
स्नात्वा कुशोदकैः प्रातर्ध्रौतवासाः प्रसन्नधीः ।
संपूज्य विप्रं विद्वांसन्तस्यानुज्ञामवाप्य च ॥
अग्निः सोमश्च वरुणस्तथा देवी सरस्वती ।
अग्नि र्व्विष्णुरिति प्रोक्तो ब्राह्मणाः पञ्च देवताः ॥

अन्न्यादिलक्षणमुक्तम्, अक्षाखण्डदाने।

सरस्वती लक्षणमुक्तं सरस्वतीदाने।

अग्निविष्णोस्तु लक्षणमपराजितेनोक्तं।

अग्निविष्णू प्रकर्त्तव्यौ कमले युगपत्स्थितौ।
तत्र स्रुक्पाणि रग्निस्तु साक्षसूत्रकमण्डलुः॥
गदापद्मधरो विष्णुः शङ्खचक्रगदास्त्रधेति।
एताः पञ्च समुद्दिश्य विप्रानाराध्य दापयेत्॥
प्रत्येकं वाससी शुभ्रे ससुवर्णे यथा क्रमं।
संप्रीयतामयं देवो भगवान् सोमइत्यपि॥
तत्रोपदेष्ट्रे विप्राय तत् समां दक्षिणां ददेत्।
पुण्याहं स्वस्तिऋद्धिञ्च वाचयेत्पञ्चभिर्द्विजैः।
तेषामपिच दातव्या दक्षिणा च यथार्हतः॥

इति पञ्चदैवत्यदानविधिः।

अथ लोकपालाष्टकदानं।

लिङ्गपुराणात्।

लोकपालाष्टकं दिव्यं साक्षात्परमदुर्लभं।
सर्व्वसंपत्करं गुह्यं परचक्रविनाशनं॥
स्वदेशरक्षणं नित्यं गजवाजिविवर्द्धनं।
पुत्रवृद्धिकरं पुण्यं गोब्राह्मणहितावहं॥
पूर्व्वोक्तदेशकाले तु वेदिकोपरिमण्डले।

मध्ये शिवं समभ्यर्च्य यथान्यायं यथाक्रमं ॥
दिग्विदिक्षु प्रकर्त्तव्यं स्थण्डिलं वालुकामयं ।
अष्टौ विप्रान् समाहूय वेदवेदाङ्गपारगान् ॥
जितेन्द्रियान् कुलोद्भूतान् सर्व्वलक्षणसंयुतान् ।
शिवाभिमुखमासीनानहतेष्वम्बरेषु च ॥
वस्त्रैराभरणैर्दिव्यै र्लोकपालान् स्वमन्त्रकैः ।
गन्धैः पुष्पैः सधूपैश्च ब्राह्मणांश्चार्च्चयेत् क्रमात् ॥

अत्र कुण्डमण्डलमण्डपवेदिकावितानादि लिङ्गपुराणोक्त तुलापुरुषदानवद्द्रष्टव्यं अग्निकार्य्यमत्र शिववेदिकायाश्च परितः स्थण्डिलाष्टकं विधाय तत्र यथाशक्ति सुवर्ण निर्म्मिताम् अष्टौलोक पालान् शिवाभिमुखान् नूतनवस्त्रेष्वासीनान् संस्थाप्य वस्त्राद्यैः संपूज्य ब्राह्मणानथार्च्चयेत् ।

लोकपाललक्षणमुक्तं ब्रह्माण्डदाने ।

पूर्व्वतोहोमयेदग्नौ लोकपालाष्टमन्त्रकैः ।
समित्घृताभ्यां होतव्यमग्निकार्य्यक्रमेण तु ॥
एवं हुत्वा विधानेन ब्राह्मणान्वेदपारगान् ।
यजमानः समाहूय सर्व्वाभरणभूषितान् ॥
कृत्वा तान् पूजयित्वाथ द्विजेभ्यो दापयेद्धनं ।
पृथक् पृथक् स्वमन्त्रैश्च दशनिष्कश्च भूषणं ॥
दशनिष्केण वस्त्राद्यमासनं कम्बलं पृथक् ।
स्नापनं तत्र कर्त्तव्यं शिवस्य विधिपूर्व्वकं ।
दक्षिणा च प्रदातव्या यथाविभवविस्तरं ॥

अग्निकार्य्यक्रमः अग्निमुखादि पूर्णाहुत्यन्तः, कामिकेतु एकस्मिन् स्थण्डिले वाथ कुण्डे वा होममाचरेत्। वातुले हि प्रक्रानुपूर्व्वंदिग्भागे देशिकोहोममाचरेत्।

लोकपालाष्टमन्त्रैस्तु पृथगष्टोत्तरंशतं।
समित्घृताभ्यां होतव्यमन्ते पूर्णाहुतिं ददेत्॥

दशनिष्केणेति, तान् लोकेशान् विप्रान् यजमानोर्च्चयित्वा प्रत्येकं दशनिष्कमितं भूषणं तत्सम्मितहिरण्यात्मकदक्षिणया सह वस्त्रादि च दद्यात् दक्षिणाचेति, गुरुदक्षिणा,

सा च यथा विभवं देया।

कामिके तु।

दक्षिणा दशनिष्का स्याद्भूषणैश्च समन्विता।

वातुले तु गुरुनवमेभ्यः

प्रत्येकं शतनिष्का दक्षिणोक्ता।

एतद्यः कुरुते दानं लोकेशानान्तु भक्तितः।
लोकेशानं स्थिरं स्थित्वा स्थानेषु स सुखं नरः।
कल्पं शिवपुरे स्थित्वा सार्व्वभौमोभवेद्भुवि॥

इति लोकपालाष्टकदानविधिः।

अथ ब्रह्माण्डपुराणात्।

शृणु नारद भद्रन्ते दानं सर्व्वाघनाशनं।
सर्व्वमङ्गल्यमायुष्यमारोग्यं श्रीकरं शुभं॥

दानानामुत्तमं ह्येतत्सर्व्वसिद्धिकरं परं ।
करोति दानं नारी वा सायुज्यं ब्रह्मणो व्रजेत् ॥
विषुवत्ययने राहोर्ग्रहणे चन्द्रसूर्य्ययोः ।
अन्येषु पुण्यकालेषु जन्मर्क्षेषु विशेषतः ॥
देवालये नदीतीरे गृहे वा दानमाचरेत् ।
पुण्यदेशेषु सर्व्वेषु पुराणोक्तेषु नारद ॥
चतुरस्रां समां भूमिं लिप्त्वा गोमयवारिणा ।
षट्करश्चाष्टहस्तश्च्वा दश द्वादश वा करान् ॥
प्राच्योदीच्यश्च कर्त्तव्या रेखाश्चतस्रकाः समाः ।
नव कोष्ठानि तत्र स्युः श्वेततण्डुलपुञ्जकैः ॥
सितैरष्टदलैर्युक्तान् कमलान्विन्यसेच्छुभान् ।
जातरूपमयं देवं जगत्कर्त्तारमव्ययं ।
तेषां मध्यमकोष्ठे तु कमलं विनिवेशयेत् ॥

कमलस्थं ब्रह्माणं ।

इन्द्रमग्निं यमञ्चैव निर्ऋतिं वरुणं तथा ।
वायुं सोमञ्च रुद्रञ्च प्रागादिषु यथाक्रमं ॥
जातरूपमयान् देवानष्टौ स्वायुधसंयुतान् ।
त्रिपला वा सुवर्णाञ्च यथाशक्ति विनिर्म्मितान् ।
ब्रह्मणोऽभिमुखान् सर्व्वान् सर्व्वेषु विनिवेशयेत् ॥

जातरूपमयान्, हिरण्मयान्, ब्रह्मणो लोकपालानाञ्च लक्षणमुक्तं ब्रह्माण्डदाने ।

प्रत्येकं वाससावेष्ट्य संप्रोक्ष्य कुशवारिणा ।

योऽसौ कारयिता विप्रस्त्वेवमेतत् समाचरेत् ॥
दानकाले तु संप्राप्ते दाता स्नात्वा कुशोदकैः।
प्रसन्नचित्तवदनः परमेष्ठिपुरोगमान ॥
स्वनाममन्त्रैरभितो नमोन्तै
राराध्य गन्धादिभिरादरेण।
विप्रांस्तथाभ्यर्च्य यथाक्रमेण
संप्रीयतां मे त्वयमेव मुक्त्वा ॥
योऽसौकारयिता विप्रस्तस्मै दद्यात्तु दक्षिणां।
सुवर्णसंख्यागणितं हिरण्यश्चैव वाससी ॥
प्रोक्तन्तु देवर्षिदानं लोकपालाह्वयं मया।
क्रमान्यच्छ्रोतुमिच्छा ते तदिदं वद साम्प्रतं ॥

इति लोकपालदानविधिः।

अथ रुद्राष्टकदानं।

ब्रह्माण्ड पुराणात्।

शृणु देव मुने गुह्यन्दानं सर्व्वार्थदं नृणां।
रुद्राष्टकमितिख्यातं तत्पत्नीपुत्रसंयुतं ॥
मध्ये चतुर्म्मुखोपेतमिति ते भगवान् हरिः।
यथाह पूर्व्वं तत्सर्व्वं वदामि तव नारद ॥
रुद्रो भवश्च सर्व्वश्च ईशः पशुपतिस्तथा।
भीम उग्रो महादेव एते रुद्राः प्रकीर्त्तिताः ॥
जटिलाश्चर्म्मवसनाः सर्व्वे खट्टाङ्गशूलिनः।

तेषां भार्य्याश्च पुत्राश्च नामतः कथयामि ते॥
सौवर्च्चला-ह्युषा दाच विकेशीच शिवा तथा।
स्वाहा दिशा च दीक्षा च रोहिणी च तथा क्रमात्॥
ताश्च स्त्रीवेषधारिण्यः सर्व्वाभरणभूषिताः।
रुद्रपत्न्य इमाश्चाष्टौ पुत्रांश्च शृणु नारद॥
शनैश्वरश्च शुक्रश्च लोहिताङ्गो मनोजवः।
वसन्तः स्वर्गः सन्तानोबुधश्चैव यथा क्रमं।
ते बालवेषाः कर्त्तव्याः शिखिनो दण्डपाणयः॥
पुण्यकाले तु सम्प्राप्ते नित्यम्वा भूतिमिच्छता॥
जन्मर्क्षेषु विशेषेण दातव्यं मुनिसत्तमः॥
चतुरस्रां समां भूमिं लिप्त्वा गोमयवारिणा।
चतस्रस्तत्र रेखाः स्युः प्राक्तिर्य्यक्चैव सर्व्वतः॥
हस्तमानं द्विहस्तम्वा नवकोष्ठसमन्वितं।
स्थण्डिलं तत्र पद्मानि तण्डुलैश्च प्रकल्पयेत्॥
ब्रह्माणं मध्यमे कोष्ठे, सौवर्णं विनिवेदयेत्।
छन्दोदेवीञ्च तत् पार्श्वे तदर्द्धेन प्रकल्पयेत्॥

छन्दोदेवीञ्च, गायत्रीं

तयोर्लक्षणमुक्तं ब्रह्माण्डदाने,

सौवर्णानष्टौरुद्रांश्च ब्रह्मार्द्धेन विनिर्म्मितान्।
प्रागाद्युत्तरपूर्व्वांश्च परितः परिकल्पयेत्॥
तस्याप्यर्द्धेन सौवर्णान् प्रत्येकं रुद्रपार्श्वतः।
तेषां देवीश्च पुत्रांश्च कल्पयित्वार्च्चयेत् पुमान्॥

स्वस्वमन्त्रेण पूजा स्यात् नमस्कारयुतेन च।
ब्रह्मादीन् पूजयेद्गन्ध-पुष्प-धूप-प्रदी-पकैः॥
प्रदक्षिणं ततः कृत्वा प्रणम्य च यथा क्रमं॥
प्रत्येकमेकं प्रागादीन् विप्रान् संपूज्य दापयेत्।
पूजयित्वोपदेष्टारं दद्यान्मन्त्रेण मध्यमं॥
प्रीयतां भगवान् ब्रह्मा परमेष्ठी पितामहः।
एवं रुद्राष्टकोपेतं दानं दद्याद्यथाविधि॥
सर्व्वपापविनिर्म्मुक्तः सर्व्वसिद्धिमवाप्य च।
आयुरारोग्यसंयुक्तः पुत्रवान् धनवान् सुखी।
भुक्त्वा भोगान् यथेच्छञ्च स्वर्गं मोक्षञ्च विन्दति॥

इति रुद्राष्टकदानविधिः।

अथ ग्रहदानं।

ब्रह्माण्डपुराणात्।

सूत उवाच।

अतः परं प्रवक्ष्यामि दानं सर्व्वार्थसिद्धिदं।
पुरुषो वाथवा नारी स्वर्गं मोक्षञ्च विन्दति॥
नक्षत्र-ग्रह-पीडासु दुःस्वप्नाद्भुत दर्शने।
निमित्तानन्तरं कार्य्यं नैमित्तिकमिति स्थितिः॥
यथाह नारदायैवं ब्रह्मा लोकपितामहः।
तथाहमप्यशेषं वो वक्ष्यामि मुनिसत्तमाः॥

ब्रह्मोवाच।

ग्रहदानमथो वक्ष्ये सर्व्वसिद्धिकरं परं।

सर्व्वशान्तिकरम्मणां सर्व्वपापप्रणाशनं ॥
विषुवत्ययने राहुग्रहणे शशिसूर्य्ययोः ।
जन्मर्क्षे सोमवारे वा पञ्चदश्यां तथैव च ॥
पुण्यकालेषु सर्व्वेषु पुण्यदेशे विशेषतः ।
ग्रहदानन्तु कर्त्तव्यं नित्यं श्रेयोऽभिकाङ्क्षिणा ॥
हस्तमात्रां द्विहस्ताम्वा त्रिहस्ताम्वाथ नारद ।
चतुरस्रां समां भूमिं गोमयेनानुलेपयेत् ॥
रेखाः प्राच्य उदीच्यश्च स्युश्चतस्रस्तथा समाः ।
नवकोष्ठेषु पद्मानि विन्यसेत् श्वेततण्डुलैः ॥
आदित्य-श्चन्द्रमा भौमो वुध-जीव सितार्कजाः ।
राहुः केतुरिति प्रोक्ता ग्रहा लोकसुखावहाः ॥
एषां हिरण्यरूपाणि कारयित्वा यथाविधि ।
त्रिनिष्केणाथवा कुर्य्यात् यथाशक्त्या पृथक् पृथक् ॥
आदित्यं मध्यमे कोष्ठे दक्षिणे ऽङ्गारकं न्यसेत् ।
उत्तरे तु गुरुं विद्यात् वुधमुत्तरपूर्व्वके ॥
भार्गवं पूर्व्वतोन्यस्य सोमं दक्षिणपूर्व्वके ।
पश्चिमे ऽर्कसुतं न्यस्य राहुं पश्चिमदक्षिणे ॥
पश्चिमोत्तरतः केतुं सन्निवेश्य यथाविधि ।
तद्दर्गं गन्धपुष्पाद्यैरर्च्चयेत् स्वस्वमन्त्रकैः ॥
दान शूद्रोऽथवा कुर्य्यात् स्त्री वा तत्र तु नारद ।
भूलेपनादि यत् कार्य्यं सर्व्वं विप्रेण कारयेत् ॥
स्नानकाले तु सम्प्राप्ते स्नात्वा तिलकुशोदकैः ।
प्रयतो यजमानस्तु धौतवस्त्रः प्रसन्नधीः ॥

अर्चयित्वा स्वयं दद्यादहस्करमुखान् ग्रहान्।
प्रत्येकमेकं विप्रोऽसौ स्वस्वमन्त्रमुदीरयेत्॥

पद्मासनः पद्मकरोद्विबाहुः
पद्मद्युतिः सप्ततुरङ्गवाहः।
दिवाकरो लोकगुरुः किरीटी
मयि प्रसादं विदधातु देव॥

श्वेताम्बरः श्वेतविभूषणश्च
श्वेतद्युतिर्दण्डधरोद्विबाहुः।
चन्द्रोऽमृतात्मा वरदः किरीटी
श्रेयांसि मह्यं विदधातु देव॥

रक्ताम्बरो रक्तवपु; किरीटी
चतुर्भुजोमेषगमोगदाभृत्।
धरासुतः शक्तिधरश्च शूली
सदा मम स्याद्वरदः प्रशान्तः॥

पीताम्बरः पीतवपुःकिरीटी
चतुर्भुजोदण्डधरश्च हारी।
चर्मासिधृक् सोमसुतः सदा मे
सिंहाधिरूढ़ोवरदो बुधश्च॥

पीताम्बरः पीतवपुः किरीटी
चतुर्भुजोदेवगुरुः प्रशान्तः।
दधाति दण्डञ्च कमण्डलुञ्च
तथाक्षसूत्रं वरदोस्तु मह्यं॥

श्वेताम्बरः श्वेतवपुः किरीटी

चतुर्भुजो दैत्यगुरुः प्रशान्तः ।
तथाक्षसूत्रञ्च कमण्डलुञ्च
जयञ्च बिभ्रद्वरदोऽस्तु मह्यं ॥
नीलद्युतिः शूलधरः किरीटी
गृध्रस्थितस्त्राणकरो धनुष्मान् ।
चतुर्भुजः सूर्य्यसुतः प्रशान्तो
वरप्रदो मेऽस्तु स मन्दगामी ॥
नीलाम्बरो नीलवपुः किरीटी
करालवक्त्रः करवालशूली ।
चतुर्भुजश्चर्म्मधरश्च राहुः
सिंहासनस्थो वरदोऽस्तु मह्यं ॥
धूम्रो द्विबाहुर्व्वरदो गदाभृत्
गृध्रासनस्थो विकृताननश्च ।
किरीट-केयूर-विभूषिताङ्गः
सदाऽस्तु मे केतुगणः प्रशान्तः ॥

इत्युक्त्वा दापयेत् सर्व्वान् आदित्याद्यान्नवग्रहान् ।
पुरुषो वाथ नारी वा यथोक्तं फलमाप्नुयात् ॥
मध्यमं गुरवे दद्या दन्यस्मै वा प्रदापयेत् ।
अथ वा दक्षिणा देया सुवर्णं वाससी शुभे ॥

सूत उवाच ।

इत्याह भगवान् ब्रह्मा नारदाय महात्मने ।
तथाहमब्रुवं दानं युष्माकं मुनिसत्तमाः ॥

इति नवग्रहदानविधिः।

## अथ सम्पत्करदानं।

ब्रह्माण्ड पुराणे।

अथापरं दानमहं ब्रवीमि
शृण्वन्तु सर्व्वे मुनयः समेताः।
सम्पत्करं दानमतीव पुण्यं
यस्मिन् कृते सम्पदोऽभ्येति जन्तुः॥
यथा पुरा ऋषये नारदाय
जगत्कर्त्ता चाब्रवीद्दानमेतत्।
आयुष्करं रोगहरन्तु पाप-
विनाशनं नाशकरं त्वघानां॥
स्वर्गापवर्गौ कुलपुत्रवृद्धिं
श्रियं तथा प्रददामीष्टसिद्धिं।
हिरण्यदः प्राप्नुयाद्दीर्घमायु-
रित्यब्रवीदात्मभूर्नारदाय॥
अतः सुवर्णं द्विजवर्गहस्ते
दातव्यमेवात्महितं मुनीन्द्राः।
कालेषु सूर्य्यग्रहणादिकेषु
तारेषु जन्मत्रितयेषु कार्य्यम्॥
देशेषु देवायतनादिकेषु
गृहेषु वा रमते यत्र कुत्र।
स्नात्वा प्रातस्तिलमिश्रैः कुशोदकैः

शुचिर्भूत्वा धौतवासाः प्रयत्नः ॥
संकल्प्य विप्रं विदुषं गुरुञ्च
संगृह्य तस्यानुमतेन कार्य्यं ।
गव्येन भूमिं शकृता जलेन
चालेपयेद्विंशतिहस्तमात्रां ॥
तत्रैव रेखाश्चतुरः समाःस्युः
प्राच्यश्च तिर्य्यक्च यथोपदिष्टं ॥
नव कोष्ठानि तत्र स्युस्तेषु पूर्णानि तण्डुलैः ।
निधातव्यानि पात्राणि वासोभिरभिवेष्ट्य च ॥
पलस्यार्व्वाक् त्रिनिष्कोर्द्धं यथाशक्ति विनिर्म्मितां ।
दक्षिणोत्तरतो देवान् जातरूपमयान् न्यसेत् ॥
पाश्चात्यकोष्ठत्रितये तु मित्रं
तथा च देवं वरुणञ्च सोमं ।
चतुर्म्मुखं मध्यमकोष्ठकेषु
जगत् पतिं विष्णुमुमापतिञ्च ॥
दिवाकरं वृत्रहणञ्च वह्निं
संपूज्य सर्व्वान् विधिवत् क्रमेण ॥
अत्र मित्रलक्षणमाह विश्वकर्म्मा ।
पद्मगर्भे समः कार्य्योमित्रः कमलसंस्थितः ।
अजोऽतुलोविनालान्तविकचाम्भोजधृक् प्रभुः ॥

वरुणादिलक्षणमुक्तं ।

ब्रह्माण्डदाने ।

अभ्यर्च्य विप्रानपि गन्धवस्त्रैः
पृथक् च दातव्यमनुक्रमेण।
सम्प्रीयतां मेत्ययमेव मुक्त्वा
ततोदद्यात् सोदकपूर्व्वमत्र॥
एकस्य चैकस्य हिरण्यरूपं
प्रणामपूर्व्वं परिणीय सर्व्वान्।
पात्राणि वासः परिधाय चैव
सतण्डुलं सहिरण्यञ्च दत्वा॥
अभीष्टसिद्धिं सलभेत सर्व्व-
मायुष्यमारोग्यमुपैति चाग्र्यं।
अथोपदेष्ट्रे गुरवे सुवर्णं
वासोयुगं दानसमञ्च दद्यात्॥
विप्रैस्तथावाचयेत् स्वस्तिवाच्यं
ततोदद्याद्दक्षिणां वाचकेभ्यः॥

इति सम्पत्करदानविधिः।

अथ दशावतारदानं।

तत्र विश्वामित्रः।

दानानामुत्तमं दानं हैमं विष्णोः स्वरूपकं।
तस्मात् पुण्यार्थिना देया हैमी विष्णोः स्वरूपिका॥
मत्स्यः कूर्म्मोवराहश्च नरसिंहोऽथ वामनः।
रामोरामश्च कृष्णश्च बुद्धः कल्की च ते दश॥
वामे शङ्खं गदा दक्षे द्विभुजो मत्स्यरूपधृक्।

नराङ्गिर्म्मत्स्यरूपी वा मत्स्यरूपो जनार्द्दनः॥

एतदेव कूर्म्मलक्षणं मत्स्यपदस्थाने कूर्म्मपदप्रयोगे सति।

मधुपिङ्गलवर्णश्च चतुर्बाह्वायुधैर्युतं।
नराङ्गं शूकरास्यञ्च मनाक्पीनं सुभीषणं॥
श्रीर्वामकूर्परस्था तु धरानन्तौ पदानुगौ।
एतद्रूपधरं देवं वराहं भुक्तिमुक्तिदं॥
ज्वलदग्निसमाकारं सिंहवक्त्रं नराङ्गकं।
दंष्ट्राकरालवदनं ललज्जिह्वं सुभीषणं॥
वृत्ताक्षं जटिलं क्रुद्धमालीढं पीनवक्षसं।
अभेद्यतीव्रनखरं वामोरूक्तदानवं॥
तद्वक्षोदारयन्तं कराभ्यां नखरैर्भृशं।
गदाचक्रधरं द्वाभ्यां नरसिंहं जगत्प्रभुं।
कुण्डी छत्रधरो द्विर्द्दोर्व्वामनः परिकीर्त्तितः॥
क्षत्रान्तकरणं घोरमुद्वहन् परशुं करे।
जामदग्न्यः प्रकर्त्तव्योरामोरोषारुणेक्षणः॥
युवा प्रसन्नवदनः सिंहस्कन्धोमहाबलः।
आजानुबाहुः कर्त्तव्योरामोबाणधनुर्द्धरः॥
शङ्खचक्रधरः कार्य्योनीलोत्पलदलच्छविः।
कृष्णोदीर्घद्विबाहुश्च सर्व्वदैत्यक्षयंकरः॥
कषायवस्त्रसंवीतः स्कन्धसंसक्तचीवरः।
पद्मासनस्थो द्विभुजोध्यायी बुद्धः प्रकीर्त्तितः॥
खड्गोद्यतकरः क्रुद्धोहयारूढो महाबलः।
म्लेच्छोच्छेदकरः कल्की द्विभुजः परिकीर्त्तितः॥

यथाशक्त्या प्रकुर्व्वीत सुवर्णेन विजानता।
समेन षोड़शेनैव समान्येतानि कारयेत्॥
यथाशक्त्या प्रकुर्व्वीत सुवर्णेन विजानता।
वित्तानुरूपतो राजन् तुल्यमाढ्यदरिद्रयोः॥
संपूज्य नामभिस्तैस्तु पुष्पधूपनिवेदनैः।
भक्तिनम्रः प्रणम्याथ निवेद्यः श्रद्धया ततः॥
आहूय ब्राह्मणान् राजन् पादौ प्रक्षाल्य यत्नतः।
उपवेश्यासने सर्व्वांश्चन्दनेनानुलेपयेत्॥
सुगन्धैः कुसुमैश्चैव धूपैर्दीपैस्तथैव च।
आच्छाद्य वस्त्रयुग्मैश्च ग्रहणे चन्द्रसूर्य्ययोः॥
अयने विषुवे वापि द्वादश्यान्तु विशेषतः।
उपोष्यैकादशीं कार्य्यं धर्म्मकार्य्यञ्च सर्व्वशः॥
अन्यथा नरकं यातीत्येवं माह पितामहः।
ग्राहका विष्णुरूपाश्च अहीयतविमत्सरः॥
एकैकं देवरूपन्तमेकैकस्य समर्पयेत्।
अथवा विदुषः सर्व्वान् दद्यात्संपूज्य मानवः॥
नानृतेपि* कदाचिच्च दद्यात्पाषण्डिने तथा।
देवरूपं मया विप्र कारितं काञ्चनं शुभं॥
तद्गृहाण प्रदानेन प्रीयतां विश्वरूपधृक्॥
एतदुच्चार्य्य विप्रस्य हस्ते तोयं क्षिपेत् स्वयं।
प्रदक्षिणा ततो देया संपूज्य प्रविशेद्गृहं॥
अस्य दानस्य माहात्म्यं वदाम्येकमुखः कथं।

---

* नाव्रतेपीति क्वचित् पाठः।

सहस्रास्यः शतास्यो वा यदि शक्तोभिभाषितुं ॥
उद्देशतः प्रवक्ष्यामि अस्मार्भी भक्तिवृद्धये।
दशावतारतीराजन् विष्णोरैक्यं स गच्छति ॥
क्षीरे क्षारं यथाक्षिप्तं पयः संहरते ऽनघः।
तथा विष्णोः स दाता वै ऐक्यं याति न संशयः ॥
ब्रह्महा च सुरापश्च तस्करो गुरुतल्पगः।
यथा मुच्यादिषीकाम्तस्तथा पापात् प्रमुच्यते ॥
सहस्रश्चैव जन्तूनामुद्धरेत्त इदं जगत्।
तस्मात् प्रयच्छ राजेन्द्र विप्रेभ्यो विष्णुरूपकान् ॥
येन सर्व्वस्य दानस्य फलं प्राप्नोति सत्वरं।
न तत्तपोभिरत्युग्रैर्व्विहितैः प्राप्यते फलं ॥
विष्णोर्दशावताराणां दानेन यदवाप्यते ॥

यः काञ्चनेन शुभलक्षणलक्षिताङ्ग-
विष्णोःस्वरूपदशकं विधिवत् विधाय।
दद्याद्द्विजेषु जगदेव हि तेन दत्तं
यस्माज्जगन्मयवपुर्व्विभुरेष देवः ॥

इति दशावतारदानविधिः।

अथ विश्वामरदानं।

ब्रह्माण्ड पुराणात्।

अतः परं प्रवक्ष्यामि दानं विश्वामराह्वयं।
यत् कृत्वा पुरुषः स्त्री वा ब्रह्मलोकमवाप्नुयात् ॥

सर्व्वपापक्षयकरं सर्व्वपापविमोचनं।
स्वर्ग्यं यशोद मायुष्यं श्रीकरं पुत्रवर्द्धिदं॥
अभीष्टफलदन्नृणां दुःस्वप्नाद्भुत दर्शनं।
ग्रहशान्तिकरं-पित्र्य भुक्तिमुक्तिप्रदायकं॥
यदाह भगवान् ब्रह्मा नारदाय सुरर्षये।
यथाहं कृपया पूर्व्वं पिता मे रोमहर्षणः॥
वैश्वदेवमिति प्रोक्तं दानानामुत्तमोत्तमम्।
तदहं वः प्रवक्ष्यामि शृणुध्वं मुनिसत्तमाः॥

ग्रस्ते चन्द्रराहुणा वा पि सूर्य्ये
तथायने विषुवे जन्मतारे।
व्यतीपाते विविधे चाद्भुते वा
दुःस्वप्ने वा पक्षदर्श्यां च कुर्य्यात्॥
कृते पापे निःकृतिस्तस्य चेत-
द्भये जाते निर्भयार्थञ्च कुर्य्यात्।
ग्रस्ते रोगैर्ब्बहुभिः श्रूयमाणे
नित्यं कुर्य्यात् वैश्वदेवं तु दानं॥
देवागारे स्वगृहे नन्दने वा
नदीतीरे रमते यत्र तत्र।
विप्रं गुरुं वेदपुराणदक्षं
संपृच्छ्य तस्यानुमतेन कार्य्यं॥
विनायकं विप्रमुखेन देयं
संपूज्य दानं विधिना समस्तं।
गन्धेन भूमिं शकता जलेन

विलिप्य नीत्वा दशहस्तमानां॥
तत्रैव लेखाश्चतुरः समन्तात्
प्राच्यश्च तिर्य्यक् च भवन्ति तत्र।
नवात्र कोष्ठानि भवन्ति तेषु
सकर्णिकानष्टदलान् सरोजान्॥
कृत्वा सितैराढकतण्डुलैश्च
संवेशयेत्तेषु हिरण्यदेवान्।
विश्वांश्च देवांश्शरचापपाणी-
नष्टौ समस्तान् द्विभुजान् विधाय॥
मध्ये महेन्द्रं मुकुटादियुक्तं
वज्रायुधं शक्तिधरन्निवेश्य।
हारादिकेयूरयुतं प्रशान्तं
विश्वामराणामधिकं हिरण्यात्॥
सिंहासनस्थं जगतामधीशं
शतक्रतुं दैत्यहनं सुरेन्द्रं॥

तेषां नामानि तु वायुपुराणात्।

क्रतु-र्दक्षो-वसुः सत्यः कालः कामचराचरौ।
पुरूरवाद्रवश्चैव विश्वे देवा दश स्मृताः॥
श्राद्धेष्वेव प्रयोगोस्ति तेषां मन्त्रिमयोर्द्वयोरिति।
प्रागादिमध्यान्त मनुक्रमेण
सर्व्वं करोत्यासनार्घ्यार्च्चनान्तं।

संप्रोक्ष्य कूर्चेन कुशोदकेन
ऋचा तथा वरुण्या वारुणेन॥
वस्त्रैरथावेष्ट्य च वासवाय
वासोयुगं सम्परिधाय चाग्रं।
प्रत्यङ्मुखान् प्राङ्मुख एव सर्व्वा-
नाराध्य दातव्यमथ क्रमेण॥
विप्रेण वा गुरुणा सर्व्वमेतत्
कृत्वा मन्त्रविधिना वैश्वदेवं।
कृतान् देवानर्च्चयित्वा यथोक्तं
दाता स्नात्वा तिलमिश्रैः कुशोदकैः॥
पुष्पाञ्जलिं प्रदक्षिणाश्चैव सार्द्ध-
मभ्यर्च्य देवानथ पुष्पगन्धैः।
धूपप्रदीपैश्च यथा क्रमेण
प्रत्येक मेकञ्च तथा हिरण्यं॥
सम्प्रीयतां भगवान्मे त्रिनेत्रा
दद्यादष्टौ प्रेरितः सोदपूर्व्वं।
पठन्मन्त्रं गुरवे मध्यमञ्च
सम्प्रीयतां मम चाप्यत्र देवः॥
संप्रीयतां भगवान् वज्रपाणिः
संप्रीयतां भगवान् दैत्यहन्ता।
एवं कृत्वा पञ्चभिर्व्विप्रवर्य्यैः
पुण्याहञ्च स्वस्तिमृद्धिं च वाच्यं॥
एतद्दानं गुरवे दक्षिणाञ्च

विश्वे देवाः प्रीयन्तामस्य विप्राः ॥

इति विश्वामरदानविधिः ।

अथ साध्यदानं ।

ब्रह्माण्डपुराणात् ॥

सूत उवाच ।

अतः परं प्रवक्ष्यामि दानं मुनिवरोत्तमाः ।
साध्यदानमिति प्रोक्तं दानानामुत्तमोत्तमं ॥
यथाह भगवान् पूर्व्वं पिता मे रोमहर्षणः ।
तथाहञ्च प्रवक्ष्यामि शृणुध्वं शौनकादयः ॥
आचार्य्यवरणादीनि सर्व्वं वै वैश्वदेववत् ।
तथैव हैमान् कुर्व्वीत साध्यान् द्वादशसंख्यया ॥

वायु पुराणे ।

ब्रह्मणोथ मुखात् सृष्टा यथा देवाः प्रजेप्सया ।
सर्व्वे मन्त्रशरीरास्ते स्थिता मन्वन्तरेष्विह ॥
तथा। ब्रह्मशापेन ते जाताः पुनः स्वायम्भुवे जिताः ।
स्वारोचिषे वै तुषिताः सत्याश्चैवोत्तमे पुनः ॥
तामसे हरयोनाम वैकुण्ठे रैवतेऽन्तरे ।
साध्याश्च चाक्षुषे नाम्ना छन्दजा जज्ञिरे सुराः ॥
धर्म्मपुत्रा महाभागाः साध्यायां द्वादशामराः ।
मनोनुमन्ता प्राणश्च नरोमानश्च वीर्य्यवान् ॥

चित्तिर्हयोनयश्चैव हंसोनारायणस्तथा।
प्रसवोथ विभुश्चैव साध्या द्वादश जज्ञिरे॥

स्कान्दपुराणे।

साध्याः पद्मासनगताः कमण्डल्वक्षसूत्रिणः।
धर्म्मपुत्रा महात्मानो द्वादशामरपूजिताः॥

ब्रह्माण्डपुराणात्।

वैश्वदानवदेवात्र साध्यदाने विधिः स्मृतः।
दानेचाभ्यर्च्चनं मन्त्रः श्रूयतां च विशेषतः॥
साध्येभ्यश्चेतिचोक्त्वावै देवेभ्यश्च नमस्तथा।
संप्रीयतां मे भगवन् साध्यादेवा इति ब्रुवन्॥
एवं दद्यात्तु विप्रेभ्योमध्यमं गुरवे तथा।
एतत् कृत्वा तु पुरुषो नारी वा दानमादृता।
वैश्वदेवे च यत् प्रोक्तं फलं तत्सर्व्वमाप्नुयात्॥

इति साध्यदानविधिः।

अथ द्वादशादित्यदानं।

ब्रह्माण्डपुराणात्।

शृणु नारद भद्रन्ते दानमादित्यसंज्ञितं।
यथोक्तं लोकगुरुणा विष्णुना प्रभविष्णुना॥
कर्तुः पापहरं पुण्यमायुष्यं श्रीकरं शुभम्।
आरोग्यं सर्व्वमाङ्गल्यं दुःस्वप्नाद्भुतनाशनं॥

सर्व्वशान्तिकरं ह्येतत् सर्व्वसिद्धिफलप्रदं।
चक्षुष्यं*, सर्व्वरोगघ्नं भुक्तिमुक्तिफलप्रदं॥
विषुवत्ययने राहुग्रहणे चन्द्रसूर्य्ययोः।
जन्मर्च्चे सौरवारे वा पञ्चदश्यर्क्कसंक्रमे॥
सप्तम्यां वाथ नक्षत्रे सावित्रे ऽद्भुतदर्शने।
दुःस्वप्नदर्शने कुर्य्याद्दानमादित्यसंश्रितं॥
देवालये नदीतीरे तडागे वरुणालये।
अन्येषु पुण्यदेशेषु देवदानं समाचरेत्॥

आलिप्य वै द्वादशहस्तदैर्घ्यां
क्षितिं तथा गोमयसंयुताद्भिः।
तस्मिन् सितैस्तण्डुलपुष्पकैश्च
विस्तारयेद्द्वादश पङ्कजानि॥
प्रादेशमात्राणि शुभानि तानि
सकर्णिकान्यष्टदलेषु तेषु।
हिरण्यरूपाणि रवेर्निधाय
यथाक्रमादुत्तरतोपवर्गः॥

तेषां लक्षणमुक्तं।

ब्रह्माण्डदाने।

प्रत्यङ्मुखान् प्राङ्मुख एव देवां
स्तद्वर्णगन्धादिभिरर्च्चयित्वा।

* सर्व्वपापघ्नमिति क्वचित्पाठः।

दद्यादपूपं सघृतं गुडाक्तं
वस्त्रै रथावेष्ट्य यथाक्रमेण ॥
प्रत्येकमेकं द्विजपुङ्गवाना-
माराध्य गन्धादिभिरादरेण।
संप्रीयतामित्यपरञ्च च क्रमेण
प्रत्येक मुच्चार्य्य तदीयनाम ॥
धाताच मित्रश्च ततः परेण
मार्त्तण्डनामा च तथार्य्यमा च।
शक्रश्च देवोवरुणस्तथासौ
भगो विवस्वान् नवम स्तथैषां ॥
आदित्यनामा सविता तथान्य
स्त्वष्टा तथैकादशमश्च तेषां।
विष्णुस्तथाद्वादशमश्च मन्त्रै-
राराधयेद्देववरान् द्विजांश्च ॥
पुरा देवऋषे दानं प्रोक्तं कमलयोनिना।
तथा मयापि युष्माकं प्रोक्तं मुनिवरोत्तमाः ॥

इत्यादित्यदानविधिः।

अथ देवगणेशदानं।

ब्रह्माण्डपुराणात्।

अथापृच्छन्मुनयः सूतसूनुं
तदारण्ये नैमिषे सन्निषण्णे।
उग्रश्रवाः परिपृच्छामहे त्वां

कथं मर्त्त्यौमुच्यति रोगपूगैः॥
तथा पृष्टोमुनिभिः सूतसूनु-
रुवाचेदं प्रीतिपूर्व्वं तदानीं।
यथा पुरा ऋषये नारदाय
जगत् कर्त्ता चाब्रवीद्दानमेतत्॥
शृण्वन्तु यूयं मुनयः समेता
वदाम्यहं देव गणेशदानं।
आयुष्यमारोग्यमनन्तमुक्ति
मभीष्टसिद्धिं प्रददाति कर्त्तुः॥
कालेषु सूर्य्यग्रहणादिकेषु
तारेषु जन्मत्रितयेषु कार्य्यं।
देशेषु देवायतनादिकेषु
गृहेषु वा रमते यत्र तत्र॥
विप्रं गुरुं वेदपुराणदक्षं
संगृह्य तस्यानुमतेन कार्य्यं।
गव्येन भूमिं शक्तता जलेन
विलेपयेद्विंशति हस्तमात्रां॥
षट् दक्षिणे प्रागपि वेदरेखा-
स्तिर्य्यक्कृतैस्तण्डुलपुञ्जकैश्च।
तस्मिन्विचित्राणि सरोरुहाणि
कृत्वाष्टपत्राणि दशाथ पञ्च॥
आदित्या वसवो रुद्रा विश्वेऽश्विमरुतस्तथा।
साध्या देवास्तथा चैव सप्तमोगण उच्यते॥

द्वौ द्वौ गणेभ्यः समभ्यसतुर्दश सुरोत्तमान्।
जातरूपमयान् कृत्वा कमलेषु निवेशयेत्॥

मध्ये महेन्द्रं द्विभुजं हिरण्यं
हिरण्यरूपादधिकं गणानां।
वज्रायुधं दैत्यहनं किरीट-
केयूरहारादिविभूषितञ्च॥
प्रत्यङ्मुखान् प्राङ्मुख एव देवान्
आदित्यवस्वादि यथा क्रमेण।
स्वनाममन्त्रैश्च नमोऽस्तरूपै-
राराधये दुत्तरतो यवंगैं॥

षट् दक्षिणे इत्यादि दक्षिणोत्तरायताः षट् रेखाः कृत्वा प्राक्पश्चिमायताश्चतस्रश्च विधाय पञ्चदशकोष्टानि सम्पादयेत्।

तेषु तावन्ति तण्डुलमयानि कमलानि कृत्वा वक्ष्यमाणान् देवान् स्थापयेत्।

तत्र आदित्यवसुलक्षणमुक्तं ब्रह्माण्डदाने, रुद्रलक्षणमुक्तं विश्वचक्रे, एतेषां नामानि च तुलापुरुषदाने, विश्वदेवलक्षणं तन्नामानि च विश्वामरदाने, मरुतां लक्षणं नामानि च मरुद्दाने। साध्यानां साध्यदानइति।

ततो महेन्द्रं जगतामधीश-
माराधयेद्देवगणैः समेतं।
संपूज्य तस्मै गुरवे च देयं
वासोयुगं काञ्चनभूषणानि॥
ततस्त्वसौ भूषणभूषिताङ्गः

संवेष्टितो वस्त्रयुगेन विप्रः।
समर्च्चयेद्देवगणांश्च मुख्यां-
स्ततो होमं प्रारभेद्देवतानां॥
स्नानं वस्त्रं चार्घ-पाद्या-चमनीयं
गन्धं-पुष्पं-धूप-दीपौ-हविश्च।
दद्यादेषां मध्यमं देवदेवं
समर्च्चयेद्विधिना शास्त्रजेन॥
अग्निं समाधाय समुह्य दर्भैः
परिस्तरेदाज्यमथो गृहीत्वा।
सत्कृत्य दर्व्वीं विधिना घृतेन
प्रत्येकमेकञ्च दशाहुतीनां॥
हुत्वा गणेभ्यश्च तथा हुतीनां
शतं तथा दश वा प्यष्ट हुत्वा।
इन्द्रस्य होमं विधिना समाप्य
शेषास्तथा व्याहृतिभिः समस्ताः॥
इत्येव मेतद्गुरुणैव कार्य्यं
दाता स्वयं दानमथात्र कुर्य्यात्।
स्नात्वा वासो गुरुणा प्रोक्षितश्च
कुशोदकैः पावमानैर्य्यजुर्भिः॥
प्रत्येकमेकं द्विजपुङ्गवाना-
माराध्य दातव्यमनुक्रमेण।
प्रदक्षिणं देवगणैश्च सार्द्धं
कृताञ्जलिं पुष्पयुतं च दत्त्वा॥

सम्प्रीयतां मेत्ययमेव चोक्ता
दद्देत्सर्वां सोदकपूर्व्वं मन्त्र।
ततस्त्विदं गुरवे दापयित्वा
विप्रैः स्वस्तिं पञ्चभिर्व्वाचयेच्च॥
दत्त्वा तेषां दक्षिणां वाचकानां
ततो विप्रान् पूजयेद्दै गुरुञ्च।
तथा चैवं देवदानञ्च कृत्वा
ततः सर्व्वैं र्मुच्यते रोगपूगैः॥
कृत्वा चासौ देवगणेशदान-
मायुष्य-मारोग्यमुपैति चाग्र्यं।
भुक्ता भोगानैहिकान् पुष्कलांश्च
ततोगच्छेद्ब्रह्मलोकं विशालं॥
एवं पुरा गणेशाख्यं दानं मुनिवरोत्तमाः।
उक्तं देवर्षिभिश्चैव ब्रह्मणा वा स्वयम्भुवा॥

इति देवगणेशदानविधिः।

अथ निम्बाभदानं।

ब्रह्माण्ड पुराणात्।

सूतउवाच।

अथापरं दानमहं प्रवक्ष्ये
शृण्वन्तु सर्व्वे मुनयः समेताः।
यथा पुरा ऋषये नारदाय

जगत्कर्त्ता पद्मयोनिस्त्ववोचत् ॥
यत् कृत्वा वै पुरुषोवाथ नारी
फलं चेष्टं लभते चोभयत्र।
आयुश्च सर्व्वं लभतेऽथ रोगै-
र्विमुच्यते चन्द्रमुपैति लोकं ॥
कालेषु सूर्य्यग्रहणादिकेषु
संक्रम्यते तत्र च दानमेतत्।
निम्नाभसंज्ञन्तु तथैव कुर्य्या-
द्देशेषु देवायतनादिकेषु ॥
गृहेषु वा रमते यत्र तत्र
द्विजाय निम्नाभममुं प्रदद्यात्।
वैतानिकं वेदपुराणदक्षं
संगृह्य विप्रं गुरुमादरेण ॥
तेनैव सर्व्वं विप्रेण कारयेच्चैव मानतः।
यजमानः स्वयं कुर्य्याद्दानं निम्नाभसंज्ञितं ॥
क्षितौ गोमयलिप्तायां दक्षिणोत्तरतः समं।
दश पञ्च च पद्मानि कारयेत् श्वेततण्डुलैः ॥
मण्डलानि यथाशक्ति हैरण्यानि प्रकल्पयेत्।
मण्डलत्रितयं तेषु प्रतिपद्मं निवेशयेत् ॥
आयुरादीनि तत्त्वानि शरीरे सन्ति यानि वै।
तानि ध्यात्वा थ गन्धाद्यैरर्च्चयेत्तान्यमन्त्रकैः ॥
आयुरादीनि, श्रोत्रप्रभृतीनि, श्रोत्रं आयुरिति श्रुतेः।
तेषा मनुक्रमश्च ब्रह्माण्ड पुराणे

श्रोत्रं त्वक् चक्षुषी जिह्वा घ्राणं चैवात्र पञ्चमं।
शब्द-स्पर्शौ रूप-रसौ गन्धश्चेति क्रमादमी॥
आकाशः पवन-स्तेजो-जलं पृथ्वी त्यनुक्रमात्।
इति पञ्चदशेमानि तत्त्वानि मुनयो विदुरिति॥
विप्रानभ्यर्च्य दातव्यं प्रत्येकं च यथा क्रमं।
निम्नाभदानमन्त्रास्तु गुरुणा वाचयेच्च तान्॥
पञ्चभिर्गुरुणा सार्द्धं वाचयेत् स्वस्तिवाचनं।
दक्षिणां च गुरोर्द्द्यात् सुवर्णं चैव वाससी॥
अथ वा पञ्चयुगलमेकैकस्यापि दापयेत्।
सर्व्वं वा गुरवे दद्यात् संकल्प्य यत्रवाचनं*॥
यद्येकं गुरवे दद्यात् बहुभ्यश्चेतरान् ददेत्।
अभीष्टसिद्धिं लभते कर्त्ता दानेन वानघ॥

इति निम्नाभदानविधिः।

अथ गणेशदानमुच्यते लिङ्गपुराणे।

गणेशं सम्प्रवक्ष्यामि दानं पूर्व्वोक्तमण्डपे।
सम्पूज्य देव देवेशं लोकपालसमावृतम्॥
विघ्नेश्वरान् यथाशास्त्रं सर्व्वाभरणभूषितं।
दशनिष्केण वै कृत्वा सम्पूज्य विधिना ततः॥

अत्र कुण्ड-मण्डप-मण्डल वेदिकावितानादि लिङ्गपुराणोक्ता तुला पुरुषविहितं वेदितव्यं।

* सफलं यत्र वाचयेदिति पुस्तकान्तरे पाठः।

देवदेवेशं महेश्वरं सौवर्णं लोकपाल युतं ।
सम्पूज्य परितोऽष्टदिक्षु विघ्नेशानर्च्चयेदिति ॥
सप्तकोटिमन्त्रात्मकविघ्नगणानामीशत्वात्

अत एव गणेशाः ।

ते च यथा । अथानन्तश्च सूक्ष्मश्च शिवश्चाप्येकनेत्रकः ।
एकरुद्रस्त्रिमूर्त्तिश्च श्रीकण्ठश्च शिखण्डक इति ॥
शिवोक्तविघ्नेशा स्त्रत्र गणेशाः
ते च प्रत्येकं दशनिष्कैर्विधेयाः ।

तदुक्तं कामिके ।

दशनिष्कसुवर्णेन निर्म्मितांश्च पृथक् पृथक् ।
स्वकीयावरणे चैतान् गन्धपुष्पादिभिर्गुरुः ।
प्रधाने जुहुयादीशं विघ्नेशानष्टदिक्षु चेति ॥
तेषां लक्षणन्तु लक्षणसमुच्चयात् ॥
कुण्डी पाशाङ्कुशं घण्टां शूलं च वामवाहुके ।
शक्तिर्वज्राक्षमालासिचक्राणि दक्षिणे क्वचित् ॥
द्वीपिचर्म्मधरोऽनस्थो नागयज्ञोपवीतवान् ।
एकास्यः पञ्चवक्त्रोवा त्र्यक्षो जटेन्दुभूषितः ॥
अनन्ताद्याश्चतुर्दिक्षु रक्तनीलसितारुणाः ।
कोणेषु चैकरुद्राद्याः सितासृग्नीललोहिताः ॥
सर्व्वे चाष्टभुजा येज्याश्चतुरास्या जटान्विताः ।
शिवायुधधरास्त्र्यक्षाः खड्गसिभ्यां विना क्वचित् ॥

दिग्वर्णा जटिलास्त्र्यक्षाः परत्रिशूलधारिणः।
पुटाञ्जलिकराः सर्व्वे विघ्नेशाश्चैकवक्त्रकाः॥

लोकपाललक्षणमुक्तं, ब्रह्माण्डदाने।

अष्टदिक्ष्वष्टकुण्डेषु पूर्व्ववद्धोममाचरेत्॥
पञ्चावरणमार्गेण पारम्पर्य्यक्रमेण च।

पूर्व्ववदिति, लिङ्गपुराणोक्ततुला पुरुषवदित्यर्थः।

सप्तविप्रान् समभ्यर्च्य कन्यामेकां तथोत्तरे।
दापयेत् सर्व्वतन्त्राणि स्वैः स्वैर्मन्त्रैरनुक्रमात्॥
दत्त्वैवं सर्व्वपापेभ्योमुच्यते नात्र संशयः॥

पञ्चब्रह्माद्यैः पञ्चावरणैर्युक्तस्य शिवस्यार्च्चनं मध्ये प्रधान कुण्डे होमश्च दिक्कुण्डेषु तु विघ्नेशानामात्मीयपञ्चावरणैर्गुरुपरम्परोपदिष्टैर्युक्तानां होमः ईशानादिसप्तदिक्षु सप्तविप्रानुत्तरस्यां दिश्येकां कन्यामभ्यर्च्य कन्याष्टमेभ्यो विप्रेभ्यः स्वस्वमन्त्रेण सर्व्वतन्त्राणि सर्व्वतन्त्रमयान्विघ्नेशान् दद्यादित्यर्थः।

दापयेत् सर्व्वविघ्नेशानिति पाठः।
तेभ्यः प्रदद्याद्विघ्नेशान् स्वस्वमन्त्रैरनुक्रमादिति-

कामिकोक्तेः।

पञ्चावरणपूजा तु वायुसंहितोक्ता यथा।

परीक्ष्य भूमिं विधिवद्गन्धवर्णरसादिभिः॥
मनोभिलषिते तत्र वितानविततान्बरे।
सुलिप्ते च महीपृष्ठे दर्पणोदरसन्निभे॥
प्राचीमुत्पादयेत् पूर्व्वंशास्त्रदृष्टेन वर्त्मना।

एकहस्तं द्विहस्तं वा मण्डलं परिकल्प्य तु ॥
आलिखेद्विपुलं पद्ममष्टपत्रं सकर्णिकं ।
रक्तचूर्णादिभिश्चूर्णै र्यथामण्डलसम्भृतैः ॥
प्रतिवारणसंयुक्तं बहुशोभासमन्वितं ।
दलेषु सिद्धयः कल्प्याः केसरेषु समाहिताः ॥
रुद्रा वामा*द्यस्तष्टौ पूर्व्वादि परितः क्रमात् ।
कर्णिकायान्तु† वैराग्यं बीजेषु नव शक्तयः ॥
कन्दे शिवात्मकोधर्म्मो नाले ज्ञानं शिवाश्रयं ।
कर्णिकोपरि वाग्नेयं मण्डलं सौरमैन्दवं ॥
शिवविद्यात्मतत्त्वाख्यं तत्त्वत्रयमतः परं ।
सर्व्वासनोपरिसुखं विचित्रकुसुमान्वितं ॥
परव्योमावकाशे च विद्ययातीव भास्वरं ।
परिकल्प्यासनं मूर्त्तिमावाह्य परमेश्वरं ॥
पञ्चवर्णस्वमार्गेण पूजयेदम्बया सह ।
शुद्धस्फटिकसङ्काशं प्रसन्नं शीतलद्युतिं ॥
विद्युद्वलयसङ्काशं जटामुकुटभूषितं ।
दिव्यायुधवरैर्युक्तं दिव्यगन्धानुलेपनं ॥
शार्दूलचर्म्मवसनं किञ्चित्स्मितमुखाम्बुजं ।
रक्तपद्मदलप्रख्यपादपाणितलाधरं ॥
सर्व्वलक्षणसंपन्नं सर्व्वाभरणभूषितं ।
पञ्चवक्त्रं दशभुजं चन्द्रखण्डशिखामणिं ॥

* वैराग्यमिति पुस्तकान्तरं पाठः ।

† रामाद्यइति क्वचित् पाठः ।

अस्यपूर्व्वमुखं सौम्यं बालार्कसदृशप्रभं।
त्रिलोचनारविन्दाढ्यं बालेन्दुकृतशेखरं।
दक्षिणं नीलजीमूतसमानरुचिरप्रभं॥
भ्रुकुटीकुटिलं घोरं रक्तवृत्तत्रिलोचनं।
दंष्ट्राकरालदुर्द्धर्षं स्फुरिताधरपल्लवं॥
उत्तरं* विद्रुमप्रख्यं नीलालकविभूषितं।
सविलासत्रिनयनं चन्द्राभरणशेखरं॥
पश्चिमं पूर्णचन्द्राभंलोचनत्रितयोज्वलं।
अतीवसौम्यमुत्फुल्ल लोचनत्रितयोज्वलं॥
दक्षिणे शूलपरशुवज्रखड्गानलोज्वलं।
चन्द्ररेखाधरं सौम्यं मन्दस्मितमनोहरं॥
पञ्चमं स्फटिकप्रख्यमिन्दुरेखासमुज्ज्वलं।
सव्ये च नागनाराच-घण्टापाशाङ्कुशोज्वलं॥
निवृत्याजानुसम्बद्धमानाभिश्च प्रतिष्ठया।
आकण्ठं विद्यया तद्वल्ललाटे तु शान्तया॥
तदूर्द्धं शान्त्यतीताख्यकलया वरया तथा।
पञ्चाध्वव्यापिनं तस्मात् कलापञ्चकविग्रहं॥
ईशानमुकुटं देवं पुरुषाख्यं पुरातनं।
अघोरहृदयस्तद्वद्वामगुह्यं महेश्वरं॥
सद्यमाद्यञ्च तन्मूर्त्तिमष्टत्रिंशत्कलामयं।
मातृकामयमीशानं पञ्चब्रह्ममयन्ततः॥

---

* उत्तममितिक्वचित् पाठः।

ओंकाराख्यमयं चैव हंसं शक्त्या समन्वितं।
पञ्चाक्षरमयं देवं षडक्षरमयन्तु वा॥
अङ्गषट्कयुतं चैव जातिषट्कसमन्वितं।
तथेच्छाभिख्यया शक्त्या समारूढकमण्डलुं॥
ज्ञानाख्यया दक्षिणतो वामतश्च क्रियाख्यया।
तत्त्वत्रयमयं साक्षाद्विद्यामूर्त्तिं सदाशिवं॥
मूर्त्तित्वेनैव सङ्कल्प्य सकलीकृत्य च क्रमात्।
सम्पूज्य च यथान्यायमर्घान्तं मूलविद्यया॥
मूर्त्तिमन्तं शिवं साक्षाच्छक्त्या परमया सह।
तत्रावाह्य महादेवं सदसद्व्यक्तिवर्ज्जितं॥
पञ्चोपचारवत् कृत्वा पूजयेत्परमेश्वरं।
ब्रह्मभिश्च षडङ्गैश्च तथा मातृकया पि च॥
प्रणवेन शिवेनैव शक्तियुक्तेन च क्रमात्।
शान्तेन च तथान्यैश्च देवमन्त्रैश्च कृत्स्नशः॥
पूजयेत्परमं देवं केवलेन शिवेन वा।
सद्यादिमुखमीशानं कृत्वाथ स्थापनं विना॥
पश्चावरणपूजान्तु प्रारभेत् यथाक्रमं।
तत्रादौ शिवयोः पार्श्वे दक्षिणे वामतः क्रमात्॥
गन्धाद्यैरर्चयेत्पूर्व्वं देवौ हेरम्बषण्मुखौ।
ततो ब्रह्माणि पश्चिम ईशानादि यथाक्रमं॥
सशक्तिकानि सद्यान्तं प्रथमावरणे यजेत्।
षडङ्गान्यपि तत्रैव हृदयादीन्यनुक्रमात्॥
शिवस्य च शिवायाश्च वामादिषु समर्च्चयेत्।

तत्र वामादिकान्* रुद्रानष्टौ वामादिशक्तिभिः।
अर्च्चयेद्वा न वा पश्चात् पूर्व्वादिपरितः क्रमात् ॥
षड़ङ्गानि वामादिरुद्राश्च तत्रैव दर्शिताः।
हृदयञ्च शिरश्चैव शिखा वर्म्मच नेत्रकं।
स्वस्ति*मित्येवमुक्तानि षड़ङ्गानि मनीषिभिः ॥
वामो-ज्येष्ठस्तथारुद्रः कालोविकरणस्तथा।
बलविकरणश्चैव †बलप्रथमनस्तथा।
सर्व्वभूतस्य दमनस्ताश्चाष्टाश्च शक्तयः ॥
प्रथमावरणं प्रोक्तं द्वितीयावरणं शृणु।
अनन्तं पूर्व्वदिक्पत्रे शक्त्या सह शिवोत्तमं ॥
तत्रैवोत्तरदिक्पत्रे एकनेत्रं समर्च्चयेत्।
एकनेत्रञ्च तच्छक्तिं पश्चादीशानदिग्दले ॥
त्रिमूर्त्तिं तस्य शक्तिञ्च पूजयेदग्निदिग्दले।
श्रीकण्ठं नैर्ऋते पत्रे तच्छक्तिं तस्य वामतः।
अथैव मारुते पत्रे शिखण्डीशं समर्च्चयेत् ॥
प्रथमावरणे चेज्या न वा ते चक्रवर्त्तिनः।
तृतीयावरणे पूज्याः शक्तिभिश्चाष्टमूर्त्तयः ॥
अष्टासु क्रमशोदिक्षु पूर्व्वादिपरितः प्रभोः।
भवः शर्व्वस्तथेशानोरुद्रः पशुपतिस्तथा।
उग्रोभीमोमहादेव इत्यष्टौमूर्त्तयः क्रमात् ॥

* रामादिकामितिक्वचित्पाठः। एवं ८।२७।८।२८ पद्येषु सर्व्वत्र वामस्थाने राम इति पाठः पुस्तकान्तरे।

† बलमित्येवमिति पुस्तकान्तरे।

अन्तरान्तरतश्चैषां महादेवादयः क्रमात्।
अग्निभिः सह संपूज्यास्तथैकादशमूर्त्तयः॥
महादेवः शिवोरुद्रः शङ्करोनीललोहितः।
ईशानो विजयोभीमो देवदेवोभवोद्भवः।
कपालीशश्च कथ्यन्ते तथैकादशशक्तयः॥
तत्राष्टौ प्रथमं पूज्या वाक्रियादि यथाक्रमं।
देवदेवः पूर्व्वपत्रमीशान्यामग्निगोचरे॥
भवोद्भवस्तयोर्मध्ये कपालीशस्ततः परं।
तस्मिन्नावरणे भूयोहमेन्द्रं पुरतोयजेत्॥
नन्दिनन्दक्षिणे तस्य महाकालं तथोत्तरे।
शास्तारं वह्निदिक्पत्रे मातृर्दक्षिणदिग्दले॥
गजास्यं नैर्ऋते पत्रे षण्मुखं वारुणे ततः।
ज्येष्ठां वायुदले गौरीमुत्तरे चण्डमैश्वरे॥
शास्तृनन्दीशयोर्मध्ये मुनीन्द्रं वृषभं यजेत्।
महाकालस्योत्तरतः पिङ्गलं तु समर्चयेत्॥
शास्तृमातृसमूहस्य मध्ये भृङ्गीश्वरस्ततः।
मातृविघ्नेशमध्येतु वीरभद्रं समर्च्चयेत्॥
स्कन्दविघ्नेशयोर्मध्ये यजेद्देवीं सरस्वतीं।
ज्येष्ठाकुमारयोर्मध्ये महामोदीं समर्चयेत्॥
गणाम्बाचण्डयोर्मध्ये देवीं दुर्गां समर्चयेत्।
तत्रैवावरणे भूयः शिवानुचरसंहतिं॥
रुद्रप्रथम*भूताख्यां त्रिविधाश्च स्वगर्भिकां।

*प्रथमभूताख्यामिति पुस्तकान्तरे पाठः।

शिवायाःसखीवर्गञ्च यजेत् ध्यात्वा समन्ततः॥
एवं तृतीयावरणे वितते पूजिते सति।
चतुर्थावरणं ध्यात्वा बहिस्तस्य समर्च्चयेत्॥
भानुः पूर्व्वदले पूज्योदक्षिणे चतुराननः।
रुद्रोवरुणदिक्पत्रे विष्णुरुत्तरदिग्दले॥
चतुर्णामपि देवानां पृथगावरणान्यथ।
तत्पूजानन्तरं कुर्य्यात्तच्छास्त्रोक्तप्रकारतः॥
अथवा भानुमभ्यर्च्य प्रथमावरणे यजेत्।
तस्यात्मनि चदेवादौ दीप्ताद्याभिश्च शक्तिभिः॥
दीप्ता सूक्ष्मा जया भद्रा विभूति र्विमला क्रमात्।
अमोघा विद्युता चैव पूर्व्वादिपरितः स्थिताः॥
द्वितीयावरणे पूज्यास्ततस्तोमूर्त्तयः क्रमात्।
पूर्व्वाद्युत्तरपर्य्यन्ताः शक्तयश्च ततः परं॥
आदित्योभास्करोभानूरविश्चेत्यनुपूर्व्वशः।
अर्कों ब्रह्मा तथा रुद्रोविष्णुश्चैवं विवस्वतः॥
विस्तारात् पूर्व्वदिग्भागे सुतावा* दक्षिणे स्थिताः।
वोधनी पश्चिमे भागे आप्यायेदुत्तरे पुनः॥
उषां प्रभान्तथा प्रज्ञां सन्ध्यामपि† ततः परं।
ईशानादिषु कोणेषु द्वितीयावरणे यजेत्॥
सोममङ्गारकञ्चैव बुधं बुद्धिमताम्बरं।
वृहस्पतिं वृहद्बुद्धिं भार्गवन्तेजसांनिधिं॥

---

* सुतारा इतिक्वचित् पाठः।

† साध्यामपीतिक्वचित पाठः।

शनैश्चरस्तथा राहुं केतुं धूम्रं भयंकरं ।
समस्ततीयजेद्देतांस्तृतीयावरणे क्रमात् ॥
अथवा द्वादशादित्यान् द्वितीयावरणे यजेत् ।
तृतीयावरणे चैव राशीन् द्वादश पूजयेत् ॥
सप्तसप्तगणां श्चैव बहिरस्य समन्ततः ।
ऋषीन् देवांश्च गन्धर्व्वान् पन्नगा श्चाप्सरोगणान् ॥
ग्रामण्यश्च तथा यक्षं जातुधानांस्तथा हयान् ।
सप्तछन्दोमयांश्चैव वालखिल्यांश्च पूजयेत् ॥
एवं त्र्यावरणं देवं समभ्यर्च्य दिवाकरं ।
ब्रह्माणमर्च्चयेत् पश्चात्त्रिभिरावरणैः सह ॥
हिरण्यगर्भं पूर्व्वस्यां विराजं दक्षिणे ततः ।
कालं पश्चिमदिग्भागे पुरुषञ्चोत्तरे यजेत् ॥
हिरण्यवर्णः प्रथमोब्रह्मा कमलसन्निभः ।
कालोजात्याञ्जनप्रख्यः पुरुषः स्फटिकोपमः ॥
त्रिगुणोराजसश्चैव तामसः सात्विकस्तथा ।
चत्वारएते क्रमशः प्रथमावरणे स्थिताः ॥
द्वितीयावरणे पूज्याः पूर्व्वादिपरितः क्रमात् ।
सनत्कुमारः सनकः सनन्दश्च सनातनः ॥
तृतीयावरणे पश्चादर्च्चयेत प्रजापतीन् ।
अष्टौ पूर्व्वास्तु पूर्व्वाचीन् प्राक् पश्चादुत्तरं क्रमात् ॥
दक्षो-रुचि-र्भृगु-श्चैव मरीचिश्च ततोऽङ्गिराः ।
पौलस्त्यः पुलहश्चैव क्रतुरत्रिश्च काश्यपः ॥
वशिष्ठश्चेति विख्याताः प्रजानां पतयस्त्विमे ।

तेषां भार्य्याश्च तैः सार्द्धं पूजनीया यथाक्रमं ॥
प्रसूतिश्च तथाकूतिः ख्यातिः संभूतिरेवच।
स्मृतिः प्रीतिः चमाचैव सन्नतिश्चानसूयका ॥
देवमातारुन्धती च सर्व्वाः खलु पतिव्रताः।
शिवार्च्चनरता नित्यं श्रीमत्यः प्रियदर्शनाः ॥
प्रथमावरणे वेदांश्चतुरो वास्य पूजयेत्।
इतिहासपुराणानि द्वितीयावरणे पुनः ॥
तृतीयावरणे पश्चात् धर्म्मशास्त्रपुरःसराः।
वैदिका निखिला विद्याः पूज्या एव समन्ततः ॥
पूर्व्वादिपरितोवेदांस्तदन्येतु यथा रुचि।
अष्टधा वा चतुर्द्धा वा कृत्वा पूज्य समन्ततः ॥
एवं ब्रह्माणमभ्यर्च्च्य त्रिभिरावरणैर्युतं।
दक्षिणे पश्चिमे पश्चाद्रुद्रं सावरणं यजेत् ॥
तस्य ब्रह्मषड़ङ्गानि प्रथमावरणं स्मृतं।
द्वितीयावरणं चैव विद्येश्वरमयं तथा ॥
तृतीयावरणे भेदो विद्यते स तु कथ्यते।
चतस्रोमूर्त्तयस्तस्याः पूज्याः पूर्व्वादिभिः क्रमात् ॥
त्रिगुणः सकलोदेवः पुरस्ताच्छिवसंज्ञकः ॥
राजसोदक्षिणे ब्रह्मा सृष्टिकृत् पूज्यते सदा।
तामसः पश्चिमे वाग्निः पूज्यः संहारकोहरः ॥
सात्विकः सुखकृत्सौम्यो विष्णुर्विश्वपतिर्मृड़ः।
एवं पश्चिमदिग्भागे शम्भोः षड्विंशकं शिवं ॥
समभ्यर्च्चोत्तरे भागे ततो वैकुण्ठमर्च्चयेत्।

वासुदेवं पुरस्तस्य प्रथमावरणे यजेत्॥
अनिरुद्धं दक्षिणतः प्रद्युम्नं पश्चिमे ततः।
सौम्ये संकर्षणं पश्चाद्यतो वा यजेदिमौ॥
प्रथमावरणं प्रोक्तं द्वितीयावरणं शृणु।
मत्स्यः कूर्म्मो वराहश्च नारसिंहश्च वामनः॥
रामेष्वन्यतमः कृष्णोभवानश्वमुखोऽपि च।
तृतीयावरणे चैवं पूर्व्वभागे समर्च्चयेत्॥
नारायणाख्यं* याम्येऽस्त्रं क्वचिदव्याहतं यजेत्।
पश्चिमे पाञ्चजन्यं च शार्ङ्गधनुरथोत्तरे॥
एवं त्र्यावरणं साक्षाद्विष्ण्वाख्यं परमं हरिं।
महाविष्णुं सदा विष्णुं मूर्त्तिं कृत्य समर्च्चयेत्॥
इत्थं चतुश्चतुर्व्यूहं क्रमान्मूर्त्तिचतुष्टयं।
पूजयित्वा तु तच्छक्तीश्चतस्रः पूजयेत् क्रमात्॥
प्रभामाग्नेयदिग्भागे नैर्ऋते तु सरस्वतीं।
गणाम्बिकाञ्च वायव्ये लक्ष्मीं रौद्रे समर्च्चयेत्॥
एवं † भाव्वादिमूर्त्तीनाञ्छक्तीनामनन्तरं।
पूजां विधाय लोकेशांस्तत्रैवावरणे यजेत्॥
इन्द्रमग्निं यमञ्चैव नैर्ऋतं वरुणं तथा।
वायुं सोमं कुबेरं वा पश्चादीशानमर्च्चयेत्॥
एवं चतुर्थावरणं पूजयित्वा विधानतः।
आयुधानि महेशस्य पश्चाद्बाह्यं समर्च्चयेत्॥

---

* नारायणाख्यमेति क्वचित्पाठः।
† भवादिमूर्त्तीनामिति क्वचित्पाठः।

श्रीमत्त्रिशूलमैशाने वज्रं माहेन्द्रदिङ्मुखे।
परशुं वह्निदिग्भागे याम्ये सायकमर्च्चयेत्॥
नैर्ऋते तु यजेत् खड्गं पाशं वरुणगोचरे।
अङ्कुशं मारुते भागे पिनाकञ्चोत्तरे यजेत्॥
एवमावरणं चैवं संपूज्यानन्तरं वहिः।
पश्चिमाभिमुखं रौद्रे क्षेत्रपालं समर्च्चयेत्॥
सर्व्वावरणदेवानां वहिर्व्वा पश्चिमे ऽथ वा।
पञ्चगोमातृभिः सार्द्धं मन्त्रोक्तपुरतोयजेत्॥
नन्दा सुभद्रा सुरभी सुशीला सुमनास्तथा।
पञ्च गोमातरस्त्वेताः शिवलोके व्यवस्थिताः॥
ततः समन्ततः पूज्याः सर्व्वा वै देवयोनयः।
खेचरा ऋषयः सिद्धा दैत्या यक्षाश्च राक्षसाः॥
अनन्ताद्याश्च नागेन्द्रा नागैस्तत्र कुलोद्भवैः।
डाकिनी-भूत-वेताल-प्रेतभैरव-नायकाः॥
पातालवासिनश्चान्ये नानायोनिषु सम्भवाः।
नद्यः समुद्रा गिरयः काननानि सरांसि च॥
पशवः पक्षिणोवृक्षाः कीटाद्याः क्षुद्रयोनयः।
नराश्च विविधाकारा मृगाश्च क्षुद्रयोनयः॥
भुवनान्यन्तरण्डस्य ततो ब्रह्माण्डकोटयः।
बहिरण्डानि संख्यानि भुवनानि सहाधिपैः॥
ब्रह्माण्डधारका रुद्रा दशदिक्षु व्यवस्थिताः।
यद्गौणं यच्चमाहेयं यद्वा शाक्यं ततः परं॥
यत् किञ्चिदर्थं शब्दस्य वाक्यं चिदचिदात्मकं।

तत्सर्व्वं शिवयोः प्रान्ते बुद्धा सामान्यतो यजेत् ॥
कृताञ्जलिपुटाः सर्व्वे विन्यस्ताः स्मितमुखास्तथा ।
सादरं प्रेक्षमाणाश्च देवं देवीञ्च सर्व्वदा ॥
इत्थमावरणान्यर्च्य कृत्वाप्यर्च्चेमशास्त्रये ।
पुनरभ्यर्च्य देवेशं पञ्चाक्षरमुदीरयेत् ॥
निवेदयेत्ततः पश्चाच्छिवयोरमृतोपमं ।
सरसव्यञ्जनं शुद्धं* षड्रसाकारं महाचरुं ॥
द्वात्रिंश-द्राढ़केर्मुख्यमधमं† त्वाढकावरं ।
साधयित्वा यथा सम्पत् श्रद्धया विनिवेदयेत् ॥
ततो निवेद्य पानीयन्ताम्बूलञ्चोपवंशकैः ।
नीराजनादिकं कृत्वा पूजाशेषं समापयेत् ॥
योगोपयोगिद्रव्याणि विशिष्टान्येव साधयेत् ।
वित्तशाठ्यं न कुर्व्वीत बुद्धिमान् विभवे सति ॥
शिवस्योपेक्षकस्यापि व्यङ्गस्याप्यनुतिष्ठतः ।
न फलन्त्येव काम्यानि कर्म्माणीति सतां कथा ॥
तस्माच्छाठ्यमुपेक्षाञ्च त्यक्त्वा सर्व्वाङ्गयोगतः ।
कुर्य्यात् काम्यानि कर्म्माणि फलसिद्धिं यदिच्छति ॥
इत्थं पूजां समाप्याथ देवं देवीं प्रणम्य च ।
भक्त्या पूजां समाधाय ततस्तोत्रमुदीरयेत् ॥
ततस्तोत्रजपस्यान्ते त्वष्टोत्तरशतं वरं ।
जपेत् पञ्चाक्षरीं विद्यां सहस्रोत्तरमुत्सुकः ॥

* मुख्यं षट्प्रकारमिति क्वचित् पाठः ।
† मध्यममिति क्वचित् पाठः ।

*दद्यात पूजां गुरोः पूजां कृत्वा पश्चात् यथा क्रमं।
यथोदयं यथाश्रेष्ठं सदस्यानपि पूजयेत्॥
तत उत्थाप्य देवेशं सर्व्वैरावरणैः सह।
मण्डलं गुरवे दद्याद्योगोपकरणैः सह॥
शिवाश्रितेभ्यो दद्याद्वा सर्व्वा एवानुरूपतः।
अथ वा तच्छिवायैव शिवक्षेत्रे समर्पयेत्॥
शिवाग्नौ वा यजेद्देवं होमद्रव्यैस्तु सप्तभिः।
समभ्यर्च्य यथापूर्व्वं सर्व्वावरणदेवताः॥
एष योगेश्वरोनाम त्रिषु लोकेषु विश्रुतः।
तस्मादभ्यधिकः कश्चिद्योगोऽस्ति भुवने क्वचित्॥
न तदस्मिन् जगत्यस्मिन्नसाध्यं यदनेन तु।
ऐहिकं वा फलं किञ्चिदामुष्मिकमथापि वा॥
इदमस्य फलं नेदमिति नैव नियम्यते।
श्रेयो रूपस्य कृत्स्नस्य यदिदं श्रेष्ठसाधकं॥
इदन्तु शक्यते वक्तुं पुरुषेण यदर्थ्यते।
चिन्तामणिरिवैतस्मात्तत्तेन प्राप्यते फलं॥

इति गणेशदानविधिः।

अथ मरुद्दानं।

ब्रह्माण्ड पुराणात्।

अथातः संप्रवक्ष्यामि शृणुध्वं मुनिसत्तमाः।
मरुद्दानमिति प्रोक्तं सर्व्वपापप्रणाशनं॥

* विद्यापूजामिति क्वचित्पाठः।

पुरा देवयुगे देवो ब्रह्मा लोकपितामहः ।
ऋषिणा नारदेनेदं पृष्टः प्रोवाच नारदं ॥
शृणु नारद भद्रन्ते दानं सर्व्वफलप्रदं ।
यद्यत् कामयते दाता तत्तत् फलमुपाश्नुते ॥
पुण्यकालेषु सर्व्वेषु अयनेषु विशेषतः ।
पुण्यदेशेषु सर्व्वेषु गृहे वा दानमाचरेत् ॥
देवा एकोनपञ्चाशत् देवेन्द्रसमतेजसः ।
भ्रातरः पुरुहूतस्य मरुतः सूर्य्यवर्च्चसः ॥
किरीट-हार*-केयूर-कटकादिविभूषिताः ।
खड्गचर्म्मधरा नित्यं शक्रस्यानुचराः सदा ॥
तेषां तु प्रतिरूपाणि जातरूपेण कारयेत् ।
तेषां दानानि तत् सर्व्वं विप्रेणैव समाचरेत् ॥
शुचौ देशे समां भूमिं लिप्य गोमयवारिणा ।
दक्षिणोत्तरतोविद्याल्लेखाः षट् तत्र ताः समाः ॥
प्रागेकादशलेखाः स्युः पञ्चाशत्कोष्ठमुच्यते ।
चतुरस्राः समाःसर्व्वे हस्तत्रितयसम्मिताः ॥
कोष्ठे मध्यमवीथ्यां वै षष्ठे चोत्तरतः स्थितं ।
इन्द्रमासनमित्युक्तमितरे मरुतस्तथा ॥
कोष्ठेषु सर्व्वेषु सरोरुहाणि
कृत्वा सितैस्तण्डुलमण्डलैश्च ।
पद्मानि देवासनमारभेत

* दार इति पाठान्तरं पुस्तकान्तरे ।

संस्थापयेत्तेषु यथाक्रमेण ॥

अथ दक्षिणोत्तरतो रेखाषट्कमालिख्य पूर्व्वपश्चि

मायताभिरेकादशरेखाभिः

पञ्चाशत्कोष्ठनिष्पत्तिः स्यात्

तत्र मध्यमवीथ्यां, उत्तरतः षष्ठे कोष्ठके।

इन्द्रासनं उत्तरे अवशिष्टकोष्ठकाः,

मरुतामासनं मरुतामानि तु

वायु पुराणात्।

ततस्तेषान्तु नामानि मातापित्रोः प्रचक्रतुः।

तद्विधैः कर्म्मभिश्चैव मरुतान्तो पृथक् पृथक् ॥

शुक्रज्योतिस्तथादित्यः चित्रज्योतिस्तथापरः।

सत्यज्योतिश्च ज्योतिष्मान् सत्यश्च ऋतपास्तथा ॥

प्रथमोयं गणः प्रोक्तो द्वितीयन्तु निबोधत।

ऋतजित्सत्यजिच्चैव सुषेणः सेनजित्तथा ॥

अन्तिमित्रोऽमित्रश्च दूरेमित्रस्तथा परः।

गण एष द्वतीयस्तु द्वतीयोयन्निबोधत ॥

ऋतःसत्यो ध्रुवोधर्त्ता विधर्त्ताच विधारय।

ध्वक्षश्च द्वतीयेतु चतुर्थं मे निबोधत ॥

ध्वान्तश्च धुनिश्चैव सभरश्च तथा गणः।

ईदृक्षासः पुरुषश्चैव अन्यादृक्षास एतनः ॥

संमिताः समदृक्षासः प्रतिदृक्षास वै गणः।

मरुतेन्द्रः सभरसः तथादेवविशांपरः ॥

यज्ञश्चै वानुवर्त्तानस्तथान्योमानुषीविशः।

दैत्यदेवाः समाख्याताः सप्तैते सप्तका गणाः ।
एते ह्येकोनपञ्चाशन्मरुतोनामतः स्मृता इति ॥

प्रागादिपूर्व्वोत्तरमत्र चैवं
सर्व्वाणि कृत्यानि च कारयित्वा ।
वस्त्रैरथावेष्ट्य कुशोदकैश्च
संप्रोक्ष्य तल्लिङ्गयुतैर्यजुर्भिः ॥
मध्ये महेन्द्रस्त्रिगुणेन हेम्ना
वज्रायुधः शक्तिधरः किरीटी ।
हारादिकेयूरविभूषिताङ्गो
देवाधिपो लोकपतिः प्रशान्तः ॥
कार्य्य इति मध्याहार्य्य
मभ्यर्च्य देवान् मरुतश्च पूर्व्वं
मनन्तरं विप्रवरांस्तथैव ।
प्रत्येकमेव प्रवदेत्तु तेषां
प्रदक्षिणं चोत्तरपूर्व्वमेव ॥
प्राप्ते शुभे पुण्यकाले थ दाता
स्नात्वा ततस्तिलमिश्रैः कुशोदैः ।
प्रदक्षिणं पुष्पगृहीतहस्तः
कृत्वा तु विप्रेण सहैव सर्व्वान् ॥
प्रणम्य पुष्पाञ्जलिना च सर्व्वं
प्रदापयेद्देवगणं क्रमेण ॥
प्रत्येकमेवं द्विजपुङ्गवानां
प्रणम्य मन्त्रं समुदाहरेद्वै ॥

वृणोति देवं मरुतान्स्थैकं
मयि प्रभो देव कुरु प्रसादं।
तव प्रसादादघनाशनं मे
सौवर्णरूपास्तु सदा मरेशाः॥
इत्येवमुक्त्वा मरुतः प्रदाय
ततोमहेन्द्रं प्रददेच्च देवं।
यःकारयेद्विप्रवरस्तु तस्मै
स्वस्तीति विप्राय पुरोभिवाय॥
ततः संपूज्य गुरवे दक्षिणाञ्च यथोचिताम्
स्वस्तिवाचकविप्राणां दक्षिणाञ्च यथार्हतः॥
त्रैलोक्यराजोजगतामधीशो
देवाधिपोदैत्यगणाभिहन्ता।
श्रेयांसि मह्यं प्रददातु देवो
देवाग्रजोवज्रधरः प्रशान्तः॥
इत्युच्चार्य्य ततोदद्याद्देवं वज्रधरं हरिं।
पूजायामपि शक्रस्य मन्त्र एष प्रकीर्त्तितः॥
य एवं कुरुते दानं मरुताम्बिधिपूर्व्वकं।
स सर्व्वकामसंपन्नो देववद्दिवि मोदते॥
यथोक्तं ब्रह्मणा वेदं नारदाय सुरर्षये।
तथा मयापि वः सर्व्वं प्रोक्तं वै मुनिसत्तमाः॥

इति मरुद्दानविधिः।

अथ भुवनप्रतिष्ठाविधिः।

भविष्योत्तरात्।

युधिष्ठिर उवाच।

प्रतिष्ठा शाश्वती केन दानेन मधुसूदन।
इह लोके परे चैव कीर्त्तिः स्यादक्षता तथा॥
सद्गतिञ्च यथा यान्ति सर्व्वे पितृपितामहाः।
सन्ततिर्याचया लोके विभवश्चापि पुष्कलः॥
स्थापनं सर्व्वदेवानां कथं स्याद्यदुनन्दन।
तदाचक्ष्व महाभाग दानेन नियमेन वा॥

श्रीकृष्णउवाच।

साधु पृष्टं त्वया राजन् लोकानामुपकारकं।
शृणुष्वैकमना भूत्वा गुह्यं परममुत्तमं॥
भुवनानां समासेन प्रतिष्ठा कथयामि ते।
देवासुरास्तथा नागा गन्धर्व्वा यक्ष-राक्षसाः॥
प्रेताः पिशाचा भूताश्च स्थापिताश्च न संशयः।
कारकस्यानुकूले तु मूहूर्त्ते विजये शुभे॥
पुण्ये तिथौ शिवे ऋक्षे दिने सौम्यग्रहान्विते।
सप्तहस्तं पटं कृत्वा चतुरस्रं सुसंहतं॥
भिन्नाङ्गं सुदृढं शुद्धं शुद्धस्फटिकवर्चसं।
तस्मिन् सर्व्वाणि राजेन्द्र भुवनानि लिखापयेत्॥
चतुर्व्वर्णकमानीय विचित्रं चित्रकर्म्मणि।
युवानं व्याधिरहितं भव्यं चित्रकरं शुभं॥
संपूजयित्वा यत्नेन पुष्पवासोविभूषणैः।

तस्मिन् कर्म्मणि युञ्जीत पठमानो द्विजोत्तमैः।
शङ्खभेरीनिनादैश्च गीतमङ्गलनिःस्वनैः।
पुण्याहजयघोषैश्च ब्राह्मणान् पूज्य यत्नतः।
आचार्य्यमपि सपूज्य वासोभिर्भूषणैस्तथा।
प्रारम्भं कारयेद्राजन् पटे तस्मिन् यथोदितं।
पौराणं विधिमास्थाय भुवनानि यथाक्रमं।
मध्ये लिखापयेद्राजन् जम्बुद्वीपं सविस्तरं।
तस्य मध्ये स्थितोमेरुर्म्मेरोरुपरि देवताः।
दिशासु लोकपालानां पुर्य्योऽष्टौ सुरसंयुताः।
सप्तद्वीपवती पृथ्वी सप्तचैव कुलाचलाः।
सागराः सप्त एवात्र नद्योह्यथाः स सिन्धवः।
पातालाः सप्त वा चैव सप्तस्वर्गादिभूतयः।
ब्रह्म-विष्णु-शिवादीनां भुवनानि यथाक्रमं।
ध्रुवमार्गस्तथादित्यो ग्रहतारागणैर्वृतः।
देव-दानव-गन्धर्व्वा यक्षराक्षसपन्नगाः।
ऋषयो-मुनयो-गावो-देवमातर-एव च।
सुपर्णाद्याश्च विहगा नागाश्चैरावतादयः।
दिग्गजाष्टकमत्रैव लेखयेद्भ्रमखिण्डतं।
एवं विधं पटं राजन् कारयित्वा सुशोभनं।
दशोत्तरेण पयसा एतत् सर्व्वं समावृतं।
तत्तेजसावृतं भूयोमहतोयेण सर्व्वशः।
तेजस्तु वायुना वायुराकाशेन समावृतः।
भूतादिना तथाकाशं भूतादिमहता तथा।

अव्यक्तेन महांश्चैव व्याप्तो वै बुद्धिलक्षणः।
अव्यक्तात्तमसा व्याप्तं तमश्च रजसा तथा।
रजः सत्वेन संव्याप्तं त्रिधा प्रकृतिरुच्यते।
एवमावरणोपेतं ब्रह्माण्डमखिलं नृप।
पुरुषेणावृतं सर्व्वं सबाह्याभ्यन्तरं तथा॥
एतत्सर्व्वं पटस्थन्तु कृत्वा चित्रमयं सुधीः।
कार्त्तिक्यामयने चैव विषुवे ग्रहणे तथा॥
पूजयेद्येन विधिना तत्समासेन मे शृणु।
सर्व्वतोमण्डलं चास्य विचित्रं कारयेद्बुधः॥
नव कुण्डानि चत्वारि चतुरस्राणि कारयेत्।
द्वौ द्वौ नियोजयेत्तेषु ब्राह्मणौ वेदपारगौ॥
यज्ञोपकरणोपेतौ वस्त्राभरणभूषितौ।
होमं कुर्य्युर्यतात्मानो* मौनिनः सर्व्व एव ते॥
नामधेयैः पटस्थानां मन्त्रैरोङ्कारपूर्व्वकैः।
यजमानस्ततः सर्व्वं सर्व्वालङ्कारभूषितः॥
आचार्य्येण समं कुर्य्यात्पूजामग्रे पटस्य तु।
पुष्पैर्व्वस्त्रैः समभ्यर्च्य मन्त्रमेतमुदीरयेत्॥
ब्रह्माण्डोदरवर्त्तीनि भुवनानीह यानि तु।
तानि सन्निहितान्यत्र पूजितानि भवन्तु मे॥
ब्रह्मा विष्णुस्तथा रुद्रो ह्यादित्या वसवस्तथा।
पूजितास्तु प्रतिष्ठासु भवन्तु सततं मम॥

* जितात्मानो ऽनिति कचित् पुस्तके पाठः।

एवं सम्पूज्य विधिवत् कृत्वा चैव प्रदक्षिणं ।
भक्ष्यान्नानाविधांश्चैव नैवेद्यं तत्र दापयेत् ॥
नृत्तगीतनिनादैश्च जागरं कारयेत्ततः ।
शङ्खघोषैर्विचित्रैश्च गीतमङ्गलनिःस्वनैः ॥
पुनः प्रभाते विमले स्नात्वा शुचिरलङ्कृतः ।
पूर्व्वोक्तेन विधानेन पुनः सम्पूज्य तं पटं ॥
स्वस्तिक् पूजान्ततः कृत्वा गोमयेन विचक्षणः ।
अथ वा गौरगन्धाद्यैर्वस्त्राद्यलङ्कृतं ॥
उपानहौ तथाच्छत्रं गृहोपकरणानि च ।
यथादिष्टतमङ्गिभ्यश्च दद्याद्विचक्षणः ॥
ततः प्रकल्पयेद्यानं नागयुक्तमलङ्कृतं ।
अलाभे वाजिसंयुक्तं पताकाध्वजमालिनं ॥
सहस्रं दक्षिणां दत्वा ततश्चारोपयेत्पटं* ।
ब्राह्मणं वा रथेनाथ नयेद्देवालयं बुधः ॥
तत्र संस्थापयेद्गौरीं गन्धैः पुष्पैश्च पूजयेत् ।
तत्रापि दद्यान्नैवेद्यं कुर्य्याच्चापि महोत्सवं ॥
यस्मिन्नायतने तस्य प्रतिष्ठा क्रियते नृप ।
पूजा तत्रापि महती कर्त्तव्या भूतिमिच्छता ॥
चन्द्रातपन्तु घण्टाश्च ध्वजाद्यन्दापयेत्सुधीः ।
यथाशक्त्या च राजेन्द्र गुरुं गौरवयन्नृप ॥
अभ्यर्च्य दक्षिणाभिश्च ब्राह्मणांश्च विसर्ज्जयेत् ।

---

* परमिति पुस्तकान्तरे पाठः ।

दीनान्धकृपणानाञ्च भोजनञ्चानिवारितं ॥
तस्मिन्नहनि दातव्यं मित्रस्वजनबन्धुषु ।
अनेन विधिना यस्तु श्रद्दधानो जितेन्द्रियः ॥
कुर्य्यान्नरो वा नारी वा प्रतीष्ठां सार्व्वलौकिकीं ।
स्थापितन्तु भवेत्तेन त्रैलोक्यं सचराचरं ॥
कुलश्चोत्तारितस्तेन सपुत्रेण युधिष्ठिर ।
यावच्च देवतागारे पटस्तिष्ठति पूजितः ॥
तावच्चास्य नया कीर्त्तिस्त्रैलोक्ये प्रतिसर्पति ।
दिनानि कीर्त्तिर्यावन्ति मर्त्यलोकेषु गीयते ॥
तावद्वर्षसहस्राणि सूर्य्यलोके महीयते ।
गन्धर्व्वैर्गीयमानस्तु अप्सरोगणसेवितः ॥
वसेत हृष्टमनसा यावदिन्द्राश्चतुर्द्दश ।
पुण्यक्षयादिहाभ्येत्य राजराजोऽभिजायते ॥
पुत्रपौत्रवृतः श्रीमान् दीर्घायु-रतिधार्म्मिकः ।
दशजन्मानि राजेन्द्र जायते हतकण्टकः ॥
श्रीस्तस्य जायते नित्या तेजश्चाव्याहतम्भुवि ।
बलम्बुद्धिर्धनन्धान्यं पुत्रपौत्रं तथोत्तमं ॥
एतत्सर्व्वमवाप्नोति कृत्वैतत् सुरसत्तमः ।
कीर्त्तिस्तु प्रथिता तस्य बलञ्चापि मङ्गलम्भवेत् ॥
अपराण्यपि जन्मानि सप्त राजा भवत्यसौ ।
पश्चाद्यतिकुले भूत्वा निर्व्वाणं प्राप्नुते परं ॥
अस्मात्परतरं नास्ति त्रिषु लोकेषु किञ्चन ।
एतत् कृत्वा तु मुनयो लेभिरे परमं पदं ॥

एतस्यैव प्रभावेण पुराणाश्चक्रवर्त्तिनः।
तथाविधं पदं लब्ध्वा लोके कीर्त्तिं वितेनिरे॥
एतत्ते सर्व्वमाख्यातं यन्मान्त्वं परिपृच्छसि।
नारी वा पुरुषो वापि प्रतिष्ठाभौवनीन्तु यः॥
प्रकरोति विधानेन कृतकृत्यो भवेद्ध्रुवं।

धर्म्मञ्च वर्द्धयति* धर्म्मशतानि धत्ते
प्रसादयति पापमपाकरोति।
विख्यापयेच्च भुवनेषु विशेषनिष्ठां
तस्मास्ति यस्त्र कुरुते भुवनप्रतिष्ठां॥

इति भुवनप्रतिष्ठाविधिः।

अथ कल्पदानं।

मत्स्यपुराणे।

कल्पानुकीर्त्तनं वक्ष्ये सर्व्वपापप्रणाशनं।
यस्यानुकीर्त्तनादेव वेदपुण्येन युज्यते॥
प्रथमः श्वेतकल्पस्तु द्वितीयोनीललोहितः।
वामदेवस्तृतीयस्तु ततो रथन्तरोपरः॥
रौरवः पञ्चमः प्रोक्तः षष्ठः प्राण इति स्मृतः।
सप्तमोथ बृहत्कल्पः कन्दर्पोष्टम उच्यते॥
सद्योऽथ नवमः प्रोक्त ईशानोदशमः स्मृतः।

---

* वृद्धिमवाप्नोति पुस्तकान्तरे पाठः।

व्यान एकादशः प्रोक्तः तथासारस्वतोपरः ॥
त्रयोदश उदानस्तु गारुडोथ चतुर्द्दशः ।
कूर्म्मः पञ्चदशोज्ञेयः पौर्णमासी प्रजायते ॥
षोडशो-नारसिंहस्तु समानस्तु ततः परः ।
आग्नेयोऽष्टादशः प्रोक्तः सोमकल्पस्तथा परः ॥
मानवो विंशतिः प्रोक्तस्तत्पुमानिति चापरः ।
वैकुण्ठ-श्चापरस्तद्वल्लक्ष्मीकल्प स्तथापरः ॥
चतुर्विंशस्तथा प्रोक्तः सावित्रीकल्पसंज्ञकः ।
पञ्चविंशतिमे घोरो वाराहस्तु ततोपरः ॥
सप्तविंशोऽथ वैराजो गौरीकल्पस्तथापरः ।
माहेश्वरस्ततः प्रोक्तो त्रिपुरो यत्र घातितः ॥
पितृकल्पस्तथा ते तु या कुहूर्ब्रह्मणः स्मृता ।
इत्ययं* ब्रह्मणोमासः सर्व्वपापप्रणाशनः ॥
आदावेव हि माहात्म्यं यस्मिन् यस्य विधीयते ।
तस्य कल्पस्य तन्नाम विहितं ब्रह्मणा पुरा ॥
यस्तु दद्यादिमान् कृत्वा हैमान् पर्व्वणि पर्व्वणि ।
ब्रह्मविष्णुपुरे कल्पं मुनिभिः पूज्यते दिवि ॥
सर्व्वपापक्षयकरं कल्पदान यतोभवेत् ।
मुनिरूपांस्ततः कृत्वा दद्यात् कल्पान् विचक्षणः ॥
मुनिरूपान् मुख्याकारान्, मुनिलक्षणयुक्तान्

* इत्येवमिति पुस्तकान्तरे पाठः ।

ब्रह्माण्डदाने।

इति कल्पदानविधिः।

इति श्रीमहाराजाधिराजश्रीमहादेवस्य समस्तकरणाधीश्वर-
सकलविद्याविशारदश्रीहेमाद्रिविरचिते चतुर्व्वर्गचिन्ता-
मणौ दानखण्डे देवतादानप्रकरणं।

# अथ कालविशेषेण दानविशेषा अभिधीयन्ते।



अभ्यर्च्चन् विधिनातिथीन् विरचन् नक्षत्रयोगान् तिथीन्
वारम्वारमुदारमङ्गलगुरुप्रीतिर्बुधं प्रीणयन् ।
विभ्राणः पृथिमिचमण्डलसदासङ्क्रान्तिकान्तं गृहं
साधु श्रीकरणप्रयोगकुशलो हेमाद्रिरेव क्षितौ ॥
तेनाथ तिथिवारर्क्षयोगेषु करणेषु च ।
सङ्क्रान्त्यादिषु कालेषु क्रियते दानसंग्रहः ॥

तत्र तिथिदानानि तावदुच्यन्ते ।

विष्णुधर्म्मोत्तरे ।

प्रतिपद्यथ पुष्पाणां द्वितीयायां घृतस्य च ।
पञ्चम्यान्तु फलानां वै षष्ठ्यां शाकस्य मानद ॥
सप्तम्याञ्चाप्यपूपानामष्टम्याञ्च गुड़स्य च ।
कुल्माषस्य नवम्याञ्च दशम्यां भोजनस्य च ॥
एकादश्यां सुवर्णस्य द्वादश्यां वसनस्य च ।
त्रयोदश्यान्तु गन्धानां सितायास्तदनन्तरं ।
दानञ्च परमान्नस्य पञ्चदश्यां महाफलं ॥

भविष्योत्तरे।

श्रीकृष्ण उवाच।

तिथिदानमिदानीन्ते कथयामि युधिष्ठिर।
सर्व्वपापप्रशमनं सर्व्वविघ्नविनाशनं॥
मानसं वाचिकं वापि कर्म्मजं यद्‌भवेत्।
सर्व्वं प्रशममायाति दानेनानेन पाण्डव॥
श्रावणे कार्त्तिके चैत्रे वैशाखे फाल्गुने तथा।
सितपक्षे तु तद्दानं दातव्यं पुष्टिवर्द्धनं॥
दत्तं श्रद्धा सहायश्च पात्रप्राप्तिस्तथैव च।
दानकालः सदैवेष कथितस्तत्त्वदर्शिभिः॥
तीर्थे चायतने गोष्ठे गृहे वा नियतात्मनाम्।
यद्ददाति नरश्रेष्ठ तद्दानमक्षय* कल्पते॥
प्रतिपत्सु द्विजान् पूज्य पूजयित्वा प्रजापतिं।
सौवर्णमरविन्दं च कारयित्वाष्टपत्रकं॥

प्रजापतिलक्षणमुक्तं,

ब्रह्माण्डदाने।

कृत्वा त्वौदुम्बरे पात्रे सुगन्धघृतपूरिते।
पुष्पैर्धूपैः पूजयित्वा विप्राय प्रतिपादयेत्॥

औदुम्बरं, ताम्रपात्रं।

अनेन विधिना दत्त्वा कमलं कमलालयं।
ईप्सितान् लभते कामान् निष्कामो ब्रह्मसात्मतां।

---

* कल्पयेदिति क्वचित्पाठः।

वह्निं पूज्य द्वितीयायां भूर्भुवःस्वरिति क्रमात्।
तिलाज्येन शतं हुत्वा दत्त्वा पूर्णाहुतिं ततः॥
वैश्वानरन्तु सौवर्णं* स्थापयेत्ताम्रभाजने।
गुड़ाज्यपूरिते राजंस्तोयपूर्णघटोपरि॥
पूजयित्वा वस्त्रमाल्यैर्भक्ष्यभोज्यैरनेकधा।
ततस्तं ब्राह्मणे दद्यात् †वह्निर्मे प्रीयतामिति॥

वैश्वानरलक्षणमुक्तं

ब्रह्माण्डदाने।

यावज्जीवकृतात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः।
मृतो-वह्निपुरे याति प्राहेदं नारदोमुनिः॥
तृतीयायां महाराज गोधां स्वर्णमयीं शुभां।
स्थापयेत्ताम्रपात्रे तु लवणोपरि वेश्मवित्॥
जीरकं कटुखण्डञ्च गुडं पार्श्वेषु दापयेत्।
रक्तवस्त्रयुगच्छन्नं कुङ्कुमेन विभूषितं॥
पुष्पधूपैः सनैवेद्यैः पूजयित्वा शिवालये।
दत्त्वा यत् फलमाप्नोति पार्थ तत् केन वर्ण्यते॥
प्रासादा यत्र सौवर्णा नद्यः पायसकर्दमाः।
गन्धर्वा ऋषयो यत्र तत्र ते यान्ति मानवाः॥
स्वर्गादागत्य‡ संसारे सुरूपः सुभगो भवेत्।
दाता भोक्ता बहुधनः पुत्रपौत्रसमन्वितः॥
नारी वा तद्गुणैर्युक्ता भवतीति न संशयः।

---

* सम्पूर्णमिति पुस्तकान्तरे पाठः।
† वह्निःसम्प्रीयतामिति पुस्तकान्तरे पाठः।
‡ स्वर्गादागत्येति क्वचित्पाठः।

वह्निपुराणे।

योददाति द्विजेभ्यस्तु तृतीयायामुपानहौ।
वैशाखे शुक्ले पक्षे तु सक्तवं करकान्वितं।
न तस्य मानसो दाहो मर्त्त्यलोकेऽभिजायते॥
सर्व्वव्याधिविनिर्मुक्तः श्रियं पुत्रांश्च विन्दति।
कालादिह यदायाति मम लोके द्विजोत्तम॥

विष्णुधर्म्मोत्तरे।

वैशाखे शुक्लपक्षे तु तृतीयायां द्विजोत्तम।
यद्ददाति नरश्रेष्ठ तदक्षयं समश्नुते।
विशेषेण तु दानेन भक्षितानां प्रकीर्त्तितं॥

आह विष्णुः।

वैशाखे मासि तृतीयायामुपोषितो अक्षतैर्वासुदेवमभ्यर्च्य तान्येव च हुत्वा सर्व्वपापेभ्यः पूतोभवति यच्चास्मिन्नहनि प्रयच्छति तदक्षयमाप्नोतीति।

भविष्यत्पुराणे।

माघमासे तृतीयायां गुड़स्य लवणस्य च।
दानं श्रेयस्करं राजन् स्त्रीणान्तु पुरुषस्य च॥
गुडेन तुष्यते नूनं लवणेन चतुर्भुजः।
गुडपूजा तु दातव्या मासि भाद्रपदे तथा *॥
तृतीयायां पायसेन वामदेवस्य प्रीतये।
वारिदानं प्रशस्तं स्यान्मोदकानान्तु भारत॥

---

* अर्द्धमितपुस्तकान्तरे ... ।ढः।

वैशाखे मासि राजेन्द्र तृतीयायाश्च चन्दनैः ।
वारिणा तुष्यते विप्रो-मोदकैर्भीम एव हि ॥
दोनन्तु चन्दनस्येह पश्चयीमावसंशयः ।
या त्वेषा कुरुशार्दूल वैशाखे मासि वै तिथिः ॥
तृतीया सा क्षया लोके गीर्व्वाणैरभिनन्दिता ।*
सुधावाय महावाहो भूरिचन्द्रञ्च सुव्रत ।
कलधौतं तथावश्च घृतं चापि विशेषतः ॥

चन्द्रं सुवर्णं, कलधौतं रूप्यं,

अस्यां दत्तं त्वक्षयं स्यात्तेनेयमक्षया स्मृता ।
यत्किञ्चिद्दीयते दाम स्वल्पं वा यदिवा बहु ।
तत्सर्व्वमक्षयं याति तेनेयमक्षया स्मृता ॥
योऽस्यां ददाति करकान्† वारिपात्रसमन्वितान् ।
स याति पुरुषोवीर लोके वै हेममालिनः ॥

भविष्योत्तरे ।

चतुर्थ्यां वारणं हैमं पलार्द्धेन्तु शोभनं ।
कारयित्वाङ्कुशयुतं तैलद्रोणोपरि न्यसेत् ॥
वस्त्रैःपुष्पैः पूजयित्वा नैवेद्यं विनिवेद्य च ।
ततस्तु ब्राह्मणे दद्याद्गणेशः प्रीयतामिति ॥

* रभिवन्दिता इति क्वचित्पाठः ।

† लोकान् वै हेममालिन इति क्वचित् पुस्तके पाठः

‡ वारिवाजेति क्वचित्पाठः ।

कार्य्यारम्भेषु सर्व्वेषु तस्य विघ्नं न जायते ॥
वारणाः सप्तजन्मानि भवन्ति मदविह्वलाः।
वारणेन्द्रं समारूढस्त्रिलोकविजयी भवेत्॥

अन्यच्च।

श्रावणे कार्त्तिके चैतदित्यादितिथिदानारम्भेऽभिहितोमास-
नियमः सर्व्वेषु भविष्योत्तरोक्ततिथिदानेषु वेदितव्यः।
पञ्चम्यां पन्नगं सर्व्वं स्वर्णेनैकेन कारयेत्।
क्षीराज्यपात्रमध्यस्थं पूज्य विप्राय दापयेत्॥
द्विजं सम्पूज्य वासोभिः प्रणिपत्य क्षमाप्य च।
इह लोके परे चैव दानमेतत् सुखावहं ॥
नागोपद्रवविद्रावि सर्व्वदुष्टनिवर्हणं।
प्रायश्चित्तं तथा प्रोक्तं नागदष्टस्य शम्भुना॥
षष्ठ्यां शक्तिसमोपेतं कुमारं शिखिवाहनं।
कारयित्वा यथाशक्त्या हैममालाविभूषितं॥

कुमारलक्षणमभिहितं

विष्णुधर्म्मोत्तरे।

कुमारः षण्मुखः कार्य्यः शिखण्डकविभूषितः।
रक्ताम्बरधरः कार्य्यो मयूरवरवाहनः॥
कुक्कुटश्च तथा घण्टा तस्य दक्षिणहस्तयोः।
पताका वैजयन्ती च शक्तिः कार्य्या च वामयोरिति॥
तण्डुलद्रोणशिखरे वासोभिः पूज्य शक्तितः।

नमस्कृत्य ततो-दद्याद्ब्राह्मणाय कुटुम्बिने ॥
इह भूतिञ्च सम्प्राप्य प्रेत्य स्वर्गे महीयते ।
शूद्रोब्राह्मणतामेति ब्राह्मणो ब्रह्मलोकभाक् ॥
सप्तम्यां भास्करं चैवम्पूज्य ब्राह्मणमुत्तमं ।
दद्यादलङ्कृतग्रीवं सपर्य्याणं सदक्षिणं ॥

दानमन्त्रस्तु ।

अश्वदाने द्रष्टव्यः ।

सूर्य्यलोकमवाप्नोति सूर्य्येण सह मोदते ।
गन्धर्व्वस्तुष्टिमाप्नोति दत्तेऽश्वे समलङ्कृते ॥
अष्टम्यां वृषभं श्वेतमव्यङ्गाङ्गन्धुरन्धरं ।
सितवस्त्रयुगच्छन्नं घण्टाभरणभूषितं ॥
दद्यात् प्रणम्य विप्राय प्रीयतां वृषभध्वजः ।
प्रदक्षिणं ततःकृत्वा आगारान्तमनुव्रजेत् ॥
दानेनानेन नृपते शिव लोकोम दुर्लभः ॥
वृषस्कन्धेषु तिष्ठन्ति भुवनानि चतुर्द्दश ॥
तस्माद्वृषभदानेन दाता भवति भारतः ॥
नवम्यां काञ्चनं सिंहं कारयित्वा स्वशक्तितः ।
मुक्ताफलाष्टकयुतं नीलवस्त्रावगुण्ठितं ॥
दद्याद्देवी मनुस्मृत्य दुष्टदैत्यनिवर्हणीं ।
द्विजातये प्रदायेत्थं सर्व्वान् कामान् समश्नुते ॥
कान्तारवनदुर्गेषु चौरव्यालाकुले पथि ।
हिंसकाश्च न हिंसन्ति दानस्यास्य प्रभावतः ॥

मृतोदेवीपुरं याति पूज्यमानः सुरासुरैः।
पुण्यक्षयादिहाभ्येत्य राजा भवति धार्म्मिकः॥
दशम्यां नृपशार्दूल दशाशाः स्वर्णनिर्म्मिताः।
लवणे च गुडे क्षीरनिष्पावेषु तिले घृते॥
गव्यत्रये तण्डुलेषु माषाणामुपरि स्थिताः।
संपूज्य वस्त्रपुष्पाद्यैर्द्विजाय प्रतिपादयेत्॥

आशा दिशः।

तासां लक्षणमुक्तं।

आशादशमीव्रते।

तद्यथा। स्त्रीरूपाश्चाधिदेवस्य शस्त्रवाहनचिह्निता इति-पूर्वादिक्रमेण शक्रादेरधिदेवस्य शस्त्रादिभि-श्चिह्निता-इत्यर्थः शक्रादीनामपि शस्त्र वाहनानि ब्रह्माण्डदाने द्रष्टव्यानि।

आशाः स्वाशा सदा सन्तु सिध्यतां मे मनोरथः।
भवतीनां प्रसादेन सदा कल्याणमस्त्विति॥

पूजादानमन्त्रः।

अनेन विधिना यस्तु पुमान् स्त्रीवाथ वा पुनः।
निर्व्वापयति राजेन्द्र तस्य पुण्यफलं शृणु॥
इह लोकेनवाप्याशात् प्रेत्य स्वर्गे महीयते।
सफलास्तस्य सर्व्वाशा याः काश्चिन्मनसि स्थिताः॥
ततः स्वर्गादिहाभ्येत्य कुले महति जायते।
एकादश्यां गजस्तम्भं कारयित्वा हिरण्मयं॥

यथा शक्त्या ताम्रपात्रे घृतस्योपरिपूजितं ।
पञ्चाम्न्यभिरते विप्रे गुरवे प्रविशेषतः ॥
दत्त्वा किं बहुनोक्तेन विष्णुलोके महीयते ।
गरुत्मतो रूपमुक्तं विष्णुधर्म्मोत्तरे ॥
तार्क्ष्योमरकतप्रख्यः कौशिकाकारनासिकः ।
चतुर्भुजस्तु कर्त्तव्यो वृत्तनेत्रमुखस्तथा ॥
भूस्थजानूर्द्धजानुश्च पक्षद्वयविभूषितः ।
प्रभासंस्था तु सौवर्णकलापेन विवर्जितः* ।
छत्रन्तु पूर्णकुम्भञ्च करयोस्तस्य कारयेत् ।
करद्वयं तु कर्त्तव्यं तथा विरचिताञ्जलिः ॥
विष्णुः पुरश्चेत् कार्य्यो सौ द्विभुजोरचिताञ्जलि रिति ।
गां वृषं महिषीं हेमसप्तधान्य मजाविकं ॥
वड़वां गुड़रसान् सर्व्वान् तथा बहुफलान्यपि ।
पुष्पाणि च पवित्राणि गन्धांश्चोच्चावचान् वनान् ॥
मेलयित्वा यथा भक्त्या वस्त्रैराछाद्य तां नवैः ।
द्वादश्यां द्वादशैतानि ब्राह्मणेभ्यो निवेदयेत् ॥
एकस्य वा महाराज यत् फलं तन्निशामय ।
एषां दानमन्त्रास्तद्दान प्रकरणेषु गवेषणीयाः ॥
इह कीर्त्तिं परां प्राप्य भुक्त्या भोगान् यथेप्सितान् ।
ततो विष्णुपुरं याति सेव्यमानोऽप्सरोगणैः ॥
कर्म्मक्षयादिहागत्य राजा भवति धार्म्मिकः ।
यज्ञयाजी दानपतिर्जीवेच्च शरदांशतं ॥

* विवर्ड्डिता क्वचित्पाठः ।

श्रावणे कार्त्तिके चैत्रे वैशाखे फाल्गुने तथा।
शुक्लपक्षे प्रदातव्यमेतच्छ्रेयो विवर्द्धनं॥

विष्णुधर्म्मोत्तरे।

द्वादश्यां चैत्रशुक्लस्य चित्रवस्त्रप्रदोनरः।
यथेष्टं फलमाप्नोति नागलोकं च गच्छति॥
वैशाखमासि द्वादश्यां रुक्मदानं तथैव च।
छत्रोपानहयोर्दानं ज्येष्ठमासि महीभुजः॥
सास्तीर्णं शयनं दत्त्वा प्रीणयेद्भोगशायिनं।
आषाढशुक्लद्वादश्यां श्वेतद्वीपे महीयते॥
श्रावणे वस्त्रदानेन विष्णुलोके महीयते।
गोदः प्रयाति गोलोकं मासि भाद्रपदे द्विजाः॥
प्रीणयेदश्वशिरसमश्वन्दत्त्वा तथाश्विने।
विष्णुलोकमवाप्नोति कुलमुद्धरते स्वकं॥
सरोमवस्त्रदानेन कार्त्तिके दिवमाप्नुयात्।
प्रदानं लवणस्यैव मार्गशीर्षे महाफलं॥
धान्यानां च तथा पौषे दारूणां च तथोत्तरे।
फाल्गुने सर्व्वगन्धानां* द्वादश्यां दानतः सुखी।
एवं यथोक्तदानेन दाता स्वर्गे महीयते।

वाराहपुराणे।

मार्गशीर्षोऽथ वैशाखो द्वौ मासौ मम वल्लभौ।
अनयोर्मासयोर्यस्तु द्वादश्यां नियतात्मवान्॥

---

* वसुगन्धानामिति क्वचित्पाठः।

द्वादशानां तु विप्राणां योददाति वसुन्धरे ।
एकैकस्य तु गां श्रेष्ठां सर्व्वोपस्करसंयुतां ॥
वस्त्रोपानद्युगे चैव कर्णालङ्कारएव च ।
आतपत्रं पादुके च अङ्गुलीयकमेव च ॥
विलिप्य चोपवीतं च मां ध्यायन् भक्तिसंयुतः ।
दद्यादशक्तौ पञ्चानां त्रयाणां च द्वयोरथ ॥
अशक्तौ त्वथ वैकस्मिन्वेदवेदाङ्गपारगे ।
अक्रोधने व्रतस्थे च आश्रितेषु विशेषतः ॥
मार्गशीर्षे थवा देवि वैशाखे मासि योनरः ।
दद्यादनेन विधिना तस्य पुण्यफलं शृणु ॥
मन्वन्तराणां कोटीस्तु दश सप्त च पञ्च च ।
मच्छरीरगतश्चास्ते सर्व्वद्वन्द्वविवर्जितः ॥
यद्यपि स्युर्ग्रहाः सर्व्वे मूर्द्ध्नि लिङ्गशनैश्चरः ।
सर्व्वे ते सौम्यतां यान्ति द्वादश्यां विधिना मुना ॥

## कूर्म्मपुराणे ।

एकादश्यां निराहारो द्वादश्यां पुरुषोत्तमं ।
अर्च्चयेद्ब्राह्मणमुखे शर्कराघृतपायसैः ॥
एषा तिथि र्वैष्णवी स्यात् द्वादशी शुक्लपक्षके ।
तस्यामाराधये द्देवं प्रयत्नेन जनार्द्दनं ॥
यत् किञ्चिद्देव मीशानमुद्दिश्य ब्राह्मणे शुचौ ।
दीयते विष्णुमेवापि तदनन्तफलप्रदं ॥
तस्मादस्यान्तिथौ देयं भृष्टमन्नं शुभार्थिभिः ।

विष्णुः।

पौष्यां च समतीतायां कृष्णपक्षद्वादश्यां सोपवासस्तिलैः स्नातस्तिलोदकं दत्त्वा तिलैर्वासुदेवमभ्यर्च्च्यतानेव हुत्वा भुक्त्वा च सर्व्वपापेभ्यः पूतो भवति माघ्यां समतीतायां कृष्णद्वादशीं सश्रवणां प्राप्य वासुदेवाग्रतो महावर्त्तिद्वयेन दीपदानं दद्यात् दक्षिणपार्श्वे महारजतरक्तेन समग्रेण वाससा तैलतुलामष्टाधिकां दत्त्वा वामपार्श्वे श्वेतेन समग्रेण वाससा घृततुलामष्टाधिकां दद्यात् एतत् कृत्वा यस्मिन्राष्ट्रेऽभिजायते यस्मिन्देशे यस्मिन् कुले तदुज्ज्वलो भवति।

दक्षिणपार्श्वे इत्यादिना महावर्त्तिद्वयमेव कथयति महारजतरक्तेन कौसुम्भरक्तेन तुलापलशतं।

यमः।

माघान्धकारद्वादश्यान्तिलैर्हुत्वा हुताशनं।
तिलान्दत्त्वा च विप्रेभ्यः सर्व्वपापैः प्रमुच्यते॥

विष्णुधर्म्मोत्तरे।

श्रावणे शुक्लपक्षे तु द्वादश्यां प्रीतये नृप।
गोप्रदानेन गोविन्दो यत्पूर्व्वं कथितं तव।
फलं तत्सर्व्वमाप्नोति नात्र कार्य्या विचारणा॥

भविष्योत्तरात्।

स्नापयेद्ब्राह्मणान् प्रातस्त्रयोदश्यान्त्रयोदश।
तानाच्छाद्यनवैर्वस्त्रै र्गन्धपुष्पैरथार्च्चयेत्॥

भोजयेदपि मृष्टान्नं दक्षिणां विनिवेदयेत्।
यथाशक्त्या हेमखण्डान् धर्म्मात्मा प्रीयतामिति॥
धर्म्मराजाय कालाय चित्रगुप्ताय मृत्यवे।
क्षयाय क्षयरूपाय अन्तकाय यमायच॥
प्रेतनाथाय रौद्राय तथा वैवस्वताय च।
महिषस्थाय चित्राय नामानीत्थं त्रयोदश।
उच्चार्य्य श्रद्धयायुक्तः प्रणिपत्य विसर्जयेत्॥
यः करोति महाराज पूजामेतां मनोरमां।
यमाय स सुखं मर्त्त्ये स्थित्वा व्याधिविवर्जितः॥
यममार्गगतं दुःखं पश्चान्नाप्नोत्यसौ पुमान्।
न पश्यति प्रेतपुरं* पितृलोकञ्च गच्छति॥
पुण्यक्षयादिहाभ्येत्य स सुखी नीरुजोभवेत्।
तथा माहेयं सशुभं कुम्भञ्चतुर्द्दश्यात् पयोभृतं॥
कर्षैकेन च संयुक्तं कुर्य्यात्सहस्तसंयुतं।
घण्टाभरणशोभाढ्यं वृषभेण समन्वितं।
योदद्याच्छिवभक्ताय ब्राह्मणाय कुटुम्बिने॥

माहेयं, मृण्मयं। पयोभृतं दुग्धपूर्णं। कर्षैकेन संयुक्तं कर्षपरिमाणेन हेम्ना संयुक्तं।

दद्यात् कुम्भं सहेमानं भूतायादुग्धसंभृतमिति—

वातुलोक्तेः।

एतद्दत्वा नरश्रेष्ठ शिवलोके महीयते।
तत्र स्थित्वा चिरं कालं क्रमादेत्य महीतलं॥

*प्रेतमुखमिति क्वचित्पाठः।

आरोग्यधनसंयुक्तः कुले महति जायते ।
सर्व्वकामसमृद्धात्मा यावज्जन्मशतत्रयं ॥

कूर्म्मपुराणे ।

यस्तु कृष्णचतुर्द्दश्यां स्नात्वा देवं पिनाकिनं ।
आराधयेद्द्विजमुखे न तस्यास्ति पुनर्भवः ॥
कृष्टम्यां विशेषेण धार्म्मिकाय द्विजातये ।
स्नात्वाभ्यर्च्च्य यथान्यायं पादप्रक्षालनादिभिः ॥
प्रीयतां मे महादेव दद्याद्द्रव्यं स्वकीयकं ।
सर्व्वपापविनिर्म्मुक्तः प्राप्नोति परमां गतिं ॥

द्विजमुखे आराधयेदिति

शिवप्रीतये द्विजांस्तद्दानेन तर्पयेदित्यर्थः ।

द्रव्यं, गो-भू-हिरण्यादि ।

अथ विष्णुधर्म्मोत्तरे ।

संप्राप्य चैत्रमासस्य शुक्लपञ्चदशीं नरः ।
चित्रं वस्त्रयुगन्दद्यात्सोपवासो जितेन्द्रियः ॥
ब्राह्मणांश्च नमस्कृत्य सौभाग्यन्तेन वाप्नुयात् ।
वैशाख्यां पौर्णमास्यान्तु ब्राह्मणान् पञ्च सप्त वा ॥
क्षौद्रयुक्तैस्तिलैः कृष्णैर्वाचयेद्यदि वेतरैः ।
प्रीयतां धर्म्मराजेति यद्वा मनसि वर्त्तते ।
यावज्जीवकृतात्पापात्तत्क्षणादेव मुच्यते ॥
ब्राह्मणान् वाचयेदिति स्वस्तिवाचनं कारयेदित्यर्थः ।

क्षौद्रयुक्तैः, मधुसहितैः कृष्णतिलैः, इतरैरिति, शुक्लतिलैः ब्राह्मणान् प्रीणयेदिति शेषः ।

तस्मिन्नेव यथा काले सखुरं कृष्णमार्गकं ।
तिलैः प्रच्छाद्य वासोभिः सर्व्वरत्नैरलंकृतं ॥
योदद्यात्तेन दत्ता स्यान्मही सवनकाञ्चना ।

एतद्विधिविस्तरस्तु कृष्णाजिनदाने द्रष्टव्यः ।

आह यमः ।

वैशाख्यामेव विधिवद्भोजयेत् ब्राह्मणान् दश ।
त्रिरात्रमुषितः स्नात्वा कृशरं प्रयतः शुचिः ॥
गौरान् वा यदि वा कृष्णांस्तिलान् क्षौद्रेण संयुतान् ।
दत्वा दशसु विप्रेषु तानेव स्वस्ति वाचयेत् ॥
प्रीयतां धर्मराजेति पितॄन् देवांश्च तर्पयेत् ।
यावज्जीवकृतं पापं तत्क्षणादेव मुञ्चति॥
अयुतायुतञ्च तिष्ठेत् स स्वर्गलोके महीयते ।
मामेव तु स पश्येत्तु न च पापेन लिप्यते ॥

जावालः ।

शृतान्नमुदकुम्भञ्च वैशाख्यां च विशेषतः ।
निर्दिश्य धर्मराजाय गोदानफलमाप्नुयात् ॥

शृतान्नं, पक्वान्नं ।

सुवर्णतिलयुक्तैस्तु ब्राह्मणान् सप्त पञ्च च ।
तर्पयेदुदपात्रैस्तु ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥

महाभारते।

वैशाख्यां पौर्णमास्यान्तु तिलान् दत्त्वा द्विजातिषु।
तिला भक्षयितव्यास्तु सदाप्यालभनञ्च तैः।
कार्य्यं सततमिच्छद्भिः श्रेयः सर्व्वात्मना गृहे॥

विष्णुधर्म्मोत्तरे।

सोपवासस्तथा ज्येष्ठे पूर्णे तुलसीलक्षणे।
उपानहौ तथा छत्रं दत्त्वात्यन्तं सुखी भवेत्॥
आषाढ्यामन्नदानेन प्राप्नोत्यन्नं तथा बहु।
जलधेनुप्रदानेन श्रावण्यां स्वर्गमाप्नुयात्॥
गोदानं प्रौष्ठपद्यां वा पौर्णमास्यां महाफलं॥
आश्वयुज्यां कांस्यपात्रं घृतपूर्णं द्विजातये।
ससुवर्णं तथा दत्त्वा दीप्तौजाश्चिह जायते॥
कार्त्तिक्यां चन्द्रवर्णाभं अन्यवर्णमथापि वा।
रत्नैर्गन्धैस्तथा धान्यैर्वीजैर्वस्त्रैस्तथैव च॥
कृत्वा चोक्तमथोक्षाणं दत्त्वा दीपं समन्ततः।
चन्द्रोदये नरोदत्त्वा सर्व्वपापैः प्रमुच्यते॥
कान्तारे यममार्गे तु तेनासौ व्रजते सुखं।
प्राप्नोति पुत्रपौत्रांश्च सूर्य्यलोकं च गच्छति॥
मार्गशीर्षे तथा मासि पूर्णे शिशिरदीधितौ।
महारजतरक्तेन वाससा तु महीपते॥
आच्छाद्य कांस्यपात्रे तु कृत्वा सोमं समाहितः।

महारजतरक्तेन, कुसुम्भरक्तेन, चन्द्रलक्षं, वारदानेषु पुरस्ताद्वक्ष्यते ।

लवणस्य तु मुख्यस्य संपूर्णं कृष्णमार्गकं ।

मुख्यस्य लवणस्येति, सैन्धवस्येत्यर्थः ।

दत्त्वा सुवर्णनाभन्तु तस्मिन्नेव द्विजातये ।
सौभाग्यरूपलावण्ययुक्तो भवति मानवः ॥

गौरसर्षपकल्केन पौषे उच्छादितो नरः ।

उच्छादित. उद्वर्त्तित इत्यर्थः ।

न चाव्रणेन कुम्भेन सोभिषिक्तश्च तत्परं ।
विरूषितस्तथा स्नातः सर्व्वबीजयुतैर्जलैः ॥

विरूषित, अपनीतस्नेहः ।

गन्ध-रत्न-फलोपेतैर्घृतेन तदनन्तरं ।
सौवर्णञ्च ततः कृत्वा तत् प्रदद्याद्विजातये ॥

सुवर्णमध्ये घृतेनाभिषिक्त इत्यन्वयः ।

तदिति, कुम्भादिकं प्रकृतद्रव्यं परामृश्यते ।

घृतेन स्नापितं विष्णुं भक्त्या संपूजयेत्ततः ।
घृतं च जुहुयाद्वह्नौ घृतं दद्याद्विजातये ॥
कर्त्ते वस्त्रयुगन्दद्यात्सोपवासः समाहितः ।
कर्म्मणानेन धर्म्मज्ञः सर्व्वपापैः प्रमुच्यते ॥
माघ्यां कृत्वा तिलैः श्राद्धं सर्व्वपापैः प्रमुच्यते ।
स्वास्तीर्णं शयनं दत्त्वा फाल्गुन्यां ब्राह्मणाय च ।
रूपद्रविणसंयुक्तां भार्य्यां पद्मवतीं तथा ॥

पद्मवतीं, बहुतरज्ञातियुक्तां ।

नरः प्राप्नोति धर्म्मज्ञः श्रियश्चैव यथोत्तमां।
तथा। नार्य्यपि भर्त्तारं नात्र कार्य्या विचारणा॥
पौर्णमासीषु चैत्रीषु मासर्क्षसहितासु च।
एतेषामेव दानानां फलं दशगुणं भवेत्।
महत्पूर्व्वासु तास्वेव फलमक्षय मश्नुते॥

मासनक्षत्रसहितायां पौर्णमास्यां यदा गुरुवारस्तदा तस्या महत्पूर्व्वेति।

मासर्क्षसहिता जीवे महापूर्व्वा तु पूर्णिमेति विष्णुधर्म्मोत्तरोक्तेः।

आह विष्णुः।

मार्गशीर्षे पञ्चदश्यां शुक्ले मृगशिरोयुक्तायां च चूर्णितलवणस्य सुवर्णनाभप्रस्थमेकं चन्द्रोदये ब्राह्मणाय प्रतिपादयेत् अनेन कर्म्मणा रूपसौभाग्यवानभिजायते, पौषी चेत् पुष्ययुक्ता स्यात्तस्यां गौरसर्षपकल्केनोत्सादितशरीरो गव्यघृतपूर्णकुम्भेनाभिषिक्तः सर्व्वौषधिभिः सर्व्वगन्धैः सर्व्वबीजैश्च स्नातः घृतेन च भगवन्तं वासुदेवं स्नापयित्वा पुष्प-गन्ध-धूप-दीप-नैवेद्यादिभिश्चाभ्यर्च्य वैष्णवैः शाक्रैर्बार्हस्पत्यैश्च मन्त्रैः पावकं हुत्वा सुवर्णेन घृतेन ब्राह्मणं स्वस्तिवाचयेद्वासोयुगं कर्त्रे दद्यादनेन कर्म्मणा पुष्यति, माघी मघायुक्ताचेत्स्यात्तस्यान्तिलैः श्राद्धं कृत्वा पूतो भवेत् भोजनार्थं श्राद्धे तिलान् दत्त्वा सर्व्वजनप्रियोभवति, फाल्गुनी फाल्गुनीभिर्युताचेत्तस्यां ब्राह्मणाय सुसंस्कृतं स्वास्तीर्णशयनं निवेद्य भार्य्यां मनोज्ञां पत्नवतीं द्रविणवतीं चाप्नोति, नार्य्यपि भर्त्तारं,

चैत्री चित्रायुता चेत्तस्यां चित्रवस्त्रदानेन सौभाग्यमाप्नोति, वैशाख्यां पौर्णमास्यां ब्राह्मणसप्तकं क्षौद्रयुक्तैस्तिलैः सन्तर्प्य धर्म्मराजानं, प्रीणयित्वा पापेभ्यः पूतोभवति, ज्यैष्ठी ज्येष्ठायुता चेत्तस्यां छत्रोपानत्प्रदानेन नगराधिपत्यमाप्नोति, आषाढ्यामाषाढायुतायामन्नपानदानेन तदेवाक्षय माप्नोति, श्रावण्यां श्रवणयुतायां जलधेनुमन्नवासोयुगान्वितां दत्त्वा स्वर्गलोकमवाप्नोति, प्रौष्ठपद्यान्त्युक्तायां गोदानेन सर्व्वपापविनिर्मुक्तो भवति, आश्वयुज्यामश्विनीगते चन्द्रमसि घृतपूर्णभाजनं सुवर्णयुतं विप्राय दत्त्वा दीप्ताग्निर्भवति, कार्त्तिकीचेत् कृत्तिकायुक्ता स्यात्तस्यां सितमुक्तमाणमन्यवर्णं वा शशाङ्कोदये सर्व्वसस्य, रत्न-गन्धोपेतं द्वीपमध्ये ब्राह्मणाय दद्यात् कान्तारभयं न पश्यति।

भविष्योत्तरे।

पौर्णमास्यां वृषोत्सर्गं कारयित्वा विधानतः।
चन्द्रं रजतनिष्पन्नं पलेनैकेन शोभनं।
पूजयेद्गन्ध कुसुमैर्नैवेद्यं विनिवेद्य च॥

चन्द्ररूप लक्षणन्तु, पुरस्ताद्दारदानप्रकरणे विलोकनीयं।

दद्याद्विप्राय सत्कृत्य वासोलङ्कारभूषणैः।
मन्त्रेणानेन राजेन्द्र तं निबोध मयोदितं॥
क्षीरोदार्णवसम्भूत त्रैलोक्याङ्गणदीपक।
उमापतिशिरोरत्न शिवायास्त्र नमोनमः॥
दानेनानेन नृपतिर्भ्राजते चन्द्रवद्दिवि।
अप्सरोभिः परिवृतोयावदाहृतसंप्लवं॥

स्कान्दपुराणे।

तिलपात्राणि योदद्याद्दिजेभ्यः शुद्धमानसः।
अमावास्यां समासाद्य कृष्णानां सुसमाहितः॥
स पितॄंस्तर्पयित्वा तु अक्षयं नरपुङ्गवः।
पितृलोकं समाप्नोति चिरं च सुखमेधते॥

कृष्णानां, तिलानामितिशेषः।

कूर्म्मपुराणे

अमावास्यामनुप्राप्य ब्राह्मणाय तपस्विने।
यत् किञ्चिद्देवदेवेशं दद्यादुद्दिश्य शङ्करं॥
प्रीयतामीश्वरः सोमो महादेवः सनातनः।
सप्तजन्मकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति॥

सोम, उमासहितः।

भविष्योत्तरे।

दानान्यमूनि विधिवत् प्रतिपत्क्रमेण
यच्छन्ति ये द्विजवराय विशुद्धसत्वाः।
ते ब्रह्म-विष्णु भुवनेषु सुखं विहृत्य
पश्चाद्भवन्ति भुवि भूपवराः सुरूपाः॥

इति तिथिदानानि।

अथ युगादितिथिदानं।

भविष्योत्तरात् युधिष्ठिर उवाच ।

पुनर्मे ब्रूहि देवेश त्वद्भक्त्या भावितात्मनः ।
कथ्यमानमिहेच्छामि शुभं धर्म्ममिदं महत् ।
यथाणुरपि दत्तोऽहि जप्तं वा सुमहद्भवेत् ॥

श्रीभगवानुवाच ।

शृणु पाण्डव ते वच्मि रहस्यं देव निर्मितं ।
यन्मया कस्यचिन्नोक्तं सुप्रियस्यापि भारत ॥
वैशाखमासस्य तु या तृतीया
नवम्यसौ कार्त्तिकशुक्लपक्षे ।
नभस्य मासस्य च कृष्णपक्षे
त्रयोदशी पञ्चदशी च माघे ॥
वैशाखतृतीया, या शुक्लपक्षजा
माघपञ्चदशी, कृष्णपक्षजेत्यवधेयं ।
वैशाखस्य तृतीया या समा कृतयुगेन तु ।
त्रेतायुगेन च समा नवमी कार्त्तिके तु या ॥
त्रयोदशी नभस्ये तु द्वापरेण समा मता ।
माघे पञ्चदशी राजन् कलिकालादिरुच्यते ॥
एतावतस्रो राजेन्द्र युगानां प्रभवाः स्मृताः ।
युगादयस्तु कथ्यन्ते तेनैताः सर्व्वसूरिभिः ॥
उपवासस्तपोदानं जपहोमक्रियादिषु ।
यदासु क्रियते किञ्चित्सर्व्वं कोटिगुणं भवेत् ॥
वैशाखस्य तृतीयायां श्रीसमेतं जगद्गुरुं ।

नारायणं पूजयेथाः पुष्प-गन्धादिलेपनैः।
वस्त्रा-लङ्कारसम्भारैर्नैवेद्यैर्विविधैस्तथा॥

श्रीसमेतं नारायणं, लक्ष्मीनारायणं,

तद्रूपं तु देवतादानप्रकरणस्थित लक्ष्मीनारायणदाने द्रष्टव्यं।

ततस्तस्याग्रतो धेनुर्लवणस्याढकेन तु।
कार्य्या कुरुकुलश्रेष्ठ चतुर्भागेन वत्सकः॥
अविचर्म्मोपरि स्थाप्य कल्पयित्वा विधानतः।
शास्त्रोक्तक्रमयोगेन ब्राह्मणाय प्रदापयेत्॥
श्रीधरः श्रीपतिः श्रीमान् श्रीशः सम्प्रीयतामिति।
अनेन विधिना दत्त्वा धेनुं, विप्राय भारत।
गोसहस्रदशगुणं प्राप्नोतीह न संशयः॥
तथैव कार्त्तिके मासि नवम्यां नक्तभुक् नरः।
स्नात्वा नदीतडागेषु देवखातेषु वा पुनः॥
उमासहायं वरदन्नीलकण्ठमथार्च्चयेत्।
पुष्पधूपादिनैवेद्यैरनिन्द्यं शङ्करं शिवं॥

उमामहेश्वरलक्षणमुक्तं, देवतादानप्रकरणस्थितउमामहेश्वरदाने।

धेनुं तिलमयीं दद्यात् पुराणोक्तविधानतः।
अष्टमूर्त्तिर्नीलकण्ठः प्रीयतामिति कीर्त्तयेत्॥
यदत्र प्राप्यते पुण्यं पार्थ तत् केन वर्ण्यते।
दत्त्वा तिलमयीं धेनुं शिवालोकमवाप्नुयात्॥
त्रयोदशी नभस्ये या कृष्णां तस्यां-समर्च्चयेत्॥

कृष्णारूपमुक्तं, विष्णुधर्म्मोत्तरे।

कृष्णाश्चक्रभरः कार्य्या नीलोत्पलदलद्युतिः।

द्विबाहुः सौम्यवदनः-कुण्डलाभ्यामलङ्कृतइति ॥
पितृभ्योऽन्नप्रदानेन मधुना च तथैव च।
भोजयेद्ब्राह्मणान् भक्त्या वेदवेदाङ्गपारगान ॥
पितृनुद्दिश्य दातव्या सवत्सा कांस्यदोहना।
प्रत्यक्षा गौर्महाराज तरुणी सुपयस्विनी ॥
पितापितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः।
प्रीयताङ्गोप्रदानेन इति दत्त्वा विसर्जयेत् ॥
कृतेनानेन राजेन्द्र यत् पुण्यं प्राप्यते नृभिः।
तत् केन गणितुं याति वर्षकोटिशतैरपि ॥
पुत्रान् पौत्रान् प्रपौत्रांश्च धनं सुमहदीप्सितं।
इह प्राप्नोति पुरुषः परत्र च शुभां गतिं ॥
पञ्चदश्यान्तु माघस्य पूजयित्वा पितामहं।
गायत्र्या सहितं देवं वेदवेदाङ्गभूषितं ॥

ब्रह्मणो वेदाङ्गानां च, लक्षणमुक्तं ब्रह्माण्डदाने।
गायत्रीलक्षणन्तु पद्मपुराणोक्तं ब्रह्माण्डदाने।
गायत्री वेदमूर्त्तिस्तु, महाभूत घटदाने।

नवनीतमयीं धेनुं फलैर्नानाविधैर्युतां।
सहिरण्यां सवत्साञ्च ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥
कीर्त्तयेत् प्रीयतामत्र पद्मयोनिः पितामहः।
यत् स्वर्गे यच्च पाताले यन्मर्त्त्ये किञ्च दुर्लभं ॥
तदवाप्नोत्यसन्दिग्धं पद्मयोनेः प्रसादतः।
यानि चान्यानि दानानि दत्तानि सुबहून्यपि ॥
युगादिषु महाराज अक्षयानि भवन्ति हि।

अल्पमल्पं हि यत् किञ्चित् प्रदद्यान्निर्द्धनोऽपि सन् ॥
अक्षयञ्च भवेत् सर्व्वं युगादिषु न संशयः।
वित्तानुसारे स्वं ज्ञात्वा विभवं पार्थिवोपि सन्
अनुसारेण वित्तस्य प्रसाध्येन समाधिना।
भूहिरण्यं गृहं वासः शयनान्यासनानि च।
छत्रोपानद्युगानि स्युः प्रदेयानि द्विजातिषु॥
एवं दत्त्वा यथा शक्त्या भोजयित्वा द्विजानपि।
पश्चाद्भुञ्जीत सुमहत् वाग्यतः स्वजनैः समं॥
यत् किञ्चिन्मानसम्पापं वाचिकं कायिकन्तथा।
तत्सर्व्वं नाशमायाति युगादितिथिपूजनात्॥
प्रगीयमानो गन्धर्वैः स्तूयमानः सुरासुरैः।
रमते वाक्षयं कालं स्वर्गलोके न संशयः॥
यद्दीयते किमपि कोटिगुणं तदाहुः
स्नानं जपोहवनमक्षयमेव सर्व्वं।
स्यादक्षयासु युगपूर्वतिथीषु राजन्
व्यासादयोमुनिवराः समुदाहरन्ति॥

इति युगादिदानविधिः।

अथ वारदानानि।

तत्र स्कन्दपुराणे।

आदित्यादिषु वारेषु सहिरण्याः सदैव तु।
यः प्रयच्छति तन्मूर्त्तीस्तस्य तुष्यन्ति वै ग्रहाः

दद्यादादित्यमादित्ये सोमं सोमे कुजं कुजे।
एवं बुधादीनन्दे तु राहु-केतु-शनैश्चरान्॥

ब्रह्मपुराणे।

ग्रहान् स्वर्णमयान् कृत्वा यो विप्रेभ्यः प्रयच्छति।
तद्दिनेषु यथा शक्त्या सर्व्वान् कामान् स विन्दति॥

तेषां लक्षणमुक्तं ब्रह्माण्डदाने*।

पद्मासनः पद्मकरः पद्मगर्भसमद्युतिः।
सप्ताश्वः सप्तरज्जुश्च द्विभुजः स्यात्सदा रविः॥
श्वेतः श्वेताम्बरधरो दशाश्वः श्वेतभूषणः।
गदापाणिर्द्विबाहुश्च कर्त्तव्यो वरदः शशी॥
रक्तमाल्याम्बरधरः शक्ति-शूल-गदा-धरः।
चतुर्भुजो मेषगमो वरदः स्याद्धरासुतः॥
पीतमाल्याम्बरधरः कर्णिकारदलद्युतिः।
खड्ग-चर्म्म-गदा-पाणिः सिंहस्थो वरदो बुधः॥
देवदैत्यगुरुस्तद्वत्पीतश्वेतौ चतुर्भुजौ।
दण्डिनौ वरदौ कार्य्यौ साक्षसूत्र-कमण्डलू॥
इन्द्रनीलद्युतिः शूली वरदो गृध्रवाहनः।
बाणबाणासनधरः कर्त्तव्योऽर्कसुतः सदा॥
करालवदनः खड्ग-चर्म्म-शूली वरप्रदः।

* मत्स्यपुराणे इमे श्लोकाः इति पाठः।

नीलः सिंहासनस्थश्च राहुरत्र प्रशस्यते ॥
धूम्रा द्विबाहवः सर्व्वे गदिनो विकृताननाः ।
गृध्रासनगता नित्यं केतवः स्युर्वरप्रदाः ॥
सर्व्वे किरीटिनः कार्य्या ग्रहा लोकहितावहाः ।
स्वाङ्गुलेनोच्छ्रिताः सर्व्वे शतमष्टोत्तरं सदा ॥

अष्टावादित्यादयः शतं केतव इत्युभयेप्यष्टोत्तरशतं, एकोत्तरशतं केतव, एको वा केतु रिति केचित्, तत्र पक्षद्वये नवोत्तरशतेन देवताप्रतिमा विधेयाः, स्वांगुलेन, यजमानांगुलेन, एतेषां दानमन्त्रा ग्रहदाने द्रष्टव्याः पद्मप्रोक्ताः, आदित्यवारे सुवर्णमयमादित्यं कृत्वा रक्तवस्त्रं पद्मरागं च ब्राह्मणाय प्रतिपादयेत्, कपिलां वा सूर्य्यलोके सर्व्वान् कामानवाप्नोति, निष्कामो मोक्षं सोमदिने राजतं सोमं शङ्खं वा, मङ्गलदिने सौवर्णं मङ्गलं रक्तं धुरन्धरं वा, बुधे सौवर्णं बुधं ज्ञानप्राप्तयेद्द्यात्, गुरुदिने सौवर्णं बृहस्पतिं पीतं वा वस्त्रं प्रदद्यात्, शुक्रदिने राजतं शुक्रं श्वेतं हयं वा तत्प्रीतये दद्यात्, शनैश्वरे सौवर्णं शनैश्वरमिन्द्रनीलयुतं कृष्णाङ्गाश्वा तत्प्रीतये दद्यात्, तस्मिन्नेव दिने राहुमायसेन समन्वितं दद्यात्, केतून् छागसमन्वितान् तत्प्रीतये दद्यात्, अत्र राहुकेतवोऽपि सौवर्णा एव, एवं विशेष दानेन सर्व्वान् कामानवाप्नुयात् ।

अथाह यमः ।

आदित्यवारे विप्राय हिरण्यञ्च सदैव तु ।
यः प्रयच्छति पूर्व्वं हि तस्य तुष्यति वै यमः ॥

विष्णुधर्मोत्तरे ।

लवणाज्यगुडोपेतमपूपं सूर्य्यवासरे ।
स हिरण्यं नरो दत्त्वा न रोगैरभिभूयते ॥
एवं विधश्चेन्दुदिने दत्त्वा सौभाग्यमाप्नुयात् ।
काष्ठदानं भौमदिने शत्रुनाशमवाप्नुयात् ॥
बुधैः क्रीडनकानाञ्च दानं बालेषु शस्यते ।
जीवाह्नि वस्त्रदानेन परान्तुष्टिं* समश्नुते ॥
सर्व्वं वरं तत्-प्राप्नोति शुक्रे दत्त्वा रतिस्त्रियः ।
अभ्यङ्गं सौरदिवसे दत्त्वा जीवितमाप्नुयात् ॥

इति वारदानानि ।

अथ नक्षत्रदानानि ।

तत्र महाभारते ।

युधिष्ठिर उवाच ।

श्रुतो मे भवतो वाक्यादन्नदानस्य यो विधिः ।
नक्षत्रयोगस्येदानीं दानकल्पं ब्रवीहि मे ॥

भीष्म उवाच ।

अत्राप्युदाहरन्तीम मितिहासं पुरातनं ।
देवक्याश्चैव सम्वादं देवर्षेर्नारदस्य च ॥

* परां पुष्टिमिति क्वचित्पाठः ।

द्वारकायामनुप्राप्तं नारदं देवदर्शनं।
पप्रच्छेमं वद प्रश्नं देवकी धर्म्मदर्शिनी॥
तस्याः सम्पृच्छमानाया देवर्षिर्नारदस्तथा।
आचष्ट विधिवत्सर्व्वं यत्तच्छृणु विशांपते॥

नारद उवाच।

कृत्तिकासु महाभागे पायसेन ससर्पिषा।
सन्तर्प्य ब्राह्मणान् साधून् लोकान् प्राप्नोत्यनुत्तमान्॥
रोहिण्यां पाण्डवश्रेष्ठ मांसैरन्नेन* सर्पिषा।
पयोनुपानद्यातव्यमानृण्यार्थं द्विजातये॥
दोग्ध्रीं सवत्सान्तु नरो नक्षत्रे सोमदैवते।
दत्त्वा दिव्यविमानस्थः स्वर्गं प्राप्नोत्यनुत्तमं॥

सोमदैवतनक्षत्रं, मृगशीर्षं।

आर्द्रायां कृशरन्दत्त्वा तिलमिश्रं समाहितः।
नरस्तरति दुर्गाणि क्षुरधारांश्च पर्व्वतान्॥
पूपं पुनर्वसौ दत्त्वा घृतपूर्णं सुपाचितं।
यशस्वी रूपसम्पन्नो बह्वन्ने जायते कुले॥
पुष्ये तु काञ्चनन्दत्वा कृतं चाकृतमेव च।
अनालोकेषु लोकेषु सोमवत्स विराजते॥

* चान्नेनेति क्वचित् पुस्तके पाठः।

कृतं, घटितं ।

अकृत, मघटितं ।

अश्लेषासु तथा रूप्यं वृषभं वा प्रयच्छति ।
स सर्व्वभयनिर्म्मुक्तः शास्त्रवानभिजायते ॥
मघासु तिलपूर्णानि वर्द्धमानानि मानवः ।
प्रदाय पशुमांश्चैव पुत्रवांश्च प्रजायते ॥
फाल्गुनीपूर्वसमये ब्राह्मणानामुपोषितः ।
भक्ष्यान् फाणितसंयुक्तान् दत्त्वा सौभाग्यमृच्छति ॥
घृत-क्षीरसमायुक्तं विधिवत् षष्टिकौदनं ।
उत्तराविषये दत्त्वा स्वर्गलोके महीयते ।
यद्या प्रदीयते दानमुत्तराविषये नरैः ॥
सदा फलमनन्तञ्च भवतीह विनिश्चयः ।

फाल्गुनीपूर्वसमये, पूर्व्वाफल्गुनीसमय इत्यर्थः ।

फाणितं, गुडविकारः, उत्तराविषये, उत्तराफाल्गुनीसमय इत्यर्थः ।

हस्ते हस्तिरथं दत्त्वा चतुर्युक्तमुपोषितः ।
नरस्तरति दुर्गाणि क्षुरधारांश्च पर्व्वतान् ॥

चतुर्युक्तं, चतुर्भिर्हस्तिभिर्युक्तं ।

चित्रायां वृषभं दत्त्वा पुण्याङ्गां च भारत ।
चरत्यप्सरसां लोके रमते नन्दने वने ॥

पुण्याङ्गं गामिति शुभलक्षणलक्षितशरीरं धेनुमित्यर्थः ।

स्वातीष्वथ धनं दत्त्वा यदिष्टतममात्मनः ।
प्राप्नोति लोकान् सुशुभानिह चैव महद्यशः ॥
विशाखायामनड्वाहं धेनुं दत्त्वाथ दुग्धदां ।
सप्रासङ्गञ्च शकटं सधान्यं वस्त्रसंयुतं ॥

प्रासंगो युगान्तरकाष्ठम् ।

पितॄन् देवांश्च प्रीणाति प्रेत्य चानन्त्यमश्नुते ।
न च दुर्गाण्यवाप्नोति स्वर्गलोकं च गच्छति ॥
दत्त्वा यथोक्तं विप्रेभ्यो वृत्तिमिष्टां स विन्दति ।
नारकीयांश्च स क्लेशान्नाप्नोतीति विनिश्चयः ॥
अनुराधासु प्रावारवस्त्रोत्तरमुपोषितः ।
दत्त्वा युगशतं वापि नरः स्वर्गे महीयते ॥
प्रावारः, प्रवारपटः, वस्त्रोत्तरं, परिधानवस्त्रादिकं ।
कालशाकन्तु विप्रेभ्यो दत्त्वा मर्त्त्यः समूलकं ।
ज्येष्ठायां मृत्युमुत्साद्य गतिमिष्टाञ्च गच्छति ॥
मूले मूलफलं दत्त्वा ब्राह्मणेभ्यः समाहितः ।
स्वपितॄन् प्रीणयेद्देव गतिमिष्टाञ्च गच्छति ॥
अथ पूर्वासु षाढासु दधिपात्राण्युपोषितः ।
कुलवृत्तोपसम्पन्ने ब्राह्मणे वेदपारगे ॥
प्रदाय जायते श्रेष्ठकुले बहुगुणाकुले ।
पुत्रपौत्रैः परिवृतः पशुमान् धनवांस्तथा ॥
उदमन्थं स सर्पिष्कं प्रभूतमधुफाणितं ।
दत्त्वोत्तरास्वाषाढासु सर्व्वलोकानवाप्नुयात् ॥

उदमन्थः, उदकमिश्राः सक्तवः, फाणितं, दुग्धखण्डविकारः।

दुग्धन्त्वभिजितो योगे दत्त्वा मधुघृतप्लुतं।
धर्म्मनिष्ठो मनीषिभ्यः स्वर्गलोके महीयते॥

अयमर्थः।

उत्तराषाढानक्षत्रचतुर्थपादः, श्रवणस्याद्यघटिकाचतुष्टयमभिजिद्योगः।

श्रवणे कम्बलं दत्त्वा वस्त्रान्तरितमेवच।
श्वेतेन याति यानेन स्वर्गलोकानसंवृतान्॥
गोप्रयुक्तं धनिष्ठासु यानं दत्त्वा समाहितः।
वस्त्रमश्मिनवं दत्त्वा प्रेत्य राज्यं प्रपद्यते॥
गन्धं शतभिषायोगे दत्त्वा सागुरुचन्दनं।
प्राप्नोत्यप्सरसां लोकं प्रेत्य गन्धांश्च शाश्वतान्॥
पूर्वभाद्रपदायोगे राजमाषान् प्रदाय वै।
सर्वभक्ष्यफलोपेतः स वै प्रेत्य सुखी भवेत्॥
औरभ्रमुत्तरायोगे यस्तु मांसं प्रयच्छति।
पितॄन् प्रीणाति सकलान् प्रेत्यानन्त्यं समश्नुते॥

उरभ्रो, मेषस्तस्य मांसमौरभ्रं।

कांस्योपदोहनीं धेनुं रेवत्यां यः प्रयच्छति।
स प्रेत्य कामानादाय दातारमुपतिष्ठति॥
रथमश्वसमायुक्तं दत्त्वाश्विन्यां नरोत्तमः।
हस्त्य-श्व-रथसम्पन्ने वर्चस्वान् जायते कुले॥

भरणीषु द्विजातिभ्यस्तिलधेनुं प्रदाय वै।
गाः प्रसूताश्च प्राप्नोति नरः प्रेत्य यशस्तथा॥

भीष्म उवाच।

इत्येष लक्षणोद्देशः प्रोक्तो नक्षत्रयोगतः।
देवक्या नारदेनेह स्नुषाभ्यः सा ब्रवीदिदं॥

विष्णुधर्मोत्तरे।

कृत्तिकासु सुवर्णस्य दानं बहुफलं स्मृतं।
रत्नवस्त्रस्य रोहिण्यां सौम्येभे लवणस्य च॥
कम्बरस्य तथार्द्रायामादित्ये रजतस्य च।
घृतस्य तु तथा पुष्ये गन्धानामथ सर्पभे॥
तिलानाञ्च तथा पैत्रे प्रियगोर्भगदैवते।
आर्यम्णे चाज्य पूपानां सावित्रे पायसस्य तु॥
चित्रायां चित्रवस्त्राणां सक्तूनां वायुदैवते।
ऐन्द्राग्ने चैव लोहानां मैत्रे माल्यफलस्य च॥
छत्रस्य च तथा शाक्रे मूले मूलफलस्य च।
इक्षवश्च मधुयुक्तस्य दानमाप्ये महाफलं॥
विश्वेश्वरेऽन्नपानस्य श्रवणे वसनस्य च।
धान्यस्य वासवे विप्रा वारुणे चौषधस्य च।
आजे पुराणबीजानां सस्यानां तदनंतरे।
गोरसानां तथा पौष्णे स्नानानामथ काश्विने॥
तिलानाञ्च सदा दानं भरणीषु महाफलं।

आह विष्णुः।

प्रतिमासं रेवतीयुते चन्द्रमसि मधुघृतयुतं परमान्नं ब्राह्मणान् भोजयित्वा रेवतीं प्रीणयित्वा रूपभाग्भवेत्।

यमः।

मासि मासि च रेवत्यां ब्राह्मणान् घृतपायसं।
सदक्षिणं भोजयित्वा रूपभागभिजायते॥

इति नक्षत्रदानानि।

अथ योगदानानि।

विष्णुधर्म्मोत्तरे।

विष्कुम्भादिषु योगेषु दानधर्म्मं महाफलं।
तमहं संप्रवक्ष्यामि शृणुध्व मृषिसत्तमाः॥
विष्कुम्भे सर्व्वधान्यानान्दानं सर्व्वाघनाशनं।
प्रीतौ तथान्नपानानामायुष्मति घृतस्य च॥
कुङ्कुमस्य च सौभाग्ये यवदानस्य शोभने।
अतिगण्डे च वस्त्राणां पायसस्य सुकर्म्मणि॥
धृतौ रजतदानस्य शूले मूलादिदानकं।
गण्डे मण्डनदानस्य वृद्धौ गोदानमिष्यते॥
ध्रुवे च पञ्चरत्नानां व्याघाते फाणितस्य च।

हर्षणे गन्धदानं स्यात् वज्रे दद्यान्मणीमपि ॥
सिद्धौ सिद्धार्थका देया व्यतीपाते तु काञ्चनं।
वरीयसि तिलान् दद्याद्वस्त्राणि परिघे तथा ॥
जलकुम्भाः शिवे देयाः सिद्धे सिद्धान्नमिष्यते।
साध्ये ऽलङ्करणांच छत्रदानं शुभे शुभं ॥
शुक्ले चोपानहोर्दानं शस्त्रं ब्रह्मणि सर्पिषः।
ऐन्द्रे च दीपकान् दद्याद्वैधृतौ कनकं हितं ॥
दानान्येतेषु योगेषु यथा शक्त्या द्विजोत्तमाः।
भक्तियुक्तो द्विजे दत्त्वा लोके वसति चक्रिणः ॥

इति योगदानानि।

अथ करणदानानि।

विष्णुधर्म्मोत्तरे।

करणेषु प्रवक्ष्यामि दानानि द्विजपुङ्गवाः।
बवे पायसदानं स्यात् शक्तदानं च बालवे ॥
कौलवे गोरसान्दद्यात्तिलांस्तैतिलनामनि।
गराभिधाने लवणं वणिजे देयमम्बरं ॥
विष्टौ च षष्टिकान्नानि शकुनौ सर्पिरेव च।
मधुदानं चतुष्पादे शस्त्रनागे च वाससां ॥
दानं प्रियङ्गोः किन्तुघ्ने श्रेष्ठमुक्तं द्विजोत्तमाः।

इति करणदानानि।

अथ संक्रान्तिदानानि।

तत्र विश्वामित्रः।

मेषसंक्रमणे भानोर्मेषदानं महाफलं।
वृष संक्रमणे दानं गवां प्रोक्तं तथैव च॥
वस्त्रा-न्न-पान दानानि मिथुने विहितानि च।
घृतधेनुप्रदानञ्च कर्कटे परिशस्यते॥
ससुवर्णं छत्रदानं सिंहे पि विहितं सदा।
कन्याप्रवेशे वस्त्राणां सुरभीणां तथैव च॥
तुलाप्रवेशे धान्यानां वीजानामेव चोत्तमं।
कीटप्रवेशे वस्त्राणां वेश्मनान्दानमेव च॥

अत्र कीटो, वृश्चिकः।

धनुःप्रवेशे वस्त्राणां यानानाञ्च महाफलं।
झषप्रवेशे दारूणां दानमग्नेस्तथैव च॥

झषो, मकरः।

कुम्भप्रवेशे दानं तु गवामम्बुतृणस्य तु।
मीनप्रवेशे स्नानानां माल्यानामपि चोत्तमं॥
दानान्यथैतानि मया द्विजेन्द्राः
प्रोक्तानि काले तु नरः प्रदत्त्वा।

प्राप्नोति कामान्मनसस्त्वभीष्टां-
स्तस्मात् प्रशंसन्ति हि कालदानं॥

स्कन्दपुराणे।

धेनुं तिलमयीं राजन् दद्याद्यश्चोत्तरायणे।
सर्व्वकामानवाप्नोति विन्दते परमं सुखं॥

विष्णुधर्म्मोत्तरे।

उत्तरे त्वयने विप्रा वस्त्रदानं महाफलं।
तिलपूर्णमनड्वाहं दत्त्वा रोगैः प्रमुच्यते॥

इति संक्रान्तिदानानि।

अथ मासदानानि।

विष्णुधर्म्मोत्तरे।

तिलप्रदानं माघे तु याम्यं लोकं न गच्छति।
प्रियङ्गुं फाल्गुने दत्त्वा प्रियो भवति भूतले॥
चैत्रे चित्राणि वस्त्राणि दत्त्वा सौभाग्यमश्नुते।
अपूपानां प्रदानेन वैशाखे स्वर्गमश्नुते॥
छत्रदानात्तथा ज्यैष्ठे सर्व्वान् कामान् समश्नुते।
श्रावणे वस्त्रदानस्य कीर्त्तितं सुमहत् फलं॥
प्रौष्ठपदे तथा मासि प्रदानात् फाणितस्य च।

आश्विने घृतदानेन रूपवानभिजायते ॥
कार्त्तिके दीपदानेन सर्व्वमौज्ज्वल्यमाप्नुयात् ।
लवणं मार्गशीर्षे तु दत्त्वा सौभाग्य मश्नुते ॥
पौषे कनकदानेन परां पुष्टिं तथैव च ।
पुष्पाणाञ्च सिते पक्षे दानं लक्ष्मीकरं स्मृतं ।
फलानाञ्च तथा दानं कृष्णपक्षे महाफलं ।

वामनपुराणे ।

माघे मासि तिलाः शस्तास्तिलधेनोश्च दानव ।
इन्धनेन्धनादयश्चान्ये माधवप्रीणनाय तु ॥
फाल्गुने व्रीहयो गावो वस्त्रं कृष्णाजिनान्वितं ।
गोविन्दप्रीणनार्थाय दातव्यं भरतर्षभ ॥
चैत्रे चित्राणि वस्त्राणि शयनान्यासनानिच ।
विष्णोः प्रीत्यर्थमेतानि देयानि ब्राह्मणेष्वथ ॥
गन्धाश्च माल्यानि तथा वैशाखे सुरभीणिच ।
देयानि द्विजमुख्येभ्यो मधुसूदनतुष्टये ॥
उदकुम्भस्तु* धेनुश्च तालवृन्तं सचन्दनं ।
त्रिविक्रमस्य प्रीत्यर्थं दातव्यं साधुभिः सदा ॥

तालवृन्तं, व्यजनं ।

उपानद्युगलं छत्रं लवणामलकानिच ।
आषाढ़े वामनप्रीत्यै दातव्यानि तु भक्तितः ॥

---

* उदकुम्भाम्बुधेनुश्चेति क्वचित्पाठः ।

घृतञ्च क्षीरकुम्भाश्च घृतधेनुः-फलानि च।
श्रावणे श्रीधरप्रीत्यै दातव्यानि विपश्चिते॥
मासि भाद्रपदे दद्यात्पायसं मधुसर्पिषी।
हृषीकेशप्रीणनार्थं लवणं सगुडौदनं॥
तिलास्तुरङ्गवृषभं दधि-ताम्रा-यसादिकं।
प्रीत्यर्थं पद्मनाभस्य देयमाश्वयुजे नरैः॥
रजतं कनकं दीपान् मणि-मुक्ता-फलादिकं।
दामोदरस्य प्रीत्यर्थं प्रदद्यात् कार्त्तिके नरः॥
खरोष्ट्राश्वतरान् नागान् शूकरा-श्व-मजाविकं।
दातव्यं केशवप्रीत्यै मासि मार्गशिरे नरैः॥
प्रासाद-नगरादीनि गृह-प्रावरणानि च।
नारायणस्य तुष्ट्यर्थं पौषे देयानि यत्नतः॥
दासी-दास-मलंकारमान्नं षड्रससंयुतं।
पुरुषोत्तमस्य तुष्ट्यर्थं प्रदेयं सार्व्वकालिकम्॥
यद्यदिष्टतमं किञ्चिद्यच्चाप्यस्ति शुभं गृहे।
तत्तद्धि देयं प्रीत्यर्थं देवदेवस्य चक्रिणः॥

देवीपुराणे।

मार्गे रसोत्तमं दद्याद्घृतं पौषे महाफलं।

रसोत्तमं, लवणं।

तिलान् माघे मुनिश्रेष्ठ सप्तधान्यानि फाल्गुने।
विचित्राणि च वस्त्राणि चैत्रे दद्याद्द्विजोत्तमे॥

वैशाखे द्विज गोधूमा ज्यैष्ठे तोयभृतं घटं।
आषाढ़े चन्दनं देयं सकर्पूरं महाफलं॥
नवनीतं नभोमासि छत्रं प्रौष्ठपदे मतं।
गुड़शर्करवर्त्ताव्यान् लड्डुकानाश्विने मुने॥
दीपदानं महापुण्यं कार्त्तिके यः प्रयच्छति।
सर्व्वकामानवाप्नोति क्रमेणेदमुदाहृतं॥
व्रतान्ते गां शुभां दद्यात्सवत्सां कांस्यदोहनीं।
सयुगां सस्रजं वत्स दापयेद्विधिनामुना॥
देवीं विरिञ्चिं तं सूर्य्यं विष्णुं वाथ यथाविधि।
स्वभावशुद्धो विधिवत्पूजयित्वा द्विजोत्तमं॥
दातव्या वीतरागे तु काम-क्रोधविवर्जिते।
अयाचके सदाचारे विनीते नियमान्विते॥
गोदानाल्लभते कामान् गोलोके च मनोरमान्।
व्रतान्ते मासदानाख्ये समासो नियमे तथा॥
आषाढ़े तोयधेनुश्च घृतं भाद्रपदेतथा।
माघे तु तिलधेनुःस्यात् यो दत्त्वा लभते क्षितं॥
यथा। धेनुं तिलमयीं माघे दद्याद्यस्तूत्तरायणे।
सर्व्वान् कामानवाप्नोति ज्यैष्ठे तिलमयीं तथा।
पौषे घृतमयीं दद्याच्छ्रेष्ठाहे विधिना मुने॥

आदित्यपुराणे।

ज्यैष्ठे मासि तिलान्दद्यात्पौर्णमास्यां विशेषतः।
अश्वमेधस्य यत्पुण्यं तत् प्राप्नोति न संशयः॥

आह यमः ।

घृतमाश्वयुजे मासि नित्यं दद्याद्विजातये ।
प्रीणयित्वाश्विनौ देवौ रूपभागभिजायते ॥

आह विष्णुः ।

आश्विनं सकलं मासं विप्रेभ्यः प्रत्यहं घृतं प्रदायाश्विनौ प्रीणयित्वा रूपभाग्भवति, तस्मिन्नेव मासि प्रत्यहं गोरसैर्ब्राह्मणान्भोजयित्वा आरोग्य भाग्भवति, तथा माघे मासि अग्निं प्रत्यहं तिलैर्हुत्वा घृतकुल्माषं ब्राह्मणान् भोजयित्वा दीप्ताग्निर्भवति ।

आह प्रचेताः ।

तिलप्रदः प्रजामिष्टां पुरुषः खलु विन्दति ।
माघे मासि विशेषेण तत्रापि च विशेषतः ॥

महाभारते ।

माघे मासि तिलान् यस्तु ब्राह्मणेभ्यः प्रयच्छति ।
सर्व्वसत्त्वसमाकीर्णं नरकं न स पश्यति ॥

इति मासदानविधिः ।

अथ ऋतुदानानि ।

विष्णुधर्म्मोत्तरे ।

स्नाना-नुलेपनादीनां वसन्ते दानमिष्यते ।
पानकानां तथा ग्रीष्मे छत्राणां तदनन्तरे ॥

देवीपुराणे ।

यः पुनर्व्विधिना वत्स देवीमुद्दिश्य प्रावृषि ।
विप्रेषु विप्रकन्यासु तिलादीन् संप्रयच्छति ।
तस्याः सा तुष्यते देवी अचिरेण तु विद्यया ॥

विष्णुधर्म्मोत्तरे ।

मरुत्वतस्य धर्म्मज्ञ वस्त्राणामपि हैमने ।
वह्निर्दानं नरः कृत्वा सूर्य्यस्योदयनं प्रति ॥
वह्निर्द्दानं, शीतापनुत्त्यर्थं वह्निदानं ।
शिशिरे सततं वह्निं तर्पयित्वा तथा तिलैः ।
कुल्माषं सघृतं दत्त्वा यथा शक्त्या द्विजातिषु ॥
कायाग्नि-दीप्तिप्राकाश्यं शत्रुनाशञ्च विन्दति ।
शक्तुं सिताखण्डयुतं तपुषावारकान्वितं ॥
लवणाज्ययुतं दत्त्वा तथा हरितकान्वितं ।
मध्याह्ने प्रावृषि स्नातः सततं द्विजपुङ्गवाः ।
जलकुम्भोपरिकृतं ह्यक्षयं फलमश्नुते ॥

यमः ।

कृशरं भोजयित्वा तु स्वशक्त्या शिशिरे द्विजान् ।
दीप्ताग्नित्वं समाप्नोति स्वर्गलोकं च गच्छति ॥

इति ऋतुदानानि।

अथ संवत्सरदानानि।

विष्णुधर्म्मोत्तरे।

संवत्सरे तु दातृणां तिलदानं महाफलं।
परिपूर्वं तथा दानं यवानां द्विजसत्तम:॥
परिपूर्व्वइति, परिवत्सरइत्यर्थः।
इदापूर्वं च वस्त्राणां धान्यानां चानुपूर्व्वकम्।
इत्पूर्वं रजतस्यापि दानं प्रोक्तं महाफलं॥

इदापूर्व्व इत्यादि, इदावत्सरः अनुवत्सरः, इद्वत्सरइति॥
सम्वत्सरादयश्च ज्योतिः शास्त्रे प्रसिद्धाः।

इति संवत्सरदानानि।

इति श्रीमहाराजाधिराज-श्रीमहादेवस्य समस्तकरणा-
धीश्वर-सकलविद्याविशारद-श्रीहेमाद्रि-
विरचिते चतुर्व्वर्ग-चिन्तामणौ
दानखण्डे-कालविशेष,
दानप्रकरणम्॥

# त्रयोदश अध्यायः ।



॥ अथ अनन्तफलदानानि ।

येनारामाभिरामाः परिसरलहरीमग्ननागास्तडागाः
प्रासादाः सादयन्तो रविरथतुरगैस्सञ्चारलीलां ।
कूपा भूपालसेनाश्रितसततपयःकर्म्मनिर्म्माणदक्षा
सत्राणि सुश्रवन्तो द्विजवसतिहिता निर्मिताहर्म्म्यमालाः ॥
येन श्रवःसरणि सञ्चरणोचितानि
दानानि तान्यपि द्दशोरतिथीकृतानि ।
हेमाद्रिरद्भुतविपश्चिदपश्चिमोऽयं
सम्प्रत्यनन्तफलदानसमूहमाह ॥

कानि पुनस्तानीत्यपेक्षायां भविष्यत्पुराणे,

संपादयेच्च नियमादारोग्यं भोगसाधनं ।
अभयं पान्यप्रपामन्नो-दक-महीरुहान् ।
अनन्तफलदान्याहुर्दानान्येतानि सूरयः ॥

अथ आरोग्यदानं ।

तत्रारोग्यदानन्ताव दुच्यते ।

आह विश्वामित्रः ।

आरोग्यदानात्परमं न दानं विद्यते क्वचित्।
अतोदेयं ह्यार्त्तानामारोग्यं भाग्यवृद्धये॥
औषधं पथ्यमाहारं तैलाभ्यङ्गप्रतिश्रयं।
यः प्रयच्छति रोगिभ्यः सभवेद्व्याधिवर्जितः॥

संवर्त्तः

औषधं स्नेह-माहारं रोगिणां रोगशान्तये।
ददानो रोगरहितः सुखी दीर्घायुरेव च॥

अगस्त्यः।

अन्नौ-षधप्रदातारः सुखं यान्ति निरामयाः।

सौर पुराणे।

रोगिणो रोगशान्त्यर्थमौषधं यः प्रयच्छति।
रोगहीनः स दीर्घायुः सुखी भवति सर्व्वदा॥

नन्दि पुराणे।

अञ्जनं यो नरोदद्यादक्ष्णोर्व्याधिनिवृत्तये।
विप्राय स पुमान् याति सूर्य्यलोकं महामतिः।
आरोग्यनयनो दिव्यः सुभगो जायते नरः॥

तस्मिन्नेव पुराणे।

धर्म्मा-र्थ-काम-मोक्षाणां आरोग्यं साधनैर्युतः ।
अतस्त्वारोग्यदानेन नरो भवति सर्व्वदा ॥
आरोग्यशालां कुरुते महौषधपरिच्छदां ।
विदग्धवैद्यसंयुक्तां भृत्यावसथसंयुतां ॥
वैद्यस्तु शास्त्रवित् प्राज्ञो दृष्टौषधपराक्रमः ।
औषधीमूलवर्णज्ञः समुद्धरणकालवित् ॥
रसवीर्य्यविपाकज्ञः शालिमांसौषधीगणे ।
योगविद्देहिनां देहं यो धिया प्रविशेद्बुधः ॥
धातुपथ्यमयज्ञश्च निदानविदतन्द्रितः ।
व्याधीनां पूर्व्वलिङ्गज्ञस्तदुत्तरविधानवित् ॥
देशकालविधानज्ञश्चिकित्साशास्त्रवित्तथा ।
अष्टाङ्गायुर्वेदवेत्ता मुष्टियोगविधानवित् ॥

अष्टावङ्गानि आयुर्वेदस्य ।

यथा शल्यं शालाक्यं कायचिकित्सा भूतविद्या कौमारभृत्यमगदतन्त्रं रसायनतन्त्रं वाजीकरणतन्त्रमिति सुश्रुतोक्तानि ।

एवं विधः शुभो वैद्यो भवेद्यत्नाभियोजितः ।
आरोग्यशालामेवन्तु कुर्य्याद्योधर्म्मसंश्रयः ॥
स पुमान् धार्मिको लोके स कृतार्थः सबुद्धिमान् ।
सम्यगारोग्यशालायामौषधैः स्नेहपाचनैः ॥
व्याधितं विरुजी कृत्य अप्येकं करुणायुतः ।
प्रयाति ब्रह्मसदनं कुलसप्तकसंवृतः ॥

आढ्यो वित्तानुसारेण दरिद्रः फलभाग् भवेत्।
दरिद्रस्य कुतः शाला आरोग्याय भिषग्युवा॥
अपिमूलेन केनापि मर्हनाद्यैरथापि वा।
स्वस्थीकृते भवेन्मर्त्त्यः पूर्व्वोक्तं लोकमव्ययं॥
वात-पित्त-कफाद्यानां चया-पचयभेदिनां।
यस्तु स्वल्पाभ्युपायेन मोचयेत् व्याधिपीडितान्॥
सोपि याति शुभान् लोकान् अवाप्यान् यज्ञयाजिभिः।

स्कान्दपुराणे।

आरोग्य शालां यः कुर्य्यात् महावैद्यपुरस्कृतां।
सर्व्वोपकरणोपेतां तस्य पुण्यफलं शृणु॥
धर्म्मा-र्थ-काम-मोक्षाणामारोग्यं साधनं यतः।
तस्मादारोग्य दानेन तद्दत्तं स्याच्चतुष्टयं॥
अथैकमार्त्तं विद्वांसं स्वस्थीकृत्य प्रयत्नतः।
प्राप्नोति सुमहत्पुण्यमनन्तं क्षयवर्जितं॥
ज्ञानयोगरतं शान्तं रोगार्त्तं शिवयोगिनं।
यःस्वस्थं कुरुते सोपि सर्व्वदानफलं लभेत्॥
ब्रह्मा विष्णुः सुराः सर्व्वे व्याधयः स्वजना नृपाः।
योगस्यैते महाविघ्ना व्याधयस्ते न योगिनां*॥

* तेन योगिनामिति वा पाठः।

ब्रह्म-क्षत्रिय-विट्-शूद्रान् रोगार्त्तान् परिपाल्य च ।
यत्पुण्यं महदाप्नोति न तत्सर्व्वैर्महामखैः ॥
आकाशस्य यथा नान्तः सुरैरप्युपलभ्यते ।
तद्वदारोग्यदानस्य नान्तो वै विद्यते क्वचित् ॥
पुण्येनानेन महता गत्वा शिवपुरं नरः ।
मोदते विविधैर्भोगैर्व्विमानैः सर्व्वकामिकैः ॥
एकविंशत्कुलोपेतः सभृत्यः परिपालितः ।
आस्ते शिवपुरे तावद्यावदाभूतसंप्लवं ॥
ततः स्वधर्म्मशेषेण संप्राप्तः प्रयतः सदा ।
ज्ञानमुत्पद्यते तस्य रुद्रेभ्यः परिचारकः ॥
ज्ञानाद्विरक्तः संसाराच्छिवध्यानमुपाश्रितः ।
स्वदेहं तृणवत्त्यक्त्वा सर्व्वदुःखान्तमाप्नुयात् ॥
समस्तदुःखनिर्म्मुक्तः शुद्धः स्वात्मव्यवस्थितः ।
सर्व्वज्ञः परिपूर्णश्च मुक्त इत्यभिधीयते ॥
तस्माद्रोगापवर्गार्थं रोगार्त्तं समुपाचरेत् ।
विशेषेण तु योगीन्द्रं शरीरेण धनेन च ॥
रोगिणो नोद्विजेत् प्राज्ञो दुर्व्वलानपि सर्व्वदा ।
तान् पापाद्रक्षन्नित्यमेवन्धर्म्मः प्रवर्त्तते ॥
योनुगृहीतमात्मानं मन्यमानो दिने दिने ।
उपसर्पेत रोगार्त्तंस्तीर्णस्तेन भवार्णवः ॥

इत्यारोग्यदानं ।

अथ रोगहरदानानि ।

ब्राह्माण्डपुराणे।

ब्रह्मोवाच।

भगवन् प्राणिनः सर्व्वे रोगार्त्ताः प्रभवन्त्यतः।
एषान्तत्परिहारार्थं किं कर्त्तव्यं जगत्पते॥
इत्येवमुक्तो भगवान् ब्रह्मणा परमेष्ठिना।
यदाह तस्मै तत्सर्वं ब्रवीमि मुनिसत्तमाः॥
आधयो व्याधयश्चैव शरीरपरिशोषणाः।
पुण्यं तत्परिहारार्थं कर्त्तव्यं हितमिच्छता॥
ज्वरातिसारो यक्ष्मा च गुल्म-शूल-भगन्दराः।
कुष्ठा-क्षिरोगा वातश्च कण्ठशूल-मसूरिकाः॥
कण्ठ-दन्ता-क्षि-कर्णेषु शिरोरोगोपजिह्वका।
त्रिदोषसम्भवाः सर्व्वे रोगाः प्राणिभयङ्कराः॥
अश्मर्यो मूत्रकृच्छ्रञ्च बस्तिरोगो महोदरं।
एते चान्ये च बहवो महावेगा महाबलाः॥
व्याधयः शतसंख्याका मृत्योर्हेतव एव ते।
यद्यद्रोग शमं कुर्यात्तत्तत् कार्य्यं मनीषिभिः॥
औषधं जपहोमादि दानं देवार्चनादिकं।
सर्व्वरोगप्रशमनं सौवर्णदानमुच्यते॥
ज्वरे मसूरिकायाञ्च राजयक्ष्मणि चैव तत्।
गुल्मे तथायसं प्रोक्तं कुष्ठे राजतमुच्यते॥
रत्नदानाच्छमंयान्ति गुदोत्पन्नाश्च सर्व्वशः।

शमः स्यादन्ततो व्याधे* र्भूदानात् कमलासन ॥
शमार्थं वातरोगाणां वासोदानं विधीयते ।
कण्ठजिह्वोद्भवादीनां रोगाणां शान्तिमिच्छता ॥
धान्यं वासो हिरण्यं वा दातव्यानि प्रयत्नतः ।
सुवर्णदानं सर्व्वेषां रोगाणां शमकारणं ॥
तस्मात्सर्व्वप्रयत्नेन दातव्यं कमलोद्भव ।
अक्षिसम्भवरोगाणामाज्यं कनकसंयुतं ॥
पानीयं पायसं मुद्गाः शर्कराघृतसंयुताः ।
सर्व्वाङ्गतोदकाशेषु खण्डं वै सोपबर्हणं ॥
दद्याद्धि कण्ठरोगाणां कम्बलं कमलोद्भव ।
तथा च रत्नरजतैर्यथा शक्त्यनुरूपतः ॥
कृत्वा च प्रतिमां व्याधेर्दद्याद्विप्राय यत्नतः ।
शतेन वा तदर्द्धेन त्रिंशता निष्कसंख्यया ॥
जातरूपमयं व्याधेः प्रतिरूपन्तु कारयेत् ।
निधाय पात्रे संपूर्णे तण्डुलैः शतरूपकैः ॥
अलङ्कृत्य च सौवर्णं रूपन्त्वगुरुलेपनैः ॥
वासोयुगेन संवेष्ट्य हिरण्यबहुभूषणैः ।
अलङ्कृताय विप्राय दत्त्वा मन्त्रमुदीरयेत् ॥
ये मां रोगाः प्रबाधन्ते देहस्थाः सततन्तताः ।
गृह्णीष्व प्रतिरूपेण तान् रोगान् द्विजसत्तम ॥
बाढमित्येव तद्रूपं गृह्णीयाद्याधिभिःसह ।

* जरारोगाधेरिति क्वचित् पाठः।

ततस्त्वरोगी दाता च दीर्घायुष्टं प्रपद्यते ॥
एवं बहुविधं शास्त्रै रोगाणां कमलासन।
कार्य्यमुक्तं मया तेभ्य किमन्यत् कथयामि ते ॥
एवमुक्तो भगवता ब्रह्मा लोकपितामहः।
यदाह नारदायेदं मया तत् सर्व्वमीरितं ॥

इति रोगहरदानविधिः।

अथ भोगदानानि।

तत्र रत्नदानन्तावदाह।

जावालिः।

रत्नानि च द्विजे दद्याद्बहुमूल्यानि मानवः।
अलङ्कारनिमित्तं वा देवताभ्योऽतियत्नतः
स पापताप निर्म्मुक्तो मुक्तिमेव समश्नुते ॥
न रत्नेभ्यः परं वस्तु नचास्ति भुवनत्रये।
अतस्तद्दानतो यत्स्यात् फलं तत् केन वर्ण्यते ॥

विश्वामित्रः।

यः प्रयत्नेन रत्नानि विप्रेभ्यः संप्रयच्छति।
स सर्व्वगुणसम्पन्नान् पुत्रान् विन्दति नन्दति ॥

संवर्त्तः।

समुद्रजानि रत्नानि नरो विगतकल्मषः ॥
दत्त्वा विप्राय महते प्राप्नोति महतीं श्रियं ॥

वेदव्यासः।

रत्नदानञ्च सुमहत् पुण्यमुक्तं जनाधिप।
तानि विक्रीय यजति ब्राह्मणोऽप्यभयङ्करः॥

स्कन्दपुराणे।

विद्रुमाणां प्रदानेन रुद्रलोकं व्रजेन्नरः।
सर्व्वपातकनिर्म्मुक्तो मुक्तादानेन जायते॥
लोकमाप्नोति दानेन नरो वज्रस्य वज्रिणः।
तथा प्रदत्तैर्गोमेदैर्मोदते नन्दने वने॥
सर्व्वे ग्रहाः प्रतुष्यन्ति पुष्परागस्य दानतः।
गारुत्मतैर्मरुत्वन्तं नियतं जयति श्रिया॥
वैदूर्य्यैः सूर्य्यलोकञ्च पद्मरागैररोगतां।

दत्तैरितिशेषः।

प्रदानादिन्द्रनीलानां लोकानां भाजनं भवेत्।
सुखी शङ्खप्रदानेन भक्तिं शुक्तिप्रदानतः॥

इति रत्नदानं।

अथाह वृद्धगौतमः।

माणिक्यं पद्मरागञ्च वज्रं वैदूर्य्यमेव च।
मौक्तिकं गोमेदं पुष्परागं मरकतं तथा।
हरितञ्च नवैतानि स्वर्णपात्रोपरि न्यसेत्॥
अथ वा राजते ताम्रे आज्येन च प्रपरयेत्।

नवग्रहाणां प्रीत्यर्थं ब्रह्मणा निर्म्मितं पुरा ॥
गन्ध-पुष्पा-क्षतैर्धूपैर्नैवेद्यैस्तान् प्रपूजयेत्।
स्वलिङ्गैश्चैव मन्त्रैश्च होमः कार्य्यस्तु पूर्ब्ववत् ॥
पूर्ब्ववदिति, ग्रहयज्ञोक्तमार्गेणेत्यर्थः।
ततो ब्राह्मणमाहूय सर्व्वशास्त्रार्थकोविदं।
आदित्यादिग्रहाः सर्व्वे नवरत्नप्रदानतः ॥
विनाशयन्तु मे हृष्टाः क्षिप्रमेव भगन्दरं ॥

दानमन्त्रः।

अनेन कर्म्मणा नूनं यथावद्विहितेन तु।
नरो नैरुज्यमाप्नोति निःसन्दिग्धं भगन्दरी ॥

इति भगन्दरहरदानं।

तथा। माणिक्यं वज्रसहितमव्रणं जातितः शुभं।
रक्तवस्त्रेण संवेष्ट्य खारिकापञ्चकोपरि ॥
यद्दा विभवसारेण माणिक्यं यवपुञ्जके।
निधाय गन्धपुष्पाद्यैरर्च्चयेद्भक्तिपूर्व्वकं ॥
ब्राह्मणं श्रुतसम्पन्नं स्वाचारं संयतेन्द्रियम्।
विनीतवेषमाहूय भक्त्या प्रयतमानसः ॥
सौवर्णेनोपवीतेन सम्यग्वस्त्राङ्गुलीयकैः।
पूजयित्वा तु विधिवत् कृतहोमाय पूर्ब्ववत् ॥
मन्त्रेणानेन विधिवत्तस्मै दद्याद्व्रणी शुभं ॥
देव सूर्य्य जगन्नाथ सर्व्वलोकनमस्कृत।
माणिक्य-वज्रदानेन प्रणाशय मम व्रणं ॥

दानमन्त्रः।

व्रणाः शस्त्रेण ये पिस्थु विषदिग्धेन संयुगे।
तेऽपि शुक्ताः प्ररोहन्ति यथा प्रोक्तं तु वायुना॥

इति व्रणव्रवदानं।

वायुपुराणे।

गलगण्डी गलद्रव्यहर्त्ता भवति मानवः।
दानेन तत् प्रतीकारं वक्ष्यामि शृणु भास्कर॥
माणिक्यं पद्मरागश्च वज्रं गोमेदमेवच।
वैदूर्य्यं पुष्परागश्च मुक्ता मरकतं तथा॥
एभिर्मालां प्रकुर्व्वीत सूत्रमप्यत्र राजतं।
अलाभे मौक्तिकाद्यन्यतमैर्मालां प्रकल्पयेत्॥
सर्व्वत्र राजतं सूत्रमिति देवैः प्रकल्पयेत्।
ताम्रपात्रे विनिक्षिप्य तिलानामुपरि न्यसेत्॥
तिलानाञ्च परीमाणं द्रोणपस्त्रकमिष्यते।
यद्वा तदर्द्धमेव स्यात् स्वशक्त्या वापि कारयेत्॥
महाशान्तिं तथा कुर्य्यात् ब्राह्मणैर्वेदपारगैः।

महाशान्तिः, नवग्रहशान्तिरित्यर्थः।

आचार्य्यश्च शुचिर्दक्षः सर्व्वशास्त्रार्थतत्त्ववित्।
कृतहस्तोपसम्पन्नः सर्व्वप्राणिहिते रतः॥

एवम्बिधं पूजयित्वा वस्त्र-माल्या-नुलेपनैः।
होमञ्च कारयेत्तेन समिदाज्यचरुतृकटं ॥
आसत्येनतथामन्त्रो गणानामिदमित्यपि।
मन्त्राः क्रमेण संयोज्याः सोमं राजानमित्यपि ॥
मन्त्रेण स्विष्टकृतं दद्यात्तलगण्डो च वाग्यतः।
मन्त्रेणानेन विधिवत् प्राङ्मुखाय ह्युदङ्मुखः ॥
मालेयं सर्व्वदेवत्या ब्रह्म-विष्णु-शिवादिभिः।
रुद्रादिलोकपालैश्च तथा सर्व्वामरैरपि ॥
सततं कण्ठलग्ना या धारिता प्रीतिपूर्व्वकम्।
ब्राह्मणाय प्रदत्तेयं गलगण्डं व्यपोहतु ॥

दान मन्त्रः।

ग्रहशान्तिः कृता येस्तु तेभ्यो दद्याच्च दक्षिणाम्।
पुण्याहवाचनं कृत्वा भुञ्जीत सह बन्धुभिः ॥

इति गलगण्डप्रशस्तदानं।

अथालङ्कारदानं।

ब्रह्मवैवर्त्तपुराणे।

द्विजातिभ्यस्तु योदद्यादलङ्कारान् समुज्वलान्।
सोऽलंकृतः स्वर्गलोके क्रीडत्यप्सरसाङ्गणैः ॥
अलङ्कारप्रदानेन सुरूपः सुभगो भवेत्।
तथालङ्कारदानेन दीर्घमायुश्च विन्दति ॥

नराभरणदानेन तुष्टिं याति सदाशिवः।
योषिदाभरणैर्दत्तैः प्रीयते हिमशैलजा॥

मह्लाभारतं।

युवाप्यविकलाङ्गोपि दधानोप्युज्वलं वपुः।
विनालङ्करणैर्नूनं न धत्ते मङ्गलां श्रियं॥
दुर्लभं मानुषं तावत्तत्रापि शुभवेषता।
तस्यापि भूषा तारुण्यं जायते नरसत्तम॥
एतत्सर्व्वं मनुष्याणां वृथैव स्यादभूषणं।
तस्मात् सर्व्वप्रयत्नेन प्रदद्याद्भूषणानि तु॥

विष्णुधर्म्मोत्तर।

मूर्द्धाभरणदानेन व्रजेन्मूर्द्धाभिषिक्ततां।
कर्णजैः कर्णकीर्त्तिः स्यात्लक्ष्मीः कण्ठैरकुण्ठिता॥
पाणिजैः प्रणिजैत्वः स्याज्जघनैरजघन्यजः।
जानुजैर्मनुजैत्वं स्याच्चरणं चरणोद्भवैः॥

नालङ्कृतेभ्यो नरपुङ्गवेभ्यः
परं नृलोके स्पृहणीयमस्ति।
न लभ्यते तच्च विना प्रदाना-
दतः प्रदेयानि विभूषणानि॥

कृत्यलङ्कारदान

अथ वस्त्रदानं ।

देवलः ।

कान्तियुक् सुभगः श्रीमान् भवत्यम्बरदानकृत् ।

नन्दिपुराणे ।

वस्त्रं यथार्थिने दद्यात्कुम्भं वापि यदृच्छया ।
स भवेद्धनवान् श्रीमान् वृहस्पतिपुरे वसेत् ॥

आदित्यपुराणे ।

योगिनाञ्च दरिद्राणां ये च वस्त्रप्रदा नराः ।
तेषां दिव्यानि वस्त्राणि सुगन्धीनि मृदूनि च ।
वातश्चैव प्रवहति सुगन्धोह्यमृतोपमः ॥

लिङ्गपुराणे ।

वस्त्रं जलं पवित्रञ्च दद्याच्च शिवयोगिने ।
स महाभोगमाप्नोति अन्ते योगञ्च शाश्वतं ॥

महाभारते ।

वाससान्तु प्रदानेन स्वदारनिरतो नरः ।
सुवस्त्रश्च सुवेषश्च भवतीत्यनुशुश्रुमः ॥

भविष्यत्पुराणे ।

मध्यमो-त्तमवस्त्राणि प्रदद्यादहतानि च ।
स तेनैवानुसारेण प्राप्नोति विपुलं फलं ॥

विष्णुधर्म्मोत्तरात् ।

हंस उवाच ।

दानानामुत्तमं लोके वस्त्रदानं प्रकीर्त्तितं ।
वासोहि सर्व्वदैवत्यं सर्व्वप्रायोज्यमुच्यते ॥
वस्त्रदाता सुवेषः स्याद्रूपद्रविणसंयुतः ।
युक्तो लावण्य-सौभाग्यैर्नीरोगश्च तथा द्विजः ॥
नीलं रक्तं तथा जीर्णं न देयं ब्राह्मणस्य तु ।
देयं वरं चाङ्गिरसलोकं याति बृहस्पतेः ॥
दत्त्वा कार्पासिकं वस्त्रं स्वर्गलोके महीयते ।
दत्त्वा सरोम तत्रापि फलं दशगुणं भवेत् ॥
आविकं वसनं दत्त्वा भृगूणां लोकमाप्नुयात् ।
छागंदत्त्वा चाङ्गिरसं क्षौमन्दत्त्वा बृहस्पतेः ॥
वसूनां लोकमाप्नोति कुशकौशेयवाससी ।
कृमिजञ्च तथा दत्त्वा सोमलोके महीयते ॥
अग्निष्टोममवाप्नोति दत्त्वैव मृगलोमिक ।
दत्त्वा वल्कलजं वासो वसूनां लोकमाप्नुयात् ॥
समोचककदल्यादि दत्त्वा चैव तथाजिनं ।
वारवाणमुरस्त्राणं शिरस्त्राणं तथैव च ।
पादत्राणञ्च ददतः पृथग्यज्ञ फलं लभेत् ॥
वस्त्रदानं पवित्रन्तु पितॄणामपितारणं ।
कौसुम्भरक्तं दत्त्वा तु सौभाग्यमहदाप्नुयात् ।
दानात् कुङ्कुमरक्तस्य लावण्यं महदाप्नुयात् ॥

रक्तै रन्यैश्च नीलैश्च रक्तं दत्त्वा सुखी भवेत्।
यथा यथा तु वस्त्रस्य भवतीह महार्घता॥
यथा यथा तु शुभता तथा पुण्यफलं महत्।
अन्येषामेव दानानामेतदेव प्रकीर्त्तितं॥
सर्व्वदो वस्त्रदः प्रोक्तो यतः सर्व्वत्र वस्त्रवान्।
अवाप्नोति च धर्म्मज्ञाः तस्मि तस्माद्विशिष्यते॥
वस्त्रदः सुचिरं कालं भुक्त्वादेवसुखं भुवि।
विमानेनार्कवर्णेन हंसयुक्तेन भास्वता॥

मानुष्यमासाद्य भवत्यरोगः
शोचान्वितः सौख्यपरोपहीनः।
जनाभिरामश्च तथा सुवेषः
पूज्यश्च लोके विदुषां सदैव॥

इति वस्त्रदानं।

अथ शोचकीयात्।

ईश्वर उवाच।

वासोदानं प्रवक्ष्यामि मम प्रीतिविवर्द्धनं।
आयुरारोग्यदं नृणां सौख्यहेतुकमुत्तमं॥
वस्त्रयुग्मं सितं सूक्ष्ममेकैकस्य प्रकल्पयेत्।
एकादशानां विप्राणां रुद्रैकादशरूपिणां॥
गन्ध-पुष्पैरलंकृत्य भोजयित्वा विधानतः।
उक्तमन्त्रमथैतेभ्यस्तानि वस्त्राणि दापयेत्॥

प्रसीद तु भवो नित्यमस्माकं कृत्तिवाससः ।
वस्त्राण्यस्मत् प्रदत्तानि प्रतिगृह्णातु शङ्कर ॥
दत्तेषु वस्त्रेषु नरस्तन्तुभिर्गणिताः समाः ।
रुद्रतुल्यो बली भूत्वा रुद्रलोके महीयते ॥
एकादशरुद्रनामानि, रुद्रैकादशतिलदाने द्रष्टव्यानि ।

इति रुद्रैकादशवस्त्रदानविधिः ।

अथ देवताभ्यो वस्त्रदानं ।

आदित्य पुराणे ।

वस्त्रैर्वस्त्रप्रदानेन ब्रह्मलोकं प्रपद्यते ।

नन्दिपुराणे ।

वासांसि तु विचित्राणि सारवन्ति मृदूनि च ।
स्नापितानि शिवे दद्यात् द्विकोणानि* नवाणि च ॥
यावत्सङ्ख्या तन्तूनां परिमाणं विधीयते ।
तावद्वर्षसहस्राणि शिवलोके महीयते ॥

वाराह पुराणे ।

क्षौमाम्बराणि योदद्यात्पत्तोर्णानि च चक्रिणे ।
कार्पासजानि वा भक्त्या दद्याद्वित्तानुसारतः ॥
तत्र वाससि यावन्तस्तन्तूनां परमाणवः ।
तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ॥

* विप्रोकाणीतिक्वचित्पाठः

भविष्यत् पुराणे।

यो वस्त्रं भानवे दद्याद्दृतं च महाधनः।
स हेलिलोकमासाद्य वन्द्यते त्रिदशैरपि॥

देवी पुराणे।

अखण्डैरखण्डैर्वापि वस्त्रैरभ्यर्च्य शैलजां।
सम्पूज्याभरणैः शक्र चक्रवर्त्तित्वमाप्नुयात्॥

अथ शोकहरवस्त्रदानं।

तत्र हृद्बोधायनः।

विघ्नकर्त्ता च भक्ष्याणां शोकी भवति मानवः।
तस्य कर्म्मविपाकोत्थं व्याधिनाशनमुत्तमं॥
दानं वक्ष्याम्यशेषेण सर्व्वशोकविनाशनं।
क्षौमवस्त्रं समानीय बहुमूल्यं यदर्हति॥
मुक्ताफलानि बध्नीयाद्वस्त्रप्रान्ते समन्ततः।
कुङ्कुमेनाङ्कितं सम्यक् कर्पूरागुरुधूपितं॥
तण्डुलोपरि संस्थाप्य तण्डुलांश्च स्वशक्तितः
उपचारैः षोडशभिराचार्य्यः पूजयेन्मुदा।
युवं युवासुवासाभ्यां मन्त्राभ्यां पूजनं विदुः

युवंवस्त्राणीत्येकः।

युवासुवासा इत्यपरोमन्त्रः।

होमञ्चापि प्रकुर्व्वीत समिदाज्यतिलैरपि।
उद्बुध्यस्व इदं विष्णुरापश्चिन् सप्त इत्यपि॥
मन्त्रैः क्रमेण जुहुयात् स्विष्टिकृच्च यदस्य च।
यदस्यकर्म्मणोत्यरीरिचं इति मन्त्रेण होमः॥
हुत्वा हुत्वा च सम्पातान् पात्रे सर्व्वान्निवेश्य तु।
संख्या चाष्टोत्तरशतं अष्टाविंशतिरेव च॥
सम्पातेनाक्तमज्ञ्या च सर्व्वमेव हि रोगिणः।
अक्षिभ्यामितिसूक्तेन यथा लिङ्गं तथैव च॥
वाससां मार्जनं कुर्य्यान्मार्जयेद्दर्भपिञ्जलैः।
आचार्य्यायाथ तद्वस्त्रं दद्याच्छोकी सदक्षिणं॥
मन्त्रेणानेन विधिवद्दक्षिणाभिमुखः शुचिः।
ऋषीणां प्रवरोगस्त्यो लोपामुद्रापतिः प्रभुः।
क्षौमवस्त्रप्रदानेन तुष्टो व्याधिं व्यपोहतु॥

दानमन्त्रः।

ब्राह्मणेभ्यस्तथान्येभ्यो दद्याच्छक्त्या च दक्षिणां।
ततः स्नातः शुचिर्भूतो वस्त्रमाल्योपशोभितः।
ब्राह्मणैर्व्वन्धुभिः सार्द्धं भुञ्जीतातीवभक्तितः॥

इति वस्त्रदानं।

अथोष्णीषदानं।

नन्दि पुराणे।

उष्णीषदायिनो मर्त्त्या जायन्ते मुकुटोज्ज्वलाः।
विस्तीर्णराजवंशे तु सितकृष्णाग्रलक्षणाः॥

विष्णुधर्म्मोत्तरे।

उष्णीषाणि विचित्राणि यः प्रदद्याद्द्विजातिषु।
रक्तानि वाथ श्वेतानि कौसुम्भान्यथ वा पुनः।
स सौन्दर्य्यं परं प्राप्य वनितावल्लभो भवेत्॥
सुकेशाः सुमुखा राजन् यस्मादुष्णीषदायिनः।
तस्मात् तेषां प्रदानेषु प्रयतस्व महाभुज॥

अथोर्णापटदानं।

आह काश्यपः।

ऊर्णं प्रावरणं योपि भक्त्या दद्याद्द्विजातये।
सोपि याति परां सिद्धिं मर्त्त्यैरन्यैः सुदुर्लभं॥
यस्त्वकिञ्चनवृत्तिभ्यस्तपस्विभ्यः प्रयच्छति।
ऊर्णप्रावरणं दिव्यं शीतवातातपापहं।
निरस्तसर्व्वदुःखौघो जायते स महाधनी॥

वह्नि पुराणे।

नवं सूक्ष्मं सुविपुलं यः प्रयच्छति कम्बलं।
शीतार्दिने द्विजेन्द्राय तेषां मार्गसुखप्रदः॥

नारदीयपुराणे।

निष्किञ्चनेभ्यो दीनेभ्यः शीत-वात-महातपे।
अर्हितेभ्यः करुणया वस्त्रमोघं ददाति यः॥
न तस्य सुकृतं वक्तुं शक्यते त्रिदशैरपि।
आधिव्याधिविनिर्मुक्तः सोऽक्षयं सुखमश्नुते॥

अथ शय्यादानं।

वेदव्यासः।

सुगन्धिचित्रास्तरणोपपन्नं
दद्यान्नरो यः शयनं द्विजाय।
रूपान्वितां पक्षवतीं मनोज्ञां
भार्य्यामयत्नोपचितां लभेत्सः॥

अथ विष्णुसंहितायां।

शय्यादानस्य योदद्यात्तस्यापि शृणु विस्तरं।
सर्व्वकालेषु दातव्यं तथा पुण्यदिनेषु च॥
गजदन्तैः प्रवालैर्व्वा सुवर्णरजतेन वा।
कार्य्या गात्राणि पादाश्च वलभ्यश्च सदञ्चिताः॥
अलाभेपि च कर्त्तव्यास्तुल्यकाष्ठमयाः शुभाः।
सन्ध्याभ्रपटलाकारैरास्तीर्णास्तरणैः शुभैः॥
शिरोधरैः सवितानैः प्राकारैर्वस्त्रसंयुतैः।
मणिसौवर्णपात्रैश्च रौप्यैस्ताम्रैश्च संयुतां॥

फल-पुष्पैः सुगन्धैश्च ताम्बूलाद्यैः सुविस्तरैः।
दर्पणैः पदत्राणैश्च नानाद्रव्यैर्विभूषणैः॥
चतुष्कोणेषु संस्थाप्य यथाशक्ति युधिष्ठिर।
घृत-कुङ्कुम-गोधूम-पूर्णपात्रं जलस्य च॥
शय्यां संपूजयित्वा तु मन्त्रज्ञो मत्परायणः।
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा कुर्य्याच्छय्याप्रदक्षिणं॥
नमः प्रभाख्यै देव्यैति प्रणम्य च चतुर्हिशं।
ब्राह्मणाय दरिद्राय श्रुताध्ययनशालिने॥
तथा प्रज्ञानविदुषे शय्यां दद्याद्विचक्षणः।
तस्य दानस्य यत्पुण्यं विमानं कनकोज्वलं॥
नानारत्नसमाकीर्णं नानापुष्पसमन्वितं।
नानादिव्याप्सरःसेव्यं नानारत्नैः समावृतं॥
नानाद्रव्योपसंयुक्तं विमानमधिरोहति।
तस्मादिन्द्रपुरं गच्छेत् सेव्यमानोऽप्सरोगणैः॥
षष्टिवर्षसहस्राणि क्रीड़यित्वा यथासुखं।
इन्द्रलोकात्परिभ्रष्ट इह लोके नृपो भवेत्॥
षष्टियोजनविस्तीर्णे स्वामी भवति मण्डले।
धर्म्मज्ञो जित भृत्यश्च तेजस्वी रूपवांस्तथा॥

महाभारते।

शय्यामास्तरणोपेतां सुप्रच्छादनसंवृतां।
प्रदद्याद्यस्तु विप्राय शृणु तस्यापि यत्फलं॥
सुरूपः सुभगः स्त्रीमाम् स्त्रीसहस्राभिसंवृतः।

दशवर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ॥

भविष्योत्तरे ।

शय्यादानं प्रवक्ष्यामि तव पाण्डुकुलोद्वह ।
यान्दत्त्वा शिवभागी स्यादिह लोके परत्र च ॥
शय्यादानं प्रशंसन्ति सर्व्वदैव द्विजोत्तमाः ।
अनित्यं जीवितं यस्मात्पश्चात् कोऽन्यः प्रदास्यति ॥
तावत् स बन्धुः स पिता यावज्जीवति भारत ।
मृतोमृत इति ज्ञात्वा क्षणात् स्नेहो निवर्त्तते ॥
तस्मात् स्वयं प्रदातव्यं शय्या-भोज्य-जलादिकं ।
आत्मैव चात्मनो बन्धुरिति संचिन्त्य चेतसि ॥
आत्मैव यदि नात्मानं दानभोगैर्न पूजयेत् ।
कोऽन्यो हिततरस्तस्माद्यः पश्चात् पूजयिष्यति ॥
तस्माच्छय्यां समासाद्य सालदारुमयीं दृढां ।
दन्तपत्रचितां रम्यां हेमपट्टैरलंकृतां ॥
हंसतूलीप्रतिच्छन्नां शुभगण्डोपधानकां ।
प्रच्छादनपटीयुक्तां धूप-गन्धादिवासितां ॥
तस्यां संस्थापयेद्धैमं हरिं लक्ष्म्या समन्वितं ।
उच्छीर्षके घृतभृतं कलशं परिकल्पयेत् ॥

लक्ष्मी-नारायणरूपन्तु, देवतादान प्रकरणस्थित लक्ष्मीनारायणदाने द्रष्टव्यं ।

विज्ञेयः पाण्डवश्रेष्ठ सनिद्राकलशो बुधैः ।
ताम्बूल-कुङ्कुमा-चोद-कर्पूरा-गुरुचन्दनं ॥

दीपिका-पानकच्छत्रं चामरा-सन-भाजनं।
पार्श्वेषु स्थापयेद्वत्या सप्तधान्यानि चैव हि॥
शयनस्थस्य भवति यद्न्यदुपकारकं।
भृङ्गारकरकाद्यन्तु पञ्चवर्णवितानकं॥
शय्यामेवंविधां कृत्वा ब्राह्मणायोपपादयेत्।
सपत्नीकाय संपूज्य पुण्येऽह्नि विधिपूर्व्वकं॥
यथा न कृष्णशयनं शून्यं सागरजातया।
शय्या ममाप्यशून्यास्तु तथा जन्मनि जन्मनि॥
यस्मादशून्यं शयनं केशवस्य शिवस्य च।
शय्या ममाप्यशून्यास्तु तथा जन्मनि जन्मनि॥
दत्त्वैवं तल्पममलं प्रणिपत्य विसर्जयेत्।
एवं शय्याप्रदाने तु विधिरेष प्रकीर्त्तितः॥
स्वर्गे पुरन्दरगृहे सूर्य्यपुत्रालये तथा।
सुखं वसत्यसौ जन्तुः शय्यादानप्रभावतः॥
सूर्य्यपुत्रालये चैव तथा वैवस्वते पुरे।
पीड़यन्ति न तं याम्याः पुरुषा भीषणाननाः॥
न घर्म्मेण न शीतेन बाध्यते स नरः क्वचित्।
अपि पापसमायुक्तः स्वर्गलोकं स गच्छति॥
विमानवरमारूढ़ः सेव्यमानोऽप्सरोगणैः।
आभूतसंप्लवं यावत्तिष्ठेत् पातकवर्जितः॥

शय्याप्रदानममलं तव पाण्डुपुत्र
संकीर्त्तितं सकलसौख्यविधानभूतं।
यो वै ददाति विधिवत् स्वयमेव नाके

कल्पं विकल्परहितः स विभाति मर्त्यः ॥

अथ शिवशय्यादानं ।

शिवधर्म्मात् ।

हंसतूलीसमायुक्तां मृद्वीखट्वामलंकृतां ।
सर्व्वोपकरणोपेतां शिवशय्यां निवेदयेत् ।
शिवं देवीसमायुक्तं पीठं कृत्वा निवेदयेत् ॥

शिवदेवीरूपन्तु देवतादानप्रकरणस्थितउमामहेश्वरदाने-द्रष्टव्यं ।

शिवज्ञानार्थतत्त्वज्ञे आचार्य्ये च दयान्विते ।
संपूज्य गन्धपुष्पाद्यैर्वस्त्रालङ्कारचामरैः ॥
भक्ष्यभोज्यैरशेषैश्च ततः शय्यां निवेदयेत् ।
तदूर्णातूलीवस्त्राणां परिसंख्या तु यावती ।
तावद्वर्षसहस्राणि रुद्रलोके महीयते ॥

सूर्य्यशय्यादान ।

भविष्यत् पुराणे ।

हंसतूलीसमायुक्तां मृदुखट्वां सुकल्पितां ।
सर्व्वोपकरणैर्युक्तां सूर्य्यशय्यां प्रकल्पयेत् ॥
राज्ञीदेवीसमायुक्तां ततः शय्यां निवेदयेत् ॥
सौरज्ञानार्थतत्त्वज्ञमाचार्य्यन्तु दयान्वितं ।

संपूज्य पुष्प-गन्धाद्यैर्वस्त्रा-लङ्कार-चामरैः ।
भक्ष्यभोज्यैस्तथापेयैरनेकरससंयुतैः ॥

राज्ञीरूपमुक्तं विश्वकर्म्मणा ।

राज्ञी च द्विभुजा कार्य्या हरिणी च किरीटिनी ।
वरदश्च निजे पाणौ बिभ्रती पङ्कजस्थितेति ॥
तद्दर्णातूलवस्त्राणां परिसंख्या तु यावती ।
तावद्युगसहस्राणि सूर्य्यलोके महीयते ॥
सौरादि सर्व्वलोकेषु भुक्त्वा भोगानशेषतः ।
क्रमादागत्य लोकेऽस्मिन् राजा भवति भूतले ॥

अथासनदानं ।

लिङ्ग पुराणे ।

आसनं शयनञ्चैव यो ददाति यशस्विने ।
समं सर्वेषु भूतेषु तस्य दुःखं न विद्यते ॥

स्कन्द पुराणे ।

आसनं यः प्रयच्छेत सर्व्वोत्तं ब्राह्मणाय वै ।
स्वाराज्यं स्थानमाप्नोति तेजस्वी विगतज्वरः ॥

आदित्य पुराणे ।

सुगन्धचित्राभरणोपशोभितं
यस्त्वासनं वेदविदे प्रदद्यात् ।

ग्रामाधिपत्यं लभते स शीघ्रं
कुले महत्त्वं स लभेत्समग्रं ॥

विष्णुः ।

आसनं दानस्य स्थानमिति ।

फलमिति शेषः ।

अथ दर्पणदानं ।

मार्कण्डेय पुराणे ।

दर्पणं यो नरो दद्यात् निर्म्मलञ्च द्विजातये ।
स चन्द्रलोकमासाद्य मोदते शरदां शतं ॥

नन्दिप्रोक्ते ।

शिवस्य पुरतो दद्याद्दर्पणं चारु निर्म्मलं ।
पर्य्यन्तशोभितं कृत्वा श्वेतमाल्यैः सचन्दनैः ॥
चन्द्रांशुनिर्म्मलः श्रीमान् सुभगः कामरूपधृक् ।
कल्पायुतसहस्राणि रुद्रलोके महीयते ॥

ब्रह्मपुराणे ।

चन्द्रमण्डलसङ्काशं नक्षत्रे विष्णुदैवते ।
द्वादश्यां पुण्यकाले वा विष्णुं सम्पूज्य भक्तितः ॥
दर्पणं यो नरोदद्यात् स्रक्-चन्दन विभूषितं ।
रूपवान् सुभगः श्रीमान् ज्ञानवान् जायते नरः ॥

अथ व्यजनदानं।

भविष्यत पुराणे।

तालवृन्तं द्विजेभ्यस्तु यः प्रयच्छति भक्तितः।
स दिव्यभोगसंयोगमरोगः सर्व्वदाश्नुते॥
महातपपरिश्रान्तिधर्म्मनिर्मूलनक्षमं।
न तालवृन्तपवनादपरं नृपरञ्जनम्॥
परं रम्भोरुसम्भोगसम्भवं स्वेदमेदुरम्।
हर्त्तुं श्रमं समर्थं न नान्यद्व्यजनवीजनात्॥
अतःसदा मुदायुक्त स्तालवृन्तं द्विजातये।
दद्यादवद्यनिर्मुक्तमुक्तिसंभुक्तिहेतवे॥

महाभारते।

यो ददाति द्विजाग्रेभ्यो व्यजनं जननन्दनम्।
स नन्दनवनामोदमोदमानमना दिवि:*।
वसेद्ग्रैवकल्पान्तपर्य्यन्तमपकल्मषः॥

विष्णुधर्म्मोत्तरे।

प्रदाय व्यजनं बांग्रं वंशे महति जायते।
चार्म्मणं कर्म्मणां सिद्धिं दत्त्वा व्यजनमश्नुते॥
तथैव दत्ते मायूरे मायुरेतस्य क्षीयते।
पात्रेण पुत्रतामेति वास्त्रेण सौभवल्लभः॥
व्यजनेनेह दत्तेन तस्मात्तं प्रतिपादयेत्।

* स चन्दनवनामोदभाजनं मानवोदिरीति क्वचित्पाठः।

अथ चामरदानं।

महाभारते॥

यस्तु भक्त्या द्विजाग्रेभ्यो दद्याच्चामरमुज्ज्वलं।
स भूपत्यमवाप्नोति निःशेषावनिमण्डले॥

वायुपुराणे।

चामरं चामरेशाय यः शिवाय निवेदयेत्।
स सर्व्वकामसम्पूर्णः स्वर्णशैलतले वसेत्॥
मायूरञ्चामरं योपि शिवाय विनिवेदयेत्।
स विमानवरारूढ़ो वीज्यतेऽप्सरसाङ्गणैः॥

पद्मपुराणे।

प्रदाय चामरवरं श्रद्धया विष्णवे नरः।
परम्पदमवाप्नोति यत्सुरैरपि दुर्लभम्।
एतत्सर्व्वोपचारेभ्यो देवदेवस्य वल्लभम्॥

वितानदानम्।

कालिकापुराणे।

चन्द्रोदयं सुवोस्तीर्णं वर्णकैश्चचितं तथा।
प्रलम्बिमुक्तास्तवकैः शोभितं रत्नसङ्कुलम्॥

सुरक्त पट्टसूत्रादिबन्धसम्बन्धबन्धुरम्।
सर्व्वतोभद्रमुख्यानां मण्डलानाम्बिभक्तिभिः॥
विराजितं तथा चित्रपत्रवल्लीसमाकुलम्।
यक्ष-राक्षस-गन्धर्व्व-किन्नरद्वन्द्वमूर्त्तिभिः॥
लिखिताभिश्च परितो महाविस्मयकारकम्।
एवम्बिधं वितानं यो विधायाथ द्विजन्मने॥
शिवाय विष्णवे वाथ पुण्येक्लि प्रतिपादयेत्।
स समुद्धरते नूनमात्मनः पूर्व्वपूरुषान्॥
स्वयं शिवपुरे रम्ये भोगान् भुक्ता मनोरमान्।
क्रमादागत्य लोकेऽस्मिन् सुखी मानी धनी भवेत्॥

पद्मपुराणे।

चन्द्रोदयन्तु यो भक्त्या प्रयच्छति स पुण्यधीः।
न तस्य श्रेयसामन्तः कदाचिदपि जायते॥

अथ गन्धदानं।

संवर्त्तः।

गन्धानाभरणाद्यञ्च यः प्रयच्छति धर्म्मवित्।
स सुगन्धामोदयुक्तो यत्र तत्रापि जायते॥

स्कान्दपुराणे।

नरः सुगन्धदेहत्वं गन्धदानादवाप्नुयात्।
भोगवान जायते नित्यं शरीरं नास्य तप्यति॥

पद्मपुराणे।

अनुलेपनगन्धानां प्रदानेन हि मानवः।
न कदाचिन्मनोदाहं देहे वा दाहमश्नुते।
सुगन्धधूपदानेन लोकमप्सरसां व्रजेत्॥

विष्णुधर्म्मोत्तरे।

अनुलेपनदानेन रूपवानभिजायते।
नरश्चन्दनदानेन सर्व्वपापैः प्रमुच्यते॥
सौभाग्यकारकं प्रोक्तं प्रदानं कुङ्कुमस्य तु।
तथा कर्पूरदानेन सर्व्वान् कामानवाप्नुयात्॥
मृगदर्पप्रदानेन यशसा भुवि राजते।
यक्षकर्द्दमदानेन साम्राज्यं प्राज्यमश्नुते॥

अथ ताम्बूलदानं।

भविष्यत्पुराणे।

ताम्बूलं यो नरो दद्यात् प्रत्यहं नियमान्वितः।
देवेभ्योऽथ द्विजातिभ्यो महाभाग्यं* समश्नुते॥
इह संसारिणां लोके मनुष्यत्वं सुदुर्लभं।
ताम्बूलदानात्तन्नृणामनायासेन जायते॥

ब्रह्माण्डपुराणे।

ताम्बूलमुज्ज्वलं दद्याद्यो विप्रेभ्यः समाहितः।

*सदाभाग्यं समश्नुते इति क्वचित् पाठः।

शिवाय केशवायाथ नाकलोके स पूज्यते ॥

विष्णुधर्म्मोत्तरे।

ताम्बूलस्य प्रदानेन सौभाग्यमपि विन्दति।
दत्त्वा जातीफलं विप्राः सफलां विन्दति क्रियां॥
मुखवासप्रदानेन मुखसौगन्ध्यमाप्नुयात्।

अथ पुष्पदानं।

महाभारते।

मनो ह्लादयते यस्माच्छ्रियं चापि ददाति यः।
तस्मात्सुमनसः प्रोक्ता नरैः सुकृतकर्म्मभिः॥
देवताभ्यः सुमनसो यो ददाति नरः शुचिः।
सर्व्वकामानवाप्नोति प्रेत्य स्वर्गे महीयते॥
तस्मात्सुमनसः प्रोक्ता यस्मात्तुष्यन्ति देवताः।
यं यमुद्दिश्य दीयेरन् देवे सुमनसः प्रभो।
मङ्गलार्थं स तेनास्य प्रीतो भवति दैत्यप॥

नन्दिपुराणे।

धूपदः सुरभिर्नित्यं पुष्पदः सुभगः सदा।
तस्माद्दिवाय विप्राय दातव्यं तत् सुखार्थिभिः॥

लिङ्गपुराणे।

पुष्टिर्भवेत् सदाकालं* प्रदानाद्गन्ध-माल्ययोः।

* तुष्टिःपुष्टिर्भवेत् कालमिति क्वचित्पाठः।

यमः ।

देवतापुष्पदानेन जायते श्रीसमन्वितः ।
अर्च्चाकृतिमवाप्नोति यश्च धूपप्रदो नरः ॥

विश्वामित्रः ।

देयाः सुमनसो नित्यं नरैः पुण्यफलार्थिभिः ।
किमस्ति दैवतन्तादृक् यत् पुष्पैर्न हि तुष्यति ॥

अथ गीतादिदानं ।

नन्दिपुराणे ।

यो गीत-वाद्यं दद्यात्तु ब्राह्मणाय सुबुद्धिमान् ।
स गन्धर्व्वपुरे गच्छेद्वसेत् तत्र युगत्रयं ॥

स्कन्दपुराणे ।

गायन् याति पिवन् याति खादन् याति गृहं यथा ।
यो भोजनस्य वेलायां विप्राणां गेयमाचरेत् ॥

विष्णुधर्म्मोत्तरे ।

देवतायतने यस्तु ब्राह्मणानां गृहेषु वा ।
गायन् गीतं सुमधुरं गन्धर्व्वाणां पुरे वसेत् ॥
आतोद्यविद्यया राजन् प्रीणयन् द्विजदेवताः ।
स स्वर्गलोकमासाद्य देवताद्यैर्विनोद्यते ॥
देवताग्रे द्विजाग्रे वा यो नित्यं नृत्यमाचरेत् ।
विनोदयन्ति तं स्वर्गे नित्यमप्सरसाङ्गणाः ॥

यो गीत-वाद्य-नृत्यानि मूल्यं दत्त्वा तु कारयेत् ।
स शक्रभवने तिष्ठेद्यावदाहूतसंप्लवं ॥
यो वापि मुखवाद्येन विनोदयति देवतां ।
स धौतकल्मषमलः स्वर्गं याति न संशयः ॥
वचनेन प्रियेणाथ यः प्रीणाति च मानवान् ।
विमत्सरमना भूत्वा यः स्तौति गुणिनां गुणान् ॥
स्वीयैः परकृतैर्वापि यस्तोत्रैः स्तौति देवतां ।
तस्य पुण्यवतः पुण्यमगण्यं केन गण्यते ॥

अथ छत्रोपानह्दानं ।

बृहस्पतिः ।

असिपत्रवनं मार्गं क्षुरधारासमन्वितं ।
तीक्ष्णातपञ्च तरति छत्रो-पानत्प्रदो नरः ॥

आदित्य पुराणे ।

निदाघकाले वर्षायां छत्रं यः सम्प्रयच्छति ।
नास्य कश्चिन्मनोदाहः कदाचिदपि जायते ॥

महाभारते ।

उपानहौ प्रयत्नाद्यो ब्राह्मणेभ्यः प्रयच्छति ।
मर्दते कण्टकान् सर्व्वान् विषमान् सन्तरत्यपि ॥
शकटन्दम्यसंयुक्तं दत्तं भवति तेन वै ।
यानञ्चाश्वतरीयुक्तं तस्य स्वर्गे विशाम्पते ।

उपतिष्ठन्ति कौन्तेय रौप्य-काञ्चनशोभनं ॥
ब्राह्मणाय सुशीलाय यो दद्यात् काष्ठपादुके ।
स वाहनेन दिव्येन दिवं गच्छति भोगवान् ॥

सूर्य्यकरसन्तप्तरेणुकादर्शनकोपितस्य जमदग्नेः सूर्य्येण सह सम्वादे

सूर्य्य उवाच ।

महर्षे शिरसस्त्राणं छत्रं मद्रश्मिवारणं ।
प्रतिगृह्णीष्व पद्भ्याञ्च त्राणं त्वं चर्म्मपादुके ॥
अद्य प्रभृति चैवैतल्लोकेषु प्रचरिष्यति ।
पुण्यकेषु च कालेषु परमक्षयमेव च ॥
उपानच्छत्रमेतद्धि सूर्य्येणेह प्रवर्त्तितं ॥
पुण्यमेतत्तु विख्यातं त्रिषु लोकेषु भारत ।
तस्मात् प्रयच्छ विप्रेभ्यश्छत्रोपानह मुत्तमं ।
धर्म्मस्ति सुमहान् भावी न मे त्रास्ति विचारणा ॥
छत्रं हि पुरुषव्याघ्र यः प्रदद्याद्द्विजातये ।
शुभ्रं शतशलाकं वै स प्रेत्य सुखमेधते ।
शक्रलोके स वसते पूज्यमानो द्विजातिभिः ॥
अप्सरोभिश्च सततं देवैश्च भरतर्षभ ।
दह्यमानाय विप्राय यः प्रयच्छत्युपानहौ ॥
स्नातकाय महावाहो संशिताय द्विजातये ।
सोपि लोकानवाप्नोति दैवतैरपि पूजितान् ॥
गोलोके वसते कल्पं प्रतिस्वर्गे तु भारत ।

एतत्ते भरतश्रेष्ठ मया कार्त्स्न्येन कीर्त्तितं॥
छत्त्रोपानहदानस्य फलं भरतसत्तम।

वह्निपुराणे।

घर्म्म-वर्षा-तपत्राणं छत्त्रं दद्याद्द्विजातये।
सर्व्वव्याधिविनिर्म्मुक्तः श्रियं पुत्रांश्च विन्दति॥
विमानेन च दिव्येन किङ्किणीजाल मालिना।
महेन्द्रभवनं याति सेव्यमानोऽप्सरो गणैः॥
दह्यमानाय विप्राय यः प्रयच्छत्युपानहौ।
न तस्य मनसोदाहः कदाचिदपि जायते॥
यानमश्वतरीयुक्तं तस्य हेममयं शुभं।
उपतिष्ठति विप्रर्षे सर्व्वरत्नविभूषितं॥

लिङ्गपुराणे।

वर्षासु छत्र दानेन तथा ग्रीष्मे च नारद।
सर्व्वाह्लादयुतास्ते स्युः सर्व्वकामैश्च संयुताः॥
पुत्रान् श्रियं च लभते यश्छत्रं संप्रयच्छति।
चक्षुर्व्याधिं न लभते यज्ञभागमथाश्नुते॥
कृच्छ्राच्च विषमाच्चैव स च मोक्षमवाप्नुयात्।
एवमाह महाभागः शाण्डिल्यो भगवानृषिः॥

कात्यायनः।

वात-वर्षा-तपत्राणं छत्रं दद्याद्द्विजातये।

स सर्व्वव्याधिरहितः श्रियं पुत्रांश्च विन्दति ॥

देवलः ।

छत्रदश्छायया याति यानेनोपानहप्रदः ।

यमः ।

छत्रदो गृहमाप्नोति गृहदो नगरं तथा ।

जमदग्निः ।

दह्यमानाय विप्राय यः प्रयच्छत्युपानहौ ।
स्नातकाय महाबाहो संशिताय द्विजातये ॥
सोपि लोकानवाप्नोति दैवतैरपि पूज्यते ।
गोलोके स मुदायुक्तो वसत्यपि हि भारत ॥

अत्रिः ।

श्राद्धकालेषु यो दद्याद्भोजनञ्च उपानहौ ।
तस्य वै विपुलं पुण्यमश्वदानफलं लभेत् ॥

स्कन्दपुराणे ।

यः प्रयच्छेद्द्विजेन्द्राय उपानत्-काष्ठपादुके ।
स वराश्वेन महता सुखं याति ममालयं ॥

अथ पात्रदानं ।

स्कन्दपुराणे ।

भाजनं यः प्रयच्छेत्तु हैमं रत्नविभूषितं ।

सोऽप्सरःशतसंकीर्णविमाने दिवि मोदते ॥
राजतं यः प्रयच्छेत्तु विप्रेभ्यो भाजनं शुभं।
स गन्धर्व्वपदं प्राप्य उर्व्वश्या सह मोदते ॥
ताम्रं यो भाजनं दद्यात् ब्राह्मणेभ्यो विशेषतः।
स भवेत् यक्षराजस्य प्रभुर्व्वलसमन्वितः ॥

विष्णुधर्म्मोत्तरे।

तेजसानि तु पात्राणि दत्त्वा सुलवणानि च।
पात्रमेति च कामानां लावण्यञ्चाप्नुयान्महत् ॥
तैजसानि तु पात्राणि सतैलानि प्रयच्छतः।
आरोग्यमुत्तमं प्रोक्तं लावण्यमपि चोत्तमं ॥
तैजसानि तु पात्राणि सघृतानि प्रयच्छतः।
आरोग्यमुत्तमं प्रोक्तं स्वर्गे वासस्तथा द्विजाः ॥
तजसानितु पात्राणि समधूनि प्रयच्छतः।
लावण्य मुत्तमं प्रोक्तं सौभाग्यमपि चोत्तमं ॥

अथ रुक्मादिपात्रदानं।

कालिकापुराणे।

रौक्मं क्षीरान्वितं पात्रं दधिपूर्णञ्च राजतम्।
मौक्तिकानां शतं योथ वस्त्रयुग्मं निवेशयेत् ॥
ततः पुण्याहवाद्येन जयशब्दादिमङ्गलैः।
हरिञ्चैवार्च्चयेत् यत्नात् स्थाप्य सौवर्णपङ्कजे।
विष्णुरूपमुक्तन्तु, तुला पुरुष दाने ॥

ततस्तत् पात्रमादाय वाद्यब्रह्मस्वनैः स्वयं ।
कुर्य्यात् प्रदक्षिणं तस्मै विष्णवे प्रभविष्णवे ॥
ततश्चामन्त्र्य विधिवत् पूजयेत्त् विशेषतः ।
एवं विप्रन्तु सपूज्य प्रणम्य च क्षमापयेत् ॥
ब्राह्मणानपरान् भोज्य दक्षयेच्चैव काञ्चनं ।
व्रतिनश्चान्नदानेन वस्त्राद्यैःपूज्य तर्पयेत् ॥
दीना-न्ध-क्षपणानाञ्च अनिवार्य्यौदनं ददेत् ।
उपोष्यैकादशीं शुक्लां माघमासे तु पूर्णिमां ॥
कुर्य्याद्विधिमिमं सम्यक् स हरेस्तु व्रजेत्पदं ।
उपहसन्ति यो देवान् ब्राह्मणांश्च तपस्विनः ॥
पात्ररूपव्रतञ्चेदं न देयन्तेषु कर्हिचित् ।
बुद्धि-रूपप्रदं चायुर्द्धन-सौभाग्य-सम्पदा ॥
पुत्रदं सुखदं चैव विधिना चरितन्त्विदम् ।
व्रतस्यास्य प्रवक्तारं शमयुक्तं गुणान्वितं ॥
पूजयेद्व्रतिकामार्थं पादुका-वस्त्र-काञ्चनैः ।
रौक्ममाज्ययुतं चाथ पात्रं नीलमणीयुतं ।
अभावे तु तथा हेम्नः कर्षार्द्धेनाम्बरार्चितं ॥

नीलमणेरभावे कर्षार्द्धमात्रेण हेम्ना भूषितमध्यभागं विधेयं ।

वस्त्रयुग्मं नवं सूक्ष्मं पुष्पप्रकरचर्च्चितं ।
आनीय तत्र तत्पात्रं शुचौ देशे निवेशयेत् ॥
ततो जागरणं कुर्य्याद्गीत-वाद्यादिमङ्गलैः ।
प्रभाते तन्नयेत्पात्रं हरेरायतनं महत् ॥

स्नाप्य क्षीरादिभिर्देवं विष्णुं सम्पूज्य चैव तु।
निवेदयेत्तु तत्पात्रं प्रीयतामित्युदीरयेत्॥
ततो नानाविधैर्भक्ष्यैः सुगन्धेनौदनेन च।
दधिखण्डाद्ययुक् दत्त्वा नैवेद्यञ्च वलिं हरेत्॥
ततो नत्वा गृहं गच्छेन्नत्वा च प्रणमेत् पुनः।
प्रणम्य भोजयेद्भक्त्या व्रतिनश्च द्विजैः सह॥
दीना-न्ध-कृपणानाञ्च सर्व्वेषामनिवारितं।
आचार्य्यं हेमवस्त्राद्यैर्दक्षयेद्विधिवत्तदा॥
यथा शक्त्या पराश्चैव दीर्घमायुर्जिजीविषुः।
एतत्पात्रव्रतं ज्ञेयं गुह्यं चात्रप्रकाशितं॥
न देयं दुष्टबुद्धीनां द्विषतां पापकर्म्मणां।
वैष्णवे शिवभक्ते तु सौरे भागवते सदा॥
देयमेतद्विधानेन आयुर्धनविवृद्धये।
ये द्विषन्ति नरा मूढा विष्णुं वाथ वृषध्वजं॥
ते नूनं विष्णुभक्तास्ते विष्णुं चैव हरन्ति ये।
अनेनापि व्रतेनैव प्राप्य तत्पदमुत्तमं।
मोदते सुचिरं कालमायुष्मान् धनवानिह॥

अथ भाण्डदानं।

वशिष्ठः।

दाता ताम्रस्य भाण्डानां रत्नानां भाजनं भवेत्।

लिङ्ग पुराणे।

ताम्रा-यसानां भाण्डानां दाता यक्षाधिपो भवेत्।
लभते च परं स्थानं युज्यते च महाश्रिया ॥

ब्रह्मपुराणे।

औदुम्बराणि भाण्डानि यो दद्यादायसानि वा।
महतीमृद्धिमाप्नोति दुर्लभां त्रिदशैरपि ॥

वायुपुराणे।

स्वर्णरूप्यमयं भाण्डं देवतार्थे ददाति यः।
कुवेरलोकमासाद्य मोदते बहुवत्सरान् ॥

अथापाकदानं।

भविष्योत्तरात्-

युधिष्ठिर उवाच।

तन्मे कथय देवेश येन दत्तेन मानवाः।
बहुपुत्रो बहुधनो बहुभृत्यश्च जायते ॥

श्रीभगवानुवाच।

पुरा भारतवर्षेऽस्मिन् राजासीद्दभ्रुवाहनः।
पितृपैतामहं तेन राज्यं प्राप्तमकण्टकम् ॥
न तस्य देशे विद्वांसो न च वैरिभवं भयं।
शरीरीतथा महाव्याधिः न चैवान्तरदायकः ॥
तस्यैवं कुर्व्वतो राज्यं पूर्व्वकर्म्मार्जितं शुभं।

नास्ति भृत्यो भारसहः सर्व्वराज्यधुरन्धरः॥
न पुत्रः प्रियकृत् कश्चिन्न मन्त्री मधुराधरः।
न मित्रं कार्य्यकरणे समर्थो न सुहृत्तथा॥
न भोज्यसमये प्राप्ते भोजनं सार्व्वकामिकं।
न पत्रफलसंयुक्तं ताम्बूलं वसनं नच॥
न धनं जनसम्बन्धं कारितो रत्नसञ्चयः।
तस्यैवं कुर्व्वतो राज्यमव्याहतिविचेष्टितं॥
अथैकस्मिन् दिने विप्रः पिप्पलादोऽति विश्रुतः।
आजगाम महायोगी राज्ञः पार्श्वं महामतिः॥
तमागतं मुनिं दृष्ट्वा राज्ञो राज्ञी शुभावतीः।
पाद्यार्घासनदानेन सर्व्वथा तमपूजयेत्॥
तत् कथान्ते च कस्मिंश्चित् तमुवाच शुभावती।
भगवन् राज्यमेतन्मे सर्व्वबाधाविवर्जितं॥
कस्मान्न भृत्याः पुत्रा वा मन्त्रि-मित्रादिकं द्विज।
भोगावाप्तिर्न च तथा सर्व्वकालातिसायिनी॥

पिप्पलाद उवाच।

यद्येन पूर्व्वविहितं तदसौ प्राप्नुते फलं।
कर्म्मभूमिरियं राज्ञि नातः शोचितुमर्हसि॥
न तत् कुर्व्वन्ति राजानो दायादा न च शत्रवः।
न बान्धवा न मित्राणि यद्येन च पुरा कृतं॥
तस्मात्त्वयाद्भिर्यद्दत्तं प्राप्तं तद्राज्यमुत्तमं।
भृत्य-मित्रादि-सम्बन्धो न दत्तः प्राप्यते कुतः॥

शुभावत्युवाच।

इदानीमपि विप्रर्षे कस्मात्तन्नोपदिश्यते।
येन मे बहवः पुत्रा धनं भृत्याः भवन्ति च॥
मित्रं वा बन्धुयोगो वा व्रतं दानमुपोषितं।
कथयस्वामलमते येन सम्पद्यते सुखं॥
ततः स कथयामास पिप्पलादो द्विजोत्तमः।
आपाकाख्यं महादानं सर्व्वसम्पत्प्रदायकं॥
अनया कुरुशार्दूल नारी वाप्यथ वा पुमान्।
येन दत्तेन भाग्यानां बहूनां भाजनं भवेत्॥
ततः श्रुत्वा ददौ राजा आपाकं दानमुत्तमं।
लभेत् पुत्रान् बहून् भृत्यान् मन्त्रिमित्रं सुहृज्जनं॥

श्रीभगवानुवाच।

आपाकाख्यं महादानं कथयामि युधिष्ठिर।
दत्तेन येन कामानां पुत्रा भवति भाजनं॥
ग्रहताराबलं लब्ध्वा कुम्भकारञ्च पूजयेत्।
वासोभिर्भूषणैश्चैव पुष्पैश्चागुरुचन्दनैः॥
ब्रूयात्तथेदं सामान्यं यथा तुष्टोऽभिजायते।
त्वं मे भाण्डानि चित्राणि गुरूणिच लघूनि च॥
मणिकादीनि शुभ्राणि स्थाल्यश्च सुमनोहराः।
घटकान् करकांश्चैव प्रणीताः कुण्डकानि च॥
शरावादीनि पात्राणि भाण्डान्युच्चावचानि च।
अलिञ्जराः प्रतिघटामन्यनीकटहानि च॥

एवमन्यच्च यत्किञ्चिदुपभोग्यं भवेद्गृहे।
सम्पादय महाभाग विश्वकर्म्मा त्वमेव हि॥
भार्गवोपि प्रयत्नेन भाण्डौघैरन्वितं शुभं।
आपाकं कल्पयेदेवं विधिदृष्टेन कर्म्मणा॥
सहस्रमेकं भाण्डानां स्थापयित्वा विचक्षणः।
सन्ध्याकाले मथित्वा तु हुत्वावापि हुताशनं॥
रात्रौ जागरणं कुर्य्याद्गीतमङ्गलनिःस्वनैः।
ततः प्रभातेविमले ज्ञात्वा निर्व्वापितं शनैः॥
रक्तवस्त्रैः समासाद्य* पुष्पमालाभिरर्च्चयेत्।
यजमानस्ततः स्नात्वा शुक्लाम्बरधरः शुचिः॥
हैमरौप्यानि भाण्डानि ताम्रलोहमयानि च।
परितः स्थापयित्वा च स्वशक्त्या तानि षोडश॥
तानि चत्वारि चत्वारि न्यसेत्पूर्व्वादिदिक्क्रमात्।
पूजयित्वा प्रयत्नेन कृत्वा वापि प्रयत्नतः॥
नार्य्यश्चाविधवास्तत्र समानीय प्रपूजयेत्।
प्रदक्षिणं ततः कृत्वा मन्त्रेणानेन पूजयेत्॥
आपाकब्रह्मरूपोसि भाण्डानीमानि जन्तवः।
प्रजानां ते प्रजापुष्टिः स्वर्गश्चास्तु ममाक्षयः॥
भाण्डरूपाणि यान्यत्र कल्पितानि मया किल।
भूत्वा सत्वानुरूपाणि उपतिष्टन्तु तानि वः॥

दानमन्त्रः।

---

*समाच्छाद्येति पुस्तकान्तरे पाठः।

अत्रेदं दानवाक्यं।

ओं अद्य इममापाकं नानाभाण्डरचितं विष्णुदैवतं नानाजनेभ्यः सौभाग्या-वैधव्य-सर्व्वगुणोपेतगृहप्राप्ति पुत्रपौत्रादिसन्तति स्वाम्ययोग्यसदासुखकामोऽहमुत्सृजामीति।

योऽप्यर्थी येन भाण्डेन तत्तस्य प्रतिपादयेत्।
स्वेच्छया चैव गृह्णन्तु न निवार्य्यस्तु कश्चन॥
अनेन विधिना यस्तु दानमेतत् प्रयच्छति।
विश्वकर्म्मा भवेत्तुष्टस्तस्य जन्मत्रयं नृप॥
नारी च दत्त्वा सौभाग्यमतुलं प्रतिपद्यते
गृहं सर्व्वगुणोपेतं भृत्यमित्रजनैर्वृतं।
अवियोगं सदा भर्त्रा रूपञ्चानुत्तमं लभेत्॥
प्रदानमेतन्निर्द्दिष्टं प्रकारेण तवानघ।
क्रियते बहुभिर्भेदैर्भूमिरेषा नरोत्तम॥
निष्पाद्य भाण्डनिचयप्रवरं प्रयत्ना-
दापाकदानमिह या कुरुते वरस्त्री।
सा पुत्र-पौत्र-पशुवृद्धि-सुखानिलब्ध्वा
प्रेत्याशु भर्त्तृसहिता सुखिनी सदास्ते॥

अथ स्थालीदानं।

भविष्योत्तरात्।

अथातः सर्व्वपापघ्नं शुभदं कथयामि ते।
दानं मानकरं पुंसां सर्व्वकामप्रदायकं॥

कृत्वा ताम्रमयीं स्थालीं पलानां पञ्चभिः शतैः।
अशक्तस्तु तदर्द्धेन चतुर्थांशेन वा पुनः॥
सर्व्वशक्तिविहीनस्तु मृण्मयीमपि कारयेत्।
सुगम्भीरोदरदरीं दृढदण्डकडच्छकां॥
दण्डकड़च्छकशब्देन, दर्व्विरभिधीयते।
मृदुतण्डुलनिष्पन्नस्विन्नक्षीरप्रपूरितां
उपदंशोदकयुतां घृतपात्रसमन्वितां॥
ज्ञातपार्श्वाश्रीतवर्णां चर्च्चितां चन्दनेन च।
स्थाप्य मण्डलकैर्गन्धैः पुष्प-धूपैश्चार्च्चयेत्॥
आदित्येहनि संक्रान्तौ चतुर्द्दश्यष्टमीषु च।
एकादश्यां तृतीयायां विप्राय प्रतिपादयेत्॥
ज्वलत्ज्वलनपार्श्वस्थैस्तन्दुलैः सजलैरपि।
न भवेद्भोज्यसंसिद्धिर्मूतानां पिठरीं विना॥
त्वं सिद्धिः सिद्धिकामानां त्वन्तुष्टिस्तुष्टिमिच्छतां।
अतस्त्वां प्रणतो याचे स त्वं कुरु वचो मम॥
ज्ञाति-बन्धु-सुहृद्वर्गविप्रेषु स्वजनैस्तथा।
अभुक्तवत्सु नाश्नीयां तथा भव वरप्रदा॥
इत्युच्चार्य्य प्रदातव्या हण्डिका द्विजपुङ्गवे।
तुष्टि-पुष्टिप्रदा पुंसां सर्व्वान् कामानभीप्सता॥
वशिष्ठवचनं श्रुत्वा सा चकार तथैव तत्।
प्रादात्स्थालीं ब्राह्मणानां बहूनां बहुदक्षिणां॥
स्थालीं विशालवदनां सकडच्छकाञ्च
यच्छन्ति ये मधुरशुल्वमयीं द्विजेभ्यः।

तेषां सुहृत्स्वजनविप्रजनेन भोज्यं ।
संभुज्यमानमपि कृष्ण न याति नाशं ॥

अथाग्निष्टिकादानं ।

भविष्योत्तरात् ।

श्रीकृष्णउवाच ।

अग्निष्टिकामहं पार्थ कथयामि निबोध तां ।
यथा येन विधानेन सर्व्वसत्वसुखप्रदां ॥
आदौ मार्गशिरेमासि शोभने दिवसे शुभां ।
अग्निष्टिकां कारयित्वा सुखासनवतीं दृढां ॥
देवाङ्गणे मठे हट्टे विस्तीर्णे चत्वरे तथा ।
उभयोः सन्ध्ययोः कृत्वा सुशुष्कं काष्ठसञ्चयं ॥
ततः प्रज्वालयेदग्निं हुत्वा व्याहृतिभिः क्रमात् ।
ब्राह्मणान् भोजयेच्छक्त्या तेभ्यो दद्याच्च दक्षिणां ॥
अनेन विधिना कृत्वा प्रत्यहं ज्वालयेत्ततः ।
यदि कश्चित् क्षुधार्तः स्यात् भोज्यं तत्र प्रकल्पयेत् ॥

इदमिह दानवाक्यं ।

ओं अद्यादि हेमन्तशिशिराख्यं ऋतुद्वयं यावत् सर्व्वकाल वा यथासुखं सर्व्वसत्वप्रतापनार्थं इमामग्निष्टिकां विष्णुदैवत अपरिमितकालभोग्यब्रह्मलोकप्राप्तिसर्व्वार्थसम्पन्नचतुर्व्वेदब्राह्मण त्वकामोऽहमुत्सृजामीति ।

सुखासीनोजनस्तत्र विशीतोविज्वरस्तथा ।

या करोति कथाः पार्थ न ताः शक्यामयोदितुं।
राजवार्त्ता धर्म्मवार्त्ता जनवार्त्ता यदृच्छया॥
यद्देलोकः सुखासीनो न केनापि निवार्य्यते।
अनेन विधिना यस्तु दद्यादग्निष्टिकां नरः॥
तस्य पुण्यफलं राजन् कथ्यमानं निबोध मे।
विमानेनार्कसंकाशे समारूढो महावने॥
षष्टिर्व्वर्षसहस्राणि षष्टिर्व्वर्षशतानि च।
अर्च्चितोत्यन्तसन्तुष्टो ब्रह्मलोके महीयते॥
इह लोकेऽवतीर्णश्च चतुर्व्वेदो द्विजो भवेत्।
नियतः सत्रयाजी च अग्नितेजःप्रभावतः॥

चैत्ये सुरालयसभावसथेषु भव्यां
येऽग्निष्टिकां प्रचुरकाष्टवतीं-प्रदद्युः।
हेमन्तशैशिरऋतौ सुखदां जनानां।
कायाग्निदीप्तिममलं वपुराप्नुवन्ति॥

कात्यायनः।

हेमन्ते शिशिरे चैव पुण्याग्निं यः प्रयच्छति।
सर्व्वलोकस्य तापार्थं स पुण्यां गतिमाप्नुयात्॥
यस्तापनार्थं काष्टानि ब्राह्मणेभ्यः प्रयच्छति।
सर्व्वार्थास्तस्य सिध्यन्ति तेजस्वी चाभिजायते॥

वह्निपुराणे।

य इन्धनानि काष्ठानि ब्राह्मणेभ्यः प्रयच्छति।

सर्व्वलोक प्रतापार्थं स पुण्याकृतिमाप्नुयात् ॥

संवर्त्तः ।

दद्याच्च शिशिरे वह्निं बहुकाष्ठं प्रयत्नतः ।
कायाग्निदीप्तिं प्रज्ञाञ्च रूपसौभाग्यमाप्नुयात् ॥
इन्धनानि च योदद्याद्द्विजेभ्यः शिशिरागमे ।
नित्यं जयति संग्रामे श्रिया युक्तस्तु दीप्यते ॥

विष्णुः ।

इन्धनप्रदानेन दीप्ताग्निर्भवति संग्रामे शिवमाप्नोति ।

यमः ।

इन्धनानां प्रदानेन दीप्ताग्निर्भुवि जायते ।

महाभारते ।

यश्चेन्धनार्थं काष्ठानि ब्राह्मणेभ्यः प्रयच्छति ।
प्रतापनार्थं राजेन्द्र प्रवृत्ते शिशिरे नरः ॥
सिद्ध्यन्त्यर्थाः सदा तस्य कार्य्याणि विविधानि च ।
उपर्य्युपरि शत्रूणां वपुषा दीप्यते च सः ॥
भगवांश्चास्य सुप्रीतो वह्निर्भवतिनित्यशः ।
न तं त्यजन्ति पशवः संग्रामेषु जयत्यपि ॥

अथ दीपदानं ।

महाभारते ।

दीपप्रदाने वच्यामि फलयोगमनुत्तमं।
यथा येन यदाचैव प्रदेया यादृशाश्च ये॥
ज्योतिस्तेजः प्रकाशं वाप्यूर्द्धगत्यापि वर्ण्यते।
प्रदाने तेजसस्तस्मात्तेजोवर्द्धयते नृणां॥
अन्धन्तमस्तमिस्रञ्च दक्षिणायनमेव च।
उत्तरायणमेतस्मिन् दीपदानं प्रशस्यते॥
यस्मादूर्द्धङ्गमे तत्तु तमसश्चैव भेषजं।
तस्मादूर्द्धगति दाता भवेत्तत्रेति निश्चयः॥
देवास्तेजस्विनो यस्मात् प्रभावन्तः प्रकाशकाः।
तामसा राजसाश्चेति तस्माद्दीपः प्रदीयते॥
आलोक्य दाना चक्षुष्मान् प्रभायुक्तो भवेन्नरः।
तं दत्त्वा नोपसेवेत न हरेन्नोपहिंसयेत्॥
दीपहर्त्ता भवेदन्धस्तमोगतिरथाशुभा।
दीपदः सर्व्वलोकेषु दीपमाली विराजते॥
गिरिप्रपाते गहने चैत्यस्थाने चतुष्पथे।
दीपदाता भवेन्नित्यं य इच्छेद्भूतिमात्मनः॥
कुलद्योतविशुद्धात्मा प्रकाशत्वं स गच्छति।
ज्योतिषां चैव सायोज्यं दीपदानरतः सदा॥

स्कन्दपुराणे।

शिवादिदेवतागारे यतीनामाश्रमेषु च।
अग्निहोत्रिगृहेचैव तथैव च प्रतिश्रये॥
सर्व्वत्र शङ्करः साक्षाद्वसतीति विचिन्त्य च।

सततं दीपकान् दद्यात् श्रोत्रियाणां गृहेषु च॥

देवलः।

दीपकोद्योतकृद्राजा भवेन्मार्जनकृन्नरः।

वेदव्यासः।

यथा प्रशंसते दीपानस्मत्पितृहितेच्छया।
तस्माद्दीपप्रदो नित्यं सन्तारयति वै पितॄन्॥
दातव्याः सततं दीपास्तस्माद्भरतसत्तम।
देवतानां पितॄणाञ्च चक्षुष्या स्ते मताः प्रभो।
दीपालोकप्रदानेन चक्षुष्मान् जायते नरः॥

यमः।

लोके प्रकाशो भवति चक्षुष्मानपि दीपतः।

नन्दिपुराणे।

दूर्व्वाक्षतैस्तु सलिलैर्दीप-धूप-मनोरमैः।
दीपन्ददाति योमर्त्त्यो सुरब्राह्मणवेश्मसु॥
स तु दिव्येन यानेन महाभानुप्रभासिना।
गच्छति स्वर्गं मतुलं वसेत्तत्र समाः शतं॥
याम्यन्तमोमयं घोरं नर्कदुर्गं महाभयं।
व्रजन्ति तेन मुदिता ये केचिद्दीपदायिनः॥

स्कान्द पुराणे।

द्योतयन्तो दिशः सर्व्वा यान्ति दीपप्रदायिनः।

चतुष्पथेषु चैत्येषु ब्राह्मणावसथेषु च॥
वृषमासेषु गोष्ठेषु कान्तारगहनेषु च।
दीपदाना द्धि सर्व्वत्र महाफलमुपाश्नुते॥
विप्रवेश्मनि योदद्यात् कार्त्तिके मासि दीपकं।
अग्निष्टोमफलं तस्य प्रवदन्ति मनीषिणः॥
सन्ध्यादीपप्रदो यस्तु स गच्छेत् परमं पदं।

गारुडपुराणे।

नीलकण्ठस्य मोक्षेण गयायाञ्च तिलोदकैः।
वर्षासु दीपदानेन पितृणामनृणोभवेत्॥
यस्तु ब्राह्मणगेहेषु दीपमालां प्रयच्छति।
स निर्व्वर्त्य तमो घोरं ज्योतिषां लोकमाप्नुयात्॥

सम्वर्त्तः।

देवागारे द्विजानां वा दीपन्दत्त्वा चतुष्पथे।
मेधावी ज्ञानसम्पन्नश्चक्षुष्मांश्च सदा भवेत्॥

विष्णुधर्म्मोत्तरात्।

महावर्त्तिः सदा देया भूमिपालमहाफला।
कृष्णपक्षे विशेषेण तत्रापि च विशेषतः॥
अमावास्या च निर्द्दिष्टा द्वादशी च महाफला।
आश्वयुज्यामतीतायां कृष्णपक्षस्य वा भवेत्॥

अमावास्या तदा पुण्या द्वादशी च विशेषतः।
देवस्य दक्षिणे पार्श्वे देया तैलतुलान्विता:॥
पलाष्टकयुता राजन् वर्त्तिस्तत्रैव दापयेत्।
महारजतरक्तेन समग्रेण तु वाससा॥
वामपार्श्वे च देवस्य देया घृततुला नृप।
पलाष्टकयुतां शुक्लां वर्त्तिं तत्रैव दापयेत्॥
वाससा तु समग्रेण सोपवासो जितेन्द्रियः।
महावर्त्तिद्वय मिदं सम्प्रदत्त्वा महीपते॥
स्वर्लोकं सुचिरं भुक्त्वा जायते भूतले यदा।
तदा भवति लक्ष्मीवान् रूपसौभाग्यसंयुतः॥
राष्ट्रे च जायते यस्मिन् देशे च नगरे तथा।
कुले च राजशार्दूल तत्र स्यात् दीपवान् प्रभो॥
अत्युज्ज्वलश्च भवति युद्धेषु कलहेषु च।
ख्यातिं याति सदा लोके सज्जनानां च सद्गुणैः॥
एकामप्य थ योदद्याद्भीष्टमनयोर्द्वयोः।
मानुष्ये सर्व्वमाप्नोति यदुक्तं ते मयानघ॥
स्वर्गे तथा समाप्नोति भोगं कामख यादव।
सामान्यस्य तु दीपस्य राजन् दानं महाफलं॥
किं पुनश्चानतो यस्य फलस्यान्तो न विद्यते।
दीपदानं परं पुण्यमन्यदेवेष्वपि ध्रुवं॥
किं पुन र्देवदेवस्य अनन्तस्य महात्मनः।
गिरिशृङ्गेषु दातव्या नदीनां पुलिनेषु च॥
चतुःष्पथेषु रथ्यासु ब्राह्मणानाञ्च वेश्मसु।

वृक्षमूलेषु गोष्ठेषु कान्तारे गहनेषु च॥
दीपदानेन सर्व्वत्र महत् फलमुपाश्नुते।
यावन्त्यक्षिनिमेषाणि दीपे प्रज्वलिते पुनः॥
तावन्त्येव स राजेन्द्र वर्षाणि दिवि मोदते।
दीपदानेन राजेन्द्र चक्षुष्मानिह जायते॥
रूप-सौभाग्य-युक्तश्च धनधान्य समन्वितः।
दीपमालां प्रयच्छन्ति ये नराः शार्ङ्गिणोगृहे॥
भवन्ति ते चन्द्रसमाः स्वर्गमासाद्य मानवाः।
केशवायतने दत्त्वा दीपवृक्षं मनोहरं॥
अतीव भ्राजते लक्ष्म्या दिवमासाद्य मानवः।
दीपदानं नरः कृत्वा कुण्डागारनिभं शुभं॥
केशवालय मासाद्य नाके भाति स शक्रवत्।
यथोज्ज्वलः सदा दीपो दीपदानाच्च मानवः॥
तथा नित्योज्ज्वलो लोके नाकपृष्ठेऽपि जायते।
सदीपे तु यथा देशे चक्षूंषि फलवन्ति हि॥
तथा दीपस्य दातारो भवन्ति सफलेक्षणाः।
यथैवोर्द्धगतिर्नित्यं राजन् दीपशिखा पुनः॥
दीपदातुस्तथैवोर्द्धं गति र्भवति शोभना।
तस्मात् सर्व्वप्रयत्नेन दीपा देया नरेश्वर॥
आश्वयुज्यामतीतायां यावद्राजेन्द्र कार्त्तिकी।
तावद्दीपप्रदस्योक्तं फलं राजन् विशेषतः॥
तावत् कालं प्रयच्छन्ति ये तु दीपं सदा निशि।
तुङ्गे देशे बहिस्तेषां महत्पुण्यफलं लभेत्॥

यस्यान्धकारे गहने प्राकाश्यन्तु प्रजायते ।
प्राकाश्यं यदुशार्दूल तेन यान्ति हि तत् सुखं ॥
श्रावणे दीपकं दत्त्वा नदीवितयसङ्गमे ।
तेजस्वी च यशस्वी च रूपवानभिजायते ॥
दीपा नदीषु दातव्याः कार्त्तिक्यां च विशेषतः ।
अश्वयुक्कृष्णपक्षस्य यावत् पञ्चदशी भवेत् ॥
विलद्वारेषु दातव्याः सदा दीपा यथाविधि ।
अन्यथापि सदा दीपैर्महत्पुण्यफलं लभेत् ॥
श्रवणद्वादशीयोगे कृष्णपक्षे विशेषतः ।
घृतेन दीपा दातव्यास्तैलैर्व्वा यदुनन्दन ॥
वसामज्जादिभिर्दीपा न तु देयाः कथञ्चन ।
दत्त्वा दीपं न कर्त्तव्यं तेन कर्म्म विजानता ॥
निर्वापणञ्च दीपस्य हिंसनञ्च विगर्हितं ।
यः कुर्य्यात् कर्म्मणा तेन स्यादसौ पुष्पितेक्षणः ॥
दीपहर्त्ता भवेदन्धः काणो निर्वापको भवेत् ।
दीपदानात्परं दानं न भूतं न भविष्यति ॥
दीपदानञ्च कर्त्तव्यं विप्रवेश्मसु पण्डितैः ।
द्विजवेश्मनि यो दद्यात् कार्त्तिके मासि दीपकान् ।
अग्निष्टोमफलं तस्य प्रवदन्ति मनीषिणः ॥
प्राणिजां नीलरक्ताञ्च दीपवर्त्तिञ्च वर्जयेत् ।
विशेषेण च कर्त्तव्या पद्मसूत्रभवा नृप ॥
पद्मसूत्रोद्भवां वर्त्तिं गन्धतैलेन दीपकं ।
विरोगः सुभगश्चैव दत्त्वा भवति मानवः ॥

प्रज्वाल्य देवदेवेश कर्पूरेण च दीपकं।
अश्वमेधमवाप्नोति कुलञ्चैव समुद्धरेत्॥

एतन्मयोक्तं तव दीपदाने
फलं समग्रं यदुवंशचन्द्र।
श्रुत्वा यथावत्सततं हि देया
दीपास्त्वया विप्रसुरालयेषु॥

इति भोगदानानि समाप्तानि।

अथाभयदानं।

तत्र विष्णुः।

सर्व्वप्रदानाधिकाभयप्रदानं तत्प्रदानेनाभीष्टलोकमवाप्नोति।

संवर्त्तः।

भूताभयप्रदानेन सर्व्वान् कामानवाप्नुयात्।
दीर्घमायुश्च लभते सदा च सुखिनो भवेत्॥

नन्दिपुराणे।

मरुतां सूक्ष्मदेहानां तथा च व्याधितात्मनां।
हिंस्राणां सौम्यमूर्त्तीनां तथाह्यफलदाभयं॥
वरमेकस्य सत्त्वस्य जीविताभयरक्षणं।
नतु विप्रसहस्रस्य गोसहस्रं सदक्षिणं॥

मार्कण्डेयपुराणे।

धिक् तस्य जीवितं पुंसः शरणार्थिनमातुरं।
यो नार्त्तमनुगृह्णाति वैरपक्षमपि ध्रुवं॥
यज्ञ-दान-तपांसीह परत्र च न भूतये।
भवन्ति तस्य यस्यार्थपरित्राणे न मानसं॥

महाभारते।

लोभा-द्वेषा-द्भया-द्वापि यस्त्यजेच्छरणागतं।
ब्रह्महत्यासमन्तस्य पापमाहुर्मनीषिणः॥
शास्त्रेषु निष्कृतिर्दृष्टा महापातकिनामपि।
शरणागतहन्तॄणां न दृष्टा निष्कृतिः क्वचित्॥
मखतामपि यज्ञानां कालेन क्षीयते फलं।
भीताभयप्रदानस्य क्षय एव न विद्यते॥

तथा।

प्राणिनं वध्यमानं हि यः शक्तः समुपेक्षते।
स याति नरकं घोरमिति प्राहुर्मनीषिणः॥
चतुःसागरपर्य्यन्तां यो दद्यात् पृथिवीमिमां।
सर्व्वेभ्योऽभयं यश्च तयोरभयदोऽधिकः॥

रामायणे।

बद्धाञ्जलिपुटं दीनं याचन्तमपराधिनं।
न हन्याच्छरणं प्राप्तं सतां धर्म्ममनुस्मरन्।
आर्त्तो वा यदि वा त्रस्तः परेषां शरणागतः।
अपि प्राणान् परित्यज्य रक्षितव्यः कृतात्मना॥

नचेद्भयाद्वा मोहाद्वा कामाद्वा तन्तु रक्षति।
स्वयं शक्त्या यथान्यायं तत्पापं लोकगर्हितं॥
विनष्टः पश्यतो यस्यारक्षितः शरणागतः।
आदाय सुकृतं तस्मात् सर्व्वं गच्छत्यरक्षितः॥
सुपर्य्याप्तनिसृष्टस्य नाश्वमेधस्य तत्फलं।
यत्फलं जातसन्त्रासे रक्षिते शरणागते॥

सुपर्य्याप्तनिसृष्टस्येति, सुपर्य्याप्तं सुसम्पूर्णं निसृष्टं दानं यस्य स तथा।

पद्मपुराणे।

सर्व्वेषामेव दानानामिदमेवैकमुत्तमं।
अभयं सर्व्वभूतानां नास्ति दानमतः परं॥
चराचराणां भूतानामभयं यः प्रयच्छति।
स सर्व्वभयनिर्म्मुक्तः परं ब्रह्माधिगच्छति॥

वह्निपुराणात्।

शिविरुवाच।

एकतः क्रतवः सर्व्वे समाप्तवरदक्षिणाः।
एकतोभयभीतस्य प्राणिनः प्राणरक्षणं॥
नातो गुरुतरो धर्म्मः कश्चिदन्योऽस्ति भूतले।
प्राणिनां भयभीतानामभयं यत् प्रदीयते॥
चरात्मकस्य सत्त्वस्य प्रदत्तं जीविताभयं।

न च विप्रसहस्रस्य गोसहस्रमलङ्कृतं ॥
हेमधेनुधरादीनां दातारः सुलभा भुवि।
दुर्लभः पुरुषो लोके सर्व्वभूताभयप्रदः॥
महतामपि यज्ञानां कालेन क्षीयते फलं।
भीताभयप्रदानस्य क्षय एव न विद्यते॥
अभयं सर्व्वसत्त्वेभ्यो यो ददाति दयापरः।
तस्य देहाद्विमुक्तस्य भयं नास्ति कुतश्चन॥
दत्तमिष्टं तपस्तप्तन्तीर्थसेवाश्रयं तथा।
सर्व्वाण्यभयदानस्य कलां नार्हन्ति षोडशीं॥
चतुःसागरपर्य्यन्तां यो दद्यात् पृथिवीमिमां।
अभयं यस्य भूतेभ्यो यो ददाति ततोऽधिकं॥
अपि त्यजे राज्यमहं शरीरं वापि दुस्त्यजं।
नत्वेनं भयसन्त्रस्तन्त्यजे दीनं कपोतकं॥
यन्ममास्ति शुभं किञ्चित्तेन जन्मनि जन्मनि।
भवेत्त्राता महार्त्तानामार्त्तिनाशाय देहिनां॥
नह्यहं कामये राज्यं न स्वर्गं नापुनर्भवं।
प्राणिनां दुःखतप्तानां कामये दुःखनाशनं॥
यथात्र नानृतां वाणीमहमेतामुदाहरे।
सत्येनानेन भगवान् प्रसीदतु महेश्वरः॥

विष्णुधर्म्मोत्तरे।

स एकः पुरुषो लोके सर्व्वधर्म्मभृतां वरः।
वधभीतस्य यः कुर्य्यात्परित्राणं नरोत्तमः।

शक्रलोके स्थितिस्तस्य यावदिन्द्राश्चतुर्द्दश॥
तमःप्रवेशभीतस्य परित्राणेन मानवः।
ब्रह्मलोकमवाप्नोति नात्र कार्य्या विचारणा॥
तमःप्रवेशनं। चक्षुरुत्पाटादिना अन्धीकरणम्।
वधादपि परं पापं चक्षुषां तु वियोजनम्।
पार्थिवेन न तत्कार्य्यं कदाचिदपि कस्यचित्॥
तमःप्रवेशनं कृत्वा परेषां पुरुषाधमः।
अन्धत्वं ध्रुवमाप्नोति यत्र यत्रापि जायते।
अपि कल्पसहस्राणि तमसा ह्यभियुज्यते॥
अङ्गच्छेदनभीतस्य कृत्वा त्राणविनिर्म्मितम्।
रुद्रलोकमवाप्नोति कल्पाशेषमिति श्रुतिः।
कल्पादिसर्गे भवति ज्ञानयुक्तो नरस्ततः॥
कृत्वा बन्धनभीतस्य परित्राणं नरोत्तमः।
सर्व्वबन्धविनिर्मुक्तो वायुलोके महीयते॥
आसेधनादिभीतस्य त्राणं कृत्वा तथा नरः।
सर्व्वदुःखविनिर्म्मुक्तः साध्यानां लोकमाप्नुयात्॥
ताड़नाद्यस्तु भीतस्य त्राणं तत्र समाचरेत्।
सर्व्वदुःखविनिर्म्मुक्तो भृगूणां लोकमश्नुते॥
विवासनाच्च भीतस्य त्राणं कृत्वा तथा नरः।
सर्व्वलोकमवाप्नोति मानुष्ये स्थानमुत्तमम्॥
धनापहारभीतस्य त्राणं कृत्वा नरोत्तमः।
दानपुण्यमवाप्नोति लोकं दानदमेवच॥
अवमानाच्च भीतस्य त्राणं कृत्वा नरोत्तमः।

स्वर्गलोकमवाप्नोति पूजां देवगणास्तथा ॥
नरोऽन्नतपरित्राणः पुण्यं किञ्चिद्यदाचरेत्।
भागी तस्यापरित्रातुः नरः पुण्यस्य कर्म्मणः ॥
पशूनाञ्च मृगाणाञ्च पक्षिणाञ्च तथा द्विजः।
तृण-द्रुम-लतानाञ्च त्राणाद्भवति नाकभाक्॥
वधकस्य गतं हस्ते पशुं हृत्वा नरोत्तमः।
नाकलोकमवाप्नोति सुखी सर्व्वत्र जायते ॥
यावन्ति पशुरोमाणि तावद्वर्षाणि मानवः।
सर्व्वलोकमवाप्नोति यस्य त्राणं करोत्यसौ ॥
अपि कीटपतङ्गस्य त्राणात् स्वर्गमुपाश्नुते।
बह्नन्यब्दसहस्राणि नात्र कार्य्या विचारणा ॥
चौरग्रस्तं नृपग्रस्तं रिपुग्रस्तं विमोचयेत्।
व्यालग्रस्तं तथा विप्राः सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥
व्याधितस्यौषधं कृत्वा प्राणदानफलं लभेत् ॥
उपदेशं तथा कृत्वा भिषक्‌मूल्यं विना द्विजाः।
प्राणदानफलं प्राप्य नाकलोके महीयते ॥

ये रक्षणायाभिरता मनुष्या
भीरून् गतास्ते त्रिदशेन्द्रलोकं।
अवन्ति नाद्यापि च ते नृवीराः
कालेऽपि तेषां च्यवनञ्च नास्ति ॥

इत्यभयदानविधिः।

अथ पान्यशुश्रूषा।

गारुडपुराणे।

पान्थं परिचरेद्यस्तु शयना-सन-भोजनैः।
स स्वल्पेन प्रयासेन जयति क्रतुयाजिनाम्॥
प्रतिश्रयं सुनिर्व्वातं शुचिभूमितलं शुभं।
अध्वनीनाय सम्पाद्य सद्यो दहति पातकम्॥
वर्षास्वामुष्णतमे हेमन्ते शिशिरेषु च।
ग्रीष्मे च शीतलतले पान्थं विश्राम्य नाकभाक्॥
दत्त्वा वासो विवस्त्राय रोगिणे रुक्प्रतिक्रियाम्।
तृषार्त्ताय जलं स्वादु मृष्टमन्नं बुभुक्षवे।
पथिकाय यथा वित्तं सर्व्वं तरति दुष्कृतं॥
अध्वन्यमनुमान्यापि शाकमूलफलैर्जलैः।
सकृत् सत्कृत्य वाचापि श्रेयसो भाजनं भवेत्॥
अध्वगानां सुखार्थाय मार्गसत्कारकारिणः।
अगाधजलसञ्चारे तेषां नौकाधिकारिणः॥
प्रपामपांरसैर्दिव्यैः पूर्णां पथिकहेतवे।
ये कुर्वन्ति नरा राजन् सर्व्वे ते स्वर्गभागिनः॥

विष्णुधर्म्मोत्तरे।

मार्गे सेतुं सुखं कृत्वा वह्निष्टोमफलं लभेत्।
जलप्रतरणे सेतुं यः करोति नरोत्तमः।
स तीर्णः सर्व्वदुःखेभ्यो नाकलोकं प्रपद्यते॥

तथा।

शर्करा-लोष्ट-पाषाण-कण्टकानि तथा नरः।
मार्गादपास्य यत्नेन गोदानफलमाप्नुयात्॥
श्रान्तसंवाहनं कृत्वा तदेव फलमश्नुते।
वीजयित्वा तथा पान्थं तालवृन्तेन मानवः।
स्कन्धेन श्रान्तमूह्यापि वाजपेयफलं लभेत्॥
वाहनेनाथ यानेन खेदश्रान्तं तथा वहन्।
साध्यानां लोकमासाद्य देवभोगानुपाश्नुते॥
श्रान्तस्य भोजनं दत्त्वा स्थानमाप्नोति शाश्वतं।
श्रान्ते तु तर्पिते तो... स्वस्तिमाप्नोति मानवः॥
उपानद्वाश्च स्कन्धेन श्रान्तं संयोज्य मानवः।
संस्थाप्य शुभदेशेषु यज्ञाद्बहुफलं लभेत्॥
भारश्रान्तात् तथा भारं गृहीत्वा वहते तु यः।
कर्मणा तेन विप्रेन्द्राः स्वर्गलोकमुपाश्नुते॥
मूल्येन वाहयित्वा यः परभारं विचक्षणः।
अश्वमेधस्य यज्ञस्य फलं दशगुणं लभेत्॥
रक्षणं पथितः कृत्वा पान्थानां मानवोत्तमः।
प्राप्य वृद्धिं परां लोके रुद्रलोके महीयते॥
चौरेभ्यो रक्षणं कृत्वा शक्रलोके महीयते।
नदीतीरेषु सन्तार्य्य पान्थान् पथि तथा नरः॥
शीघ्रन्तरति दुर्गाणि क्षुरधारांश्च पर्व्वतान्।
सर्व्वपोतं तथा नावं यः करोति नदीतटे॥

अश्वमेधफलं तस्य नरः प्राप्नोति कर्म्मणः ॥
सभास्थानानि रम्याणि यः करोति विचक्षणः।
उद्यानानि विचित्राणि शक्रलोके महीयते ॥
प्रेक्षणीयप्रदानेन स्मृतिं मेधाञ्च विन्दति।
पान्थानां हि दया कार्य्या कर्म्मणा येन केनचित्।
उपास्यानं परं पान्थः स्वगृहाद्योविनिसृतः॥
लिङ्गी वा ह्यथवा वर्णी पान्थो पथिविचक्षणैः।
उपास्थानैश्च कर्त्तव्यः पान्थः पूज्यस्तु सर्व्वशः॥

पान्थस्य पूजां पुरुषस्तु कृत्वा
स्थानं समासाद्य पुरन्दरस्य।
प्राप्नोति पुण्यैर्दिवि देवभोगान्
पान्थास्ततः पूज्यतमा नृलोके॥

इति नानोपचाराः।

अथाभ्यङ्गदानं।

स्कन्दपुराणे।

तैलेन शुभगन्धेन दत्त्वाभ्यङ्गं द्विजातये।
विरूक्ष्य शुभचूर्णेन स्नाप्य कोष्णेन वारिणा।
प्राप्नोति चन्द्रसालोक्यं यावदाभूत संप्लवं॥
यस्तु मार्गपरीक्षान्तं द्विजातिं श्रमकर्षितं।
तैलेनाभ्यञ्जयेत् प्राज्ञः स सुखी मोदते चिरं॥

यस्तु पक्वादितैलेन द्विजं वा केशवं शिवं।
संस्नापयति पुण्यात्मा किं तस्य बहुभिर्मखैः॥
यो द्वादशीदिने विष्णुमभ्यञ्जयति भक्तितः।
शुभगन्धेन तैलेन शक्तितो गोघृतेन वा।
तिलतैलेन वा लोके गन्धर्व्वाणां स मोदते॥
सर्पिषा कपिलाधेनोरथवान्येन सर्पिषा।
उत्तरायणमासाद्य योऽभ्यञ्जयति धूर्जटिं॥
महापूजां घृतेनैव तस्मिन्नेव दिने शुभे।
कृत्वा मनुष्यो लभते राज्यं निहतकण्टकं॥
सर्प्पिः पलसहस्रेण गोविन्दस्य शिवस्य वा।
महास्नानं नर कृत्वा ब्रह्महत्यां निरस्यति॥

पद्मपुराणे।

पर्व्वणि ब्रह्मकूर्च्चेन यः स्नापयति देवतां।
तस्य पुण्यकृतो लोका न क्षीयन्ते कदाचन॥
पञ्चामृतेन यो नित्यं पुण्यकालेषु वा पुनः।
स्नपनं सर्व्वदेवानां महापातकनाशनं॥
ब्रह्मकूर्च्चं पञ्चामृते परिभाषायां व्याख्याते।

ब्रह्माण्डपुराणे।

शिरोऽभ्यङ्गेन विप्राणां प्रोषितानां विशेषतः।
सुरूपः सुभगः श्रीमांस्तेजस्वी जायते नरः॥

अथ पादाभ्यङ्गदानं ।

कात्यायनः ।

पादाभ्यङ्गैः शिरोभ्यङ्गै र्दान-माना-र्चनादिभिः ।
मृष्टवाक्यैर्विशेषेण पूजनीया द्विजोत्तमाः ॥

नन्दिपुराणे ।

पादाभ्यङ्गन्तु यो दद्यात् पान्थाय परिवेदिने ।
स शुभाभरणैः पादैर्वन्दिभिर्नित्यवन्दितः ।
भवेन्नृपो महाभागो मण्डले दशयोजने ॥
संवाह्य तु परिश्रान्तं पादाभ्यङ्गादिना नरः ।
धर्म्मस्य पुरमाप्नोति सर्व्वकामगुणोज्ज्वलम् ॥
दत्त्वा वारि सुखस्पर्शं पादाभ्यङ्गं द्विजातये ।
उच्छिष्टमार्ज्जनाच्चापि गोदानफलमाप्नुयात् ॥

नारदीयपुराणे ।

पादाभ्यङ्गं द्विजे दत्त्वा यतिभ्यो वापि यत्नतः ।
सुरेन्द्रलोकमासाद्य मोदते विगतव्यथः ॥
अध्वस्फुटितपादानां परिचर्य्यां करोति यः ।
स सर्व्वभोगसम्पूर्णं विमानमधिरोहति ॥

अथ यज्ञोपवीतदानं ।

आह बोधायनः।

यज्ञोपवीतदानेन जायते ब्रह्मवर्चसी।
तस्मात्तानि प्रदेयानि ब्राह्मणेन विपश्चिता॥
विना यज्ञोपवीतेन समस्ता निष्फलाः क्रियाः।
विना यज्ञोपवीतेन ब्राह्मण्यादेव हीयते।
अतः पुण्यतमं प्राहुस्तस्य दानं महर्षयः॥

अत्रिः।

क्षौमजं वाथ कार्पासं पट्टसूत्रमथापि वा।
यज्ञोपवीतं यो दद्यात् हृतवर्णं सुशोभनं।
यथा यत्तथा विधानेन अग्निष्टोमफलं लभेत्॥

नन्दिपुराणे।

यजते मानवो धर्म्मी दशवर्षाण्यसंशयः।
यज्ञोपवीतं दत्त्वा तु विधिपूर्व्वं द्विजातये॥

तथा।

यज्ञोपवीतदानेन सुरेभ्यो ब्राह्मणाय वा।
भवेद्विप्रश्चतुर्व्वेदः शूद्रधीर्नात्र संशयः॥
त्रिवृच्छुक्लं सुपीतं वा पट्टसूत्रादिनिर्म्मितं।
दत्त्वोपवीतं रुद्राय भवेद्वेदान्तपारगः॥

आदित्यपुराणे।

क्षौमजं वाथ कार्पासं पट्टसूत्रमथापि वा।
दद्याद्यज्ञोपवीतं यस्ते न हिंसन्ति वायसाः॥

वायुप्रोक्ते।

उपाकर्म्मणि विप्रेभ्यो दद्याद्यज्ञोपवीतकं।
आयुष्मान् जायते तेन कर्म्मणा मानवो भुवि॥

तथा।

श्रावणे शुक्लपक्षस्य प्रतिपत्प्रभृति क्रमात्।
पवित्रारोहणं कुर्य्याद्देवतानां यथाविधि॥
अग्नि-ब्रह्मा-शिवो-भास्य-पन्नग-स्कन्द-भानवः।
दुर्गा-यमे-न्द्र-गोविन्द-कामे-शाः-पितरः स्मृताः॥
इत्येताभ्यो देवताभ्यः श्रावणेमलपक्षके।
पवित्रारोपणं कुर्व्वन् याति विष्णोः परं पदं॥

अथ शिरोरोगघ्नयज्ञोपवीतदानं।

वायुपुराणे।

उपवीतं हिरण्येन निर्मितं तु पलार्द्धतः।
तदर्द्धेन तदर्द्धेन यथाविभवतोपि वा॥
उत्तरीयं राजतञ्च तावत्या संख्यया कृतं।
ब्राह्मणाय ब्रह्मविदे श्रोत्रियायोपपादयेत्॥

मन्त्रेणानेन विधिवत् पूजितायाङ्गुलीयकैः ।
धाता विधाता जगतां परमात्मा चतुर्मुखः ।
विनाशयतु मे क्षिप्रं रोगवेगं शिरोगतं ॥

दानमन्त्रः ।

अथ गर्भस्रावघ्नयज्ञोपवीतदानं ।

यज्ञोपवीतं कुर्व्वीत काञ्चनं तु स्वशक्तितः ।
अत्यन्तवर्णयुक्तेन राजितस्योत्तरीयकं ॥
पलार्द्धेन तदर्द्धेन तदर्द्धार्द्धेन वा पुनः ।
ग्रन्थिप्रदेशे देयन्तु मौक्तिकं वज्रमेव च ॥
प्रक्षाल्य पञ्चगव्येन गायत्र्या ताम्रभाजने ।
मानप्रमाणं तस्मिंस्तु निक्षिपेदाज्यमध्यतः ॥
आज्यस्योपरि संस्थाप्यमुपवीतं सुपूजितं ।
गन्ध-पुष्पा-क्षतै-र्धूपैर्नैवेद्यैरतिभक्तितः ॥
ततो ब्राह्मणमाहूय होमं तत्र च कारयेत् ।
तिलैराज्येन मधुना मिश्रैरष्टोत्तरं शतं ॥
तस्मै हुतवते देयं वस्त्राद्यैः पूजिताय तु ।
मन्त्रेणानेन विधिवत् प्राज्ञु खेनोपवीतकं ॥
उपवीतं परमिदं ब्रह्मणा विधृतं पुरा ।
चतनोक्तोऽस्य दानेन गर्भं सन्धारये ह्यहं ॥

दानमन्त्रः ।

फलान्यपि ब्राह्मणेभ्यो यस्मिन् काले प्रदापयेत् ।

अनुव्रज्य तथाचार्य्यं प्रणिपत्य क्षमापयेत्।
गर्भस्रावभयाद्दोषादेवं कृत्वा विमुच्यते॥

अथ यष्टिदानं।

नन्दिपुराणे।

यष्टिं वृद्धाय यो दद्यात् पुरुषस्तु दयापरः।
सदा श्रेयो भवेन्नित्यं गतभीः स्वर्गमाप्नुयात्॥

आदित्यपुराणे।

यष्टिं ये तु प्रयच्छन्ति नेत्र हीनेऽथदुर्ब्बले।
तेषान्तु विफलः पन्थाः फल-मूलोपशोभितः॥

ब्रह्मवैवर्त्ते।

ये पङ्गुभ्यश्च पान्येभ्यो दीनेभ्योऽपि दयालवः।
यष्टिदानं प्रकुर्व्वन्ति नीरोगास्ते न संशयः॥
पङ्गोश्चरणकार्य्याणि यष्टिना कुरुते सदा।
गोसर्पादिनिवृत्तिश्च जायते यष्टिधारणात्॥
भीतानां शरणं यष्टिर्गच्छतां निशि वा वने।
शङ्का-पङ्कादिदोषोत्थामियमेव निरस्यति।
अतः प्रविकलेयश्च यष्टिं तुष्टिकरान्ददेत्॥

स्कन्दपुराणे॥

यतिभ्यो वैणवन्दण्डं द्विजेभ्योपि खनित्रकम् ।
प्रदाय परलोकेऽसौ यमदण्डं न गच्छति ॥
प्रददाति यथावर्णं यो दण्डं ब्रह्मचारिणे ।
स महाब्राह्मणो भूत्वा ब्रह्मवर्चसमश्नुते ॥

अथ यत्यादिवपनम् ।

आह यमः ।

ब्रह्मचारि-यतिभ्यश्च वपनं यस्तु कारयेत् ।
नखकर्म्माणि कुर्व्वाणश्चक्षुष्मान् जायते नरः ॥

विश्वामित्रः ।

यतिभ्यो ब्रह्मचारिभ्यः पथिकेभ्यस्तथैव च ।
अन्येषामपि दीनानां प्रकुर्व्वन् केशकृन्तनम् ॥
नखानां धावनं चैव कृत्वा रूपयुतो भवेत् ।
यस्तु सर्व्वजनार्थाय केश-श्मश्रु-नखादिकीम् ॥
क्रियां समुद्दिश्य भृतिं नापिताय प्रयच्छति ।
देवागारेषु तीर्थे वा श्रद्धया परया युतः ॥
स वसेदाश्विने लोके वीतशोकः शतं समाः ।

अथपान्यशुश्रूषाप्रसङ्गेण
गोपरिचर्य्या निरूप्यते ।

तत्र ब्रह्मपुराणे ।

वन्दनीयाश्च पूज्याश्च गावःसेव्यास्तु नित्यशः ।

तथा।

गवाङ्गोष्ठे स्थितानान्तु यः करोति प्रदक्षिणं।
प्रदक्षिणी कृतं तेन जगत् सदसदात्मकम्॥

गावःपवित्रमाङ्गल्या गवि लोकाः प्रतिष्ठिताः।
गावो वितन्वते यज्ञान् गावः सर्व्वाघसूदनाः॥
गोमूत्रं गोमयं सर्प्पिः क्षीरं दधि च रोचना।
षड़ङ्गमेतत्परमं माङ्गल्यं सर्व्वदा गवां॥
शृङ्गोदकं गवां पुण्यं सर्व्वाघविनिसूदनम्।
गवां कण्डूयनञ्चैव सर्व्वकल्मषनाशनम्।
गवां ग्रासप्रदानेन स्वर्गलोके महीयते॥

पद्मपुराणे।

सदा गावः प्रणम्यास्तु मन्त्रेणानेन पार्थिव॥
नमो गोभ्यः श्रीमतीभ्यः सौरभेयीभ्य एव च।
नमो ब्रह्मसुताभ्यश्च भूयो भूयो नमो नमः।
मन्त्रस्य स्मरणादेव गोदानफलमाप्नुयात्॥

आदित्यपुराणे।

लवणं च यथाशक्त्या गवां यो वै ददाति च।
तेषां पुण्यकृतां लोका गवां लोकं व्रजन्ति ते॥
योयं भक्त्या किञ्चिदप्राश्यदद्या-
द्गोभ्यो नित्यं गोव्रती सत्यवादी।

शान्तो वृद्धो गोसहस्रस्य पुण्यं
संवत्सरेणाप्नुयाद्धर्म्मशीलः ॥

देवीपुराणे ।

गोपालको* गवां गोष्ठे यस्तु धूमं न कारयेत् ।
मक्षिकालीननरके मक्षिकाभिः स भक्ष्यते ॥
मृतवत्सान्तु गां यस्तु दमित्वा पिबते नरः ।
वाञ्छितास्याश्चिरं तिष्ठेत् क्षुधार्त्तो वै नराधमः ॥

महाभारते ।

गोकुलस्य तृषार्त्तस्य जलान्ते वसुधाधिप ।
उत्पादयति यो विघ्नं तमाहुर्ब्रह्मघातकम् ॥
कृत्वा गवार्थे शरणं शीत-वात-क्षमं महत् ।
आसप्तमन्तारयति कुलं भरतसत्तम ॥

ब्रह्मपुराणे ।

सदोषा गौर्गृहे जाता परिपाल्या सदा स्वयं ।
दुःशीलोपि द्विजःपूज्यो नतु शूद्रः सुसंयतः† ॥
अनाथानां गवां यस्मात्कार्य्यस्तु शिशिरे मठः ।
पुण्यार्थं यत्र दीयन्ते तृण-तोये-स्वनानि च ॥

हारीतः ।

द्वौ मासौ पाययेद्वत्सं तृतीये द्विस्तनन्दुहेत् ।

* गोरूपाणामिति क्वचित्पाठः ।

† न शूद्रो विजितेन्द्रिय इति क्वचित्पाठः

चतुर्थं त्रिस्तनञ्चैव यथान्यायं यथावलं ॥

ब्रह्मपुराणे।

आषाढ्यामाश्वयुज्याञ्च पौष्यां माघ्यां च सर्व्वदा।
न गृह्णीयाद्गवां चीरं सर्व्वं वत्साय निक्षिपेत् ॥
न षण्डान्वाहयेच्चैव न गां भारेण पीडयेत्।
युगादिषु युगान्तेषु षड़शीतिमुखेषु च ॥
दक्षिणो-त्तरगे सूर्य्ये तथा विषुवतोर्द्दयोः।
सङ्क्रान्तिषु च सर्व्वासु ग्रहणे चन्द्र-सूर्य्ययोः॥
पञ्चदश्याञ्चतुर्द्दश्यां द्वादश्यामष्टमीषु च।
उपचारो गवां कार्य्यो मासि मासि यथाक्रमं॥
लवणस्य तु चत्वारि पलान्यष्टौ घृतस्य च।
परकीयस्य दुग्धस्य तथा देयानि षोडश ॥
द्वात्रिंशत् शीतलस्यापि जलस्य च पलानि च।
आदौ विचार्य्य पयसः परिमाणं वलं रुचि ॥
आकस्मिकन्तु दातव्यं पुण्यार्थन्तु गवाह्निकं।
प्रभाते लवणं यत्र दीयते च ततो जलं ॥
ततस्तृणानि भोज्यञ्च पोषणं मांसवर्जितं।
निशि दीपः सतन्त्रीको दिव्या पौराणिकी तथा ॥
एवं कृते महीं पूर्णां रत्नैर्दत्त्वा भवेत् फलं।
गोप्रदानाय यत्पुण्यं गवां संरक्षणाद्भवेत् ॥
मनुष्यैस्तृण-तोयाद्यैर्गावः पाल्याः प्रयत्नतः।
देयाः पूज्याश्च पोष्याश्च प्रतिपाल्याश्च सर्व्वदा ॥

तथा।

तृणोदकाद्येषु वनेषु मत्ताः
क्रीडन्तु गावः सवृषाः सवत्साः।
क्षीरं प्रमुञ्चन्तु सुखं स्वपन्तु
शीता-तप-व्याधि-भयैर्व्विमुक्ताः॥

इमं मन्त्रं स शुद्धात्मा जपेन्नित्यं समाहितः।
गच्छन् तिष्ठन् जपन् जिघ्रन् भुञ्जन् क्रीडन् समुत्सृजेत्॥
महाभयेषु सर्व्वेषु समेषु विषमेषु च।
प्रयाणकाले च तथा श्रोतव्यमभयप्रदं॥

तथा।

घास-ग्रासादिकं देयं निशि दीपः सुभास्वरः।
इतिहास-पुराणानां व्याख्यानं सोपशोभनं॥
अन्तस्तुष्टैर्यथा शक्त्या परिचर्य्या यथाक्रमं।
ताडना-क्रोश-खेदाश्च स्वप्नेऽपि न कदाचन॥
तासां मूत्र-पुरीषे तु नोद्वेगः क्रियते क्वचित्।
शोधनीयश्च गोवाटः शुष्कघासादिकैः सदा॥
ग्रीष्मे वृक्षाकुले वेश्म-शीततोये विकर्द्दमे।
वर्षासु चाथ शिशिरे सुखोष्णे वातवर्जिते॥
उच्छिष्टं मूत्र-विट्-श्लेष्म-मलं जह्याच्च तत्र च।
रजस्वला न प्रवेश्या नान्त्यजातिर्नपुंश्चली॥
न लङ्घयेद्वत्सतरीं न क्रीडेद्गोष्ठसन्निधौ।
न गन्तव्यं गवां मध्ये सोपानत्कैः सपादुकैः॥

हस्त्य-श्व-रथ-यानैश्च सवितानैः कदाचन।
दक्षिणोत्तरगैः प्रह्वैर्गन्तव्यश्च पदातिभिः॥
गावःक्षुधातुराः पाल्याः श्रद्धया पितृ-मातृ-वत्।
गिरि-प्रपात-सिंह-र्च-शीता-तप-भयातुराः* ॥
महाकोलाहले घोरे दुर्द्दिने देशविप्लवे।
गवां तृणानि देयानि शीतलञ्च तथा जलं॥

विष्णुधर्म्मोत्तरात्।

पुष्कर उवाच।

गवां हि पालनं राज्ञा कर्त्तव्यं भृगुनन्दन।
गावः पवित्रा माङ्गल्या गोषु लोकाः प्रतिष्ठिताः॥
गावो वितन्वते यज्ञं गावो विश्वस्य मातरः।
शकृन्मूत्रं परं तासामलक्ष्मीतापनं परं॥
तच्च मेध्यं प्रयत्नेन तत्र लक्ष्मीः प्रतिष्ठिता।
उद्वेगश्च न गन्तव्यः शकृन्मूत्र व्यजानता॥
गवां मूत्र-पुरीषे-तु ष्ठीवनाद्यं न संत्यजेत्।
गोरजः परमं पुण्यमलक्ष्मीविघ्ननाशनं॥
गवां कण्डूयनञ्चैव सर्व्वकल्मषनाशनं।
गवां शृङ्गोदकं राम जाह्नवीजलसन्निभं॥
गोमूत्रं गोमयं चीरं दधि सर्प्पिः कुशोदकं।
पवित्रं परमं ज्ञेयं स्नाने पाने च भार्गव॥

---

* भयात्मयेति क्वचित्पाठः।

रक्षोघ्नमेतन्माङ्गल्यं कलिदुःखप्रनाशनं।
रोचना च तथा धन्या रक्षो-गद-गरापहा॥
यस्तु कल्यं समुत्थाय मुखमाज्ये निरीक्षते।
तस्यालक्ष्मीः क्षयं याति वर्द्धते नच किल्बिषं॥
गवां ग्रासप्रदानेन पुण्यं स महदश्नुते।
यावतीः शक्नुयाद्गावः सुखं धारयितुं गृहे।
धारयेत्तावतीर्नित्यं क्षुधितास्ता न धारयेत्॥
दुःखिता धेनवो यत्र वसन्ति द्विजमन्दिरे।
नरकं समवाप्नोति नात्र कार्या विचारणा॥
दत्त्वा परगवे ग्रासं पुण्यं स महदश्नुते॥
शिशिरं सकलं कालं ग्रासं परगवे यथा।
दत्त्वा स्वर्गमवाप्नोति संवत्सरशतानि षट्॥
अशभक्तं नरो दत्त्वा नित्यमेव तथा गवां।
समाष्टकेन लभते नाकलोकसमायुतं॥
सायं प्रातर्मनुष्याणामशनं वेदनिर्म्मितं।
तथैकमशनं दत्त्वा गवां नित्यमतन्द्रितः॥
द्वितीयं यः समश्नाति तेन संवत्सरान्नरः।
गवां लोकमवाप्नोति यावन्मन्वन्तरं द्विजः॥
शीतत्राणं गवां कृत्वा गृहे पुरुषसत्तम।
गवां प्रपाने* पानीयं कृत्वा पुरुषसत्तम।
वारुणं लोकमाप्नोति क्रीडत्यप्सरसांगणैः† ॥

* प्रयाणे इति क्वचित्पाठः।

† यावदिन्द्राश्चतुर्द्दश इति क्वचित्पाठः।

गवां पानप्रवृत्तानां यस्तु विघ्नं समाचरेत् ।
ब्रह्महत्या कृता तेन घोरा भवति भार्गव ।
परां तृप्तिमवाप्नोति यत्र तत्राभिजायते ॥
गवां प्रचारभूमिन्तु वाहयित्वा हलादिना ।
नरकं महदाप्नोति यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥
सिंह-व्याघ्र-भयत्रस्तां पङ्कलग्नां जले गतां ।
गामुद्धृत्य नरः स्वर्गे कल्पभोगानुपाश्नुते ॥
गवां लवणदानेन रूपवानभिजायते ।
सौभाग्यं महदाप्नोति लावण्यञ्च द्विजोत्तम ॥
औषधञ्च तथा दत्त्वा विरोगस्त्वभिजायते ।
औषधं लवणं तोयमाहारञ्च प्रयच्छति ॥
तासाञ्चे दववह्नानाञ्चरन्तीनां मिथो वने ।
यामुत्प्लुत्य वृको हन्यात्पालस्तत्र किल्बिषी ॥
गोवधेन नरो याति नरकानेकविंशतिं ।
तस्मात्सर्व्वप्रयत्नेन कार्य्यं तासान्तु पालनं ॥
विक्रयाच्च गवां राम नरकं प्रतिपद्यते !
तासान्तु कीर्त्तनादेव नरः पापात् प्रमुच्यते ॥
तासां संस्पर्शनं धन्यं सर्व्वकल्मषनाशनं ।
दानेन च तथा तासां कुलान्यपि समुद्धरेत् ॥
उदक्या-सूतिकादोषो नैव तत्र गृहे भवेत् ।
भूमिदोषस्तथान्येऽपि यत्रैका वसते च गौः ॥
गवां निःश्वासवातेन परा शान्तिर्गृहे भवेत् ।
नीराजनं तत्परमं सर्व्वस्थानेषु कीर्त्त्यते ॥

गवां संस्पर्शनाद्राम कल्मषं क्षीयते नृणां ॥
गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकं ।
एक रात्रोपवासश्च श्वपाकमपि शोधयेत् ।
पृथक् च प्रत्ययाभ्यस्तमिति सान्तपनं स्मृतं ॥
सर्व्वकामप्रदं राम सर्व्वाशुभविनाशनं ।
कृत्वातिकृच्छ्रं पयसा दिवसानेकविंशतिं ॥
निर्म्मलास्तेन चीर्णेन भवन्ति पुरुषोत्तमाः ॥
त्र्यहमुष्णं पिबेन्मूत्रं त्र्यहमुष्णं घृतं पिबेत् ।
त्र्यहमुष्णं पयः पीत्वा वायुभक्षः परं त्र्यहं ॥
तप्तकृच्छ्रमिदं प्रोक्तं सर्व्वाशुभविनाशनं ।
शीतकृच्छ्रस्तथैवैष क्रमाच्छीतैः प्रकीर्त्तितः ।
सर्व्वाशुभविनाशाय निर्म्मितो ब्रह्मणा स्वयं ॥
गोमूत्रेणाचरेत्स्नानं वृत्तिं कुर्य्याच्च गोरसैः ।
उत्थितासूत्थितस्तिष्ठेदुपविष्टासु च स्थितः ॥
अभुक्तवत्सु नाश्नीयादपीतासु च नो पिबेत् ।
तासां चैवात्मनः कार्य्यं भयार्त्ताश्च समुद्धरेत् ॥
आत्मानमपि सन्त्यज्य गोव्रतं तत् प्रकीर्त्तितम् ।
सर्व्वपापप्रशमनं मासेनैकेन भार्गव ॥
व्रतेनानेन पूर्व्वेण गोलोकं पुरुषो व्रजेत् ।
अभीष्टमथवा राम यावदिन्द्राश्चतुर्द्दश ॥
गवामाहारनिर्म्मुक्तानश्नन् प्रतिदिनं यवान् ।
मासेन तदवाप्नोति यत्किञ्चिन्मनसेच्छति ॥
गोमतीञ्च तथा विद्यां सायं प्रातस्तथा जपेत् ।

गोलोकमाप्नोति नरोमात्र कार्य्या विचारणा ॥
उपर्य्युपरि सर्व्वेषां गवां लोकः प्रकीर्त्तितः।
न वसन्ति सदा यत्र गावस्त्वाकाशगा दिवि।
विमानेषु विचित्रेषु हृतेष्वप्सरसाङ्गणैः॥
किङ्किणीजालचित्रेषु वीणामुरजनादिषु।
सदा कामफला नद्यः चीरपायसकर्द्दमाः॥
शीतलामलपानीयाः सुवर्णसिकतास्तथा।
पुष्करिण्यः शुभास्तत्र वैदूर्य्यकमलोत्पलाः॥
मानसी च तथा सिद्धिस्तत्र लोके भृगूत्तम।
तन्तु लोकं नरा यान्ति गवां भक्त्या न संशयः॥
गोमतीं कीर्त्तयिष्यामि सर्व्वपापप्रणाशिनीं।
तान्तु मे गदतो विप्र शृणुष्व सुसमाहितः॥
गावः सुरभयो नित्यं गावो गुग्गुलगन्धिकाः।
गावः प्रतिष्ठा भूतानां गावः स्वस्त्ययनं परं॥
अन्नमेव परं गावो देवानां हविरुत्तमं।
पावनं सर्व्वदेवानां रचन्ति च वहन्ति च॥
हविषा मन्त्रपूतेन तर्पयन्त्यमरान् दिवि।
ऋषीणामग्निहोत्रेषु गावो होमनियोजिताः॥
सर्व्वेषामेव भूतानां गावः शरणमुत्तमम्।
गावः पवित्रं परमं गावो मङ्गलमुत्तमम्॥
गावः स्वर्गस्य सोपानं गावोधन्याः सनातनाः।
नमो गोभ्यः श्रीमतीभ्यः सौरभेयीभ्य एव च।
नमो ब्रह्मसुताभ्यश्च पवित्राभ्यो नमो नमः॥

ब्राह्मणाश्चैव गावश्च कुलमेकं द्विधा कृतम्।
एकत्र मन्त्रास्तिष्ठन्ति हविरेकत्र तिष्ठति*॥
देव-ब्राह्मण-गो-साधु-साध्वीभिः सकलं जगत्।
धार्य्यते वै यदा कस्मात्सर्व्वे पूज्यतमा मताः॥
यत्र तीर्थे सदा गावः पिबन्ति तृषिता जलम्।
उत्तरन्त्यथवा येन स्थिता तत्र सरस्वती॥
गवां हि तीर्थे च सतीह गङ्गा
पुष्टिस्तथासां रजसि प्रवृत्ता।
लक्ष्मीः करीषे प्रणतौ च धर्म्म-
स्तासां प्रणामं सततञ्च कुर्य्यात्॥

भविष्यत्पुराणे।

ब्रह्मोवाच।

गामालभ्य नमस्कृत्य कुर्य्याद्यस्तु प्रदक्षिणं।
प्रदक्षिणी कृता तेन सप्तद्वीपा वसुन्धरा॥
गवां हुङ्कारशब्देन दृष्टिपातेन सत्तम।
पापं प्रणश्यते यस्मात्तस्मात्पश्यन् स्पृशेच्च ताः॥
कुतस्तस्य भवेत्पापं गृहं यस्य विभूषितम्।
सततं वालवत्साभिरर्जुनीभिरलङ्कृतं॥
यावत्तीर्थानि मेदिन्यामासमुद्रसरांसि च।

---

* हविरन्यत्रतिष्ठतीति क्वचित् पाठः।

गवां शृङ्गोदकस्नानकलां नार्हन्ति षोडशीं ॥
गवामस्थि न लङ्घेत मृते गन्धं न वर्जयेत्।
यावदाघ्राति तद्गन्धं तावत्पुण्येन युज्यते* ॥
गवां कण्डूयनं धन्यं गोप्रदानफलप्रदं।
तुल्यं गोग्रासदानस्य भय-रोगादि-पालनं ॥
तृणोदकादिसंयुक्तं यः प्रदद्यात्तु वार्षिकं।
कपिलाशतदानस्य फलं विद्यान्न संशयः ॥
पञ्चभूते शिवे पुण्ये पवित्रे सूर्य्यसम्भवे।
प्रतीच्छेदं मया दत्तं सौरभेयि नमोऽस्तु ते ॥
बहुना च किमुक्तेन गावः पाल्याः प्रयत्नतः।
गावो देयास्तथा रक्ष्याः पूज्या ग्राह्याश्च सर्व्वशः ॥
गावो ये ताडयन्तीह सर्व्वलोकस्य मातरः।
ते यान्ति रौरवं नाम नरकं नात्र संशयः ॥
ताडयेद्यस्तु वै मोहात् यो वा कश्चिन्नराधमः।
स गच्छेन्नरकं घोरं सम्पीडकमिति श्रुतिः ॥
आयान्तीं हन्तुकामां यः सौरभेयीं विभावरीं।
त्वम मातरिति ब्रूयात्स याति परमं पदं ॥

वाराहपुराणे।

यम उवाच।

गावः पवित्रं माङ्गल्या देवानामपि देवताः।

* तावद्धर्म्मेण युज्यते इति क्वचित्पाठः।

यस्याः शुश्रूषते भक्त्या स पापेभ्यः प्रमुच्यते ।
यावज्जीवं कृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ॥
लाङ्गूलेनोद्धृतं तोयं मूर्ध्ना गृह्णाति यो नरः ।
शरत्सु सुपजातेभ्यः स पापेभ्यः प्रमुच्यते ॥
प्रस्रवे यो गवां स्नायात् रोहिण्यां मानवो भुवि ।
सर्व्वपापकृतान् दोषान् दहत्याशु न संशयः ॥
धेनोस्तनाद्विनिष्क्रान्तां धारां क्षीरस्य यो नरः ।
शिरसा प्रतिगृह्णीयात्स पापेभ्यः प्रमुच्यते ॥

इति गोपरिचर्य्या ।

अथान्नदानं ।

महाभारते

शान्तिपर्व्वणि दानधर्म्मात् ।

युधिष्ठिर उवाच ।

कानि दानानि लोकेऽस्मिन् दातुकामो महीपतिः ।
गुणाधिकेभ्यो विप्रेभ्यो दद्याद्भरतसत्तम ॥
केन तुष्यति ते सद्यस्तुष्टाः किं प्रदिशन्ति च ।
शंस चैतन्महाबाहो फलं पुण्यकृतं महत् ॥
किं दत्तं फलवद्राजन्निह लोके परत्र च ।
भवतः श्रोतुमिच्छामि तन्मे विस्तरतो वद ॥

भीष्म उवाच।

इममर्थं पुरा पृष्टो नारदो देवदर्शनः।
यदुक्तवानसौ तस्मै गदतः शृणु भारत॥

नारद उवाच।

अन्नमेव प्रशंसन्ति देवा ऋषि-गणा-सुराः।
लोकतन्त्रा हि संज्ञाश्च सर्व्वमन्ने प्रतिष्ठितं॥
अन्नेन सदृशं दानं न भूतं न भविष्यति।
तस्मादन्नं विशेषेण दातुमिच्छन्ति मानवाः॥
अन्नमूर्जस्करं लोके प्राणाश्चान्ने प्रतिष्ठिताः।
अन्नेन धार्य्यते विश्वं सर्व्वं जगदिदं प्रभो॥
अन्नाद्गृहस्था लोकेऽस्मिन् भिक्षवस्तत एव च।
अन्नात्प्रभवति प्राणः प्रत्यक्षं नात्र संशयः॥
कुटुम्बं पीडयित्वापि ब्राह्मणाय महात्मने।
दातव्यं भिक्षवे चान्नमात्मनो भूतिमिच्छता॥
ब्राह्मणायाभिरूपाय यो दद्यादन्नमर्थिने।
विदधाति निधिं श्रेष्ठं परलोके किमात्मनः॥
आर्त्तमध्वनिवर्त्तन्तं वृद्धं द्विजमुपस्थितं।
अर्च्चयेद्भूतिमन्विच्छन् श्रोत्रियं गृहमागतं॥
क्रोधमुत्पतितं हित्वा सुशीलो वीतमत्सरः।
अन्नदः प्राप्नुते राजन् दिवि चेह च तत्सुखं॥
नावमन्येदभिगतं न प्रणुद्यात् कथञ्चन।
अपि श्वपाके शुनि वा न दानं विप्रणश्यति॥

यो दद्यादपरिक्लिष्टमन्नमध्वनि वर्त्तते ।
श्रान्तायादृष्टपूर्व्वाय स महाधर्म्ममाप्नुयात् ॥
पितॄन् देवांस्तथा विप्रांस्तीर्थानि च नराधिप ।
यो नरः प्रीणयत्यन्नैस्तस्य पुण्यफलं महत् ॥
कृत्वापि पातकं कर्म्म यो दद्यादन्नमर्थिने ।
ब्राह्मणाय विशेषेण न स पापेन युज्यते ॥
ब्राह्मणेष्वक्षयं दानमन्नं शूद्रे महत्फलं ।
अन्नदानं हि शूद्रे च ब्राह्मणेभ्यो विशिष्यते ॥
न पृच्छेद्गोत्रचरणं स्वाध्यायं देशमेव वा ।
भिक्षिते ब्राह्मणे चेह दद्यादन्नं प्रयाति च ॥
अन्नदस्यामलश्चाथ सर्व्वकामफलान्विताः ।
भवन्तीहाथ चामुत्र नृपते नात्र संशयः ॥
आशंसते हि पितरः सुवृष्टिमिव कर्षकाः ।
अस्माकमपि पुत्रो वा पौत्रो वान्नं प्रदास्यति ॥
ब्राह्मणो हि महद्भूतं स्वयं देहीति याचते ।
अकामश्च सकामो वा दत्त्वा पुण्यमवाप्नुयात् ॥
ब्राह्मणः सर्व्वभूतानामतिथिः प्रसृताग्रभुक् ।
विप्रा यमभिगच्छन्ति भिक्षमाणा गृहं सदा ॥
सत्कृताश्च निवर्त्तन्ते तदतीव प्रवर्त्तते ।
महाभोगकुले जन्म प्रेत्य प्राप्नोति भारत ॥
दत्त्वा त्वन्नं नरो लोके तथा स्थानमनुत्तमं ।
दृष्ट-मिष्टान्न-दायी च स्वर्गे वसति सत्कृतः ॥
अन्नं प्राणा नराणां हि सर्व्वमन्ने प्रतिष्ठितं ।

अन्नदः पशुमान् पुत्त्री धनवान् भोगवानपि॥
प्राणवांश्चापि भवति रूपवांश्च तथा नृप।
अन्नदः प्राणदो लोके सर्व्वदः प्रोच्यते स च॥
अन्नं हि दत्त्वातिथये ब्राह्मणाय यथाविधि।
प्रदाता सुखमाप्नोति देवैश्चापि प्रपूज्यते॥
ब्राह्मणो हि महद्भूतं क्षेत्रञ्चरति पादवत्।
उप्यते यत्र यद्वीजं तद्धि पुण्यफलं महत्॥
प्रत्यक्षप्रीतिजननं भोक्तृणामन्नमेव च।
सर्व्वाण्येवान्यदानानि परोक्षे फलवन्त्यतः॥
अन्नाद्धि प्रसवं विद्धि रतिमन्नाच्च पार्थिव।
धर्म्मार्थावन्नतो विद्धि रोगनाशं तथान्नतः॥
अन्नं ह्यमृतमित्याहुः पुरा काले प्रजापतिः।
अन्नं बिभर्त्ति लोकस्य शरीरं पाञ्चभौतिकं॥
अन्नं दिव्यं तु पुरुषं सर्व्वं ह्यन्ने प्रतिष्ठितं।
अन्नप्रणाशे भिद्यन्ते शरीरे पञ्चधातवः॥
बलं बलवतोपीह प्रणश्यत्यन्नहानितः।
आवहाश्च विवहाश्च यज्ञाश्चान्ने स्मृते तथा॥
न वर्त्तन्ते नरश्रेष्ठ ब्रह्मन् चान्नं प्रमीयते।
अन्नदः सर्व्वमेतद्धि यत्किञ्चित् स्थाणुजङ्गमं॥
त्रिषु लोकेषु धर्म्मार्थमन्नं देयमतो बुधैः।
अन्नदस्य मनुष्यस्य बल-मोजो-यशः सुखं॥
कीर्त्तिश्च वर्द्धते यस्य त्रिषु लोकेषु पार्थिव।
मेघेष्वद्य नैवैतत् प्राणिनां पतनं शिवः॥

नच मेघगतं वारि शक्रो वर्षति भारत ॥
आदत्ते च रसं भौममादित्यः स्वगभस्तिभिः।
वायुरादित्यतश्चान्तश्चरो देवः* प्रजापतिः ॥
तद्यदा मेघतो वारि पतितं भवति क्षितौ।
तदा वसुमती देवी स्निग्धा भवति भारत ॥
ततः सस्यानि रोहन्ति यैरेतद्वर्त्तते जगत्।
मांस-मेदो-स्थि-शुक्राणां प्रादुर्भावस्ततः पुनः ॥
संभवन्ति ततः शुक्रात् प्राणिनः पृथिवीपते।
अग्नीषोमौ हि तच्छुक्रं प्रजनं पुष्यतश्च ह ॥
एवमन्नञ्च सूर्य्यश्च पवनः सर्व्व एवच।
एक एव स्मृतो राशिर्यतो भूतानि जज्ञिरे ॥
प्राणान् दधाति भूतानां प्रजाश्च भरतर्षभ।
गृहमभ्यागतायाशु यो दद्यादन्नमर्थिने ॥

भीष्मउवाच।

नारदेनैवमुक्तोऽहमदामन्नं सदा नृप।
अन्नं सूर्य्यस्त्वमप्यन्नं तस्माद्देहि युधिष्ठिर ॥
दत्त्वान्नं विधिवद्राजन् द्विजेभ्यस्त्वमपि प्रभो।
यथावदनुरूपेभ्यस्ततः स्वर्गमवाप्स्यति ॥
अन्नदानाद्धि ये लोकास्तान् शृणुष्व नराधिप ॥
भवनानि प्रकाशन्ते दिवि तेषां महात्मनाम्।
नानासंस्थानरूपाणि नानास्तम्भान्वितानि च ॥

* वायुरादित्य तथाच चरेद्देव इति क्वचित् पाठः।

चन्द्रमण्डलशुभ्राणि किङ्किणीजालवन्ति च।
तरुणादित्यवर्णानि स्थावराणि चराणि च॥
अनेकशतभौमानि सान्तर्जलवनानि च।
वैदूर्य्यार्कप्रकाशानि रूक्मरूप्यमयानि च॥
सर्व्वकामफलाश्चापि वृक्षा भवनसंस्थिताः।
वाप्यो वीथ्यः सभा प्रपा दीर्घिकाश्चैव सर्व्वतः॥
घोषवन्ति च यानानि युक्तान्यथ सहस्रशः।
भक्ष्यभोज्यमया शाला वासांस्याभरणानि च॥
क्षीरं स्रवन्त्यः सरितस्तथाचैवान्नपर्व्वताः।
प्रासादाः पाण्डुराभासाः शय्याश्च कनकोज्ज्वलाः।
तानन्नदाः प्राप्नुवन्ति तस्मादन्नप्रदो भव॥
एते लोकाः पुण्यकृतामन्नदानान्महात्मनां।
तस्मादन्नं विशेषेण दातव्यं मानवैर्भुवि॥

अग्निपुराणात्।

अन्नदानस्य माहात्म्यं सर्व्वेभ्यो मुनिसत्तमैः।
सुख-प्रीतिकरं प्रोक्तं कथयामि तवानघ॥
ददस्वान्नं ददस्वान्नं ददस्वान्नं नृपोत्तम।
सद्यस्तुष्टिकरं लोके किं दत्तेनापरेण ते॥
पुराकल्पे तु रामेण यदुक्तं विधिनानुग।
निर्व्वेदाद्देवदेवेन तथापि कथयामि ते॥
पृथिव्यामन्नपूर्णायां वयमन्नस्य काङ्क्षिणः।
सौमित्रे नूनमस्माभिर्न ब्राह्मणमुखे हुतं॥

यदुप्यते स्वकेदारे तस्यावश्यं फलं नरैः ।
प्राप्यते लक्षणास्माभिर्न ब्राह्मणमुखे हुतं ॥
यत्र प्राप्यत्र तत् प्राप्यं विद्यया पौरुषेण वा
सत्यं लोके प्रवादोऽयं न दत्तमुपतिष्ठते ॥
भक्षोपयोगादन्नस्य दानं श्रेयस्करं परं ।
प्रकारान्तरभोज्यानि दानान्यन्यानि पार्थिव
स्नातानामनुलिप्तानां भूषितानाञ्च भूषणैः ।
न सुखं न च सन्तोषो भवेदन्नादृते नृणां ॥
धर्म्मा-र्थ-काम-मोक्षाणामन्नं परमसाधनं ।
अन्नं प्रजापतिः साक्षादन्नं विष्णुस्तथा शिवः
तस्मादन्नं विशेषेण दातव्यं मानवैर्भुवि ॥

तत्र बृहस्पतिः ।

अन्नदानं गुणकरं सर्व्वदानाधिकं नृणां ।
अन्नाद्धि प्राणजननं नृणां वै जायते सदा ॥
प्राणाप्यायनमात्रन्तु योविप्राय प्रयच्छति ।
दुर्भिक्षेऽन्न विशेषेण दातव्यं मानवैर्भुवि ॥

देवलः ।

कृत्वा तु पातकं कर्म्म यो दद्यादन्नमीप्सितं ।
ब्राह्मणानां विशेषेण स निहन्त्यात्मनस्तमः ॥
आदरेण च भक्त्या च यदन्नमुपदीयते ।
तत्प्रीणयति गात्राणि नामृतं मानवर्जितं ॥

दुर्लभस्तु मुदा दाता भोक्तारश्च सुदुर्लभाः।
मुदा दाता च भोक्ता च तावुभौ स्वर्गवासिनौ ॥
योऽन्नं बहुमतं भुङ्क्ते यश्चान्नं नावमन्यते।
यश्चान्नं प्रीतितो दद्यात्तस्यान्नमुपतिष्ठते ॥
प्रीतितोऽन्नञ्च यो दद्याद्भुञ्जीयाद्योऽभिपूज्य च।
प्रीतितोऽन्नयमश्नाति पूजितः स्वर्गमश्नुते ॥
योदद्यादप्रियेणान्नं यश्चान्नं नाभिनन्दति।
तावुभौ नरके मग्नौ वसेतां शरदःशतं ॥

स्कन्दपुराणे।

सर्व्वेषामेव दानानामन्नदानं परं स्मृतं।
सद्यः प्रीतिकरं दिव्यं बल-बुद्धिविवर्द्धनं ॥
नान्नदानसमं दानं त्रिषु लोकेषु विद्यते।
अन्नाद्भवन्ति भूतानि म्रियन्ते तदभावतः ॥
गर्भस्था जायमानाश्च बालवृद्धाश्च मध्यमाः।
आहारमभिकाङ्क्षन्ति देव-दानव-तापसाः ॥
क्षुधा हि सर्व्वरोगाणां व्याधिः श्रेष्ठतमः स्मृतः।
तस्यान्नौषधलेपेन प्रतीकारः प्रकीर्त्तितः ॥
अन्नदः प्राणदः प्रोक्तः प्राणदश्चापि सर्व्वदः।
तस्मादन्नप्रदानेन सर्व्वदानफलं लभेत् ॥
धर्म्मार्थ-काम-मोक्षाणां देहः परमसाधनं।
स्थितिस्तस्यान्नपानाभ्यामतस्तत् सर्व्वसाधनं ॥
अन्नं प्रजापतिः साक्षादन्नं विष्णुः शिवः स्वयं।

तस्मादन्नसमं दानं न भूतं न भविष्यति ॥

विष्णुधर्म्मोत्तरे ।

हंस उवाच ।

सर्व्वेषामेव दानानामन्नदानं विशिष्यते ।
अन्नदानात्परं दानं न भूतं न भविष्यति ॥
नात्र पात्रपरीक्षा स्यान्न कालनियमस्तथा ।
न च देशः परीक्ष्योऽत्र देयमन्नं सदैव तत् ॥
श्वभ्यश्च श्वपचेभ्यश्च पतितेभ्यस्तथैव च ।
क्रमिकीटपतङ्गेभ्यो देयमन्नं सदैव हि ॥
अन्नं हि जीवितं लोके प्राणाश्चान्ननिवन्धनाः ।
अन्नदः प्राणदो लोके सर्व्वदश्च तथान्नदः ॥
भुक्त्वा तथा च यस्यान्नं सन्ततिः स्याद्द्विजोत्तम ।
ज्ञातव्यं ब्राह्मणश्रेष्ठ यस्यान्नं तस्य सन्ततिः ॥
दातव्यं सर्व्ववर्णेभ्यो भोक्तव्यं ब्राह्मणस्य तु ।
यस्यान्नेनोदरस्थेन ब्राह्मणो म्रियते द्विजाः ।
तान्तु योनिमवाप्नोति नात्र कार्य्या विचारणा ॥
भक्ष्यदः स्वर्गमाप्नोति शक्रलोकन्तु भोज्यदः ।
लेह्यदोऽप्सरसां लोकं वसूनामपि चूष्यदः ॥
वारुणं लोकमाप्नोति तथा पानप्रदो नरः ।
पानकानि सुगन्धीनि शीतलानि प्रयच्छति ।
सर्व्वकामसमृद्धश्च नात्र कार्य्या विचारणा ॥

परमान्नप्रदानेन तृप्तिर्भवति शाश्वती ।
पिपासया न म्रियते गवां लोके महीयते ॥
गुड़प्रदस्तथारोग्यं सर्व्वान् कामान् मधुप्रदः ।
घृतदो जीवितं दीर्घमारोग्यं तैलदस्तथा ।
सर्व्वान् कामानवाप्नोति लवणं यः प्रयच्छति ॥
सक्तुदस्तृप्तिमाप्नोति सिकतादस्तथा श्रियं ।
अकीर्त्तितानामन्येषां दानात् स्वर्गमवाप्नुयात् ॥

अथ भगवतीपुराणे ।

लवणञ्च घृतं तैलं गुड़ं हिङ्गुञ्च भारत ।
कटुखण्डं जीरकञ्च पत्रं शाकञ्च शोभनम् ॥

दत्त्वा सुखी स्यादिति शेषः ।

पद्मपुराणे ।

गुड़मिक्षुरसञ्चैव लवणं व्यञ्जनानि च ।
सुरभीणि च पानानि दत्त्वात्यन्तं सुखी भवेत् ॥

आह यमः ।

गोरसानां प्रदानेन तृप्तिमाप्नोत्यनुत्तमां ।
घृतप्रदानेन तथा दीर्घं विन्दति जीवितं ॥

लिङ्गपुराणे ।

लवणस्य च दातारस्तिलानां सर्पिषां तथा ।
तेजस्विनोऽभिजायन्ते भोगिनश्चिरजीविनः ॥

ब्रह्माण्ड पुराणे ।

रक्तं मांसं वसां शुक्रं क्रमादन्नात् प्रवर्त्तते ।
शुक्राद्भवन्ति भूतानि तस्मादन्नमयं जगत् ॥
हेम-रत्ना-श्वनागेन्द्र-चन्द्रस्रक्चन्दना-दिभिः ।
समस्तैरपि संप्राप्तै र्न रमन्ते बुभुक्षिताः ॥
नास्ति क्षुधासमं दुःखं नास्ति रोगः क्षुधा समः ।
नास्त्याहारसमं सौख्यं नास्ति क्रोधसमो रिपुः ॥
अत एव महत्पुण्यमन्नदानप्रदानतः ।
यतः क्षुधाग्निसन्तप्ता म्रियन्ते सर्व्वदेहिनः ॥
त्रैलोक्ये यानि रत्नानि भोग-स्त्री-वाहनानि च ।
अन्नदानप्रदः सर्व्वमिहामुत्र समश्नुते ॥
यस्यान्नपानपुष्टाङ्गः कुरुते पुण्यसञ्चयं ।
अन्नप्रदातुस्तस्यार्द्धं कर्त्तुरार्द्धं न संशयः ॥

ब्रह्मवैवर्त्ते ।

यस्य ह्यन्नमुपाश्नन्ति ब्राह्मणानां शतं समाः ॥
हृष्टेन मनसा दत्तं न स तिर्य्यग्गतिर्भवेत् ।
ब्राह्मणानां सहस्राणि दश भोज्या नरर्षभ ।
नरोऽधर्म्मात् प्रमुच्येत पापेष्वपि रतः सदा ॥
भोजयित्वा दशशतं नरो ब्रह्मविदां नृप ।
न्यायविद्धर्म्मविदुषां स्मृतिभाष्यविदां तथा ॥

न याति नरकं घोरं संसारांश्च न सेवते ॥
यजेद्ब्राह्मणपूर्व्वन्तु भक्त्यान्नं सदा गृही।
अवन्ध्यन्दिवसं कुर्य्यादन्नदानेन मानवः ॥
भैक्षेणान्नं समाहृत्य विप्रेभ्यो यः प्रयच्छति।
स्वाध्यायनिरतो विप्रो दत्त्वेह सुखमेधते ॥
सर्व्वावस्थं मनुष्येण न्यायेनान्नमुपार्जितं ॥
कार्य्यं पात्रगतं नित्यमन्नं हि परमा गतिः ॥

तथा।

कौमुदे शुक्लपक्षे तु योऽन्नदानं करोत्यतः ॥
स सन्तरति दुर्गाणि प्रेत्य चानन्त्यमश्नुते।

नन्दिपुराणे।

अन्नाद्भूतानि जातानि देवा ह्यन्नाद्यकाङ्क्षिणः।
न तस्य पात्रादिविधिर्व्विना श्राद्धं प्रकीर्त्तितं ॥

तथा।

अपि कीटपतङ्गानां शुनां चाण्डालयोनिनां।
दत्त्वान्नं लोकमाप्नोति प्राजापत्यं समासतः ॥
बान्धवेभ्योऽतिथिभ्योऽन्नं मित्रेभ्यश्च प्रयच्छतां।
दीनान्धकृपणानां च स्वर्गःस्यादन्नदायिनां ॥
ग्रासमात्रं नरो दत्त्वा भूतानामन्नमग्रजन्मते।
स्वर्गं वसेत् समानां तु शतं भोगैर्म्मनोरमैः ॥
ग्रासे ग्रासे फलं ह्येतद्विधिवत्परिकीर्त्तितं।

एतद्द्विवाय ते प्रोक्तं द्विगुणं पुण्यगौरवं ॥
अन्नं विना क्रयात्तस्य दत्त्वान्नं देशकालतः ।
फलं पञ्चगुणं प्रोक्तं सर्व्वभावसमन्वितं ॥

राजसादिभावसमन्वितमित्यर्थः ।

देवतानां तु यो दद्यादन्नाद्यं श्रद्धयान्वितः ।
सिक्थासिक्थाद्दसेन्नाकं समानाममरैः सह ॥
एतद्दशगुणं पुण्यमन्ने व्यञ्जनसंयुते ।
यथेष्टदेवतादत्तादेतत्पुण्यं प्रकीर्त्तितं ॥
यो दद्याद्ब्राह्मणेऽन्नानि तस्य द्विगुणितं फलं ।
तस्माद्विष्णौ च दत्त्वान्नं द्विगुणं फलमश्नुते ॥
रुद्रायान्नप्रदानेन फलमेतच्चतुर्गुणं ।
श्रद्धा-कालसमायोगाद्दाञ्जनानाञ्च योगतः ।
शतसंख्यं भवेत्पुण्यं सम्यगन्नप्रदायिनां ॥

लघुहारीतः ।

उपपन्नं यथान्नान्नं भक्षते समुपस्थिते ।
आपीतरसमुच्छिष्टं न दद्यान्नैव होमयेत् ।

व्यासः ।

यश्चैकपंक्त्यां विषमं ददाति
स्नेहाद्भयाद्वा यदि वार्थहेतोः ।
वेदेषु दृष्टं मुनिभिश्च गीतं
तां ब्रह्महत्यां मुनयोवदन्ति ॥

अत्रिः

अव्रताश्च ह्यमन्त्राश्च यत्र भैक्षचरा द्विजाः।
तं ग्रामं दण्डयेद्राजा चौरभक्तप्रदो हि सः॥
अधीत्य चतुरो वेदान् सर्व्वशास्त्रार्थतत्त्ववित्।
नरेन्द्रभवने भुक्त्वा विष्ठायां जायते कृमिः॥
राजान्नं हरतेतेजः शूद्रान्नं ब्रह्मवर्च्चसं।
स्वसुतान्नञ्च* यो भुङ्क्ते स भुङ्क्ते पृथवीमलं†॥

देवलः।

अहुतं भोजयन् विप्रं स्वगृहे सति सर्पिषि।
परत्र निरयं घोरं स्पृष्टस्तः प्रतिपद्यते॥
मृष्टमन्नं स्वयं भुक्त्वा पश्चात् कदन्नं लघु।
ब्राह्मणान् भोजयेन्मूर्खो निरये चिरमावसेत्॥
यो मृष्टमन्नं द्विजपुङ्गवानां
दद्यात् सुराणामथवातिथिभ्यः।
स पुत्रपौत्रैरभिवर्द्धमानः
समानतां वृत्ररिपोरुपैति॥

इति पक्वान्नदानविधिः।

अथामान्नदानं।

विष्णुधर्म्मोत्तरात्।

हंस उवाच।

* सूत्युरान्नञ्चेति च वङ्गपुस्तके पाठः।

† आयुः, सुवर्णकारान्नं यशश्चर्मविकर्त्तिन इति मनुसंहितायां पाठः।

धान्यानामुत्तमं दानं कथितं द्विजपुङ्गवैः।
धान्येभ्योऽपि परं धान्यं रक्तशालिः प्रकीर्त्तितः॥
रक्तशालिं नरो दत्त्वा सूर्य्यलोके महीयते।
दत्त्वा तथा सुगन्धांश्च गन्धर्व्वैः सह मोदते॥
कलमानां प्रदानेन शक्रलोके महीयते।
महाशालेः प्रदानेन वसूनां लोकमाप्नुयात्॥
कृष्णशालिं तथा दत्त्वा अलकायां प्रमोदते।
व्रीहीनां सस्यदानानां दानात् स्वर्गमवाप्नुयात्॥
यवप्रदानेन नरः शक्रलोके महीयते।
तथा गोधूमदानेन वसूनां लोकमाप्नुयात्॥
प्रियो भवति लोकस्य प्रियङ्गुं यःप्रयच्छति।
ददाति यस्तु श्यामाकं प्रीयन्ते तस्य देवताः॥
अन्येषां शूकधान्यानां प्रदाने नियतो नरः।
स्वर्गलोकमवाप्नोति नात्र कार्य्या विचारणा॥
मुद्गदः शक्रलोकन्तु यमलोकन्तु माषदः।
यथेष्टं लोकमाप्नोति तथा विप्रस्तिलप्रदः॥
षष्टिकान्नप्रदानेन लोकं नैर्ऋतिकं लभेत्।
सचीनचणकं दत्त्वा लोकं वारुणमाप्नुयात्॥
वायव्यञ्च मसूराणि राजमाषाणि धानदं।
अन्येषां शमीधान्यानां दानात्स्वर्गमवाप्नुयात्।
इक्षुमृद्वीकयोर्दानात्परंसौभाग्यमाप्नुयात्॥
पक्वान्नदानात् फलदं नृलोके
शुष्कान्नमुक्तं हि तदाप्तिरस्मात्।

यजन्ति यज्ञैर्हि ततो द्विजेन्द्रा-
स्तस्मात्तु तत् पुण्यतमं प्रदिष्टं ॥

इत्यामान्नदानविधिः ।

अथोदकदानं ।

तत्र मनुः ।

सलिलं यः प्रयच्छेत जीवानां प्राणधारणं ।
शीतलं ग्रीष्मकाले तु तस्य पुण्यफलं शृणु ॥
कपिलाकोटिदानस्य यत् पुण्यं हि विधीयते ।
तत् पुण्यफलमाप्नोति पानीयं यः प्रयच्छति ।
पूर्णचन्द्रप्रकाशेनश्लक्ष्णां विमानेन रोहति ॥

सौरपुराणे ।

पानीयदानं परमं सर्व्वदानाधिकं स्मृतं ।
तस्मात्पानीयमानीय देयं धर्म्मविदा तथा ॥

वेदव्यासः ।

दुर्लभं सलिलं तात विशेषेण परत्र वै ।
पानीयस्य प्रदानेन तृप्तिर्भवति शाश्वती ॥

भविष्यत्पुराणे ।

पानीयं प्राणिनां प्राणा स्तच्च यत्नेन दीयतां* ।
सर्व्वेषामेव दानानामेतदेवाधिकं यतः ॥

---

* पानीयं पावनं यद्वदिति वा पाठः ।

तथा ।

ग्रीष्मे चैव वसन्ते च पानीयं यः प्रयच्छति ।
वक्तुं जिह्वासहस्रेण तस्य पुण्यं न शक्यते ॥

पद्मपुराणे ।

सुगन्धाः शीतलाश्चापि रसैर्दिव्यैः समन्विताः ।
यः प्रयच्छति विप्रेभ्यस्तस्य दानफलं शृणु ॥
विमानं सूर्य्यसङ्काशमप्सरोगणसेवितं ।
सोऽधिरुह्य दिवं याति वरुणस्य सलोकतां ॥

नन्दिपुराणे ।

योऽपि कश्चित्तृषार्त्ताय जलपानं प्रयच्छति ।
स नित्यतृप्तो वसति स्वर्गे युगशतं नरः ॥

महाभारते ।

अन्नं हि सर्व्वदानानामधिकं मनुरब्रवीत् ।
अन्नञ्चापि प्रभवति पानीयं कुरुसत्तम ॥
नीरेण हि विना तात न किञ्चित् संप्रवर्त्तते ।
नीरजातश्च भगवान् सोमो-ग्रहगणेश्वरः ॥
अमृतं वसुधा चैव स्वाहा चाथ स्वधा तथा ।
अन्नौषध्यो महाराज वीरुधश्च जलोद्भवाः ।
अतः प्राणभृतां प्राणाः सम्भवन्ति विशाम्पते ॥
देवानाममृतं ह्यन्नं नागानाञ्च सुधा तथा ।

पितृणाञ्च स्वधा प्रोक्ता पशूनां चापि वीरुधः॥
अन्नमेव मनुष्याणां प्राणानाहुर्मनीषिणः।
तच्च सर्व्वं नरव्याघ्र पानीयात्संप्रवर्त्तते॥
तस्मात्पानीयदानाद्धि न परं विद्यते शिवं।
तच्च दद्यान्नरो नित्यं य इच्छेद्भूतिमात्मनः॥
धन्यं यशस्यमायुष्यं जलदानं विशाम्पते।
शत्रूंश्चाप्यधि* कौन्तेय स्वर्गे तिष्ठति तोयदः॥
सर्व्वान् कामानवाप्नोति कीर्त्तिमेवेह शाश्वतीं।
प्रेत्य चानन्त्यमाप्नोति पापेभ्यश्च प्रमुच्यते॥
तोयदो मनुजव्याघ्र स्वर्गं गत्वा महाद्युते।
अक्षयान् समवाप्नोति लोकानित्यब्रवीन्मनुः॥

विष्णुधर्म्मोत्तरे।

पानीयमेव सफलं त्रैलोक्यं सचराचरं।
विकारः सलिलस्येदं स्थावरं जङ्गमं तथा।
पानीयेन विना ह्यस्मिल्लोके नास्तीह कश्चिचित्॥
कृमि-कीट-पतङ्गानां जलमेव परायणं।
यत्रोदकं तत्र सुराः सर्व्वएव प्रतिष्ठिताः॥
यत्रोदकं तत्र तथा ऋषयश्च महाव्रताः।
दुर्लभं तत्र लोकानां परलोके द्विजोत्तमाः॥

गारुडपुराणे।

मूल्येन लब्ध्वा धर्म्मान्नजलदानं प्रयच्छति।

* शत्रून् चाप्याधीति क्वचित्पाठः।

प्रयाति चन्द्रसालोक्यं शुभमालांशुकावृतः॥
क्षीरकुल्यास्तमायान्ति तथा यान्ति मधुस्रवाः।
घृत-दध्यु-दकास्तस्य समुद्रा वशवर्त्तिनः॥
दिनानि बहुजीवन्ति अन्नेन रहिताः किल।
न हि तोयविहीनस्तु दिनमेकं हि जीवति॥
सर्व्वप्रदो नरश्चात्र जलदानात् प्रकीर्त्तितः।
उदके सर्व्वबीजानि इत्येव गौणिकी स्मृतिः।

स्कन्दपुराणे।

त्रयाणामपि लोकानामुदकं जीवनं स्मृतं।
पवित्रममृतं तस्मात्तद्देयं पुण्यमिच्छता॥

अथ करपत्रिकादिदानानि।

देवलः।

सतोयां पथिके विप्रे यो दद्यात् करपत्रिकां।
फलं स कूपखातस्य नूनमाप्नोति मानवः॥

महाभारते।

बृहस्पतेर्भगवतः पौष्णस्यैव भगस्य च।
अश्विनश्चैव वह्नेश्च प्रीतिर्भवति भारत॥
परमं भेषजं ह्येतुर्य्यज्ञानामेतदुत्तमं।
पिपासया न म्रियन्ते स्वोपच्छन्दश्च जायते॥
न प्राप्नुयाच्च व्यसनं करकान् यः प्रयच्छति।

प्रददेः ब्राह्मणेभ्यः करकान् श्रद्धयान्वितः ।
उपस्पर्शनषड्भागं लभते पुरुषः सदा ॥

कात्यायनः ।

भोजयित्वा द्विजानन्नं करकान् यः प्रयच्छति ।
सुशीतसलिलोपेतान् सोऽपि सद्गतिमाप्नुयात् ॥

आदित्यपुराणे ।

योऽददाति घटीपात्रं कुण्डिकां करकांस्तथा ।
तृषार्त्तस्य तथा घर्मे लभते शीतलं जलं ॥

स्कन्द पुराणे ।

यो घटं पयसा पूर्णं हेमपात्रनियोजितं ।
संपूज्य वस्त्रयुग्मेन दद्यात् स्वर्गं व्रजेद्ध्रुवं ॥

अथ धर्मघटदानं ।

आह विष्णुः ।

शीतलेन सुगन्धेन वारिणा पूरितं घटं ।
शुक्लचन्दनदिग्धाङ्गं पुष्पदामोपशोभितं ॥
दध्योदनयुतं कुर्य्याच्छरावं तस्य चोपरि ।
उपानच्छत्रसंयुक्तं धर्माख्यं कल्पयेद्घटं ॥
पुष्पाक्षतं गृहीत्वा तु इमं मन्त्रमुदीरयेत् ।
ओं नमो विष्णुरूपाय नमः सागरसम्भव ।
अपां पूर्णोद्धरास्मांस्त्वं दुःखसंसारसागरात् ॥

उदकुम्भो मया दत्तो ग्रीष्मे काले दिने दिने ।
उदकुम्भप्रदानेन प्रीयतां मधुसूदनः ॥

भविष्योत्तरे ।

प्रत्यहं धर्म्मघटको वस्त्रसंवेष्टिताननः ।
ब्राह्मणस्य गृहे नेयः शीतामलजलः शुचिः ॥
वसन्त-ग्रीष्मयोर्म्मध्ये यः पानीयं प्रयच्छति ।
पले पले सुवर्णस्य फलमाप्नोति मानवः ॥
मार्गशीर्षात्समारभ्य उदकुम्भन्तु यः क्षिपेत् ।
दिने दिने सहस्रस्य गवां पुण्यफलं लभेत् ॥
तस्यैवोद्यापनं कार्य्यं मासि मासि नरोत्तम ॥
मण्डकावेष्टकाभिश्च पक्वान्नैः सार्व्वकामिकैः ।
उद्दिश्य शङ्करं विष्णुं ब्रह्माणमथवा पितॄन् ॥
सतिलं प्रोक्षयित्वा तु मन्त्रेणानेन मानवः ॥
एष धर्म्मघटो दत्तो ब्रह्म-विष्णु-शिवात्मकः ।
अस्य प्रदानात्सततं* मम सन्तु मनोरथाः ॥
अनेन विधिना यस्तु धर्म्मकुम्भं प्रयच्छति ।
वसन्ते ग्रीष्मसमये प्रपादानफलं लभेत् ।
प्रपादानफलं सोऽपि प्राप्नोतीह न संशयः ॥

अथाश्वत्थसेचनं ।

भविष्योत्तरे ।

* सफलाइति क्वचित् पाठः ।

उदकुम्भप्रदानेऽपि ह्यशक्तो यः पुमान् भवेत्।
तेनाश्वत्थतरोर्म्मूलं सेच्यं नित्यं जितात्मना * ॥
सर्व्वपापप्रशमनं सर्व्वदुःखप्रणाशनं।
सर्व्वरोगप्रशमनं नित्यं सन्ततिवर्द्धनं ॥
अश्वत्थरूपी भगवान् प्रीयतां मे जनार्द्दनः।
इत्युच्चार्य्य नमस्कृत्य प्रत्यहं पापनाशनं ॥
यः करोति तरोर्म्मूले सेकं मासचतुष्टयं।
सोऽपि तत्फलमाप्नोति श्रुतिरेषा सनातनी ॥

अथ गलन्तिकादानं।

तथा।

अथान्यदपि वक्ष्यामि जलदानविधिं परं।
वसन्तसमयं प्राप्य गत्वा देवालयम्परं ॥
तत्र स्वायम्भुवं लिङ्गमार्षं वा देवपूजितं।
तस्य गर्भगृहान्तस्थं घटन्तोयेन सम्भृतं ॥
कुर्य्यात्सुरभिगन्धैश्च वासितं वस्त्रगालितं।
स्रवन्तञ्च दिवारात्रौ तज्जलं लिङ्गमूर्द्धनि ॥
एवं यः कारयेत् कुम्भं श्रद्धा-भक्तिसमन्वितः
शिवस्य विष्णोरर्कस्य इष्टदेवस्य वा पुनः ॥
स्रवन्तं कारयेत् कुम्भमच्छिन्नं देवमस्तके।
अनेन विधिना दत्त्वा नरोमासचतुष्टयं ॥
ततः कर्कटके प्राप्ते देवं पञ्चामृतेन तु।

* नित्यं सिञ्चन्ति मानवा इति क्वचित्पाठः।

संस्नाप्य पूजयेद्गन्धैर्नैवेद्यैश्च मनोरमैः।
प्रणिपत्य महेशानं मन्त्रमेतमुदीरयेत्॥
ओं नमः शङ्करः शम्भुर्भवो धाता शिवोहरः।
प्रीयतां मे महादेव जलकुम्भप्रदानतः॥
एवं सङ्कल्प्य दाता च पश्चादागत्य वेश्मनि।
स शक्त्या शिवभक्तांश्च विप्रमुख्यांश्च भोजयेत्॥
एवं यः कुरुते ग्रीष्मे जलदानक्रियां हरे।
यावद्बिन्दूनि लिङ्गस्य पतितानि न संशयः।
स वसेच्छाङ्करे लोके तावत् कोट्यो नरेश्वर॥

अथ मणिकदानं।

तत्र देवलः।

ग्रीष्मप्रवेशे मणिकं ददाति द्विजसद्मनि।
योऽम्बुपूरितमाप्नोति स तड़ागकृतः फलं॥

भविष्योत्तरे।

युधिष्ठिर उवाच।

प्रपां दातुमशक्तेन विशेषं धर्म्ममीप्सता।
मणिकस्य कथं दानं कस्मिन् काले च दीयते।
किं फलन्तस्य दानेन तदाचक्ष्व जनार्द्दन॥

श्रीकृष्णउवाच।

प्रपां दातुमशक्तेन विशेषधर्म्ममीप्सता।
दानं तेन प्रकर्त्तव्यं मणिकस्य युधिष्ठिर॥
वैशाखस्य तृतीयायां पौर्णमास्यां विशेषतः।
वसन्ते ग्रीष्मकाले च मणिकं तत्र दीयते॥
चत्वारिंशत्घटैः श्रेष्ठं त्रिंशद्भिर्मध्यमं स्मृतं।
विंशत्या कन्यसं प्रोक्तमतोहीनं न कारयेत्॥
जलपूर्णं ततः कुर्य्यात्सहिरण्यं स्वशक्तितः।
शुक्लचन्दनदिग्धाङ्गं पुष्पदामोपशोभितं॥
वासोभिः सम्परिच्छाद्य ताम्रभाण्डकृतोपरि।
तस्योपरि न्यसेद्देवं वरुणं हेमनिर्म्मितं।
सदक्षिणन्तु विप्राय दद्यात् संचिन्त्य केशवं॥
आपो नारा इति प्रोक्ता आदित्य-वरुणौ यमः।
मणिकं पृथिवीसर्व्वंदातुः शान्तिं प्रयच्छतु॥

पूजामन्त्रः।

ओं आपः पवित्रं लोकानामप्सु शेते जनार्द्दनः।
मणिकाप्सु प्रदानेन प्रीयतां जलशायकः॥

दान मन्त्रः।

अनेन विधिना दत्त्वा मणिकं द्विजपुङ्गवे।
दाता यत् फलमाप्नोति तच्छृणुष्व नरोत्तम॥
वियोगो नैव तस्यासीत् पुत्र-भ्रातृ-धनेषु च।
गृहसंभारवैकल्यं न प्राप्नोति नरः क्वचित्॥
या स्त्री ददाति मणिकं तस्य पुण्यफलं शृणु।

अपुत्रा लभते पुत्रं दुर्भगा सुभगा भवेत् ॥
विधवा सप्तजन्मानि न जायेत मणिकदा ।
गृहदानफलं प्राप्य विष्णुलोके महीयते ॥
आश्वयुज्यां नवम्याञ्च शुक्लायां भरतर्षभ ।
संकृद्रपुष्पके दिव्ये आखण्डलपुरे वसेत् ।

इति मणिकदानं ।

अथ प्रपादानं ।

महाभारते ।

प्रपाश्च कार्य्या दानार्थं नित्यन्तु द्विजसत्तम ।
भुक्तेभ्यश्च प्रदीयन्ते पानीयानि विशेषतः ॥
निदाघकाले पानीयं यस्य तिष्ठत्यवारितं ।
स दुर्गविषमं कृच्छ्रं न कदाचिदवाप्नुते ॥

यमः ।

कूपा-राम-प्रपा-कारी तथा वृक्षस्य रोपकः ।
कन्याप्रदः सेतुकारी स्वर्गमाप्नोत्यसंशयं ॥

यथा ।

येषां तड़ागानि प्रपाः शुभाश्चा-
रामाश्च कूपाश्च प्रतिश्रयाश्च ।
अन्नप्रदानं मधुरा च वाणी
तेषामयं चैव परश्च लोकः ॥

लिङ्गपुराणे।

सर्व्वात्मना च सततं देयं पानीयमोदनं।
एतत् सुदुर्लभतरं परलोके नराधिप॥
तस्मात् कूपाश्च वाप्यश्च तड़ागानि प्रपास्तथा।
कर्त्तव्यानि यथा यत्नया नरैरात्महितैषिभिः॥
ग्रामे वा नगरे वापि मार्गे वा तोयवर्जिते।
यः प्रपाः कारयेद्रम्यां स पुण्यां गतिमाप्नुयात्॥

विष्णुधर्म्मोत्तरात्।

प्रपां पथि शुभां कृत्वा नाकलोके महीयते।
प्रपास्थानं शुभं कृत्वा स्थानमाप्नोति शाश्वतं॥
तस्य स्थानस्य संस्कारात् फलवृद्धिः प्रकीर्त्तिता।
तच्चोपलेपनं कृत्वा सर्व्वपापैः प्रमुच्यते॥
रज्जुं दत्त्वा प्रपास्थाने गोदो भवति मानवः।
वारिधानीं तथा दत्त्वा तदेव फलमाप्नुयात्॥
कुम्भप्रदानाद्भवति सदा पूर्णमनोरथः॥
प्रपायाञ्च तथा दत्त्वा पुरुषं परिचारकं।
सर्व्वकामसमृद्धस्य यज्ञस्य फलमश्नुते॥
वर्द्धमानानि यो दद्यात् प्रपायां द्विजसत्तमाः।
त्रिविधां वृद्धिमाप्नोति तेजसा यशसा श्रिया॥
लवणस्य प्रदानेन रसान् प्राप्नोति शाश्वतान्।
तत्र हरितदानेन गवां लोकमवाप्नुयात्॥
फलप्रदानेन तथा वह्निष्टोमफलं लभेत्।

सक्तूनाञ्च प्रदानेन गोशतस्य फलं नरः।
गोरसानां प्रदानेन गोलोकं समवाप्नुयात्॥
शय्याश्च विविधाः कृत्वा प्रपायामासनानि च।
स्वर्गलोकमवाप्नोति वसूनां नात्र संशयः॥
तत्र वह्निं तथा कृत्वा शीतत्राणाय मानवः।
कायाग्निदीप्तिप्राकाम्यं सौभाग्यञ्च तथाप्नुयात्॥
इन्धनानां प्रदानेन रिपुभिर्नाभिभूयते।
तत्रोपयोगिभाण्डानां दानात् स्वर्गमवाप्नुयात्।
इन्द्रलोकमवाप्नोति ताम्बूलादिप्रदानतः॥

भविष्योत्तरे।

युधिष्ठिर उवाच।

प्रपादानस्य माहात्म्यं वद देवेश किञ्चन।
कथं देया कदा देया दानं तस्याश्च किं फलं॥

श्रीकृष्ण उवाच।

अतीते फाल्गुने मासि प्राप्ते चैव महोत्सवे।
पुण्येऽह्नि विप्रकथिते ग्रहचन्द्रबलान्विते॥
मण्डपं कारयेद्विद्वान् घनच्छायं मनोरमं।
पुरस्य मध्ये पथि वा चैत्यवृक्षतलेऽथवा॥
सुशीतलतलं रम्यं विचित्रासनसंयुतं।
तन्मध्ये स्थापयेद्भव्यान् मणिकुम्भांश्च शोभनान्॥

आकालमूलान् करकान् वस्त्रैरावेष्टिताननान् ।
ब्राह्मणे शीलसम्पन्ने भृतिं दत्त्वा यथोदितां ।
प्रपापालः प्रकर्त्तव्यो बहुपुत्रपरिच्छदः ॥
पानीयपानादश्नान्तान् यः कारयति मानवान् ।
एवं विधां प्रपां कृत्वा शुभेऽह्नि विधिपूर्व्वकं ॥
यथाशक्त्या नरश्रेष्ठ प्रारम्भे भोजयेद्द्विजान् ।
ततश्चोत्सर्जयेद्विद्वान्मन्त्रेणानेन मानवः ॥
प्रपेयं सर्व्वसामान्या भूतेभ्यः प्रतिपादिता ।
अस्याः प्रदानात् पितरस्तृप्यन्तु च पितामहाः ॥

इदमिह दानवाक्यं ।

अद्यादि मासचतुष्टयं यावत् त्रीन् वा द्वौ वा एकमेकं वा इमां प्रपां पानीया-न्न-व्यञ्जनादि सहितां त्रिंशद्वर्षकोटिपरिमित-कालभोग्यइन्द्रलोकप्राप्तिकामो मर्त्यलोके चतुर्व्वेदब्राह्मणत्वकामः-सर्व्वभूतेभ्योऽहमुत्सृजामीति ।

अनिवारितं ततो देयं जलं मासचतुष्टयं ।
त्रिपक्षम्वा महाराज जीवानां जीवनं परं ॥
गन्धाढ्यं सुरसं शीतं शोभने राजते स्थितं ।
प्रदद्यादप्रतिहतं मुखस्यानवलोकयन् ।
प्रत्यहं कारयेत्तस्यां भोजनं शक्तितोद्विजान् ॥
अनेन विधिना यस्तु ग्रीष्मे तापप्रणाशनं ।
पानीयमुत्तमं दद्यात्तस्य पुण्यफलं शृणु ॥
कपिलाशतदानस्य सम्यग्दत्तस्य यत् फलं ।

तत्पुण्यफलमाप्नोति सर्व्वदेवैः सुपूजितः ॥
पूर्णचन्द्रप्रतीकाशं विमानमधिरुह्य सः ।
याति देवेन्द्रनगरं पूज्यमानोऽप्सरोगणैः ॥
त्रिंशत्कोटीर्हि वर्षाणां यक्ष-गन्धर्व्वसेवितं ।
पुण्यक्षयादिहागत्य चतुर्व्वेदो द्विजो भवेत् ।
ततः परं पदं याति पुनरावृत्तिदुर्लभं ॥

सुस्वादुशीतसलिला क्लमनाशनी च
प्रान्ते पुरस्य पथि पार्श्वे सराजभूमौ ।
यस्य प्रपा भवति सर्व्वजनोपभोग्या
धर्म्मोत्तरः स खलु जीवति जीवलोके ॥

इति प्रपादानविधिः ।

अथ जलाशयनिर्म्माणं ।

तत्र कूपस्य तावदुच्यते ।

विष्णुधर्म्मोत्तरे ।

उदकेन विना वृत्तिर्नास्ति लोकद्वये सदा ।
तस्माज्जलाशयाः कार्य्याः पुरुषेण विपश्चिता ॥
अग्निष्टोमसमः कूपः सोऽश्वमेधसमो मरौ ।
कूपः प्रवृत्तपानीयः सर्व्वं हरति दुष्कृतं ॥
कूपकृत् स्वर्गमासाद्य सर्व्वान् भोगानुपाश्नुते ।
तत्रापि भोगनैपुण्यं ख्यातमभ्यासात्प्रकीर्त्तितं ॥



65-1

स्कान्दपुराणे।

अवटं यो नरः कुर्य्यादपां पूर्णं सुशोभनं।
दद्यात् सुब्राह्मणेभ्यस्तद्भोजयित्वा यथाविधि॥
अष्टाभिः सुविचित्राभिः पताकाभिरलङ्कृतं।
पितॄंस्तरेत पञ्चाशतं* दत्त्वा च नरोत्तम।
यात्यप्सरःसुगीतेन वरुणस्य सलोकतां॥

नन्दिपुराणे।

यो वापीमथवा कूपन्देशे तोयविवर्ज्जिते।
खानयेत् स नरो याति स्वर्गं प्रेत्य शतं समाः।
देवैरेकत्वमतुलं तृष्णाक्षुद्वर्जितः सदा॥

आदित्यपुराणे।

सेतुबन्धरता ये च तीर्थं शौचरताश्च ये।
तड़ागकूपकर्त्तारो मुच्यन्ते ते तृषाभयात्॥

विष्णुः।

अथ कूपकर्त्तुस्तत्प्रवृत्ते पानीये दुष्कृतार्द्धं विनश्यति॥
तड़ागकृन्नित्यतृप्तो वारुणं लोक मश्नुते।
जलप्रदः सदा तृप्तो भवति।
तत् प्रवृत्ते, तस्मात् कूपात् प्रवृत्ते।

---

* पञ्चाशमिति क्वचित्पाठः।

तथा।

कूपारामतडागेषु देवतायतनेषु च॥
पुनः संस्कारकर्त्ता च लभते मूलिकं फलं॥

देवीपुराणे।

कूपारामं यथा यस्तं कर्त्ता लोके प्रजायते।
तथा कुर्य्यात् सुरश्रेष्ठ यथा शोभायतं भवेत्॥
पूर्व्वमाश्रित्य कर्त्तव्यं तस्योत्तरपथेऽपि वा।
न पूर्व्वव्यत्ययं कुर्य्यान्नच देवालयाद्गृहात्॥
कृतं भयप्रदं लोके तथाचाग्निभयं जलं।
वायव्यं वापि देवस्य भयदं जायते कृतं॥

आह गर्गः।

कुर्य्यात् पञ्चकरादूर्द्ध्वं पञ्चविंशत्करावधि।
कूपं हस्तायतं प्राज्ञः सर्व्वभूतसुखावहं॥

इति कूपनिर्म्माणविधिः।

अथ वापीनिर्म्माणं।

विष्णुधर्म्मोत्तरे।

यमलोकं प्रपश्यन्ति न जलाशयकारिणः।
अतः कुर्य्यात् प्रयत्नेन सुरूपं भूप कूपकं।
कूपशपसमा वापी तथा च परिकीर्त्तिता॥

देवीपुराणे।

कूपः पञ्चकरादूर्द्धं यावद्धस्तशतद्वयः।
वापी दशकराद्दूर्द्धं दशवर्गा नृपोत्तमैः॥
कर्त्तव्या सर्व्वतोद्वारा द्विनिर्वेकमथापि वा।
त्रिमुखा सर्व्वदृकचक्राख्ये वृत्ता वा चायता तथा॥
प्रस्ता वा चार्द्धचन्द्रा वा धेनोश्चक्रसमाकृतिः।
कर्त्तव्या द्रव्यसारेण गोपथा सर्व्वकामदा॥
वेदाष्टमध्यगोद्वारा करसार्द्धा यथा भवेत्।
कूपोवा श्रीलयष्टी वा देया नेमी यथा दृढा॥
भवने काष्ठपाषाणैर्क्कर्द्दपीठसमुच्छ्रया।
सुवृत्ता तोरणोपेता गणनाथगृहार्चिता॥
नागयक्षगृहैर्दिव्याभूषिता क्रौञ्चिताकुला।
वापी भद्रा सुरश्रेष्ठ सर्व्वकामप्रदा नृणां॥
भद्रा पद्मा शुभा कान्ता विजया मङ्गला तथा।
जया योक्त्री भवेद्वापि नृपादीनां शुभावहा॥
वृत्तायता चतुरस्त्रा वाप्यः साधारणा मताः।
शेषा काम्याधिकारेण कूपोद्यन्तः शुभावहः॥

नन्दिपुराणे।

यो वापीमग्निसाक्ष्येण विधिवत् प्रतिपादयेत्।
कोणेषूदककुम्भस्थान् समुद्रानर्च्च्य श्रद्धया॥
चतुरश्चतुरन्ता तु तेन दत्ता मही भवेत्।
तत्सन्निधौ द्विजानर्च्च्य विधिवत् पानभोजनैः।

स याति वारुणं लोकं दिव्यकामसमन्वितं ॥

अथ भद्रातड़ागनिर्म्माणं ।

तत्रच्यमः ।

तड़ागे यस्य पानीयं सततं खलु तिष्ठति ।
स्वर्गलोकगतिस्तस्य नात्र कार्य्या विचारणा ।
तड़ागकर्त्ता वसति स्वर्गे युगचतुष्टयं ॥
यत्र त्रियोऽथ गौरिका पायिनी सलिलं क्वचित् ।
तड़ागस्तादृशं कृत्वा स्वर्गे दशयुगान् वसेत् ॥

महाभारते ।

देवा मनुष्याः पितरो गन्धर्व्वो-रग-राक्षसाः ।
स्थावराणि च भूतानि संश्रयन्ति जलाशयं ॥
कुलं सन्तारयेत सर्व्वं यस्य खाते जलाशये ।
गावः पिबन्ति सलिलं साधवश्च नराः सदा ॥
तड़ागे यस्य गावस्तु पिबन्ति तृषिता जलं ।
मृग-पक्षि-मनुष्याश्च सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥
यत्पिबन्ति जलं तत्र स्नायन्ते विश्रमन्ति च ।
तड़ागदस्य तत्सर्व्वं प्रेत्यानन्त्याय कल्पते ॥

तथा ।

वर्षाराले तड़ागे तु सलिलं यस्य तिष्ठति ।
अग्निहोत्रफलं तस्येत्येवमाहुर्मनीषिणः ॥

वसन्तकाले पानीयं तड़ागे यस्य तिष्ठति।
अतिरात्रस्य यज्ञस्य फलं स समुपाश्नुते॥
निदाघकाले पानीयं तडागे यस्य तिष्ठति।
वाजपेयसमन्तस्य फलं महर्षयो विदुः॥

विष्णुधर्म्मोत्तरे।

कृत्वा तडागञ्च तथा वारुणं लोकमश्नुते।
दशवर्षसहस्राणि कल्पमात्रं द्विजोत्तमः।
ततोऽपि पुण्यमाप्नोति तडागकरणात् पथि॥
मरौ तडागे पानीयं यस्य तिष्ठति वै द्विजाः।
विमानेनार्कवर्णेन ब्रह्मलोकं स गच्छति॥
प्रावृट्कालेऽपि पानीयं तड़ागे यस्य तिष्ठति।
अग्निष्टोमफलन्तस्य पुरुषस्य प्रकीर्त्तितं॥
द्वादशाहफलन्तस्य शिशिरे यस्य तिष्ठति॥
वाजपेयफलन्तस्य वसन्ते यस्य तिष्ठति।
अश्वमेधफलन्तस्य निदाघे यस्य तु द्विजाः॥
सस्यानां सेचनार्थाय नदीवाहे तथा कृते।
अन्नदः पानदश्चैव प्राणदश्च तथा भवेत्।
भागीरथस्य लोकानां समवाप्नोत्यसंशयः॥
पानीयशोधनं कृत्वा ह्रदे देवविनिर्म्मिते।
पुरुषः फलमाप्नोति दशगोदानजं द्विजाः॥
दारुपाषाणरचितं सुखसेव्यं जलाशयं।
पुराणं मानवः कृत्वा नाकलोके महीयते॥

प्रणालकरणात्तत्र तृप्तिमाप्नोत्यनुत्तमां।
महत्पुण्य मवाप्नोति नागलोके महीयते॥
स्वबाहुखातं यः कुर्य्यात्तडागं मतिमान्नरः।
तत् फलमाप्नोति कर्त्ता राजसूयाश्वमेधयोः॥
परस्य पुण्यं यः कुर्य्यात् किञ्चित्तस्य जलाशये।
पुण्यांशभागी भवति सोऽपि यस्य जलाशयः॥

प्राप्नोति तृप्तिं परमां मनुष्यो
लोकांस्तथा तान् सलिलाधिपस्य।
जलाशयेष्वेऽपि कृते द्विजेन्द्रा
तस्मात्तु लोकं सलिलं नृलोकं॥

अथ द्वारीवन्धः।

देवीपुराणे।

ब्रह्मोवाच।

देव्यः शस्ताः सुरश्रेष्ठ सर्व्वकामप्रसाधिकाः।
तासां समुपभोगार्थं जलपात्राणि कारयेत्॥
द्वारीवन्धादिकाः शक्र पुष्करिण्यो नगाः शुभाः।
तलखातं तडागं तु विपाली पौष्टिकी मता।
शोभाख्या दीर्घिका प्रोक्ता चतुरस्रा तु वापिका॥
कूपाः पादविहीनाश्च सपादा तोरणान्विताः।
शक्रसावन्धकरणाभिरंस्तौ भिरिण्टका मता॥
गिरिरन्तर्गता द्वारा सस्फोटं हरकान्तथा।
चक्रमर्द्दः सचलको अर्गला चितिमाञ्चितमः॥

वज्रनागमधोगामी न सिध्यन्ति कदाचन।
डोलाख्या च तथा चक्र सुखसाध्याः प्रकीर्त्तिताः॥
उत्तमाधममध्या सा स्वल्पवृत्ता सुखप्रदः।
दैर्घ्याच्च वन्धागाया तु साधमा परिकीर्त्तिता॥
शतसहस्रपर्य्यन्ता द्विदण्डाष्टद्विदण्डिका।
हारी श्रेष्ठाधमा तात बहुवन्धा च या भवेत्॥
सिकतापङ्कसंच्छिद्रा संप्रज्ञा परिवर्ज्जयेत्।
शुभाद्धि दैर्घ्यात् विस्तारं मितावन्धं समाचरेत्॥
त्रिपञ्चचाष्टपर्य्यन्तः श्रेष्ठो वन्धः प्रकीर्त्तितः।
शतद्वयं शुभा पाली कराणां समधाधमा॥
विस्तारः कथितः शास्त्रे पालीवन्धस्य पण्डितैः।
प्राकारकूटनलिका पुटकां पृष्ठसञ्चयं॥
पृष्ठमार्गं भवेद्वन्धधर्म्मचन्द्रं सकम्बलं।
भूजिह्वालखते शक्र साध्यामन्तोयसंयमः॥
पाषाणघटितं वद्दमघटं विल्वकाष्ठजं।
शिलास्तत्र निवद्धस्तु पृथुविस्तीर्णसञ्चितं॥
वज्रसन्धानसंयोगं समवाद्यात्तकम्परं।
कथाकालसहं विद्वान् कुच्चिघातन्तु कारयेत्॥
न मध्यहृदये खाते कम्बले वापि दापयेत्।
महादोषकरं तत्तु द्वारीकर्त्तुर्भयप्रदं॥
प्रयत्नः कुट्टने कार्य्यो मृत्तिका कूर्षनादिकं।
नलिकासु प्रदातव्यं लोहं मुशलघट्टितं॥
समाप्तिपर्य्यन्तं यावदुपलान् खातयेन्नृपः।

अन्यथा न भवेन्नाढ़ा स्रवेद्दोषकरी भवेत् ॥
पालीन्तस्माद्दृढ़ां कुर्य्यात्पृष्ठां न घट्टितां ।
कूर्म्मवृषभकस्यादिहेमस्याद्दौ विनिक्षिपेत् ॥
प्रारम्भेस्या महापूजा श्येनकादिषु कारयेत् ।
वारुणं नागदेवन्तु यागमन्त्रजपं सदा ॥
आनिष्पत्ति तु कर्त्तव्यमन्यथा भयदं भवेत् ।
क्रतुराष्ट्रजने शक्र हारी च न दृढ़ा भवेत् ॥
दृष्टार्थं प्रतिरूपाणि तदा लिङ्गं विनायकं ।
शक्तिः पूर्व्वाणि कुर्व्वीत महालक्ष्मीर्यथा पुरे ॥
शुभदा भवने लोके नन्दातोयं शिवं तथा ।
आगमन्तोरणं वापी कूपम्वा समहोरगं ॥
हारीवन्धेषु कर्त्तव्यमुत्सर्गं गोप्रदानिकं ।
गोसहस्रं शुभं देयं महीं हेमञ्च दक्षिणां ॥
श्येनकं नागयज्ञञ्च हारीवन्धे सदा शुभं ।
चतुस्तोरणसंयुक्तं पताकादिविभूषितं ॥
उत्सर्गं विहितं हार्य्यामन्यथा न शुभोदकं ।
शकटेन वलिर्देयः पशुपातपुरःसरं ॥
स्फुरन्तं नागहृदयं मन्त्रं तत्र प्रयोजयेत् ।
संपूर्णं जायते सर्व्वं न्यूनाधिककृतञ्च यत् ॥
फलञ्च हयमेधस्य यत्कृतस्य भवेदिह ।
समग्रं लभतेतस्य हारीवन्धे कृते सति ॥
इह कीर्त्तिः शुभं सर्व्वं विशत्रुश्च भवेन्नृप ।
हारीवन्धप्रकर्त्तारो नन्दन्ति प्रजया सह ॥

तड़ागं जलकोपेतं परिहाहसमन्वितं।
देवतारामसंयुक्तं सर्व्वकामप्रदायकं॥
द्वारीवन्धे सुविस्तीर्णे परिहाहशुभः सदा।
अन्यथा न भवेच्छक्र दृढ़त्वं पालिबन्धनं॥
मध्ये पाल्याः सुविन्यासं जलमार्गं जलावहं।
शैलं पक्केष्टकं वापि कार्य्यं क्रीड़ार्थं भूभृतां॥
शीला चूरोपणे कुर्य्याज्जलकं शोभनं तथा।
सोपानपालिका कार्य्या विस्तीर्णा स्नान-भोजने॥
शोभाधिकेन संयुक्ता कूर्म्म कार्य्या यथा विधि।
वन्धपृष्ठे दृढ़ीवन्धः कार्य्यः कालसहस्तथा॥
एवं पुण्यमवाप्नोति स्थैर्य्यकालवशात् क्रते।
वाजिमेधः क्रतुर्यद्दत् सोपि पुण्यप्रदो भवेत्॥
द्वारीवन्धस्तदा तात पुण्यदो जायते नृणां।
पुण्यात्म सिद्धाते तच्च नन्दादीनां निवेशयात्॥
जयन्त्यादितड़ागादि अष्टौ पापहराणि च।
तेषु द्वारी भवेच्छ्रेष्ठा देवा-रामसमन्विता॥
कूप-वापी-जलोपेता पुत्रायुःकीर्त्तिदा सदा।
सा परिग्रहसंस्थानं भूपतेर्म्मानकल्पिता॥
पुरपत्तनदेवानां सिद्धार्थं जायते शुभा।
सरित्सिद्धालयैर्या न विष्णुक्रान्ता वसुन्धरा॥
सौभाग्यद्वारीवन्धस्य जलवेष्टाष्टकभ्रमा।
पितृदेवमनुष्याणां तज्जलं त्वभिनन्दितं॥
पावनञ्जायते शक्र अन्यथा निष्फलं मतं।

अनुत्सर्गितद्वारीषु अपेयं सलिलं भवेत्।
तस्मात्त्वोत्सर्गिकं पेयं वर्षामूत्सर्जनं शुभं॥
तत्पूर्व्वा चोत्तरे संस्था ऐशान्यां पूर्व्वगापि वा
दक्षिणे चैव लिङ्गन्तु शिवाख्या शुभदा सदा॥
पश्चिमे सुभगा नाम तां यथोत्तरतस्तथा।
न कुर्य्याद्याम्ये नैर्ऋत्यामाग्नेय्यान्तु शुभार्थिनः॥
प्रदक्षिणेन पूर्व्वस्यां रोपितव्यं शुभं सदा।
अन्यथा कलहोद्वेगं मृत्युञ्चा लभते कृतौ॥
तस्माद्राज्यायुःशुभदं पुत्रसन्ततिवर्द्धनं॥
पश्चिमोत्तरपूर्व्वेण आरामं जायते कृतं॥
द्वारीवन्धशिरोपेतं शक्तिभिर्नायकैर्युतं।
तदा कूपजला-रामभूषितं सर्व्वकामदं॥
एवं विधं पुरोपेतं ब्रह्मसूर्य्यान्तकान्वितं।
कुर्य्याद्यः सुरशार्दूल स लभेदीप्सितं फलं॥
इह कीर्त्तिं शुभान् पुत्रान् परत्र परमाङ्गतिं।
द्वारीवन्धात् फलं ब्रह्मन् हयमेधसमं भवेत्॥
समस्तपातकोच्छित्तिःकृते भवति देववत्।
तस्माद्यत्नेन कर्त्तव्यं विधिना द्वारिगं जलं॥
समस्तं शास्त्रदृष्टेन कर्म्मणा सफलं भवेत्।
श्येनकादेस्तथापूजा नागाङ्कं हृदयं जपेत्।
द्वारीवन्धप्रसिद्ध्यर्थं अन्यथा न लभेत् कृतं॥
यतः पुण्यैस्तु सिद्ध्येत द्वारीवन्धः सुरोत्तम।
अतः पुण्यविधिः कार्य्यो जपहोमव्रतादिकः॥

देशरोगौकसङ्घार्थं शिवस्यादेशतः शुभं ।
नागानां वारिसिद्ध्यर्थं नन्दाकूपं भवेत् कृतं ॥
तथापुण्या भवेद्वारी किन्तु संदेहसाधना ।
कृता विशीर्यते कालात्तस्मात् कार्य्या सदा दृढा ॥
देशपश्चिमयाम्यस्थं तत्कर्त्तुर्मृत्युदं भवेत् ।
जयं पश्चिमपूर्व्वेण रति-पुत्र-धनप्रदं ।
याम्य-सौम्यगतं दण्डं पत्नीधनविनाशनं ॥
यक्षवारुणगम्भद्र-शय्यायुःपुत्रदं गतं ।
पूर्व्वोत्तरगतं देयं सुखदं धनदं मतं ॥
पश्चिमे सङ्गतं नन्दं धनकोशविवर्द्धनं ।
जलवायुगतां हैमां हेमदञ्च भवेद्वमं ॥
रक्षोवायुगतं काकानुच्चाटं कुरुते धनं ।
अग्निवारुणिकं दाहं दहनं कीर्त्तिवर्द्धनं ॥
देशदाहगतं पापं धनतापकरं तथा ।
वायुदाहगतं तेजो धनहेमगजापहं ॥
एवं लक्षणमाश्रित्य कर्त्तव्या नाम वाटिकाः ।
शुभावहा सदा कर्त्तूराज्यायुःसुतपत्तिकाः ॥
वैरपत्ये सदा लोके धनं कर्त्तुर्म्मुदावहं ।
नृपराष्ट्रे जने दोषान्नहन्याद्विधिना शुभं ॥
सरुद्रां कारयेद्वारीं गणनाथसमन्वितां ।
जयञ्च विजयङ्कार्य्यं सुष्टुकुर्य्यात् सराष्ट्रकं ॥
नागाख्यं हृदयं जप्ता प्रस्फुरत् स्थापने शुभं ।
सेना विप्राह्नदेव्यश्च तर्प्पितव्याः पयःव्रतैः ॥

वस्त्रैर्नानाविधैर्गन्धैः फल-धूप गणादिभिः।
कार्य्यो महोत्सवो वाटयां पालीवन्धदृढ़ार्थिभिः।
दानं देयं सदा शक्र नृपराष्ट्रसुखावहं॥
गोदानं भूमिदानञ्च कन्यादानं सुरोत्तम।
द्वारीवन्धे प्रदातव्यमेकं कोटिगुणं भवेत्॥
गजा-श्व-रत्न-दानञ्च अन्नदानं प्रयत्नतः।
द्वारीवन्धेषु दातव्यं सर्व्वं कोटिगुणं भवेत्॥
गोमेधे नरमेधे च हयमेधे तथा मखे।
पुण्यं यज्जायते शक्र द्वारीवन्धे ततोऽधिकं॥
वापी-कूप-तड़ागानि देवता-यतनानि च।
एतानि वृत्तिधर्म्मेषु शुभानि फलदानि च॥
दीनान्धजड़भोक्तृणां दानं देयं यथाविधि।
एकं कोटिगुणं पुण्यं जायते नात्र संशयः॥
एतत्ते कथितं शक्र द्वारीवन्धस्य यत् फलं।
प्रादुर्भावन्तु देवीनां तेषां माहात्म्यं कीर्त्तित॥
शिवदूत्यास्तथा सम्यक्प्रादुर्भावं समङ्गलं।
यः शृणोति नरः सम्यक्सर्व्वं पुण्यफलं भवेत्॥
कूपा-राम-तड़ागादि प्रपाद्यग्नि प्रतिश्रयं।
सर्व्वं साधिष्ठितं वत्स अनन्तफलदायकं॥
यः कुर्य्याद्वारिवन्धानां तड़ागानां शतं तथा।
संवत्सरजलं कृत्वा लभेत्पुण्यन्ततोऽधिकं॥
शिव-सूर्य्य-हरि-ब्रह्म-संयुक्तं सर्व्वकामदं।
आद्यामूर्त्तिः परा ह्येषा व्यापिनी मन्त्रमन्त्रगा॥

सर्व्वेषां सर्व्वदैवत्यं ब्रह्माद्यैः परिवारितं ।
स्थापितं जायते शक्र सर्वाघभयनाशनं ॥

इति हारीतबन्धविधिः ।

अथ तड़ागादि प्रतिष्ठा ।

मत्स्यपुराणे ।

सूत उवाच ।

जलाशयगतिं विष्णुमुवाच रविनन्दनं ।
तड़ागा-राम-कूपानां वापीषु नलिनीषु च ॥
विधिं पृच्छामि देवेश देवतायतनेषु च ।
के तत्र ऋत्विजः कार्य्या वेदी वा कीदृशी भवेत् ॥
दक्षिणावलयः कास्तु स्थानमाचार्य्यमेव च ।
इत्यादिकानि शस्तानि सर्व्वमाचक्ष्व तत्त्वतः ॥

मत्स्य उवाच ।

शृणु राजन् महावाहो तड़ागादिषु यो विधिः ।

वह्निपुराणे ।

शुभे दिने शुभनक्षत्रे मुहूर्त्ते तु भवेद्यदा ।
वापी-कूप-तड़ागानां तस्मिन् काले विधिः स्मृतः ॥
संपूर्णे तु कृते कर्त्तुः संपूर्णाः स्युर्मनोरथाः ।
कर्कटे पुत्रलाभस्तु सौख्यन्तु मकरे भवेत् ॥
मीने यशो-र्थलाभस्तु कुम्भे च सुवहूदकं ।

वृषे च मिथुने वृद्धिर्द्देविके निर्जलं भवेत् ।
ट्वमिस्तु कन्यायान्तुलायां शाश्वती गतिः ॥
सिंहो मेषोधमुनीशं जलस्य द्विज गच्छति ।

मत्स्यपुराणे ।

माघपक्षं शुभं शुक्लमतीते चोत्तरायणे ।
पुण्ये ह्नि विप्रकथिते कृत्वा ब्राह्मणवाचनं ॥
प्रागुदक्प्रवणे देशे तड़ागस्य समीपतः ।
चतुर्हस्तां शुभां वेदीं चतुरस्रां चतुर्म्मुखीं ॥
तथा षोड़शकस्तः स्यात् मण्डपश्च चतुर्म्मुखः ।
वेद्याश्च परितो गर्त्ता रत्निमात्रा त्रिमेखला ॥
नवसप्ताथवा पञ्च योनिर्व्वक्रा नृपात्मज ।
वितस्तिमात्रा योनिः स्यात् षट् सप्ताङ्गुलविस्तृता ॥
गर्त्ताश्च तत्र शस्ताः स्युः त्वपर्व्वोच्छ्रितमेखला ।
सर्व्वतः सर्व्ववर्णाः स्युः पताकाध्वजसंयुता ॥
अश्वत्थो-डुम्बर-प्लक्ष-वट-शाखाकृतानि तु ।
मण्डपस्य प्रति दृश द्वाराण्येतानि कारयेत् ॥
शुभास्तत्राष्टहोतारो द्वारपालास्तथाष्ट वै ।
अष्टौ तु जापकाः कार्य्या ब्राह्मणा वेदपारगाः ॥
सर्व्वलक्षणसंपन्ना मन्त्रवन्तो जितेन्द्रियाः ।
कुलशीलसमायुक्ताः स्थापकस्व द्विजोत्तमः ॥
पुण्येऽह्नि शुभलग्नादौ ब्राह्मणानाञ्च वाचनं ।

परिभाषायां द्रष्टव्यं ;

तत्रोत्सर्गपूर्व्वदिवसे तडागाद्युत्सर्गं करिष्ये इति विहित संकल्पो यजमानो वृद्धिश्राद्धमाभ्युदयिकं विधाय ब्राह्मणवाचनं कुर्य्यात्।

वास्तुपूजा चात्र कर्त्तव्या।

यतस्तदकरणे मत्स्यपुराणे दोषः श्रूयते।
वास्तुपूजामकुर्व्वाणस्तवाहारो भविष्यतीति॥
तत् प्रकारस्तु गृहदाने दर्शितः।
हस्तादिलक्षण मुक्तं परिभाषायां।

गर्त्ताः, कुण्डानि।

तानि च चतसृषु दिक्षु चत्वारि, ऐशान्यां पञ्चमं, आचार्य्य-कुण्डमिति पञ्च कुर्य्यात्।

पताकास्तु प्राच्यादिप्रदक्षिणदिग्विदिक्षु पीत-रक्त-कृष्ण-नीलाञ्जननिभशुक्ल-कृष्ण-हरित-सर्व्ववर्णाः कार्य्याः।

ध्वजस्तु किङ्किणीकालङ्कृतः।

आचार्य्यप्रमुखान् पञ्चविंशतिब्राह्मणान् अमुकोऽर्थयज्ञेनाहं यक्ष्ये, तत्र मे त्वमृत्विग्भवेत्यादि दत्त्वा मधुपर्केणाभ्यर्च्चयेत्।

प्रतिगर्त्तेषु कलशो यज्ञोपकरणानि च।
व्यजने चासने शुभ्रे ताम्रपात्रे सुविस्तरे॥
ततस्त्वनेकवर्णाः स्युर्वलयः प्रतिदैवतं।
आचार्यः प्रक्षिपेद्भूमावनुमन्त्र्य विचक्षणः॥
अरत्निमात्रो यूपः स्यात् क्षीरवृक्षविनिर्म्मितः।

यजमानप्रमाणो वा संस्थाप्यो भूतिमिच्छता ॥
हेमालङ्कारिणः कार्य्याः पञ्चविंशतिर्ऋत्विजः ।
कुण्डलानि च हैमानि केयूर-कटकानि च ॥

तथा ।

अङ्गुलीयं पवित्राणि वासांसि विविधानि च ।
दद्यात्तेभ्य समं सर्व्वान् आचार्य्ये द्विगुणं पुनः ॥
दद्याच्छयनसंयुक्तमात्मनश्चापि यत् प्रियं ।
सौवर्णौ कूर्म्ममकरौ राजतौ मत्स्यडुण्डुभौ ॥
ताम्रौ कुलीरमण्डूकौ आयसः शिशुमारकः ।
एवमासाद्य तान् सर्व्वानादावेव विशांपते ॥
शुक्लमाल्याम्बरधरः शुक्लगन्धानुलेपनः ।
सर्व्वौषध्युदकस्नानस्नापितो वेदपुङ्गवैः ॥
यजमानः सपत्नीकः पुत्रपौत्रसमन्वितः ।
पश्चिमं द्वारमाश्रित्य प्रविशेद्यागमण्डपं ॥
ततो मङ्गलशब्देन भेरीणां निस्वनेन च ।

प्रतिगर्त्तेत्यादि, प्रतिकुण्डमासनद्वयं ताम्रपात्रद्वयं विष्टरद्वयं व्यजनं वस्त्रं स्रक्चन्दनादिभूषितं पञ्चरत्नगर्भकलशञ्च स्थापयेत् । यज्ञोपकरणानि, पवित्रच्छेदन-प्रोक्षणीपात्र-प्रणीतापात्र-स्थाली-स्रुक्-स्रुवे-धबर्हिः-समिदाज्य-प्रभृतीनि तथा स्थापयिष्यमाण-देवतार्थबलीन् नानावर्णगन्धधूपदीपमाल्यानि क्षीरवृक्ष-निर्म्मितं यूपञ्चोपकल्पयेत् तञ्च यूपं-देवताबलिहरणानन्तरं पूर्व्व-कुण्डान् प्राच्यान्दिशि नवतानि चावटे प्रक्षिप्य निखनेत्,

कुङ्कुम-राजिक-कुलीर-कर्कटक-कूर्म्मादीश्च पञ्चरत्नगर्भायां सुवर्ण-पात्राणि निक्षिप्य स्थापयेत्※। एवमन्यदपि प्रकृतोपयोगि-कर्म्मारम्भात् पूर्व्वमेवासादयेत।

सर्वौषध्यः, परिभाषायां दर्शिताः।

रजसा मण्डलं कुर्य्यात् पञ्चवर्णेन तत्त्ववित्।
षोड़शारन्ततश्चक्रंपद्मगर्भंचतुर्मुखं॥
चतुरस्रञ्च परितो वृत्तं मध्ये सुशोभनं।
वेद्याश्चोपरितः कृत्वा ग्रहांल्लोकपतींस्तथा॥
विन्यसेन्मन्त्रतः सर्व्वान् प्रतिदिक्षु विचक्षणः।
झषादीन् स्थापयेन्मध्ये वारुणं मन्त्रमाश्रितः॥
ब्रह्माणञ्च शिवं विष्णुं तत्रैव स्थापयेद्बुधः।
विनायकञ्च विन्यस्य कमलामम्बिकां तथा॥
शान्त्यर्थं सर्व्वलोकानां भूतग्रामं न्यसेत्ततः।
पुष्पभक्ष्यफलैर्युक्तमेवं कृत्वाधिवासयेत्॥
कुम्भांश्च रत्नगर्भांस्तान् वासोभिरभिवेष्ट्य च।
गन्ध-पुष्पैरलङ्कृत्य द्वारपालान् समन्ततः॥
पठध्वमिति तान् ब्रूयादाचार्य्यस्त्वभिपूजयेत्।
बह्वृचौ पूर्व्वतः स्थाप्यौ दक्षिणेन यजुर्व्विदौ॥
सामगौ पश्चिमे स्थाप्यौ उत्तरेण त्वथर्व्वणौ।
उदङ्मुखो दक्षिणतो यजमान उपाविशेत्॥

रजसेत्यादि, रजसा तण्डुलादिचूर्णेन।
तत्प्रकारस्तु परिभाषायां दर्शितः।

※ कलपर्वेदिति क्वचित् पाठः।

ग्रहान्, आदित्यादीन् अधिदेवता-प्रत्यधिदेवता-सहितान्। लोकप्रभृतीन, इन्द्रप्रभृतीन्।

तेषामावाहनादिविधिः तुलापुरुषे द्रष्टव्यः।

झषादीन्, मकरादीन्।

कमलां, लक्ष्मीं, अम्बिकां, दुर्गां।

तानिति, कुण्डसमीपस्थान् कलशान्।

पूर्व्वकुण्डे बह्वृचौ होतारौ स्थापयेत्।

दक्षिणादिकुण्डेषु यथावेदं होतॄनुपवेश्य जाप-दक्ष-द्वार-पालानामेष एव क्रमो वेदितव्यः।

यजध्वमिति तान् ब्रूयाद्धोतृकान् पुनरेव तु।
उत्कृष्टमन्त्रजप्येन तिष्ठध्वमिति जापकान्।
एवमादिश्य तान् सर्व्वान् प्रयुञ्ज्यादग्निष्व मन्त्रवत्॥
जुहुयाद्वारुणैर्मन्त्रै राज्यञ्च समिधं तथा।
ऋत्विग्भ्यश्चैव होतव्या वारुणैरेव सर्व्वशः॥
ग्रहेभ्योविधिवद्दत्वा तथेन्द्रायेश्वराय च।
मरुद्भ्यो लोकपालेभ्यो विधिवद्विश्वकर्म्मणे।

जुहुयादाचार्य्य इतिशेषः।

वारुणमन्त्राः।

तत्वायामि ब्रह्मणा वन्दमान इति पञ्च।

त्वं नो अग्ने वरुणस्य विद्वानिति द्वे।

इमं मे वरुण श्रुधीति च।

होमसंख्या तु समिदाज्ययोरष्टोत्तरशतं विधाय ग्रहादिभ्यस्तु प्रत्येकमष्टाविंशतिराहुतयोहोतव्याः।

ग्रहादिमन्त्रास्तु, तुलापुरुषेऽभिहिताः।

विश्वकर्म्ममन्त्रः।

रौद्रसूक्तं इमारुद्रायेत्यादि, पावमानन्तु मङ्गलसूक्तं।

रात्रिसूक्तञ्च रौद्रञ्च पावमानन्तु मङ्गलं।
जपेरन् पौरुषं सूक्तं पूर्व्वतो जुहुयात् पृथक्॥

रात्रिसूक्तं, रात्रिवाख्य दायती इत्यादि।

कनिक्रदज्जनुषमित्यादि पुरुषसूक्तं प्रसिद्धं सूक्तं।

शक्रं रौद्रञ्च सौम्यञ्च कौष्माण्डं जातवेदसं।
सूरसूक्तं जपेरंस्ते दक्षिणेन यजुर्व्विदः॥

शक्रं सूक्तं, इन्द्रनो विश्वतस्य रीत्यनुवाकोद्धनुशक्रमिति लिङ्गकं। रौद्रसूक्तं इमारुद्रा यःस्थिरधन्वन इभि षट्।

ऋचः, सौम्यसूक्तं सोमो धेनु मिति षट् ऋचः।

कौष्माण्डसूक्तं यद्देवादेवहेडनमिति चत्वारो।

अनुवाकाः, जातवेदससूक्तं यस्त्वाहृदाकीरिणेत्यनुवाकः सूरसूक्तं सूर्य्योदेवीमिति षट्।

ऋचः एतानि सूक्तानि तैत्तिरीयाणां प्रसिद्धानि।

वैराजं पौरुषं सूक्तं सौवर्णं रुद्रसंहिता।
शैशवं पञ्च निधनं गायत्रं ज्येष्ठसाम च॥
वामदेव्यं वृहत्सौम्यं रौरवं सौरथन्तरं।
गवां व्रतं विकर्णञ्च रक्षोघ्नञ्च यशस्तथा॥

गायेति सामगा राजन् पश्चिमद्वारमाश्रिताः ।

वैराजं पिवासोममिन्द्रेत्यत्र प्रसिद्धं ।

सोपर्णानि उत्स्वेद्भिश्रुता मघमित्यत्र, त्रीणि, सामानि संहिता ।

आवोराजानमित्यादिप्रसिद्ध ।

ग्रैवं, उच्चाते जातमन्धस इति प्रसिद्धं ।

पच्च निधनं वा, वाम देव्यं कयानश्चित्रेत्यत्र प्रसिद्धं ।

गायत्रन्तु प्रसिद्धं ।

ज्येष्ठ सामानि त्रीण्यास्य दोहानि वामदेव्यं ग्रामे गेयं इह-मस्त्वामिह वामह इति प्रसिद्धं ।

सौम्यं सोमव्रतं सन्ते पयांसीति प्रसिद्धं ।

रौरवं पुनानः सोमेत्यत्र प्रसिद्धं ।

रथन्तरं अभित्वा सूरनो नुम इति प्रसिद्धं ।

गवां व्रतं त्वमन्यत प्रथम मितिद्वे सामनी, विकर्णं विभ्रा-त्यत्र प्रसिद्धं :

रक्षोघ्नं, यज्ञः समेद्धहदिन्द्रायेत्यत्र प्रसिद्धं ।

आथर्व्वण्याश्चोत्तरतः शान्तिकं पौष्टिकं तथा ।

जपेरन् मनसा देवान् आश्रिता वरुणं प्रभुं ॥

पूर्व्वेद्युरभितो रात्रावेवं कृत्वाधिवासनं ।

गजा-श्व-रथ्या-वल्मीक-सङ्गम-ह्रदगोकुलात् ॥

मृदमानीयकुम्भेषु प्रक्षिपेत्सर्वरात्तथा ।

रोचनाञ्च प्रसिद्धार्थान गन्धान् गुग्गुलमेवच ।

स्नपनं तस्य कर्त्तव्यं पञ्चभङ्गसमन्वितैः।
पूर्व्वं कनुर्मभ्हामन्त्रैरेवं कृत्वा विधानतः॥

रोचनां गोरोचनां।

सिद्धार्थाः, श्वेतसर्षपाः।

पञ्चभङ्गाः,

अश्वत्थो-डुम्बर-प्लक्ष-वट-चूत-स्य पल्लवाः।
अभिषेकमन्त्राः, तुलापुरुषे द्रष्टव्याः।
अभिषेकस्तु, द्वितीयदिवसे विधेयः।

शक्रादि देवताः, सर्व्वा ब्रह्म विष्णु महेश्वराः।
सुरास्त्वामभिषिञ्चन्तु प्रयच्छन्तु धनानि च।
नारायणो जगन्नाथस्तथा संकर्षणो विभुः॥
प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च ऋद्धिं यच्छन्तु ते सदा।
आदित्या वसवो रुद्रा विश्वेदेवा मरुद्गणाः॥
गन्धर्व्वाः किन्नरा यक्षाः सिद्धा विद्याधरोरगाः।
अभिनन्दन्तु ते सर्व्वे नद्यः सागरपर्व्वताः॥
वेदशास्त्रपुराणानि मीमांसा-छन्द-आगमाः।
बृहत्कथादिका याश्चान्याः कथाः सर्व्वाः शुभप्रदाः।
गायत्री चैव सावित्री शची लक्ष्मीः सरस्वती।
मृडानी मातरः सर्व्वा भवन्तु वरदाः सदा॥
आदित्यश्चन्द्रमा भौमो बुधो जीवः सितार्कजः*।
ग्रहास्त्वामभिषिञ्चन्तु राहुः केतुश्च तर्पिताः॥

* बुधजीवसितार्कजा इति पुस्तकान्तरे पाठः।

इन्द्रो वह्निर्यमश्चैव निर्ऋति-र्वरुणस्तथा।
वायुः कुवेर ईशानोदिक्पालाः पान्तु सर्व्वदा॥
संवत्सरा-यने मासास्तिथिर्व्वाराश्च नाडिकाः।
मुहूर्त्तान्यभिषिञ्चन्तु नक्षत्राणि दिवानिशं।
इत्येवं रुद्रकुम्भेन कर्त्तारमभिषिञ्चयेत्॥
एवं कृत्वा समिदाज्यविधियुक्तेन कर्म्मणा।
ततः प्रभाते विमले सञ्जाते वा गवां शतं॥
ब्राह्मणेभ्यः प्रदातव्यमष्टषष्ट्यथवा पुनः।
पञ्चाशदाथ षट्त्रिंशत् पञ्चविंशति वा पुनः॥

एता गावो दक्षिणा भवन्त्वाः सम्पादिताः कर्म्माङ्गदेवताः प्रीयन्तामित्युदकपूर्व्वं दद्यात्।

ततः सांवत्सरैः प्रोक्ते शुभे लग्ने सुशोभने।
वेदशास्त्रैः सगान्धर्व्वैर्वाद्यैश्च विविधैः शुभैः॥
कनकालङ्कृतां कृत्वा तत्र गामवतारयेत्।
सामगाय च तां देयां ब्राह्मणाय विशाम्पते॥

अथ स्नानानुमन्त्रणमन्त्रः।

इदं सलिलं पवित्रं कुरुष्व।
शुद्धपूतो अमृतः सन्तु नित्यं।
मान्तारयन्तो कुरु तीर्थाभिषेकं।
लोकाल्लोकन्तरते तार्थ्यतेति॥

तत्पुच्छाग्रे यजमानः संलग्नस्तरेत्।
जलाशयश्च विप्रता सूत्रेण परिवेष्टयेत्।

पात्रीमादाय सौवर्णीं पञ्चरत्नसमन्विताम् ॥
ततो निक्षिप्य मकरं मत्स्यादींस्तांश्च सर्व्वशः ।
धृताश्चतुर्भिर्विप्रैश्च वेद-वेदाङ्गपारगैः ॥
महानदीं जलोपेतां दध्य-क्षत-विभूषितां ॥
उत्तराभिमुखीं न्युब्जां जलमध्ये तु कारयेत् ॥
आथर्व्वणेन साम्ना च पुनर्म्मामित्यृचेति च ।
आपोहिष्ठेति मन्त्रेण क्षिप्त्वागत्य च मण्डपं ॥

आथर्व्वणं साम शन्नो देवीरभिष्टये इत्यत्र प्रसिद्धमरण्यगेयं तथाश्रयं, जलाशयः सर्व्वोपयोगित्वेन सर्व्वेभ्यो भूतेभ्यो मयोत्सृज्यत इतित्यागं कुर्य्यात् ।

पूजयित्वा सदस्यांस्तु बलिं दद्यात्समन्ततः ।
पुनर्दिनानि होतव्यं चत्वारि मुनिसत्तमाः ॥
चतुर्थीकर्म्म कर्त्तव्यं देया तत्रापि शक्तितः ।
दक्षिणा राजशार्दूल वरुणं संस्मरंस्ततः ॥
कृत्वा तु यज्ञपात्राणि यज्ञोपकरणानि च ।
ऋत्विग्भ्यस्तु समन्दत्त्वा मण्डपं-विभजेत्पुनः ॥
हेमपात्रीञ्च शय्याञ्च स्थापकाय निवेदयेत् ।
ततः सहस्रं विप्राणामथवाष्टशतं तथा ॥
भोजयेच्च यथाशक्त्या पञ्चाशदाथ विंशतिं ।
एवमेव पुराणेषु तडागे विधिरुच्यते ॥
कूप-वापीषु सर्व्वासु तथा पुष्करिणीषु च ।
एष एव विधिर्दृष्टः प्रतिष्ठासु तथैव च ॥
मन्त्रतस्तु विशेषःस्यात् प्रासादो-द्यानभूमिषु ।

अयञ्च शक्तिवाधेन विधिर्दृष्टः स्वयम्भुवा।
स्वल्पेऽप्येकाग्निवत्कार्य्यं वित्तशाठ्याद्धते नृभिः॥
प्रावृट्काले स्थितन्तोयमग्निष्टोमसमं स्मृतं।
शरत्कालस्थितं यत्स्यात् तदुक्तफलदायकं॥
वाजपेया-तिरात्राभ्यां हेमन्त-शिशिरस्थितं।
अश्वमेधसमं प्राहुर्व्वसन्तसमये स्थितं।
ग्रीष्मे च यत् स्थितन्तोयं राजसूयाद्विशिष्यते॥

एतान्महाराज विशेषधर्म्मान्
करोति योऽर्थानथ शुद्धबुद्धिः।
स याति रुद्रालयमाशु पूतः
कल्पाननेकान् दिवि मोदते च॥
अनेन लोकांश्च महस्तपादीन्
भुक्ता परार्द्धद्वयमङ्गनाभिः।
सहेति विष्णोः परमं पदं यत्
प्राप्नोति तद्योगबलेन भूयः॥

एवमयं साधारणस्तडागादि प्रतिष्ठाविधिरुक्तः विशेषस्तु शाखाविभेदेन पुरस्तादुच्यते।

तत्राविरुद्धधर्म्माणामेकत्रोपसंहारेण प्रतिष्ठानुष्ठानमाश्रयणीयं विरुद्धधर्म्मसम्बन्धे तु स्वशाखोक्तमनुष्ठेयमिति।

अथ वह्निपुराणे।

द्विज उवाच।

वारुणेष्टिर्यथा वेदे प्रोक्ता यादृक् स्वयम्भुवा।
मोक्षो न जायते येन तत्सर्व्वं ब्रूहि मे विभो॥

यम उवाच।

सुदिने शुभनक्षत्रे प्राग्विप्राननुपवेशयेत्।
प्रोक्ष्यावाह्य च ऋग्वेदसंवत्सरोसि वै यज्ञः।
आवोराजेति सम्मानि अयं मेहीत्यथर्व्वणा॥
पूर्व्वं पाद्यन्तु वै दद्यादिदं विष्णुरितीत्यृचा।
आत्वावहन्तु हरय इत्यर्घं संप्रदापयेत्॥
ततश्चाचमनीयञ्च विष्टरोस्वीतिविष्टरं।
कांस्यपात्र्यां मधु चाज्यं कुकुरोसीतिमन्त्रितं॥
त्रिःसंप्राश्य तथाचात्मन्नन्त्वादापः पुनन्त्विति।
दद्यात् स्थपतये चैवं सदसस्पतिमित्यृचा॥
ततस्तं ब्राह्मणा ब्रूयुः कस्त्वायुनक्ति कर्म्मणः।
शाकुनेन ततो वश्यं स्थालीपाकं समारभेत्॥
लौकिकाग्निं पुरस्कृत्य लोकोहि वलवान् यतः॥
श्रोत्रिये गामनड्वाहं हन्यात् किन्न समाचरेत्।
चक्षुषी पूर्व्वतो हुत्वा व्याहृतीस्तदनन्तरं॥

चक्षुषी आज्यभागौ,

दद्यात् पूर्णाहुतीं पूर्णां गर्भाधानादिकं ततः।
कुर्य्यात्पञ्चभिखातं च वरुणं वारिसादृश।

ततः पूर्णाहुतिं दत्त्वा अग्निकुण्डं नयेत्परा॥
अग्निं दूतं वृणीमह इत्यतो दक्षिणं नयेत्।
वीतिहोत्रं त्वाकरेति अग्निं दूतस्य पश्चिमे॥
तं नो त्वामुत्तरं पश्चात् अग्नआयाहि वीतये।
एवमुत्पाद्य तं वह्निं चक्षुषी व्याहृतं हुनेत्॥
वारुणैरेव मन्त्रैश्च पृथककुण्डे च पञ्चकं।
वरुणः प्राहृताभुवमिमं मे वरुणं तथा॥
उदुत्तममितिद्वाभ्यां ऋजुनीतीति वा ततः।
सोमं राजानमित्याहुश्चरुं प्राच्यं हि वारुणं॥
हुत्वा पूर्णाहुतिं दत्त्वा यूपं तद्वरुणं न्यसेत्।
संपूज्य वारुणे कुम्भे शाकलं होममाचरेत्॥
ब्रह्मणो ब्रह्मजज्ञानमतोदेवेति विष्णवे।
शम्भवे सम्भवायेति त्रातारमिति जिष्णवे॥
त्वमग्ने रोहिताश्वाय यमाय त्वेति मे द्विज।
एष ते निरृते चैव वरुणस्य यादःपतेः॥
वातोवाद्यतिवाताय कुविदङ्गमुदकपतिः।
ईशानमस्य ईशस्य ग्रहाणां शृणु साम्प्रतं॥
आकृष्ण इति सूर्याय इमं देवेति इन्दवे।
कुजायेत्यग्निमूर्धास्य उद्बुध्यस्वेन्दुसूनवे॥
गुरोर्बृहस्पतेत्याहुः शुक्रायान्नात्परिस्रुतः।
शन्नोदेवो तु सौरेस्तु कयान इति राहवे॥
केतुं क्राण्वन्केतोस्तु विश्वायुर्विश्वकर्मणे।
भूतायत्वेति भूतेभ्यो क्षेत्रस्येतिच भूपते।

रक्षोघ्नैश्चैव मन्त्राणि हुत्वा तैः क्रमशो नृप ॥
शतं शतसहस्रं वा तिलांस्तत्र पृथक् पृथक् ।
समिद्भिस्तु यवैर्व्वापि दत्त्वा पूर्णाहुतिं पुनः ॥
सर्व्वभागोपकाराय शान्तिं कृत्वा द्विजोत्तमः ।
चरुन्तु श्रपयेत् पश्चा वारुणं सर्व्वकामदं ॥
वारुणैरेव होतव्यं वरुणाय नियोजयेत् ।
पूर्णाहुतिं ततो दत्त्वा कुण्डे कुण्डे यथाविधि ॥
वरुणाय नमेत्तत्र सयादोभिः समन्वितं ।
उत्सृजेत्तत्र धेनूनां शतमेवार्द्धमेव वा ॥
बह्वनामप्यभावे तु एकां रत्नैरलङ्कृतां ।
देव-पितृ-मनुष्येभ्यः पुच्छे तस्यास्तिलोदकं ॥
दत्त्वा निवेदयेत्पश्चात् सर्व्वालङ्कारभूषितां
ऋत्विग्भ्यो गुरवे पूर्व्वं त्रिगुणां दक्षिणां सदा ॥
स्नायादवभृथेनाथ पुत्र-भार्य्या-सुहृद्वृतः ।
प्रदद्याद्दक्षिणांस्तेभ्यो यथाशक्त्या तथा गवां ॥
एवं यः कुरुते राजन् वारुणेष्टिं प्रयत्नतः ।
स पूर्व्वपितृभिर्युक्तः परं ब्रह्माधिगच्छति ॥
एवमेतन्मया ख्यातं यदुक्तं वह्निना पुरा ॥

इति वारुणेष्टिः ।

बह्वृचपरिशिष्टात् ।

अथातो वारुणविधिं वापीयज्ञं व्याख्यास्यामः

पुण्ये तिथिकरणे शुभे नक्षत्रे प्राचीं दिशमास्थाय प्राक्प्रवणे उदक्प्रवणे वा उदकसमीपेऽग्निमुपसमाधाय वारुणं चरुं श्रपयित्वा आज्यभागान्तं कृत्वा आज्याहुतीर्जुहुयात्। समुद्रज्येष्ठा इति प्रत्यृचं। ततो हविषा अष्टाहुतीर्जुहुयात् तत्त्वायामि ब्रह्मणा वन्दमान इति पञ्च, त्वं नोऽग्ने वरुणस्य विद्वानिति द्वे, इमं मे वरुणः शुधीहवेति च स्विष्टकृतं नवमं नव वै प्राणा प्राणा वा आपस्तस्मादानवभिर्जुहोति* मार्जनान्ते धेनुमवतारयेत्। अवतार्य्यमाणान्तामनुमन्त्रयेत् इदं सलिलं पवित्रं कुरुष्व शुद्धः पूतो अमृतः सन्तु नित्यं भावयन्तो सर्व्वतीर्थाभिषिक्तं लोकालोकान्तरते तीर्थतेचेत्यनेन पुच्छाये यजमानः स्वयं लग्नः आचार्य्येणान्वारब्ध उत्तीर्य्य आपो अस्मान्मातरः शुन्धयन्त्वपराजितायां दिश्युत्थापयेत्।

सूयवसा भगवती भवतोह भूया इति, यदि सा हिं करोति तदा हिं कृण्वती वसुमती वसूनामिति जपेत्। तां सचेलकण्ठां काञ्चनशृङ्गीं ताम्रपृष्ठां वृषप्रजां रौप्यखुरां कांस्योपदोहां विप्राय सामगाय दद्यादितरा वा शक्त्या दक्षिणां आचार्य्याय देयेति ततः उत्सर्गं कुर्य्यात् देवपितृमनुष्याः प्रीयन्तामित्यतसृज्य इति आह शौनको यजमानो ब्राह्मणान् भोजयित्वा स्वस्त्ययनं वाचयेत्।

अथ वृक्षारोपणं।

तत्र महाभारते।

स्थावराणाञ्च भूतानां जातयः षट् प्रकीर्त्तिताः।
वृक्ष-गुल्म-लता-वल्ली त्वक्-सारास्तृणजातयः॥
एतास्तु जात्या वृक्षाणां तदारोपे गुणोऽस्ति मे।

---

* नव वै प्राणा आपस्तस्मादानवभिर्जुहोतीति क्वचित् पाठः।

कीर्त्तिश्च मानुषे लोके प्रेत्य चैव शुभं फलं ॥
अतीतानागतौ चोभौ पितृवंशौ च भारत।
तारयेद्वृक्षरोपी च तस्माद्वृक्षांश्च रोपयेत् ॥
पुष्पैः सुरगणान् वृक्षाः फलैश्चापि तथा पितॄन्।
छायया चातिथीन्तात पूजयन्ति महीरुहाः ॥
किन्नरो-रग-रक्षांसि देव-गन्धर्व-मानवाः।
तथा महर्षयश्चैव संश्रयन्ति महीरुहान् ॥
पुष्पिताः फलवन्तश्च तर्पयन्तीह मानवान्।
इहवदं पुत्रवद्वृक्षास्तारयन्ति परत्र च।
तस्मात्तडागे राप्या वै वृक्षाः श्रेयोर्थिभिःसदा ॥
पुत्रवत्परिपाल्याश्च पुत्रास्ते धर्म्मतः शुभाः।

अथाह विष्णुः।

वृक्षारोपयितुर्वृक्षाः परलोके पुत्रा भवन्ति।

वृक्षप्रदस्य वृक्षः प्रसूनैर्देवान् प्रीणयन्ति, फलैश्चातिथीन्, छाययाभ्यागतान्, देवे वर्षे उदकेन पितॄन्।

पद्मपुराणे।

अपुत्रस्य च पुत्रत्वं पादपा इह कुर्व्वते।
यच्छन्ति रोपकेभ्यस्ते सत्तीर्थ-तर्पणादिकं ॥

सत्तीर्थ-पुत्रकृतं तर्पणादि हत्यादिजन्यं फलं रोपकस्य प्रयच्छन्तीत्यर्थः।

यत्नेनापि च राजेन्द्र पिप्पलारोपणं कुरु।
स तु पुत्रसहस्राणामेकएव करिष्यति ॥

पुत्रसहस्राणां कर्त्तव्यमिति शेषः

धनी वाश्वत्थवृक्षेण ह्यशोकः शोकनाशनः ।
प्लक्षो यज्ञपतिः प्रोक्तश्चिञ्चा चायुःप्रदा स्मृता ॥
जम्बुकी कन्यदा प्रोक्ता भार्य्यादा दाड़िमी तथा ।
अरलू रोगनाशाय पलाशो ब्रह्मदस्तथा ॥
प्रेतत्वं जायते पुंसः रोपयेद्यो विभीतकं ।
अङ्कोले कुलवृद्धिः स्यात् खदिरे चाप्यरोगता ॥
निम्बप्ररोपको यस्तु तस्य तुष्टो दिवाकरः ।
श्रीवृक्षे शङ्करो देवः पाटलायान्तु पार्व्वती ॥
शिंशपायामप्सरसः कुन्दे गन्धर्व्वसत्तमाः ।
तिन्तिड़ीके दासवर्गो वकुलो दस्युदस्तथा ॥

श्रीवृक्षः, विल्वः ।

तिन्तिडीकोवृक्षः, अम्लः ।

पुण्यश्रीदायकश्चैव चन्दनः पनसस्तथा ।
सौभाग्यदश्चम्पकश्च करीरः पारदारकः ।
अपत्यनाशदस्तालो नादीशः कुलवर्द्धनः ॥
बहुभार्य्यानारिकेली द्राक्षा सर्व्वाङ्गसुन्दरी ।
रतिप्रदा तथा केली मोचको शत्रुनाशकः ॥

मोचकः, शाल्मलिः ।

इत्यादयस्तथा येऽन्ये येनोक्तास्तेऽपि दायकाः ।
प्रतिष्ठान्ते गमिष्यन्ति ये नरा वृक्षरोपकाः ॥

भविष्यत् पुराणे ।

वरमेकभूमिरुहाः पञ्च नतु कोष्ठरुहा दश।
पत्रैः-पुष्पैः फलैः मूलैः कुर्व्वन्ति पितृतर्पणं॥
बहुभिर्वत सञ्जातैः पुत्रैर्धर्म्मार्थवर्जितैः।
वरमेकः पथि तरुर्यत विश्रमते जनाः॥
प्राणिनः प्रीणयत्यस्माच्छाखा-वल्कल-पल्लवैः।
पुष्पच्छदा सुतनवः पुष्पैर्देवान् फलैः पितॄन्॥
पुष्प पत्र-फल च्छाया-मूल वल्कल-दारुभिः।
धन्या महोरुहा येषां विफला यान्ति नार्थिनः॥
पुत्राः संवत्सरस्यान्ते श्राद्धं कुर्व्वन्ति मानवाः।
प्रत्यहं पादपाः पुष्टिं यथेष्टां जनयन्ति हि॥
न ततकरोत्यग्निहोत्रमसाध्यं योषितां सुतैः।
यत्करोति घनच्छायः पादपः पथि सेवितः॥
सुच्छाया च सुपुष्पाच सुफला पुष्पवाटिका।
कुलयोषेव भवति भर्त्तृलोके हृयानुगा॥
अशोकपल्लवकरा तिलकालङ्कृतानना।
सर्व्वोपभोग्या वेश्येव वाटिका रतिदायका॥
सदास सत्त्रीभवति सदा दानं प्रयच्छति।
सदा यज्ञं स यजते यो रोपयति पादपं॥
अश्वत्थमेकं पिचुमर्दमेकं
न्यग्रोधमेकं दश चिञ्चिणीकं।
कपित्थ विल्वामलकीत्रिपञ्च
पञ्चाम्रवापी नरकं न पश्येत्*।

* अश्वत्थमेकं पिचुमर्द्दमेकं द्वौ चम्पकौ त्रीणि च केशरांश्च सप्ताथ मालाम्रथमारिकेलान् पञ्चाम्रवापी नरकं न पश्येदिति पुस्तकान्तरे पाठः।

प्रतिश्रयाश्रान्तसमाश्रयित्वा-
द्दमौ च सत्र फलदा बभूवे ।
अपत्यमेते परलोकहेतो-
र्विमृश्य तत् किं-तरवोन रोपिताः ॥
न खानिता पुष्करिण्यो रोपिता न महीरुहाः ।
मातुर्यौवनचोरेण तेन जातेन किं कृतं ॥
छायामन्यस्य कुर्व्वन्ति तिष्ठन्ति स्वयमातपे ।
फलन्ति च परार्थेषु न स्वार्थैकपरा द्रुमाः ।
अतो द्रुमाः सदा रोप्याः सर्व्वकामसमृद्धये ॥

इति वृक्षारोपणफलं ।

अथ वृक्षदानं ।

स्कन्दपुराणे ।

यस्तु वृक्षं प्रकुरुते छाया-पुष्प-फलोपगं ।
पथि दिव्ये नरः पापात् सन्तारयति वै पितॄन् ।

नन्दिपुराणे ।

मार्गशीर्षे तु योदद्याच्छायाविटपसंकुलं ।
सकुल्यास्तरुखण्डेषु महेन्द्रोद्यानकेष्वस्तु ।
विनोद्यन्ते सरोहन्दैर्देववच्च युगार्व्वुदं ॥
मार्गशीर्षे, अध्वमुखे ।
दद्यादित्यत्र वृक्षमितिशेषः ।

फलद्रुमञ्च यो दद्याद्धर्म्ममुद्दिश्य मानवः।
स सर्व्वकामतृप्तात्मा गच्छेद्वरुणमन्दिरं॥

महाभारते।

देवेभ्योऽथ द्विजातिभ्यो यो दद्यात् फलदं द्रुमं।
स पीयूषभुजां लोके सेव्यमानो वरोरुभिः॥
क्रीड़ते देववत् कालमनन्तं पूर्व्वजान्वितः।
सहकारद्रुमन्दत्वा किन्नरैः सह मोदते॥
याति दत्वा द्विजे जम्बूमम्बिकायाः सलोकतां।
वारुणं नारिकेलेण खर्ज्जूरेण च धानदं॥
पूगद्रुमप्रदानेन लोकं सारस्वतं व्रजेत्।
याति चन्द्रमसो लोकं दत्वा पनसभूरुहं॥
चिञ्चाप्रदानतो याति रुचिरं लोकमाश्विनं।
कपित्थ-दाड़िमा-म्रात-बदर्य्या-मलकीतरून्॥
दत्वा मघवलोकेषु सुखमश्नाति मानवः।
अन्येषामपि वृक्षाणां सुमनःफलशाखिनां।
प्रदानतो नरो याति परमैश्वर्य्यसम्पदं॥

तथा।

पुष्पोपगञ्चाथ फलोपगञ्चा
यः पादपं-स्पर्शयते द्विजाय।
स स्त्रीसमृद्धं बहुरत्नपूर्णं
प्राप्नोत्ययत्नोपनतं गृहं वै॥

अथ कदलीदानं ।

आह बौधायनः ।

कारयेत् कदलीं दिव्यां पर्णैः सर्व्वत संवृतां ।
फलपूगेन संयुक्तां सुवर्णस्य फलेन तु ॥
यथाविभवतः कुर्य्याद्वस्त्रेणावेष्ट्य सूत्रकैः ।
ब्राह्मणान् भोजयेच्चापि भक्ष्यैर्नानाविधैः शुभैः ॥
होमञ्च कारयेत्तत्र पूर्व्ववद्ब्राह्मणेन च ।
हिरण्यगर्भइत्यादितल्लिङ्गैः प्राङ्मुखेन तु ॥
तस्मै तां कदलीन्दद्याद्वस्त्रा-लङ्कारपूर्व्विकां ।
पूजिताय दरिद्राय कुटुम्बायात्मवेदिने ।
धर्म्मज्ञाया-तिदान्ताय मन्त्रेणानेन तां च्चयी ॥
हिरण्यगर्भपुरुष परात्पर जगन्मय ।
रम्भादानेन देवेश चयं च्चपय मे प्रभो ॥

दानमन्त्रः ।

पुण्याहवाचनं कार्य्यं ब्राह्मणैर्व्वेदपारगैः ।
शिष्टैरिष्टैर्व्वन्धुमिश्च सह भोजनमाचरेत् ॥

अथ न्यग्रोधदानं ।

तथा ।

व्रणाः शस्त्रेण येऽपि स्युर्व्विषदिग्धेन संयुगे ।
तेऽपि शुद्धाः प्ररोहन्ति यथा प्रोक्तन्तु वायुना ॥

वर्णं राजतं वापि ताम्रं कांस्यमथापि वा ।
पलद्वयेन चैकेन तदर्द्धेनाथवा पुनः ॥
न्यग्रोधवृक्षं कुर्व्वीत स्कन्धशाखाभिरन्वितं ।
वस्त्रयुग्मेन संवेष्ट्य स्कन्धे स्कन्धे पृथक् पृथक् ।
हरिद्रापुञ्जके स्थाप्य ब्राह्मणाय नियोजयेत्* ॥
उत्तराशापते देव कुबेर नरवाहन ।
नाडीव्रणं नाशयाशु न्यग्रोधस्य प्रदानतः ॥

दानमन्त्रः ।

अथाश्वत्थदानं ।

वायुपुराणे ।

भवेत् स्फुटितपादस्तु योऽभिहिंस्याद्वनस्पतीन्।
दानेन तत्प्रतीकारं प्रवक्ष्यामि यथोदितं ॥
पलार्द्धेन तदर्द्धेन तदर्द्धेनाथवा पुनः ।
अश्वत्थवृक्षं कुर्व्वीत स्कन्धशाखासमन्वितं ॥
माणिक्य-वज्र-वैदूर्य्यैः स्कन्धमध्ये स्वलङ्कृतं ।
वस्त्रेणावेष्ट्य सर्व्वत्र धान्यस्योपरि विन्यसेत् ॥
आचार्य्यः सर्व्वशास्त्रज्ञो धर्म्मशास्त्रसुनिष्ठितः ।
वेद-वेदाङ्ग-तत्त्वज्ञो यज्ञकर्म्मणि निष्ठितः ।
पूजितो वस्त्रमाल्याद्यैरश्वत्थं पूजयेच्छुभं ॥

* वपेदिति पुस्तकान्तरे ।

अश्वत्थे वो निषदनमितिमन्त्रेण संयुत: ।
उपचारैः षोडशभिर्होमं कुर्य्यादनन्तरं ॥
समिदाज्यतिलैर्मन्त्रैर्य्यदोषधयइत्यति ।
निर्व्वतिनामवतीभिस्तान्येव इति च त्रिभि: ॥
अश्वतथ इति मन्त्रेण हुनेत् स्विष्टकृतं तथा ।
अष्टोत्तरशतं हुत्वा अष्टाविंशतिमेव वा ॥
सम्पाताज्येन पादौ द्वौ सक्तौ कुर्य्याच्च रोगिणः ।
सर्पत्वक् कुष्ठयुक्तेन निशाचूर्णेन चैव हि ॥
शयातादिति मन्त्रैश्च चतुर्द्दशभिरेव च ।
कुर्य्याच्च कलशै:स्नानं मन्त्रैरेभि: समाहित: ॥
इदं विष्णु: प्रतद्विष्णुर्विष्णोर्नुकमिति क्रमात् ।
तथाचौषधिसूक्तेन स्नातः शुक्लाम्बर: शुचि: ॥
गन्धपुष्पै: समभ्यर्च्य वृक्षं नारायणात्मकं ।
मन्त्रेणानेन भक्त्या तमाचार्य्याय निवेदयेत् ॥
पिप्पलीवृक्षरूपेण ह्यग्निगर्भस्त्वमेव हि ।
प्रभुर्व्वनस्पतीनाञ्च पूर्व्वं जन्मनि यत् कृतं ॥
हिंसनं यत् कृतं यच्च वैरूप्यं पादयोर्म्मम ।
नाशयाशु च मे क्षिप्रं त्वं दानेनातितोषित: ॥

दानमन्त्रः ।

अश्वत्थमेवं दत्त्वा तं प्रणिपत्य विसर्ज्जयेत् ।
पुनः स्नात्वा तु भुञ्जीत ब्राह्मणैर्बन्धुभिः सह ॥

अथाह वृद्धगौतमः ।

वृक्षच्छेत्ता तथा यस्तु स नाडीव्रणवान् भवेत्।
वक्ष्यामि तत्प्रतीकारं सर्व्वलोकहिताय तु॥
सौवर्णं कारयेद्वृक्षमश्वत्थं स्कन्धशोभितं॥
पलार्द्धेन तदर्द्धेन तदर्द्धेनाथवा पुनः।
कुर्य्याद्रूप्यमयं सूत्रं तेन तं परिवेष्टयेत्॥
तण्डुलोपरि संस्थाप्य पूजयेदुपचारतः।
अश्वत्थे वो निषदनमिति मन्त्रेण चोदितः॥
आचार्य्यो धर्म्मशास्त्रज्ञो वेदवेदाङ्गपारगः।
पुराणज्ञस्तथाशान्तो यज्ञविद्यासुनिष्ठितः॥
तेनैव कारयेत् पूजामाहूय स्वयमेव हि।
होमश्चापि प्रकुर्व्वीत समिदाज्यतिलैरपि।
अग्नेः संस्थापनं कार्य्यं मन्त्राध्यायोक्तमार्गतः॥
यदक्रं वाजयन्नेष समिद्धोमे प्रकीर्त्तितः।
आज्येनाष्टादिको शाखो व्याहृतिभिस्तिलाहुतौः॥
ईशानदेशे कलशस्थापनं शास्त्रतो भवेत्।
तेनाभिषेकं कुर्व्वीत आपोहिष्ठादिमन्त्रकैः॥
ग्रहशान्तिश्च कर्त्तव्या ब्राह्मणैर्व्वेदपारगैः।
ततो नाडीव्रणी स्नात्वा शुक्लाम्बरधरः शुचिः॥
उदङ्मुखः प्राङ्मुखाय आचार्य्याय निवेदयेत्।
मन्त्रेणानेन विधिवत् पूजितायाङ्गुलीयकैः॥
वनस्पतीनां प्रवरो विष्णुरूपोऽतिपूजितः।
तस्य प्रदक्षिणं सर्व्वं नमस्यः सर्व्वदेहिनां॥
सर्व्वकामार्थदो स प्रीतो भवतु दानतः।

वृद्धावृक्षच्छेदनेन नाडीव्रणं तदात्मनः।
सर्व्वं विनाशय क्षिप्रं वृक्षाणां प्रवरोऽसि॥

दानमन्त्रः।

एवं दत्त्वा तु तद्दानं सुखी नाडीव्रणी भवेत्।
अन्येभ्यो ब्राह्मणेभ्यश्च दद्याच्छक्त्या च दक्षिणां।
नमस्कृत्य तथाचार्य्यं शनैः शतपदं व्रजेत्॥
ततः स्नात्वातिहृष्टश्च ब्राह्मणानपि भोजयेत्।
शिष्टैरिष्टैर्व्वन्धुभिश्च स्वयम्भुञ्जीत वाग्यतः॥

अथाम्रतरुदानं।

आह वृद्धगौतमः।

विद्रधिः फलहर्त्ता स्यात् मनुष्यो ब्राह्मणस्य तु।
वक्ष्यामि तत्प्रतीकारं दानहोमादिभिः पुनः॥
पलार्द्धेन तदर्द्धेन तदर्द्धेनाथवा पुनः।
यथाविभववतो वापि कुर्य्यादाम्रतरुं शुभं॥
स्निग्धन्तथैव शाखाभिः सर्व्वतः संवृतं शुभं।
श्वेतवस्त्रेण संवेष्ट्य फलैरपि सुकल्पितं॥
गन्धपुष्पैः समभ्यर्च्य तण्डुलोपरि वेष्टितं।
तण्डुलानां परीमाणं द्रोणानाञ्च चतुष्टयं॥
तदर्द्धमथवा पादं तथाविभवतो नरैः।
आचार्य्योऽत्र विनीतस्तु सर्व्वशास्त्रार्थतत्त्ववित्॥

धर्म्मज्ञः सत्यवादी च कुलीनो लोकसम्मतः।
आहूय परया भक्त्या तेन पूजादि कारयेत्॥
वनस्पतेरग्रनायेत्येतया पूजनादिकं।
आग्नेय्यां दिशि होमश्च समिदाज्यतिलैर्भवेत्॥
मन्त्रश्च शाश्वतीं दृष्टा जातावावतुमित्यपि।
तिलहोमो व्याहृतिभिरष्टोत्तरसहस्रकं॥
यद्दृष्ट्वायुमन्त्रेण आज्यहोमः प्रशस्यते।
ग्रहशान्तिश्च कर्त्तव्या स्वगृह्योक्तविधानतः॥
हुत्वा हुत्वा च सम्पातान् पात्रेऽन्यस्मिन्निधापयेत्।
तेन विद्रधिरोगं मे सम्यगाज्यप्रदानतः॥
अग्नेरुत्तरतो भागे कलशस्थापनं भवेत्।
भद्रासनोपविष्टस्य अभिषेकश्च कारयेत्॥
ततः शुक्लाम्बरधरः शुक्लगन्धानुलेपनः।
सौवर्णमाम्रवृक्षन्तं प्रदद्यात् प्राङ्मुखाय तु॥
गन्धवस्त्रैः पूजिताय रोगी स्वयमुदङ्मुखः।
आम्र त्वं ब्रह्मणा सृष्टः सर्व्वप्राणिहिताय तु॥
वृक्षाणामादिभूतस्त्वं देवानां प्रीतिवर्द्धनः।
फलचौर्य्येण यत् प्राप्तं वैरूप्यं पूर्व्वजन्मनः।
सौवर्णवृक्षदानेन तुष्टा सर्व्वाश्च देवताः॥
विद्रधीनां शरीरोत्थं वाह्यमभ्यन्तरं तथा।
विनाशयन्तु सकलं स्वास्थ्यं कुर्वन्तु मे सदा॥

दानमन्त्रः।

एवं दत्त्वा तु तद्दानमाचार्य्यायातिभक्तितः।
शनैः शतपदं गत्वा प्रणिपत्य विसर्जयेत्॥
अन्येभ्यो ब्राह्मणेभ्यश्च दद्यात् शक्त्या च दक्षिणां।
ब्राह्मणान् भोजयित्वाथ स्वयम्भुञ्जीत बन्धुभिः॥

इति वृक्षदानविधिः।

नन्दिपुराणे।

क्रीड़ारामन्तु यः कुर्य्यादुद्यानं पुष्पसंकुलं।
तोयाश्रमसमायुक्तं शुभं फलसमृद्धिमत्।
स गच्छेच्छङ्करपुरं वासस्तत्र युगत्रयं॥

विष्णुधर्म्मोत्तरे।

पुष्कर उवाच।

उत्तरेण शुभः प्लक्षो वटः प्राग्भार्गवोत्तम।
उदुम्बरश्च याम्येन सौम्येनाश्वत्थएव च॥
एते कर्म्मणि नेष्यन्ते दक्षिणादिक्समुद्भवाः।
समीपजाताश्च तथा वर्ज्याः कण्टकिनो द्रुमाः॥
वामभागे तथोद्यानं कुर्य्याद्वासगृहाच्छुभं।
वायव्ये प्राक्तिलांस्तत्र सहोकान्तांश्च पुष्पितान॥
ततस्तु रोपयेद्वृक्षान् प्रयतः सुसमाहितः।
स्नातो द्रुममथाभ्यर्च्च ब्राह्मणांश्च शिवं तथा॥
ध्रुवाणि पञ्च वायव्यं हस्तं पुष्यं सवैष्णवं।

---

तत् सर्वमिति क्वचित् पाठः।

नक्षत्राणि तथामूलं शस्यन्ते द्रुमरोपणे ॥
उद्यानमजलं राम नाभिरामं यदा तदा ।
प्रवेशयेन्नदीवाहान् पुष्करिण्यश्च कारयेत् ॥
संस्कार्य्यमुद्भिदन्तोयं कूपाः कार्य्याः प्रयत्नतः ।
हस्तोमघा तथामैत्रमाप्यं पुष्यं सवासवं ॥
उत्तरात्रितयं राम तथापूर्व्वा सफाल्गुनी ।
जलाशयसमारम्भे प्रशस्तं वारुणं तथा ॥
संपूज्य वरुणं देवं विष्णुं पर्जन्यमेव च ।
कल्पयित्वा द्विजान् कामैस्तदारम्भपरोभवेत् ॥
अथोद्याने प्रवक्ष्यामि प्रशस्तान् पादपान् द्विज ।
अरिष्टा-शोक-पुन्नाग-शिरीषाः-सप्रियङ्गवः ॥
पनसाशोककदलीजम्बूलकुचदाडिमाः ।
मङ्गल्याः पूर्व्वतोराम रोपणीया गृहेषु वा ॥
कृत्वा वहुत्वमेतेषां रोप्याः सर्व्वं वनान्तरं ।
शाल्मलिं कोविदारञ्च वर्जयित्वा बिभीतकं ॥
दमनं देवदारुञ्च पलाशं पुष्करन्तथा ।
न विवर्ज्यस्तथा कश्चिद्दे वोद्याने विजानता ॥
तत्रापि वहुला कार्य्या मङ्गल्यानां द्विजोत्तम ।
सायं प्रातश्च घर्म्मान्ते शीतकाले दिनान्तरे ॥
वर्षाकाले भुवः शोषे सेक्तव्या रोपिता द्रुमाः ।
उत्तमं विंशतिर्हस्ता मध्यमा षोड़शान्तरं ॥
स्थानात् स्थानान्तरं कार्य्यं वृक्षाणां द्वादशान्तरं ।
अभ्यासजातास्तरवः संस्पृशन्तः परस्परं ।

अव्यक्तमिश्रसूक्ष्मस्त्वाद्भवन्ति सफला द्विज ॥
तेषां व्याधिसमुत्पत्तौ शृणु राम चिकित्सितं ।
आदौ संशोधनन्तेषां किञ्चिच्छस्त्रेण कारयेत् ॥
विडङ्गघृतपङ्काक्ताः सेचयेच्छीतवारिणा ।
फलनाशे कुलत्थैश्च माषैर्मुद्गैस्तिलैर्यवैः ।
घृतशीतपयःसेकः फलपुष्पाय सर्व्वदा ॥
आविका-ज-शकृच्चूर्णं यवचूर्णं तिलानि च ।
गोमांसमुदकं चेति सप्तरात्रान्निधापयेत् ॥
उत्सेकं सर्व्ववृक्षाणां फलपुष्पादिवृद्धिदं ।
रक्ततोयोषितं वीजं रक्ततोयाम्बु सेचितं ॥
तद्रक्तपुष्पं भवति यौवने नात्र संशयः ।
मत्स्याम्भसा तु सेकेन वृद्धिर्भवति शाखिनां ।
अतः प्राधान्यतो वक्ष्ये द्रुमाणां दोहदान्यहं ॥
मत्स्योदकेन शीतेन आम्राणां सेक इष्यते ।
मृद्वीकानां तथाकार्य्यस्त्वनेन रिपुसूदन ॥
पक्वामिद्रुचिरं चैव दाड़िमानां प्रशस्यते ।
तुषा देयाश्च भव्यानां मद्यञ्च वकुलद्रुमे ॥
विशेषात् कामिनीवक्त्रसंसर्गात्तु गुणश्च यत् ।
प्रशस्तञ्चाथ शोकानां कामिनीपदताड़नं ॥
शृगालमांसतोयेन नारङ्गीत्थोदकैस्त्रितं ।
मधुयष्ट्यादकं चैव वदराणां प्रशस्यते ॥
गुड़ोदकं सगोमांसं करकाणां प्रशस्यते ।
क्षीरासवेन भवति सप्तपर्णोमनोहरः ॥

मांसप्लुतोवसामज्जासेकः कुरबके हितः।
पूतिमत्स्याहितं पूतिकार्पासफलमेवच ॥
अहिमेदस्य सेकोऽयं पाटलेषु च शस्यते।
शृगालमत्स्यमांसाभ्यां चम्पकेषु च दापयेत् ॥
फले लतानां क्षीरेण रुधिरेण च शस्यते।
कपित्थविल्वयोः सेकं गुड़तोयेन कारयेत् ॥
जातीनां मल्लिकायाश्च गन्धतोयं परं-हितं।
तथाकुप्यतजातीनां कूर्म्ममांसञ्चशस्यते ॥
खर्जूरनारिकेलानां वं-शस्य कदलस्य च।
लवणेन सतोयेन सेको वृद्धिकरः स्मृतः ॥
विड़ङ्गतण्डुलोपेतं मत्स्यमांसं नरोत्तम।
सर्व्वेषामविशेषेण दोहदं परिकल्पयेत् ॥

एवं कृते चारुफलाः सुपुष्पाः
सुगन्धिनोव्याधिविवर्जिताश्च।
भवन्ति नित्यन्तरवः सुरम्या-
श्चिरायुषः स्वादुफलान्विताश्च ॥

देवीपुराणे।

अनूपे सजले स्थाने पुमान् देवेऽथ वा जले।
आरामं-रोपयेत्प्राज्ञो विधिदृष्टेन कर्म्मणा ॥

अनूपे, अतिस्निग्धे।
सजले जलाशयसहिते।

कालं देशं तथा पात्रं वीजं वीजक्रियाविधिः।

तथाफलसमं सृष्टमेवमारोपितं भवेत् ॥
फलपुष्पविशुद्धस्य विशुद्धं सर्व्वसंस्कृतं ।
धर्म्मकामार्थमोक्षादिसाधने दृश्यतेऽन्यथा ॥
विधिव्यत्ययवोजादिभूषिते भूपरिग्रहे ।
कुलादिभिः सुरश्रेष्ठ यजमानोविनश्यति ॥

पात्रं, वीजवापेयं । आर्येषार्यबोजक्रियाविधिः,
अङ्कुरजननसमर्थवीजकरणप्रकारः ।
विधिव्यत्ययो, विधेरन्यथाकरणं ।

आरामं सहकारादैर्नश्वश्चकारयेत् क्वचित् ।
चिताज्वलन संलग्ने चितिवल्मीकदूषिते ।
सहकारवनं कृत्वा याति कर्त्ता यमालयं ॥
गृहात्परोथवा तात स्थिते संरोपिते तथा ।
प्रतिपक्षं भवेत्तत्र छिन्द्याद्वा हितमिच्छता ॥
अश्वत्थवटप्लक्षादिश्चौदुम्बर्योविदिक्स्थिताः ।
जगतो भयदा यस्मात्तस्मात्तान् छेदयेद्वने ॥
रोपयेद्विल्व-वीरा-म्रकपित्थ-कपिलार्ज्जुनान् ।
दाड़िमी वीजपूरश्च उदगाधाद्रुमास्परे ॥
प्लक्षाः प्राच्यां सदा रोप्याः सकासनसधन्वनाः ।
कदम्बो वायवे तालो विल्वाशोकौ च सर्व्वगौ ॥

वीरः, भल्लातकवृक्षः ।

कपिला, शिंशपा ।

असनः, वीजकः, वायव्ये, वायुदिग्भागे ।

मयन्ती माधवी रम्भा क्रीड़ास्थाने निवेशयेत्।
जाती-नेपालिका-कुन्द-तगरा-गन्धमल्लिका।
शुभाय कथितास्तात व्यत्ययाद्भयदा यतः॥
पूर्व्वेण सुसमारामस्तथा चोत्तरतोऽथवा।
पश्चिमे धनदं प्रोक्तं वायव्यां कीर्त्तिवर्द्धनं॥
न कुर्य्युर्याम्यनैर्ऋत्ये ये चाग्नेये शुभार्थिनः।
अन्यथा कलहोद्वेगं मृत्युञ्चा लभते कृती॥
तस्माद्राज्यायुःशुभदं पुत्रसन्ततिवर्द्धनं।
पश्चिमोत्तरपूर्व्वेण आरामञ्जायते कृतं॥
अथवारामजान् दोषान् चामुण्डा शमयेत् कृतान्।
महाभयं महालक्ष्मीर्ग्रहशल्यं यथोत्थितं॥

ग्रहशल्यं ग्रहपीड़ा।

पुष्प-पत्र-फलानाञ्च बीजरेणुसमाः समाः।
कर्त्ता देवसभावासं विधौ यात्यविधौ वधः॥

तथा।

एवं यथोदितां भूमिं शुद्धां प्लवसमाश्रितां।
परिगृह्य यथादेवं वनमालं शिखिध्वजं॥
सामञ्च नागराजञ्च ततःकुर्य्यात्परिग्रहं।
यद्बीजं मन्त्ररहितं गर्भाधानादिवर्जितं॥
वासितं सहकारादि यद्बीजं मन्त्रवर्जितं।
तज्जातं वापकाराय तथा जायेत वैकृतं*॥
शङ्करायेतिमन्त्रेण इत्थंतु पञ्चमन्त्रवित्।

* वैकृतुरिति पुस्तकान्तर पाठः।

त्र्यम्बकेन तु राजेन्द्र बीजं भवति शोभनं॥
अविधौ कूपवाप्यादिखननोत्सरणं च यत्।
कुर्व्वन्ति सहकारादिरोपणन्तु नराधमाः।
फलं तेषां लभेत्तेषामिह चान्ते अधोगतिः॥
येऽशुभाः शुद्धविधिना कुर्व्वन्ति वनरोपणं।
ते आत्मनृपलोकानां महासंशयकारकाः॥
कूपा-राम-तड़ागादि-प्रपा-वापी-प्रतिश्रयं।
सर्व्वेशाधिष्ठितं वत्स ह्यनन्तफलदायकं।
वृक्षान् पञ्च समारोप्य शिवधाम प्रपद्यते॥
ये च पापा दुराचाराः शीतवृक्षच्छेदकारिणः।
तेऽथ पाप्यादिनरके पच्यन्ते ब्रह्मणोदिनं।
मृतास्ते जीवमानास्तु ब्रह्मघ्नाःकीर्त्तिता भुवि॥
तस्मिन् देशे भयं नित्य राजानो न चिरायुषः।
न च नन्दत्ययं लोको यत्र शीतवृक्षच्छेदनं॥

इत्यारामरोपणम्।

अथ वृक्षप्रतिष्ठा।

मत्स्यपुराणे।

ऋषय ऊचुः।

पादपानां विधिस्तत्र यथावद्विस्तराद्वद।
विधिना केन कर्त्तव्यं पादपोद्यापनं बुधैः।
ये च लोकाः स्मृतास्तेषां वा निदानं वदस्व नः॥

सूत उवाच ।

पादपानां विधिं वक्ष्ये तथैवोद्यानभूमिषु ।
तड़ागविधिवत् सर्व्वमासाद्य जगतीश्वर ॥
ऋत्विग्मण्डपसम्भारमाचार्य्यञ्चापि तादृशः ।
पूजयेद्ब्राह्मणांस्तद्वद्धेमवस्त्रानुलेपनैः ॥
सर्व्वौषध्युदकैः सिक्तान् पिष्टालक्तविभूषितान् ।
वृक्षान्माल्यैरलङ्कृत्य वासाभिरभिवेष्टयेत् ॥
सूच्या सौवर्णया कार्य्यं सर्व्वेषां कर्णवेधनं ।
अञ्जनञ्चापि दातव्यं तद्वद्धेमशलाकया ।
फलानि सप्त चाष्टौ वा कालधौतानि कारयेत् ॥

कालधौतानि रूप्यमयानि ।

प्रत्येकं सर्व्ववृक्षाणां वेद्यान्तानधिवासयेत् ।
धूपोऽत्र गुग्गुलः श्रेष्ठस्ताम्रपात्रैरधिष्ठितान् ॥
सर्व्वधान्यकृतान् कृत्वा वस्त्रगन्धानुलेपनैः ।
कुम्भान् सर्व्वेषु सर्व्वेषु स्थापयित्वा नरेश्वर ॥
सहिरण्यानशेषांस्तान् कृत्वा बलिनिवेदनं ।
यथावल्लोकपालानामिन्द्रादीनां विधानतः ॥
वनस्पतेश्च विद्वद्भिर्होमः कार्य्यो द्विजातिभिः ॥
ततः शुक्लाम्बरधरां सौवर्णकृतभूषणां ।
सकांस्यदोहां सौवर्णशृङ्गाभ्यामतिशालिनीं ।
पयस्विनीं वृक्षमध्यादुत्सृज्येद्गामुदङ्मुखीं ॥
ततोऽभिषेकमन्त्रेण वाद्यमङ्गलगीतकैः ।

ऋग्यजुः साम-मन्त्रैश्च वारुणैरभितस्तदा ।
तैरेव कुम्भैः स्नपनं कुर्य्युर्ब्राह्मणपुङ्गवाः
स्नातः शुक्लाम्बरधरो यजमानः प्रपूजयेत् ।
गोभिर्व्विभवतः सर्व्वानृत्विजः सुसमाहितः ॥
हेमसूत्रैः सकटकैरङ्गुलीयैः पवित्रकैः ।
वासोभिः शयनैश्चैव तथोपस्करपादुकैः ॥
क्षीराभिषेचनं दद्युर्य्यावद्दिनचतुष्टयं ।
होमश्च सर्पिषा कार्य्यो यवकृष्णतिलैस्तथा ॥
पलाशसमिधः शस्ताश्चतुर्थेऽह्नि तथोत्सवः ।
दक्षिणा च पुनस्तद्वद्देया तत्रापि शक्तितः ॥
यद्यदिष्टतमं किञ्चित्तत्तद्दद्यादमत्सरः ।
आचार्य्ये द्विगुणं दत्त्वा प्रणिपत्य विसर्जयेत् ॥
अनेन विधिना यस्तु कुर्य्याद्वृक्षोत्सवं बुधः ।
सर्व्वान् कामानवाप्नोति फलञ्चानन्त्य मश्नुते ॥
यश्चैकमपि राजेन्द्र वृक्षं संस्थापयेन्नरः ।
सोऽपि स्वर्गे वसेद्राजन् यावदिन्द्रायुतत्रयं ॥
भूतान् भव्यांश्च मनुजांस्तारयेद्रागसंमितः ।
परमां सिद्धिमाप्नोति पुनरावृत्तिदुर्लभां ॥

इति वृक्षप्रतिष्ठाविधिः ।

अथ तरुपुत्रदानविधिः ।

मत्स्यपुराणे ।

दशकूपसमा वापी दशवापीसमो ह्रदः।
दशह्रदसमः पुत्रो दशपुत्रसमो द्रुमः॥

नन्दिपुराणे।

तरुपुत्रं तु यः कुर्य्याद्विधिवद्वह्निसन्निधौ।
स महापातकैर्मुक्तः समुद्धृत्य कुलत्रयं।
नरकेभ्यो नरोयाति प्रजापतिपुरं शुभं॥

स्कन्दपुराणे।

इत्येवं रुद्रमहिषी भूमीरुहसुतस्तव।
श्रुत्वा पतिं त्रिलोकेशमिदमाह पतिव्रता॥
भगवन् केन विधिना विधीनां सारसागर।
पुत्रप्रतिकृतिर्वृक्षः क्रियते चन्द्रभूषण॥
सलीलामिति सर्व्वज्ञः पृच्छन्तीं विधिमुत्तमं।
महादेवो महादेवीमिदं वचन मब्रवीत्॥
देवि नागेन्द्रनासोरु नागेन्द्रगतिगामिनि।
शृणुष्व येन विधिना गृह्यतेऽवनिजः सुतः॥

अवनिजोवृक्षः।

स्वपुत्रार्थं भूमिरुहं ग्रहीष्यामीति पार्व्वती।
सोपवासा भवेन्नारी शुचिवस्त्रा शुचिव्रता॥
ततश्चैव सहस्रांशावस्तशृङ्गगते रवौ।
उदिते विमले चापि तथादाविन्दुसन्निभे॥
विप्रानामन्त्रयेद्राज्ञी पावनान् वेदवादिनः।

विप्रान्निमन्त्रयित्वा तु शुचिवस्त्रा शुचिव्रता ॥
शयीत सनमस्कारा सदर्भां भूमिमाश्रिता ।
गमयित्वा तथा रात्रिं सवितर्य्युदितेऽपि च ॥
भक्ष्यभोज्यं समादाय व्रजेद्यत्र भवेत्तरुः ।
ततस्तं स्नपयित्वा तु सातपत्रं सभूषणं ॥
तस्तरुन्तरुणीकृत्य ततश्छायानुगामिनं ।
यत्रापपन्नमन्नन्तान् भोजयित्वा द्विजांस्ततः ।
पुण्याहं कारयित्वा तु ऋत्विजा चाथवात्मना ॥
त्वमानां ब्राह्मणानां वै चैतत्ते कृत्यमात्मनः ।
निवेद्य कृतमुद्दिश्य सद्भावेन परेण तु ॥
अपुत्रा भगवन्तोऽहं पुत्रप्रतिकृतिं तरुं ।
ग्रहीष्यामि ममानुज्ञां कर्त्तुमर्हथ सत्तमाः ॥
ततस्तैरभ्यनुज्ञातं तन्तरुन्तरुणाकृतिं ।
भूमिदेवसमक्षं वै गृह्णीयात्तनयं प्रिये ॥

भूमिदेवसमक्षं, ब्राह्मणाग्रतः ।

अनेन विधिना यस्तु गृहीततरुपुत्रकः ।
पितृणां निरयस्थानां मधुधारां स वर्षति ॥
गृहीतो विधिनानेन शुभभूमिरुहात्मजः ।
शुभे सुखाय भवति विपरीतेन दुःखदः ॥
न पुत्राणां शतं वापि पीनश्रोणिपयोधरे ।
एकोभूमिरुहः श्रेष्ठः पुत्रत्वे कल्पितः सुतः ॥
इत्येवं तन्मयापृष्टमिष्टं दृष्टान्तपारिणि ।
यथाभूमिरुहः पुत्रोविशिष्टः कोष्ठजैः सुतैः ॥

ततः शोकापहा देवी तमशोकं विभाविनी ।
अलङ्कार संहृष्टा ह्यलङ्कारैः पृथग्विधैः ।
आतपत्रञ्च तस्याग्रे मुक्ताभवनभास्करं ॥
उच्छ्रयामास गिरिजा मयूराङ्गरुहैः सह ।
नानावर्णेन चाप्यस्य चन्दनेन सुगन्धिना ॥
आमूलात् प्रददौ देवी करपङ्कानितस्ततः ।
जाम्बूनदमयैश्चापि पट्टै रत्नविराजितैः ॥
सर्व्वतोभूषयामास तमशोकतरुं प्रियं ।
तस्य शाखाप्रशाखासु मुक्तादामानि पार्व्वती ॥
आबबन्ध सतैर्भाति नक्षत्रैरिव भास्करः ।
तथा वासोयुगेनापि तमशोकं गुहारणी ॥
वासयामास लोकानां जननी पुत्रलालसा ।
ततो नमेरुणा चारु गुग्गुलं घृतमेव च ॥
समवाययुतं धूपञ्चामरं धूपनार्च्चितं ।
ततः शङ्खनिनादेन देवतूर्य्यरवेण च ॥
नन्दिनाथ समानीता ब्राह्मणा ब्रह्मणःसमाः ।
वाचयामास पुण्याहं दत्त्वा गाः स्वर्णमेव च ॥
ततः पुण्याहघोषान्ते आशीर्वादस्यचोभयोः ।
अनुमान्य पतिं-देवीं मुषीं-श्चाप्रीणयंस्तदा ॥

ब्रह्मवैवर्त्ते

श्रीभगवानुवाच ।

अतःपरं प्रवक्ष्यामि वृक्षस्योद्यापने विधिं ।

सर्व्वपापप्रशमनं सर्व्वाशुभविनाशनं ॥
अपुत्रया पुरा पार्थ पार्व्वत्या मन्दराचले।
अशोकः शोकशमनः पुत्रत्वे परिकल्पितः ॥
जातकर्म्मादिकास्तस्य याः क्रियाः कुलवृद्धिमान् ॥
चकाराग्निपुराणोक्ताः शृणुष्वैव युधिष्ठिर ॥
स तु बालो घनदलस्तथैव मृदुपल्लवः।
शीतवातातपसहः संस्कार्य्यस्तरुणस्तरुः ॥
स्त्रीनामा कण्टकी कुब्जः-कीटखातसकोटरः।
नोद्वाप्यः पादपः सर्व्वः शिष्टानां येन सम्मतः ॥
आलवाले सुविहिते शुभे वार्य्यचतुष्किको।
शोधयित्वा तमुद्देशं मुलिप्तङ्कारयेत्ततः ॥
ततस्तोद्यापनं पार्थ पादपानां प्रशस्यते।
शुभेऽह्नि विप्रकथिते ग्रहनक्षत्रसंयुगे ॥
पताकालङ्कृतं वृक्षं पूर्व्वेद्युरधिवासयेत्।
रक्तवस्त्रैः समाच्छाद्य रक्तसूत्रेण वेष्टयेत् ॥
इष्टाद्यैः स्नापितं स्वर्णसर्व्वौषध्या च पादपं।
स्थापयेत् पूर्व्वकलशांश्चतुर्द्दिक्षु विचक्षणः ॥
पल्लवालङ्कृतमुखान् सितचन्दनचर्च्चितान्।
सितवस्त्रयुगच्छन्नान् समाल्यान् रत्नगर्भिणः ॥
पताकालङ्कृताः सर्व्वे कार्य्यास्तत्सन्निधौ द्रुमाः।
मूलविन्यस्तकलशा रक्तसूत्रैश्च वेष्टिताः ॥
रक्तपीतसितच्छेदचर्च्चिताः सुमनोरमाः।
कलधौतमयान्यत्र फलानि दश पञ्च च ॥

ताम्रपात्रसबीजानि सरत्नान्यधिवासयेत्।
तूर्य्यमङ्गलघोषेण चतुर्द्दिक्षु क्षिपेद्बलीन्॥
इन्द्रादिलोकपालानां तन्मन्त्रैर्मन्त्रविद्गुरुः।
ततः प्रभाते विमले कुण्डं कृत्वा समेखलं।
ग्रहयज्ञविधानेन सर्व्वं कर्म्म समाचरेत्॥
सुवर्णालङ्कृतान् कृत्वा ब्राह्मणान् वेदपारगान्।
चतुरोऽष्टौ यथाशक्त्या वासोभिरभिपूजयेत्॥
तिलाज्येन च होमः स्यात्तुष्टिपुष्टिकरः सदा।
मातरः स्थापयित्वाग्रे पूजयेत् कुसुमाक्षतैः॥
श्रपयित्वा चरुं सम्यक् पयसा च परिप्लुतैः।
होमशेज्जातकर्म्मादि गोदानं यावदेव तु॥
पादपं स्नपयित्वा तु समन्त्रैस्तीर्थवारिभिः।
जातकं नामकरण-मन्नप्राशन-मेव च।
सुवर्णसूच्या कुर्व्वीत कर्णवेधं विधानतः॥
जातरूपक्षुरेणाथ चूड़ाकर्म्म यथाक्रमं।
बध्नीयान्मेखलां मौञ्जीं वासश्च परिधापयेत्॥
कृत्वा वै तदशेषेण कुर्य्याद्गोदानमङ्गलं।
विवाहं केचिदिच्छन्ति माधवीलतया तरोः॥
मालत्या सह शल्लक्या जम्बूं वा शाल्मलिं विदुः।
संस्कारैः संस्कृतस्यैव पादपस्य तथार्थवत्।
एषा प्रतिष्ठा नामेति मन्त्रेणाशीः प्रयोजयेत्॥
यजमानस्ततः स्नात्वा शुक्लाम्बरधरः शुचिः।
पुष्पाञ्जलिं समादाय मन्त्रमेतमुदीरयेत्॥

ये शाखिनः शिखरिणां शिरसां-विभूषा
ये नन्दनादिषु वनेषु कृतप्रतिष्ठाः।
ये कामदाःसुरनरोरगकिन्नराणां
तेऽनेन तस्य दुरितार्त्तिहरा भवन्तु॥
एते द्विजा विधिवदत्र हुता हुताशाः
पश्यत्यसावपि हिमदीधितिरन्तरस्थः।
त्वं वृक्ष पुत्रपरिकल्पनया धृतोऽसि
कार्य्यं सदैव भवता मम पुत्रकार्य्यं॥
इत्येव मुक्का तं वृक्षं स्पर्शयित्वा पुनः पुनः।
घृतपात्रे स्ववदनं दृष्ट्वाशीः संप्रयोजयेत्॥
अङ्गादङ्गात् सम्भवसि हृदयादधिजायसे।
आत्मा वै पुत्रनामासि स जीव शरदः शतं॥
ब्राह्मणानां ततो देया दक्षिणा हृष्टमानसैः।
स्थापकाय शुभां धेनुं दत्त्वा कुर्य्यान्महोत्सवं॥
दीनानाथजनानाञ्च भोजनञ्चानिवारितं।
इतरेषान्तु दातव्यं सन्तुष्टेन सुरासवं॥
ज्ञातिबन्धुजनैः सार्द्धं स्वयम्भुञ्जीत कामतः।
तथा कर्म्मकराः सर्व्वे भोजनीयाः स्वशक्तितः॥
एतत्ते कथितं-पार्थ वृक्षाणां सुमहोत्सवं।
सर्व्वान् कामानवाप्नोति इह लोके परत्र च॥
पुत्रैर्व्विना शुभफलं न भवेन्नराणां
दुष्पुत्रकैरपि तथोभयलोकनाशः।
एतद्विचार्य्य सुधिया परिपाल्य वृक्षान्

यज्ञेन वेदविधिना परिकल्पनीयाः ॥

इति नरपुत्रविधिः।

पर्य्यवसितञ्च दानं करणाधिपो विजयते हेमाद्रिः।
आवारिनिधिक्षौणीमण्डलमण्डलित स्वयशोराशिः* ॥
चिन्तामणौ महाशास्त्रे तेन हेमाद्रिणा कृते।
दानखण्डाख्यखण्डं च जगाम परिपूर्णतां ॥
येनाशमसखलमवेक्ष्य कोपि
मान्यो मुनिभ्यः प्रभूतामुपैति।
दानानि तान्याचरितुं प्रवन्धो
हेमाद्रिदेवस्य जगाम पारं† ॥

इति श्रीमहाराजाधिराजश्रीमहादेवीय समस्त करणाधीश्वर
सकलविद्याविशारद श्रीहेमाद्रि विरचिते चतु-
र्व्वर्गचिन्तामणौ दानखण्डं सम्पूर्णं।

* पर्य्यवसितं दानमनद्दानश्रीकरणाधिपो विजयते हेमाद्रिरसौ निधिक्षौणीमण्डल मण्डलीकृतयाशा राशिः ॥ १ ॥

† यदगणनातिक्रमेति मान्यो मुनिभ्यः प्रभतामुपैति दानानि तान्याचरितुं प्रवन्ध हेमाद्रिदेवोऽत्यपार ॥ २ ॥

पुस्तकान्तरे यदगणाति क्रमेपि तान्याचरेणमिति पाठः।

आदर्शभूतग्रन्थद्वयस्थितं श्लोकद्वयमिवासंलग्नमिति बुद्ध्वा स्वबुद्ध्या संलग्नपाठं कृत्वा आवापोद्धारेण विरचय्य मुद्रितं तत्र यदि पुस्तकान्तरे प्रसिद्धपाठो मिलिष्यति तद्दृष्ट्वा सुधीभिः श्लोकद्वयाभावे ग्रन्थहानिर्नास्तीति।

## उपसंहारः ।

चिन्तामणौ दानमहाप्रबन्धो
हेमाद्रिणाकारि सतां हिताय ।
वाणाङ्गशैलेन्दुमिते सहस्रे
मुद्राङ्कितोऽसौ शकभूपवर्षे ॥

महाराज्ञी जीव्यात् जनसुगणमास्तोकसहिता
समाः साम्राज्यानि प्रचुरधनधान्यादिविभवैः ।
प्रवर्द्धन्तां तस्याः प्रकृतिनिचयाः सन्तु हृषिताः
विपक्षाः सम्पृक्ताः प्रकृतिगुणतः सन्तु च वशाः ॥

वेदादिशास्त्राण्यखिलानि यानि
प्रायो विलुप्तानि धरातलेऽस्मिन् ।
यैर्यत्नतस्तानि समुद्धृतानि
जीव्यासुरेते कृतिनश्चिराय ॥

विद्वान्नाम्नकिशोर आदिपुरुषस्तद्वत् सुतः शङ्करः
पुत्रोऽस्याजनकृष्णभूप मतिमान् तस्यात्मवंशोचितः ।
तत्पुत्रो भरतः स्वेभमृतनोश्चिन्तामणिं मुद्रया
वाणाङ्काद्रिविधूङ्किते शकनृपाब्देऽशोधयद्यत्नतः ॥

श्रीभरतचन्द्रशर्म्मा ।